सत् शास्त्र-प्रकाशन

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास-प्रणीत

श्रीमद्भागवत - महापुराण

दशम स्कन्ध

(उत्तरार्ध)

[पच्छेद, अन्वय, हिन्दी शब्दार्थ टीका सहित]

सम्पादक

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान--मथुरा

श्री हित हरिवंश

वृन्दावन के परम पूज्य संत श्री प्रेमानंद जी के प्रवचन से प्रेरणा पाकर हमने मूल संस्कृत की श्रीमद्भागवत का पाठ स्वयं करने का निश्चय किया. अंग्रेजी भाषा में शिक्षा ग्रहण करने और संस्कृत भाषा का अधिक ज्ञान न होने के कारण हमारे लिए मूल श्लोक को पढ़ना थोड़ा कठिन है | इसीलिए हमारे गुरु श्री के. एन. राव जी ने हमें श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ गीता प्रेस से प्रकाशित पदच्छेद, अन्वय और टीका वाली पुस्तक संख्या 17 से कराया है | पदच्छेद से संस्कृत श्लोक का अध्ययन सुगम हो गया और कुछ समय बाद मूल श्लोक भी सहजता से पढ़ा गया। इसी उद्देश्य से हमने भागवत की एक ऐसी प्रति को खोजना प्रारम्भ किया जिसमें मूल श्लोक, पदच्छेद और साथ ही हिंदी टीका हो | इंटरनेट पर खोजने से ऐसी कई प्रति मिलीं किन्तु श्री सुदर्शन सिंह चक्र जी द्वारा किया अन्वय उन सभी में सबसे सहज और सुगम है। किन्तु ग्रन्थ के अब प्रकाशित न होने के कारण उपलब्ध नहीं है। इस अमूल्य ग्रन्थ को दोबारा साधकों तक लाने के लिए इसके सभी खंडों को स्कैन करके उपलब्ध कराने का यह हमारा छोटा सा प्रयास है।

श्री जी की कृपा से इस यात्रा में पद पद पर हमें वृन्दावन के संतों और धर्मप्रेमी मित्रों का सहयोग मिलता रहा जिसके बिना इस कार्य को पूर्ण करना असंभव था | सभी संतो और मित्रों का आभार प्रकट किये बिना इस ग्रन्थ को पुनः जन जन तक पहुँचाना संभव ही नहीं है | सबसे पहले इस ग्रन्थ की खोज में हमारे मार्गदर्शक आगरा के स्वपनिल जी बने और हमारा परिचय प्रभात जी से कराया | तत्पश्चात पूज्य राजमाता सौभाग्य कुँवर राणावत जी और पूज्य डॉ. बालचंद्रिका पाठक जी (मुन्नी जीजी) के मार्गदर्शन में हमने वृन्दावन के आश्रमों में इसकी खोज प्रारम्भ की | अन्ततः इस ग्रन्थ के सभी खंड हमें अखंडानंद आश्रम लाइब्रेरी से श्री सेवानंद जी और मलूक पीठ ग्रंथालय से श्री श्यामसुंदर जी के आशीर्वाद से प्राप्त हुए | पहला खंड अत्यधिक पुराना होने के कारण बहुत ही जीर्ण अवस्था में था और खंड के बहुत से पृष्ठ गुम हो चुके थे | तभी हमारी इस यात्रा को पूर्ण करने में सहयोगी बने बक्सर वाले मामाजी के बक्सर आश्रम से श्याम जी जिन्होंने कोसी आश्रम के नवल जी से परिचय करवाया। और नवल जी ने प्रथम खंड की बहुत ही सहज कर रखी गयी प्रति स्कैन करने के लिए उपलब्ध करवाई |

श्री जी के आशीर्वाद, संतों के मार्गदर्शन और धर्मप्रेमी मित्रों के सहयोग के बिना यह यात्रा असफल ही होती | हम आशा करेंगे कि इस नए प्रिंट से सभी भागवत प्रेमी और विद्यार्थी लाभ उठा सकेंगे | इस पूरे ग्रन्थ का पीडीऍफ़ ऑनलाइन भी अपलोड किया गया है | नीचे दिए लिंक से सभी खंडों का पीडीऍफ़ डाउनलोड किया जा सकता है |

https://archive.org/details/shrimad-bhagvat-anvaya-teeka

मकर संक्रांति, जनवरी 15, 2024 राधे राधे ...

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ
५०.	जरासंधसे युद्ध और द्वारिकापुरीका निर्माण	१
५१.	कालयवनका भस्म होना, मुचुकुन्दकी कथा	२५
५२.	द्वारिकागमन, श्रीबलराम-विवाह तथा श्रीकृष्णके पास रुक्मिणीका संदेश	५३
५३.	रुक्मिणी-हरण	७३
५४.	शिशुपालके मित्र-राजाओं और रुक्मीकी हार तथा श्रीकृष्ण रुक्मिणी-विवाह	९७
५५.	प्रद्युम्नका जन्म और शम्बरासुरका वध	१२३
५६.	स्यमन्तकमणिकी कथा, जाम्बवती और सत्यभामा के साथ कृष्णका विवाह	१४०
५७.	स्यमन्तक-हरण, शतधन्वा-उद्धार और अक्रूरजीको द्वारिका बुलाना	१५९
५८.	भगवान् श्रीकृष्णके अन्यान्य विवाहोंकी कथा	१७७
५९	भौमासुर-उद्धार और सोलह हजार एक सौ कन्याओंसे श्रीकृष्ण-विवाह	२०३
६०.	श्रीकृष्ण-रुक्मिणी संवाद	२२६
६१.	श्रीकृष्णकी संततिका वर्णन और अनिरुद्धके विवाहमें रुक्मीका मारा जाना	२५६
६२.	ऊषा-अनिरुद्ध-मिलन	२७४
६३.	भगवान् श्रीकृष्णके साथ बाणासुरका युद्ध	२९०
६४.	नृग राजाकी कथा	३१४
६५.	श्रीबलरामजीका व्रजगमन	३३४
६६.	पौण्ड्रक और काशिराजका उद्धार	३४८
६७.	द्विविदका उद्धार	३६७
६८.	कौरवों पर बलरामजीका कोप और साम्बका विवाह	३७९
६९.	देवर्षि नारदजीका श्रीकृष्णकी गृहचर्या देखना	४०३
७०.	श्रीकृष्णकी नित्यचर्या और जरासन्धके बंदी राजाओंके दूतका आना	४२५
७१.	श्रीकृष्णका इन्द्रप्रस्थ पधारना	४४८

अध्याय	विषय	पृष्ठ
७२.	पाण्डवोंका राजसूय-यज्ञ और जरासन्धका उद्धार	४७१
७३.	जरासंधके कारासे मुक्त राजाओंकी विदाई और श्रीकृष्णका इन्द्रप्रस्थ लौट आना	४९४
७४.	श्रीकृष्णकी अग्रपूजा और शिशुपालका उद्धार	५११
७५.	राजसूय-यज्ञकी पूर्ति और दुर्योधनका अपमान	५३३
७६.	शाल्वके साथ यादवोंका युद्ध	५५३
७७.	शाल्व-उद्धार	५६८
७८.	दन्तवक्त्र और विदूरथका उद्धार तथा तीर्थयात्रामें बलरामजी द्वारा सूत-वध	५८६
७९.	बल्वलका उद्धार और बलरामजीकी तीर्थ-यात्रा	६०३
८०.	श्रीकृष्ण द्वारा सुदामाजीका स्वागत	६१८
८१.	सुदामाजीको ऐश्वर्यकी प्राप्ति	६३८
८२.	श्रीकृष्ण-बलरामसे गोप-गोपियोंकी भेंट	६५६
८३.	श्रीकृष्णकी पटरानियोंके साथ द्रोपदीकी बातचीत	६७९
८४.	वसुदेवजीका यज्ञोत्सव	७०१
८५.	श्रीकृष्ण द्वारा वसुदेवजीको ब्रह्मज्ञान-उपदेश एवं देवकीके छः पुत्र लौटाना	७३२
८६.	सुभद्राहरण, श्रीकृष्णका मिथिलापुरीमें राजा जनक और श्रुतदेवके घर जाना	७५८
८७.	वेदस्तुति	७८५
८८.	शिवजीका संकटमोचन	८१९
८९.	भृगु द्वारा त्रिदेवोंकी परीक्षा तथा श्रीकृष्णका मृत ब्राह्मण-पुत्रोंको वापस लाना	८३७
९०.	श्रीकृष्णके लीला-विहारका वर्णन	८६७

श्रीमद्भागवत महापुराणके स्कन्ध एकादश और द्वादश क्रमशः छप रहे हैं। अपनी प्रति अभीसे ही आरक्षित करा सकते हैं—रु० १००/- अग्रिम भेजकर। यह पुस्तक अत्यन्त सीमित संख्यामें छप रही है अतः निश्चित रूपसे पुस्तक प्राप्त करनेके लिए आवश्यक है।

व्यवस्थापक, प्रकाशक विभाग,श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा संस्थान
मथुरा (उ० प्र०)–२८१००१

॥ दशमः स्कन्धः ॥

(उत्तरार्ध)

दशमः स्कन्धः

(उत्तरार्धः)

अथ पंचाशत्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ ।
मृते भर्तरि दुःखार्ते ईयतुः स्म पितुर्गृहान् ॥१॥

अस्तिः प्राप्तिः च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ मृते भर्तरि दुःख आर्ते ईयतुः स्म पितुः गृहान् ॥१॥

भारतर्षभ	भरत श्रेष्ठ परीक्षित !	भर्तरि मृते	स्वामीके मर जानेपर
कंसस्य महिष्यौ	कंसकी रानियां	दुःख आर्ते	दुःखसे व्याकुल होकर
अस्तिः च	अस्ति और		
प्राप्तिः	प्राप्ति	पितुः गृहान्	पिताके घर
		ईयतुः स्म	चली गयीं ॥१॥

पित्रे मगधराजाय जरासंधाय दुःखिते ।
वेदयाञ्चक्रतुः सर्वमात्मवैधव्यकारणम् ॥२॥

पित्रे मगधराजाय जरासन्धाय दुःखिते वेदयान् चक्रतुः सर्वं आत्मवैधव्य कारणम् ॥२॥

दुःखिते	दुःखी होकर	आत्मवैधव्य	अपने विधवा होनेका
पित्रे	अपने पिता		
मगधराजाय	मगधराज	कारणं	कारण
जरासन्धाय	जरासन्धसे	वेदयान् चक्रतुः	कह सुनाया ॥२॥

स तदप्रियमाकर्ण्य शोकामर्षयुतो नृप ।
अयादवीं महीं कर्तुं चक्रे परममुद्यमम् ॥३॥

स तत् अप्रियं आकर्ण्य शोक अमर्षयुतः नृप अयादवीं महीं कर्तुं चक्रे परम उद्यमम् ॥३॥

नृप	राजन् !	महीं	पृथ्वीको
स तत्	उसने वह	अयादवीं	यदुवंश विहीन
अप्रियं	अप्रिय (समाचार)	कर्तुं	करनेके लिए
आकर्ण्य	सुनकर	परम उद्यमं	महान आयोजन
शोक	शोक तथा	चक्रे	किया ॥३॥
अमर्षयुतः	असहन शीलता पूर्वक		

अक्षौहिणीभिर्विंशत्या तिसृभिश्चापि संवृतः ।
यदुराजधानीं मथुरां न्यरुणत् सर्वतोदिशम् ॥४॥

अक्षौहिणीभिः विंशत्या तिसृभिः च अपि संवृतः यदुराजधानीं मथुरां न्यरुणत् सर्वतः दिशम् ॥४॥

च अपि	और फिर	यदुराजधानीं	यादव-राजधानी
विंशत्या तिसृभिः	तेईस	मथुरां	मथुराको
अक्षौहिणीभिः	अक्षौहिणी सेना	सर्वतः दिशं	चारों ओरसे
संवृतः	लेकर	न्यरुणत्	घेर लिया ॥५॥

निरीक्ष्य तद्बलं कृष्ण उद्वेलमिव सागरम् ।
स्वपुरं तेन संरुद्धं स्वजनं च भयाकुलम् ॥५॥

निरीक्ष्य तत् बलं कृष्ण उद्वेलं इव सागरं स्वपुरं तेन संरुद्धं स्वजनं च भय आकुलम् ॥५॥

कृष्ण	श्रीकृष्णने	तत् बलं	उसकी सेनाको,
उद्वेलं	उमड़ते हुए	तेन संरुद्धं	उसके द्वारा पूर्णतः घिरे
सागरं इव	समुद्रके समान		

स्वपुरं च	अपने नगरको तथा	स्वजनं	अपने लोगोंको
भय आकुलं	भय-व्याकुल	निरीक्ष्य	देखकर ॥५॥

चिन्तयामास भगवान् हरिः कारणमानुषः ।
तद्देशकालानुगुणं स्वावतारप्रयोजनम् ॥६॥

चिन्तयामास भगवान् हरिः कारण मानुषः तत् देश काल अनुगुणं स्व अवतार प्रयोजनम् ॥६॥

कारण	कारण विशेषसे	अनुगुणं	अनुसार
मानुषः	मनुष्य बने	स्व अवतार	अपने अवतारके
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरिने	प्रयोजनं	प्रयोजनका
तत् देश काल	उस देश-कालके	चिन्तयामास	विचार किया ॥६॥

हनिष्यामि बलं ह्येतद् भुवि भारं समाहितम् ।
मागधेन समानीतं वश्यानां सर्वभूभुजाम् ॥७॥

हनिष्यामि बलं हि एतत् भुवि भारं समाहितं मागधेन सम आनीतं वश्यानां सर्व भूभुजाम् ॥७॥

मागधेन	'मगधराज जरासन्ध द्वारा	एतत्	यह
		भुवि भारं	पृथ्वीकी भाररूपा है
वश्यानां	अपने अधीनस्थ	समाहितं	एक साथ आयी
सर्वभूभुजां	सभी भूपतियोंकी	बलं	सेनाको
सम आनीतं	एकत्र करके लायी	हनिष्यामि	मार दूंगा ॥७॥
हि	क्योंकि		

अक्षौहिणीभिः संख्यातं भटाश्वरथकुञ्जरैः ।
मागधस्तु न हन्तव्यो भूयः कर्ता बलोद्यमम् ॥८॥

अक्षौहिणीभिः संख्यातं भट अश्व रथ कुञ्जरैः मागधः तु न हन्तव्यः भूयः कर्ता बल उद्यमम् ॥८॥

भट अश्व	पैदल, घोड़े,	न हन्तव्यः	मारने योग्य नहीं है;
रथ कुञ्जरैः	रथ, हाथियों युक्त		क्योंकि
अक्षौहिणीभिः	अक्षौहिणीयों	भूयः बल	फिर सेना (एकत्र
संख्यातं	गिननेकी		करने) का
तु मागधः	किन्तु मगधराज	उद्यमं कर्ता	आयोजन करेगा ॥८॥

एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे ।
संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां वधाय च ॥९॥

एतत् अर्थः अवतारः अयं भूभार हरणाय मे संरक्षणाय साधूनां कृतः अन्येषां बधाय च ॥९॥

भूभार	पृथ्वीका भार	अन्येषां	दूसरे (दुष्टों) को
हरणाय	दूर करनेके लिए,	बधाय	मारनेके लिए
साधूनां	सत्पुरुषोंकी	एतत् अर्थः	इन्हीं प्रयोजनोंसे
संरक्षणाय	सुरक्षाके लिए	मे अवतारः	मैंने अवतार
च	तथा	कृतः	लिया है ॥९॥

अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः संभ्रियते मया ।
विरामायाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित् ॥१०॥

अन्यः अपि धर्म रक्षायै देहः संभ्रियते मया विरामाय अपि अधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित् ॥१०॥

धर्म	धर्मकी	मया अन्यः	मेरे द्वारा दूसरे
रक्षायै	रक्षाके लिए ही	अपि	भी
क्वचित् काले	किसी समय	देहः	शरीर
प्रभवतः	समर्थ हो गये	संभ्रियते	धारण किये जाते
अधर्मस्य	अधर्मको		हैं' ॥१०॥
विरामाय	रोक देनेके लिए		

एवं ध्यायति गोविन्द आकाशात् सूर्यवर्चसौ ।
रथावुपस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ ॥११॥

एवं ध्यायति गोविन्द आकाशात् सूर्यवर्चसौ रथाः उपस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ ॥११॥

गोविन्द	गोविन्दके	ससूतौ	सारथीके साथ
एवं ध्यायति	ऐसा सोचते समय	सपरिच्छदौ	उपकरणोंके साथ
सद्यः	तुरन्त	रथाः	दो रथ समीप
आकाशात्	आकाशसे	उपस्थितौ	उतर आये ॥११॥
सूर्यवर्चसौ	सूर्यके समान तेजस्वी		

आयुधानि च दिव्यानि पुराणानि यदृच्छया ।
दृष्ट्वा तानि हृषीकेशः सङ्कर्षणमथाब्रवीत् ॥१२॥

आयुधानि च दिव्यानि पुराणानि यदृच्छया दृष्ट्वा तानि हृषीकेशः सङ्कर्षणं अथ अब्रवीत् ॥१२॥

पुराणानि	सनातन	तानि दृष्ट्वा	उनको देखकर
दिव्यानि	दिव्य	हृषीकेशः	हृषीकेश
आयुधानि च	आयुध भी	अथ सङ्कर्षणं	फिर बलरामजीसे
यदृच्छया	अपने आप (आ गये)	अब्रवीत्	बोले ॥१२॥

पश्यार्य व्यसनं प्राप्तं यदूनां त्वावतां प्रभो ।
एष ते रथ आयातो दयितान्यायुधानि च ॥१३॥

पश्य आर्य व्यसनं प्राप्तं यदूनां तु अवतां प्रभो एष ते रथ आयातः दयितानि आयुधानि च ॥१३॥

प्रभो आर्य	'प्रभो ! आर्य !	व्यसनं प्राप्तं	संकट आ गया है और
अवतां	जिनका रक्षण करना है उन	एष ते रथ	यह आपका रथ
यदूनां	यदुवंशियोंके लिए	च दयितानि	तथा प्रिय
तु	तो	आयुधानि	आयुध
पश्य	देखिये,	आयातः	आ गये हैं ॥१३॥

यानमास्थाय जह्येतद् व्यसनात् स्वान् समुद्धर ।
एतदर्थं हि नौ जन्म साधूनामीश शर्मकृत् ॥१४॥

यानं आस्थाय जहि एतत् व्यसनात् स्वान् समुद्धर एतत् अर्थं हि नौ जन्म साधूनां ईश शर्मकृत् ॥१४॥

ईश	ईश !	हि एतत्	क्योंकि इसी
यानं	रथपर	अर्थं	प्रयोजनसे
आस्थाय	चढ़कर	साधूनां	साधुओंका
एतत् जहि	इनको मार दीजिए,	शर्मकृत्	कल्याण करनेवाला
स्वान्	अपनोंको	नौ	हम दोनोंका
व्यसनात्	संकटसे	जन्म	जन्म हुआ है ॥१४॥
समुद्धर	उबार लीजिए		

त्रयोविंशत्यनीकाख्यं भूमेर्भारमपाकुरु ।
एवं सम्मन्त्र्य दाशार्हौ दंशितौ रथिनौ पुरात् ॥१५॥

त्रयः विंशति अनीक आख्यं भूमेः भारं अपाकुरु एवं सम्मन्त्र्य दाशार्हौ दंशितौ रथिनौ पुरात् ॥१५॥

त्रयः विंशति	तेइस	सम्मन्त्र्य	सलाह करके
अनीक आख्यं	अक्षौहिणी कह	दाशार्हौ	दोनों दशार्ह वंशी
	लानेवाले	दंशितौ	कवच धारण करके
भूमेः भारं	पृथ्वीके भारको	रथिनौ	रथपर बैठकर
अपाकुरु	दूर कर दीजिये !'	पुरात्	नगरसे ॥१५॥
एवं	इस प्रकार		

निर्जग्मतुः स्वायुधाढ्यौ बलेनाल्पीयसाऽऽवृतौ ।
शंखं दध्मौ विनिर्गत्य हरिर्दारुकसारथिः ॥१६॥

निर्जग्मतुः स्व आयुध आढ्यौ बलेन अल्पीयसा आवृतौ शंख दध्मौ विनिर्गत्य हरिः दारुकसारथिः ॥१६॥

स्व आयुध	अपने आयुधोंसे	विनिर्गत्य	बाहर निकलकर
आढ्यौ	सम्पन्न	दारुक-	दारुक जिनका
अल्पीयसा	थोड़ी-सी	सारथिः	सारथि था
बलेन आवृतौ	सेनासे घिरे	हरिः	उन श्रीहरिने
निर्जग्मतुः	निकले,	शंखं दध्मौ	शंख बजाया ॥१६॥

ततोऽभूत् परसैन्यानां हृदि वित्रासवेपथुः ।
तावाह मागधो वीक्ष्य हे कृष्ण पुरुषाधम ॥१७॥

ततः अभूत् परसैन्यानां हृदि वित्रास वेपथुः ताः आह मागधः वीक्ष्य हे कृष्ण पुरुष अधम ॥१७॥

ततः	उससे	ताः वीक्ष्य	उनको देखकर
परसैन्यानां	शत्रु सैनिकोंके	मागधः आह	मगधराज बोला
हृदि	हृदयमें	हे अधम पुरुष	'हे नीच पुरुष
वित्रास	बहुत भयसे	कृष्ण	कृष्ण ॥१७॥
वेपथुः अभूत्	कम्प होने लगा,		

न त्वया योद्धुमिच्छामि बालेनैकेन लज्जया ।
गुप्तेन हि त्वया मन्द न योत्स्ये याहि बन्धुहन् ॥१८॥

न त्वया योद्धुं इच्छामि बालेन एकेन लज्जया गुप्तेन हि त्वया मन्द न योत्स्ये याहि बन्धुहन् ॥१८॥

लज्जया	लज्जावश	बन्धुहन्	सम्बन्धीको मारने वाला है
एकेन बालेन	अकेले बालक	मन्द	(फिर भी) मूर्ख है,
त्वया योद्धुं	तुझसे युद्ध करनेकी	त्वया	तुझसे
इच्छामि	(मैं) इच्छा	न योत्स्ये	युद्ध नहीं करूँगा
न	नहीं करता,	गुप्तेन याहि	सुरक्षित भाग जा ॥१८॥
हि	क्योंकि (तू) मेरे		

तव राम यदि श्रद्धा युध्यस्व धैर्यमुद्वह ।
हित्वा वा मच्छरैश्छिन्नं देहं स्वर्याहि मां जहि ॥१९॥

तव राम यदि श्रद्धा युध्यस्व धैर्यं उद्वह हित्वा वा मत् शरैः छिन्नं देहं स्वः याहि मां जहि ॥१६॥

राम यदि	बलराम यदि	छिन्नं	कटे
तव	तुम्हारी (युद्धमें)	देहं हित्वा	शरीरको त्यागकर
श्रद्धा	आस्था हो तो	स्वः याहि	स्वर्ग जाओ
धैर्यं उद्वह	धैर्य धारण करके	वा मां जहि	अथवा मुझे मार दो' ॥१६॥
युध्यस्व	युद्ध करो,		
मत् शरैः	मेरे बाणोंसे		

श्रीभगवानुवाच

न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयन्त्येव पौरुषम् ।
न गृह्णीमो वचो राजन्नातुरस्य मुमूर्षतः ॥२०॥

न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयन्ति एव पौरुषं न गृह्णीमः वचः राजन् आतुरस्य मुमूर्षतः ॥२०॥

राजन्	राजन् !	दर्शयन्ति	दिखलाते हैं,
शूरा वै	शूर लोग निश्चय	आतुरस्य	व्याकुल
विकत्थन्ते	बकवाद	मुमूर्षतः वचः	मरणासन्नकी बात
न	नहीं करते,	गृह्णीमः	हम स्वीकार
पौरुषं एव	(अपना) पुरुषार्थ ही	न	नहीं करते ॥२०॥

श्रीशुक उवाच

जरासुतस्तावभिसृत्य माधवौ
महाबलौघेन बलीयसाऽऽवृणोत् ।
ससैन्ययानध्वजवाजिसारथी
सूर्यानलौ वायुरिवाभ्ररेणुभिः ॥२१॥

जरासुतः ताः अभिसृत्य माधवौ महाबल ओघेन बलीयसा आवृणोत् ससैन्य यान ध्वज वाजि सारथी सूर्य अनलौ वायुः इव अभ्ररेणुभिः ॥२१॥

वायुः	वायु द्वारा	बलीयसा	बलवान
अभ्ररेणुभिः	बादल और धूलिसे	महाबल	महासेनाकी
सूर्य	सूर्य और	ओघेन	बाढ़से
अनलौ	अग्नि (ढकने) के	ससैन्ययान	सेना सहित रथ,
इव	समान	ध्वज वाजि	ध्वजा, घोड़े,
जरासुतः	जराराक्षसीके पुत्र जरासन्धने	सारथी	सारथिको
ताः	उन दोनों भाइयोंको	आवृणोत्	पूर्णतः ढक लिया ॥२१॥
अभिसृत्य	चारों ओरसे घेरकर		

सुपर्णतालध्वजचिह्नितौ रथा-
वलक्षयन्त्यो हरिरामयोर्मृधे ।
स्त्रियः पुराट्टालकहर्म्यगोपुरं
समाश्रिताः संमुमुहुः शुचार्दिताः ॥२२॥

सुपर्ण ताल ध्वज चिह्नितौ रथाः अलक्षयन्त्यः हरिरामयोः मृधे स्त्रियः पुर अट्टालक हर्म्य गोपुरं समाश्रिताः संमुमुहुः शुचा अर्दिताः ॥२२॥

सुपर्ण	गरुड़ तथा	गोपुरं	बाहरी द्वारोंके
ताल ध्वज	ताल ध्वजसे	समाश्रिताः	ऊपर चढ़ी हुई
चिह्नितौ	पहिचाने जानेवाले	स्त्रियः	स्त्रियां
हरिरामयोः	श्रीकृष्ण-बलरामके	शुचा अर्दिताः	शोकोत्पीड़िता होकर
रथाः मृधे	रथोंको युद्धमें	संमुमुहुः	मूर्छित हो गयीं ॥२२॥
अलक्षयन्त्यः	न देखनेके कारण		
पुर अट्टालक हर्म्य	नगरकी अटारियों, छज्जों,		

हरिः परानीकपयोमुचां मुहुः
शिलीमुखात्युल्बणवर्षपीडितम् ।
स्वसैन्यमालोक्य सुरासुरार्चितं
व्यस्फूर्जयच्छार्ङ्गशरासनोत्तमम् ॥२३॥

हरिः पर अनीक पयः मुचां मुहुः शिलीमुख अति उल्बण वर्ष पीडितं स्वसैन्यं आलोक्य सुर असुर अर्चितं व्यस्फूर्जयत् शार्ङ्ग शरासन उत्तमम् ॥२३॥

हरिः	श्रीहरिने	आलोक्य	देखकर
पर अनीक	शत्रु सेनारूपी	सुर असुर	देव-दैत्य सबसे
पयः मुचां	मेघोंसे	अर्चितं	सम्मानित
मुहुः	बार-बार	उत्तमं	श्रेष्ठ
शिलीमुख	बाणोंकी	स्व शार्ङ्ग	अपने शारंग
अति उल्बण	बहुत घोर	शरासन	धनुषकी
वर्ष पीडितं	वर्षासे पीड़ित	व्यस्फूर्जयत्	टङ्कार की ॥२३॥
स्वसैन्यं	अपनी सेनाको		

गृह्णन् निषङ्गादथ सन्दधच्छरान्
विकृष्य मुञ्चञ्छितबाणपूगान् ।
निघ्नन् रथान् कुञ्जरवाजिपत्तीन्
निरन्तरं यद्वदलातचक्रम् ॥२४॥

गृह्णन् निषङ्गात् अथ सन्दधत् शरान् विकृष्य मुञ्चन् शितबाण पूगान् निघ्नन् रथान् कुञ्जर वाजिपत्तीन् निरन्तरं यद् वत् अलात चक्रम् ॥२४॥

निषङ्गात्	तरकशसे	रथान् कुञ्जर	रथ, हाथी
गृह्णन्	लेते	वाजिपत्तीन्	घोड़े पैदलोंको
शरान्	बाणोंको (धनुषपर)	निघ्नन्	मारते हुए
सन्दधत्	चढ़ाते,	अलात	अलात् (उल्मुक)
विकृष्य	खींचकर	चक्रं	चक्र
शितबाण	तीक्ष्ण शर	यद् वत्	के समान (वह
पूगान्	समूह		धनुष) घूम रहा
मुञ्चन्	छोड़ते,		था ॥२४॥

निर्भिन्नकुम्भाः करिणो निपेतु-
रनेकशोऽश्वाः शरवृक्णकन्धराः ।
रथा हताश्वध्वजसूतनायकाः
पदातयश्छिन्नभुजोरुकन्धराः ॥२५॥

निर्भिन्न कुम्भाः करिणः निपेतुः अनेकशः अश्वाः शरवृक्ण कन्धराः रथा हत अश्व ध्वज सूत नायकाः पदातयः छिन्न भुज उरु कन्धराः ॥२५॥

निर्भिन्न	मस्तक	ध्वज सूत	ध्वजा, सारथी,
कुम्भाः	फटनेसे	हत नायकाः	तथा नायक (रथी)
करिणः	हाथी		के मारे जानेसे,
अनेकशः अश्वाः	बहुतसे घोड़े	पदातयः	पैदल सैनिक
शरवृक्ण	बाणोंसे कटे	छिन्न भुज	कटी भुजा,
कन्धराः	गले होनेसे,	उरु कन्धराः	जांघे या गले
रथा अश्व	रथ घोड़े	निपेतुः	गिर पड़े ॥२५॥

संछिद्यमानद्विपदेभवाजिना-
मङ्गप्रसूताः शतशोऽसृगापगाः ।
भुजाहयः पूरुषशीर्षकच्छपा
हतद्विपद्वीपहयग्रहाकुलाः ॥२६॥

संछिद्यमान द्विपद इभ वाजिनां अङ्ग प्रसूताः शतशः असृक् आपगाः भुजा अहयः पूरुष शीर्ष कच्छपा हतद्विप द्वीप हयग्रह आकुलाः ॥२६॥

द्विपद इभ	मनुष्य, गज,	शतशः	सैकड़ों
वाजिनां	घोड़ेके	असृक आपगाः	रक्तकी नदियाँ
संछिद्यमान	बराबर कटनेसे		(बहने लगीं)
अङ्ग	उनके शरीरोंसे	भुजा अहयः	भुजाओं रूपी सर्प,
प्रसूता	निकली	पूरुष शीर्ष	मनुष्योंके सिर रूपी

कच्छपा	कछुए	हयग्रह	घोड़ों रूपी मगरोंसे
हतद्विप	मरे हाथियों	आकुलाः	भरी थीं ॥२६॥
द्वीप	रूपी द्वीप		

करोरुमीना नरकेशशैवला
धनुस्तरङ्गायुधगुल्मसंकुलाः ।
अच्छूरिकावर्तभयानका महा-
मणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः ॥२७॥

कर उरु मीना नरकेश शैवला धनुः तरङ्ग आयुध गुल्म सङ्कुलाः अच्छूरिक आवर्त भयानका महामणि प्रवेक आभरण अश्म शर्कराः ॥२७॥

कर उरु	हाथ और जांघे	अच्छूरिक	ढालें
मीना	(उसमें) मछलियां,	भयानका	भयानक
नरकेश	मनुष्योंके बाल	आवर्त	भँवरों जैसे
शैवला	सिवार	महामणि प्रवेक	मूल्यवान मणिजटित
धनुः तरङ्ग	धनुष तरंगके समान	आभरण	आभूषण
आयुध	अस्त्र-शस्त्र (बहती)	अश्म शर्कराः	पत्थरकी रोड़ियों
गुल्म	झाड़ियोंसे		जैसे थे ॥२७॥
सङ्कुलाः	भरी हुई,		

प्रवर्तिता भीरुभयावहा मृधे
मनस्विनां हर्षकरीः परस्परम् ।
विनिघ्नतारीन् मुसलेन दुर्मदान्
सङ्कर्षणेनापरिमेयतेजसा ॥२८॥

प्रवर्तिता भीरु भयावहा मृधे मनस्विनां हर्षकरीः परस्परं विनिघ्नता अरीन् मुसलेन दुर्मदान् सङ्कर्षणेन अपरिमेय तेजसा ॥२८॥

अपरिमेय	असीम	सङ्कर्षणेन	बलरामजी द्वारा
तेजसा	तेजस्वी	दुर्मदान्	बहुत घमण्डी

अरीन्	शत्रुओंको	मनस्विनां	साहसियोंको
मुसलेन	मूसलसे	परस्परं	आपसमें
विनिघ्नता	मारनेसे	हर्षकरीः	हर्षित करनेवाली
मृधे भीरु	युद्धमें डरपोकों को	प्रवर्तिता	(वह रक्त नदी)
भयदावहा	भयभीत करनेवाली तथा		बह चली ॥२८॥

बलं तदङ्गार्णवदुर्गभैरवं
दुरन्तपारं मगधेन्द्रपालितम् ।
क्षयं प्रणीतं वसुदेवपुत्रयो-
र्विक्रीडितं तज्जगदीशयोः परम् ॥२९॥

बलं तत् अङ्ग अर्णव दुर्ग भैरवं दुरन्तपारं मगध इन्द्र पालितं क्षयं प्रणीतं वसुदेव पुत्रयोः विक्रीडितं तत् जगदीशयोः परम् ॥२९॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित् !	बलं	सेना
मगध इन्द्र	मगधराज जरासन्ध द्वारा	वसुदेव	वसुदेवजीके
		पुत्रयोः	दोनों पुत्रोंने
पालितं	रक्षित	क्षयं प्रणीतं	नष्ट कर दी
तत् अर्णव	वह समुद्रके समान	तत्	यह उन
दुर्ग	दुर्गम	जगदीशयोः	जगदीश्वरोंके लिए
भैरवं	भयानक	परं विक्रीडितं	अच्छा खेल था ॥२९॥
दुरन्तपारं	दुष्पार		

स्थित्युद्भवान्तं भुवनत्रयस्य यः
समीहतेऽनन्तगुणः स्वलीलया ।
न तस्य चित्रं परपक्षनिग्रह-
स्तथापि मर्त्यानुविधस्य वर्ण्यते ॥३०॥

स्थिति उद्भव अन्तं भुवनत्रयस्य यः समीहते अनन्तगुणः स्वलीलया न तस्य चित्रं परपक्ष निग्रहः तथा अपि मर्त्य अनुविधस्य वर्ण्यते ॥३०॥

यः	जो	चित्रं	आश्चर्यकी बात
अनन्तगुणः	अनन्त गुणशाली	न	नहीं है
स्वलीलया	अपनी लीलासे ही	तथा अपि	फिर भी
भुवनत्रयस्य	त्रिभुवनकी	मर्त्य	मनुष्यके
स्थिति उद्भव	पालन, सृष्टि,	अनुविधस्य	अनुकरणके कारण
अन्तं समीहते	प्रलय करते रहते हैं	वर्ण्यते	(इसका) वर्णन
तस्य	उनके लिए		किया जाता है
परपक्ष	शत्रुपक्षका		॥३०॥
निग्रहः	दमन करना		

जग्राह विरथं रामो जरासंधं महाबलम् ।
हतानीकावशिष्टासुं सिंहः सिंहमिवौजसा ॥३१॥

जग्राह विरथं रामः जरासन्धं महाबलं हत अनीक अवशिष्ट असुं सिंहः सिंहं इव ओजसा ॥३१॥

हत अनीक	सेनाके मारे जानेपर	सिंहः	सिंहको
विरथं	रथहीन	सिंहं इव	सिंहके समान
अवशिष्ट असुं	प्राणमात्र शेष	ओजसा	बलपूर्वक
महाबलं	अत्यन्त बलवान	रामः	बलरामजीने
जरासन्धं	जरासन्धको	जग्राह	पकड़ लिया ॥३१॥

बध्यमानं हतारातिं पाशैर्वारुणमानुषैः ।
वारयामास गोविन्दस्तेन कार्यचिकीर्षया ॥३२॥

बध्यमानं हत आरातिं पाशैः वारुण मानुषैः वारयामास गोविन्दः तेन कार्य चिकीर्षया ॥३२॥

हत आरातिं	शत्रुओंको मार देने-वाले (जरासन्ध) को	पाशैः	पाशोंसे
		बध्यमानं	बाँधते समय
वारुण	वरुणके तथा	तेन	उसके द्वारा (अपना
मानुषैः	मनुष्योंके		भूभार-हरणका)

कार्यं	काम	वारयामास	(बलरामजी को)
चिकीर्षया	करनेकी इच्छासे		रोक दिया ॥३२॥
गोविन्दः	गोविन्दने		

स मुक्तो लोकनाथाभ्यां व्रीडितो वीरसम्मतः ।
तपसे कृतसंकल्पो वारितः पथि राजभिः ॥३३॥

स मुक्तः लोकनाथाभ्यां व्रीडितः वीर सम्मतः तपसे कृत सङ्कल्पः वारितः पथि राजभिः ॥३३॥

स वीर	वह वीरों द्वारा	सङ्कल्पः कृत	संकल्प करनेपर भी
सम्मतः	सम्मानित	पथि	मार्गमें
लोकनाथाभ्यां	जगदीश्वरों द्वारा	राजभिः	राजाओं द्वारा
मुक्तः	छोड़े जानेपर	वारितः	रोक दिया गया
व्रीडितः	लज्जित होकर		॥३३॥
तपसे	तपस्याके लिए		

वाक्यैः पवित्रार्थपदैर्नयनैः प्राकृतैरपि ।
स्वकर्मबन्धप्राप्तोऽयं यदुभिस्ते पराभवः ॥३४॥

वाक्यैः पवित्र अर्थपदैः नयनैः प्राकृतैः अपि स्वकर्मबन्ध प्राप्तः अयं यदुभिः ते पराभवः ॥३४॥

ते	आपकी	नयनैः	नीति शास्त्रके
यदुभिः	यदुवंशियोंसे	वाक्यैः	वाक्योंसे
अयं पराभवः	यह पराजय	प्राकृतैः अपि	तथा सामान्य
स्वकर्मबन्ध	अपने प्रारब्ध कर्मसे		लौकिक (बातों) से
प्राप्तः	प्राप्त हुई है		भी समझानेपर
पवित्र	ऐसे पवित्र		॥३४॥
अर्थपदैः	अर्थ वाले		

हतेषु सर्वानीकेषु नृपो बार्हद्रथस्तदा ।
उपेक्षितो भगवता मगधान् दुर्मना ययौ ॥३५॥

हतेषु सर्व अनीकेषु नृपः बार्हद्रथः तदा उपेक्षितः भगवता मगधान् दुर्मना ययौ ॥३५॥

तदा	तब	**बार्हद्रथः**	वृहद्रथ-नन्दन जरा-संध
सर्व अनीकेषु	सम्पूर्ण सेनाके	**दुर्मना**	उदास होकर
हतेषु	मारे जानेपर	**मगधान्**	मगध देशको
भगवता	भगवानके द्वारा	**ययौ**	लौट गया ॥३५॥
उपेक्षितः	उपेक्षित		
नृपः	राजा		

मुकुन्दोऽप्यक्षतबलो निस्तीर्णारिबलार्णवः ।
विकीर्यमाणः कुसुमैस्त्रिदशैरनुमोदितः ॥३६॥

मुकुन्दः अपि अक्षत बलः निस्तीर्ण अरिबल अर्णवः विकीर्यमाणः कुसुमैः त्रिदशैः अनुमोदितः ॥३६॥

अक्षत	बिना घाव लगी	**मुकुन्दः अपि**	मुकुन्द भी
बलः	सेना संहित	**कुसुमैः**	पुष्पोंकी
अरिबल	शत्रु सेना रूपी	**विकीर्यमाणः**	वर्षा करते हुए
अर्णवः	समुद्रको	**त्रिदशैः**	देवताओं द्वारा
निस्तीर्ण	पार करके	**अनुमोदितः**	समर्थित हुए ॥३६॥

माथुरैरुपसङ्गम्य विज्वरैर्मुदितात्मभिः ।
उपगीयमानविजयः सूतमागधवन्दिभिः ॥३७॥

माथुरैः उपसङ्गम्य विज्वरैः मुदित आत्मभिः उपगीयमान विजयः सूत मागध वन्दिभिः ॥३७॥

सूत मागध	सूत, मागध	**विज्वरैः**	चिन्ताहीन
वन्दिभिः	बन्दियों द्वारा	**मुदित आत्मभिः**	प्रसन्न चित्त
विजयः	विजय	**माथुरैः**	मथुरा वासियोंसे
उपगीयमान	उच्च स्वरसे गायी जाते हुए	**उपसङ्गम्य**	पास आकर मिले ॥३७॥

शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः ।
वीणावेणुमृदङ्गानि पुरं प्रविशति प्रभौ ॥३८॥

शंख दुन्दुभयः नेदुः भेरी तूर्याणि अनेकशः वीणा वेणु मृदङ्गानि पुरं प्रविशति प्रभौ ॥३८॥

प्रभौ	दोनों स्वामियोंके	**अनेकशः**	बहुत-सी
पुरं प्रविशति	नगर-प्रवेशके समय	**वीणा वेणु**	वीणा, वंशी,
शंख दुन्दुभयः	शंख, दुन्दुभियां,	**मृदङ्गानि**	मृदंग
भेरी तूर्याणि	भेरी, तुरहियां	**नेदुः**	बजने लगे ॥३८॥

सिक्तमार्गां हृष्टजनां पताकाभिरलंकृताम् ।
निर्घुष्टां ब्रह्मघोषेण कौतुकाबद्धतोरणाम् ॥३९॥

सिक्तमार्गां हृष्टजनां पताकाभिः अलंकृतां निर्घुष्टां ब्रह्मघोषेण कौतुक आबद्ध तोरणाम् ॥३९॥

सिक्तमार्गां	(मथुरा) सींचे मार्ग वाली	**ब्रह्मघोषेण**	वेद-ध्वनिसे
हृष्टजनां	हर्षित लोगोंसे युक्त,	**निर्घुष्टां**	गूंजती
पताकाभिः	झण्डियोंसे	**कौतुक**	उत्सवके कारण
अलंकृतां	सजायी गयी	**आबद्ध तोरणां**	बन्दनवार बँधी थी ॥३९॥

निचीयमानो नारीभिर्माल्यदध्यक्षताङ्कुरैः ।
निरीक्ष्यमाणः सस्नेहं प्रीत्युत्कलितलोचनैः ॥४०॥

निचीयमानः नारीभिः माल्य दधि अक्षत अङ्कुरैः निरीक्ष्यमाणः सस्नेहं प्रीति उत्कलित लोचनैः ॥४०॥

नारीभिः	स्त्रियों द्वारा	**माल्य दधि**	माला, दही
प्रीति उत्कलित	प्रेमसे उत्फुल्ल	**अक्षत अङ्कुरैः**	अक्षत, यवांकुरोंकी
लोचनैः	नेत्रोंसे	**निचीयमानः**	वर्षासे ढक दिये गये ॥४०॥
सस्नेहं	स्नेह पूर्वक		
निरीक्ष्यमाणः	देखते हुए		

आयोधनगतं वित्तमनन्तं वीरभूषणम् ।
यदुराजाय तत् सर्वमाहृतं प्रादिशत्प्रभुः ॥४१॥

आयोधनगतं वित्तं अनन्तं वीरभूषणं यदुराजाय तत् सर्वं आहृतं प्रादिशत् प्रभुः ॥४१॥

प्रभुः	सबके स्वामी भगवान्	तत् सर्वं	वह सब
आयोधनगतं	युद्ध-भूमिसे	अनन्तं वित्तं	अनन्त धन
वीरभूषणं	वीरोंके लिए शोभा देनेवाला	यदुराजाय	यादवराज उग्रसेन-को
आहृतं	लाया हुआ	प्रादिशत्	निवेदित कर दिया ॥४१॥

एवं सप्तदशकृत्वस्तावत्यक्षौहिणीबलः ।
युयुधे मागधो राजा यदुभिः कृष्णपालितैः ॥४२॥

एवं सप्तदशकृत्व तावति अक्षौहिणी बलः युयुधे मागधः राजा यदुभिः कृष्णपालितैः ॥४२॥

एवं	इसी प्रकार	मागधः राजा	मगधराज जरासन्ध
सप्तदशकृत्व	सत्रह बारमें	कृष्णपालितैः	श्रीकृष्ण द्वारा रक्षित
तावति	उतनी ही	यदुभिः	यादवोंसे
अक्षौहिणी	अक्षौहिणी	युयुधे	युद्ध करता रहा ॥४२॥
बलः	सेनासे		

अक्षिण्वंस्तद्बलं सर्वं वृष्णयः कृष्णतेजसा ।
हतेषु स्वेष्वनीकेषु त्यक्तोऽयादरिभिर्नृपः ॥४३॥

अक्षिण्वन् तत् बलं सर्वं वृष्णयः कृष्ण तेजसा हतेषु स्वेषु अनीकेषु त्यक्तः अयात् अरिभिः नृपः ॥४३॥

तत् सर्वं बलं	उसकी पूरी सेनाको	तेजसा	प्रभावसे
कृष्ण	श्रीकृष्णके	वृष्णयः	वृष्णिवंशी

अक्षिण्वन्	नष्ट कर देते थे	त्यक्तः	छोड़ दिये जानेपर
स्वेषु अनीकेषु	अपनी सेनाके	नृपः	राजा जरासंध
हतेषु	मारे जानेपर	अयात्	लौट आता था
अरिभिः	शत्रुओं द्वारा		॥४३॥

अष्टादशमसंग्रामे आगामिनि तदन्तरा ।
नारदप्रेषितो वीरो यवनः प्रत्यदृश्यत ॥४४॥

अष्टादशम संग्रामे आगामिनि तत् अन्तरा नारद प्रेषितः वीरः यवनः प्रत्य दृश्यत ॥४४॥

अष्टादशम	अठारहवीं बारका	नारद प्रेषितः	नारदजीका भेजा
संग्रामे	युद्ध		हुआ
आगामिनि	आने ही वाला था	वीरः यवनः	वीर कालयवन
तत् अन्तरा	उसके बीचमें ही	प्रत्य	(मथुराके) समीप
		दृश्यत	दिखाई पड़ा ॥४४॥

रुरोध मथुरामेत्य तिसृभिर्म्लेच्छकोटिभिः ।
नृलोके चाप्रतिद्वन्द्वो वृष्णीञ्छ्रुत्वाऽऽत्मसम्मितान् ॥४५॥

रुरोध मथुरां एत्य तिसृभिः म्लेच्छ कोटिभिः नृलोके च अप्रतिद्वन्दः वृष्णीन् श्रुत्वा आत्म सम्मितान् ॥४५॥

नृलोके च	मनुष्य लोकमें तो	तिसृभिः	तीन
अप्रतिद्वन्दः	प्रतिद्वन्द्वी रहित था	कोटिभिः	करोड़
वृष्णीन्	वृष्णिवंशियोंको	म्लेच्छ	म्लेच्छोंके
आत्म	अपने	एत्य	साथ आकर
सम्मितान्	समान	मथुरां रुरोध	मथुराको घेर
श्रुत्वा	सुनकर		लिया ॥४५॥

तं दृष्ट्वाचिन्तयत् कृष्णः संकर्षणसहायवान् ।
अहो यदूनां वृजिनं प्राप्तं ह्युभयतो महत् ॥४६॥

तं दृष्ट्वा चिन्तयत् कृष्णः सङ्कर्षण सहायवान् अहो यदूनां वृजिनं प्राप्तं हि उभयतः महत् ॥४६॥

तं दृष्ट्वा	उसे देखकर	अहो हि	अहो, क्योंकि
सङ्कर्षण	बलरामजीसे	यदूनां उभयतः	यादवोंपर दोनों
सहायवान्	मिल करके		ओरसे
कृष्णः	श्रीकृष्णने	महत् वृजिनं	भारी संकट
चिन्तयत्	विचार किया	प्राप्तं	आ गया है ॥४६॥

यवनोऽयं निरुन्धेऽस्मानद्य तावन्महाबलः ।
मागधोऽप्यद्य वा श्वो वा परश्वो वाऽऽगमिष्यति ॥४७॥

यवनः अयं निरुन्धे अस्मान् अद्य तावत् महाबलः मागधः अपि अद्य वा श्वः परश्वः वा आगमिष्यति ॥४७॥

अयं महाबलः	इस महाबली	मागधः अपि	मगधराज भी
यवनः	कालयवनने	अद्य वा	आज ही
अद्य तावत्	आज अभी	वा श्वः	या कल ही
अस्मान्	हम लोगोंको	वा परश्वः	अथवा परसों
निरुन्धे	घेर रखा है	आगमिष्यति	आ जायगा ॥४७॥

आवयोर्युध्यतोरस्य यद्यागन्ता जरासुतः ।
बन्धून् वधिष्यत्यथवा नेष्यते स्वपुरं बली ॥४८॥

आवयोः युध्यतोः अस्य यदि आगन्ता जरासुतः बन्धून् वधिष्यति अथवा नेष्यते स्वपुरं बली ॥४८॥

आवयोः अस्य	हम दोनोंके इससे	बन्धून्	हमारे सम्बन्धियोंको
युध्यतोः	युद्ध करते समय	वधिष्यति	मार देगा
यदि बली	यदि बलवान	अथवा	अथवा (बन्दी
जरासुतः	जरा राक्षसीका पुत्र		बनाकर)
	(जरासन्ध)	स्वपुरं	अपने नगर
आगन्ता	आ जायगा तो	नेष्यते	ले जायगा ॥४८॥

तस्मादद्य विधास्यामो दुर्गं द्विपददुर्गमम् ।
तत्र ज्ञातीन् समाधाय यवनं घातयामहे ॥४९॥

तस्मात् अद्य विधास्यामः दुर्गं द्विपद दुर्गमं तत्र ज्ञातीन् समाधाय यवनं घातयामहे ॥४९॥

तस्मात्	इसलिए	**ज्ञातीन् तत्र**	जातिवालोंको वहाँ
अद्य	आज ही	**समाधाय**	भली प्रकार रखकर (तब)
द्विपद	मनुष्योंके लिए	**यवनं**	(इस) कालयवनको
दुर्गमं	दुष्प्रवेश्य	**घातयामहे**	मरवा देंगे ॥४९॥
दुर्गं	दुर्गकी		
विधास्यामः	रचना करेंगे,		

इति सम्मन्त्र्य भगवान् दुर्गं द्वादशयोजनम् ।
अन्तःसमुद्रे नगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत् ॥५०॥

इति सम्मन्त्र्य भगवान् दुर्गं द्वादशयोजनं अन्तःसमुद्रे नगरं कृत्स्न अद्भुतं अचीकरत् ॥५०॥

इति	इस प्रकार	**दुर्गं नगरं**	किलेके समान नगर
सम्मन्त्र्य	पूरी सलाह करके	**कृत्स्न**	जो पूरा
भगवान्	भगवानने	**अद्भुतं**	आश्चर्यजनक था
अन्तःसमुद्रे	समुद्रके बीचमें	**अचीकरत्**	निर्मित कर दिया ॥५०॥
द्वादशयोजनं	बारह योजनका		

दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम् ।
रथ्याचत्वरवीथीभिर्यथावास्तु विनिर्मितम् ॥५१॥

दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्प नैपुणं रथ्या चत्वर वीथीभिः यथा वास्तु विनिर्मितम् ॥५१॥

हि यत्र	क्योंकि जहां	**विनिर्मितं**	विशेष निर्माण
यथा वास्तु	वास्तु शास्त्रके अनुसार बनी	**त्वाष्ट्रं**	विश्वकर्माकी
रथ्या चत्वर	सड़कों, चौराहों तथा	**शिल्प विज्ञानं**	शिल्प विज्ञानमें
वीथीभिः	गलियों द्वारा	**नैपुणं**	निपुणता
		दृश्यते	दिखलाई देता है ॥५१॥

सुरद्रुमलतोद्यानविचित्रोपवनान्वितम् ।
हेमशृङ्गैर्दिविस्पृग्भिः स्फाटिकाट्टालगोपुरैः ॥५२॥

सुरद्रुम लता उद्यान विचित्र उपवन अन्वितं हेमशृङ्गैः दिविस्पृक्भिः स्फाटिक अट्टाल गोपुरैः ॥५२॥

सुरद्रुम	देव-वृक्षों एवं	स्फाटिक	स्फटिककी
लता	लताओं वाले	अट्टाल	अटारियों और
उद्यान	वगीचों,	गोपुरैः	गोपुरों (बाहरी
उपवन	फलोद्यानोंसे तथा		उच्च द्वारों) से
दिविस्पृक्भिः	गगनचुम्बी	अन्वितं	युक्त था ॥५२॥
हेमशृङ्गैः	स्वर्ण-शिखरों,		

राजतारकुटैः कोष्ठैर्हेमकुम्भैरलंकृतैः ।
रत्नकूटैर्गृहैर्हैमैर्महामरकतस्थलैः ॥५३॥

राजतार कुटैः कोष्ठैः हेमकुम्भैः अलङ्कृतैः रत्नकूटैः गृहैः हैमैः महामरकत स्थलैः ॥५३॥

हेमकुम्भैः	स्वर्ण कलशोंसे	रत्नकूटैः	रत्न जड़ित
अलङ्कृतैः	सुशोभित	महामरकत	महामरकत मणिके
राजतार	चांदी तथा	स्थलैः	फर्शवाले
कुटैः	पीतल जड़ी	हैमैः गृहैः	स्वर्णके बने भवन
कोष्ठैः	कोठारोंसे (युक्त थी)		थे ॥५३॥

वास्तोष्पतीनां च गृहैर्वलभीभिश्च निर्मितम् ।
चातुर्वर्ण्यजनाकीर्णं यदुदेवगृहोल्लसत् ॥५४॥

वास्तोष्पतीनां च गृहैः बलभीभिः च निर्मितं चातुर्वर्ण्यजन आकीर्णं यदुदेव गृह उल्लसत् ॥५४॥

वास्तोष्पतीनां	वास्तु देवताओंके*	च	और
गृहैः	मन्दिर बने थे,	वलभीभिः	वे अट्टालिकाओंवाले

* ग्रामदेव तथा धन, अन्न आदिके अधिदेवता वासुदेव होते हैं ।

निर्मितं	बने थे,	यदुदेव	यादवोंके देवता श्रीकृष्णका
चातुर्वर्ण्यजन	चारों वर्णोंके लोगोंसे	गृह	भवन
आकीर्ण	भरे हुए (उस नगरमें)	उल्लसत्	सुशोभित था ॥५४॥

सुधर्मा पारिजातं च महेन्द्रः प्राहिणोद्धरेः ।
यत्र चावस्थितो मर्त्यो मर्त्यधर्मैर्न युज्यते ॥५५॥

सुधर्मा पारिजातं च महेन्द्रः प्राहिणोत् हरेः यत्र च अवस्थितः मर्त्यः मर्त्य धर्मैः न युज्यते ॥५५॥

महेन्द्रः	इन्द्रने	अवस्थितः	बैठा हुआ
हरेः	श्रीहरिके लिए	मर्त्यः	मनुष्य
सुधर्मा	देवसभा सुधर्मा	मर्त्य	मनुष्यके क्षुधा-पिपासादि
च	तथा		
पारिजातं	कल्पवृक्ष	धर्मैः	धर्मोंसे
प्राहिणोत्	भेज दिया	युज्यते न	युक्त नहीं होता ॥५५॥
यत्र	जिस (सभा) में		

श्यामैककर्णान् वरुणो हयाञ्छुक्लान् मनोजवान् ।
अष्टौ निधिपतिः कोशान् लोकपालो निजोदयान् ॥५६॥

श्याम एक कर्णान् वरुणः हयान् शुक्लान् मनोजवान् अष्टौ निधिपतिः कोशान् लोकपालः निज उदयान् ॥५६॥

वरुणः	वरुणने	निधिपतिः	धनाध्यक्ष कुवेरने
कर्णान् एक	एक कान	अष्टौ कोशान्	आठो निधियां तथा
श्याम	काले	लोकपालः	(अन्य) लोकपालोंने
शुक्लान्	श्वेत रंगके	निज उदयान्	अपने वैभव (भेजे) ॥५६॥
मनोजवान्	मनोवेगवाले		
हयान्	घोड़े		

यद् यद् भगवता दत्तमाधिपत्यं स्वसिद्धये ।
सर्वं प्रत्यर्पयामासुर्हरौ भूमिगते नृप ॥५७॥

यत् यत् भगवता दत्तं आधिपत्यं स्व सिद्धये सर्वं प्रत्यर्पयामासुः हरौ भूमिगते नृप ॥५७॥

नृप	राजन् !	हरौ	श्रीहरिके
स्व आधिपत्यं	अपना अधिकार	भूमिगते	पृथ्वीपर आनेपर
सिद्धये	बनाये रखनेके लिए	सर्वं	वह सब
भगवता	भगवानके द्वारा	प्रत्यर्पयामासुः	उन्हें लौटा दिया ॥५७॥
यत् यत्	जो जो (वैभव)		
दत्तं	दिया गया था		

तत्र योगप्रभावेण नीत्वा सर्वजनं हरिः ।
प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमन्त्रितः ।
निर्जगाम पुरद्वारात् पद्ममाली निरायुधः ॥५८॥

तत्र योग प्रभावेण नीत्वा सर्वजनं हरिः प्रजापालेन रामेण कृष्णः सम अनुमन्त्रितः निर्जगाम पुरद्वारात् पद्ममाली निः आयुधः ॥५८॥

योग	अपने योगके	अनुमन्त्रितः	सलाह करके
प्रभावेण	प्रभावसे	कृष्णः	श्रीकृष्ण
तत्र सर्वजनं	वहां सब लोगोंको	पद्ममाली	कमलकी माला पहिने
नीत्वा	पहुँचाकर		
प्रजापालेन	प्रजा पालनके लिए	निः आयुधः	शस्त्रहीन
रामेण	बलरामजीसे	पुरद्वारात्	नगर-द्वारसे
सम	भली प्रकार	निर्जगाम	बाहर निकले ॥५८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

अथ एकपंचाशत्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

तं विलोक्य विनिष्क्रान्तमुज्जिहानमिवोडुपम् ।
दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥१॥

तं विलोक्य विनिष्क्रान्तं उज्जिहानं इव उडुपं दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेय वाससम् ॥१॥

उज्जिहानं	उदय होते	**पीतकौशेय**	पीले रेशमी
उडुपं इव	चन्द्रमाके समान	**वाससं**	वस्त्रधारीको
तं दर्शनीयतमं	उन परम सुन्दर	**विनिष्क्रान्तं**	बाहर निकलते
श्यामं	श्याम वर्ण	**विलोक्य**	देखकर ॥१॥

श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ।
पृथुदीर्घचतुर्बाहुं नवकञ्जारुणेक्षणम् ॥२॥

श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत् कौस्तुभ आमुक्त कन्धरं पृथुदीर्घ चतुर्बाहुं नवकञ्ज अरुण ईक्षणम् ॥२॥

श्रीवत्सवक्षसं	वक्षस्थलपर श्रीवत्स चिह्न	**पथुदीर्घं**	मोटी और लम्बी
भ्राजत्	सुशोभित था,	**चतुर्बाहुं**	चार भुजाओंवाले;
कन्धरं	कण्ठमें	**नवकञ्ज**	नवीन कमलके समान
कौस्तुभ	कौस्तुभमणि	**अरुण**	रतनारे
आमुक्त	पहिने थे	**ईक्षणं**	नेत्र थे ॥२॥

नित्यप्रमुदितं श्रीमत्सुकपोलं शुचिस्मितम् ।
मुखारविन्दं बिभ्राणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥३॥

नित्य प्रमुदितं श्रीमत् सुकपोलं शुचिस्मितं मुखारविन्दं बिभ्राणं स्फुरन् मकर कुण्डलम् ॥३॥

श्रीमत्	शोभा सम्पन्न	स्फुरन्	चमकते
सुकपोलं	सुन्दर कपोलवाले	मकर-	मकराकृति
नित्यं प्रमुदितं	नित्य प्रसन्न	कुण्डलं	कुण्डल
शुचिस्मितं	पवित्र मुसकानवाले	बिभ्राणं	धारण किये ॥३॥
मुखारविन्दं	मुख-कमलपर		

वासुदेवो ह्ययमिति पुमाञ्छ्रीवत्सलाञ्छनः ।
चतुर्भुजोऽरविन्दाक्षो वनमाल्यतिसुन्दरः ॥४॥

वासुदेवः हि अयं इति पुमान् श्रीवत्सलाञ्छनः चतुर्भुजः अरविन्दाक्षः वनमालि अतिसुन्दरः ॥४॥

हि अयं	क्योंकि यह	अरविन्दाक्षः	कमल-लोचन
पुमान्	पुरुष	वनमालि	वन-मालाधारी
श्रीवत्स-	श्रीवत्स	अतिसुन्दरः	अत्यन्त सुन्दर है,
लाञ्छनः	चिह्नवाला	वासुदेवः	वासुदेव हैं ॥४॥
चतुर्भुजः	चतुर्भुज		

लक्षणैर्नारदप्रोक्तैर्नान्यो भवितुमर्हति ।
निरायुधश्चलन् पद्भ्यां योत्स्येनेऽननिरायुधः ॥५॥

लक्षणैः नारद प्रोक्तैः न अन्यः भवितुं अर्हति निरायुधः चलन् पद्भ्यां योत्स्ये अनेन निरायुधः ॥५॥

नारद प्रोक्तैः	नारदजीके बतलाये	निरायुधः	शस्त्रहीन
लक्षणैः	लक्षणोंसे	पद्भ्यां चलन्	पैदल चलते
अन्यः भवितुं	इसे दूसरा कोई होना	अनेन	इसके साथ
		निरायुधः	(मैं भी) शस्त्रहीन
न अर्हति	नहीं चाहिए	योत्स्ये	युद्ध करूँगा ॥५॥

इति निश्चित्य यवनः प्राद्रवन्तं पराङ्मुखम् ।
अन्वधावज्जिघृक्षुस्तं दुरापमपि योगिनाम् ॥६॥

इति निश्चित्य यवनः प्राद्रवन्तं पराङ्मुखं अनु अधावत् जिघृक्षुः तं दुरापं अपि योगिनाम् ॥६॥

इति निश्चित्य	ऐसा निश्चय करके	मुखं	मुख करके
यवनः तं	कालयवन उन	प्राद्रवन्तं	जोरसे भागतेको
योगिनां अपि	योगियोंके लिए भी	जिघृक्षुः	पकड़नेके लिये
दुरापं	दुष्प्राप्य	अनु अधावत्	पीछे दौड़ा ॥६॥
पराङ्-	दूसरी ओर		

हस्तप्राप्तमिवात्मानं हरिणा स पदे पदे ।
नीतो दर्शयता दूरं यवनेशोऽद्रिकन्दरम् ॥७॥

हस्त प्राप्तं इव आत्मानं हरिणा स पदे पदे नीतः दर्शयता दूरं यवन ईशः अद्रिकन्दरम् ॥७॥

हरिणा	श्रीकृष्णके द्वारा	दर्शयता	दिखलाते हुए
आत्मानं	अपनेको	यवन ईशः	वह यवनराज
पदे पदे	एक-एक पदपर	दूरं	दूर
हस्त प्राप्तं	हाथमें आये	अद्रिकन्दरम्	पर्वतीय गुफामें
इव	के समान	नीतः	ले जाया गया ॥७॥

पलायनं यदुकुले जातस्य तव नोचितम् ।
इति क्षिपन्ननुपतो नैनं प्रापाहताशुभः ॥८॥

पलायनं यदुकुले जातस्य तव न उचितं इति क्षिपन् अनुगतः न एनं प्राप अहत अशुभः ॥८॥

यदुकुले	'यदुवंशमें	क्षिपन्	आक्षेप करता हुआ
जातस्य तव	उत्पन्न तुम्हारा	अनुगतः	पीछे दौड़ता हुआ
पलायनं	भागना	अहत अशुभः	पाप नष्ट हुए बिना
उचितं न	उचित नहीं है ।'	एनं	इनको
इति	ऐसा	न प्राप	नहीं पा सका ॥८॥

एवं क्षिप्तोऽपि भगवान् प्राविशद् गिरिकन्दरम् ।
सोऽपि प्रविष्टस्तत्रान्यं शयानं ददृशे नरम् ॥९॥

एवं क्षिप्तः अपि भगवान् प्राविशत् गिरिन्दरं सः अपि प्रविष्टः तत्र अन्यं शयानं ददृशे नरम् ॥९॥

एवं	ऐसा	प्रविष्टः	प्रवेश करके
क्षिप्तः अपि	आक्षेप करनेपर भी	तत्र शयानं	वहां सोये,
भगवान्	भगवान	अन्यं	किसी दूसरे
गिरिन्दरं	पर्वतकी गुफामें	नरं	पुरुषको
प्राविशत्	प्रवेश कर गये,	ददृशे	देखा ॥९॥
सः अपि	उसने भी		

नन्वसौ दूरमानीय शेते मामिह साधुवत् ।
इति मत्वाच्युतं मूढस्तं पदा समताडयत् ॥१०॥

ननु असौ दूरं आनीय शेते मां इह साधुवत् इति मत्वा अच्युतं मूढः तं पदा समताडयत् ॥१०॥

ननु असौ	'निश्चय यह	तं	उस (पुरुष) को
मां दूरं	मुझे दूर	अच्युतं मत्वा	श्रीकृष्ण मानकर
आनीय	ले आकर	मूढः	उस मूर्खने
इह साधुवत्	यहां साधुके जैसा	पदा	पैरसे
शेते	सो रहा है'	समताडयत्	जोरकी ठोकर मारी
इति	इस प्रकार		॥१०॥

स उत्थाय चिरं सुप्तः शनैरुन्मील्य लोचने ।
दिशो विलोकयन् पार्श्वे तमद्राक्षीदवस्थितम् ॥११॥

स उत्थाय चिरं सुप्तः शनैः उन्मील्य लोचने दिशः विलोकयन् पार्श्वे तं अद्राक्षीत् अवस्थितम् ॥११॥

स चिरं	वह बहुत दिनोंसे	शनैः लोचने	धीरेसे नेत्र
सुप्तः	सोया (पुरुष)	उन्मील्य	खोलकर
उत्थाय	उठकर	दिशः	दिशाओंमें

विलोकयन्	देखता हुआ	अवस्थितं	खड़े
तं पार्श्वे	उसे बगलमें	अद्राक्षीत्	देखा ॥११॥

स तावत्तस्य रुष्टस्य दृष्टिपातेन भारत ।
देहजेनाग्निना दग्धो भस्मसादभवत् क्षणात् ॥१२॥

स तावत् तस्य रुष्टस्य दृष्टि पातेन भारत देहजेन अग्निना दग्धः भस्मसात् अभवत् क्षणात् ॥१२॥

भारत	परीक्षित् !	अग्निना	उत्पन्न अग्निसे
तस्य	उस	स दग्धः	वह जलकर
रुष्टस्य	क्रुद्ध पुरुषकी	क्षणात्	क्षण भरमें
तावत्	उसी समय	भस्मसात्	राख
दृष्टि पातेन	दृष्टि पड़ते ही	अभवत्	हो गया ॥१२॥
देहजेन	अपने शरीरसे ही		

राजोवाच

को नाम स पुमान् ब्रह्मन् कस्य किंवीर्य एव च ।
कस्माद् गुहां गतः शिश्ये किंतेजो यवनार्दनः ॥१३॥

कः नाम स पुमान् ब्रह्मन् कस्य किं वीर्य एव च कस्मात् गुहां गतः शिश्ये किं तेजः यवन अर्दनः ॥१३॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	गुहां गतः	गुफामें जाकर
स पुमान्	उस पुरुषका	कस्मात् शिश्ये	क्यों सो रहा था ?
कः नाम	क्या नाम था ?	यवन	कालयवनको
कस्य	किसका पुत्र था ?	अर्दनः	नष्ट करनेवाला
किं वीर्य	उसमें क्या पराक्रम था ?	किं तेजः	उसमें तेज कैसा था ॥१३॥

श्रीशुक उवाच

स इक्ष्वाकुकुले जातो मान्धातृतनयो महान् ।
मुचुकुन्द इति ख्यातो ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ॥१४॥

स इक्ष्वाकुकुले जातः मान्धातृ तनयः महान् मुचुकुन्द इति ख्यातः ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ॥१४॥

इक्ष्वाकुकुले	इक्ष्वाकुवंशमें	इति ख्यातः	इस नामसे प्रसिद्ध
जातः	उत्पन्न	ब्रह्मण्यः	ब्राह्मण भक्त तथा
मान्धातृ	मान्धाताका	सत्यसङ्गरः	सत्य प्रतिज्ञ था ॥१४॥
महान् तनयः	महान् पुत्र		
स मुचुकुन्द	वह मुचुकुन्द		

स याचितः सुरगणैरिन्द्राद्यैरात्मरक्षणे ।
असुरेभ्यः परित्रस्तैस्तद्रक्षां सोऽकरोच्चिरम् ॥१५॥

स याचितः सुरगणैः इन्द्र आद्यैः आत्मरक्षणे असुरेभ्यः परित्रस्तैः यत् रक्षां सः अकरोत् चिरात् ॥१५॥

असुरेभ्यः	असुरों द्वारा	याचितः	प्रार्थना करनेपर
परित्रस्तैः	चारों ओरसे संत्रस्त	स	वे
इन्द्र आद्यैः	इन्द्रादि	चिरात्	बहुत समय तक
सुरगणैः	देवताओं द्वारा	तत् रक्षां	उनकी रक्षा
आत्मरक्षणे	अपनी रक्षाके लिए	अकरोत्	करते रहे ॥१५॥

लब्ध्वा गुहं ते स्वःपालं मुचुकुन्दमथाब्रुवन् ।
राजन् विरमतां कृच्छ्राद् भवान् नः परिपालनात् ॥१६॥

लब्ध्वा गुहं ते स्वःपालं मुचुकुन्दं अथ अब्रुवन् राजन् विरमतां कृच्छ्रात् भवान् नः परिपालनात् ॥१६॥

ते	वे (देवता)	राजन्	राजन् !
स्वःपालं	स्वर्ग रक्षक रूपमें	नः	हमारे
गुहं	स्वामि	परिपालनात्	संरक्षणके
लब्ध्वा	कार्तिकको पाकर	कृच्छ्रात्	कष्टसे
अथ मुचुकुन्दं	फिर मुचुकुन्दसे	विरमतां	निवृत्त होइये ॥१६॥
अब्रुवन्	बोले		

नरलोके परित्यज्य राज्यं निहतकण्टकम् ।
अस्मान् पालयतो वीर कामास्ते सर्व उज्झिताः ॥१७॥

नरलोके परित्यज्य राज्यं निहतकण्टकं अस्मान् पालयतः वीर कामाः ते सर्व उज्झिताः ॥१७॥

वीर	वीरवर !	अस्मान्	हमारा
निहतकण्टकं	निष्कण्टक	पालयतः	पालन करते हुए
नरलोके	मनुष्य-लोकका	ते सर्व	आपने सब
राज्यं	राज्य	कामाः	भोग
परित्यज्य	त्यागकर	उज्झिताः	त्याग दिये ॥१७॥

सुता महीष्यो भवतो ज्ञातयोऽमात्यमन्त्रिणः ।
प्रजाश्च तुल्यकालीया नाधुना सन्ति कालिताः ॥१८॥

सुता महीष्यः भवतः ज्ञातयः अमात्य मन्त्रिणः प्रजाः च तुल्य कालीया न अधुना सन्ति कालिताः ॥१८॥

भवतः सुता	आपके पुत्र,	च	तथा
महीष्यः	रानियां,	तुल्य कालिया	समकालीना प्रजा
ज्ञातयः	जाति भाई,	कालिताः	काल कवलित होकर
अमात्य	सचिव,	अधुना न सन्ति	अब नहीं हैं ॥१८॥
मन्त्रिणः	मन्त्री		

कालो बलीयान् बलिनां भगवानीश्वरोऽव्ययः ।
प्रजाः कालयते क्रीडन् पशुपालो यथा पशून् ॥१९॥

कालः बलीयान् बलिनां भगवान् ईश्वरः अव्ययः प्रजाः कालयते क्रीडन् पशुपालः यथा पशून् ॥१९॥

बलीयान्	सब बलवानोंसे	पशून्	पशुओंको (चराते हैं)
बलिनां	बली	क्रीडन्	(वैसे ही काल)
कालः भगवान्	काल भगवान		खेलते हुए
ईश्वरः	ईश्वर और	प्रजाः	प्रजाका
अव्ययः	अविनाशी हैं,	कालयते	संचालन करता है
यथा पशुपालः	जैसे गोपगण		॥१९॥

वरं वृणीष्व भद्रं ते ऋते कैवल्यमद्य नः ।
एक एवेश्वरस्तस्य भगवान् विष्णुरव्ययः ॥२०॥

वरं वृणीष्व भद्रं ते ऋते कैवल्यं अद्य नः एक एव ईश्वरः तस्य भगवान् विष्णुः अव्ययः ॥२०॥

ते भद्रं	आपका कल्याण हो,	**तस्य**	उस (मोक्ष) के
ऋते कैवल्यं	मोक्षको छोड़कर	**एक**	अकेले
अद्य नः	आज हम लोगोंसे	**अव्ययः**	अविनाशी
वरं वृणीष्व	वरदान मांग लीजिए,	**भगवान् विष्णुः**	भगवान् विष्णु
		एव ईश्वरः	ही स्वामी हैं' ॥२०॥

एवमुक्तः स वै देवानभिवन्द्य महायशाः ।
अशयिष्ट गुहाविष्टो निद्रया देवदत्तया ॥२१॥

एवं उक्तः स वै देवान् अभिवन्द्य महायशाः अशयिष्ट गुहा आविष्टः निद्रया देवदत्तया ॥२१॥

एवं उक्तः	ऐसा कहनेपर	**गुहा आविष्टः**	गुफामें प्रवेश करके
स महायशाः	वे महायशस्वी	**देवदत्तया**	देवताओंकी (वरदानमें) दी गयी
वै	निश्चय करके		
देवान्	देवताओंको	**निद्रया**	निद्रासे
अभिवन्द्य	प्रणाम करके	**अशयिष्ट**	सो गये ॥२१॥

स्वापं यातं यस्तु मध्ये बोधयेत्त्वामचेतनः ।
स त्वया दृष्टमात्रस्तु भस्मीभवतु तत्क्षणात् ॥२२॥

स्वापं यातं यः तु मध्ये बोधयेत् त्वां अचेतनः स त्वया दृष्टमात्रः तु भस्मीभवतु तत् क्षणात् ॥२२॥

यः	(देवताओंने कहा) 'जो	**स त्वया**	वह तुम्हारे
तु अचेतनः	भी मूर्ख	**दृष्टमात्रः तु**	देखने मात्रसे ही
स्वापं यातं	सो जानेपर	**तत् क्षणात्**	उसी क्षण
मध्ये त्वां	बीचमें तुमको	**भस्मी भवतु**	भस्म हो जाय' ॥२२॥
बोधयेत्	जगावेगा		

यवने भस्मसान्नीते भगवान् सात्वतर्षभः ।
आत्मानं दर्शयामास मुचुकुन्दाय धीमते ॥२३॥

यवने भस्मसात् नीते भगवान् सात्वत ऋषभः आत्मानं दर्शयामास मुचुकुन्दाय धीमते ॥२३॥

यवने	कालयवनके	धीमते	बुद्धिमान
भस्मसात् नीते	भस्म कर दिये जाने पर	मुचुकुन्दाय	मुकुकुन्दको
		आत्मानं	अपना
भगवान्	भगवान्	दर्शयामास	दर्शन कराया
सात्वत ऋषभः	यादव श्रेष्ठने		॥२३॥

तमालोक्य घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम् ॥२४॥

तं आलोक्य घनश्यामं पीतकौशेय वाससं श्रीवत्स वक्षसं भ्राजत् कौस्तुभेन विराजितम् ॥२४॥

तं घनश्यामं	उन मेघश्याम,	कौस्तुभेन	कौस्तुभमणिसे
पीतकौशेय	पीले रेशमी	विराजितं	अत्यन्त सुशोभित
वाससं	वस्त्रधारी,	तं आलोक्य	उनको देखकर
वक्षसं	छातीपर		॥२३॥
श्रीवत्स भ्राजत्	श्रीवत्स चिन्हसे भूषित		

चतुर्भुजं रोचमानं वैजयन्त्या च मालया ।
चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥२५॥

चतुर्भुजं रोचमानं वैजयन्त्या च मालया चारु प्रसन्न वदनं स्फुरत् मकरकुण्डलम् ॥२५॥

चतुर्भुजं	चतुर्भुज	मालया	मालासे,
च वैजयन्त्या	तथा वैजयन्ती	स्फुरत्	चमकते

मकर कुण्डलं	मकराकृत कुण्डल-वाले	वदनं	मुखसे
		रोचमानं	सुशोभित होते ॥२५॥
चारु प्रसन्न	सुन्दर प्रसन्न		

प्रेक्षणीयं नृलोकस्य सानुरागस्मितेक्षणम् ।
अपीच्यवयसं मत्तमृगेन्द्रोदारविक्रमम् ॥२६॥

प्रेक्षणीयं नृलोकस्य सानुराग स्मित ईक्षणं अपीच्य वयसं मत्तमृगेन्द्र उदार विक्रमम् ॥२६॥

नृलोकस्य	मनुष्य मात्रके लिए	अपीच्य वयसं	नवीन (युवा) अवस्था तथा
प्रेक्षणीयं	दर्शनीय,		
सानुराग	प्रेमपूर्ण	मत्तमृगेन्द्र	मतवाले सिंहके समान
स्मित ईक्षणं	मुस्कानसे देखते,		
उदार	उदार	विक्रमं	गतिवाले ॥२६॥

पर्यपृच्छन्महाबुद्धिस्तेजसा तस्य धर्षितः ।
शङ्कितः शनकैः राजा दुर्धर्षमिव तेजसा ॥२७॥

पर्यपृच्छत् महाबुद्धिः तेजसा तस्य धर्षितः शङ्कितः शनकैः राजा दुर्धर्ष इव तेजसा ॥२७॥

तस्य दुर्धर्षं	उनके दुर्धर्ष	महाबुद्धिः	अत्यन्त बुद्धिमान
इव तेजसा	के समान तेजसे	राजा शनकैः	राजा मुचुकुन्दने धीरेसे
शङ्कितः	आशङ्कित होकर		
तेजसा धर्षितः	उस तेजसे प्रतिहत होकर	पर्यपृच्छत्	पूछा ॥२७॥

॥ मुचुकुन्द उवाच ॥

को भवानिह सम्प्राप्तो विपिने गिरिगह्वरे ।
पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरस्युरुकण्टके ॥२८॥

कः भवान् इह सम्प्राप्तः विपिने गिरिगह्वरे पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरसि उरु कण्टके ॥२८॥

इह सम्प्राप्तः	यहां पधारे	उरु कण्टके	बहुत काँटों वाले
भवान् कः	आप कौन हैं ?	गिरिगह्वरे	पर्वतकी गुफा
पद्मपलाशाभ्यां	कमलदल जैसे	विपिने	घने वनमें
पद्भ्यां	चरणोंसे	विचरसि	घूम रहे हैं ॥२८॥

किंस्वित्तेजस्विनां तेजो भगवान् वा विभावसुः ।
सूर्यः सोमो महेन्द्रो वा लोकपालो ऽपरोऽपि वा ॥२९॥

किं स्वित् तेजस्विनां तेजः भगवान् वा विभावसुः सूर्यः सोमः महेन्द्रः वा लोकपालः अपरः अपि वा ॥२९॥

किं स्वित्	कहीं आप	सूर्यः सोमः	सूर्य, चन्द्रमा
तेजस्विनां तेजः	सब तेजस्वियोंके तेज	वा महेन्द्रः	अथवा इन्द्र,
		वा अपरः अपि	अथवा दूसरे ही
वा भगवान्	अथवा भगवान	लोकपालः	लोकपाल हैं ॥२९॥
विभावसुः	अग्निदेव,		

मन्ये त्वां देवदेवानां त्रयाणां पुरुषर्षभम् ।
यद् बाधसे गुहाध्वान्तं प्रदीपः प्रभया यथा ॥३०॥

मन्ये त्वां देवदेवानां त्रयाणां पुरुष ऋषभ यत् बाधसे गुहा ध्वान्तं प्रदीपः प्रभया यथा ॥३०॥

देवदेवानां	हे देव !	मन्ये	मानता हूँ
त्रयाणां	त्रिदेवोंमेंसे	यत् गुहा	क्योंकि इस गुफाके
त्वां	आपको	ध्वान्तं	अन्धकारको
पुरुष ऋषभं	पुरुषोत्तम		

यथा प्रदीपः प्रभया	जैसे दीपककी ज्योति हो	बाधसे	(आप) दूर कर रहे हैं ॥३०॥

शुश्रूषतामव्यलीकमस्माकं नरपुङ्गव ।
स्वजन्म कर्म गोत्रं वा कथ्यतां यदि रोचते ॥३१॥

शुश्रूषतां अव्यलीकं अस्माकं नरपुङ्गव स्वजन्म कर्म गोत्रं वा कथ्यतां यदि रोचते ॥३१॥

यदि रोचते	यदि रुचे तो	नरपुङ्गव	पुरुष श्रेष्ठ !
अस्माकं	मुझ	स्वजन्म	अपना जन्म,
शुश्रूषतां	सुननेकी इच्छा वाले से	कर्म वा	कर्म अथवा
अव्यलीकं	निष्कपट भावसे	गोत्रं कथ्यतां	गोत्र बतलाइये ॥३१॥

वयं तु पुरुषव्याघ्र ऐक्ष्वाकाः क्षत्रबन्धवः ।
मुचुकुन्द इति प्रोक्तो यौवनाश्वात्मजः प्रभो ॥३२॥

वयं तु पुरुषव्याघ्र ऐक्ष्वाकाः क्षत्रबन्धवः मुचुकुन्द इति प्रोक्तः यौवनाश्व आत्मजः प्रभो ॥३२॥

पुरुषव्याघ्र	पुरुषसिंह	मुचुकुन्द	मुचुकुन्द
प्रभो	प्रभो !	इति प्रोक्तः	इस नामसे कहा जाने वाला
वयं तु ऐक्ष्वाकाः	हम तो ईक्ष्वाकु गोत्रीय	क्षत्रबन्धवः	अधम क्षत्रिय हूँ ॥३२॥
यौवनाश्व आत्मजः	युवनाश्व नन्दन मान्धाताका पुत्र		

चिरप्रजागरश्रान्तो निद्रयोपहतेन्द्रियः ।
शयेऽस्मिन विजने कामं केनाप्युत्थापितोऽधुना ॥३३॥

चिरप्रजागरः श्रान्तः निद्रया अपहृत इन्द्रियः शये अस्मिन् विजने कामं केन अपि उत्थापितः अधुना ॥३३॥

चिरप्रजागरः	बहुत दिनोंतक जागने से	अस्मिन् विजने	इस निर्जन स्थानमें
श्रान्तः	थककर	कामं शये	इच्छानुसार सो रहा था
निद्रया	निद्रासे	अधुना	इसी समय
अपहृत इन्द्रियः	इन्द्रियोंके आहत होनेसे	केन अपि	किसीने तो
		उत्थापितः	जगा दिया ॥३३॥

सोऽपि भस्मीकृतो नूनमात्मीयेनैव पाप्मना ।
अनन्तरं भवाञ्छ्रीमान् लक्षितोऽमित्रशातनः ॥३४॥

सः अपि भस्मीकृतः नूनं आत्मीयेन एव पाप्मना अनन्तरं भवान् श्रीमान् लक्षितः अमित्र शातनः ॥३४॥

नूनं आत्मीयेन	निश्चय अपने	अनन्तरं	इसके पश्चात् ही
पाप्मना एव	पापसे ही	अमित्र शातनः	शत्रुनाशक
सः अपि	वह भी	भवान् श्रीमान्	आप श्रीमान्
भस्मीकृतः	भस्म कर दिया गया	लक्षितः	दिखलायी पड़े हैं ॥३४॥

तेजसा तेऽविषह्येण भूरि द्रष्टुं न शक्नुमः ।
हतौजसो महाभाग माननीयोऽसि देहिनाम् ॥३५॥

तेजसा ते अविषह्येण भूरि द्रष्टुं न शक्नुमः हत ओजसः महाभाग माननीयः असि देहिनाम् ॥३५॥

महाभाग	महाभाग !	हत ओजसः	शक्तिहीन होनेसे
ते अविषह्येण	आपके असह्य	भूरि द्रष्टुं	(आपकी ओर) बहुत देखनेमें
तेजसा	तेजसे		

शक्नुमः	समर्थ नहीं हूँ,	माननीयः असि	आप सम्मान्य हो ॥३५॥
देहिनां	शरीर धारियोंके लिए		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

एवं सम्भाषितो राज्ञा भगवान् भूतभावनः ।
प्रत्याह प्रहसन् वाण्या मेघनादगभीरया ॥३६॥

एवं सम्भाषितः राज्ञा भगवान् भूतभावनः प्रत्याह प्रहसन् वाण्या मेघनाद गभीरया ॥३६॥

राज्ञा	राजाके द्वारा	गभीरया	गंभीर
एवं सम्भाषितः	ऐसा कहने पर	वाण्या	वाणीसे
भूतभावनः	प्राणियोंके पालक	प्रहसन् प्रत्याह	हँसकर उत्तर देते बोले ॥३६॥
भगवान्	भगवान		
मेघनाद	मेघध्वनिके समान		

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

जन्मकर्माभिधानानि सन्ति मेऽङ्ग सहस्रशः ।
न शक्यन्तेऽनुसंख्यातुमनन्तत्वान्मयापि हि ॥३७॥

जन्म कर्म अभिधानानि सन्ति मे अङ्ग सहस्रशः न शक्यन्ते अनुसंख्यातुं अनन्तत्वात् मया अपिहि ॥३७॥

अङ्ग	प्रियवर !	सहस्रशः सन्ति	हजारों हैं
मे जन्म कर्म	मेरे जन्म, कर्म,	हि अनन्तत्वात्	क्योंकि अनन्त होनेके कारण
अभिधानानि	नाम		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

मया अपि	मेरे द्वारा भी	शक्यन्ते न	शंका नहीं हैं ॥३७॥
अनुसंख्यातुं	उनको पूरा गिन देना		

क्वचिद् रजांसि विममे पार्थिवान्युरुजन्मभिः ।
गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित् ॥३८॥

क्वचित् रजांसि विममे पार्थिवानि उरुजन्मभिः गुण कर्म अभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित् ॥३८॥

क्वचित्	कभी	अभिधानानि	नामों
उरुजन्मभिः	बहुत जन्मोंमें कोई	जन्मानि	जन्मोंको
पार्थिवानि	पृथ्वीके	कर्हिचित् न	कभी भी (गिन) नहीं सकता ॥३८॥
रजांसि	धूलि कणोंको		
विममे	गिन भी लें, किन्तु		
मे गुण कर्म	मेरे गुणों, कर्मों,		

कालत्रयोपपन्नानि जन्मकर्माणि मे नृप ।
अनुक्रमन्तो नैवान्तं गच्छन्ति परमर्षयः ॥३९॥

कालत्रय उपपन्नानि जन्म कर्माणि मे नृप अनुक्रमन्तः न एव अन्तं गच्छन्ति परम ऋषयः ॥३९॥

नृप	राजन् !	मे जन्म	मेरे जन्मों-
परम ऋषयः	परमर्षिगण	कर्माणि	कर्मोंको
कालत्रय	त्रिकालोंमें	अनुक्रमन्तः	वर्णन करते
उपपन्नानि	सम्पन्न हुए	अन्तं न एव गच्छन्ति	उनका अन्त नहीं ही पाते हैं ॥३९॥

तथाप्यद्यतनान्यङ्ग शृणुष्व गदतो मम ।
विज्ञापितो विरिञ्चेन पुराहं धर्मगुप्तये ।
भूमेर्भारायमाणानामसुराणां क्षयाय च ॥४०॥

तथा अपि अद्यतनानि अङ्ग शृणुष्व गदतः मम विज्ञापितः विरिञ्चेन पुरा अहं धर्म गुप्तये भूमेः भारायमाणानां असुराणां क्षयाय च ॥४०॥

अङ्ग	प्रियवर	**धर्म गुप्तये**	धर्मकी रक्षाके लिए
तथा अपि	ऐसा होने पर भी	**च भूमेः**	तथा पृथ्वीके
अद्यतनानि	इस समयके	**भारायमाणानां**	भार बने
मम गदतः	मेरे (जन्म कर्मादि) बतलाता हूँ	**असुराणां**	असुरोंके
		क्षयाय	विनाशके लिए
शृणुष्व	सुनो !	**अहं विज्ञापितः**	मैं सूचित किये जाने पर ॥४०॥
पुरा विरिञ्चेन	पहिले ब्रह्माजी द्वारा		

अवतीर्णो यदुकुले गृह आनकदुन्दुभेः ।
वदन्ति वासुदेवेति वसुदेवसुतं हि माम् ॥४१॥

अवतीर्णः यदुकुले गृह आनकदुन्दुभेः वदन्ति वासुदेव इति वसुदेव सुतं हि माम् ॥४१॥

यदुकुले	यदुकुलमें	**हि वसुदेव सुतं**	क्योंकि वसुदेवका पुत्र हूँ
आनकदुन्दुभेः	आनकदुन्दुभिके		
गृह अवतीर्णः	घरमें अवतार लिये	**मां वासुदेव इति**	मुझे वासुदेव ऐसा
		वदन्ति	कहते हैं ॥४१॥

कालनेमिर्हतः कंसः प्रलम्बाद्याश्च सद्द्विषः ।
अयं च यवनो दग्धो राजंस्ते तिग्मचक्षुषा ॥४२॥

कालनेमिः हतः कंसः प्रलम्ब आद्याः च सत् द्विषः अयं च यवनः दग्धः राजन् ते तिग्म चक्षुषा ॥४२॥

राजन्	राजन् !	**च सत् द्विषः**	तथा सत्पुरुषोंसे शत्रुता रखने वाले
कालनेमिः	कालनेमि राक्षस		
कंसः हतः	जो कंस था, मारा गया,	**प्रलम्ब आद्याः**	प्रलम्ब आदि भी

ते तिग्मचक्षुषा	तुम्हारी तीक्ष्ण दृष्टि से	च दग्धः	भी जला दिया गया ॥४२॥
अयं यवनः	यह कालभवन		

सोऽहं तवानुग्रहार्थं गुहामेतामुपागतः ।
प्रार्थितः प्रचुरं पूर्वं त्वयाहं भक्तवत्सलः ॥४३॥

सः अहं तव अनुग्रह अर्थं गुहां एतां उपागतः प्रार्थितः प्रचुरः पूर्वं त्वया अहं भक्तवत्सलः ॥४३॥

पूर्वं त्वया	पहिले तुम्हारे द्वारा	तव	तुम पर
अहं	मैं	अनुग्रह अर्थं	कृपा करनेके लिए
भक्तवत्सलः	भक्तवत्सल	एतां गुहां	इस गुफामें
प्रचुरः प्रार्थितः	बहुत प्रार्थित हुआ हूँ	उपागतः	(तुम्हारे) समीप आया हूँ ॥४३॥
सः अहं	वही मैं		

वरान् वृणीष्व राजर्षे सर्वान् कामान् ददामि ते ।
मां प्रपन्नो जनः कश्चिन्न भूयोऽर्हति शोचितुम् ॥४४॥

वरान् वृणीष्व राजर्षे सर्वान् कामान् ददामि ते मां प्रपन्नः जनः कश्चित् न भूयः अर्हति शोचितुम् ॥४४॥

राजर्षे	राजर्षि !	कश्चित् जनः	कोई पुरुषको
वरान् वृणीष्व	वरदान मांगो,	भूयः शोचितुं	फिर शोक
ते सर्वान्	तुमको सब	न अर्हति	नहीं करना चाहिए ॥४४॥
कामान् ददामि	कामनायें दूँगा,		
मां प्रपन्नः	मेरे शरणागत		

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तस्तं प्रणम्याह मुचुकुन्दो मुदान्वितः ।
ज्ञात्वा नारायणं देवं गर्गवाक्यमनुस्मरन् ॥४५॥

इति उक्तः तं प्रणम्य आह मुचुकुन्दः मुद अन्वितः ज्ञात्वा नारायणं देवं गर्गवाक्यं अनुस्मरन् ॥४५॥

इति उक्तः	ऐसा कहे जाने पर	ज्ञात्वा	जानकर
गर्गवाक्यं	गर्गाचार्यकी बातको	मुद अन्वितः	प्रसन्न होकर
मुचुकुन्दः	राजा मुचुकुन्द	तं प्रणम्य	उनको प्रणाम करके
अनुस्मरन्	फिर स्मरण करके	आह	बोला ॥४५॥
देवं नारायणं	अपने आराध्य देव नारायणको		

॥ मुचुकुन्द उवाच ॥

विमोहितोऽयं जन ईश मायया
त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक् ।
सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते
गृहेषु योषित् पुरुषश्च वञ्चितः ॥४६॥

विमोहितः अयं जनः ईश मायया त्वदीयया त्वां न भजति अनर्थदृक् सुखाय दुःख प्रभवेषु सज्जते गृहेषु योषित् पुरुषः च वञ्चितः ॥४६॥

ईश	सर्वेश !	योषित् पुरुषः	ये स्त्री-पुरुष
त्वदीयया	आपकी	वञ्चितः	(परस्पर) ठगे गये
मायया	मायासे	सुखाय	सुख पानेके लिए
विमोहितः	मोहित हुए	दुःख प्रभवेषु	दुःख उत्पन्न करने वाले
अयं जनः	ये संसारके लोग	गृहेषु च	घरोंमें ही
त्वां न भजति	आपका भजन नहीं करते	सज्जते	आसक्त होते हैं ॥४६॥
अनर्थदृक्	इनकी दृष्टि अनर्थ-रूप संसार पर रहती है		

लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं
कथञ्चिदव्यङ्गमयत्नतोऽनघ ।
पादारविन्दं न भजत्यसन्मति-
र्गृहान्धकूपे पतितो यथा पशुः ॥४७॥

लब्ध्वा जनः दुर्लभं अत्र मानुषंकथञ्चित् अव्यङ्गम् अयत्नतः अनघ पादारविन्दं न भजति असत् मतिः गृह अन्धकूपे पतितः यथा पशुः ॥४७॥

अनघ	निष्पाप प्रभु !	यथा पशुः	पशुके समान
जनः अत्र	मनुष्य इस संसारमें	गृह अन्धकूपे	गार्हस्थ्यरूपी अन्धे कुएँमें
दुर्लभं	दुर्लभ	पतितः	गिरकर
अव्यङ्गम्	सर्वाङ्गपूर्ण	पादारविन्दं	(आपके) चरणके कमलोंका
मानुषं	मनुष्य जन्म	भजति न	भजन नहीं करता ॥४७॥
अयत्नतः	बिना प्रयत्नके		
लब्ध्वा	पाकरभी		
असत् मतिः	असत् संसार में बुद्धि लगी होनेसे		

ममैष कालोऽजित निष्फलो गतो
राज्यश्रियोन्नद्धमदस्य भूपतेः ।
मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभू-
ष्वासज्जमानस्य दुरन्तचिन्तया ॥४८॥

मम एष कालः अजित निष्फलः गतः राज्यश्रिया उन्नद्धमदस्य भूपतेः मर्त्य आत्मबुद्धेः सुत दार कोश भूषु आसज्जमानस्य दुरन्त चिन्तया ॥४८॥

अजित	अजित !	उन्नद्धमदस्य	मदोन्मत्त हुए
राज्यश्रिया	राज्यलक्ष्मीके कारण	भूपतेः	मुझ राजाका

मर्त्य आत्मबुद्धेः	मरणधर्मा देहको आत्मा समझकर
सुत दार कोश	पुत्र, स्त्री, धन
भूषु	भूमिमें
आसज्जमानस्य	आसक्त होकर
दुरन्त चिन्तया	दुरन्त चिन्तामें पड़ा
मम एष कालः	मेरा इतना समय
निष्फलः गतः	व्यर्थ ही बीत गया

॥४८॥

कलेवरेऽस्मिन् घटकुड्यसन्निभे
निरूढमानो नरदेव इत्यहम् ।
वृतो रथेभाश्वपदात्यनीकपै-
र्गां पर्यटंस्त्वागणयन् सुदुर्मदः ॥४९॥

कलेवरे अस्मिन् घट कुड्य सन्निभे निरूढमानः नरदेव इति अहं वृतः रथ इभ अश्व पदाति अनीकपैः गां पर्यटन् त्वा अगणयन् सुदुर्मदः ॥४९॥

अस्मिन् घट कुड्य	इस घड़े या दीवारके
सन्निभे कलेवरे	समान शरीरमें
अहं नरदेव इति	'मैं राजा हूँ' ऐसा
निरूढमानः	दृढ़ अभिमान करके
त्वा अगणयन्	आपकी अवहेलना करके
सुदुर्मदः	अत्यन्त घमण्डमें भरा
रथ इभ	रथ, हाथी,
अश्व पदाति	घोड़े, पैदलोंके
अनीकपैः वृतः	सेनापतियोंसे घिरा
गां पर्यटन्	पृथ्वीपर घूमता फिरता था ॥४९॥

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया
प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ।
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे
क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥५०॥

प्रमत्तं उच्चैः इतिकृत्य चिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसं त्वं अप्रमत्तः सहसा अभिपद्यसे क्षुत् लेलिहानः अहिः इव आखुं अन्तकः ॥५०॥

इतिकृत्य	'ऐसा करना है'
चिन्तया	इस चिन्ता में
उच्चैः प्रमत्तं	अत्यन्त असावधान,
प्रवृद्धलोभं	लोभ बढे हुए
विषयेषु लालसं	विषय भोगकी इच्छा वाले (के पास)
अप्रमत्तः	नित्य सावधान
त्वं अन्तकः	आप काल भगवान्
आखुं	चूहेके पास
क्षत् लेलिहानः	भूखसे जीभ लपलपाते
अहिः इव	सर्पके समान
सहसा	अचानक
अभिपद्यसे	आकर पकड़ लेते हैं ॥५०॥

पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन्
मतङ्गजैर्वा नरदेवसंज्ञितः ।
स एव कालेन दुरत्ययेन ते
कलेवरो विट्कृमिभस्मसंज्ञितः ॥५१॥

पुरा रथैः हेमपरिष्कृतैः चरन् मतङ्गजैः वा नरदेव संज्ञितः स एव कालेन दुरत्ययेन ते कलेवरः विट् कृमि भस्म संज्ञितः ॥५१॥

पुरा	पहिले
नरदेव संज्ञितः	(जो शरीर) राजा कहलाता था,
हेमपरिष्कृतैः	स्वर्ण-मण्डित
रथैः वा	रथों पर या
मतङ्गजैः	हाथियों पर
चरन्	(चढ़कर) घूमता था,
स एव	वही (शरीर)
ते दुरत्ययेन	आप दुष्पार
कालेन	कालके द्वारा
विट् कृमि भस्म	विष्ठा, कीड़ा या भस्म
संज्ञितः	कहलाने लगा ॥५१॥

निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो
वरासनस्थः समराजवन्दितः ।
गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां
क्रीडामृगः पूरुष ईश नीयते ॥५२॥

निर्जित्य दिक् चक्रं भूत विग्रहः वर आसनस्थः समराज वन्दितः गृहेषु मैथुन्य सुखेषु योषितां क्रीडामृगः पूरुष ईश नीयते ॥५२॥

ईश	स्वामी ! (जीवनमें भी)	वन्दितः	वन्दित होता है,
दिक् चक्रं	दिशा-मण्डलको	पूरुष	वह पुरुष भी
निर्जित्य	जीतकर	मैथुन्य सुखेषु	मैथुन का सुख देने वाला
भूत विग्रहः	युद्धको भूत कालिक बना चुका,	गृहेषु	गृहस्थ धर्ममें
वर आसनस्थ	श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठकर	योषितां	स्त्रियोंके
समराज	अपने समान राजाओं द्वारा	क्रीडामृगः	खेलनेका (पालतू) मृग
		नीयते	बना दिया जाता है ॥५२॥

करोति कर्माणि तपस्सुनिष्ठितो
निवृत्तभोगस्तदपेक्षया ददत् ।
पुनश्च भूयेयमहं स्वराडिति
प्रवृद्धतर्षो न सुखाय कल्पते ॥५३॥

करोति कर्माणि तपः सुनिष्ठितः निवृत्त भोगः तत् अपेक्षया ददत् पुनः च भूयेयं अहं स्वराट् इति प्रवृद्धतर्षः न सुखाय कल्पते ॥५३॥

तत् अपेक्षया	उन्हीं (सुखों)की अपेक्षासे	निवृत्त भोगः	भोगोंका त्याग करके
अहं पुनः च	मैं फिरसे (अगले जन्ममें) भी	तपः सुनिष्ठितः	तपस्यामें लगाता हैं,
स्वराट् भूयेयं	चक्रवर्ती सम्राट हो जाऊँ,	ददत्	दान करता है, किन्तु
इति प्रवृद्धतर्षः	इस प्रकार बढ़ी हुई तृष्णासे	सुखाय न कल्पते	सुख पाने योग्य (कभी) नहीं होता ॥५३॥
कर्माणि करोति	अनेक कर्म करता है,		

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवे-
ज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ।
सत्संगमो यर्हि तदैव सद्गतौ
परावरेशे त्वयि जायते मतिः ॥५४॥

भव अपवर्गः भ्रमतः यदा भवेत् जनस्य तर्हि अच्युत सत् समागमः सत्सङ्गमः यर्हि तत् एव सत्गतौ पर अवर ईशे त्वयि जायते मतिः ॥५४॥

अच्युत	अच्युत !	यर्हि सत्सङ्गमः	जब सत्सङ्ग मिलता है
यदा भव भ्रमतः	जब संसारमें भटकते हुए	तत् एव	तभी
जनस्य	मनुष्यके	सत्गतौ	सत्पुरुषोंके आश्रय
अपवर्गः	मोक्ष (का समय)	पर अवर ईशे	कारण-कार्य सबके स्वामी
भवेत्	होता है		
तर्हि सत्	तभी (उसे)	त्वयि मतिः	आपमें चित्त
समागमः	सत्सङ्ग मिलता है	जायते	लगाता है ॥५४॥

मन्ये ममानुग्रह ईश ते कृतो
राज्यानुबन्धापगमो यदृच्छया ।
यः प्रार्थ्यते साधुभिरेकचर्यया
वनं विविक्षद्भिरखण्डभूमिपैः ॥५५॥

मन्ये मम अनुग्रह ईश ते कृतः राज्य अनुबन्ध अपगमः यदृच्छया यः प्रार्थ्यते साधुभिः एक चर्यया वनं विविक्षद्भिः अखण्ड भूमिपैः ॥५५

ईश	स्वामी	मम ते कृतः	मुझ पर आपकी की गयी
यदृच्छया	अपने आप	अनुग्रह मन्ये	कृपा मानता हूँ
राज्यअनुबन्ध	राज्य-बन्धनका	यः साधुभिः	जिसकी सज्जन
अपगमः	छूटजाना		

अखण्ड भूमिपैः	चक्रवर्ती राजा लोग	एक चर्यया	निश्चित दिनचर्या
वनं	(तपके लिए) वनमें		से (निरन्तर)
विविक्षद्भिः	जानेकी इच्छासे	प्रार्थ्यते	प्रार्थना किया करते हैं ॥५५॥

न कामयेऽन्यं तव पादसेवना-
दकिञ्चनप्रार्थ्यतमाद् वरं विभो ।
आराध्य कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे
वृणीत आर्यो वरमात्मबन्धनम् ॥५६॥

न कामये अन्यं तव पादसेवनात् अकिञ्चन प्रार्थ्यतमात् वरं विभो आराध्य कः त्वां हि अपवर्गदं हरे वृणीत आर्यः वरं आत्मबन्धनम् ॥५६॥

विभो हरे	प्रभो ! श्री हरि	हि त्वां अपवर्गदं	क्योंकि आप मोक्ष-
अकिञ्चन	सर्वथा		दाताको
	निष्परिग्रहजनोंके	आराध्य	प्रसन्न करके
प्रार्थ्यतमात्	परम प्रार्थनीय	कः आर्यः	कौन श्रेष्ठ पुरुष
तव पादसेवनात्	आपकी चरण-सेवा	आत्मबन्धनं	अपनेको बांधनेवाले
	से	वरं वृणीत	वरदान मांगेगा
अन्यं वरं	भिन्न दूसरा वरदान		॥५६॥
न कामये	नहीं चाहता		

तस्माद् विसृज्याशिष ईश सर्वतो
रजस्तमःसत्त्वगुणानुबन्धनाः ।
निरञ्जनं निर्गुणमद्वयं परं
त्वां ज्ञाप्तिमात्रं पुरुषं व्रजाम्यहम् ॥५७॥

तस्मात् विसृज्य आशिष ईश सर्वतः रजः तमः सत्त्वगुण अनुबन्धनाः निरञ्जनं निर्गुणं अद्वयं परं त्वां ज्ञाप्तिमात्रं पुरुषं व्रजामि अहम् ॥५७॥

तस्मात् ईश	इसलिए स्वामी !
रजः तमः	रजोगुण, तमोगुण,
सत्त्वगुण	सत्त्वगुणोंसे
अनुबन्धनाः	सम्बन्धित
सर्वतः आशिष	सब ओरकी कामनाएँ
विसृज्य	त्यागकर
त्वां निरञ्जनं	आप निरंजन
निर्गुणं अद्वयं	निर्गुण, अद्वितीय
ज्ञप्तिमात्रं	केवल ज्ञान स्वरूप
परं पुरुषं	परम पुरुषकी
अहं व्रजामि	मैं शरण लेता हूँ ॥५७॥

चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापै-
रवितृषषडमित्रोऽलब्धशान्तिः कथञ्चित् ।
शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्म-
न्नभयमृतमशोकं पाहि माऽऽपन्नमीश ॥५८॥

चिरं इह वृजिन आर्तः तप्यमानः अनुतापैः अवितृष षट् अमित्रः अलब्ध शान्तिः कथञ्चित् शरणद सम उपेतः त्वत् पदाब्जं पर आत्मन् अभयं अमृतं अशोकं पाहि मा आपन्नं ईश ॥५८॥

इह चिरं	इस संसारमें बहुत समयसे
वृजिन आर्तः	सङ्कट व्याकुल,
अनुतापैः	उनके संतापसे निरन्तर
तप्यमानः	संतप्त होता
अवितृष	सदा तृष्णायुक्त
षट् अमित्रः	छः (पाँच ज्ञानेन्द्रिय और मन) रूपी शत्रुओंसे
अलब्ध शान्तिः	कभी शान्ति न पाकर
शरणद	हे शरणदाता !
पर आत्मन्	परमात्मा !
कथञ्चित्	किसी प्रकार
त्वत् अभयं	आपके निर्भय,
अमृतं अशोकं	अमृत स्वरूप शोक-हीन
पदाब्जं	चरण-कमलोंके
सम उपेतः	समीप आ गया हूँ
ईश मा आपन्नं	स्वामी ! मुझ शरणागतकी
पाहि	रक्षा कीजिए ॥५८॥

॥ भगवानुवाच ॥

सार्वभौम महाराज मतिस्ते विमलोर्जिता ।
वरैः प्रलोभितस्यापि न कामैर्विहता यतः ॥५९

सार्वभौम महाराज मतिः ते विमल ऊर्जिता वरैः प्रलोभितस्य अपि न कामैः विहता यतः ॥५९॥

सार्वभौम	चक्रवर्ती	प्रलोभितस्य	प्रलोभन देने पर
महाराज	सम्राट् !	अपि	भी
ते विमल मतिः	आपकी निर्मल बुद्धि	कामैः विहता न	कामाओंसे दबी नहीं ॥५९॥
ऊर्जिता	तेजस्विनी है,		
यतः वरैः	क्योंकि वरदानोंका		

प्रलोभितो वरैर्यत्त्वमप्रमादाय विद्धि तत् ।
न धीर्मय्येकभक्तानामाशीर्भिर्भिद्यते क्वचित् ॥६०॥

प्रलोभितः वरैः यः त्वं अप्रमादाय विद्धि तत् न धीः मयि एक भक्तानां आशीभिः भिद्यते क्वचित् ॥६०॥

यः त्वं	जो तुम	मयि एक	मेरे अनन्य
वरैः प्रलोभितः	वरदानों द्वारा ललचाये गये	भक्तानां	भक्तोंकी
		धीः क्वचित्	बुद्धि कभी भी
तत् अप्रमादाय	उसे सावधान करने के लिए	आशीभिः	कामनाओंसे
		भिद्यते न	विद्ध नहीं होती ॥६०॥
विद्धि	समझो (क्योंकि)		

युञ्जानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः ।
अक्षीणवासनं राजन् दृश्यते पुनरुत्थितम् ॥६१॥

युञ्जानानां अभक्तानां प्राणायामादिभिः मनः अक्षीण वासनं राजन् दृश्यते पुनः उत्थितम् ॥६१॥

राजन्	राजन् !	अभक्तानां	भक्तिहीन लोगोंकी
प्राणायामादिभिः	प्राणायाम आदि द्वारा	अक्षीण वासनं	नष्ट न हुई वासनाएँ
मनः	मनको	पुनः उत्थितं	फिर जाग गयी
युञ्जानानां	संयमित करनेवाले	दृश्यते	दीखती हैं ॥६१॥

विचरस्व महीं कामं मय्यावेशितमानसः ।
अस्त्वेव नित्यदा तुभ्यं भक्तिर्मय्यनपायिनी ॥६२॥

विचरस्व महीं कामं मयि आवेशित मानसः अस्ति एव नित्यदा तुभ्यं भक्तिः मयि अनपायिनी ॥६२॥

मयि मानसः	मुझमें चित्त	नित्यदा तुभ्यं	सदा तुम्हारी
आवेशित	लगाकर	अनपायिनी	निर्बाध
कामं महीं	इच्छानुसार पृथ्वी पर	भक्तिः	भक्ति
विचरस्व	विचरण करो	मयि अस्ति एव	मुझमें है ही ॥६२॥

क्षात्रधर्मस्थितो जन्तून् न्यवधीर्मृगयादिभिः ।
समाहितस्तत्तपसा जह्यघं मदुपाश्रयः ॥६३॥

क्षात्रधर्मं स्थितः जन्तून् न्यवधीः मृगया आदिभिः समाहितः तत् तपसा जहि अघं मत् उपाश्रयः ॥६३॥

क्षात्रधर्मं	क्षत्रिय धर्म पर	तत् अघं	वह पाप
स्थितः	आरूढ़ होकर	मत् उपाश्रयः	मेरा आश्रय लेकर
मृगया	आखेट	तपसा जहि	तपस्यासे नष्ट कर दो ॥६३॥
आदिभिः	आदिके द्वारा		
जन्तून् न्यवधीः	प्राणियोंको मारा है		

जन्मन्यनन्तरे राजन् सर्वभूतसुहृत्तमः ।
भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम् ॥६४॥

जन्मनि अनन्तरे राजन् सर्वभूत सुहृत् तमः भूत्वा द्विजवरः त्वं वै मां उपेष्यसि केवलम् ॥६४॥

राजन्	राजन् !	**त्वं वै**	तुम निश्चय
अनन्तरे जन्मनि	इसके बादके जन्म में	**द्विजवरः भूत्वा**	श्रेष्ठ ब्राह्मण होकर
		मां केवलं	मुझ अद्वितीयको
सर्वभूत	सब प्राणियोंके	**उपेष्यसि**	प्राप्त होंगे ॥६४॥
सुहृत् तमः	परम सुहृद		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे मुचुकुन्दस्तुतिर्नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥६४॥

अथ द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इत्थं सोऽनुगृहीतोऽङ्ग कृष्णेनेक्ष्वाकुनन्दनः ।
तं परिक्रम्य संनम्य निश्चक्राम गुहामुखात् ॥ १ ॥

इत्थं सः अनुगृहीतः अङ्ग कृष्णेन इक्ष्वाकुनन्दनः तं परिक्रम्य सन्नम्य निः चक्राम गुहामुखात् ॥१॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !	तं परिक्रम्य	उनकी परिक्रमा करके
इत्थं सः	इस प्रकारवे	सन्नम्य	प्रणाम करके
इक्ष्वाकुनन्दनः	इक्ष्वाकु-गोत्रीय मुचुकुन्द	गुहामुखात्	गुफा द्वार से
कृष्णेन	श्रीकृष्णचन्द्रकी	निः चक्राम	बाहर निकले ॥१॥
अनुगृहीतः	कृपा पाकर		

स वीक्ष्य क्षुल्लकान् मर्त्यान् पशून् वीरुद्वनस्पतीन् ।
मत्वा कलियुगं प्राप्तं जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २ ॥

स वीक्ष्य क्षुल्लकान् मर्त्यान् पशून् वीरुत् वनस्पतीन् मत्वा कलियुगं प्राप्तं जगाम दिशम् उत्तराम् ॥२॥

स मर्त्यान्	उन्होंने मनुष्योंको	कलियुगं	कलियुगको
पशून् वीरुत्	पशुओं, पौधों,	प्राप्तं मत्वा	आया जानकर
वनस्पतीन	वृक्षोंको	उत्तरां दिशं	उत्तर दिशामें
क्षुल्लकान्	बहुत छोटे	जगाम	चले गये ॥२॥
वीक्ष्य	देखकर		

तपःश्रद्धायुतो धीरो निःसङ्गो मुक्तसंशयः ।
समाधाय मनः कृष्णे प्राविशद् गन्धमादनम् ॥ ३ ॥

तपः श्रद्धायुतः धीरः निःसङ्गः मुक्तसंशयः समाधाय मनः कृष्णे प्राविशत् गन्धमादनम् ॥३॥

तपः श्रद्धायुतः	तपमें श्रद्धासे युक्त,	समाधाय	भली प्रकार लगाकर
धीरः	धैर्यशाली,		
मुक्तसंशयः	संशयोंसे छूटे	गन्धमादनं	गन्धमादन पर्वतमें
निःसङ्गः	अनासक्त,	प्राविशत्	प्रवेश कर गये
कृष्णे मनः	श्री कृष्णमें मनको		॥३॥

बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणालयम् ।
सर्वद्वन्द्वसहः शान्तस्तपसाऽऽराधयद्धरिम् ॥ ४ ॥

बदरि आश्रमं आसाद्य नर नारायण आलयं सर्वद्वन्द्व सहः शान्तः तपसा आराधयत् हरिम् ॥४॥

नर नारायण आलयं	नर-नारायणके निवास आश्रम	शान्तः तपसा हरिम्	शान्त रहकर तपस्या द्वारा श्रीहरिकी
बदरि आश्रमम्	बदरिकाश्रम	आराधयत्	आराधना करने लगे
आसाद्य	पहुँच कर		॥४॥
सर्वद्वन्द्व सहः	सब (शीत-उष्ण) द्वन्द्वोंको सहते		

भगवान् पुनरावृज्य पुरीं यवनवेष्टिताम् ।
हत्वा म्लेच्छबलं निन्ये तदीयं द्वारकां धनम् ॥ ५ ॥

भगवान् पुनः आवृज्य पुरीं यवनवेष्टितां हत्वा म्लेच्छबलं निन्ये तदीयं द्वारकां धनम् ॥५॥

यवनवेष्टितां	यवनोंसे घिरी हुई	म्लेच्छबलं	म्लेच्छ-सेनाको
पुरीं पुनः	मथुरा पुरीमें फिर	हत्वा तदीयं धनं	मारकर उनका धन
आव्रज्य	लौटकर	द्वारकां निन्ये	द्वारिकाको चले
भगवान्	भगवान्		॥५॥

नीयमाने धने गोभिर्नृभिश्चाच्युतचोदितैः ।
आजगाम जरासंधस्त्रयोविंशत्यनीकपः ॥ ६ ॥

नीयमाने धने गोभिः नृभिः च अच्युत चोदितैः आजगाम जरासन्धः त्रयः विंशति अनीकपः ॥६॥

अच्युत चोदितैः	श्रीकृष्ण द्वारा प्रेरित	त्रयः विंशति	तेइस
धने गोभिः	धनको बैलों	अनीकपः	अक्षौहिणी सेनाका स्वामी
च नृभिः	तथा मनुष्यों द्वारा	जरासन्धः	जरासन्ध
नीयमाने	ले जाते समय	आजगाम	आ पहुँचा ॥६॥

विलोक्य वेगरभसं रिपुसैन्यस्य माधवौ ।
मनुष्यचेष्टामापन्नौ राजन् दुद्रुवतुर्द्रुतम् ॥ ७ ॥

विलोक्य वेगरभसं रिपुसैन्यस्य माधवौ मनुष्य चेष्टां आपन्नौ राजन् दुद्रुवतुः द्रुतम् ॥७॥

राजन्	राजन् !	मनुष्य चेष्टां	मनुष्य-लीला
रिपुसैन्यस्य	शत्रु सेनाका	आपन्नौ	करते हुए
वेगरभसं	प्रबल वेग	माधवौ	श्रीकृष्ण-बलराम
विलोक्य	देखकर	द्रुतं दुद्रुवतुः	वेगसे भागे ॥७॥

विहाय वित्तं प्रचुरमभीतौ भीरुभीतवत् ।
पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां चेरतुर्बहुयोजनम् ॥ ८ ॥

विहाय वित्तं प्रचुरं अभीतौ भीरु भीतवत् पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां चेरतुः बहुयोजनम् ॥८॥

प्रचुरं वित्तं	बहुत अधिक धन	पद्मपलाशाभ्यं	कमलदल जैसे
विहाय अभीतो	छोड़कर बिना डरे ही	पद्भ्यां	चरणोंसे
		बहुयोजनं	कई योजन
भीरु भीतवत्	डरपोकके समान डरे हुएसे	चेरतुः	(भागे) चले गये ॥८॥

पलायमानौ तौ दृष्ट्वा मागधः प्रहसन् बली ।
अन्वधावद् रथानीकैरीशयोरप्रमाणवित् ॥ ९ ॥

पलायमानौ तौ दृष्ट्वा मागधः प्रहसन् बली अनु अधावत् रथ अनीकैः ईशयोः अप्रमाणवित् ॥९॥

तौ पलायमानौ	उन दोनोंको भागते	अप्रमाण वित्	प्रभाव न जाननेके कारण
दृष्ट्वा बली	देखकर बलवान		
मागधः	मगधराज	रथ अनीकैः	रथ-सेना लेकर
प्रहसन्	हँसने लगा,	अनु अधावत्	(उनके) पीछे दौड़ा ॥९॥
ईशयोः	उन सर्वसमर्थोंका		

प्रद्रुत्य दूरं संश्रान्तौ तुङ्गमारुहतां गिरिम् ।
प्रवर्षणाख्यं भगवान् नित्यदा यत्र वर्षति ॥१०॥

प्रद्रुत्य दूरं संश्रान्तौ तुङ्गम् आरुहतां गिरिं प्रवर्षण आख्यं भगवान् नित्यदा यत्र वर्षति ॥१०॥

दूरं प्रद्रुत्य	दूर तक दौड़कर	वर्षति	वर्षा होती थी उस
संश्रान्तौ	थककर	प्रवर्षण आख्यं	प्रवर्षण नामक
भगवान्	भगवान	तुङ्ग गिरिं	उच्च पर्वत पर
यत्र नित्यदा	जहाँ सदा	आरुहतां	चढ़ गये ॥१०॥

गिरौ निलीनावाज्ञाय नाधिगम्य पदं नृप ।
ददाह गिरिमेधोभिः समन्तादग्निमुत्सृजन् ॥११॥

गिरौ निलीनाः आज्ञाय न अधिगम्य पदं नृप ददाह गिरिं एधः भिः समन्तात् अग्निं उत्सृजन् ॥११॥

नृप	राजन् !	एधः भिः	सूखे ईंधन (एकत्र) में
गिरौ निलीनाः	पर्वतमें छिप गये	अग्निं उत्सृजन्	अग्नि डालकर
आज्ञाय	जानकर	गिरिं ददाह	पर्वतको फूँक दिया ॥११॥
पदं न अधिगम्य	उनका स्थान (ढूढ़कर) न पाकर		
समन्तात्	चारो ओर		

तत उत्पत्य तरसा दह्यमानतटादुभौ ।
दशैकयोजनोत्तुङ्गान्निपेततुरधो भुवि ॥१२॥

तत उत्पत्य तरसा दह्यमान तटात् उभौ दश एक योजन उत्तुङ्गात् निपेततुः अधः भुवि ॥१२॥

तत दह्यमान	तब जलते हुए	उभौ तरसा	दोनों भाई वेगसे
तटात्	किनारों वाले	उत्पत्य	उछलकर
दश एक योजन	ग्यारह भोजन	अधः भुवि	नीचे पृथ्वी पर
उत्तुङ्गात्	ऊँचे (पर्वत)से	निपेततुः	कूद पड़े ॥१२॥

अलक्ष्यमाणौ रिपुणा सानुगेन यदूत्तमौ ।
स्वपुरं पुनरायातौ समुद्रपरिखां नृप ॥१३॥

अलक्ष्यमाणौ रिपुणा स अनुगेन यदु उत्तमौ स्वपुरं पुनः आयातौ समुद्र परिखां नृप ॥१३॥

नृप	राजन् !	समुद्र परिखां	समुद्रकी खाईं वाले
रिपुणा	शत्रुके द्वारा	स्वपुरं	अपने नगरमें
अलक्ष्यमाणौ	बिना दिखायी दिये	पुनः आयातौ	फिर आ गये ॥१३॥
यदु उत्तमौ	वे यादव श्रेष्ठ		
स अनुगेन	अनुचरोंके साथ		

सोऽपि दग्धाविति मृषा मन्वानो बलकेशवौ ।
बलमाकृष्य सुमहन्मगधान् मागधो ययौ ॥१४॥

सः अपि दग्धाः इति मृषा मन्वानः बल केशवौ बलं आकृष्य सुमहत् मगधान् मागधः ययौ ॥१४॥

सः मागधः अपि	वह मगधराज भी	सुमहत् बलं	उस बड़ी सेनाको
बल केशवौ	'बलराम-श्री कृष्ण'	आकृष्य	लौटाकर
दग्धाः इति	जल गये' ऐसा	मगधान् ययौ	मगध देश चल गया
मृषा मन्वानः	झूठे ही मानता हुआ		॥१४॥

आनर्त्ताधिपतिः श्रीमान् रैवतो रेवतीं सुताम् ।
ब्रह्मणा चोदितः प्रादाद् बलायेति पुरोदितम् ॥१५॥

आनर्त्तं अधिपतिः श्रीमान् रैवत रेवतीं सुतां ब्रह्मणा चोदितः प्रादात् बलाय पुरा इति उदितम् ॥१५॥

पुरा उदितम्	यह पहिले कह चुके हैं कि	ब्रह्मणा चोदितः	ब्रह्माजी द्वारा प्रेरित होकर
आनर्त्तं	आनर्त देशके	इति	अन्ततः
अधिपतिः	स्वामी	सुतां रेवतीं	अपनी पुत्री रेवती
श्रीमान् रेवतः	श्रीमान् रेवतने	बलाय प्रादात्	बलरामजीको दे दी ॥१५॥

भगवानपि गोविन्द उपयेमे कुरूद्वह ।
वैदर्भीं भीष्मकसुतां श्रियो मात्रां स्वयंवरे ॥१६॥

भगवान् अपि गोविन्दः उपयेमे कुरूद्वह वैदर्भीं भीष्मकसुतां श्रियः मात्रां स्वयम्वरे ॥१६॥

कुरूद्वह	कुरूवंश पालक परीक्षित !	भगवान्	भगवान
		गोविन्दः अपि	गोविन्दने भी

श्रियः मात्रां	लक्ष्मीकी अंशावतार	वैदर्भी	वैदर्भीको
भीष्मकसुतां	राजा भीष्मककी पुत्री	स्वयम्वरे	स्वयंवरमें
		उपयेमे	विवाहा ॥१६॥

प्रमथ्य तरसा राज्ञः शाल्वादींश्चैद्यपक्षगान् ।
पश्यतां सर्वलोकानां तार्क्ष्यपुत्रः सुधामिव ॥१७॥

प्रमथ्य तरसा राज्ञः शाल्व आदीन् चैद्य पक्षगान् पश्यतां सर्वलोकानां तार्क्ष्यपुत्रः सुधां इव ॥१७॥

चैद्य पक्षगान्	शिशुपालके पक्षपाती	पश्यतां	देखते हुए
शाल्व आदीन्	शाल्व आदि	तार्क्ष्यपुत्रः	कश्यप-नन्दन गरुड़ के
राज्ञः तरसा	राजाओंको बल-पूर्वक	सुधां इव	अमृत (हरण)की भाँति ॥१७॥
प्रमथ्य	मथकर		
सर्वलोकानां	सब लोगोंके		

॥ राजोवाच ॥

भगवान् भीष्मकसुतां रुक्मिणीं रुचिराननाम् ।
राक्षसेन विधानेन उपयेम इति श्रुतम् ॥१८॥

भगवान् भीष्मकसुतां रुक्मिणीं रुचिर आननां राक्षसेन विधानेन उपयेम इति श्रुतम् ॥१८॥

भीष्मकसुतां	भीष्मककी पुत्री	भगवान	भगवानने
रुचिर आननां	मनोहर मुखी	उपयेम	विवाह किया
रुक्मिणीं	रुक्मिणीसे	इति श्रुतं	ऐसा (हमने) सुना है ॥१८॥
राक्षसेन	राक्षस		
बिधानेन	विधि (बलपूर्वक हरण)से		

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि कृष्णस्यामिततेजसः ।
यथा मागधशाल्वादीन् जित्वा कन्यामुपाहरत् ॥१९॥

भगवन् श्रोतुं इच्छामि कृष्णस्य अमित तेजसः यथा मागध शाल्व आदीन् जित्वा कन्यां उपाहरत् ॥१९॥

भगवन्	भगवन् !	**यथा मागध**	जैसे मगधराज,
अमित तेजसः	अपरमित तेजस्वी	**शाल्व आदीन्**	शाल्व आदिको
कृष्णस्य	श्रीकृष्णका (यह चरित्र)	**जित्वा**	जीतकर
		कन्यां उपाहरत्	कन्याका हरण किया ॥१९॥
श्रोतुं इच्छामि	सुनना चाहता हूँ		

ब्रह्मन् कृष्णकथाः पुण्या माध्वीर्लोकमलापहाः ।
को नु तृप्येत शृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतनाः ॥२०॥

ब्रह्मन् कृष्णकथाः पुण्या माध्वीः लोकमल अपहाः कः नु तृप्येत शृण्वानः श्रुतज्ञः नित्यनूतनाः ॥२०॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**नित्यनूतनाः**	नित्य नवीन है,
कृष्णकथाः	श्रीकृष्णकी कथा	**नु कः श्रुतज्ञः**	भला कौन मर्मज्ञ श्रोता
पुण्या माध्वीः	पवित्र, मधुर,		
लोकमल अपहाः	संसार-मल-नाशिका	**शृण्वानः**	उसे सुनते हुए
		तृप्येत	तृप्त होगा ॥२०॥

श्रीशुक उवाच

राजाऽऽसीद् भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान् ।
तस्य पञ्चाभवन् पुत्राः कन्यैका च वरानना ॥२१॥

राजा आसीत् भीष्मकः नाम विदर्भ अधिपतिः महान् तस्य पञ्च अभवन् पुत्राः कन्या एका च वर आनना ॥२१॥

विदर्भ	विदर्भ देशके	तस्य	उनके
महान्	महान्	पञ्च पुत्राः	पाँच पुत्र
अधिपतिः	अधिपति	च एका वर	तथा एक सुन्दर
भीष्मकः नाम	भीष्मक नामके	आनना	मुखवाली
राजा आसीत्	राजा थे,	कन्या अभवत्	कन्या हुई ॥२१॥

रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनन्तरः ।
रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषां स्वसा सती ॥२२॥

रुक्मि अग्रजः रुक्मरथः रुक्मबाहुः अनन्तरः रुक्मकेशः रुक्ममाली रुक्मिणि एषां स्वसा सती ॥२२॥

अग्रजः रुक्मि	बड़ा भाई रुक्मि	रुक्ममाली	रुक्ममाली और
अनन्तरः	इसके बाद	एषां सती स्वसा	इनकी साध्वी बहिन
रुक्मरथः	रुक्मरथ,		
रुक्मबाहुः	रुक्मबाहु,	रुक्मिणि	रुक्मिणी ॥२२॥
रुक्मकेशः	रुक्मकेश,		

सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीर्यगुणश्रियः ।
गृहागतैर्गीयमानास्तं मेने सदृशं पतिम् ॥२३॥

सा उपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीर्य गुण श्रियः गृह आगतैः गीयमानः तं मेने सदृशं पतिम् ॥२३॥

गृह आगतैः	घर आये (अतिथियों)के	सा तं सदृशं	उसने उनको अपने योग्य
गीयमानः	वर्णनोंसे	पतिम् मेने	पति मान लिया ॥२३॥
मुकुन्दस्य	मुकुन्दके		
रूपवीर्य गुण	सौन्दर्य, पराक्रम, गुण		
श्रियः उपश्रुत्य	धनको पाससे सुनकर		

तां बुद्धिलक्षणौदार्यरूपशीलगुणाश्रयाम् ।
कृष्णश्च सदृशीं भार्यां समुद्वोढुं मनो दधे ॥२४॥

तां बुद्धि लक्षण औदार्य रूप शील गुण आश्रयां कृष्णः च सदृशीं भार्यां सम उद्वोढुं मनः दधे ॥२४॥

तां बुद्धि	उस बुद्धि	सम उद्वोढुं	साथ विवाह करने का
लक्षण औदार्य	सुलक्षण, उदारता	कृष्णः च	श्रीकृष्णने भी
रूप शील गुण	सौन्दर्य, शीलादि गुणोंकी	मनः दधे	मनमें निश्चय किया ॥२४॥
आश्रयां	आश्रय		
सदृशीं भार्यां	अपने योग्य पत्नीके		

बन्धूनामिच्छतां दातुं कृष्णाय भगिनीं नृप ।
ततो निवार्य कृष्णद्विड रुक्मी चैद्यममन्यत ॥२५॥

बन्धूनां इच्छतां दातुं कृष्णाय भगिनीं नृप ततः निवार्य कृष्णद्विट् रुक्मी चैद्यं अमन्यत ॥२५॥

बन्धूनां	भाइयोंके	रुक्मी ततः	रुक्मी उनको
कृष्णाय	श्रीकृष्णको	निवार्य	रोककर
भगिनीं दातुं	बहिन देनेकी	चैद्यं अमन्यत	शिशुपालको योग्य मानने लगा ॥२५॥
इच्छतां	इच्छा करने पर		
कृष्णद्विट्	श्रीकृष्णका द्रोही		

तदवेत्यासितापाङ्गी वैदर्भी दुर्मना भृशम् ।
विचिन्त्याप्तं द्विजं कञ्चित् कृष्णाय प्राहिणोद् द्रुतम् ॥२६॥

तत् अवेत्य असित अपाङ्गी वैदर्भी दुर्मना भृशं विचिन्त्य आप्तं द्विजं कञ्चित् कृष्णाय प्राहिणोत् द्रुतम् ॥२६॥

तत् अवेत्य	इसे जानकर	वैदर्भी भृशं	रुक्मिणीने बहुत
असित अपाङ्गी	श्याम लोचना		

दुर्मना विचिन्त्य	उदास होकर सोचकर	द्रुतं कृष्णाय	शीघ्रता पूर्वक श्रीकृष्णके पास
कञ्चित् आप्तं	किसी विश्वसनीय	प्राहिणोत्	भेजा ॥२६॥
द्विजं	ब्राह्मणको		

द्वारकां स समभ्येत्य प्रतीहारैः प्रवेशितः ।
अपश्यदाद्यं पुरुषमासीनं कञ्चनासने ॥२७॥

द्वारकां स समभ्येत्य प्रतीहारैः प्रवेशितः अपश्यत् आद्यं पुरुषं आसीनं काञ्चन आसने

द्वारकां	द्वारिकामें	स आद्यं पुरुषं	उसने आदि पुरुष को
समभ्येत्य	पहुँच जाने पर		
प्रतीहारैः	द्वारपालों द्वारा	कञ्चन आसने	स्वर्ण सिंहासन-पर
प्रवेशितः	भीतर प्रवेश कराये जाने पर	आसीनं	बैठे
		अपश्यत्	देखा ॥२७॥

दृष्ट्वा ब्रह्मण्यदेवस्तमवरुह्य निजासनात् ।
उपवेश्यार्हयाञ्चक्रे यथाऽऽत्मानं दिवौकसः ॥२८॥

दृष्ट्वा ब्राह्मण्यदेवः तं अवरुह्य निज आसनात् उपवेश्य अर्हयान् चक्रे यथा आत्मानं दिवौकसः ॥२८॥

ब्रह्मण्यदेवः	ब्राह्मणोंको इष्ट देव मानने वाले भगवान्	यथा दिवौकसः आत्मानं	जैसे देवता उनकी अपनी (पूजा करते हैं वैसे)
तं दृष्ट्वा	उसे देखकर	अर्हयान् चक्रे	(उनकी) पूजा की ॥२८॥
निज आसनात्	अपने आसनसे		
अवरुह्य	उतरकर		

तं भुक्तवन्तं विश्रान्तमुपगम्य सतां गतिः ।
पाणिनाभिमृशन् पादावव्यग्रस्तमपृच्छत ॥२९॥

तं भुक्तवन्तं विश्रान्तं उपगम्य सतां गतिः पाणिना अभिमृशन् पादाः अव्यग्रः तं अपृच्छत ॥२६॥

तं भुक्तवन्तं	उनके भोजन करके	**पादाः**	पैर
विश्रान्तं	विश्राम कर लेने पर	**अभिमृशन्**	दबाते हुए
सतां गतिः	सत्पुरुषोंके परमगति (भगवान)	**अव्यग्रः**	बिना व्यग्रता (शान्त भावसे)
उपगम्य	उनके समीप जाकर	**तं अपृच्छत**	उनसे पूछने लगे ॥२६॥
पाणिना	अपने हाथसे (उनके)		

कच्चिद् द्विजवरश्रेष्ठ धर्मस्ते वृद्धसम्मतः ।
वर्तते नातिकृच्छ्रेण संतुष्टमनसः सदा ॥३०॥

कच्चित् द्विजवर श्रेष्ठ धर्मः ते वृद्धसम्मतः वर्तते न अतिकृच्छ्रेण संतुष्ट मनसः सदा ॥३०॥

श्रेष्ठ द्विजवर	उत्तम विप्रवर !	**मनसः**	चित्त रहते
ते	आपका	**कच्चित्**	कहीं
वृद्धसम्मतः	बड़ोंसे अनुमोदित	**न अतिकृच्छ्रेण**	बहुत कष्टसे तो नहीं
धर्मः	धर्म	**वर्तते**	पालन होता ॥३०॥
सदा सन्तुष्ट	सदा सन्तुष्ट		

संतुष्टो यर्हि वर्तेत ब्राह्मणो येन केनचित् ।
अहीयमानः स्वाद्धर्मात् स ह्यस्याखिलकामधुक् ॥३१॥

संतुष्टः यर्हि वर्तेत ब्राह्मणः येन केनचित् अहीयमानः स्वात् धर्मात् स हि अस्य अखिल काम धुक् ॥३१॥

यर्हि ब्राह्मणः	जब ब्राह्मण	**अहीयमानः**	च्युत हुए बिना
येन कित्चित्त	जो कुछ मिले उसीसे	**सन्तुष्टः वर्तेत**	सन्तुष्ट रहकर व्यवहार करे तो
स्वात् धर्मात्	अपने धर्मसे		

हि स अस्य	क्योंकि वही (धर्म) इसके लिये	अखिल काम	समस्त कामनाओं को
		धुक्	देनेवाला है ॥३१॥

असंतुष्टोऽसकृल्लोकानाप्नोत्यपि सुरेश्वरः ।
अकिञ्चनोऽपि संतुष्टः शेते सर्वाङ्गविज्वरः ॥३२॥

असन्तुष्टः असकृत् लोकान् आप्नोति अपि सुरेश्वरः अकिञ्चनः अपि सन्तुष्टः शेते सर्वाङ्ग विज्वरः ॥३२॥

सुरेश्वरः अपि	इन्द्र हो जाने पर भी	अकिञ्चनः	सर्वथा कुछ न होने पर भी
असन्तुष्टः	असन्तुष्ट रहने वाला	संतुष्टः	सन्तुष्ट रहने वाला
		सर्वाङ्ग विज्वरः	सब प्रकार संताप रहित
असकृत्	बार-बार		
लोकान्	अनेक लोकोंको	शेते	(आनन्दसे) सोता है ॥३२॥
आप्नोति	पाता (भटकता)है		

विप्रान् स्वलाभसंतुष्टान् साधून् भूतसुहृत्तमान् ।
निरहंकारिणः शान्तान् नमस्ये शिरसासकृत् ॥३३॥

विप्रान् स्वलाभ संतुष्टान् साधून् भूतसुहृत्तमान् निरहङ्कारिणः शान्तान् नमस्ये शिरसा असकृत् ॥३३॥

स्वलाभ	आत्मलाभमें	शान्तान् विप्रान्	शान्त स्वभाव ब्राह्मणोंको
संतुष्टान्	सन्तुष्ट,		
साधून्	साधु	असकृत्	बार-बार
भूतसुहृत्तमान्	प्राणियोंके परम-सुहृद्	शिरसा नमस्ये	मैं सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥३३॥
निरहङ्कारिणः	अहंकार रहित		

कच्चिद् वः कुशलं ब्रह्मन् राजतो यस्य हि प्रजाः ।
सुखं वसन्ति विषये पाल्यमानाः स मे प्रियः ॥३४॥

कच्चित् वः कुशलं ब्रह्मन् राजतः यस्य हि प्रजाः सुखं वसन्ति विषये पाल्यमानाः स मे प्रियः ॥३४॥

ब्रह्मन् कच्चित्	ब्रह्मन् ! कहीं	पाल्यमानाः	पालित होकर
राजतः	राजाकी ओरसे	प्रजाः सुखं	प्रजा सुख पूर्वक
वः कुशलं	आप लोगोंका कुशल तो है ?	वसन्ति	रहती है
हि यस्य विषये	क्योंकि जिसके राज्यमें	स मे प्रियः	वह (राजा) मुझे प्रिय है ॥३४॥

यतस्त्वमागतो दुर्गं निस्तीर्येह यदिच्छया ।
सर्वं नो ब्रूह्यगुह्यं चेत् किं कार्यं करवाम ते ॥३५॥

यतः त्वं आगतः दुर्गं निस्तीर्य इह यत् इच्छया सर्वं नः ब्रूहि गुह्यं चेत् किं कार्यं करवाम ते ॥३५॥

यतः यत्	जिसके लिए जिस	त्वं आगतः	आप आये
इच्छया	इच्छासे	गुह्यं चेत्	गुप्त हो तो भी
दुर्गं निस्तीर्य	कठिन (समुद्रकी खाई) मार्ग पार करके	सर्वं नः ब्रूहि	सब मुझसे बतलाइये
		इह	यहाँ
		ते किं कार्यं	आपका क्या कार्य
		करवाम	हम करें ॥३५॥

एवं सम्पृष्टसम्प्रश्नो ब्राह्मणः परमेष्ठिना ।
लीलागृहीतदेहेन तस्मै सर्वमवर्णयत् ॥३६॥

एवं सम्पृष्टे सम्प्रश्नः ब्राह्मणः परमेष्ठिना लीला गृहीत देहेन तस्मै सर्वं अवर्णयत् ॥३६॥

लीला	लीलाके लिए	परमेष्ठिना	परम विश्वविधायक द्वारा
गृहीत देहेन	शरीर धारण किये	एवं सम्प्रश्नः	इस प्रकारके प्रश्न

सम्पृष्टः	पूछने पर	सर्वं अवर्णयत्	सब वर्णन कर
ब्राह्मणः तस्मै	ब्राह्मणने उनसे		दिया ॥३६॥

॥ रुक्मिण्युवाच ॥

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते
निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम् ।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं
त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे ॥३७॥

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैः हरतः अङ्ग तापं रूपं दृशां दृशिमतां अखिल अर्थं लाभं त्वयि अच्युत आविशति चित्तं अपत्रपं मे ॥३७॥

भुवनसुन्दर	त्रिभुवन सुन्दर	दृशां अर्थं	नेत्रके प्रयोजनका
ते गुणान्	आपके गुण	अखिल लाभं	सभी लाभ देता है,
शृण्वतां	सुनने वालोके	श्रुत्वा अच्युत	इतना सुनकर हे
कर्णविवरैः	कर्ण कुहरोंमें		अच्युत
निर्विश्य	प्रवेश करके	मे अपत्रपं चित्तं	मेरा चित्त लज्जा-
अङ्ग तापं हरतः	(उसे) शरीरका		हीन होकर
	सब ताप दूर कर	त्वयि आविशति	आपमें प्रवेश करता
	देते हैं		(लगता) है ॥३७॥
रूपं दृशिमतां	और आपका रूप		
	नेत्र वालोंको		

का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूप-
विद्या वयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम् ।
धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या
काले नृसिंह नरलोकमनोऽभिरामम् ॥३८॥

का त्वा मुकुन्द महती कुल शील रूप विद्या वयः द्रविण धामभिः आत्मतुल्यं धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या काले नृसिंह नरलोक मनः अभिरामम् ॥३८॥

मुकुन्द	मुकुन्द !
कुल शील	कुल, सदाचार,
रूप विद्या	सौन्दर्य, विद्या,
वयः द्रविण	आयु, धन
धामभिः	तथा धामादिमें
आत्मतुल्यं	अपने ही समान
काले	आपको (विवाहका) समय आने पर
का कुलवती	कौन कुलीना
नृसिंह	हे पुरुषसिंह
नरलोक	सम्पूर्ण मनुष्य समाजके
मनः अभिरामं	मनको सुन्दर
त्वा धीरा कन्या	आपको धैर्यवती कन्या
पतिं वृणीत न	पति रूप से वरण नहीं करेगी ॥३८॥

तन्मे भवान् खलु वृतः पतिरङ्ग जाया
मात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि ।
मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्
गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष ॥३९॥

तत् मे भवान् खलु वृतः पतिः अङ्ग जायां आत्म अर्पितः च भवतः अत्र विभो विधेहि मा वीरभागं अभिमर्शतु चैद्य आरात् गोमायुवत् मृगपतेः बलिं अम्बुजाक्ष ॥३९॥

तत् मे खलु	अतः मैंने अहो
भवान् पति वृतः	आपको पतिरूपसे वरण कर लिया है
अङ्ग च	प्रियतम तथा
जायां आत्म	पत्नीरूपसे अपनेको
अर्पितः	समर्पित कर दिया,
विभो अत्र	प्रभो ! इस विषयमें
विधेहि	(अब आप) व्यवस्था करें,
अम्बुजाक्ष	कमल-लोचन !
मृगपतेः बलिं	सिंहको दिया उपहार

गोमायुवत्	सियारकी भांति	**अभिमर्शतु मा**	स्पर्श न कर सके
चैद्य आरात्	शिशुपाल पास आकर		॥३६॥

पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्र-
गुर्वर्चनादिभिरलं भगवान् परेशः ।
आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं
गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥४०॥

पूर्त इष्ट दत्त नियमव्रत देव विप्र गुरु अर्चन आदिभिः अलं भगवान् परेशः आराधितः यदि गद अग्रज एत्य पाणिं गृह्णातु मे न दमघोषसुत आदयः अन्ये ॥४०॥

पूर्त इष्ट	पूर्त (कूपादि निर्माण) इष्ट (यज्ञादि)	**गद अग्रज एत्य**	गदके बड़े भाई आकर
नियमव्रत	नियम पालन, व्रत,	**मे पाणि ग्रह्णातु**	मेरा पाग्रिहण करें
देव विप्र	देवता-ब्रह्मण,	**दमघोषसुत**	दमघोषके पुत्र शिशुपाल
गुरु अर्चन	गुरुजनोंकी पूजा		
आदिभिः	आदिसे	**आदयः अन्ये न**	आदि दूसरे न कर सकें ॥४०॥
यदि भगवान्	यदि भगवान		
परेशः अलं	परमेश्वरकी पर्याप्त		
आराधितः	(मैंने) आराधना की हो तो		

श्वोभाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान्
गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः ।
निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य
मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम् ॥४१॥

श्वः भाविनि त्वं अजित उद्वहने विदर्भान् गुप्तः सम एत्य पृतना पतिभिः परीतः निर्मथ्य चैद्य मगध इन्द्र बलं प्रसह्य मां राक्षसेन विधिना उद्वह वीर्यशुल्काम् ॥४१॥

अजित	अजित !
उद्वहने श्वः	विवाह कल
भाविनि	होने वाला हो तब
पृतना पतिभिः	सेनापतियोंसे
परीतः गुप्तः	घिरे सुरक्षित रूपसे
त्वं	आप
विदर्भान्	विदर्भ देशमें
सम एत्य	सहसा आकर
चैद्य मगध इन्द्र	शिशुपाल और मगधराजकी
बलं प्रसह्य	सेनाको बलपूर्वक
निर्मथ्य	मथकर
मां वीर्यशुल्कां	मुझ पराक्रमके मूल्य में मिलने वालीसे
राक्षसेन	राक्षस
विधिना	विधिसे
उद्वह	विवाह कीजिए ॥४१॥

अन्तःपुरान्तरचरीमनिहत्य बन्धूं-
स्त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम् ।
पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा
यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् ॥४२॥

अन्तःपुर अन्तरचरीं अनिहत्य बन्धून त्वां उद्वहे कथं इति प्रवदामि उपायं पूर्वेद्युः अस्ति महती कुलदेवि यात्रा यस्यां बहिः नववधूः गिरिजां उपेयात् ॥४२॥

अन्तःपुर	अन्तःपुरके
अन्तःचरीं त्वां	भीतर रहनेवाली तुमको
बन्धून् अनिहत्य	तुम्हारे सम्बन्धियों को मारे बिना
कथं उद्वहे	कैसे विवाह लूँ,
इति	यदि ऐसा कहो तो
उपायं प्रवदामि	उपाय बतलाती हूँ
पूर्वेद्युः	(विवाहसे) पहिले दिन
कुलदेवि	कुलदेवीकी
महती यात्रा	महान यात्रा होती
अस्ति	है,
यस्यां नववधूः	जिसमें नई होने वाली बहू
गिरिजां	पार्वतीजीके समीप
उपेयात्	(पूजा करने) जाती है ॥४२॥

यस्यांघ्रिपङ्कजरजःस्नपनं महान्तो
वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै ।
यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं
जह्यामसून् व्रतकृशाञ्छतजन्मभिः स्यात् ॥४३॥

यस्य अंघ्रि पङ्कजरजः स्नपनं महान्तः वाञ्छन्ति उमापतिः इव आत्मतमः उपहत्यै यर्हि अम्बुजाक्ष न लभेय भवत् प्रसादं जह्यां असून् व्रतकृशान् शतजन्मभिः स्यात् ॥४३॥

अम्बुजाक्ष	कमल-लोचन !	यर्हि भवत्	यदि आपकी यह
उमापतिः इव	पार्वती पतिके समान	प्रसादं	कृपा
		न लभेय	नहीं पास की तो
महान्तः	महापुरुष भी	व्रतकृशान्	व्रत करके शरीर सुखाकर
आत्मतमः	अपने अंतःकरणके		
उपहत्यै	अज्ञान नाशके लिए	असून् जह्यां	प्राण त्याग दूँगी
यस्य अंघ्रि	जिनके चरण-	शतजन्मभिः	(भले) सौ जन्मोंमें
पङ्कजरजः	कमल की धूलिमें	स्यात्	(यह कृपा) हो
स्नपनं	स्नान करना		॥४३॥
वाञ्छन्ति	चाहते हैं		

॥ ब्राह्मण उवाच ॥

इत्येते गुह्यसंदेशा यदुदेव मयाऽऽहृताः ।
विमृश्य कर्तुं यच्चात्र क्रियतां तदनन्तरम् ॥४४॥

इति एते गुह्या सन्देशा यदुदेव मया आहृताः विमृश्य कर्तुं यत् च अत्र क्रियतां तत् अनन्तरम् ॥४४॥

यदुदेव	यदुदेव !	गुह्या सन्देशा	गोपनीय सन्देश
इति एते	इस प्रकार ये	मया आहृतः	मैं लाया हूँ

अत्र विमृश्य	इस विषयमें विचार करके	**यत् च कर्तुं अनन्तरं तत् क्रियतां**	जो भी करणीय हो पीछे वह कीजिए ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिण्युद्वाहप्रस्तावे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

अथ त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

वैदर्भ्याः स तु सन्देशं निशम्य यदुनन्दनः ।
प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैदर्भ्याः स तु सन्देशं निशम्य यदुनन्दनः प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन् इदं अब्रवीत् ॥१॥

स वैदर्भ्याः	वह वैदर्भी (रुक्मिणी)का	**पाणिना पाणिं**	(अपने) हाथसे (ब्राह्मणका) हाथ
सन्देशं	सन्देश	**प्रगृह्य**	पकड़कर
निशम्य तु	सुनकर तो	**प्रहसन्**	हंसते हुए
यदुनन्दनः	यदुनन्दन श्रीकृष्ण	**इदं अब्रवीत्**	यह बोले ॥१॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

तथाहमपि तच्चित्तो निद्रां च न लभे निशि ।
वेदाहं रुक्मिणा द्वेषान्ममोद्वाहो निवारितः ॥ २ ॥

तथा अहं अपि तत् चित्तः निद्रां च न लभे निशि वेद अहं रुक्मिणा द्वेषात् मम उद्वाहः निवारितः ॥२॥

तथा अहं अपि	इसी प्रकार मेरा भी	**अहं वेद**	मैं जानता हूँ
तत् चित्तः	चित्त उन्हींमें लगा है	**द्वेषात् रुक्मिणा**	द्वेषवश रुक्मीने
च निशि निद्रां	और रातको नींद	**मम उद्वाहः**	मेरा विवाह
न लभे	नहीं ले पाता हूँ	**निवारितः**	रोक दिया है ॥ २ ॥

तामानयिष्य उन्मथ्य राजन्यापसदान् मृधे ।
मत्परामनवद्याङ्गीमेधसोऽग्निशिखामिव ॥ ३ ॥

तां आनयिष्य उन्मथ्य राजन्य अपसदान् मृधे मत्परां अनवद्य अङ्गीं मेधसः अग्निशिखां इव ॥३॥

तां मत्परां	उस मेरी परायणा	अपसदान्	अधम
अनवद्य अङ्गीं	अनिन्दिताङ्गी	राजन्य	राजाओंको
मेधसः	लकड़ीमेंसे	मृधे उन्मथ्य	युद्धमें मथकर
अग्निशिखां इव	अग्निशिखाके समान	आनयिष्य	ले आऊंगा ॥३॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

उद्वाहर्क्षं च विज्ञाय रुक्मिण्या मधुसूदनः ।
रथः संयुज्यतामाशु दारुकेत्याह सारथिम् ॥ ४ ॥

उद्वाह अर्क्षं च विज्ञाय रुक्मिण्या मधुसूदनः रथः संयुज्यतां आशु दारुक इति आह सारथिम् ॥४॥

रुक्मिण्या	रुक्मिणीका	सारथि	सारथीसे
उद्वाह अर्क्षं च	विवाह नक्षत्र भी	इति आह	यह कहा
विज्ञाय	जानकर	दारुक आशु	दारुक शीघ्र
मधुसूदनः	मधुसूदनने	रथः संयुज्यतां	रथ जोड़ो ! ॥४॥

स चावैः शैव्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः ।
युक्तं रथमुपानीय तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥ ५ ॥

स च अश्वैः शैव्य सुग्रीव मेघपुष्प बलाहकैः युक्तं रथं उप आनीय तस्थौ प्राञ्जलिः अग्रतः ॥५॥

स च	वह भी	मेघपुष्प	मेघपुष्प,
शैव्य सुग्रीव	शैव्य, सुग्रीव,	बलाहकैः	बलाहक नामक

अश्वैः युक्तं	घोड़ेसे जुते रथको	तस्थौ	खड़ा हो गया ॥५॥
उप आनीय	समीप लाकर		
अग्रतः	सामने		
प्राञ्जलिः	हाथ जोड़कर		

आरुह्य स्यन्दनं शौरिर्द्विजमारोप्य तूर्णगैः ।
आनर्त्तादेकरात्रेण विदर्भानगमद्धयैः ॥ ६ ॥

आरुह्य स्यन्दनं शौरिः द्विजं आरोप्य तूर्णगैः आनर्त्तात् एक रात्रेण विदर्भान् अगमत् हयैः ॥६॥

शौरिः	श्रीकृष्णने	हयैः आनर्त्तात्	घोड़ों द्वारा आनर्त्त प्रान्तसे
द्विजं आरोप्य	उस ब्राह्मणको चढ़ाकर	एक रात्रेण	एक ही रातमें
तूर्णगैः स्यन्दनं	शीघ्रगामी (उस) रथपर	विदर्भान्	विदर्भ
आरुह्य	चढ़कर	अगमत्	पहुँच गये ॥६॥

राजा स कुण्डिनपतिः पुत्रस्नेहवशं गतः ।
शिशुपालाय स्वां कन्यां दास्यन् कर्माण्यकारयत् ॥७॥

राजा स कुण्डिनपतिः पुत्रस्नेह वशं गतः शिशुपालाय स्वां कन्यां दास्यन् कर्माणि अकारयत् ॥७॥

पुत्रस्नेह	पुत्र प्रेमके	शिशुपालाय	शिशुपालको
वशं गतः	वशमें होकर	दास्यन्	देनेके लिए
स कुण्डिनपतिः	वे कुण्डिन् पति	कर्माणि	(वैवाहिक) कर्म
राजा	राजा भीष्मक	अकारयत्	करवाने लगे ॥७॥
स्वां कन्यां	अपनी पुत्री		

पुरं सम्मृष्टसंसिक्तमार्गरथ्याचतुष्पथम् ।
चित्रध्वजपताकाभिस्तोरणैः समलंकृतम् ॥ ८ ॥

पुरं सम्मृष्ट संसिक्त मार्ग रथ्या चतुष्पथं चित्रध्वज पताकाभिः तोरणैः सम् अलंकृतम् ॥८॥

पुरं सम्मृष्ट	नगर स्वच्छ किया गया;	चित्रध्वज	अनेक प्रकारके ध्वज,
मार्ग रथ्या	रास्ते, रथ चलनेकी सड़कें,	पताकाभिः	झडों तथा
चतुष्पथं	चौराहे	तोरणैः	वन्दनवारोंसे
संसिक्त	भली प्रकार छिड़के गये,	सम् अलंकृतं	खूब सजाया गया ॥८॥

स्रग्गन्धमाल्याभरणैर्विरजोऽम्बरभूषितैः ।
जुष्टं स्त्रीपुरुषैः श्रीमद्गृहैरगुरुधूपितैः ॥ ९ ॥

स्रक् गन्ध माल्य आभरणैः विरजः अम्बर भूषितैः जुष्टं स्त्री पुरुषैः श्रीमत् गृहैः अगुरु धूपितैः ॥९॥

स्रक् गन्ध	माला, चन्दन,	जुष्टं श्रीमत्	युक्त सम्पन्न
माल्य आभरणैः	हारादि आभूषणोंसे	गृहैः	भवन
विरजः अम्बर	निर्मल वस्त्रोंसे	अगुरु धूपितैः	अगुरुकी धूप युक्त थे ॥९॥
भूषितैः	आभूषित		
स्त्री पुरुषैः	स्त्री-पुरुषोंसे		

पितॄन् देवान् समभ्यर्च्य विप्रांश्च विधिवन्नृप ।
भोजयित्वा यथान्यायं वाचयामास मङ्गलम् ॥१०॥

पितृन देवान् तम अभ्यर्च्य विप्रान् च विधिवत् नृप भोजयित्वा यथा न्यायं वाचयामास मङ्गलम् ॥१०॥

नृप	राजा भीष्मकने	च विप्रान्	तथा ब्राह्मणकी
पितॄन् देवान्	पितरों, देवताओंकी	विधिवत्	विधिपूर्वक

सम अभ्यर्च्य	भली प्रकार पूजा करके	मङ्गलं वाचयामास	स्वस्ति- वाचन करया ॥१०॥
यथा न्यायं	नियमानुसार		
भोजयित्वा	(ब्राह्मणोंको) भोजन कराके		

सुस्नातां सुदतीं कन्यां कृतकौतुकमङ्गलाम् ।
अहतांशुकयुग्मेन भूषितां भूषणोत्तमैः ॥११॥

सुस्नातां सुदतीं कन्यां कृत कौतुक मङ्गलां अहत अंशुक युग्मेन भूषितां भूषण उत्तमैः ॥११॥

सुस्नातां	भली प्रकार स्नान करके	युग्मेन	दो बिना सिले और
		अहत अंशुक	फाड़े वस्त्रोंसे तथा
मङ्गलां	मंङ्गल	उत्तमैः भूषणैः	उत्तम आभूषणोंसे
कृत कौतुक	कृत्य सम्पन्ना (विवाह सूत्र आदि)	भूषितां	आभूषितां
		सुदतीं कन्यां	उस सुन्दर दाँतों वाली कन्या ॥११॥

चक्रुः सामर्ग्यजुर्मन्त्रैर्वध्वा रक्षां द्विजोत्तमाः ।
पुरोहितोऽथर्ववित् वै जुहाव ग्रहशान्तये ॥१२॥

चक्रुः सामऋक् यजुः मन्त्रैः वध्वा रक्षां द्विज उत्तमाः पुरोहितः अथर्ववित् वै जुहाव ग्रहशान्तये ॥१२॥

वध्वा	नव-वधूकी	अथर्ववित्	अथर्ववेदके ज्ञाता
द्विज उत्तमाः	श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने	पुरोहितः	पुरोहितने
सामऋक्	सामवेद, ऋग्वेद,	वै ग्रहशान्तये	निश्चित रूपे ग्रह- शान्तिके लिए
यजुः मन्त्रैः	यजुर्वेदके मन्त्रोंसे		
रक्षां चक्रुः	रक्षा की और	जुहाव	हवन किया ॥१२॥

हिरण्यरूप्यवासांसि तिलांश्च गुडमिश्रितान् ।
प्रादाद् धेनूश्च विप्रेभ्यो राजा विधिविदां वरः ॥१३॥

हिरण्य रूप्य वासांसि तिलं च गुडमिश्रितान् प्रादात् धेनूः च विप्रेभ्यः राजा विधिविदां वरः ॥१३॥

विधिविदां वरः	विधान जानने वालों में श्रेष्ठ	वासांसि	वस्त्र
		च गुडमिश्रितान्	तथा गुड़ मिला
राजा	राजा (भीष्मक)ने	तिलं च धेनूः	तिल और गायें
विप्रेभ्यः	ब्राह्मणोंको	प्रादात्	प्रदान कीं ॥१३॥
हिरण्य रूप्य	सोना, चाँदी,		

एवं चेदिपती राजा दमघोषः सुताय वै ।
कारयामास मन्त्रज्ञैः सर्वमभ्युदयोचितम् ॥१४॥

एवं चेदिपती राजा दमघोषः सुताय वै कारयामास मन्त्रज्ञैः सर्वं अभ्युदय उचितम् ॥१४॥

एवं चेदिपती	इसी प्रकार चेदिनरेश	सुताय सर्वं	पुत्रके लिए सब
		अभ्युदय उचितं	अभ्युदयके समयके योग्य
राजा दमघोषः	राजा दमघोषने		
वैमन्त्रज्ञैः	निश्चित मन्त्रज्ञों द्वारा	कारयामास	कर्म करवाये॥१४॥

मदच्युद्भिर्गजानीकैः स्यन्दनैर्हेममालिभिः ।
पत्त्यश्वसंकुलैः सैन्यैः परीतः कुण्डिनं ययौ ॥१५॥

मदच्युत्भिः गज अनीकैः स्यन्दनैः हेममालिभिः पत्ति अश्व संकुलैः सैन्यैः परीतः कुण्डिनं ययौ ॥१५॥

मदच्युत्भिः	मद टपकने वाले	संकुलैः सैन्यैः	भरी हुई सेनासे
गज अनीकैः	गज सेनाके	परीतः	घिरे हुए
हेममालिभिः	स्वर्ण मालाओं वाले	कुण्डिनं ययौ	कुण्डिनपुर गये ॥१५॥
स्यन्दनैः	रथोंसे,		
पत्ति अश्व	पैदल, घोड़ोंसे		

तं वै विदर्भाधिपतिः समभ्येत्याभिपूज्य च ।
निवेशयामास मुदा कल्पितान्यनिवेशने ॥१६॥

तं वै विदर्भ अधिपतिः सम अभि एत्य अभिपूज्य च निवेशयामास मुदा कल्पित अन्य निवेशने ॥१६॥

विदर्भ	विदर्भराज	**कल्पित अन्य**	बनाये हुए दूसरे
अधिपतिः	भीष्मक	**निवेशने**	आवासमें
तं वै	उनके	**मुदा**	आनन्दपूर्वक
सम अभि एत्य	निश्चित आगे आकर	**निवेशयामास**	ठहरा दिया ॥१६॥
च अभिपूज्य	तथा सत्कार करके		

तत्र शाल्वो जरासन्धो दन्तवक्त्रो विदूरथः ।
आजग्मुश्चैद्यपक्षीयाः पौण्ड्रकाद्याः सहस्रशः ॥१७॥

तत्र शाल्वः जरासन्धः दन्तवक्त्रः विदूरथः आजग्मुः चैद्य पक्षीयाः पौण्ड्रक आद्याः सहस्रशः ॥१७॥

तत्र चैद्य	वहाँ शिशुपालके	**विदूरथः**	विदूरथ,
पक्षीयाः	पक्षके	**पौण्ड्रक आद्याः**	पौण्ड्रक आदि
शाल्वः	शाल्व,	**सहस्रशः**	सहस्रों (राजा)
जरासन्धः	जरासन्ध,	**आजग्मुः**	आये ॥१७॥
दन्तवक्त्रः	दन्तवक्त्र,		

कृष्णरामद्विषो यत्ताः कन्यां चैद्याय साधितुम् ।
यद्यागत्य हरेत् कृष्णो रामाद्यैर्यदुभिर्वृतः ॥१८॥

कृष्णराम द्विषः यत्ताः कन्यां चैद्याय साधितुं यदि आगत्य हरेत् कृष्णः राम आद्यैः यदुभिः वृतः ॥१८॥

कृष्णराम	श्रीकृष्ण-बलरामके	**कन्यां साधितुं**	कन्या दिलानेको
द्विषः चैद्याय	ये द्वेषी शिशुपाल को	**यत्ताः**	उद्यत होकर आये थे

यदि रामाद्यैः 'यदि बलराम आदि
यदुभिः वृतः यादवोंसे घिरे
कृष्णः आगत्य श्रीकृष्ण आकर
हरेत् (कन्या) हरण करेंगे ॥१८॥

योत्स्यामः संहतास्तेन इति निश्चितमानसाः ।
आजग्मुर्भूभुजः सर्वे समग्रबलवाहनाः ॥१९॥

यात्स्यामः सहताः तेन इति निश्चित मानसाः आजग्मुः भूः भुजः सर्वे समग्र बलवाहनाः ॥१९॥

तेन उनके साथ
संहताः हम सब मिलकर
योत्स्यामः लड़ेंगे'
इति ऐसा
निश्चित मानसाः मनमें निश्चय करके
समग्र पूरी सेना
बलवाहनाः और वाहनोंके साथ
सर्वे भूः भुजः वे सब राजा लोग
आजग्मुः चारों ओरसे आये ॥१९॥

श्रुत्वैतद भगवान् रामो विपक्षीयनृपोद्यमम् ।
कृष्णं चैकं गतं हर्तुं कन्यां कलहशङ्कितः ॥२०॥

श्रुत्वा एतत् भगवान् रामः विपक्षीय नृप उद्यमं कृष्णं च एकं गतं हर्तुं कन्यां कलह शङ्कितः ॥२०॥

भगवान् रामः भगवान बलरामने
एतत् विपक्षीय यह विरुद्ध पक्षके
नृप उद्यमं राजाओंका उद्योग
च कन्यां हर्तुं तथा कन्या-हरणके लिए
एकं कृष्णं गतं अकेले श्रीकृष्णको गया
श्रुत्वा कलह सुनकर झगड़ेकी
शङ्कितः आशंकासे ॥२०॥

बलेन महता सार्धं भ्रातृस्नेहपरिप्लुतः ।
त्वरितः कुण्डिनं प्रागाद् गजाश्वरथपत्तिभिः ॥२१॥

बलेन महता सार्धं भ्रातृस्नेह परिप्लुतः त्वरितः कुण्डिनं प्रागात् गज अश्व रथ पत्तिभिः ॥२१॥

भ्रातृस्नेह	भाईके स्नेहमें	सार्धं	साथ
परिप्लुतः	डूबकर	त्वरितः	शीघ्रता पूर्वक
गज अश्व	हाथी, घोड़े	कुण्डिनं प्रागात्	कुण्डिनपुरको
रथ पत्तिभिः	रथ, पैदलोंकी (चतुरंगिणी)		प्रस्थान कर दिया ॥२१॥
महता बलेन	भारी सेनाके		

भीष्मकन्या वरारोह काङ्क्षन्त्यागमनं हरेः ।
प्रत्यापत्तिमपश्यन्ती द्विजस्याचिन्तयत्तदा ॥२२॥

भीष्मकन्या वरारोह काङ्क्षन्ति आगमनं हरेः प्रत्यापत्ति अपश्यन्ती द्विजस्य अचिन्तयत् तदा ॥२२॥

वरारोहा	सुन्दरी	तदा द्विजस्य	उस समय उस ब्राह्मणका
भीष्मकन्या	राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणी	प्रत्यापत्ति	वापस आना
हरेः आगमनं	श्रीकृष्णके आगमन की	अपश्यन्ती	न देखकर
काङ्क्षन्ती	इच्छा करती हुई	अचिन्तयत्	सोचने लगी ॥२२॥

अहो त्रियामान्तरित उद्वाहो मेऽल्पराधसः ।
नागच्छत्यरविन्दाक्षो नाहं वेद्म्यत्र कारणम् ।
सोऽपि नावर्ततेऽद्यापि मत्संदेशहरो द्विजः ॥२३॥

अहो त्रियामा अन्तरितः उद्वाहः मे अल्पराधसः न आगच्छति अरविन्दाक्षः न अहं वेद्मि अत्र कारणं सः अपि न आवर्तते अद्य अपि मत् सन्देशहरः द्विजः ॥२३॥

अहो मे	अहो मुझ
अल्पराधसः	मन्द भाग्यके
उद्वाहः	विवाहको
त्रियामा	तीन ही रात
अन्तरितः	बीचमें हैं, पर
अरविन्दाक्षः	कमलनयन
न आगच्छति	नहीं आ रहे हैं
अत्र कारणं	इसका कारण
अहं न वेद्मि	मैं नहीं जानती
सः मत्	वह मेरा
सन्देशहरः	सन्देश ले जाने वाले
द्विजः अपि	ब्राह्मण भी
अद्य न आवर्तते	आज तक नहीं लौटे ॥२३॥

अपि मय्यनवद्यात्मा दृष्ट्वा किञ्चिज्जुगुप्सितम् ।
मत्पाणिग्रहणे नूनं नायाति हि कृतोद्यमः ॥२४॥

अपि मयि अनवद्य आत्मा दृष्ट्वा किञ्चित् जुगुप्सितं मत् पाणिग्रहणे नूनं न आयाति हि कृत उद्यमः ॥२४॥

अनवद्य आत्मा	अनिन्दितात्मा भगवान्
नूनं मयि	अवश्य मुझमें
हि	भी
किञ्चित्	कुछ
जुगुप्सितं	निन्दनीय दोष
दृष्ट्वा अपि	देखकर ही
मत् पाणिग्रहणे	मेरे पाणिग्रहणके लिए
कृत उद्यमः	प्रयत्न करके
न आयाति	नहीं आ रहे हैं ॥२४॥

दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः ।
देवी वा विमुखा गौरी रुद्राणी गिरिजा सती ॥२५॥

दुर्भगया न मे धाता न अनुकूलः महेश्वरः देवी वा विमुखा गौरी रुद्राणी गिरिजा सती ॥२५॥

मे दुर्भगाया	मुझ अभागिनीके
न धाता	न विधाता
न महेश्वरः	न शंकरजी ही
अनुकूलः	अनुकूल हैं
वा देवी गौरी	अथवा देवी गौरी
रुद्राणी गिरिजा	रुद्राणी गिरिजा
सती विमुखा	सती अप्रसन्न हो गयी है ॥२५॥

एवं चिन्तयती बाला गोविन्दहृतमानसा ।
न्यमीलयत कालज्ञा नेत्रे चाश्रुकलाकुले ॥२६॥

एवं चिन्तयती बाला गोविन्द हृतमानसा न्यमीलयत कालज्ञा नेत्रे च अश्रुकला आकुले ॥२६॥

गोविन्द	गोविन्दने
हृतमानसा	जिसका चित्त चुरा लिया है उस
कालज्ञा	समयको जानने वाली
बाला	राजकुमारीने
एवं चिन्तयती	इस प्रकार चिन्ता करते हुए
अश्रुकला	अश्रु
आकुले	विह्वल
नेत्रे च	नेत्रोंको ही
न्यमीलयत	बन्द कर लिया ॥२६॥

एवं वध्वाः प्रतीक्षन्त्या गोविन्दागमनं नृप ।
वाम ऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन् प्रियभाषिणः ॥२७॥

एवं वध्वाः प्रतीक्षन्त्या गोविन्द आगमनं नृप वाम ऊरुः भुजः नेत्रं अस्फुरन् प्रियभाषिणः ॥२७॥

नृप	राजन् !
वध्वा एवं	नववधू रुक्मिणीके इस प्रकार
गोविन्द	गोविन्दके
आगमनं	आगमनकी
प्रतीक्षन्त्या	प्रतीक्षा करते समय
प्रियभाषिणः	प्रिय कहने (सूचित करने) वाले
वाम उरुः	बायीं जांघ,
भुजः नेत्रं	भुजा और नेत्र
अस्फुरन्	फड़के ॥२७॥

अथ कृष्णविनिर्दिष्टः स एव द्विजसत्तमः ।
अन्तःपुरचरीं देवीं राजपुत्रीं ददर्श ह ॥२८॥

अथ कृष्ण विनिर्दिष्टः स एव द्विजसत्तमः अन्तःपुरचरीं देवीं राजपुत्रीं ददर्श ह ॥२८॥

अथ कृष्ण	फिर श्रीकृष्णका	अन्तःपुरचरीं	अन्तःपुरमें घूमती
विनिर्दिष्ट	भेजा	देवीं राजपुत्रीं	देवी राजपुत्रीको
ह स एव	निश्चय वही	ददर्श	दीखे ॥२८॥
द्विजसत्तमः	ब्राह्मण श्रेष्ठ		

सा तं प्रहृष्टवदनमव्यग्रात्मगतिं सती ।
आलक्ष्य लक्षणाभिज्ञा समपृच्छच्छुचिस्मिता ॥२९॥

सा तं प्रहृष्ट वदनं अव्यग्र आत्मगतिं सती आलक्ष्य लक्षण अभिज्ञा सम पृच्छत् शुचि स्मिता ॥२९॥

सा लक्षण	वह लक्षणोंको	आत्मगतिं	अपने पास आयेसे
अभिज्ञा	जानने वाली	शुचि स्मिता	पवित्र मुस्कान युक्त ने
सती तं	साध्वी उनको		
प्रहृष्ट वदनं	प्रसन्न मुख	सम पृच्छत्	समाचार पूछा ॥२९॥
अव्यग्र	स्थिर भावसे		

तस्या आवेदयत् प्राप्तं शशंस यदुनन्दनम् ।
उक्तं च सत्यवचनमात्मोपनयनं प्रति ॥३०॥

तस्या आवेदयत् प्राप्तं शशंस यदुनन्दनं उक्तं च सत्य वचनं आत्म उपनयनं प्रति ॥३०॥

तस्या प्राप्तं	उससे आये हुए	सत्यवचनं	सच्ची प्रतिज्ञा
यदुनन्दनं	यदुनन्दनकी	उक्तं आवेदयत्	की थी उसे सुना दिया ॥३०॥
शशंस	प्रशंसा की		
च	तथा		
आत्मउपनयनं	उन्हें अपनेको ले जानेकी		

तमागतं समाज्ञाय वैदर्भी हृष्टमानसा ।
न पश्यन्ती ब्राह्मणाय प्रियमन्यन्ननाम सा ॥३१॥

तं आगतं समाज्ञाय वैदर्भी हृष्टमानसा न पश्यन्ती ब्राह्मणाय प्रियं अन्यत् न नाम सा ॥३१॥

तं आगतं	उनको आया	ब्राह्मणाय	ब्राह्मणके लिए
समाज्ञाय	भली प्रकार जानकर	अत्यत् प्रियं	दूसरा कुछ प्रिय
		न पश्यन्ती	नहीं देखकर
हृष्टमानसा	प्रसन्न चित्ता	सा न नाम	उसने नमस्कार
वैदर्भी	रुक्मिणीने		किया ॥३१॥

प्राप्तौ श्रुत्वा स्वदुहितुरुद्वाहप्रेक्षणोत्सुकौ ।
अभ्ययात्तूर्यघोषेण रामकृष्णौ समर्हणैः ॥३२॥

प्राप्तौ श्रुत्वा स्वदुहितः उद्वाह प्रेक्षण उत्सुकौ अभ्ययात् तूर्य घोषेण रामकृष्णौ समर्हणैः ॥३२॥

स्वदुहितुः	अपनी पुत्रीके	तूर्य घोषेण	तुरही नादके साथ
उद्वाह	विवाहको	समर्हणैः	पूजा सामग्रीके साथ
प्रेक्षण उत्सुकौ	देखनेको उत्सुक		
रामकृष्णौ	बलराम-श्रीकृष्ण को	अभ्ययात्	(राजाने) अगवानी की ॥३२॥
प्राप्तौ श्रुत्वा	आया सुनकर		

मधुपर्कमुपानीय वासांसि विरजांसि सः ।
उपायनान्यभीष्टानि विधिवत् समपूजयत् ॥३३॥

मधुपर्कं उपानीय वासांसि विरजांसि सः उपायनानि अभीष्टानि विधिवत् समपूजयत् ॥३३॥

मधुपर्कं	मधुपर्क,	वासांसि	वस्त्र
विरजांसि	निर्मल	अभीष्टानि	अभीष्ट

उपायनानि	उपहार	समपूजयत्	भली प्रकार पूजा की ॥३३॥
उपानीय	समीप लाकर		
सः विधिवत्	उन्होंने विधिपूर्वक		

तयोर्निवेशनं श्रीमदुपकल्प्य महामतिः ।
ससैन्ययोः सानुगयोरातिथ्यं विदधे यथा ॥३४॥

तयोः निवेशनं श्रीमत् उपकल्प्य महामतिः ससैन्ययोः स अनुगयोः आतिथ्यं विदधे यथा ॥३४॥

महामतिः	परम बुद्धिमान (राजा)ने	श्रीमत् निवेशनं	शोभायुक्त आवास
		उपकल्प्य	देकर
तयोः	उन दोनोंको	यथा आतिथ्यं	यथा योग्य अतिथि सत्कार
ससैन्ययोः	सेनाके साथ		
स अनुगयोः	अनुचरोंके साथ	विदधे	किया ॥३४॥

एवं राज्ञां समेतानां यथावीर्यं यथावयः ।
यथाबलं यथावित्तं सर्वैः कामैः समर्हयत् ॥३५॥

एवं राज्ञां सम एतानां यथा वीर्यं यथा वयः यथा बलं यथा वित्तं सर्वैः कामैः सम अर्हयत् ॥३५॥

एवं सम एतानां	इसी प्रकार सब ओरसे आये	यथा बलं	सेनाके अनुसार,
		यथा वित्तं	धनके अनुसार
राज्ञां	राजाओंका	सर्वैः कामैः	सब भोग देकर
यथा वीर्यं	उनके पराक्रमके अनुसार	सम अर्हयत्	भली प्रकार सत्कृत किया ॥३५॥
यथा वयः	आयुके अनुसार		

कृष्णमागतमाकर्ण्य विदर्भपुरवासिनः ।
आगत्य नेत्रोञ्जलिभिः पपुस्तन्मुखपङ्कजम् ॥३६॥

कृष्णं आगतं आकर्ण्य विदर्भपुर वासिनः आगत्य नेत्र अञ्जलिभिः पपुः तत् मुखपङ्कजम् ॥३६॥

कृष्णं आगतं	श्रीकृष्णको आया	नेत्र अञ्जलिभिः	नेत्रों रूपी अञ्जलियोंसे
आकर्ण्य	सुनकर	तत् मुखपङ्कजं	उनके मुख-कमलको
विदर्भपुर	विदर्भ नगरके	पपुः	पीने लगे ॥३६॥
वासिनः	निवासी		
आगत्य	आकर		

अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा ।
असावप्यनवद्यात्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः ॥३७॥

अस्य एव भार्या भवितुं रुक्मिणि अर्हति न अपरा असाः अपि अनवद्य आत्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः ॥३७॥

रुक्मिणि	(परस्पर कहने लगे) रुक्मिणी	असाः	ये
		अनवद्य आत्मा	अनिन्दित आत्मा
अस्य एव	इनकी ही	अपि	भी
भार्या भवितुं	पत्नी होने	भैष्म्याः	भीष्मक-नन्दिनीके
अर्हति	योग्य है,	समुचितः पतिः	अत्यन्त योग्य पति हैं ॥३७॥
अपरा न	दूसरी कोई (कन्या) नहीं,		

किंचित्सुचरितं यन्नस्तेन तुष्टस्त्रिलोककृत् ।
अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिमच्युतः ॥३८॥

किञ्चित् सुचरितं यत् नः तेन तुष्टः त्रिलोककृत् अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिं अच्युतः ॥३८॥

यत् नः	जो हमने	सुचरितं	उत्तम काम किये हों
किञ्चित्	कुछ		

त्रिलोककृत	तीनों लोकोंके कर्त्ता विधाता	अच्युतः	श्रीकृष्ण
		वैदर्भ्याः	विदर्भ-नन्दिनीका
तेन तुष्टः	उससे सन्तुष्ट होकर	पाणिं गृह्णातु	पाणि-ग्रहण करें ॥३८॥
अनुगृह्णातु	अनुग्रह करें कि		

एवं प्रेमकलाबद्धा वदन्ति स्म पुरौकसः ।
कन्या चान्तःपुरात् प्रागाद् भटैर्गुप्ताम्बिकालयम् ।३९।

एवं प्रेमकलाबद्धा वदन्ति स्म पुरौकसः कन्या च अन्तःपुरात् प्रागात् भटैः गुप्ता अम्बिका आलयम् ॥३९॥

प्रेमकलाबद्धा	स्नेह-बन्धनसे बँधे	भटैः गुप्ता	सैनिकोंसे सुरक्षित
पुरौकसः	नगरवासी लोग	अम्बिका	देवी-
एवं वदन्ति स्म	इसी प्रकार कहते थे	आलयं	मन्दिरको
कन्या च	कन्या भी	प्रागात्	चली ॥३९॥
अन्तःपुरात्	अन्तःपुरसे		

पद्भ्यां विनिर्ययौ द्रष्टुं भवान्याः पादपल्लवम् ।
सा चानुध्यायती सम्यङ्मुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥४०॥

पद्भ्यां विनिर्ययौ द्रष्टुं भवान्याः पादपल्लवं सा च अनुध्यायती सम्यक् मुकुन्द चरणाम्बुजम् ॥४०॥

भवान्याः	भवानीके	मुकुन्द	मुकुन्दके
पादपल्लवं	चरण पल्लवोंका	चरणाम्बुजं	चरण-कमलोंका
द्रष्टुं पद्भ्यां	दर्शन करनेके लिए पैदल	अनुध्यायती	ध्यान करती हुए
		विनिर्ययौ	बाहर निकली ॥४०॥
सा च सम्यक्	वह भी भली प्रकार		

यतवाङ्मातृभिः सार्धं सखीभिः परिवारिता ।
गुप्ता राजभटैः शूरैः सन्नद्धैरुद्यतायुधैः ।
मृदङ्गशङ्खपणवास्तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥४१॥

यत वाक् मातृभिः सार्धं सखीभिः परिवारिता गुप्ता राजभटैः शूरैः सन्नद्धैः उद्यत आयुधैः मृदङ्ग शङ्ख पणवाः तूर्य भेर्यः च जघ्निरे ॥४१॥

यत वाक्	मौन होकर
मातृभिः सार्धं	माताओंके साथ
सखीभिः	सखियों द्वारा
परिवारिता	चारो ओरसे घिरी
सन्नद्धैः	कवच पहिने
उद्यत आयुधैः	शस्त्र उठाये
शूरैः राजभटैः	शूर राजसैनिकों द्वारा
गुप्ता	रक्षिता (तब)
मृदङ्ग शङ्ख	मृदंग, शंख,
पणवाः तूर्य	नगाड़े, तुरहियां
च भेर्यः जघ्निरे	और भेरियां बजायी जाने लगीं ॥४१॥

नानोपहारबलिभिर्वारमुख्याः सहस्रशः ।
स्रग्गन्धवस्त्राभरणैर्द्विजपत्न्यः स्वलंकृताः ॥४२॥

नाना उपहार बलिभिः वारमुख्याः सहस्रशः स्रक् गन्ध वस्त्र आभरणैः द्विजपत्न्यः स्वलङ्कृताः ॥४२॥

नाना उपहार	अनेक प्रकारकी भेंट
बलिभिः	पूजा-सामग्रीके साथ
स्रक् गन्ध	माला-चन्दन
वस्त्र आभरणैः	वस्त्राभूषणोंसे
स्वलङ्कृताः	आभूषिता
द्विजपत्न्यः	ब्राह्मणोंकी पत्नियां
सहस्रशः	सहस्रों
वारमुख्याः	वारवधुमें ॥४२॥

गायन्तश्च स्तुवन्तश्च गायका वाद्यवादकाः ।
परिवार्य वधूं जग्मुः सूतमागधवन्दिनः ॥४३॥

गायन्तः च स्तुवन्तः च गायका वाद्यवादकाः परिवार्य वधूं जग्मुः सूत मागध वन्दिनः ॥४३॥

सूत मागध वन्दिनः	सूत, मागध, वन्दी	**गायन्तः**	गाते,
च गायका	तथा दूसरे गायक	**स्तुवन्तः**	स्तुति करते
च वाद्य वादकाः	एवं बाजा बजाने वाले	**वधूं परिवार्य**	नववधूको घेरकर
		जग्मुः	चले ॥४३॥

आसाद्य देवीसदनं धौतपादकराम्बुजा ।
उपस्पृश्य शुचिः शान्ता प्रविवेशाम्बिकान्तिकम् ॥४४॥

आसाद्य देवीसदनं धौत पाद कराम्बुजा उपस्पृश्य शुचिः शान्ता प्रविवेश अम्बिका अन्तिकम् ॥४४॥

देवीसदनं	देवी-मन्दिर	**शुचिः शान्ता**	पवित्र होकर शान्त भावसे
आसाद्य	पहुँचकर		
पाद	पैर	**अम्बिका**	अम्बिका देवीके
धौत कराम्बुजा	कर कमलोंको धोकर	**अन्तिकं**	समीप
		प्रविवेश	प्रवेश किया ॥४४॥
उपस्पृश्य	आचमन करके		

तां वै प्रवयसो बालां विधिज्ञा विप्रयोषितः ।
भवानीं वन्दयाञ्चक्रुर्भवपत्नीं भवान्विताम् ॥४५॥

तां वै प्रवयसः बालां विधिज्ञा विप्रयोषितः भवानीं वन्दयान् चक्रुः भवपत्नीं भव अन्वितां ॥४५॥

तां वै विधिज्ञा	उनसे निश्चित विधि जानने वाली	**भवपत्नीं**	शिवप्रिय
		भवानीं	भवानीकी
प्रवयसः	वृद्धा	**वन्दयान् चक्रुः**	वन्दना करवायी ॥४५॥
विप्रयोषितः	ब्राह्मणियोंने		
भव अन्वितां	शंकरजीके साथ		

नमस्ये त्वाम्बिकेऽभीक्ष्णं स्वसन्तानयुतां शिवाम् ।
भूयात् पतिर्मे भगवान् कृष्णस्तदनुमोदताम् ॥४६॥

नमस्ये त्वां अम्बिके अभीक्ष्णं स्वसन्तान युतां शिवां भूयात् पतिः मे भगवान् कृष्णः तत् अनुमोदताम् ॥४६॥

अम्बिके	'अम्बिके !	मे पतिः	मेरे पति
स्वसन्तान युतां	अपने पुत्र गणेशजी के साथ	भगवान् कृष्णः	भगवान श्रीकृष्ण
		भूयात्	होवें
त्वां शिवां	आप कल्याण-दायिनीको	तत् अनुमोदतां	आप इसका अनुमोदन करें ॥४६॥
अभीक्ष्णं नमस्ये	बार-बार नमस्कार करती हूँ,		

अद्भिर्गन्धाक्षतैर्धूपैर्वासःस्रङ्माल्यभूषणैः ।
नानोपहारबलिभिः प्रदीपावलिभिः पृथक् ॥४७॥

अद्भिः गन्ध अक्षतैः धूपैः वासः स्रक् माल्य भूषणैः नाना उपहार बलिभिः प्रदीप अवलिभिः पृथक् ॥४७॥

अद्भिः गन्ध	जल, चन्दन,	बलिभिः	भेंट देकर
अक्षतैः	अक्षत,	पृथक्	तथा अलगसे
धूपैः वासः	धूप, वस्त्र,	प्रदीप	अनेक दीपोंसे
स्रक् माल्य	माला, हार,	अवलिभिः	आरती करके ॥४७॥
भूषणैः	आभूषण,		
नाना उपहार	नाना उपहारोंकी		

विप्रस्त्रियः पतिमतीस्तथा तैः समपूजयत् ।
लवणापूपताम्बूलकण्ठसूत्रफलेक्षुभिः ॥४८॥

विप्रस्त्रियः पतिमतीः तथा तैः समपूजयत् लवण अपूप ताम्बूल कण्ठसूत्र फल इक्षुभिः ॥४८॥

तथा तैः	तथा इन सब सामग्रियोंके साथ	फल इक्षुभिः	फल तथा गन्नेसे
		पतीमतीः	साधवा
लवण अपूप	नमकीन पुए (बड़ियों)	विप्रस्त्रियः	ब्राह्मणस्त्रियोंकी
		सम्पूजयत्	भली प्रकार पूजा की ॥४८॥
ताम्बूल	पान		
कण्ठसूत्र	कण्ठसूत्र (कंठी)		

तस्यै स्त्रियस्ताः प्रददुः शेषां युयुजुराशिषः ।
ताभ्यो देव्यै नमश्चक्रे शेषां च जगृहे वधूः ॥४९॥

तस्यै स्त्रियः ताः प्रददुः शेषां युयुजुः आशिषः ताभ्यः देव्यै नमः चक्रे शेषां च जगृहे वधूः ॥४९॥

तस्यै ताः स्त्रियः	उनको उन ब्राह्मण स्त्रियोंने	च देव्यै नमः	तथा देवीको प्रणाम
		चक्रे	करके
आशिषः युयुजुः	आशीर्वाद दिया	शेषां जगृहे	प्रसाद ग्रहण किया ॥४९॥
शेषां प्रददुः	और प्रसाद दिया		
वधूः ताभ्यः	नववधूने उनको		

मुनिव्रतमथ त्यक्त्वा निश्चक्रामाम्बिकागृहात् ।
प्रगृह्य पाणिना भृत्यां रत्नमुद्रोपशोभिना ॥५०॥

मुनिव्रतं अथ त्यक्त्वा निःचक्राम अम्बिकागृहात् प्रगृह्य पाणिना भृत्यां रत्नमुद्रा उपशोभिना ॥५०॥

अथ मुनिव्रतं	फिर मौन	पाणिना	हाथसे
त्यक्त्वा	छोड़कर	भृत्यां प्रगृह्य	दासीको पकड़कर
रत्नमुद्रा	रत्नजड़ी अँगूठीसे	अम्बिकागृहात्	देवी-मन्दिरसे
उपशोभिना	सुशोभित	निःचक्राम	निकली ॥५०॥

तां देवमायामिव वीरमोहिनीं
सुमध्यमां कुण्डलमण्डिताननाम् ।

श्यामां नितम्बार्पितरत्नमेखलां
व्यञ्जत्स्तनीं कुन्तलशङ्कितेक्षणाम् ॥५१॥

तां देवमायां इव वीर मोहिनीं सुमध्यमां कुण्डल मण्डित आननां श्यामां नितम्ब अर्पित रत्न मेखलां व्यञ्जत् स्तनीं कुन्तल शङ्कित ईक्षणां ॥५१॥

वीर मोहिनीं	वीरोंको मोहित करने वाली	नितम्ब	नितम्बों पर
		रत्न मेखलां	रत्नजटित करधनी
देवमायां इव	देवमायाके समान	अर्पित	पहिने,
तां सुमध्यमां	इन क्षीण कटि वाली	व्यञ्जत् स्तनीं	झलकते स्तन वाली
		कुन्तल	बालोंमें से
कुण्डल मण्डित	कुण्डल-भूषित	शङ्कित ईक्षणां	शङ्कित नेत्रोंसे देखती ॥५१॥
आननां	मुखी,		
श्यामां	षोडश वर्षीया		

शुचिस्मितां बिम्बफलाधरद्युति-
शोणायमानद्विजकुन्दकुड्मलाम् ।
पदा चलन्तीं कलहंसगामिनीं
शिञ्जत्कलानूपुरधामशोभिना ।
विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता
यशस्विनस्तत्कृतहृच्छयार्दिताः ॥५२॥

शुचिस्मितां बिम्बफल अधर द्युति शोणायमान द्विज कुन्द कुड्मलां पदा चलन्तीं कलहंस गामिनीं शिञ्जत कला नूपुर धाम शोभिना विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता यशस्विनः तत् कृत हृच्छय आर्दिताः ॥५२॥

शुचिस्मितां	पवित्र मुस्कान वाली,	बिम्बफल अधर	बिम्बाफलके समान (लाल) ओष्ठोंकी

द्यु ति	कान्तिसे
शोणायमान	कुछ अरुणिम लगते
द्विज कुन्द	कुन्द कली जैसे
कुड्मलां	दाँतों वाली,
कलहंस	राजहंसकी
गामिनीं	गतिसे चलने वाली,
शिञ्जत् कला	झंकार करते
नूपुर	नूपुरोंको
धाम शोभिना	पहिननेसे सुशोभित
पदा चलन्तीं	पैरोंसे चलती
विलोक्य	उनको देखकर
समागता	वहां आये
यशस्विनः वीरा	यशस्वी वीर
तत् कृत	उनके लिए
हृच्छय आर्दिताः	उत्तेजित कामकी पीड़ासे
मुमुहुः	मूर्छित हो गये ॥५२॥

यां वीक्ष्य ते नृपतयस्तदुदारहास-
व्रीडावलोकहृतचेतस उज्झितास्त्राः ।
पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता विमूढा
यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयतीं स्वशोभाम् ॥५३॥

यां वीक्ष्य ते नृपतयः तत् उदारहास व्रीडा अवलोक हृतचेतस उज्झित अस्त्राः पेतुः क्षितौ गज रथ अश्वगता विमुढा यात्राः छलेन हरये अर्पयतीं स्वशोभाम् ॥५३॥

यात्राः छलेन	यात्राके बहाने
स्वशोभां	अपना सौन्दर्य
हरये अर्पयतीं	श्रीहरिको अर्पित करती
यां वीक्ष्य	जिनको देखकर
तत् उदारहास	उनकी मनोहर मुस्कान,
व्रीडा अवलोक	लज्जापूर्ण दृष्टिसे
हृतचेतस	चित्त हरण हुए
गज रथ	हाथी, रथ,
अश्वगता	घोड़ों पर चढ़े
ते नृपतयः	वे राजा लोग
विमूढा	मूर्छित होकर
क्षितौ पेतुः	पृथ्वी पर गिर गये (और उनके)
उज्झित अस्त्राः	हथियार (हाथोंसे) गिर गये ॥५३॥

सैवं शनैश्चलयती चलपद्मकोशौ
प्राप्ति तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा ।

उत्सार्य वामकरजैरलकानपाङ्गैः
प्राप्तान् ह्रियैक्षत नृपान् ददृशेऽच्युतं सा ॥५४॥

सा एवं शनैः चलयती चलपद्मकोशौ प्राप्तिं तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा उत्सार्य वामकरजैः अलकान् अपाङ्गैः प्राप्तान् ह्रिया ईक्षत नृपान् ददृशे अच्युतं सा ॥५४॥

सा एवं	वे इस प्रकार	वामकरजैः	बायें हाथके नखोंसे
चल पद्मकोशौ	हिलते कमल पुष्पों के समान (पदोंसे)	अलकान्	अलकोंको
		उत्सार्य	हटाकर
शनैः	धीरे-धीरे	ह्रिया अपाङ्गैः	लज्जापूर्वक कटाक्ष से
चलयती	चलती हुई		
तदा	उस समय	प्राप्तान् नृपान्	आये राजाओंको
भगवतः प्राप्तिं	भगवानके आगमन को	ईक्षत	देखती हुई
		सा अच्युतं ददृशे	उसने अच्युतको देख लिया ॥५४॥
प्रसमीक्षमाणा	उत्सुकता पूर्वक देखती हुई		

तां राजकन्यां रथमारुरुक्षतीं
जहार कृष्णो द्विषतां समीक्षताम् ।
रथं समारोप्य सुपर्णलक्षणं
राजन्यचक्रं परिभूय माधवः ॥५५॥

तां राजकन्यां रथं आरुरुक्षतीं जहार कृष्णः द्विषतां समीक्षतां रथं समारोप्य सुपर्ण लक्षणं राजन्य चक्रं परिभूय माधवः ॥५५॥

तां रथं	उस रथारोहण	माधवः कृष्णः	रमाकान्त श्रीकृष्ण ने
आरुरुक्षन्तीं	उद्यता		
राजकन्यां	राजकन्याको	सुपर्ण लक्षणं	गरुड ध्वज
द्विषतां	शत्रुओंके	रथं समारोप्य	रथ पर चढ़ाकर
समीक्षतां	देखते-देखते	जहार	हरण कर लिया ॥५५॥
राजन्य चक्रं	राजमण्डलीका		
परिभूय	तिरस्कार करके		

ततो ययौ रामपुरोगमैः शनैः
सृगालमध्यादिव भागहृद्धरिः ॥५६॥

ततः ययौ रामपुरोगमैः शनैः सृगाल मध्यात् इव भागहृत् हरिः ॥५६॥

ततः	तब	भागहृत्	अपना भाग ले जाते
रामपुरोगमैः	बलरामजी जिनके आगे चलते थे	हरि इव	सिंहके समान
		शनैः ययौ	धीरे-धीरे चले गये ॥५६॥
सृगाल मध्यात्	सियारोंके बीचसे		

तं मानिनः स्वाभिभवं यशः क्षयं
परे जरासंधवशा न सेहिरे ।
अहो धिगस्मान् यश आत्तधन्वनां
गोपैर्हृतं केसरिणां मृगैरिव ॥५७॥

तं मानिनः स्व अभिभवं यशः क्षयं परे जरासन्धवशा न सेहिरे अहो धिक् अस्मान् यश आत्त धन्वनां गोपैः हृतं केसरिणां मृगैः इव ॥५७॥

जरासन्धवशा	जरासन्धके वशवर्ती (राजा लोग)	अस्मान् यश	हम लोगोंके यशको
		धिक्	धिक्कार है
तं स्व अभिभवं	उस अपने तिरस्कार और	गोपैः केसरिणां	गोपोंने सिंहोंके (आखेट) को
यशः क्षयं	यशकी हानिको	मृगैः इव हृतं	(दूसरे) पशुओंकी भाँति हरण कर लिया ॥५७॥
परे न सेहिरे	वे दूसरे सह नहीं सके (बोले—)		
अहो	'अहो		
आत्त धन्वनाः	धनुर्धारी		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिणीहरणं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

अथ चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इति सर्वे सुसंरब्धा वाहानारुह्य दंशिताः ।
स्वैः स्वैर्बलैः परिक्रान्ता अन्वीयुर्धृतकार्मुकाः ॥१॥

इति सर्वे सुसंरब्धा वाहान् आरुह्य दंशिताः स्वैः स्वैः बलैः परिक्रान्ता अनु ईयुः धृत कार्मुकाः ॥१॥

इति सर्वे	इस प्रकार (वे) सब	स्वैः स्वैः बलैः	अपनी-अपनी सेनाके साथ
सुसंरब्धा	अत्यन्त कुपित होकर	परिक्रान्ता	चारों ओरसे आक्रमण करते
दंशिताः	कवच पहिन कर	अनु ईयुः	(यादवोंके) पीछे चले ॥१॥
धृत कार्मुकाः	धनुष लेकर		
वाहान् आरुह्य	अपने वाहनोंपर चढ़ कर		

तानापतत आलोक्य यादवानीकयूथपाः ।
तस्थुस्तत्संमुखा राजन्विस्फूर्ज्य स्वधनूंषि ते ॥२॥

तान् आपतत आलोक्य यादव अनीक यूथपाः तस्थुः तत् संमुखा राजन् विस्फूर्ज्य स्व धनूंषि ते ॥२॥

राजन्	राजन् !	स्व धनूंषि	अपने धनुषोंकी
तान् आपतत	उनको झपटते	विस्फूर्ज्य	टंकार करते हुए
आलोक्य	देखकर	तत् सम्मुखा	उनके सामने
ते यादव अनीक	वे यादव सेनाके	तस्थुः	खड़े हो गये ॥२॥
यूथपाः	सेनापति-गण		

अश्वपृष्ठे गजस्कन्धे रथोपस्थे च कोविदाः ।
मुमुचुः शरवर्षाणि मेघा अद्रिष्वपो यथा ॥३॥

अश्वपृष्ठे गजस्कन्धे रथ उपस्थे च कोविदाः मुमुचुः शरवर्षाणि मेघा अद्रिषु अपः यथा ॥३॥

मेघा यथा	मेघ जैसे	गजस्कन्धे	हाथियोंके कन्धोंपर,
अद्रिषु अपः	पर्वतपर जल (वर्षा करें)	च रथ उपस्थे	तथा रथोंके अगले भागपर
कोविदाः	वे चतुर	शरवर्षाणि	बाण वृष्टि
अश्वपृष्ठे	घोड़ोंकी पीठपर,	मुमुचुः	छोड़ने लगे ॥३॥

पत्युर्बलं शरासारैश्छन्नं वीक्ष्य सुमध्यमा ।
सव्रीडमैक्षत्तद्वक्त्रं भयविह्वललोचना ॥४॥

पत्युः बलं शर आसारैः छन्नं वीक्ष्य सुमध्यमा सव्रीडं ऐक्षत् तत् वक्त्रं भय विह्वल लोचना ॥४॥

पत्युः बलं	पतिकी सेनाका	सुमध्यमा	क्षीण कटि (रुक्मिणी) ने
शर आसारैः	बाण-वर्षासे		
छन्नं वीक्ष्य	ढकी देखकर	तत् वक्त्रं	उनके मुखको
भय विह्वल	भय-व्याकुल	सव्रीडं ऐक्षत्	लज्जापूर्वक देखा ॥४॥
लोचना	नेत्रा		

प्रहस्य भगवानाह मा स्म भैर्वामलोचने ।
विनङ्क्षत्यधुनैतैतत् तावकैः शात्रवं बलम् ॥५॥

प्रहस्य भगवान् आह मा स्म भैः वाम लोचने विनङ्क्ष्यति अधुना एव एतत् तावकैः शात्रवं बलम् ॥५॥

भगवान् प्रहस्य आह	तब भगवान हँसकर बोले—	तावकैः शात्रवं	तुम्हारे लोगों द्वारा शत्रुओंकी
वाम लोचने	'सुलोचने !	एतत्	यह
मा स्म भैः	डरो मत	बलं विनङ्क्षति	सेना नष्ट हो जायगी ॥५॥
अधुना एव	अभी ही		

तेषां तद्विक्रमं वीरा गदसंकर्षणादयः ।
अमृष्यमाणा नाराचैर्जघ्नुर्हयगजान् रथान् ॥ ६ ॥

तेषां तत् विक्रमं वीरा गद सङ्कर्षण आदयः अमृष्यमाणा नाराचैः जघ्नुः हय गजान् रथान् ॥६॥

तेषां तत् विक्रमं	उन लोगोंका वह पराक्रम	हय गजान्	हाथी, घोड़े,
अमृष्यमाणा	न सहते हुए	रथान्	रथोंको
वीर गद	वीर गद	नाराचैः जघ्नुः	बाणोंसे मारने लगे ॥६॥
सङ्कर्षण आदयः	बलरामजी आदि		

पेतुः शिरांसि रथिनामश्विनां गजिनां भुवि ।
सकुण्डलकिरीटानि सोष्णीषाणि च कोटिशः ॥ ७ ॥

पेतुः शिरांसि रथिनां अश्विनां गजिनां भुवि सकुण्डल किरीटानि स उष्णी षाणि च कोटिशः ॥७॥

रथिनां	रथारोहियों,	च उष्णीषाणि	तथा पगड़ियों सहित
अश्विनां	अश्वारोहियों	कोटिशः	करोड़ों
गजिनां	गजारोहियोंके	शिरांसि पेतुः	सिर (काटकर) गिर गये ॥७॥
सकुण्डल	कुण्डलोंके साथ		
स किरीटानि	मुकुटोंके साथ		

हस्ताः सासिगदेष्वासाः करभा ऊरवोऽङ्घ्रयः ।
अश्वाश्वतरनागोष्ट्रखरमर्त्यशिरांसि च ॥ ८ ॥

हस्ताः स असि गद ईषु आसाः करभा ऊरवः अंघ्रयः अश्वा अश्वतर नाग उष्ट्र खर मर्त्य शिरांसि च ॥८॥

असि गद	तलवार, गदा,	ऊरवः च	जांघें तथा
स ईषु आसाः	धनुष सहित	अंघ्रयः	पैर,
हस्ताः करभा	हाथ, भुजाएँ,	अश्वा अश्वतर	घोड़ों, खच्चरों,

नाग उष्ट्र खर च	हाथी, ऊँटों, गधों एवं	मर्त्य शिरांसि	मनुष्योंके सिर (कटने लगे) ॥८॥

हन्यमानबलानीका वृष्णिभिर्जयकांक्षिभिः ।
राजानो विमुखा जग्मुर्जरासन्धपुरः सराः ॥ ९ ॥

हन्यमान बल अनीका वृष्णिभिः जय काङ्क्षिभिः राजानः विमुखा जग्मुः जरासन्धपुरः सराः ॥९॥

जय	विजयकी	जरासन्धपुरः	जरासन्धको आगे
काङ्क्षिभिः	इच्छा करनेवाले	सराः	करके चलनेवाले
वृष्णिभिः	यादवों द्वारा	राजानः विमुखा	राजा लोग (युद्धसे) विमुख होकर
हन्यमान बल	मारी जाती		
अनीका	सैन्य दलवाले	जग्मुः	लौट गये ॥९॥

शिशुपालं समभ्येत्य हृतदारमिवातुरम् ।
नष्टत्विषं गतोत्साहं शुष्यद्वदनमब्रुवन् ॥१०॥

शिशुपालं सम अभि एत्य हृतदारं इव आतुरं नष्ट त्विषं गत उत्साहं शुष्यत् वदनं अब्रुवन् ॥१०॥

हृतदारं इव	पत्नीका ही हरण हुआ हो ऐसे	शिशुपालं	शिशुपालके
		सम अभि एत्य	समीप सब ओरसे आकर
आतुरं नष्ट	व्याकुल, नष्ट		
त्विषं	कान्ति,	अब्रुवन्	(वे लोग) बोले ॥१०॥
गत उत्साहं	उत्साहहीन		
शुष्यत् वदनं	सूखते मुख		

भो भोः पुरुषशार्दूल दौर्मनस्यमिदं त्यज ।
न प्रियाप्रिययो राजन् निष्ठा देहिषु दृश्यते ॥११॥

भोः भोः पुरुषशार्दूल दौर्मनस्यम् इदं त्यज न प्रिय अप्रिययोः राजन् निष्ठा देहिषु दृश्यते ॥११॥

भोः भोः	हे हे !
पुरुषशार्दूल	पुरुष-सिंह
इदं दौर्मनस्यं	यह उदासी
त्यज	छोड़ दीजिए
राजन् देहिषु	राजन् ! प्राणीके लिए
प्रिय अप्रिययोः	प्रिय-अप्रिय (मिलने) का
निष्ठा न दृश्यते	कोई स्थिर नियम नहीं दीखता ॥११॥

यथा दारुमयो योषिन्नृत्यते कुहकेच्छया ।
एवमीश्वरतन्त्रोऽयमीहते सुखदुःखयोः ॥१२॥

यथा दारुमयी योषित् नृत्यते कुहक इच्छया एवं ईश्वर तन्त्रः अयं ईहते सुख दुःखयोः ॥१२॥

यथा दारुमयी	जैसे लकड़ीसे बनी
योषित्	स्त्री
कुहक इच्छया	नटकी इच्छानुसार
नृत्यते	नाचती है
एवं ईश्वर	इसी प्रकार ईश्वरके
तन्त्रः	वशमें
अयं	यह (पुरुष)
सुख दुःखयोः	सुख-दुःखके लिए
ईहते	चेष्टा करता है ॥१२॥

शौरेः सप्तदशाहं वै संयुगानि पराजितः ।
त्रयोविंशतिभिः सैन्यैर्जिग्य एकमहं परम् ॥१३॥

शौरेः सप्तदश अहं वै संयुगानि पराजितः त्रयः विंशतिभिः सैन्यः जिग्य एकं अहं परम् ॥१३॥

शौरेः सप्तदश	श्रीकृष्णसे सत्रह बार
त्रयः विंशतिभिः	तेइस अक्षौहिणी
सैन्यैः	सेना सहित
अहं वै	मैं निश्चित रूपसे
पराजितः	पराजित हुआ
एकं परं अहं	एक पिछली बार मैं
जिग्य	जीत सका ॥१३॥

तथाप्यहं न शोचामि न प्रहृष्यामि कर्हिचित् ।
कालेन दैवयुक्तेन जानन् विद्रावितं जगत् ॥१४॥

तथा अपि अहं न शोचामि न प्रहृष्यामि कर्हिचित् कालेन दैवयुक्तेन जानन् विद्रावितं जगत् ॥१४॥

तथा अपि अहं	फिर भी मैं	जानन्	जानकर
दैवयुक्तेन	दैव-प्रेरित	न शोचामि	न शोक करता हूँ,
कालेन जगत्	कालके द्वारा संसारको	न कर्हिचित्	न कभी
विद्रावितं	परिवर्तित होते	प्रहृष्यामि	बहुत हर्षित होता हूँ ॥१४॥

अधुनापि वयं सर्वे वीरयूथपयूथपाः ।
पराजिताः फल्गुतन्त्रैर्यदुभिः कृष्णपालितैः ॥१५॥

अधुना अपि वयं सर्वे वीर यूथप यूथपाः पराजिताः फल्गुतन्त्रैः यदुभिः कृष्ण पालितैः ॥१५॥

अधुना अपि	इस समय भी	फल्गुतन्त्रैः	अल्प साधनवाले
वयं सर्वे	हम सब	यदुभिः	यादवोंसे
वीर यूथप	वीर सेनापतियोंके	पराजिताः	पराजित हो गये ॥१५॥
यूथपाः	भी सेनापति		
कृष्ण पालितैः	श्रीकृष्ण द्वारा रक्षित		

रिपवो जिग्युरधुना काल आत्मानुसारिणि ।
तदा वयं विजेष्यामो यदा कालः प्रदक्षिणः ॥१६॥

रिपवः जिग्युः अधुना काल आत्म अनुसारिणि तदा वयं विजेष्यामः यदा कालः प्रदक्षिणः ॥१६॥

अधुना रिपवः	इस समय शत्रु	यदा कालः	जब काल
आत्म	अपने	प्रदक्षिणः	(हमारे) दाहिने (अनुकूल) होगा
अनुसारिणि	अनुकूल	तदा वयं	तब हम लोग
काल जिग्युः	काल होनेसे जीत गये	विजेष्यामः	जीतेंगे ॥१६॥

एवं प्रबोधितो मित्रैश्चैद्योऽगात् सानुगः पुरम् ।
हतशेषाः पुनस्तेऽपि ययुः स्वं स्वं पुरं नृपाः ॥१७॥

एवं प्रबोधितः मित्रैः चैद्यः अगात् स अनुगः पुरं हत शेषाः पुनः ते अपि ययुः स्वं स्वं पुरं नृपा ॥१७॥

एवं मित्रैः	इस प्रकार मित्रों द्वारा
प्रबोधितः	समझाये जाने पर
स अनुगः चैद्यः	अनुचरोंके साथ शिशुपाल
पुरं अगात्	अपने नगर चला गया,
हत शेषाः	मरनेसे बचे हुए
ते नृपाः अपि	वे राजा लोगभी
पुनः स्वं स्वं	फिर अपने अपने
पुरं ययुः	नगर चले गये ॥१७॥

रुक्मी तु राक्षसोद्वाहं कृष्णद्विडसहन् स्वसुः ।
पृष्ठतोऽन्वगमत् कृष्णमक्षौहिण्या वृतो बली ॥१८॥

रुक्मी तु राक्षस उद्वाहं कृष्ण द्विट् असहन् स्वसुः पृष्ठतः अनु अगमत् कृष्णं अक्षौहिण्या वृतः बली ॥१८॥

कृष्ण द्विट्	श्रीकृष्णका द्वेषी
बली रुक्मी तु	बलवान रुक्मी तो
स्वसुः राक्षस	बहिनका राक्षस
उद्वाहं	विवाह
असहन्	सहन न करके
अक्षौहिण्या वृतः	एक अक्षौहिणी सेना से घिरा
कृष्णः पृष्ठतः	श्रीकृष्णके पीछे
अनु अगमत्	चल पड़ा ॥१८॥

रुक्म्यमर्षी सुसंरब्धः शृण्वतां सर्वभूभुजाम् ।
प्रतिजज्ञे महाबाहुर्दंशितः सशरासनः ॥१९॥

रुक्मि अमर्षी सुसंरब्धः शृण्वतां सर्वभूभुजां प्रतिजज्ञे महाबाहुः दंशितः सशरासनः ॥१९॥

अमर्षी सुसंरब्धः	असहनशील अत्यन्त कुपित
महाबाहुः रुक्मि	विशाल भुजा वाले रुक्मीने
दंशितः	कवच पहिनकर
सशरासनः	धनुष लेकर
सर्वभूभुजां	सब राजाओंके
शृण्वतां प्रतिजज्ञे	सुनते हुए प्रतिज्ञा की ॥१९॥

अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम् ।
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि वः ॥२०॥

अहत्वा समरे कृष्णं अप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम् कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यं एतत् ब्रवीमि वः ॥२०॥

वः एतत् सत्यं	आप लोगोंसे यह सत्य
ब्रवीमि	कहता हूँ कि
समरे कृष्णं	युद्धमें श्रीकृष्णको
अहत्वा च	बिना मारे और
रुक्मिणीम्	रुक्मिणीको
अप्रत्यूह्य	बिना लौटाये
कुण्डिनं	कुण्डिनपुरमें
प्रवेक्ष्यामि न	प्रवेश नहीं करूँगा ॥२०॥

इत्युक्त्वा रथमारुह्य सारथिं प्राह सत्वरः ।
चोदयाश्वान् यतः कृष्णस्तस्य मे संयुगं भवेत् ॥२१॥

इति उक्तवा रथं आरुह्य सारथिं प्राह सत्वरः चोदय आश्वान् यतः कृष्णः तस्य मे संयुगं भवेत् ॥२१॥

इति उक्तवा	ऐसा कहकर
रथं आरुह्य	रथ पर चढ़कर
सारथिं प्राह	सारथिसे बोला—
यतः कृष्णः	जहाँ कृष्ण है
सत्वरः अश्वान्	शीघ्र घोड़ोंको
चोदय	उधर ले चलो,
तस्य मे	उसका मुझसे
संयुगं भवेत्	युद्ध हो ॥२१॥

अद्याहं निशितैर्बाणैर्गोपालस्य सुदुर्मतेः ।
नेष्ये वीर्यमदं येन स्वसा मे प्रसभं हृता ॥२२॥

अद्य अहं निशितैः बाणैः गोपालस्य सुदुर्मतेः नेष्ये वीर्यमदं येन स्वसा मे प्रसभं हृता ॥२२॥

अद्य अहं	आज मैं	नेष्ये येन	नष्ट कर दूँगा, जिसने
सुदुर्मतेः	अत्यन्त दुर्बुद्धि	प्रसभं मे	बलपूर्वक मेरी
गोपालस्य	उस गोपालका	स्वसा हृता	बहिनका हरण
निशितैः बाणैः	तीक्ष्ण बाणोंसे		किया है ॥२२॥
वीर्यमदं	पराक्रमका गर्व		

विकत्थमानः कुमतिरीश्वरस्याप्रमाणवित् ।
रथेनैकेन गोविन्दं तिष्ठ तिष्ठेत्यथाह्वयत् ॥२३॥

विकत्थमानः कुमतिः ईश्वरस्य अप्रमाणवित् रथेन एकेन गोविन्दं तिष्ठ तिष्ठ इति अथ आह्वयत् ॥२३॥

ईश्वरस्य	उन सर्वेश्वरकी	अथ गोविन्दं	फिर गोविन्दको
अप्रमाणवित्	महिमा न जनाने वाला	तिष्ठ तिष्ठ इति	'ठहर ! ठहर !' इस प्रकार
कुमतिः	(वह) दुर्बुद्धि	आह्वयत्	पुकारने लगा ॥२३॥
विकत्थमानः	बकवाद करता हुआ		
एकेन रथेन	अकेले ही रथसे (पास जाकर)		

धनुर्विकृष्य सुदृढं जघ्ने कृष्णं त्रिभिः शरैः ।
आह चात्र क्षणं तिष्ठ यदूनां कुलपांसन ॥२४॥

धनुः विकृष्य सुदृढं जघ्ने कृष्णं त्रिभिः शरैः आह च अत्र क्षणं तिष्ठ यदूनां कुल पांसनः ॥२४॥

सुदृढं धनुः	बहुत दृढ धनुष	कृष्णं जघ्ने	श्रीकृष्णको मारा
विकृष्य	खींचकर	च आह	तथा बोला—
त्रिभिः शरैः	तीन बाणोंसे		

यदूनां कुल	'यदुकुल	अत्र क्षणं तिष्ठ	यहाँ क्षण भर तो
पांसनः	कलंक !		खड़ा रह ॥२४॥

कुत्र यासि स्वसारं मे मुषित्वा ध्वाङ्क्षवद्धविः ।
हरिष्येऽद्य मदं मन्द मायिनः कूटयोधिनः ॥२५॥

कुत्र यासि स्वसारं मे मुषित्वा ध्वाङ्क्षवत् हविः हरिष्ये अद्य मदं मन्द मायिनः कूटयोधिनः ॥२५॥

ध्वाङ्क्षवत्	कौएके समान	मन्द मायिनः	मूर्ख मायावी
हविः	हविष्यको (चुराने के समान)	कूटयोधिनः	कपट-युद्ध करने वाले (लोग)
मे स्वसारं	मेरी बहिनको	अद्य मदं हरिष्ये	आज गर्व नष्ट कर दूँगा ॥२५॥
मुषित्वा	चुराकर		
कुत्र यासि	जायगा कहाँ,		

यावन्न मे हतो बाणैः शयीथा मुञ्च दारिकाम् ।
स्मयन् कृष्णो धनुश्छित्त्वा षड्भिर्विव्याध रुक्मिणम् ॥२६॥

यावत् न मे हतः बाणैः शयीथा मुञ्च दारिकां स्मयन् कृष्णः धनुः छित्त्वा षट्भिः विव्याध रुक्मिणम् ॥२६॥

यावत् मे बाणैः	जब तक मेरे बाणों से	धनुः छित्त्वा	(उसका) धनुष काटकर
हतः न शयीथा	मारा जाकर नहीं सो जाता,	रुक्मिणं	रुक्मीको
दारिकां मुञ्च	बालिकाको छोड़ दे ।' (यह सुनकर)	षट्भिः विव्याध	छः बाणोंसे बींधा ॥२६॥
स्मयन् कृष्णः	मुस्कराते हुए श्रीकृष्णने		

अष्टभिश्चतुरो वाहान् द्वाभ्यां सूतं ध्वजं त्रिभिः ।
स चान्यद् धनुरादाय कृष्णं विव्याध पञ्चभिः ॥२७॥

अष्टभिः चतुरः वाहान् द्वाभ्यां सूतं ध्वजं त्रिभिः स च अन्यत् धनुः आदाय कृष्णं विव्याध पञ्चभिः । २७॥

अष्टभिः	आठ (बाणों)से	स च अन्यत्	उसने भी दूसरा
चतुरः वाहान्	चारो वाहनो (अश्वों)को,	धनुः आदाय	धनुष लेकर
		कृष्णं पञ्चभिः	श्रीकृष्णको पाँच (वाणों)से
द्वाभ्यां सूतं	दोसे सारथीको		
त्रिभिः ध्वजं	तीनसे ध्वजाको (काट दिया)	विव्याध	बींधा ॥२७॥

तैस्ताडितः शरौघैस्तु चिच्छेद धनुरच्युतः ।
पुनरन्यदुपादत्त तदप्यच्छिनदव्ययः ॥२८॥

तैः ताडितः शर ओघैः तु चिच्छेद धनुः अच्युतः पुनः अन्यत् उपादत्त तत् अपि अच्छिनत् अव्ययः ॥२८॥

तैः शर ओघैः	उसके द्वारा बाणों की बौछारसे	उपअदत्त	समीपसे उठाया
		तत् अपि	उसे भी
ताडितः अच्युतः	ताड़ित अच्युतने	अव्ययः	अविनाशी श्रीकृष्णने
धनुः चिच्छेद	(उसका) धनुष काट दिया	अच्छिनत्	काट दिया ॥२८॥
पुनः अन्यत्	फिर (उसने) दूसरा (धनुष)		

परिघं पट्टिशं शूलं चर्मासी शक्तितोमरौ ।
यद् यदायुधमादत्त तत् सर्वं सोऽच्छिनद्धरिः ॥२९॥

परिघं पट्टिशं शूलं चर्म असि शक्ति तोमरौ यत् यत् आयुधं आदत्त तत् सर्वं सः अच्छिनत् हरिः ॥२९॥

परिघं पट्टिशं	परिघ, पट्टिश,	यत् यत् आयुधं	जो जो शस्त्र
शूलं चर्म असि	त्रिशूल, ढाल-तलवार,	आदत्त	(वह) उठाता गया
		तत् सर्वं	उन सबको
शक्ति तोमरौ	शक्ति और तोमर आदि	सः हरिः	उन श्रीहरिने
		अच्छिनत्	काट दिया ॥२९॥

ततो रथादवप्लुत्य खड्गपाणिर्जिघांसया ।
कृष्णमभ्यद्रवत् क्रुद्धः पतङ्ग इव पावकम् । ३०॥

ततः रथात् अवप्लुत्य खड्गपाणिः जिघांसया कृष्णं अभ्यद्रवत् क्रुद्धः पतङ्ग इव पावकम्

ततः रथात्	फिर (अन्तमें) रथ से	खड्गपाणिः	हाथमें खड्ग लेकर
		कृष्णं	श्रीकृष्णकी ओर
अवप्लुत्य	कूदकर	अभ्यद्रवत्	झपटा ॥३०॥
जिघांसया	मारनेकी इच्छासे		
पावकं	अग्निकी ओर		
पतङ्ग इव	पतिंगेके समान		

तस्य चापततः खंगं तिलशश्चर्म चेषुभिः ।
छित्त्वासिमाददे तिग्मं रुक्मिणं हन्तुमुद्यतः ॥३१॥

तस्य च आपततः खड्गम् तिलशः चर्म च इषुभिः छित्त्वा असिं आददे तिग्मं रुक्मिणं हन्तुं उद्यतः ॥३१॥

तस्य आपततः च	उसके झपटते समय ही	च चर्म तिलशः	तथा ढालको तिल तिल
इषुभिः खड्गम्	बाणोंसे (उसकी) तलवार	छित्त्वा रुक्मिणं	काटकर रुक्मीको

हन्तुं उद्यतः	मारनेको उद्यत	आददे	उठाई ॥३१॥
तिग्मं असिं	तीक्ष्ण तलवार		

दृष्ट्वा भ्रातृवधोद्योगं रुक्मिणी भयविह्वला ।
पतित्वा पादयोर्भर्तुरुवाच करुणं सती ॥३२॥

दृष्ट्वा भ्रातृ वध उद्योगं रुक्मिणी भय विह्वला पतित्वा पादयोः भर्तुः उवाच करुणं सती ॥३२॥

भ्रातृ वध	भाईको मारनेका	भर्तुः पादयोः	स्वामीके चरणों
उद्योग दृष्ट्वा	प्रयत्न देखकर		पर
सती रुक्मिणी	साध्वी रुक्मिणी	पतित्वा	गिरकर
भय विह्वला	भयसे व्याकुल होकर	करुणं उवाच	करुण स्वरमें बोलीं ॥३२॥

॥ रुक्मिणी उवाच ॥*

योगेश्वराप्रमेयात्मन् देवदेव जगत्पते ।
हन्तुं नार्हसि कल्याण भ्रातरं मे महाभुज ॥३३॥

योगेश्वर अप्रमेय आत्मन् देवदेव जगत्पते हन्तुं न अर्हसि कल्याण भ्रातरं मे महाभुज ॥३३॥

योगेश्वर	'योगेश्वर !'	कल्याण	कल्याण स्वरूप !
अप्रमेय आत्मन्	अप्रमेय स्वरूप !	मे भ्रातरं	मेरे भाईको
देवदेव	देवदेवेश्वर !	हन्तुं न अर्हसि	(आपको) मारना
जगत्पते	जगन्नाथ !		नहीं चाहिए ॥३३॥
महाभुज	महाबाहो !		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

॥ श्रीशुक उवाच ॥

तया परित्रासविकम्पिताङ्ग्या
शुचावशुष्यन्मुखरुद्धकण्ठया ।
कातर्यविस्रंसितहेममालया
गृहीतपादः करुणो न्यवर्तत ॥३४॥

तया परित्रास विकम्पि अङ्ग्या शुचा अवशुष्यत् मुखरुद्ध कण्ठया कातर्य विस्रंसित हेममालया गृहीतपादः करुणः न्यवर्तत ॥३४॥

परित्रास	अत्यन्त भयसे	हेममालया	स्वर्ण मालाओं वाली
विकम्पित	कांपते	तया गृहीतपादः	उनके द्वारा चरण पकड़ने पर
अङ्ग्या	शरीर वाली,	करुणः न्यवर्तत	वे करुणामय (रुक्मिीके वधसे) रुक गये ॥३४॥
शुचा अवशुष्यत्	शोकके कारण सूखे		
मुखरुद्ध	मुख तथा रुके		
कण्ठया	गले वाली,		
कातर्य	व्याकुलता वश		
विस्रंसित	विखरी		

चैलेन बद्धवा तमसाधुकारिणं
सश्मश्रुकेशं प्रवपन् व्यरूपयत् ।
तावन्ममर्दुः परसैन्यमद्भुतं
यदुप्रवीरा नलिनीं यथा गजाः ॥३५॥

चैलेन बध्वा तं असाधुकारिणं सश्मश्रुकेशं प्रवपन् व्यरूपयत् तावत् ममर्दुः परसैन्यं अद्भुतं यदुप्रवीरा नलिनीं यथा गजाः ॥३५॥

तं	उस	चैलेन बध्वा	वस्त्र (दुपट्टे)से बाँधकर
असाधुकारिणं	कुकर्म करने वालेके		

सश्मश्रु केशं	दाढ़ीके साथ सिरके बाल
प्रवपन्	(जहाँ तहाँसे) काटकर
व्यरूपयत्	कुरूप बना दिया,
तावत्	तब तक
यदुप्रवीरा	यादव महावीरोंने
अद्भुतं	अद्भुत
परसैन्यं	उस शत्रु सेनाको
यथा गजाः	जैसे हाथी
नलिनीं	कमलिनीको (रौंदें)
ममर्दुः	मसल डाला ॥३५॥

कृष्णान्तिकमुपव्रज्य ददृशुस्तत्र रुक्मिणम् ।
तथाभूतं हतप्रायं दृष्ट्वा संकर्षणो विभुः ।
विमुच्य बद्धं करुणो भगवान् कृष्णमब्रवीत् ॥३६॥

कृष्ण अन्तिकं उपव्रज्य ददृशुः तत्र रुक्मिणं तथाभूतं हतप्रायं दृष्ट्वा सङ्कर्षणः विभुः विमुच्य बद्धं करुणः भगवान् कृष्णं अब्रवीत् ॥३६॥

विभुः सङ्कर्षणः	प्रभु बलरामजी
कृष्ण अन्तिकं	श्रीकृष्णके समीप
उपव्रज्य	पहुँचकर
तथाभूतं	उस दशामें पहुँचे
हतप्रायं	प्रायः मारे गयेके समान
तत्र रुक्मिणं	वहाँ रुक्मीको
ददृशुः	देखा
दृष्ट्वा करुणः	देखकर दयावश
बद्धं विमुच्य	उस बँधेको खोलकर
भगवान् कृष्णं	भगवान श्रीकृष्णसे
अब्रवीत्	बोले ॥३६॥

॥ संकर्षणोवाच ॥*

असाध्विदं त्वया कृष्ण कृतमस्मज्जुगुप्सितम्
वपनं श्मश्रुकेशानां वैरूप्यं सुहृदो वधः ॥३७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

असाधु इदं त्वया कृष्ण कृतं अस्मत् जुगुप्सितं वपनं श्मश्रु केशानां वैरूप्यं सुहृदः वधः ॥३७॥

कृष्ण इदं त्वया	श्रीकृष्ण यह तुमने	श्मश्रु केशानां	दाढ़ी तथा बालोंको
असाधु कृतं	अच्छा नहीं किया	वपनं वैरूप्यं	मूंडकर कर कुरूप कर देना
अस्मत्	हमारे लिए		
जुगुप्सितं	(यह) निन्दाकी बात है,	सुहृदः वधः	सम्बन्धीका वध ही है ॥३७॥

मैवास्मान् साध्व्यसूयेथा भ्रातुर्वैरूप्यचिन्तया ।
सुखदुःखदो न चान्योऽस्ति यतःस्वकृतभुक् पुमान् ॥३८॥

मा एव अस्मान् साध्वि असूयेथा भ्रातुः वैरूप्य चिन्तया सुखदुःखदः न च अन्यः अस्ति यतः स्वकृत भुक् पुमान् ॥३८॥

साध्वि	(रुक्मिणीसे बोले) साध्वी !	अन्यः च न अस्ति	दूसरा कोई भी नहीं है,
भ्रातुः वैरूप्य चिन्तया	भाईको कुरूप करनेको सोचकर	पुमान्	पुरुष
अस्मान्	हम लोगों पर	स्वकृत भुक्	अपने ही कियेका (फल) भोगता है ॥३८॥
असूयेथा	दोषारोप		
मा एव	सर्वथा मत करना		
यतः सुखदुःखदः	क्योंकि सुख-दुःख देने वाला		

बन्धुर्वधार्हदोषोऽपि न बन्धोर्वधमर्हति ।
त्याज्यः स्वेनैव दोषेण हतः किं हन्यते पुनः ॥३९॥

बन्धुः वधार्ह दोषः अपि न बन्धुः वधं अर्हति त्याज्यः स्वेन एव दोषेण हतः किं हन्यते पुनः ॥३९॥

बन्धुः	(फिर श्रीकृष्णसे) सम्बन्धी	वधं	वधके

अर्हदोषः अपि	योग्य अपराध करने पर भी	**हतः किं पुनः**	(वह तो) मारा गया है फिर उसे क्या
बन्धुः वधं	सम्बन्धीका वध		
न अर्हति	नहीं करना चाहिए	**हन्यते**	मारना है ॥३९॥
स्वेन एव दोषेण	अपने ही दोषसे		

क्षत्रियाणामयं धर्मः प्रजापतिविनिर्मितः ।
भ्रातापि भ्रातरं हन्याद् येन घोरतरस्ततः ॥४०॥

क्षत्रियाणां अयं धर्मः प्रजापति विनिर्मितः भ्राता अपि भ्रातरं हन्यात् येन घोरतरः ततः ॥४०॥

प्रजापति	(रुक्मिणीसे—) प्रजापति ब्रह्माजी को	**भ्राता अपि**	भाई भी
		भ्रातरं हन्यात्	भाईको मार देता है
विनिर्मितः	बनाया	**येन ततः**	जिससे यह
अयं क्षत्रियाणां	यह क्षत्रियोंका	**घोरतरः**	अत्यन्त घोर है ॥४०॥
धर्मः	धर्म ऐसा है कि		

राज्यस्य भूमेर्वित्तस्य स्त्रिया मानस्य तेजसः ।
मानिनोऽन्यस्य वा हेतोः श्रीमदान्धाः क्षिपन्ति हि ॥४१॥

राज्यस्य भूमेः वित्तस्य स्त्रिया मानस्य तेजसः मानिनः अन्यस्य वा हेतोः श्रीमत् अन्धाः क्षिपन्ति हि ॥४१॥

राज्यस्य	(श्रीकृष्णसे) राज्यके,	**मानिनः**	अभिमानी लोग
भूमेः वित्तस्य	पृथ्वी, धन,	**क्षिपन्ति**	(दूसरोंका) तिरस्कार करते हैं (अतः यह हमारे लिए उचित नहीं) ॥४१॥
स्त्रिया मानस्य	स्त्री, सम्मान,		
तेजसः वा	तेज अथवा		
अन्यस्य हेतोः	अन्य किसी कारणसे		
हि श्रीमत्	क्योंकि ऐश्वर्य		
अन्धाः	मदान्ध		

तवेयं विषमा बुद्धिः सर्वभूतेषु दुर्हृदाम् ।
यन्मन्यसे सदाभद्रं सुहृदां भद्रमज्ञवत् ॥४२॥

तव इयं विषमा बुद्धिः सर्वभूतेषु दुःहृदां यत् मन्यसे सदा अभद्रं सुहृदां भद्रं अज्ञवत् ॥४२॥

सर्वभूतेषु	(रुक्मिणीसे—) सब प्राणियोंसे	अभद्रं मन्यसे	जो अकल्याण मानती हो
दुःहृदां	द्वेषयुक्त चित्तवाले	इयं तव बुद्धिः	यह तुम्हारी बुद्धि
सुहृदां	सम्बन्धीके लिए	विषमा	विषम (उलटी) है ॥४२॥
सदा भद्रं	सदा कल्याणमय (दण्ड)को		
यत् अज्ञवत्	जो अज्ञानियोंकी भाँति		

आत्ममोहो नृणामेष कल्प्यते देवमायया ।
सुहृद् दुर्हृदुदासीन इति देहात्ममानिनाम् ॥४३॥

आत्ममोहः नृणां एष कल्प्यते देवमायया सुहृद् दुर्हृद उदासीन इति देह आत्म मानिनां ॥४३॥

देह आत्म मानिनां	शरीरको ही आत्मा मानने वालों को	एष आत्ममोहः	यह आत्माके विषय का मोह
		देवमायया	भगवानकी मायासे
नृणां	मनुष्योंको	कल्प्यते	होता है ॥४३॥
सुहृद् दुर्हृद उदासीन इति	मित्र, शत्रु, उदासीन इस प्रकार का		

एक एव परो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ।
नानेव गृह्यते मूढैर्यथा ज्योतिर्यथा नभः ॥४४॥

एक एव परः हि आत्मा सर्वेषां अपि देहिनां नाना इव गृह्यते मूढैः यथा ज्योतिः यथा नभः ॥४४॥

यथा ज्योतिः	जैसे अग्नि,	एक एव	एक ही है
यथा नभः	जैसे आकाश (एक ही है)	मूढैः नाना इव	अज्ञानियों द्वारा अनेककी भाँति
सर्वेषां	सभी	गृह्यते	ग्रहण किया जाता है ॥४४॥
देहिनां	शरीरधारियोंका		
आत्मा अपि	आत्मा भी		
हि परः	क्योंकि (शरीरसे) परे है,		

देह आद्यन्तवानेष द्रव्यप्राणगुणात्मकः ।
आत्मन्यविद्यया क्लृप्तः संसारयति देहिनम् ॥४५॥

देह आदि अन्तवान् एव द्रव्य प्राण गुण आत्मकः आत्मनि अविद्यया क्लृप्तः संसारयति देहिनम् ॥४५॥

एष देह	यह शरीर	आत्मनि	आत्मामें
द्रव्य प्राण	द्रव्य (पदार्थ), प्राण,	क्लृप्तः	कल्पित है और
गुण आत्मकः	गुणमय	देहिनं	शरीरधारीको
आदि अन्तवान्	आदि-अन्त वाला	संसारयति	संसार-चक्रमें घुमाता है ॥४५॥
अविद्यया	अविद्या द्वारा		

नात्मनोऽन्येनसंयोगो वियोगश्चासतः सति ।
तद्धेतुत्वात्तत्प्रसिद्धेर्दृग्रूपाभ्यां यथा रवेः ॥४६॥

न आत्मनः अन्येन संयोगः वियोगः च असतः सति तत् हेतु त्वात् तत् प्रसिद्धेः दृक् रूपाभ्यां यथा रवेः ॥४६॥

सति	साध्वी !
दृक् रूपाभ्यां	दृष्टि और रूपसे
यथा रवेः	जैसे सूर्यका (वैसे ही)
आत्मनः	आत्माका
अन्येन	दूसरोंके साथ
संयोगः च	संयोग और
वियोगः	वियोग
न असतः	नहीं होता, उन (दूसरोंके) असत् होनेसे
तत् हेतु त्वात्	उनका कारण होने से और
तत् प्रसिद्धेः	उसी (आत्मा)से सिद्धि होनेसे ॥४६॥

जन्मादयस्तु देहस्य विक्रिया नात्मनः क्वचित् ।
कलानामिव नैवेन्दोर्मृतिर्ह्यस्य कुहूरिव ॥४७॥

जन्म आदयः तु देहस्य विक्रिया न आत्मनः क्वचित् कलानां इव न एव इन्दोः मृति हि अस्य कुहूः इव ॥४७॥

जन्म आदयः तु	जन्मादि तो
देहस्य विक्रिया	देहके विकार हैं,
आत्मनः	आत्माके
क्वचित् न	कभी नहीं
इन्दोः	चन्द्रमाकी
कलानां इव	कलाओंकी भाँति
हि कुहूः अस्य	क्योंकि अमावस्या को इस (चन्द्र)की
मृतिः न इव	मृत्यु (क्षय) नहीं होता (पर चन्द्रक्षय कहा जाता है) इस प्रकार ॥४७॥

यथा शयान आत्मानं विषयान् फलमेव च ।
अनुभुङ्क्तेऽप्यसत्यर्थेतथाऽऽप्नोत्यबुधो भवम् ॥४८॥

यथा शयान आत्मानं विषयान् फलं एव च अनुभुङ्क्ते अपि असत् अर्थे तथा आप्नोति अबुधः भवम् ॥४८॥

यथा शयान	जैसे सोया व्यक्ति
असत् अर्थे	किसी पदार्थके न होने पर भी
आत्मानं	अपनेको
विषयान्	विषयोंको

च फलं एव	तथा फल (सुख-दुःख)को भी	भवं आप्नोति	(जन्म-मरण रूप) संसारको पाता है ॥४८॥
अनुभुङ्क्ते	बराबर भोगता है,		
तथा अबुधः	ऐसे ही अज्ञानी		

तस्मादज्ञानजं शोकमात्मशोषविमोहनम् ।
तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ॥४९॥

तस्मात् अज्ञानजं शोकं आत्मशोष विमोहनं तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ॥४९॥

तस्मात्	इसलिए	निर्हृत्य	दूर करके
अज्ञानजं	अज्ञानसे उत्पन्न	शुचिस्मिते	पवित्र मुस्कानवाली (तुम)
आत्मशोष	अपनेको सुखाने वाले तथा	स्वस्था भव	स्वस्थ (शान्त) हो जाओ ॥४९॥
विमोहनं	मोहित करने वाले		
शोकं तत्त्वज्ञानेन	शोकको तत्त्वज्ञानसे		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एवं भगवता तन्वी रामेण प्रतिबोधिता ।
वैमनस्यं परित्यज्य मनो बुद्ध्या समादधे ॥५०॥

एवं भगवता तन्वी रामेण प्रतिबोधिता वैमनस्यं परित्यज्य मनः बुद्ध्या समादधे ॥५०॥

एवं भगवता	इस प्रकार भगवान	परित्यज्य	छोड़कर
रामेण	बलरामजी द्वारा	बुद्ध्या मनः	बुद्धिके द्वारा मनको
प्रतिबोधिता	समझाये जाने पर	समादधे	समाहित कर लिया ॥५०॥
तन्वी	कृशाङ्गी (रुक्मिणी) ने		
वैमनस्यं	वैमनस्य (उदासीनता)		

प्राणावशेष उत्सृष्टो द्विड्भिर्हृतबलप्रभः ।
स्मरन् विरूपकरणं वितथात्ममनोरथः ॥५१॥

प्राण अवशेष उत्सृष्टः द्विट्भिः हृतबल प्रभः स्मरन् विरूपकरणं वितथ आत्ममनोरथः ॥५१॥

द्विट्भिः	शत्रुओं द्वारा	विरूपकरणं	अपना कुरूप करना
हृतबल प्रभः	सेना और कान्ति नष्ट कर दिया गया	स्मरन्	स्मरण करता हुआ
		आत्ममनोरथः	अपने मनोरथोंके
प्राण अवशेष	केवल प्राण बचाकर	वितथ	व्यर्थ हो जाने पर ॥५१॥
उत्सृष्टः	छोड़ दिया गया (रुक्मि)		

चक्रे भोजकटं नाम निवासाय महत् पुरम् ।
अहत्वा दुर्मतिं कृष्णमप्रत्यूह्य यवीयसीम् ।
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वा तत्रावसद् रुषा ॥५२॥

चक्रे भोजकटं नाम निवासाय महत् पुरं अहत्वा दुर्मतिं कृष्णं अप्रत्यूह्य यवीयसीं कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि इति उक्त्वा तत्र अवसत् रुषा ॥५२॥

भोजकटं नाम	भोजकट नामक	कुण्डिनं न	कुण्डिनपुरमें नहीं
निवासाय	अपने रहनेके लिए	प्रवेक्ष्यामि	प्रवेश करूंगा'
महत् पुरं चक्रे	बड़ाभारी नगर बसाया,	रुषा इति	क्रोधमें यह
		उक्त्वा	कह गया था (अतः)
दुर्मतिं कृष्णं	दुर्बुद्धि कृष्णको		
अहत्वा	बिना मारे और	तत्र अवसत्	वहीं रहने लगा ॥५२॥
यवीयसीं	छोटी बहिनको		
अप्रत्यूह्य	बिना लौटाये		

भगवान् भीष्मकसुतामेवं निर्जित्य भूमिपान् ।
पुरमानीय विधिवदुपयेमे कुरूद्वह ॥५३॥

भगवान् भीष्मकसुतां एवं निर्जित्य भूमिपान् पुरं आनीय विधिवत् उपयेमे कुरुउद्वह ॥५३॥

कुरु उद्वह	कुरु कुल पालक परीक्षित !	**भीष्मकसुतां**	भीष्मक-नन्दिनीको
एवं भूमिपान्	इस प्रकार राजाओं को	**पुरं आनीय**	द्वारिकापुरी लाकर
निर्जित्य	जीतकर	**विधिवत्**	(उनसे) विधिपूर्वक
भगवान्	भगवानने	**उपयेमे**	विवाह किया ॥५३॥

तदा महोत्सवो नृणां यदुपुर्यां गृहे गृहे ।
अभूदनन्यभावानां कृष्णे यदुपतौ नृप ॥५४॥

तदा महोत्सवः नृणां यदुपुर्यां गृहे गृहे अभूत् अनन्य भावानां कृष्णे यदुपतौ नृप ॥५३॥

नृप	राजन् !	**नृणां गृहे गृहे**	मनुष्योंके घर-घरमें
तदा यदुपतौ	तब यदुपति	**यदुपुर्यां**	यादवपुरी द्वारिका में
कृष्णे	श्रीकृष्णेमें		
अनन्य भावानां	अनन्य भाव रखने वाले	**महोत्सवः**	महोत्सव
		अभूत्	होने लगा ॥५४॥

नरा नार्यश्च मुदिताः प्रमृष्टमणिकुण्डलाः ।
पारिबर्हमुपाजह्रुर्वरयोश्चित्रवाससोः ॥५५॥

नरा नार्यः च मुदिताः प्रमृष्ट मणिकुण्डलाः पारिबर्हं उपाजह्रुः वरयोः चित्र वाससोः ॥५५॥

प्रमृष्ट	स्वच्छ	चित्र वाससोः	विचित्र वस्त्रधारी
मणिकुण्डलाः	मणिकुण्डल धारी	वरयोः	वर-वधूको
नरा च नार्यः	पुरुषों और स्त्रियों ने	पारिबर्हं	वैवाहिक उपहार
		उपाजह्रुः	भेंट की ॥५५॥
मुदिताः	प्रसन्न होकर		

सा वृष्णिपुर्युत्तभितेन्द्रकेतुभि-
र्विचित्रमाल्याम्बररत्नतोरणैः ।
बभौ प्रतिद्वार्युपकल्पितमङ्गलै-
रापूर्णकुम्भागुरुधूपदीपकैः ॥५६॥

सा वृष्णि पुरि उत्तभित इन्द्रकेतुभिः विचित्र माल्य अम्बर रत्न तोरणैः बभौ प्रतिद्वारि उपकल्पित मङ्गलैः आपूर्ण कुम्भ अगुरु धूप दीपकैः ॥५६॥

उत्तभित	ऊँची उड़ती	प्रतिद्वारि	प्रत्येक द्वार पर
इन्द्रकेतुभिः	इन्द्रधनुष जैसी (सतरंगी) पताकाओं से	आपूर्ण मङ्गलैः	भरे हुए मंगल
		कुम्भ उपकल्पित	कलशोंके रखने
विचित्र माल्य	नाना रंगकी मालाओं	अगुरु	अगुरुकी
		धूप दीपकैः	धूप तथा दीपकोंसे
अम्बर	वस्त्र तथा	सा वृष्णि पुरि	वह यादवपुरी
रत्न तोरणैः	रत्नोंकी बन्दनवारों से,	बभौ	बहुत शोभिव हुई ॥५६॥

सिक्तमार्गा मदच्युद्भिराहूतप्रेष्ठभूभुजाम् ।
गजैर्द्वास्सु परामृष्टरम्भापूगोपशोभिता ॥५७॥

सिक्तमार्गा मदच्युत भिः आहूत प्रेष्ठ भूभुजां गजैः द्वाः सु परामृष्ट रम्भा पूग उपशोभिता ॥५७॥

आहूत प्रेष्ठ	निमन्त्रित आये प्रिय	परामृष्ट	सटाकर लगाये
भूभुजां	राजाओंके	रम्भापूग	केले तथा सुपारीके
गजैः	हाथियोंके		वृक्षोंसे
मदच्युद् भिः	झरते मदसे	उपशोभिता	सुशोभित थी
सिक्तमार्गा	मार्ग सिंच गये थे		॥५७॥
द्वाः सु	द्वारों पर		

कुरुसृञ्जयकैकेयविदर्भयदुकुन्तयः ।
मिथो मुमुदिरे तस्मिन् संभ्रमात् परिधावताम् ॥५८॥

कुरु सृञ्जय कैकेय विदर्भ यदु कुन्तयः मिथः मुमुदिरे तस्मिन् सम्भ्रमात् परिधावताम् ॥५८॥

सम्भ्रमात्	उतावलीमें	यदु कुन्तयः	यदु और कुन्ति वंश
परिधावतां	चारो ओर दौड़ते		के लोग
	हुए	तस्मिन्	उस नगरमें
कुरु सृञ्जय	कुरु, सृञ्जय,	मिथः मुमुदिरे	परस्पर आनन्द
कैकेय विदर्भ	कैकेय, विदर्भ,		मना रहे थे ॥५८॥

रुक्मिण्या हरणं श्रुत्वा गीयमानं ततस्ततः ।
राजानो राजकन्याश्च बभूवुर्भृशविस्मिताः ॥५९॥

रुक्मिण्या हरणं श्रुत्वा गीयमानं ततः ततः राजानः राजकन्याः च बभूवुः भृशं विस्मिताः ॥५९॥

ततः ततः	जहाँ-तहाँ	राजानः च	राजा लोग तथा
गीयमानं	वर्णन होते	राजकन्याः	राजकन्यायें
रुक्मिण्या हरणं	रुक्मिणी-हरणको	भृशं विस्मिताः	बहुत विस्मित
श्रुत्वा	सुनकर	बभूवुः	हुए ॥५९॥

द्वारकायामभूद् राजन् महामोदः पुरौकसाम् ।
रुक्मिण्या रमयोपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियः पतिम् ॥६०॥

द्वारकायां अभूत् राजन् महामोदः पुरौकसां रुक्मिण्या रमया उपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियः पतिम् ॥६०॥

राजन्	राजन् !	द्वारकायां	द्वारिकामें
रुक्मिण्या	रुक्मिणी रूपा	पुरौकसां	नगरवासियोंको
रमया उपेतं	रमा संयुक्त	महामोदः	परमानन्द
श्रियः पतिं	श्रीपति	अभूत्	प्राप्त हुआ ॥६०॥
कृष्णं दृष्ट्वा	श्रीकृष्णका दर्शन करके		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिण्युद्वाहे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

अथ पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग् रुद्रमन्युना ।
देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥

कामः तु वासुदेव अंशः दग्धः प्राक् रुद्रमन्युना देह उपपत्तये भूयः तं एव प्रत्यपद्यत ॥१॥

कामः तु	काम तो	**दग्धः भूयः**	जल गया था फिर
वासुदेव अंशः	वासुदेवका ही अंश है,	**देह उपपत्तये**	शरीर प्राप्तिके लिए
प्राक्	पहिले	**तं एव**	उन्हीं (वासुदेव)का
रुद्रमन्युना	शंकरजीके क्रोधसे	**प्रत्यपद्यत**	आश्रय लिया ॥१॥

स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः ।
प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः ॥ २ ॥

स एव जातः वैदर्भ्यां कृष्णवीर्य समुद्भवः प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतः अनवमः पितुः ॥२॥

स एव	वही	**प्रद्युम्न इति**	प्रद्युम्न इस नामसे
कृष्णवीर्य	श्रीकृष्णके वीर्यसे	**विख्यातः**	प्रसिद्ध
समुद्भवः	उत्पन्न	**पितुः सर्वतः**	पितासे सब ओरसे
वैदर्भ्यां जातः	वैदर्भी रुक्मिणीसे जन्मा	**अनवमः**	कम नहीं था ॥२॥

तं शम्बरः कामरूपी हृत्वा तोकमनिर्दशम् ।
स विदित्वाऽऽत्मनः शत्रुं प्रास्योदन्वत्यगाद् गृहम् ॥३॥

तं शम्बरः कामरूपी हृत्वा तोकं अनिर्दशं स विदित्वा आत्मनः शत्रुं प्रास्य उद् अन्वगात् गृहम् ॥३॥

कामरूपी	उसे इच्छानुसार रूप बनाने वाले
शम्बरः	शम्बरासुरने
तं आत्मनः	उसे अपना
शत्रुं विदित्वा	शत्रु जानकर
अनिर्दशं	दस दिनके भी न हुए
तोकं हृत्वा	शिशुको हरण करके
उद् प्रास्य	जलमें डालकर
स गृहं अन्वगात्	वह अपने घर चला गया ॥३॥

तं निर्जगार बलवान् मीनः सोऽप्यपरैः सह ।
वृतो जालेन महता गृहीतो मत्स्यजीविभिः ॥ ४ ॥

तं निर्जगार बलवान् मीनः सः अपि अपरैः सह वृतः जालेन महता गृहीतः मत्स्य जीविभिः ॥४॥

तं बलवान्	उस शिशुको बलवान
मीनः निर्जगार	मत्स्यने निगल लिया
सः अपि	वह (मत्स्य) भी
अपरैः सह	दूसरे (मत्स्यों)के साथ
महताजालेन	महाजालमें
वृतः	घिर गया (इस प्रकार)
मत्स्य जीविभिः	मछलीसे जीविका चलाने वालों द्वारा
गृहीतः	पकड़ लिया गया ॥४॥

तं शम्बराय कैवर्ता उपाजह्रुरुपायनम् ।
सूदा महानसं नीत्वावद्यन् स्वधितिनाद्भुतम् ॥ ५ ॥

तं शम्बराय कैवर्ता उपाजह्रुः उपायनं सूदा महानसं नीत्वा अवद्यन् स्वधितिना अद्भुतम् ॥५॥

तं अद्भुत	उस अद्भुत (बड़े मत्स्य)को	उपाजह्रुः	भेंट कर दिया,
कैवर्ता	केवटोंने	सूदा महानसं	रसोइये रसोईघरमें
शम्बराय	शम्बरासुरको	नीत्वा	(उसे) लाकर
उपायनं	उपहार रूपमें	स्वधितिना	अपने शस्त्रसे
		अवद्यन्	चीरा ॥५॥

दृष्ट्वा तदुदरे बालं मायावत्यै न्यवेदयन् ।
नारदोऽकथयत् सर्वं तस्याः शङ्कितचेतसः ।
बालस्य तत्त्वमुत्पत्तिं मत्स्योदरनिवेशनम् ॥ ६ ॥

दृष्ट्वा तत् उदरे बालं मायावत्यै न्यवेदयन् नारदः अकथयत् सर्वं तस्याः शङ्कित चेतसः बालस्य तत्वं उत्पत्तिं मत्स्य उदर निवेशनम् ॥६॥

तत् उदरे	उसके पेटमें	नारदः	नारदजीने
बालं दृष्ट्वा	बालक देखकर (उसे)	बालस्य तत्वं	बालकका वास्तविक स्वरूप,
मायावत्यै	मायावतीको	उत्पत्तिं	जन्म तथा
न्यवेदयन्	निवेदित कर (सौंप) दिया	मत्स्य उदर	मत्स्यके पेटमें
		निवेशनं	पहुँचाया जाना
तस्याः	उस	सर्वं अकथयत्	सब बतला दिया
शङ्कित चेतसः	शंकाशील चित्तसे		॥६॥

सा च कामस्य वै पत्नी रतिर्नाम यशस्विनी ।
पत्युर्निर्दग्धदेहस्य देहोत्पत्तिं प्रतीक्षती ॥७॥

सा च कामस्य वै पत्नी रतिः नाम यशस्विनी पत्युः निर्दग्ध देहस्य देह उत्पत्तिं प्रतीक्षती ॥७॥

सा च वै	वह तो निश्चित ही
यशस्विनी	यशस्विनी
रतिः नाम	रति नामकी
कामस्य पत्नी	कामकी पत्नी थी
निर्दग्ध देहस्य	जले हुए शरीर वाले
पत्युः	पतिके
देह उत्पत्तिं	शरीरके उत्पत्तिकी
प्रतीक्षती	प्रतीक्षा कर रही थी

॥७॥

निरूपिता शम्बरेण सा सूपौदनसाधने ।
कामदेवं शिशुं बुद्ध्वा चक्रे स्नेहं तदार्भके ॥८॥

निरूपिता शम्बरेण सा सूपौदन साधने कामदेवं शिशुं बुद्ध्वा चक्रे स्नेहं तत् अर्भके ॥८॥

शम्बरेण	शम्बर द्वारा
सूपौदन	सूप, भात आदि रसोईके
साधने	प्रबन्ध करनेके लिए
निरूपिता	नियुक्त की गयी
सा शिशुं	वह उस शिशुको
कामदेवं	कामदेव
बुद्ध्वा	जानकर
तत् अर्भके	उस बालकसे
स्नेहं चक्रे	स्नेह करने लगी

॥८॥

नातिदीर्घेण कालेन स काष्णीं रूढयौवनः ।
जनयामास नारीणां वीक्षन्तीनां च विभ्रमम् ॥ ९ ॥

न अति दीर्घेण कालेन स काष्णीं रूढ यौवनः जनयामास नारीणां वीक्षन्तीनां च विभ्रमम् ॥९॥

अति दीर्घेण	बहुत लम्बे
कालेन न	समयमें नहीं
स रूढ यौवनः	वे यौवनारूढ (जवान हुए)
काष्णीं	श्रीकृष्णकुमार
वीक्षन्तीनां	देखने वाली
नारीणां च	स्त्रियोंको तो
विभ्रमं	विलास-भाव
जनयामास	उत्पन्न करने लगे

॥९॥

सा तं पतिं पद्मदलायतेक्षणं
प्रलम्बबाहुं नरलोकसुन्दरम् ।
सव्रीडहासोत्तभितभ्रुवेक्षती
प्रीत्योपतस्थे रतिरङ्ग सौरतैः ॥१०॥

सा तं पतिं पद्मदल आयत ईक्षणं प्रलम्ब बाहुं नरलोक सुन्दरं सव्रीडहास उत्तभित भ्रुवा ईक्षती प्रीत्या उपतस्थे रतिः अङ्ग सौरतैः ॥१०॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !
पद्मदल	कमलपत्र
आयत ईक्षणं	विशाल लोचन
प्रलम्ब बाहुं	लम्बी भुजाओं वाले
नरलोक सुन्दरं	विश्व-सुन्दर
तं पतिं	उस अपने पतिको
सव्रीडहास	लज्जायुक्त मुस्कान तथा
उत्तभित भ्रुवा	उठाई भौंहोंसे
ईक्षती	देखती ही
रतिः प्रीत्या	रति प्रेमपूर्वक
सौरतैः	समागमके लिए
उपतस्थे	उनके समीप गयी ॥१०॥

तामाह भगवान् काष्णिर्मातस्ते मतिरन्यथा ।
मातृभावमतिक्रम्य वर्तसे कामिनी यथा ॥११॥

तां आह भगवान् काष्णिः मातः ते मतिः अन्यथा मातृभावं अतिक्रम्य वर्तसे कामिनी यथा ॥११॥

भगवान्	भगवान्
काष्णिः	श्रीकृष्णकुमारने
तां आह	उससे कहा—
मातः ते मतिः	'माता, तुम्हारी बुद्धि
अन्यथा	उलटी हो गयी है,
मातृभावं	मातृभावका
अतिक्रम्य	उलंघन करके
कामिनी यथा	कामिनीके समान
वर्तसे	वर्ताव कर रही हो ॥११॥

॥ रतिरुवाच ॥

भवान् नारायणसुतः शम्बरेणाहृतो गृहात् ।
अहं तेऽधिकृता पत्नी रतिः कामो भवान् प्रभो ॥१२॥

भवान् नारायणसुतः शम्बरेण आहृतः गृहात् अहं ते अधिकृता पत्नी रतिः कामः भवान् प्रभो ॥१२॥

शम्बरेण	शम्बरासुर द्वारा	**कामः**	कामदेव हैं,
गृहात् आहृतः	घरसे हरण किये गए	**ते अधिकृता**	आपकी अधिकार पूर्वक अपनायी
भवान्	आप	**पत्नी अहं रतिः**	पत्नी मैं रति हूँ ॥१२॥
नारायणसुतः	नारायणके पुत्र हैं		
प्रभो भवान्	स्वामी ! आप		

एष त्वानिर्दशं सिन्धावक्षिपच्छम्बरोऽसुरः ।
मत्स्योऽग्रसीत्तदुदरादिह प्राप्तो भवान् प्रभो ॥१३॥

एष त्वा निर्दशं सिन्धाः अक्षिपत् शम्बरः असुरः मत्स्यः अग्रसीत् तत् उदरात् इह प्राप्तः भवान् प्रभो ॥१३॥

एष	इस	**मत्स्यः अग्रसीत्**	(वहाँ) मत्स्यने निगल लिया
शम्बरः असुरः	शम्बरासुरने		
निर्दशं	(जब आप) दस दिन के नहीं थे	**प्रभो भवान्**	प्रभो ! आप
		तत् उदरात्	उसके पेटसे
त्वां सिन्धाः	आपको समुद्रमें	**इह प्राप्तः**	यहाँ पाये गए हैं ॥१३॥
अक्षिपत्	फेंक दिया,		

तमिमं जहि दुर्धर्षं दुर्जयं शत्रुमात्मनः ।
मायाशतविदं त्वं च मायाभिर्मोहनादिभिः ॥१४॥

तं इमं जहि दुर्धर्षं दुर्जयं शत्रुं आत्मनः मायाशत विदं त्वं च मायाभिः मोहन आदिभिः ॥१४॥

इमं दुर्धर्षं	इस दुर्धर्षं	त्वं	आप
दुर्जयं च	दुर्जय तथा	मोहन आदिभिः	मोहन आदि
मायाशत विदं	सैकड़ों माया जानने वाले	मायाभिः जहि	मायासे मार डालिए ॥१४॥
तं आत्मनः शत्रुं	उस अपने शत्रुको		

परिशोचति ते माता कुररीव गतप्रजा ।
पुत्रस्नेहाकुला दीना विवत्सा गौरिवातुरा ॥१५॥

परिशोचति ते माता कुररि इव गतप्रजा पुत्रस्नेह आकुला दीना विवत्सा गौः इव आतुरा ॥१५॥

विवत्सा गौः इव	वत्सहीना गायके समान	पुत्रस्नेह आकुला	पुत्रस्नेहसे व्याकुला
आतुरा	व्याकुला	दीना कुररि इव	बेचारी कुररीके समान
गतप्रजा	खोई सन्तान वाली	परिशोचति	शोकसे विलाप
ते माता	आपकी माता		करती हैं ॥१५॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

प्रभाष्यैवं ददौ विद्यां प्रद्युम्नाय महात्मने ।
मायावती महामायां सर्वमायाविनाशिनीम् ॥१६॥

प्रभाष्य एवं ददौ विद्यां प्रद्युम्नाय महात्मने मायावती महामायां सर्वमाया विनाशिनीम् ॥१६॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

एवं प्रभाष्य	ऐसा कहकर	विनाशिनीं	नष्ट करने वाली
महात्मने	महात्मा	महामायां	महामाया
प्रद्युम्नाय	प्रद्युम्नको	विद्यां ददौ	विद्या दी (सिखलायी)
मायावती	मायावतीने		॥१६॥
सर्वमाया	सब मायाओंको		

स च शम्बरमभ्येत्य संयुगाय समाह्वयत् ।
अविषह्यैस्तमाक्षेपैः क्षिपन् सञ्जनयन् कलिम् ॥१७॥

स च शम्बरं अभि एत्य संयुगाय सम आह्वयत् अविषह्यैः तं आक्षेपैः क्षिपन् सञ्जनयन् कलिम् ॥१७॥

स च शम्बरं	वे भी शम्बरके	आक्षेपैः	आक्षेप
अभि एत्य	सामने आकर	तं क्षिपन्	उस पर लगाते हुए
कलिं सञ्जनयन्	झगड़ा उत्पन्न करते हुए	संयुगाय	युद्धके लिए
		सम आह्वयत्	ललकारने लगे
अविषह्यैः	असह्य		॥१७॥

सोऽधिक्षिप्तो दुर्वचोभिः पादाहत इवोरगः ।
निश्चक्राम गदापाणिरमर्षात्ताम्रलोचनः ॥१८॥

सः अधिक्षिप्तः दुःवचःभिः पादाहत इव उरगः निःचक्राम गदापाणिः अमर्षात् ताम्रलोचनः ॥१८॥

पादाहत	पैरसे मारे	सः अमर्षात्	वह असहनशीलता से
उरगः इव	सर्पके समान		
दुःवचः भिः	दुर्वचनोंसे	ताम्रलोचनः	लाल नेत्र किये
अधिक्षिप्तः	आक्षेप किये जाने पर	गदापाणिः	हाथमें गदा लेकर
		निःचक्राम	निकला ॥१८॥

गदामाविध्य तरसा प्रद्युम्नाय महात्मने ।
प्रक्षिप्य व्यनदन्नादं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥१९॥

गदां आविध्य तरसा प्रद्युम्नाय महात्मने प्रक्षिप्य व्यनदत् नादं वज्र निष्पेव निष्ठुरम् ॥१९॥

महात्मने	महात्मा	प्रक्षिप्य	फेंककर
प्रद्युम्नाय	प्रद्युम्न पर	वज्र निष्पेष	वज्र गिरनेके सामने
तरसा	वेग पूर्वक	निष्ठुरं नादं	घोर शब्दसे
गदां आविध्य	गदा घुमाकर	व्यनदत्	गरजा ॥१९॥

तामापतन्तीं भगवान् प्रद्युम्नो गदया गदाम् ।
अपास्य शत्रवे क्रुद्धः प्राहिणात् स्वगदां नृप ॥२०॥

तां आपतन्तीं भगवान् प्रद्युम्नः गदया गदां अपास्य शत्रवे क्रुद्धः प्राहिणात् स्वगदां नृप ॥२०॥

नृप	राजन् !	प्रद्युम्नः	प्रद्युम्नने
तां आपतन्तीं	उस वेगसे आती	क्रुद्धः शत्रवे	कुपित होकर शत्रु पर
गदां गदया	गदाको गदासे		
अपास्य	दूर फेंककर	स्वगदां	अपनी गदा
भगवान्	भगवान	प्राहिणात्	फेंकी ॥२०॥

स च मायां समाश्रित्य दैतेयीं मयदर्शिताम् ।
मुमुचेऽस्त्रमयं वर्षं काष्णौं वैहायसोऽसुरः ॥२१॥

स च मायां सम आश्रित्य दैतेयीं मय दर्शितां मुमुचे अस्त्रमयं वर्षं काष्णौं वैहायसः असुरः ॥२१॥

स असुरः च	वह असुर भी	सम आश्रित्य	पूरा आश्रय लेकर
वैहायसः	आकाशमें जाकर	काष्णौं	कृष्णकुमार प्रद्युम्न पर
मय दर्शितां	मय दानवकी बतलायी	अस्त्रमयं वर्षं	अस्त्रमयी वर्षा
दैतेयीं मायां	दैत्योंकी मायाका	मुमुचे	छोड़ने लगा ॥२१॥

बाध्यमानोऽस्त्रवर्षेण रौक्मिणेयो महारथः ।
सत्त्वात्मिकां महाविद्यां सर्वमायोपमर्दिनीम् ॥२२॥

बाध्यमानः अस्त्रवर्षेण रौक्मिणेयः महारथः सत्व आत्मिकां महाविद्यां सर्वमाया उपमर्दिनीम् ॥२२॥

महारथः	महारथी	उपमर्दिनीं	नष्ट कर देने वाली
रौक्मिणेयः	रुक्मिनी-नन्दनने	सत्व आत्मिकां	सत्व स्वरूपा
अस्त्रवर्षेण	अस्त्र वर्षासे	महाविद्यां	महाविद्याको (प्रयोग किया) ॥२२॥
बाध्यमानः	पीड़ित किये जाने पर		
सर्वमाया	सब मायाओंको		

ततो गौह्यकगान्धर्वपैशाचोरगराक्षसीः ।
प्रायुङ्क्तशतशो दैत्यः कार्ष्णिर्व्यधमयत् स ताः ॥२३॥

ततः गौह्यक गान्धर्व पैशाच उरग राक्षसीः प्रायुङ्क्त शतशः दैत्यः कार्ष्णिः व्यधमयत् स ताः ॥२३॥

ततः दैत्यः	फिर दैत्यने	शतशः	सैकड़ों (माया)का
गौह्यक	यक्षोंकी,	प्रायुङ्क्त	प्रयोग किया, पर
पैशाच	पिशाचोंकी,	स कार्ष्णिः	उन कृष्णकुमारनें
उरग राक्षसीः	नागों और राक्षसों की,	ताः व्यधमयत्	उनको शान्त कर दिया ॥२३॥

निशातमसिमुद्यम्य सकिरीटं सकुण्डलम् ।
शम्बरस्य शिरः कायात् ताम्रश्मश्वोजसाहरत् ॥२४॥

निशातं असिं उद्यम्य सकिरीटं सकुण्डलं शम्बरस्य शिरः कायात् ताम्रश्मश्रु ओजसा आहरत् ॥२४॥

निशातं असिं	तीक्ष्ण तलवार
उद्यम्य	उठाकर
सकिरीटं	मुकुटयुक्त
सकुण्डलं	कुण्डल युक्त
ताम्रश्मश्रु	लाल दाढ़ी वाला
शम्बरस्य	शम्बरका
शिरः कायात्	सिर धड़से
ओजसा	बलपूर्वक
आहरत्	छीन लिया (काट दिया) ॥२४॥

आकीर्यमाणो दिविजैः स्तुवद्भिः कुसुमोत्करैः ।
भार्ययाम्बरचारिण्या पुरं नीतो विहायसा ॥२५॥

आकीर्यमाणः दिविजैः स्तुवद्भिः कुसुम उत्करैः भार्यया अम्बर चारिण्या पुरं नीतः विहायसा ॥२५॥

दिविजैः	देवताओंके
उत्करैः	हाथ उठाकर
कुसुम	पुष्प
आकीर्यमाणैः	बिखेरते हुए
स्तुवद्भिः	स्तुति करते हुए
अम्बर-	आकाश-
चारिण्या	चारिणी
भार्यया	पत्नी द्वारा
विहायसा	आकाश मार्गसे
पुरं नीतः	अपने नगर ले जाये गये ॥२५॥

अन्तःपुरवरं राजन् ललनाशतसंकुलम् ।
विवेश पत्न्या गगनाद् विद्युतेव बलाहकः ॥२६॥

अन्तः पुरवरं राजन् ललनाशत संकुलं विवेश पत्न्या गगनात् विद्युत इव बलाहकः ॥२६॥

राजन्	राजन् !
विद्युत	दामिनी सहित
बलाहकः इव	मेघके समान
पत्न्या गगनात्	पत्नी सहित आकाश से
ललनाशत	सैंकड़ों स्त्रियोंसे
संकुलं	भरे
अन्तः पुरवरं	(श्रीकृष्णके) सर्वोत्तम अन्तःपुरमें
विवेश	प्रवेश किया ॥२६॥

तं दृष्ट्वा जलदश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
प्रलम्बबाहुं ताम्राक्षं सुस्मितं रुचिराननम् ॥२७॥

तं दृष्ट्वा जलदश्यामं पीतकौशेय वाससं प्रलम्बबाहुं ताम्र अक्षम् सुस्मितं रुचिर आननम् ॥२७॥

तं जलश्यामं	उनको घनश्याम	सुस्मितं	सुन्दर मुस्कान युक्त
पीतकौशेय	पीला रेशमी	रुचिर आननं	मनोहर मुखवाला
वाससं	वस्त्र पहिने	दृष्ट्वा	देखकर ॥२७॥
प्रलम्बबाहुं	सुदीर्घ भुजा		
ताम्र अक्षं	रतनारे लोचन		

स्वलंकृतमुखाम्भोजं नीलवक्त्रालकालिभिः ।
कृष्णं मत्वा स्त्रियो ह्रीता निलिल्युस्तत्र तत्र ह ॥२८॥

स्वलङ्कृत मुखाम्भोजं नीलवक्त्र अलकालिभिः कृष्णं मत्वा स्त्रियः ह्रीता निलिल्युः तत्र तत्र ह ॥२८॥

नीलवक्त्र	काली घुंघराली	ह्रीता स्त्रियः	लज्जित होकर स्त्रियां
अलकालिभिः	अलकोंसे	तत्र तत्र ह	जहां तहां ही
स्वलंकृत	भली प्रकार सजे	निलिल्युः	छिप गयीं ॥२८॥
मुखाम्भोजं	मुख-कमलसे		
कृष्णं मत्वा	श्रीकृष्ण मानकर		

अवधार्य शनैरीषद्वैलक्षण्येन योषितः ।
उपजग्मुः प्रमुदिताः सस्त्रीरत्नं सुविस्मिताः ॥२९॥

अवधार्य शनैः ईषत् वैलक्षण्येन योषितः उपजग्मुः प्रमुदिताः सस्त्रीरत्नं सुविस्मिताः ॥२९॥

शनैः ईषत्	धीरे-धीरे थोड़ी	अवधार्य	पहिचानकर
वैलक्षण्येन	विशेषताओंको	योषितः	स्त्रियां

सस्त्रीरत्नं	श्रेष्ठ स्त्री साथ होनेसे	प्रमुदिताः	अत्यन्त प्रसन्न होकर
सुविस्मिताः	अत्यन्त चकित एवं	उपजग्मुः	समीप आ गयीं ॥३१॥

अथ तत्रासितापाङ्गी वैदर्भी वल्गुभाषिणी ।
अस्मरत् स्वसुतं नष्टं स्नेहस्नुतपयोधरा ॥३०॥

अथ तत्र असित अपाङ्गी वैदर्भी वल्गुभाषिणी अस्मरत् स्वसुतं नष्टं स्नेहस्नुत पयोधरा ॥३०॥

अथ तत्र	इसी समय वहां	नष्टं स्वसुतं	अपने खोये पुत्रका
असित अपाङ्गी	श्याम लोचना	अस्मरत्	स्मरण होनेसे
वल्गुभाषिणी	मञ्जु-भाषिणी	स्नेहस्नुत-	स्नेहसे वक्षसे
वैदर्भी	विदर्भ-नन्दिनी रुक्मिणीको	पयोधरा	दूध टपकने लगा ॥३०॥

को न्वयं नरवैदूर्यः कस्य वा कमलेक्षणः ।
धृतः कया वा जठरे केयं लब्धा त्वनेन वा ॥३१॥

कः नु अयं नर वैदूर्यः कस्य वा कमल ईक्षणः धृतः कया वा जठरे क इयं लब्धा तु अनेन वा ॥३१॥

अयं नर वैदूर्यः	'यह नररत्न	वा	या
नु कः	भला कौन है ?	कया जठरे धृतः	किस माताने इसे उदरमें रखा था,
वा	अथवा		
कमल ईक्षणः	यह कमल-लोचन	वा तु अनेन	अथवा तो इसने
कस्य	किसका पुत्र है ?	लब्धा इयं क	पाया वह यह कौन है ? ॥३१॥

मम चाप्यात्मजो नष्टो नीतो यः सूतिकागृहात् ।
एतत्तुल्यवयोरूपो यदि जीवति कुत्रचित् ॥३२॥

मम च अपि आत्मजः नष्टः नीतः यः सूतिका गृहात् एतत् तुल्य वयः रूपः यदि जीवति कुत्रचित् ॥३२॥

मम च नष्टः	मेरा भी खोया	यदि कुत्रचित्	यदि कहीं
आत्मजः अपि	पुत्र भी	जीवति	जीवित होगा
यः सूतिका	जो सूतिका	एतत् तुल्य	इसके समान ही
गृहात्	गृहसे	वयः रूपः	आयु और रूपका
नीतः	ले लिया गया,		होगा ॥३२॥

कथं त्वनेन संप्राप्तं सारूप्यं शार्ङ्गधन्वनः ।
आकृत्यावयवैर्गत्या स्वरहासावलोकनैः ॥३३॥

कथं तु अनेन संप्राप्तं सारूप्यं शार्ङ्गधन्वनः आकृत्या अवयवैः गत्या स्वर हास अवलोकनैः ॥३३॥

आकृत्या	आकृतिमें,	कथं तु अनेन	भला कैसे तो इसने
अवयवैः	अंगोंमें,	शार्ङ्गधन्वनः	शारंगधन्वा भगवानकी
गत्या स्वर	गतिमें, स्वरमें,	सारूप्यं संप्राप्तं	सदृश्यता पायी ? ॥३३॥
हास अवलोकनैः	हँसने तथा देखनेके ढंगमें		

स एव वा भवेन्नूनं यो मे गर्भे धृतोऽर्भकः ।
अमुस्मिन् प्रीतिरधिका वामः स्फुरति मे भुजः ॥३४॥

स एव वा भवेत् नूनं यः मे गर्भे धृतः अर्भकः अमुस्मिन् प्रीतिः अधिका वामः स्फुरति मे भुजः ॥३४॥

वा यः अर्भकः	अथवा जो बच्चा	अमुस्मिन्	(क्योंकि) इसमें
मे गर्भे धृतः	मैंने गर्भमें धारण किया था	अधिका प्रीतिः	मेरा बहुत स्नेह हो गया हैं
नूनं स एव	निश्चय वही		
भवेत्	होगा,		

मे वामः भुजः	और मेरी बायीं भुजा	स्फुरति	फड़क रही है ॥३४॥

एवं मीमांसमानायां वैदर्भ्यां देवकीसुतः ।
देवक्यानकदुन्दुभ्यामुत्तमश्लोक आगमत् ॥३५॥

एवं मीमांसमानायां वैदर्भ्यां देवकीसुतः देवक्या आनकदुन्दुभ्यां उत्तमश्लोक आगमत् ॥३५॥

वैदर्भ्यां	रुक्मिणीजीके	आनकदुन्दुभ्यां	वसुदेवजीके साथ
एवं	इसप्रकार	उत्तमश्लोक	पुण्यकीर्ति
मीमांसमानायां	विचार करते समय ही	देवकीसुतः	देवकी-नन्दन
		आगमत्	आ गये ॥३५॥
देवक्या	देवकीजी और		

विज्ञातार्थोऽपि भगवांस्तूष्णीमास जनार्दनः ।
नारदोऽकथयत् सर्वं शम्बराहरणादिकम् ॥३६॥

विज्ञात अर्थः अपि भगवान् तूष्णीं आसन् जनार्दनः नारदः अकथयत् सर्वं शम्बर आहरण आदिकं ॥३६॥

भगवान्	भगवान	नारदः	नारदजीने
जनार्दनः	जनार्दन	शम्बर आहरण	शम्बर द्वारा हरण करना
विज्ञात अर्थः	सब प्रयोजन जानने		
अपि	पर भी	आदिकं सर्वं	आदि सब बातें
तूष्णीं आसन्	चुप बने रहे	अकथयत्	बतलायीं ॥३६॥

तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं कृष्णान्तःपुरयोषितः ।
अभ्यनन्दन् बहूनब्दान् नष्टं मृतमिवागतम् ॥३७॥

तत् श्रुत्वा महत् आश्चर्यं कृष्ण अन्तःपुर योषितः अभ्यनन्दन् बहून् अब्दान् नष्टं मृतं इव आगतम् ॥३७॥

तत् श्रुत्वा	उसे सुनकर
कृष्ण अन्तःपुर	श्रीकृष्णके अन्तःपुर की
योषितः	स्त्रियोंको
महत् आश्चर्यं	बड़ा आश्चर्य हुआ,
बहून्	बहुत
अब्दान् नष्टं	वर्षोंसे खोयेको
मृतं पुनः आगतं	मरकर फिर लौटके
इव अभ्यनन्दन्	समान (प्रद्युम्न) का अभिनन्दन किया ॥३७॥

देवकी वसुदेवश्च कृष्णरामौ तथा स्त्रियः ।
दम्पती तौ परिष्वज्य रुक्मिणी च ययुर्मुदम् ॥३८॥

देवकी वसुदेवः च कृष्णरामौ तथा स्त्रियः दम्पती तौ परिष्वज्य रुक्मिणी च ययुः मुदम् ॥३८॥

देवकी च	देवकी तथा
वसुदेवः	वसुदेवजी,
कृष्णरामौ	श्रीकृष्ण-बलराम
तथा स्त्रियः	और स्त्रियां
च रुक्मिणी	एवं रुक्मिणी
तौ दम्पती	उस दम्पतिका
परिष्वज्य	आलिंगन करके
मुदं ययुः	आनन्दित हुए ॥३८॥

नष्टं युद्युम्नमायातमाकर्ण्य द्वारकौकसः ।
अहो मृत इवायातो बालो दिष्ट्येति हाब्रुवन् ॥३९॥

नष्टं प्रद्युम्नम् आयातं आकर्ण्य द्वारकौकसः अहो मृत इव आयातः बालः दिष्टया इति हाब्रुवन् ॥३९॥

नष्टं प्रद्युम्नं	खोये प्रद्युम्नको
आयातं आकर्ण्य	आया सुनकर
द्वारकौकसः	द्वारिकावासी
इति हाब्रुवन्	इस प्रकार प्रायः कहने लगे
अहो दिष्टया	'अहो सौभाग्यवश
मृतं इव बालः	मरेके समान बालक
आयातं	लौट आया ॥३९॥

यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावा-
स्तन्मातरो यदभजन् रहरूढभावाः ।
चित्रं न तत् खलु रमास्पदबिम्बबिम्बे
कामे स्मरेऽक्षिविषये किमुतान्यनार्यः ॥४०॥

यं वै मुहुः पितृसरूप निज ईश भावाः तत् मातरः यत् अभजन् रहः ऊढभावाः चित्रं न तत् खलु रमा आस्पद बिम्ब बिम्बे कामे स्मरे अक्षि विषये किं उत अन्यनार्यः ॥४०॥

वै यं पितृसरूप	निश्चय जिनको पिताका स्वरूप होनेसे	बिम्ब बिम्बे	भगवानके प्रतिबिम्ब स्वरूपके
निज ईश	अपना स्वामी	चित्रं न	लिए आश्चर्यकी बात नहीं है
भावाः	समझकर	कामे स्मरे	कामदेवावतार प्रद्युम्नके
तत् मातरः	उनकी मातायें	अक्षि विषये	नेत्रोंके सामने होने पर
ऊढभावाः	मधुर भावमग्ना	अन्यनार्यः	दूसरी स्त्रियोंकी
मुहुः रहः	बार-बार एकान्तमें	किं उत	फिर क्या बात
अभजन्	चली जाती थीं		॥४०॥
तत् खलु	वह अहो		
रमा आस्पद	लक्ष्मीके आश्रय		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे प्रद्युम्नोत्पत्तिनिरूपणं नाम पंचापञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

अथ षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः ।
स्यमन्तकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान् ॥ १ ॥

सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृत किल्बिषः स्यमन्तकेन मणिना स्वयं उद्यम्य दत्तवान् ॥१॥

कृत किल्बिषः	अपराध करने वाले	**स्यमन्तकेन**	स्यमन्तक
सत्राजितः	सत्राजितने	**मणिना**	मणिके साथ
स्वयं उद्यम्य	स्वयं प्रयत्न करके	**कृष्णाय दत्तवान्**	श्रीकृष्णको दे दी ॥१॥
स्वतनयां	अपनी पुत्री		

॥ राजोवाच ॥

सत्राजितः किमकरोद् ब्रह्मन् कृष्णस्य किल्बिषम् ।
स्यमन्तकः कुतस्तस्य कस्माद् दत्ता सुता हरेः ॥२॥

सत्राजितः किं अकरोत् ब्रह्मन् कृष्णस्य किल्बिषं स्यमन्तकः कुतः तस्य कस्मात् दत्ता सुता हरेः ॥२॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**तस्य कुतः**	उसके पास कहाँसे आयी ?
सत्राजितः	सत्राजितने	**सुता कस्मात्**	पुत्री किस कारण
कृष्णस्य किं	श्रीकृष्ण का क्या	**हरेः दत्ता**	श्रीहरिको दे दी ? ॥२॥
किल्बिषं	अपराध		
अकरोत्	किया था ?		
स्यमन्तकः	स्यमन्तक मणि		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

आसीत् सत्राजितः सूर्यो भक्तस्य परमः सखा ।
प्रीतस्तस्मै मणिं प्रादात् सूर्यस्तुष्टः स्यमन्तकम् ॥३॥

आसीत् सत्राजितः सूर्यः भक्तस्य परमः सखा प्रीतः तस्मै मणिं प्रादात् सूर्यः तुष्टः स्यमन्तकम् ॥३॥

सूर्यः भक्तस्य	भगवान सूर्य अपने भक्त	सूर्यः तुष्टः	सूर्यने सन्तुष्ट होकर
सत्रजितः	सत्राजितके	तस्मै स्यमन्तकं	उसे स्यमन्तक
परमः सखा	परम मित्र	मणिं प्रादात्	मणि दे दी ॥३॥
आसीत्	हो गये थे,		

स तं बिभ्रन् मणिं कण्ठे भ्राजमानो यथा रविः ।
प्रविष्टो द्वारकां राजंस्तेजसा नोपलक्षितः ॥४॥

स तं बिभ्रन् मणिं कण्ठे भ्राजमानः यथा रविः प्रविष्टः द्वारकां राजन् तेजसा न उपलक्षितः ॥४॥

राजन्	राजन् !	द्वारिकां	द्वारिकामें
स तं	वह उस	प्रविष्टः	पहुँचा तो
यथा रविः	जैसे सूर्य हों	तेजसा	(मणिके) तेजके कारण
भ्राजभानः मणिं	ऐसे प्रकाशमान मणिको	उपलक्षितः न	पहिचाना नहीं जा सका ॥४॥
कण्ठे बिभ्रन्	गलेमें धारण करके		

तं विलोक्य जना दूरात्तेजसा मुष्टदृष्टयः ।
दीव्यतेऽक्षैर्भगवते शशंसुः सूर्यशङ्किताः ॥५॥

तं विलोक्य जना दूरात् तेजसा मुष्ट दृष्टयः दीव्यते अक्षैः भगवते शशंसुः सूर्यं शङ्किताः ॥५॥

तं दूरात्	उसे दूरसे ही	अक्षैः दीव्यते	पासोंसे खेलते
विलोक्य	देखकर	भगवते	भगवानसे
मुष्ट दृष्टयः	चौंधियायी नेत्रों वाले	सूर्य शङ्किताः	सूर्यकी आशङ्कासे
		शशंसुः	सूचना दी ॥५॥
जना	लोगोंने		

॥ पुरजना ऊचुः ॥*

नारायण नमस्तेऽस्तु शङ्खचक्रगदाधर ।
दामोदराराविन्दाक्ष गोविन्द यदुनन्दन ॥६॥

नारायण नमः ते अस्तु शङ्ख चक्र गदाधर दामोदर अरविन्द अक्ष गोविन्द यदुनन्दन ॥६॥

शङ्ख चक्र	शंख, चक्र,	गोविन्द	गोविन्द
गदाधर	गदाधारी,	यदुनन्दन	यदुनन्दन !
नारायण,	नारायण,	ते नमः अस्तु	आपको नमस्कार है ॥६॥
दामोदर	दामोदर,		
अरविन्द अक्ष	कमल-लोचन,		

एष आयाति सविता त्वां दिदृक्षुर्जगत्पते ।
मुष्णन् गभस्तिचक्रेण नृणां चक्षूंषि तिग्मगुः ॥७॥

एष आयाति सविता त्वां दिदृक्षुः जगत्पते मुष्णन् गभस्ति चक्रेण नृणां चेक्षूंषि तिग्मगुः ॥७॥

जगत्पते	जगन्नाथ !	मुष्णन्	चुराते (चौंधियाते)
त्वां दिदृक्षुः	आपका दर्शन करनें	एष तिग्मगुः	ये प्रचण्ड रश्मि
गभस्ति चक्रेण	किरण-मण्डल द्वारा	सविता	सूर्य
नृणां चक्षूंषि	मनुष्योंके नेत्रोंको	आयाति	आ रहे हैं ॥७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

नन्वन्विच्छन्ति ते मार्गं त्रिलोक्यां विबुधर्षभाः ।
ज्ञात्वाद्य गूढं यदुषु द्रष्टुं त्वां यात्यजः प्रभो ॥८॥

ननु अन्विच्छन्ति ते मार्गं त्रिलोक्यां विबुध ऋषभाः ज्ञात्वा अद्य गूढः यदुषु द्रष्टुं त्वां याति अजः प्रभो ॥८॥

प्रभो ननु	प्रभो ! निश्चय	अद्य यदुषु	इस समय यदुवंशमें
विबुध ऋषभाः	देव श्रेष्ठ	गूढं त्वां ज्ञात्वा	छिपे आपको जानकर
ते मार्गं	आपके मार्गको		
त्रिलोक्यां	त्रिभुवनमें	अजः	ये अजन्मा (सूर्य)
अन्विच्छन्ति	ढूँढते रहते हैं,	द्रष्टुं	देखने
		याति	आ रहे हैं' ॥८॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

निशम्य बालवचनं प्रहस्याम्बुजलोचनः ।
प्राह नासौ रविर्देवः सत्राजिन्मणिना ज्वलन् ॥९॥

निशम्य बाल वचनं प्रहस्य अम्बुज लोचनः प्राह न असौ रविः देवः सत्राजित् मणिना ज्वलन् ॥९॥

बाल	बालकोंकी	असौ	'यह
वचनं निशम्य	बात सुनकर	रविः देवः न	सूर्यदेवता नहीं हैं
अम्बुज लोचनः	कमलनयन	मणिना ज्वलन्	मणि द्वारा प्रकाशित
प्रहस्य प्राह	हँसकर बोले—	सत्राजित्	सत्राजित है' ॥९॥

सत्राजित् स्वगृहं श्रीमत् कृतकौतुकमङ्गलम् ।
प्रविश्य देवसदने मणिं विप्रैर्न्यवेशयत् ॥१०॥

सत्राजितः स्वगृहं श्रीमत् कृत कौतुक मङ्गलं प्रविश्य देवसदने मणिं विप्रैः न्यवेशयत् ॥१०॥

मङ्गलं	मंगल	विप्रैः देवसदने	ब्राह्मणों द्वारा देवमन्दिरमें
कौतुक कृत	महोत्सव किये गये	मणि न्यवेशयत्	मणि स्थापित करा दी ॥१०॥
श्रीमत् स्वगृहं	सम्पन्न अपने घरमें		
प्रविश्य	प्रवेश करके		
सत्राजितः	सत्राजितने		

दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ स सृजति प्रभो ।
दुर्भिक्षमार्यरिष्टानि सर्पाधिव्याधयोऽशुभाः ।
न सन्ति मायिनस्तत्र यत्रास्तेऽभ्यर्चितो मणिः ॥११॥

दिने दिने स्वर्णभारान् अष्टौ स सृजति प्रभो दुर्भिक्ष मारि अरिष्टानि सर्प अधि व्याधयः अशुभाः न सन्ति मायिनः तत्र यत्र आस्ते अभ्यर्चितः मणिः ॥११॥

प्रभो	महाराज !	मारि सर्प आधि	महामारी, सर्प, चिन्ताएँ,
स मणिः	वह मणि	व्याधयः	रोगः
दिने दिने	प्रतिदिन	अशुभाः	अशुभ
अष्टौ	आठ	अरिष्टानि	ग्रहपीड़ा,
स्वर्णभारान्	स्वर्ण भार*	मायिनः	मायावियोंके
सृजति	उत्पन्न करती थी ।	तत्र न सन्ति	उपद्रव वहाँ नहीं होते थे ॥११॥
यत्र अभ्यर्चितः आस्ते	जहाँ वह पूजित होती थी		
दुर्भिक्ष	अकाल,		

स याचितो मणिं क्वापि यदुराजाय शौरिणा ।
नैवार्थकामुकः प्रादाद् याच्ञाभङ्गमतर्कयन् ॥१२॥

---

* ४ चावल की १ गुंजा, ५ गुंजा का १ पण, ८ पण का १ धरण, ८ धरण का १ कर्ष, ४ कर्ष का १ पल, १०० पल की १ तुला, २० तुला का १ भार कहलाता है ।

स याचितः मणिं क्व अपि यदुराजाय शौरिणा न एव अर्थ कामुकः प्रादात् याञ्चाभङ्गम् अतर्कयन् ॥१२॥

क्व	किसी	याञ्चाभङ्गम्	आज्ञा भंगका
अपि शौरिणा	दिन श्रीकृष्ण द्वारा	अतर्कयन्	विचार न करके
यदुराजाय	यादव नरेश उग्रसेन के लिए	अर्थ कामुकः	उस धनको चाहने वालेने
स मणिं याचितः	वह मणि मांगी जाने पर	न एव प्रादात्	नहीं ही दिया ॥१२॥

तमेकदा मणिं कण्ठे प्रतिमुच्य महाप्रभम् ।
प्रसेनो हयमारुह्य मृगयां व्यचरद् वने ॥१३॥

तं एकदा मणिं कण्ठे प्रतिमुच्य महाप्रभं प्रसेनः हयं आरुह्य मृगयां व्यचरत् वने ॥१३॥

एकदा	एक बार	प्रसेनः	प्रसेन
तं महाप्रभं	उस अत्यन्त प्रकाशमान	हयं आरुह्य	घोड़ेपर चढ़कर
		वने	वनमें
मणिं कण्ठे	मणिको गलेमें	मृगयां व्यचरत्	आखेट करने लगा ॥१३॥
प्रतिमुच्य	पहिनकर		

प्रसेनं सहयं हत्वा मणिमाच्छिद्य केसरी ।
गिरिं विशञ्जाम्बवता निहतो मणिमिच्छता ॥१४॥

प्रसेनं सहयं हत्वा मणिं आच्छिद्य केसरी गिरिं विशन् जाम्बवता निहतः मणिं इच्छता ॥१४॥

सहयं प्रसेनं	घोड़ेके साथ प्रसेन को	मणिं इच्छता	मणि चाहने वाले
		जाम्बवता	जाम्बवन्त द्वारा
हत्वा केसरी	मारकर सिंह	निहतः	मार दिया गया ॥१४॥
मणिं आच्छिद्य	मणि छीनकर		
गिरिं विशन्	पर्वतमें जाते हुए		

सोऽपि चक्रे कुमारस्य मणिं क्रीडनकं बिले ।
अपश्यन् भ्रातरं भ्राता सत्राजित् पर्यतप्यत ॥१५॥

सः अपि चक्रे कुमारस्य मणिं क्रीडनकं बिले अपश्यन् भ्रातरं भ्राता सत्राजित् परि अतप्यत ॥१५॥

सः अपि बिले	उन्होंने भी अपनी गुफामें	भ्रातरं अपश्यन्	भाईको न देखकर
मणिं कुमारस्य	मणिको बालकका	भ्राता	उसका भाई
क्रीडनकं चक्रे	खिलौना बना दिया (इधर)	सत्राजित्	सत्राजित्
		परि अतप्यत	बहुत संतप्त हुआ ॥१५॥

प्रायः कृष्णेन निहतो मणिग्रीवो वनं गतः ।
भ्राता ममेति तच्छ्रुत्वा कर्णे कर्णेऽजपञ्जनाः ॥१६॥

प्रायः कृष्णेन निहतः मणिग्रीवः वनं गतः भ्राता मम इति तत् श्रुत्वा कर्णे कर्णे अजपन् जनाः ॥१६॥

मणिग्रीवः	(कहने लगा)—'गलेमें मणि पहिनकर	इति तत् श्रुत्वा	इस प्रकार वह बात सुनकर
वनं गतः	वनमें गये	जनाः कर्णे कर्णे	लोग एक दूसरेके कानमें
मम भ्राता	मेरे भाईको	अजपन्	फुसफुसाने लगे ॥१६॥
प्रायः	प्रायः (सम्भवतः)		
कृष्णेन निहतः	श्रीकृष्णने मार दिया		

भगवांस्तदुपश्रुत्य दुर्यशो लिप्तमात्मनि ।
मार्ष्टुं प्रसेनपदवीमन्वपद्यत नागरैः ॥१७॥

भगवान् तत् उपश्रुत्य दुर्यशः लिप्तं आत्मनि मार्ष्टुं प्रसेनपदवीं अनु अपद्यत नागरैः ॥१७॥

भगवान्	भगवान
तत् आत्मनि	वह अपनेको
लिप्तं दुर्यशः	लगे अपयशको
उपश्रुत्य माष्टुं	सुनकर उसे मांजने (दूर करने)के लिए
नागरैः	नगरजनोंके साथ
प्रसेनंपदवीं	प्रसेनकी खोजके
अनु अपद्यत	पीछे चले ॥१७॥

हतं प्रसेनमश्वं च वीक्ष्य केसरिणा वने ।
तं चाद्रिपृष्ठे निहतमृक्षेण ददृशुर्जनाः ॥१८॥

हतं प्रसेनं अश्वं च वीक्ष्य केसरिणा वने तं च अद्रि पृष्ठे निहतं ऋक्षेण ददृशुः जनाः ॥१८॥

वने केसरिणा	वनमें सिंह द्वारा
हतं प्रसेनं	मारे गये प्रसेन
च अश्वं वीक्ष्य	तथा घोड़ेको देखकर
जनाः तं च	लोगोंने उस (सिंह) को भी
अद्रि पृष्ठे	पर्वतके ऊपर
ऋक्षेण निहतं	रीछ द्वारा मारा गया
ददृशुः	देखा ॥१८॥

ऋक्षराजबिलं भीममन्धेन तमसाऽऽवृतम् ।
एको विवेश भगवानवस्थाप्य बहिः प्रजाः ॥१९॥

ऋक्षराज बिलं भीमं अन्धेन तमसा आवृतं एकः विवेश भगवान् अवस्थाप्य बहिः प्रजाः ॥१९॥

ऋक्षराज	रीछराजकी
अन्धेन	दिखाई न पड़नेवाले
तमसा आवृतं	अन्धकारसे ढँके
भीमं बिलं	भयानक गुफामें
प्रजाः बहिः	प्रजाजनोंको बाहर
अवस्थाप्य	ठहराकर
भगवान्	भगवान
एकः विवेश	अकेले प्रविष्ट हुए ॥१९॥

तत्र दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं बालक्रीडनकं कृतम् ।
हर्तुं कृतमतिस्तस्मिन्नवतस्थेऽर्भकान्तिके ॥२०॥

तत्र दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं बालक्रीडनकं कृतं हर्तुं कृतमतिः तस्मिन् अवतस्थे अर्भक अन्तिके ॥२०॥

तत्र मणिश्रेष्ठं	वहाँ उस श्रेष्ठ मणिको	तस्मिन्	उस गुफामें
बालक्रीडनकं	बच्चोंका खिलौना	अर्भक अन्तिके	बालकके पास
कृतं दृष्ट्वा	बनाया देखकर	अवतस्थे	खड़े हो गये
हर्तुं कृतमतिः	उसके हरणका निश्चय करके		॥२०॥

तामपूर्वं नरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत् ।
तच्छ्रुत्वाभ्यद्रवत् क्रुद्धो जाम्बवान् बलिनां वरः ॥२१॥

तं अपूर्वं नरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत् तत् श्रुत्वा अभि अद्रवत् क्रुद्धः जाम्बवान् बलिनां वरः ॥२१॥

तं अपूर्वं	उस पहिले न देखे	बलिनां वरः	बलवानोंमें श्रेष्ठ
नरं दृष्ट्वा	पुरुषको देखकर	जाम्बवान्	जाम्बवन्त
धात्री भीतवत्	धाय डरेके समान	क्रुद्धः	क्रोध करके
चुक्रोश	चिल्ला पड़ी,	अभि अद्रवत्	उस ओर दौड़ पड़े
तत् श्रुत्वा	उसे सुनकर		॥२१॥

स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिनाऽऽत्मनः ।
पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितो नानुभाववित् ॥२२॥

स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिना आत्मनः पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितः न अनुभाववित् ॥२२॥

अनुभाववित् न	उनके प्रभावको न जाननेके कारण
वै आत्मनः	निश्चय अपने ही
स्वामिना	स्वामीसे
प्राकृतं पुरुषं	साधारण मनुष्य
मत्वा कुपितः	मानकर क्रोध करके
स भगवता	वे उन भगवानसे
युयुधे	युद्ध करने लगे ॥२२॥

द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलमुभयोर्विजिगीषतोः ।
आयुधाश्मद्रुमैर्दोर्भिः क्रव्यार्थे श्येनयोरिव ॥२३॥

द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलं उभयोः विजिगीषतोः आयुध अश्म द्रुमैः दोर्भिः क्रव्य अर्थे श्येनयोः इव ॥२३॥

क्रव्य अर्थे:	मांसके लिए
श्येनयोः इव	दो बाजोंके समान
विजिगीषतोः	जीतनेकी इच्छा वाले
उभयोः	दोनोंमें
आयुध	हथियारों,
अश्म द्रुमैः	चट्टानों, वृक्षों
दोर्भिः सुतुमुलं	भुजाओंसे अत्यन्त तुमुल
द्वन्द्वयुद्धं	द्वन्द्व युद्ध (होने लगा) ॥२३॥

आसीत्तदष्टाविंशाहमितरेतरमुष्टिभिः ।
वज्रनिष्पेषपरुषैरविश्रममहर्निशम् ॥२४॥

आसीत् तत् अष्टाविंश अहं इतर इतरं मुष्टिभिः वज्र निष्पेष परुषैः अविश्रमं अहः निशम् ॥२४॥

इतरं इतरं	एक दूसरेको
मुष्टिभिः	घूसोंसे (मारते)
तत्	वह
अष्टाविंश अहं	अट्ठाइस दिन
अविश्रमं	अविराम
अहः निशं	दिन-रात
वज्र	वज्रपातके
निष्पेष परुषैः	समान कठोर
आसीत्	(युद्ध) चलता रहा ॥२४॥

कृष्णमुष्टिविनिष्पातनिष्पिष्टाङ्गोरुबन्धनः ।
क्षीणसत्त्वः स्विन्नगात्रस्तमाहातीव विस्मितः ॥२५॥

कृष्णमुष्टि विनिष्पात निष्पिष्ट अङ्ग उरु बन्धनः क्षीणसत्त्वः स्विन्नगात्रः तं आह अतीव विस्मितः ॥२५॥

कृष्ण मुष्टि	श्री कृष्णके घूसोंके	क्षीणसत्त्वः	हतोत्साहित
विनिष्पात	पूरे जोरसे पड़नेसे	स्विन्नगात्रः	पसीनेसे भरे शरीर
उरु	सुदृढ़	अतीव विस्मितः	अत्यन्त चकित
अङ्ग बन्धनः	शरीर-बन्धन	तं आह	उनसे (जाम्बवन्त) बोल ॥२५॥
निष्पिष्ट	जैसे पिस गये हों		

जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण ओजः सहो बलम् ।
विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम् ॥२६॥

जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण ओजः सहः बलं विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुं अधीश्वरम् ॥२६॥

सर्वभूतानां	सम्पूर्ण प्राणियोंके	पुराणपुरुषं	सनातन पुरुष,
प्राण	प्राण,	प्रभविष्णुं	प्रतिपालक,
ओजः सहः	मनोबल, सहनशक्ति,	अधीश्वरं	सर्वेश्वर
बलं त्वां	शरीर बल रूप आपको	विष्णुं जाने	विष्णु जान गया ॥२६॥

त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा सृज्यानामपि यच्च सत् ।
कालः कलयतामीशः पर आत्मा तथाऽऽत्मनाम् ॥२७॥

त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा सृज्यानां अपि यत् च सत् कालः कलयतां ईशः पर आत्मा तथा आत्मनाम् ॥२७॥

हि त्वं	क्योंकि आप
विश्वसृजां	विश्व निर्माताओं (ब्रह्मादि)को
स्रष्टा	उत्पन्न करने वाले हैं,
सृज्यानां अपि	सृष्टिमें भी
यत् च सत्	जो भी सत्ता है वह (उपादान),
कालयतां	विनाशकोंके
ईशः कालः	स्वामी काल
तथा आत्मनाम्	तथा आत्माओंसे
पर आत्मा	परे आत्मा (परमात्मा) हैं ॥२७॥

यस्येषदुत्कलितरोषकटाक्षमोक्षे-
वर्त्मादिशत् क्षुभितनक्रतिमिङ्गिलोऽब्धिः ।
सेतुः कृतः स्वयश उज्ज्वलिता च लङ्का
रक्षःशिरांसि भुवि पेतुरिषुक्षतानि ॥२८॥

यस्य ईषत् उत्कलित रोष कटाक्ष मोक्षैः वर्त्म आदिशत् क्षुभित नक्र तिमिङ्गिलः अब्धिः सेतुः कृतः स्वयश उज्ज्वलिता च लङ्का रक्षःशिरांसि भुवि पेतुः इषुक्षतानि ॥२८॥

यस्य ईषत्	जिनके तनिकसे
उत्कलित रोष	जागे रोष भरे
कटाक्ष मोक्षैः	कटाक्षपातसे
नक्र तिमिङ्गिल	मगर, तिमिंगलों (ह्वेल)के
क्षुभित अब्धिः	क्षुभित होने पर समुद्रने
वर्त्म आदिशत्	मार्ग बतला दिया,
सेतुः कृतः	उसपर पुल बनाकर
स्वयश लङ्का	अपने सुयशसे लङ्का को
च उज्ज्वलिता	भी प्रकाशित किया
इषुक्षतानि	(तथा जिनके) बाणोंसे कटे
रक्षःशिरांसि	राक्षसोंके सिर
भुवि पेतुः	पृथ्वी पर गिर गये' ॥२८॥

इति विज्ञातविज्ञानमृक्षराजानमच्युतः ।
व्याजहार महाराज भगवान् देवकीसुतः ॥२९॥

इति विज्ञातविज्ञानं ऋक्षराजानं अच्युतः व्याजहार महाराज भगवान् देवकीसुतः ॥२९॥

महाराज	महाराज !	भगवान्	भगवान्
इति	इस प्रकार	देवकीसुतः	देवकी-नन्दन
विज्ञातविज्ञानं	(अपना) विशेष ज्ञान हुए	अच्युतः	अच्युत
		व्याजहार	बोले ॥२९॥
ऋक्षराजानं	ऋक्षराज जाम्बवन्त से		

अभिमृश्यारविन्दाक्षः पाणिना शंकरेण तम् ।
कृपया परया भक्तं प्रेमगम्भीरया गिरा ॥३०॥

अभिमृश्य अरविन्द अक्षः पाणिना शङ्करेण तं कृपया परया भक्तं प्रेमगम्भीरया गिरा ॥३०॥

परया कृपया	परम कृपासे	अरविद अक्षः	कमलनयन
तं भक्तं	उन भक्तको	प्रेमगम्भीरया	प्रेम पूर्ण गम्भीर
शङ्करेण	शान्तिदायी	गिरा	वाणीसे (बोले) ॥३०॥
पाणिना	हाथसे		
अभिमृश्य	सहलाकर		

मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम् ।
मिथ्याभिशापं प्रमृजन्नात्मनो मणिनामुना ॥३१॥

मणिहेतोः इह प्राप्ता वयं ऋक्षपते बिलं मिथ्या अभिशापं प्रमृजन् आत्मनः मणिना अमुना ॥३१॥

ऋक्षपते	'ऋक्षराज !	मिथ्या	झूठे
अमुना मणिना	इस मणिके कारण लगे	अभिशापं	कलंकको
		प्रमृजन्	सर्वथा दूर करनेके लिए
आत्मनः	अपने		

मणिहेतोः	इस मणिके लिए	बिलं प्राप्ता	गुफामें आये हैं'
वयं इह	हम यहाँ		॥३१॥

इत्युक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जाम्बवतीं मुदा ।
अर्हणार्थं स मणिना कृष्णायोपजहार ह ॥३२॥

इति उक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जाम्बवतीं मुदा अर्हण अर्थं स मणिना कृष्णाय उपजहार ह ॥३२॥

इति उक्तः	ऐसा कहने पर	स मणिना	मणिके साथ
मुदा	प्रसन्न होकर	कृष्णाय ह	श्रीकृष्णको ही
अर्हण अर्थं	पूजा करनेके लिए	उपजहार	उपहारमें दे दी
स्वां दुहितरं	अपनी पुत्री		॥३२॥
कन्यां	कुमारी		
जाम्बवतीं	जाम्बवतीको		

अदृष्ट्वा निर्गमं शौरेः प्रविष्टस्य बिलं जनाः ।
प्रतीक्ष्य द्वादशाहानि दुःखिताः स्वपुरं ययुः ॥३३॥

अदृष्ट्वा निर्गमं शौरेः प्रविष्टस्य बिलं जनाः प्रतीक्ष्य द्वादश अहानि दुःखिताः स्वपुरं ययुः ॥३३॥

जनाः	पुरवासी लोग	निर्गमं अदृष्ट्वा	उनको निकलते न देखकर
बिलं प्रविष्टस्य	गुफामें प्रवेश किये	दुःखिताः	दुःखी होकर
शौरेः	श्रीकृष्णकी	स्वपुरं ययुः	अपने नगर लौट
द्वादश अहानि	बारह दिन		गये ॥३३॥
प्रतीक्ष्य	प्रतीक्षा करके		

निशम्य देवकी देवी रुक्मिण्यानकदुन्दुभिः ।
सुहृदो ज्ञातयोऽशोचन् बिलात् कृष्णमनिर्गतम् ॥३४॥

निशम्य देवकी देवी रुक्मिणि आनकदुन्दुभिः सुहृदः ज्ञातयः अशोचन् बिलात् कृष्णं अनिर्गतम् ॥३४॥

बिलात् कृष्णं	गुफासे श्रीकृष्ण	**आनकदुन्दुभिः**	वसुदेवजी,
अनिर्गतं	नहीं निकले	**सुहृदः ज्ञातयः**	सम्बन्धी और जाति के लोग
निशम्य	यह सुनकर		
देवकी देवी	देवी देवकी	**अशोचन्**	चिन्ता करने लगे ॥३४॥
रुक्मिणि	रुक्मिणी		

सत्राजितं शपन्तस्ते दुःखिता द्वारकौकसः ।
उपतस्थुर्महामायां दुर्गां कृष्णोपलब्धये ॥३५॥

सत्राजितं शपन्तः ते दुःखिता द्वारकौकसः उपतस्थुः महामायां दुर्गां कृष्ण उपलब्धये ॥३५॥

ते दुःखिता	वे दुःखी	**महामायां दुर्गां**	महामाया दुर्गाकी
द्वारकौकसः	द्वारिकावासी	**उपतस्थुः**	उपासना करने लगे ॥३५॥
सत्राजितं	सत्राजितको		
शपन्तः	कोसते हुए		
कृष्ण उपलब्धये	श्रीकृष्णकी प्राप्ति के लिए		

तेषां तु देव्युपस्थानात् प्रत्यादिष्टाशिषा स च ।
प्रादुर्बभूव सिद्धार्थः सदारो हर्षयन् हरिः ॥३६॥

तेषां तु देवि उपस्थानात् प्रत्यादिष्टा आशिषा स च प्रादुः बभूव सिद्ध अर्थः स दारः हर्षयन् हरिः ॥३६॥

देवि	देवीकी	**प्रत्यादिष्टा**	प्रदान किया,
उपस्थानात्	उपासनासे	**च स हरिः**	और वे श्रीहरि (उसी समय)
तेषां तु	उनको तो (देवीने)		
आशिषा	आशीर्वाद		

हर्षयन्	उनको हर्षित करते	प्रादुः बभूव	प्रकट हो गये
सिद्ध अर्थः	प्रयोजन सिद्ध करके		॥३६॥
सदारः	पत्नीके साथ		

उपलभ्य हृषीकेशं मृतं पुनरिवागतम् ।
सह पत्न्या मणिग्रीवं सर्वे जातमहोत्सवाः ॥३७॥

उपलभ्य हृषीकेशं मृतं पुनः इव आगतं सह पत्न्या मणिग्रीवं सर्वे जात महोत्सवाः ॥३७॥

मृतं पुनः आगतं	मरकर फिर आयेके समान	उपलभ्य	अपने समीप पाकर
सह पत्न्या	पत्नीके साथ	सर्वे जात	सबको
मणिग्रीवं	गलेमें मणि पहिने	महोत्सवाः	अत्यन्त आनन्द हुआ ॥३७॥
हृषीकेशं	हृषीकेशको		

सत्राजितं समाहूय सभायां राजसंनिधौ ।
प्राप्तिं चाख्याय भगवान् मणिं तस्मै न्यवेदयत् ॥३८॥

सत्राजितं सम आहूय सभायां राजसन्निधौ प्राप्तिं च आख्याय भगवान् मणिं तस्मै न्यवेदयत् ॥३८॥

सत्राजितं	सत्राजितको	प्राप्तिं च	मिलनेका हालभी
राजसन्निधौ	राजा उग्रसेनके समीप	आख्याय	बतलाकर
सभायां	सभामें	तस्मै मणिं	उसको मणि
सम आहूय	आदरसे बुलवाकर	न्यवेदयत्	निवेदन कर दी ॥३८॥

स चातिव्रीडितो रत्नं गृहीत्वावाङ्मुखस्ततः ।
अनुतप्यमानो भवनमगमत् स्वेन पाप्मना ॥३९॥

स च अतिव्रीडितः रत्नं गृहीत्वा अवाङ्मुखः ततः अनुतप्यमानः भवनं अगमत् स्वेन पाप्मना ॥३६॥

स च	वह भी	स्वेन पाप्मना	अपने ही पापसे
अतिव्रीडितः	अत्यन्त लज्जित होकर	अनुतप्यमानः	संतप्त होता
रत्नं गृहीत्वा	रत्न लेकर	ततः भवनं	वहाँसे अपने घर
अवाङ्मुखः	नीचे सिर झुकाकर	अगमत्	चला गया ॥३६॥

सोऽनुध्यायंस्तदेवाघं बलवद्विग्रहाकुलः ।
कथं मृजाम्यात्मरजः प्रसीदेद् वाच्युतः कथम् ॥४०॥

सः अनुध्यायन् तत् एव अघं बलवत् विग्रह आकुलः कथं मृजामि आत्मरजः प्रसीदेत् वा अच्युतः कथम् ॥४०॥

बलवत्	बलवानकी	आत्मरजः	'अपना दोष
विग्रह आकुलः	शत्रुतासे व्याकुल होकर	कथं मृजामि	कैसे दूर करूँ
		वा अच्युतः	अथवा अच्युत
सः तत् एव	वह उसी	कथं प्रसीदेत्	कैसे प्रसन्न हों ॥४०॥
अघं अनुध्यायन्	अपराधको बार-बार सोचने लगा		

किं कृत्वा साधु मह्यं स्यान्न शपेद् वा जनो यथा ।
अदीर्घदर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविणलोलुपम् ॥४१॥

किं कृत्वा साधु मह्यं स्यात् न शपेत् वा जनः यथा अदीर्घ दर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविण लोलुपम् ॥४१॥

किं कृत्वा	क्या करने से	क्षुद्रं मूढं	तुच्छ मूर्ख
मह्यं	मेरा	द्रविण लोलुपं	धन-लोभीको
साधु स्यात	भला होगा,	वा जनः यथा	अथवा लोग जैसे
अदीर्घ दर्शनं	दूर तक न देखने वाले	शपेत् न	कोसें नहीं ॥४१॥

दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नमेव च ।
उपायोऽयं समीचीनस्तस्य शान्तिर्न चान्यथा ॥४२॥

दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नं एव च उपायः अयं समीचीनः तस्य शान्तिः न च अन्यथा ॥४२॥

तस्मै स्त्रीरत्नं	उनको स्त्रीरत्न	समीचीनः	उपयुक्त है
दुहितरं	अपनी पुत्री	तस्य शान्तिः	उनकी शान्ति
च रत्नं एव	तथा रत्न भी	अन्यथा न च	अन्यथा नहीं ही
दास्ये	दे दूँगा,		होगी' ॥४२॥
अयं उपायः	यह उपाय		

एवं व्यवसितो बुद्ध्या सत्राजित् स्वसुतां शुभाम् ।
मणिं च स्वयमुद्यम्य कृष्णायोपजहार ह ॥४३॥

एवं व्यवसितः बुद्ध्या सत्राजित् स्वसुतां शुभां मणिं च स्वयं उद्यम्य कृष्णाय उपजहार ह ॥४३॥

एवं बुद्ध्या	इस प्रकार बुद्धिसे	च मणिं ह	और मणिको भी
व्यवसितः	निश्चय करके	कृष्णाय	श्रीकृष्णको
सत्राजित्	सत्राजित्ने	उपजहार	भेंट कर दी ॥४३॥
स्वयं उद्यम्य	स्वयं उद्योग करके		
शुभां स्वसुतां	शुभ लक्षणा अपनी पुत्री		

तां सत्यभामां भगवानुपयेमे यथाविधि ।
बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्यगुणान्विताम् ॥४४॥

तां सत्यभामां भगवान् उपयेमे यथा विधि बहुभिः याचितां शील रूप औदार्य गुण अन्विताम् ॥४४॥

बहुभिः	बहुत लोगों द्वारा	सत्यभामां	सत्यभामासे
याचितां	मांगी गयी	यथा विधि	विधिपूर्वक
शील रूप	शील, सौन्दर्य,	भगवान्	भगवानने
औदार्य गुण	उदारता, गुण	उपयेमे	विवाह किया
अन्वितां तां	युक्ता उस		॥४४॥

भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप ।
तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥४५॥

भगवान् आह न मणिं प्रतीच्छामः वयं नृप तव आस्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥४५॥

भगवान् आह	भगवानने कहा	च वयं	और हम
नृप	राजन्	फलभागिनः	इसके फल (इससे प्रगट होने वाले स्वर्णके) अधिकारी हैं ॥४५॥
मणिं वयं	मणि हम		
न प्रतीच्छामः	नहीं लेना चाहते		
देवभक्तस्य	सूर्य देवके भक्त		
तव आस्तां	आपके ही पास (यह) रहे,		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे स्यमन्तकोपाख्याने षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

अथ सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

विज्ञातार्थोऽपि गोविन्दो दग्धानाकर्ण्य पाण्डवान् ।
कुन्तीं च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरून् ॥१॥

विज्ञात अर्थः अपि गोविन्दः दग्धान् आकर्ण्य पाण्डवान् कुन्तीं च कुल्यकरणे सहरामः ययौ कुरून् ॥१॥

विज्ञात	वास्तविकताको
अर्थः अपि	जानने पर भी
गोविन्दः	गोविन्द
पाण्डवान्	पाण्डवोंको
च कुन्तीं	तथा कुन्तीको
दग्धान् आकर्ण्य	जला हुआ सुनकर
कुल्यकरणे	कुलोचित व्यवहार करने
सहरामः	बलदेवजीके साथ
कुरून् ययौ	कौरवोंके समीप गये ॥१॥

भीष्मं कृपं सविदुरं गान्धारीं द्रोणमेव च ।
तुल्यदुःखौ च संगम्य हा कष्टमिति होचतुः ॥२॥

भीष्मं कृपं सविदुरं गान्धारीं द्रोणं एव च तुल्य दुःखौ च सङ्गम्य हा कष्टं इति ह ऊचतुः ॥२॥

तुल्य दुःखौ	समान दुःखी
भीष्मं कृपं	भीष्म, कृपाचार्य,
सविदुरं	विदुरजीके साथ
गान्धारीं	गान्धारीं
च द्रोणं एव	तथा द्रोणाचार्यसे भी
सङ्गम्य	मिलकर
हा कष्टं	'हा' बड़े कष्टकी बात हुई
इति ह ऊचतुः	ऐसा ही कहा ॥२॥

लब्ध्वैतदन्तरं राजन् शतधन्वानमूचतुः ।
अक्रूरकृतवर्माणौ मणिः कस्मान्न गृह्यते ॥३॥

लब्ध्वा एतत् अन्तरं राजन् शतधन्वानं ऊचतुः अक्रूर कृतवर्माणौ मणिः कस्मात् न गृह्यते ॥३॥

राजन्	राजन् !	ऊचतुः	कहा—
एतत् अन्तरं	यह अवकाश	मणिः कस्मात्	'(सत्राजित्से) मणि क्यों
लब्ध्वा	पाकर	न गृह्यते	नहीं ले लेते हो ॥३॥
अक्रूर	अक्रूर		
कृतवर्माणौ	तथा कृतवर्मासे		
शतधन्वानं	शतधन्वासे		

योऽस्मभ्यं संप्रतिश्रुत्य कन्यारत्नं विगर्ह्यं नः ।
कृष्णायादान्न सत्राजित् कस्माद् भ्रातरमन्वियात् ॥४॥

यः अस्मभ्यं संप्रतिश्रुत्य कन्यारत्नं विगर्ह्यं नः कृष्णाय अदात् न सत्राजित् कस्मात् भ्रातरं अनु इयात् ॥४॥

यः अस्मभ्यं	जिसने हम लोगों को	कन्यारत्नं	कन्यारत्न
		अदात्	दे दिया
संप्रतिश्रुत्य	भली प्रकार वचन देकर	सत्राजित्	वह सत्राजित्
		कस्मात् भ्रातरं	क्यों भाईके
नः विगर्ह्यं	हमारा तिरस्कार	अनु इयात् न	पीछे न जाय' ॥४॥
कृष्णाय	श्रीकृष्णको		

एवं भिन्नमतिस्ताभ्यां सत्राजितमसत्तमः ।
शयानमवधील्लोभात् स पापः क्षीणजीवितः ॥५॥

एवं भिन्न मतिः ताभ्यां सत्राजितं असत्तमः शयानं अवधीत् लोभात् स पापः क्षीण जीवितः ॥५॥

एवं ताभ्यां	इस प्रकार उन दोनों द्वारा	स पापः	उस पापी
		असत्तमः	महादुष्टने
भिन्नमतिः	बहकाये जाने पर	शयानं	सोते
लोभात्	लोभवश	सत्राजितं	सत्राजितको
क्षीणजीवितः	जिसका जीवन क्षीण हो चुका था	अवधीत्	मार दिया ॥५॥

स्त्रीणां विक्रोशमानानां क्रन्दन्तीनामनाथवत् ।
हत्वा पशून् सौनिकवन्मणिमादाय जग्मिवान् ॥६॥

स्त्रीणां विक्रोशमानानां क्रन्दन्तीनां अनाथवत् हत्वा पशून् सौनिकवत् मणिं आदाय जग्मिवान् ॥६॥

पशून्	पशुओंको	विक्रोशमानानां	चिल्लाते
सौनिकवत्	कसाईकी भांति	क्रन्दन्तीनां	क्रन्दन करते हुए
हत्वा	मारकर	मणिं आदाय	मणि लेकर
अनाथवत्	अनाथाकी भांति	जग्मिवान्	चला गया ॥६॥
स्त्रीणां	स्त्रियोंके		

सत्यभामा च पितरं हतं वीक्ष्य शुचार्पिता ।
व्यलपत्तात तातेति हा हतास्मीति मुह्यती ॥७॥

सत्यभामा च पितरं हतं वीक्ष्य शुचा अर्पिता व्यलपत् तात तात इति हा हता अस्मि इति मुह्यती ॥७॥

सत्यभामा च	सत्यभामा भी	तात हा तात	'पिता, हा पिता
पितरं	पिताको	हता अस्मि	मैं मारी गयी,
हतं वीक्ष्य	मारा गया देखकर	इति	ऐसा
शुचा अर्पिता	शोक-पीड़ित होकर	मुह्यती इति	कहती मूर्छित हो हो गयीं ॥७॥

तैलद्रोण्यां मृतं प्रास्य जगाम गजसाह्वयम् ।
कृष्णाय विदितार्थाय तप्ताऽऽचख्यौ पितुर्वधम् ॥८॥

तैलद्रोण्यां मृतं प्रास्य जगाम गजसाह्वयं कृष्णाय विदित अर्थाय तप्ता आचख्यौ पितुः वधम् ॥८॥

मृतं तैलद्रोण्यां	(फिर) मरेको तेल के कड़ाहेमें	कृष्णाय	श्रीकृष्णसे
		तप्ता पितुः वधं	सन्तप्त होकर पिताका वध
प्रास्य	डुबाकर		
गजसाह्वयं	हस्तिनापुर	आचख्यौ	सुनाया ॥८॥
जगाम	गयीं		
विदित अर्थाय	(वहां उनके आने का) प्रयोजन समझ गये		

तदाकर्ण्येश्वरौ राजन्ननुसृत्य नृलोकताम् ।
अहो नः परमं कष्टमित्यस्राक्षौ विलेपतुः ॥९॥

तदा आकर्ण्य ईश्वरौ राजन् अनुसृत्य नृलोकतां अहो नः परमं कष्टं इति अश्रु अक्षौ विलेपतुः ॥९॥

राजन्	राजन् !	अहो नः	'अहो हम पर
तदा आकर्ण्य	तब वह सुनकर	परमं कष्टं	घोर संकट आ गया'
ईश्वरौ	ईश्वर होने पर भी (बलराम-श्रीकृष्ण)	इति अश्रु अक्षौ	यह कहते नेत्रोंमें आंसू भरकर
नृलोकतां	मनुष्य लोकका	विलेपतुः	विलाप करने लगे ॥९॥
अनुसृत्य	अनुसरण करके		

आगत्य भगवांस्तस्मात् सभार्यः साग्रजः पुरम् ।
शतधन्वानमारेभे हन्तुं हर्तुं मणिं ततः ॥१०॥

आगत्य भगवान् तस्मात् सभार्यः साग्रजः पुरं शतधन्वानं आरेभे हन्तुं हर्तुं मणिं ततः ॥१०॥

तस्मात्	वहांसे	हन्तुं तथा	मारने को और
सभार्यः साग्रजः	पत्नीके साथ तथा बड़े भाईके साथ	ततः मणिं हर्तुं	उससे मणि छीन लेनेका
पुरं आगत्य	अपने नगर आकर	आरेभे	उद्योग प्रारम्भ किया ॥१०॥
भगवान्	भगवानने		
शतधन्वानं	शतधन्वाको		

सोऽपि कृष्णोद्यमंज्ञात्वा भीतः प्राणपरीप्सया ।
साहाय्ये कृतवर्माणमयाचत स चाब्रवीत् ॥११॥

सः अपि कृष्ण उद्यमं ज्ञात्वा भीतः प्राण परीप्सया साहाय्ये कृतवर्माणं अयाचत स च अब्रवीत् ॥११॥

सः अपि	उसने भी	कृतवर्माणं	कृतवर्मासे
कृष्ण	श्रीकृष्णका	साहाय्ये	सहायता करनेकी
उद्यमं ज्ञात्वा	प्रयत्न जानकर	अयाचत	प्रार्थना की
भीतः	डरकर	स च अब्रवीत्	उसने भी कहा ॥११॥
प्राण परीप्सया	प्राण रक्षाके लिए		

नाहमीश्वरयोः कुर्यां हेलनं रामकृष्णयोः ।
को नु क्षेमाय कल्पेत तयोर्वृजिनमाचरन् ॥१२॥

न अहं ईश्वरयोः कुर्यां हेलनं रामकृष्णयोः कः नु क्षेमाय कल्पेत तयोः वृजिनं आचरन् ॥१२॥

अहं ईश्वरयोः	मैं सर्वसमर्थ	हेलनं न कुर्यां	अवहेलना नहीं करूंगा,
रामकृष्णयोः	बलराम-श्रीकृष्णकी		

तयोः	उनका	कल्पेत	रह सकता है
अाचरत्	अपराध करके		॥१२॥
नु कः क्षेमाय	भला कौन सकुशल		

कंसः सहानुगोऽपीतो यद्द्वेषात्त्याजितः श्रिया ।
जरासंधः सप्तदश संयुगान् विरथो गतः ॥१३॥

कंसः सह अनुगः अपि इतः यत् द्वेषात् त्याजितः श्रिया जरासन्धः सप्तदश संयुगान् विरथः गतः ॥१३॥

यत् द्वेषात्	जिनसे द्वेष करने के कारण	जरासन्धः	जरासन्ध
		सप्तदश	सत्रहबार
सह अनुगः	अनुगामियोंके साथ	संयुगान्	युद्धसे
कंसः अपि	कंस भी	विरथः गतः	रथहीन होकर लौट गया' ॥१३॥
इतः	यहां		
श्रिया त्याजितः	राजलक्ष्मी भ्रष्ट हुआ और		

प्रत्याख्यातः स चाक्रूरं पार्ष्णिग्राहमयाचत ।
सोऽप्याह को विरुध्येत विद्वानीश्वरयोर्बलम् ॥१४॥

प्रति आख्यातः स च अक्रूरं पार्ष्णिग्राहं अयाचत सः अपि आह कः विरुध्येत विद्वान् ईश्वरयोः बलम् ॥१४॥

प्रति आख्यातः	उलटा उत्तर पाकर	ईश्वरयोः बलं	'उन सर्वसमर्थों की शक्ति
स च अक्रूरं	उसने भी अक्रूरसे		
पार्ष्णिग्राहं	अपना पक्ष लेनेकी	विद्वान् कः	जानकर कौन
अयाचत	मांग की	विरुध्येत	(उनसे) विरोध करेगा ॥१४॥
सः अपि आह	उन्होंने भी कहा—		

य इदं लीलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च ।
चेष्टां विश्वसृजो यस्य न विदुर्मोहिताजया ॥१५॥

यः इदं लीलया विश्वं सृजति अवति हन्ति च चेष्टां विश्वसृजः यस्य न विदुः मोहिता अजया ॥१५॥

यः इदं विश्वं	जो इस विश्वको	अजया मोहिता	(उनकी) मायासे
लीलया सृजति	लीलासे ही बनाते,	विश्वसृजः	विश्वस्रष्टा (ब्रह्मादि)
अवति च हन्ति	पालते तथा मार देते हैं	न विदुः	नहीं जानते ॥१५॥
यस्य चेष्टां	जिनकी चेष्टाको		

यः सप्तहायनः शैलमुत्पाट्यैकेन पाणिना ।
दधार लीलया बाल उच्छिलीन्ध्रमिवार्भकः ॥१६॥

यः सप्तहायनः शैलं उत्पाट्य एकेन पाणिना दधार लीलया बाल उच्छिलीन्ध्रं इव अर्भकः ॥१६॥

यः सप्तहायनः	जो सात वर्षके	उच्छिलीन्ध्रं	बरसाती छत्तेको
बाल	बालक होने पर भी	अर्भकः इव	छोटे शिशुके समान
एकेन पाणिना	एक ही हाथसे	दधार	धारण किये रहे ॥१६॥
शैलं उत्पाट्य	पर्वत उखाड़ कर		

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाद्भुतकर्मणे ।
अनन्तायादिभूताय कूटस्थायात्मने नमः ॥१७॥

नमः तस्मै भगवते कृष्णाय अद्भुत कर्मणे अनन्ताय आदिभूताय कूटस्थाय आत्मने नमः ॥१७॥

तस्मै भगवते	उन भगवान	आदिभूताय	प्राणियोंके आदिकारण
अद्भुत कर्मणे	अद्भुत-कर्मा	कूटस्थाय	कूटस्थ
कृष्णाय नमः	श्रीकृष्णको नमस्कार	आत्मने नमः	परमात्माको नमस्कार' ॥१७॥
अनन्ताय	अनन्त		

प्रत्याख्यातः स तेनापि शतधन्वा महामणिम् ।
तस्मिन् न्यस्याश्वमारुह्य शतयोजनगं ययौ ॥१८॥

प्रति आख्यातः स तेन अपि शतधन्वा महामणिं तस्मिन् न्यस्य अश्वं आरुह्य शतयोजनगं ययौ ॥१८॥

तेन अपि स	उनके द्वारा भी वह	शतयोजनगं	सौ योजन जाने वाले
प्रति आख्यातः	उलटा उत्तर पाकर	अश्वं	घोड़े पर
महामणिं	महामणिको	आरुह्य ययौ	चढ़कर चला गया
तस्मिन् न्यस्य	उनके पास छोड़कर		॥१८॥
शतधन्वा	शतधन्वा		

गरुडध्वजमारुह्य रथं रामजनार्दनौ ।
अन्वयातां महावेगैरश्वै राजन् गुरुद्रुहम् ॥१९॥

गरुडध्वजं आरुह्य रथं रामजनार्दनौ अनु आयातां महावेगैः अश्वैः राजन् गुरुद्रुहम् ॥१९॥

राजन्	राजन् !	अश्वैः गुरुद्रुहं	घोड़ों द्वारा गुरुजन (श्वसुर)से द्रोह करने वालेके
रामजनार्दनौ	बलराम-श्रीकृष्ण		
गरुडध्वजं	गरुड़ध्वज		
रथं आरुह्य	रथपर चढ़कर	अनु आयातां	पीछे लग गये
महावेगैः	अत्यन्त वेगवान		॥१९॥

मिथिलायामुपवने विसृज्य पतितं हयम् ।
पद्भ्यामधावत् संत्रस्तः कृष्णोऽप्यन्वद्रवद् रुषा ॥२०॥

मिथिलायां उपवने विसृज्य पतितं हयं पद्भ्यां अधावत् सन्त्रस्तः कृष्णः अपि अनु अद्रवत् रुषा ॥२०॥

मिथिलायां	मिथिलापुरीके	पतितं हयं	गिरे घोड़ेको
उपवने	बगीचेमें		

विसृज्य	छोड़कर	रुषा	क्रुपित होकर
सन्त्रस्तः	अत्यन्त डरकर	अनु अद्रवत्	(उसके) पीछे
पद्भ्यां अधावत्	पैदल दौड़ने लगा,		झपटे ॥२०॥
कृष्णः अपि	श्रीकृष्ण भी		

पदातेर्भगवांस्तस्य पदातिस्तिग्मनेमिना ।
चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससो व्यचिनोन्मणिम् ॥२१॥

पदातेः भगवान् तस्य पदातिः तिग्म नेमिना चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससः व्यचिनोत् मणिम् ॥२१॥

तस्य पदातेः	उस पैदलका	चक्रेण शिर	चक्रसे सिर
पदातिः भगवान्	पैदल भगवानने	उत्कृत्य	काटकर
तिग्म नेमिना	तीक्ष्ण धारवाले	वाससः मणि	उसके वस्त्रोंमें मणि
		व्यचिनोत्	ढूँढ़ा ॥२१॥

अलब्धमणिरागत्य कृष्ण आहाग्रजान्तिकम् ।
वृथा हतः शतधनुर्मणिस्तत्र न विद्यते ॥२२॥

अलब्ध मणिः आगत्य कृष्णः आह अग्रज अन्तिकं वृथा हतः शतधनुः मणिः तत्र न विद्यते ॥२२॥

अलब्ध मणिः	मणि न पाकर	शतधनुः	'शतधन्वाको
अग्रज अन्तिकं	बड़े भाईके समीप	वृथा हतः	व्यर्थ मारा
आगत्य	आकर	तत्र मणिः	उसके पास मणि
कृष्णः आह	श्रीकृष्ण बोले—	न विद्यते	नहीं है ॥२२॥

तत आह बलो नूनं स मणिः शतधन्वना ।
कस्मिंश्चित् पुरुषे न्यस्तस्तमन्वेष पुरं व्रज ॥२३॥

ततः आह बलः नूनं स मणिः शतधन्वना कस्मिन् चित् पुरुषे न्यस्तः तं अन्वेष पुरं व्रज ॥२३॥

ततः बलः आह	तब बलरामजीने कहा
नूनं स मणिः	'निश्चय वह मणि
शतधन्वना	शतधन्वा द्वारा
कस्मिन् चित्	किसी
पुरुषे न्यस्तः	पुरुषके पास रखी गयी है,
तं अन्वेष	उसे ढूँढ़ो,
पुरं व्रज	अपने नगर जाओ ॥२३॥

अहं विदेहमिच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम ।
इत्युक्त्वा मिथिलां राजन् विवेश यदुनन्दनः ॥२४॥

अहं विदेहं इच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम इति उक्त्वा मिथिलां राजन् विवेश यदुनन्दनः ॥२४॥

अहं मम	मैं अपने
प्रियतमं	अत्यन्त प्रिय
विदेहं द्रष्टुं	विदेहराजको देखना
इच्छामि	चाहता हूँ' ।
राजन्	राजन् !
इति उक्त्वा	ऐसा कहकर
यदुनन्दनः	यदुनन्दन (बलरामजी)
मिथिलां विवेश	मिथिलामें प्रविष्ट हो गये ॥२४॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय मैथिलः प्रीतमानसः ।
अर्हयामास विधिवदर्हणीयं समर्हणैः ॥२५॥

तं दृष्ट्वा सहसा उत्थाय मैथिलः प्रीतमानसः अर्हयामास विधिवत् अर्हणीयं सम अर्हणैः ॥२५॥

तं	उन
अर्हणीयं दृष्ट्वा	पूजनीयको देखकर
प्रीतमानसः	प्रसन्न चित्त
मैथिलः	मिथिला नरेशने
सहसा उत्थाय	सहसा उठकर
सम अर्हणैः	उत्तम पूजा सामग्री से
अर्हयामास	(उनकी) पूजा की ॥२५॥

उवास तस्यां कतिचिन्मिथिलायां समा विभुः ।
मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना ।
ततोऽशिक्षद् गदां काले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ॥२६॥

उवास तस्यां कतिचित् मिथिलायां समा विभुः मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना ततः अशिक्षत् गदां काले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ॥२६॥

प्रीतियुक्तेन	प्रेमयुक्त	कतिचित् समाः	कुछ वर्ष
महात्मना	महात्मा	उवास	निवास करते रहे
जनकेन	जनक द्वारा	ततः काले	उसी समय
मानितः विभुः	सम्मानित होकर प्रभु बलरामजी	धार्तराष्ट्रः	धृतराष्ट्रके पुत्र
		सुयोधनः	दुर्योधनने
तस्यां	उस	गदां अशिक्षत्	(उनसे) गदायुद्ध सीखा ॥२६॥
मिथिलायां	मिथिलापुरीमें		

केशवो द्वारकामेत्य निधनं शतधन्वनः ।
अप्राप्तिं च मणेः प्राह प्रियायाः प्रियकृद् विभुः ॥२७॥

केशवः द्वारकां एत्य निधनं शतधन्वनः अप्राप्तिं च मणेः प्राह प्रियायाः प्रियकृत् विभुः ॥२७॥

प्रियायाः	प्रियतमा (सत्यभामा)का	शतधन्वनः	शतधन्वाका
		निधनं च	मारा जाना तथा
प्रियकृत् विभुः	प्रिय करने वाले प्रभु	मणेः अप्राप्तिं	मणिका न मिलना
केशवः	केशवने	प्राह	बतला दिया ॥२७॥
द्वारकां एत्य	द्वारिकापुरी आकर		

ततः स कारयामास क्रिया बन्धोर्हतस्य वै ।
सार्कं सुहृद्भिर्भगवान् या याः स्युः साम्परायिकाः ॥२८॥

ततः स कारयामास क्रिया बन्धोः हतस्य वै सार्कं सुहृद्भिः भगवान् याः याः स्युः साम्परायिकाः ॥२८॥

ततः हतस्य	फिर मारे गये	याः याः	जो जो
बन्धोः	सम्बन्धी (श्वसुर) की	साम्परायिकाः	मरणोत्तर

वै क्रिया स्युः	निश्चित कर्म थे	स कारयामास	वह करवायीं
भगवान्	भगवानने		॥२८॥
सुहृत् भिः साकं	सम्बन्धियोंके साथ		

अक्रूरः कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधनोर्वधम् ।
व्यूषतुर्भयवित्रस्तौ द्वारकायाः प्रयोजकौ ॥२९॥

अक्रूरः कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधनोः वधं व्यूषतुः भय वित्रस्तौ द्वारकायाः प्रयोजकौ ॥२९॥

प्रयोजकौ	नियुक्त करने वाले	भय वित्रस्तौ	अत्यन्त भयभीत
अक्रूरः च	अक्रूर तथा		होकर
कृतवर्मा	कृतवर्मा	द्वारकायाः	द्वारिकासे
शतधनोः	शतधन्वाका	व्यूषतुः	विदेश चले गये
वधं श्रुत्वा	वध सुनकर		॥२९॥

अक्रूरे प्रोषितेऽरिष्टान्यासन् वै द्वारकौकसाम् ।
शारीरा मानसास्तापा मुहुर्दैविकभौतिकाः ॥३०॥

अक्रूरे प्रोषिते अरिष्टानि आसन् वै द्वारकौकसां शारीरा मानसाः तापा मुहुः दैविक भौतिकाः ॥३०॥

अक्रूरे प्रोषिते	अक्रूरके प्रवास कर	वै शारीरा	निश्चित शारीरिक
	जाने पर	मानसाः तापा	मानसिक कष्ट
द्वारकौकसां	द्वारिकावासियोंको	अरिष्टानि	ग्रह-बाधाएँ
दैविक भौतिकाः	देवताओं द्वारा तथा	मुहुः आसन्	बार बार होने लगे
	सामान्य कारणसे		॥३०॥

इत्यङ्गोपदिशन्त्येके विस्मृत्य प्रागुदाहृतम् ।
मुनिसवनिवासे किं घटेतारिष्टदर्शनम् ॥३१॥

इति अङ्ग उपदिशन्ति एके विस्मृत्य प्राक् उदाहृतं मुनिवास निवासे किं घटेत अरिष्ट दर्शनम् ॥३१॥

अंग	प्रिय परीक्षित !	निवासे किं	उन भगवान के निवासमें क्या
प्राक् उदाहृतं	पहिले (शास्त्र) वर्णित को	अरिष्ट दर्शनं	अरिष्टोंका दीखना
विस्मृत्य	भूलकर	घटेत	बन सकता है ? ॥३१॥
एके इति	कोई लोग ऐसा		
उपदिशन्ति	कहते हैं (अन्यथा)		
मुनिवास	जिनमें मुनिजन रहते हैं		

देवेऽवर्षति काशीशः श्वफल्कायागताय वै ।
स्वसुतां गान्दिनीं प्रादात् ततोऽवर्षत् स्म काशिषु ॥३२॥

देवे अवर्षति काशी ईशः श्वफल्काय आगताय वै स्वसुतां गान्दिनीं प्रादात् ततः अवर्षत् स्म काशिषु ॥३२॥

देवे अवर्षति	इन्द्रदेवके वर्षा न करने पर	स्वसुतां	अपनी पुत्री
		गान्दिनीं	गान्दिनी
काशी ईशः	काशिराजने	प्रादात्	प्रदान कर दी
वै आगताय	निश्चित आये हुए	ततः काशिषु	तब काशीमें
श्वफल्काय	श्वफाल्कको	अवर्षत्	वर्षा हुई ॥३२॥

तत्सुतस्तत्प्रभावोऽसावक्रूरो यत्र यत्र ह ।
देवोऽभिवर्षते तत्र नोपतापा न मारिकाः ॥३३॥

तत् सुतः तत् प्रभावः असाः अक्रूरः यत्र यत्र ह देवः अभिवर्षते तत्र न उपतापा न मारिकाः ॥३३॥

तत् सुतः	उनके पुत्र	तत् प्रभावः	उन्हींके समान प्रभाववाले हैं
असाः अक्रूरः	ये अक्रूर		

यत्र यत्र ह	जहां जहाँ (ये) होते हैं	न उपतापा	(वहां) कोई कष्ट नहीं होता
तत्र देवः	वहां इन्द्रदेव	न मारिकाः	न महामारी आती
अभिवर्षते	वर्षा करते हैं,		॥३३॥

इति वृद्धवचः श्रुत्वा नैतावदिह कारणम् ।
इति मत्वा समानाय्य प्राहाक्रूरं जनार्दनः ॥३४॥

इति वृद्धवचः श्रुत्वा न एतावत् इह कारणं इति मत्वा समानाय्य प्राह अक्रूरं जनार्दनः ॥३४॥

इति वृद्धवचः	इस प्रकार वृद्ध लोगोंकी बात	अक्रूरं	अक्रूरको
		समानाय्य	सम्मान पूर्वक बुलवाकर
श्रुत्वा	सुनकर		
इह एतावत्	इसमें इतना ही	जनार्दनः प्राह	जनार्दन बोले
कारणं न	कारण नहीं है		॥३४॥
इति मत्वा	ऐसा मानकर		

पूजयित्वाभिभाष्यैनं कथयित्वा प्रियाः कथाः ।
विज्ञाताखिलचित्तज्ञः स्मयमान उवाच ह ॥३५॥

पूजयित्वा अभिभाष्य एनं कथयित्वा प्रियाः कथाः विज्ञात अखिल चित्तज्ञः स्मयमान उवाच ह ॥३५॥

पूजयित्वा	सत्कार करके	स्मयमान ह	मुस्कराते हुये ही
एनं प्रियाःकथाः	इनसे प्रियचर्चा	उवाच	बोले ॥३५॥
अभिभाष्य	करके		
अखिल चित्तज्ञः	सबके चित्तकी बात जानने वाले भगवान		

ननु दानपते न्यस्तस्त्वय्यास्ते शतधन्वना ।
स्यमन्तको मणिः श्रीमान् विदितः पूर्वमेव नः ॥३६॥

ननु दानपते न्यस्तः त्वयि आस्ते शतधन्वना स्यमन्तकः मणिः श्रीमान् विदितः पूर्वं एव नः ॥३६॥

दानपते	दानाध्यक्षजी	नूनं त्वयि आस्ते	निश्चय आपके पास है
शतधन्वना	शतधन्वाकी	नः पूर्व विदितः	(यह) हमको पहिले ज्ञात है ॥३६॥
न्यस्तः	छोड़ी हुई		
श्रीमान्	तेजोमय		
स्यमन्तकः	स्यमन्तक		
मणिः	मणि		

सत्राजितोऽनपत्यत्वाद् गृह्णीयुर्दुहितुः सुताः ।
दायं निनीयापः पिण्डान् विमुच्यर्णं च शेषितम् ॥३७॥

सत्राजितः अनपत्यत्वात् गृह्णीयुः दुहितुः सुताः दायं निनीय आपः पिण्डान् विमुच्य अर्णं च शेषितम् ॥३७॥

सत्राजितः	सत्राजितके	विमुच्य	छोड़ (देकर)
अनपत्यत्वात्	पुत्रहीन होनेके कारण	च अर्णं शेषितं	तथा ऋणसे बचे हुएको
दुहितुः सुताः	उनकी पुत्रीके पुत्र	दायं निनीय	उत्तराधिकारमें ले सकते हैं ॥३७॥
आपः पिण्डान्	विलोदक और पिण्ड		

तथापि दुर्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रते मणिः ।
किंतु मामग्रजः सम्यङ् न प्रत्येति मणिं प्रति ॥३८॥

तथा अपि दुर्धरः तु अन्यैः त्वयि आस्तां सुव्रते मणिः किन्तु मां अग्रजः सम्यक् न प्रत्येति मणिं प्रति ॥३८॥

तथा अपि	ऐसा होने पर भी	मणिः आस्तां	मणि बनी रहे,
अन्यैः तु दुर्धरः	दूसरेके लिए तो (उसे) रखना कठिन होनेसे	किन्तु अग्रजः	किन्तु बड़े भाई
		मणि प्रति	मणिके विषयमें
		मां सम्यक्	मेरा पूरा
सुव्रते त्वयि	उत्तम व्रत करने वाले आपके पास	प्रत्येति न	विश्वास नहीं करते हैं ॥३८॥

दर्शयस्व महाभाग बन्धूनां शान्तिमावह ।
अव्युच्छिन्ना मखास्तेऽद्य वर्तन्ते रुक्मवेदयः ॥३९॥

दर्शयस्व महाभाग बन्धूनां शान्तिम् आवह अव्युच्छिन्ना मखाः ते अद्य वर्तन्ते रुक्मवेदयः ॥३९॥

महाभाग	महाभाग !	मखाः	यज्ञ
दर्शयस्व	(उसे) दिखला दीजिए	अव्युच्छिन्ना	अखण्ड
बन्धूनां	भाइयोंमें	अद्य वर्तन्ते	आजकल चल रहे हैं ॥३९॥
शान्तिं आवह	शान्ति स्थापित कीजिए		
ते रुक्मवेदयः	(उसीके प्रभावसे) आपके सोनेकी वेदी वाले		

एवं सामभिरालब्धः श्वफल्कतनयो मणिम् ।
आदाय वाससाच्छन्नं ददौ सूर्यसमप्रभम् ॥४०॥

एवं सामभिः आलब्धः श्वफल्क तनयः मणिं आदाय वाससा आच्छन्नं ददौ सूर्यसम प्रभम् ॥४०॥

एवं सामभिः	इस प्रकार सामनीति से	श्वफल्क तनयः	श्वफल्कके पुत्र अक्रूरने
आलब्धः	समझाये जाने पर		

वाससा	वस्त्रसे	मणि आदाय	मणि निकालकर
आच्छन्नं	ढकी हुई	ददौ	(भगवानको) दे दी
सूर्यसम प्रभं	सूर्यके समान कान्तिवाली		॥४०॥

स्यमन्तकं दर्शयित्वा ज्ञातिभ्यो रज आत्मनः ।
विमृज्य मणिना भूयस्तस्मै प्रत्यर्पयत् प्रभुः ॥४१॥

स्यमन्तकं दर्शयित्वा ज्ञातिभ्यः रजः आत्मनः विमृज्य मणिना भूयः तस्मै प्रत्यर्पयत् प्रभुः ॥४१॥

स्यमन्तकं	स्यमन्तकको	विमृज्य	पूर्णतः दूर करके
ज्ञातिभ्यः	जातिवालोंको	प्रभुः तस्मै	समर्थ श्रीकृष्णने उन्हींको
दर्शयित्वा	दिखलाकर	प्रत्यर्पयत्	लौटा दिया ।.४१॥
मणिना	इस मणिके द्वारा लगे		
आत्मनः रजः	अपने कीचड़ (कलंक)को		

यस्त्वेतद् भगवत ईश्वरस्य विष्णो-
र्वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलं च ।
आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद् वा
दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिम् ॥४२॥

यः तु एतत् भगवतः ईश्वरस्य विष्णोः वीर्यं आढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलं च आख्यानं पठति शृणोति अनुस्मरेत् वा दुष्कीर्तिं दुरितं अपोह्य याति शान्तिम् ॥४२॥

एतत् भगवतः	इस भगवान	विष्णोः	विष्णुके
ईश्वरस्य	सर्वेश्वर	वीर्यं आढ्यं	पराक्रम परिपूर्ण

वृजिनहरं	पापनाशक	दुष्कीर्ति	वह अपयशों और
च सुमङ्गलं	तथा मंगलमय	दुरितं अपोह्य	पापोंसे छूटकर
आख्यानं	आख्यानको	शान्ति याति	शान्ति प्राप्त करता
यः तु पठति	जो भी पढ़ता है,		है ॥४२॥
शृणोति	सुनता है		
वा अनुस्मरेत्	अथवा स्मरण करता है,		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे स्यमन्तकोपाख्याने सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

अथ अष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एकदा पाण्डवान् द्रष्टुं प्रतीतान् पुरुषोत्तमः ।
इन्द्रप्रस्थं गतः श्रीमान् युयुधानादिभिर्वृतः ॥१॥

एकदा पाण्डवान् द्रष्टुं प्रतीतान् पुरुषोत्तमः इन्द्रप्रस्थं गतः श्रीमान् युयुधान आदिभिः वृतः ॥१॥

एकदा	एकवार	प्रतीतान्	(अज्ञातवाससे) प्रगट हुए
श्रीमान्	श्रीमान्		
पुरुषोत्तमः	पुरुषोत्तम	पाण्डवान् द्रष्टुं	पाण्डवोंको देखने
युयुधान	सात्यकि	इन्द्रप्रस्थं गतः	इन्द्रप्रस्थ गये ॥१॥
आदिभिः वृतः	आदिसे घिरे		

दृष्ट्वा तमागतं पार्था मुकुन्दमखिलेश्वरम् ।
उत्तस्थुर्युगपद् वीराः प्राणा मुख्यमिवागतम् ॥ २ ॥

दृष्ट्वा तं आगतं पार्था मुकुन्दं अखिल ईश्वरं उत्तस्थुः युगपत् वीराः प्राणा मुख्यं इव आगतम् ॥२॥

तं	उन	मुख्यं प्राणा	मुख्य प्राणके
अखिल ईश्वरं	सर्वेश्वर	आगतं इव	आ जानेके समान
मुकुन्दं	मुकुन्दको	युगपत्	एक साथ
आगतं दृष्ट्वा	आया देखकर	उत्तस्थुः	उठ खड़े हुए ॥२॥
वीराः पार्था	वीर पाण्डव		

परिष्वज्याच्युतं वीरा अङ्गसङ्गहतैनसः ।
सानुरागस्मितं वक्त्रं वीक्ष्य तस्य मुदं ययुः ॥ ३ ॥

परिष्वज्य अच्युतं वीरा अङ्गसङ्ग हत एनसः सानुराग स्मितं वक्त्रं वीक्ष्य तस्य मुदं ययुः ॥३॥

वीरा अच्युतं	वीर अच्युतको	**तस्य सानुराग**	उनके प्रेमपूर्ण
परिष्वज्य	आलिंगन करके	**स्मितं वक्त्रं**	मुस्कान युक्त मुख को
अङ्गसङ्ग	उनके शरीरके स्पर्शसे	**वीक्ष्य मुदं ययुः**	देखकर प्रसन्न हो गये ॥३॥
हत एनसः	निष्पाप होकर		

युधिष्ठिरस्य भीमस्य कृत्वा पादाभिवन्दनम् ।
फाल्गुनं परिरभ्याथ यमाभ्यां चाभिवन्दितः ॥ ४ ॥

युधिष्ठिरस्य भीमस्य कृत्वा पाद अभिवन्दनं फाल्गुनं परिरभ्य अथ यमाभ्यां च अभिवन्दितः ॥४॥

युधिष्ठिरस्य	युधिष्ठिरकी	**अथ यमाभ्यां**	फिर दोनों जुड़ावां भाई नकुल-सहदेव द्वारा
भीमस्य	और भीमसेनकी		
पाद अभिवन्दनं	चरण-वन्दना		
कृत्वा फाल्गुनं	करके, अर्जुको	**अभिवन्दितः च**	अभिवन्दित भी हुए ॥४॥
परिरभ्य	आलिङ्गन करके		

परमासन आसीनं कृष्णा कृष्णमनिन्दिता ।
नवोढा व्रीडिता किंचिच्छनैरेत्याभ्यवन्दत ॥ ५ ॥

परम आसन आसीनं कृष्णा कृष्णं अनिन्दिता नवोढा व्रीडिता किञ्चित् शनैः एत्य अभ्यवन्दत ॥५॥

नवोढा	नव-विवाहिता	**किञ्चित्**	कुछ
अनिन्दिता	अनिन्दिता (अनिन्द्य सुन्दरी)	**व्रीडिता**	लज्जिता
		कृष्णा	द्रोपदीने

परम आसन	श्रेष्ठ सिंहासन पर	शनैः एत्य	धीरेसे आकर
आसीनं कृष्णं	बैठे श्रीकृष्णको	अभ्यवन्दत	प्रणाम किया ॥५॥

तथैव सात्यकिः पार्थैः पूजितश्चाभिवन्दितः ।
निषसादासनेऽन्ये च पूजिताः पर्युपासत ॥ ६ ॥

तथा एव सात्यकिः पार्थैः पूजिताः च अभिवन्दितः निषसाद आसने अन्ये च पूजिताः परि उपासत ॥६॥

तथा एव	इसी प्रकार	अन्ये च	दूसरे भी (यादव गण)
पार्थैः सात्यकिः	पाण्डवों द्वारा सात्यकि	पूजिताः	सत् कृत होकर
पूजितः च	सत्कृत होकर तथा	परि उपासत	(श्रीकृष्णके) चारों ओर बैठ गये ॥६॥
अभिवन्दितः	अभिवन्दित होकर		
आसने	आसनपर		
निषसाद	बैठ गये		

पृथां समागत्य कृताभिवादन-
स्तयातिहार्दार्द्रदृशाभिरम्भितः ।
आपृष्टवांस्तां कुशलं सहस्नुषां
पितृष्वसारं परिपृष्टबान्धवः ॥ ७ ॥

पृथां सम आगत्य कृत अभिवादनः तया अतिहार्द आर्द्रदृशा अभिरम्भितः आपृष्टवान् तां कुशलं सहस्नुषां पितृष्वसारं परिपृष्ट बान्धवः ॥७॥

पृथां सम	कुन्तीके समीप	तया अतिहार्द	उनके द्वारा अत्यन्त प्रेमसे
आगत्य	जाकर		
अभिवादन कृत	प्रणाम करने पर	आर्द्र दृशा	अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे

अभिरम्भितः	आलिंगित होकर	सहस्नुषां	पुत्रवधूके साथ
बान्धवः	बन्धुजनोंका (कुशल)	तां कुशलं	उनकी कुशल
परिपृष्ट	पूछे जाने पर	आपृष्टवान्	पूछा ॥७॥
पितृष्वसारं	उन पिताकी बहिन (बुआ)से		

तमाह प्रेमवैक्लव्यरुद्धकण्ठाश्रुलोचना ।
स्मरन्ती तान् बहून् क्लेशान् क्लेशापायात्मदर्शनम् ॥८॥

तं आह प्रेमवैक्लव्य रुद्धकण्ठ अश्रुलोचना स्मरन्ती तान् बहून् क्लेशान् क्लेश अपाय आत्म दर्शनम् ॥८॥

क्लेश अपाय	क्लेश नष्ट करनेके लिए ही	स्मरन्ती	स्मरण करती हुई
		प्रेमवैक्लव्य	प्रेमकी व्याकुलतासे
तं आत्म दर्शनं	उन अपना दर्शन देने वाले (भगवान) से	रुद्धकण्ठ	रुके कण्ठसे
		अश्रुलोचना	नेत्रोंमें अश्रु भरे
तान्	उन (मिले हुए)	आह	बोलीं ॥८॥
बहून् क्लेशान्	बहुतसे क्लेशोंको		

तदैव कुशलं नोऽभूत् सनाथास्ते कृता वयम् ।
ज्ञातीन् नः स्मरता कृष्ण भ्राता मे प्रेषितस्त्वया ॥ ९ ॥

तत् एव कुशलं नः अभूत् सनाथाः ते कृता वयं ज्ञातीन् नः स्मरता कृष्ण भ्राता मे प्रेषितः त्वया ॥९॥

कृष्ण तत् एव	'श्रीकृष्ण ! उसी समय	ते वयं	तुमने हम लोगोंको
		सनाथाः कृता	सनाथ बना दिया जब
नः कुशलं	हमारी कुशल		
अभूत्	हो गयी,		

नः ज्ञातीन्	हम जातिवालोंको	मे भ्राता	मेरे भाई (अक्रूर)को
स्मरता त्वया	स्मरण करके तुमने	प्रेषितः	भेजा ॥९॥

न तेऽस्ति स्वपरभ्रान्तिर्विश्वस्य सुहृदात्मनः ।
तथापि स्मरतां शश्वत् क्लेशान् हंसि हृदि स्थितः ॥१०॥

न ते अस्ति स्व पर भ्रान्तिः विश्वस्य सुहृद आत्मनः तथा अपि स्मरतां शश्वत् क्लेशान् हंसि हृदि स्थितः ॥१०॥

विश्वस्य	सम्पूर्ण विश्वके	शश्वत्	निरन्तर
सुहृद आत्मनः	सुहृद आत्मा	हृदि स्थितः	हृदयमें रहते हुए
ते स्व	तुममें अपने-	क्लेशान् हंसि	(उनके) क्लेश नष्ट
पर भ्रान्तिः	परायेका भ्रम		करते रहते हो'
न अस्ति	नहीं है,		॥१०॥
तथा अपि	फिर भी		
स्मरतां	स्मरण करने वालों के		

॥ युधिष्ठिर उवाच ॥

किं न आचरितं श्रेयो न वेदाहमधीश्वर ।
योगेश्वराणां दुर्दर्शो यन्नो दृष्टः कुमेधसाम् ॥११॥

किं नः आचरितं श्रेयः न वेद अहं अधीश्वर योगेश्वराणं दुर्दर्शः यत् नः दृष्टः कुमेधसाम् ॥११॥

अधीश्वर	सर्वेश्वर !	आचरितं	किया है
अहं न वेद	मैं नहीं जानता कि	यत्	जिससे
नः किं श्रेयः	हमने क्या उत्तम काम	योगेश्वराणां	योगेश्वरोंको भी

दुर्दर्शः	कठिनाईसे दर्शन देने वाले आप	दृष्टः	दर्शन दे रहे हैं ॥११॥
नः कुमेधसां	हम कुबुद्धियोंको		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

इति वै वार्षिकान् मासान् राज्ञा सोऽभ्यर्थितः सुखम् ।
जनयन् नयनानन्दमिन्द्रप्रस्थौकसां विभुः ॥१२॥

इति वै वार्षिकान् मासान् राज्ञा सः अभ्यर्थितः सुखं जनयन् नयनानन्दं इन्द्रप्रस्थ ओकसां विभुः ॥१२॥

इति राजा	इस प्रकार राजा द्वारा	ओकसां	निवासियोंको
वै अभ्यर्थितः	निश्चित सत्कृत होते	नयनानन्दं	नेत्रोंको आनन्द
वार्षिकान्	वर्षाके कई	जनयन्	देते हुए
मासान्	महीने	सः विभुः	वे सर्वसमर्थ
इन्द्रप्रस्थ	इन्द्रप्रस्थके	सुखं न्यवसत्	सुखपूर्वक निवास करते रहे ॥१२॥

एकदा रथमारुह्य विजयो वानरध्वजम् ।
गाण्डीवं धनुरादाय तूणौ चाक्षयसायकौ ॥१३॥

एकदा रथं आरुह्य विजयः वानरध्वजं गाण्डीवं धनुः आदाय तूणौ च अक्षय सायकौ ॥१३॥

एकदा विजयः	एक बार अर्जुन	च अक्षय	तथा अक्षय
वानर ध्वजं	कपिध्वज	सायकौ	बाण वाले
रथं आरुह्य	रथपर चढ़कर	तूणौ आदाय	दोनों तरकश लेकर ॥१३॥
गाण्डीवं धनुः	गाण्डीव धनुष		

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

साकं कृष्णेन संनद्धो विहर्तुं विपिनं वनम् ।
बहुव्यालमृगाकीर्णं प्राविशत् परवीरहा ॥१४॥

साकं कृष्णेन सन्नद्धो विहर्तुं विपिनं वनं बहुव्याल मृग आकीर्णं प्राविशत् परवीरहा ॥१४॥

परवीरहा	शत्रु वीरोंको मारने वाले	मृग आकीर्णं	पशुओंसे भरे
कृष्णेन साकं	श्रीकृष्णके साथ	विपिनं वनं	घोर वनमें
सन्नद्धः	कवच धारण करके	विहर्तुं	आखेट खेलने
बहुव्याल	बहुत सर्पों तथा	प्राविशत्	प्रविष्ट हुए ॥१४॥

तत्राविध्यच्छरैर्व्याघ्रान् सूकरान् महिषान् रुरून् ।
शरभान् गवयान् खड्गान् हरिणाञ्छशशल्लकान् ॥१५॥

तत्र अविध्यत् शरैः व्याघ्रान् सूकरान् महिषान् रुरून् शरभान् गवयान् खड्गान् हरिणान् शश शल्लकान् ॥१५॥

तत्र व्याघ्रान्	वहाँ बाघों,	खड्गान्	गैंडों
सूकरान्	सूअरों	हरिणान्	हिरनों
महिषान्	भैंसों,	शश शल्लकान्	खरगोशों, सेहियों को
रुरून्	चित्तलों,		
शरभान्	शरभोंर (साम्हरों)	शरैः अविध्यत्	बाणोंसे बींधा ॥१५॥
गवयान्	नीलगायों,		

तान् निन्युः किंकरा राज्ञे मेध्यान् पर्वण्युपागते ।
तृट्परीतः परिश्रान्तो बीभत्सुर्यमुनामगात् ॥१६॥

तान् निन्युः किङ्करा राज्ञे मेध्यान् पर्वणि उपागते तृट् परीतः परिश्रान्तः बीभत्सुः यमुनां अगात् ॥१६॥

तान् मेध्यान्	उन (आखेटके लिए) पवित्र (पशुओं)को
पर्वणि उपागते	पर्व समीप आने पर
किङ्करा	सेवक
राज्ञे निन्युः	राजाके पास ले गये*
परिश्रान्तः	(मृगयासे) थककर
तृट् परीतः	प्यास लगनेसे
बीभत्सुः	अर्जुन
यमुनां अगात्	यमुनाके समीप गये ॥१६॥

तत्रोपस्पृश्य विशदं पीत्वा वारि महारथौ ।
कृष्णौ ददृशतुः कन्यां चरन्तीं चारुदर्शनाम् ॥१७॥

तत्र उपस्पृश्य विशदं पीत्वा वारि महारथौ कृष्णौ ददृशतुः कन्यां चरन्तीं चारुदर्शनाम् ॥१७॥

तत्र विशदं वारि उपस्पृश्य	वहां निर्मल जलसे आचमन करके
पीत्वा	उसे पीकर
महारथौ कृष्णौ	दोनों महारथी कृष्णोंने*
चारुदर्शनां कन्यां चरन्तीं	सुन्दरी कन्याको घूमते
ददृशतुः	देखा ॥१७॥

तामासाद्य वरारोहां सुद्विजां रुचिराननाम् ।
पप्रच्छ प्रेषितः सख्या फाल्गुनः प्रमदोत्तमाम् ॥१८॥

तां आसाद्य वरारोहां सुद्विजां रुचिर आननां पप्रच्छ प्रेषितः सख्या फाल्गुनः प्रमदा उत्तमां ॥१८॥

---

* पर्व पर मृग चर्मादि दानके लिए आखेट- पशुओंको राजधानी भेजा गया ।

* अर्जुनका भी एक नाम कृष्ण है ।

सख्या प्रेषितः	सखाके भेजने पर	रुचिर आननां	सुमुखी
फाल्गुनः	अर्जुनने	प्रमदा उत्तमां	उत्तम रमणीके
तां वरारोहां	उस सुन्दरी	आसाद्य	समीप जाकर
सुद्विजां	सुन्दर दाँतों वाली	पप्रच्छ	पूछा ॥१८॥

का त्वं कस्यासि सुश्रोणि कुतोऽसि किं चिकीर्षसि ।
मन्ये त्वां पतिमिच्छन्तीं सर्वं कथय शोभने ॥१९॥

का त्वं कस्य असि सुश्रोणि कुतः असि किं चिकीर्षसि मन्ये त्वां पतिं इच्छन्तीं सर्वं कथय शोभने ॥१९॥

सुश्रोणि	सुन्दर नितम्बों वाली !	त्वां पतिं	तुमको पति
त्वं का	तुम कौन हो ?	इच्छन्तीं	चाहने वाली
कस्य असि	किसकी पुत्री हो ?	मन्ये शोभने	मानता हूँ, सुन्दरी !
कुतः असि	कहां रहती हो ?	सर्वं कथय	सब बात बतलाओ ॥१९॥
किं चिकीर्षसि	क्या करना चाहती हो ?		

॥ कालिन्द्युवाच ॥

अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती ।
विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परममास्थिता ॥२०॥

अहं देवस्य सवितुः दुहिता पतिं इच्छती विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परमं आस्थिता ॥२०॥

अहं	मैं	विष्णुं	विष्णुको
सवितुः देवस्य	सूर्यदेवकी	पतिं इच्छती	पति रूपमें चाहती
दुहिता	पुत्री	परमं तपः	कठोर तप
वरेण्यं वरदं	वरणनीय वरदायक	आस्थिता	कर रही हूँ ॥२०॥

नान्यं पतिं वृणे वीर तमृते श्रीनिकेतनम् ।
तुष्यतां मे स भगवान् मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः ॥२१॥

न अन्यं पतिं वृणे वीर तं ऋते श्रीनिकेतनं तुष्यतां मे स भगवान् मुकुन्दः अनाथ संश्रयः ॥२१॥

वीर	वीर ! (भाई)	**अनाथ संश्रयः**	अनाथोंके आश्रय
तं श्रीनिकेतनं	उन श्रीनिवासको	**स भगवान्**	वे भगवान
ऋते अन्यं	छोड़कर किसी दूसरेको	**मुकुन्दः**	मुकुन्द
पतिं न वृणे	पति नहीं वरण करूंगी,	**मे तुष्यतां**	मुझसे सन्तुष्ट हों ॥२१॥

कालिन्दीति समाख्याता वसामि यमुनाजले ।
निर्मिते भवने पित्रा यावदच्युतदर्शनम् ॥२२॥

कालिन्दी इति सम आख्याता वसामि यमुनाजले निर्मिते भवने भवने पित्रा यावत् अच्युत दर्शनम् ॥२२॥

कालिन्दी इति	कालिन्दी इस	**पित्रा निर्मिते**	पिताके बनाये
सम आख्याता	नामसे कही जाती हूँ	**यमुनाजले**	यमुना जलके
		भवने	भवनमें
यावत् अच्युत	जब तक अच्युतका	**वसामि**	रहती हूँ ॥२२॥
दर्शनं	दर्शन हो		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

तथावदद् गुडाकेशो वासुदेवाय सोऽपि ताम् ।
रथमारोप्य तद् विद्वान् धर्मराजमुपागमत् ॥२३॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तथा अवदत् गुडाकेशः वासुदेवाय सः अपि तां रथं आरोप्य तत् हि विद्वान् धर्मराजं उप आगमत् ॥२३॥

गुडाकेशः	अर्जुनने	सः अपि तां	वे भी उसे
वासुदेवाय	वासुदेवसे	रथं आरोप्य	रथमें बैठाकर
तथा अवदत्	वैसा ही बतला दिया	धर्मराजं	धर्मराज युधिष्ठिर के
हि तत् विद्वान	क्योंकि यह बात जान ली	उप आगमत्	समीप आये ॥२३॥

यदैव कृष्णः संदिष्टः पार्थानां परमाद्भुतम् ।
कारयामास नगरं विचित्रं विश्वकर्मणा ॥२४॥

यत् एव कृष्णः सन्दिष्टः पार्थानां परम अद्भुतं कारयामास नगरं विचित्रं विश्वकर्मणा ॥२४॥

यत् एव	उसी समय	पार्थानां	पाण्डवोंके लिए
कृष्णः	श्रीकृष्णने	परम अद्भुतं	अत्यन्त विचित्र
विश्वकर्मणा	विश्वकर्मासे	नगरं	नगर
सन्दिष्टः	आदेश देकर	कारयामास	बनवाया ॥२४॥

भगवांस्तत्र निवसन् स्वानां प्रियचिकीर्षया ।
अग्नये खाण्डवं दातुमर्जुनस्यास सारथिः ॥२५॥

भगवान् तत्र निवसन् स्वानां प्रियचिकीर्षया अग्नये खाण्डवं दातुं अर्जुनस्य आस सारथिः ॥२५॥

स्वानां	अपने लोगोंका	अग्नये	अग्निको
प्रियचिकीर्षया	प्रिय करनेकी इच्छा से	खाण्डवं दातुं	खाण्डव वनके लिए
तत्र निवसन्	वहां रहते हुए	अर्जुनस्य	अर्जुनके
भगवान्	भगवान	सारथिः आस	सारथि बने ॥२५॥

सोऽग्निस्तुष्टो धनुरदाद्धयाञ्छ्वेतान् रथं नृप ।
अर्जुनायाक्षयौ तूणौ वर्म चाभेद्यमस्त्रिभिः ॥२६॥

सः अग्निः तुष्टः धनुः अदात् हयान् श्वेतान् रथं नृप अर्जुनाय अक्षयौ तूणौ वर्म च अभेद्यं अस्त्रिभिः ॥२६॥

नृप	राजन् !	रथं	रथ,
सः अग्निः	उस अग्निने	अक्षयौ तूणौ	दो अक्षय तरकश,
तुष्टः अर्जुनाय	सन्तुष्ट होकर अर्जुनको	च अस्त्रिभिः	तथा अस्त्रोंसे
		अभेद्यं वर्म	अभेद्य कवच
धनुः	गाण्डीव धनुष,	अदात्	दिया ॥२६॥
श्वेतान् हयान्	श्वेत घोड़े,		

मयश्च मोचितो वह्नेः सभां सख्य उपाहरत् ।
यस्मिन् दुर्योधनस्यासीज्जलस्थलदृशिभ्रमः ॥२७॥

मयः च मोचितः वह्नेः सभां सख्य उपाहरत् यस्मिन् दुर्योधनस्य आसीत् जलस्थल दृशिभ्रमः ॥२७॥

मयः च	मय दानवको भी	यस्मिन्	जिसमें
वह्नेः मोचितः	अग्निसे बचाया था	दुर्योधनस्य	दुर्योधनको
सख्य सभां	(उसने) मित्रता स्वरूप राजसभा	जलस्थल दृशिभ्रमः	जलमें स्थलका दृष्टि भ्रम
उपाहरत्	(बनाकर) भेंट की	आसीत्	हुआ था ॥२७॥

स तेन समनुज्ञातः सुहृद्भिश्चानुमोदितः ।
आययौ द्वारकां भूयः सात्यकिप्रमुखैर्वृतः ॥२८॥

स तेन सम अनुज्ञातः सुहृद्भिः च अनुमोदितः आययौ द्वारकां भूयः सात्यकि प्रमुखैः वृतः ॥२८॥

स तेन	वे (भगवान) उन (अर्जुन)की	सात्यकि प्रमुखैः वृतः	सात्यकि आदि प्रधान यादवोंसे घिरे
अनुज्ञातः	अनुमति पाकर		
च सुहृद्भिः	तथा सुहृदों द्वारा	भूयः द्वारकां	फिर द्वारका
अनुमोदितः	अनुमोदन पाकर	आययौ	आ गये ॥२८॥

अथोपयेमे कालिन्दीं सुपुण्यत्वृक्ष ऊर्जिते ।
वितन्वन् परमानन्दं स्वानां परममङ्गलम् ॥२९॥

अथ उपयेमे कालिन्दीं सुपुण्य तु ऋक्ष ऊर्जिते वितन्वन् परमानन्दं स्वानां परममङ्गलम् ॥२९॥

अथ सुपुण्य	फिर उत्तम पवित्र	मङ्गलं वितन्वन्	मंगल देते हुए
अर्जिते ऋक्ष तु	उन्नतिशील नक्षत्र आने पर	कालिन्दीं	कालिन्दीसे
		उपयेमे	विवाह किया
स्वानां	अपनोंको		॥२९॥
परमानन्दं	परम आनन्द		

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दुर्योधनवशानुगौ ।
स्वयंवरे स्वभगिनीं कृष्णे सक्तां न्यषेधताम् ॥३०॥

विन्द अनुविन्दाः आवन्त्यौ दुर्योधनवश अनुगौ स्वयंवरे स्वभगिनीं कृष्णे सक्तां न्यषेधताम् ॥३०॥

आवन्त्यौ	अवन्तीके राजा	कृष्णे सक्तां	श्रीकृष्णमें आसक्त (उन्हें वरण करने वाली)
विन्द	विन्द और		
अनुविन्दाः	अनुविन्द		
दुर्योधनवश	दुर्योधनके वशवर्ती	स्वभगिनीं	अपनी बहिनको
अनुगौ	अनुचर (सामन्त)थे,	न्यषेधतां	रोक दिया ॥३०॥
स्वयंवरे	स्वयंवरमें (उन्होंने)		

राजाधिदेव्यास्तनयां मित्रविन्दां पितृष्वसुः ।
प्रसह्य हृतवान् कृष्णो राजन् राज्ञां प्रपश्यताम् ॥३१॥

राजाधिदेव्याः तनयां मित्रविन्दां पितृष्वसुः प्रसह्य हृतवान् कृष्णः राजन् राज्ञां प्रपश्यताम् ॥३१॥

राजन्	राजन् !	**राज्ञां प्रपश्यतां**	राजाओंके देखते हुए
पितृष्वसुः	अपनी बुआ	**प्रसह्य कृष्णः**	बलपूर्वक श्रीकृष्णने
राजाधिदेव्याः	राजाधिदेवी की	**हृतवान्**	हरण कर लिया ॥३१॥
तनयां	पुत्री		
मित्रविन्दा	मित्रविन्दाको		

नग्नजिन्नाम कौसल्य आसीद् राजातिधार्मिकः ।
तस्य सत्याभवत् कन्या देवी नाग्नजिती नृप ॥३२॥

नग्नजित् नाम कौसल्य आसीत् राजा अति धार्मिकः तस्य सत्या अभवत् कन्या देवी नाग्नजिती नृप ॥३२॥

नृप	राजन् !	**तस्य देवी**	उनकी देवी
कौसल्य	कोशल देशके*	**नाग्नजिती**	नाग्नजिती
अति धार्मिकः	अत्यन्त धार्मिक	**सत्या**	सत्या
नग्नजित् नाम	नग्नजित् नामके	**कन्या अभवत्**	पुत्री थी ॥३२॥
राजा आसीत्	राजा थे		

न तां शेकुर्नृपा वोढुमजित्वा सप्त गोवृषान् ।
तीक्ष्णशृङ्गान् सुदुर्धर्षान् वीरगन्धासहान् खलान् ॥३३॥

---

*नवम स्कन्धमें (९/१२/८) आ चुका है कि उस समयके अयोध्या नरेश वृहद्वलको महाभारत युद्धमें अभिमन्युने मारा था । अतः यह कोशल अयोध्या न होकर दक्षिण कोशल (छत्तीसगढ़) है । त्रेतामें कौशल्याजी यहीं की कन्या थीं ।

न तां शेकुः नृपा वोढुं अजित्वा सप्त गोवृषान् तीक्ष्ण शृङ्गान् सुदुर्धर्षान् वीरगन्ध असहान् खलान् ॥३३॥

तीक्ष्ण शृङ्गान्	तीखे सींग वाले	सप्त गोवृषान्	सात साडोंको
सुदुर्धर्षान्	अत्यन्त दुर्दम्य,	अजित्वा	न जीतनेके कारण
वीरगन्ध	वीरोंकी गन्ध	नृपा तां वोढुं	राजा लोग उससे विवाह करनेमें
असहान्	न सहने वाले	शेकुः न	समर्थ नहीं हुए ॥३३॥
खलान्	दुष्ट		

तां श्रुत्वा वृषजिल्लभ्यां भगवान् सात्वतां पतिः ।
जगाम कौसल्यपुरं सैन्येन महता वृतः ॥३४॥

तां श्रुत्वा वृषजित् लभ्यां भगवान् सात्वतां पतिः जगाम कौसल्यपुरं सैन्येन महता वृतः ॥३४॥

तां वृषजित्	उसे साड़ोंको जीतकर	महता	बड़ी
		सैन्येन वृतः	सेनासे घिरे
लभ्यां श्रुत्वा	मिलने वाली सुनकर	कौसल्यपुरं	कोशलपुर
सात्वतां पतिः	यदुवंश शिरोमणि	जगाम	गये ॥३४॥
भगवान्	भगवान		

स कोसलपतिः प्रीतः प्रत्युत्थानासनादिभिः ।
अर्हणेनापि गुरुणा पूजयन् प्रतिनन्दितः ॥३५॥

स कोसलपतिः प्रीतः प्रत्युत्थान आसन आदिभिः अर्हणेन अपि गुरुणा पूजयन् प्रतिनन्दितः ॥३५॥

स कोसलपतिः	वे कोशल नरेश	आसन आदिभिः	आसन आदि द्वारा
प्रीतः प्रत्युत्थान	प्रसन्न होकर प्रत्युत्थान्		तथा

गुरुणा अर्हणेन	बड़ी पूजा सामग्री से	प्रतिनन्दितः	(भगवान द्वारा) अभिनन्दित हुए ॥३५॥
अपि पूजयन्	भी पूजा करके		

वरं विलोक्याभिमतं समागतं
नरेन्द्रकन्या चकमे रमापतिम् ।
भूयादयं मे पतिराशिषोऽमलाः
करोतु सत्या यदि मे धृतो व्रतैः ॥३६॥

वरं विलोक्य अभिमतं समागतं नरेन्द्रकन्या चकमे रमापतिं भूयात् अयं मे पतिः आशिषः अमलाः करोतु सत्या यदि मे धृतः व्रतैः ॥३६॥

नरेन्द्रकन्या	राजकन्याने	अमलाः आशिषः	मेरी निर्मल अभिलाषा
अभिमतं वरं	अभिमत वर		
रमापतिं	लक्ष्मीपतिको	सत्या करोतु	(ये) सच करें और
समागतं	आया	अयं मे पतिः	यह मेरे पति
विलोक्य चकमे	देखकर (उनकी) कामना की	भूयात्	होवें ॥३६॥
यदि मे	'यदि मैंने		
धृतः व्रतैः	व्रत नियमोंसे (इन्हीं का) चिन्तन किया है तो		

यत्पादपङ्कजरजः शिरसा बिभर्ति
श्रीरब्जजः सगिरिशः सहलोकपालैः ।
लीलातनूः स्वकृतसेतुपरीप्सयेशः
काले दधत् स भगवान् मम केन तुष्येत् ॥३७॥

यत् पादपङ्कज रजः शिरसा बिभर्ति श्रीः अब्जजः सगिरिशः सह लोकपालैः लीलातनूः स्वकृत सेतु परीप्सया ईशः काले दधत् स भगवान् मम केन तुष्येत् ॥३७॥

यत्	जिनके
पादपङ्कज रजः	चरण-कमलोंकी रज
श्रीः सगिरिशः	लक्ष्मीजी शंकरजी के साथ
सहलो कपालैः	और लोकपालोंके साथ
अब्जजः	ब्रह्माजी
शिरसा बिभर्ति	मस्तक पर धारण करते हैं
स्वकृत सेतु	अपनी बनायी मर्यादाओंकी
परीप्सये	रक्षाके लिए
काले लीलातनूः	समय-समय पर लीला-शरीर
दधत् ईशः	धारण करने वाले समर्थ
स भगवान्	वे भगवान
मम केन	मुझसे कैसे
तुष्येत्	प्रसन्न होंगे ? ॥३७॥

अर्चितं पुनरित्याह नारायण जगत्पते ।
आत्मानन्देन पूर्णस्य करवाणि किमल्पकः ॥३८॥

अर्चितं पुनः इति आह नारायण जगत्पते आत्मानन्देन पूर्णस्य करवाणि किं अल्पकः ॥३८॥

अर्चित पुनः	पूजा करके फिर
इति आह	इस प्रकार बोले—
नारायण	नारायण !
जगत्पते	जगन्नाथ !
आत्मानन्देन	आत्मानन्दमें ही
पूर्णस्य	परिपूर्ण (आपकी)
अल्पकः	(हम) तुच्छ
किं करवाणि	क्या सेवा करें ? ॥३८॥*

तमाह भगवान् हृष्टः कृतासनपरिग्रहः ।
मेघगम्भीरया वाचा सस्मितं कुरुनन्दन ॥३९॥

---

* इसके आगे प्रायः सब प्रतियोंमें 'श्रीशुक उवाच' है । पर वह अनावश्यक है । श्लोक २२ के बादसे शुकदेवजी ही बोल रहे हैं और यहाँ राजा नग्नजित्का एक पूरा श्लोक भी नहीं है । उसमें भी चतुर्थ चरण शुकदेवजीका है ।

तं आह भगवान् हृष्टः कृत आसन परिग्रहः मेघगम्भीरया वाचा सस्मितं कुरुनन्दन ॥३६॥

कुरुनन्दन	कुरुनन्दन परीक्षित ?
आसन परिग्रहः	आसन स्वीकार
कृत	करके
हृष्टः भगवान्	प्रसन्न होकर भगवान्
सस्मितं	मुस्कराते हुए
मेघगम्भीरया	मेघ-गम्भीर
वाचा तं आह	वाणीसे उनसे बोले ॥३६॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

नरेन्द्र याच्ञा कविभिर्विगर्हिता
राजन्यबन्धोर्निजधर्मवर्तिः ।
तथापि याचे तव सौहृदेच्छया
कन्यां त्वदीयां न हि शुल्कदा वयम् ॥४०॥

नरेन्द्र याच्ञा कविभिः विगर्हिता राजन्यबन्धोः निज धर्म वर्तिनः तथा अपि याचे तव सौहृद इच्छया कन्यां त्वदीयां न हि शुल्कदा वयम् ॥४०॥

नरेन्द्र	राजेन्द्र !
कविभिः	विद्वानों द्वारा
निज धर्म	अपने धर्मानुसार
वर्तिनः	चलने वाले
राजन्यबन्धोः	क्षत्रियोंके लिए
याच्ञा	याचना
विगर्हिता	बहुत निन्दित मानी गयी है
तथा अपि	ऐसा होने पर भी
तव	आपसे
सौहृद इच्छया	सम्बन्ध बनानेकी इच्छासे
त्वदीयां	आपकी
कन्यां याचे	कन्या मांगता हूँ,

हि वयं शुल्कदा	क्योंकि हममें (कन्याका) मूल्य देनेकी	न	(प्रथा) नहीं है ॥४०॥

॥ नग्नजित् उवाच ॥*

कोऽन्यस्तेऽभ्यधिको नाथ कन्यावर इहेप्सितः ।
गुणैकधाम्नो यस्याङ्गे श्रीर्वसत्यनपायिनी ॥४१॥

कः अन्यः ते अभ्यधिकः नाथ कन्यावर इह ईप्सितः गुण एक धाम्नः यस्य अङ्गे श्रीः वसति अनपायिनी ॥४१॥

नाथ	स्वामी !	श्रीः यस्य अङ्गे	लक्ष्मी जिनके शरीरमें
ते अभ्यधिकः	आपसे अधिक	अनपायिनी	निरन्तर
ईप्सितः	अभीष्ट	वसति	निवास करती हैं ॥४१॥
कन्यावर	कन्याके लिए वर		
इह अन्यः कः	यहाँ दूसरा कौन होगा		
गुण एक धाम्नः	गुणोंकी एकमात्र निवास		

किंत्वस्माभिः कृतः पूर्वं समयः सात्वतर्षभ ।
पुंसां वीर्यपरीक्षार्थं कन्यावरपरीप्सया ॥४२॥

किन्तु अस्माभिः कृतः पूर्वं समयः सात्वत ऋषभ पुंसां वीर्य परीक्षा अर्थं कन्यावर परीप्सया ॥४२॥

किन्तु	किन्तु	कन्यावर	कन्याके लिए वर
सात्वत ऋषभ	यदुवंश शिरोमणि !	परीप्सया	चुननेकी इच्छासे

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ राजोवाच है ।

पुंसां वीर्य	मनुष्योंके पराक्रम की	पूर्वं समयः कृतः	पहिलेसे (एक) प्रतिज्ञा की गयी है ॥४२॥
परीक्षा अर्थं	परीक्षाके लिए		
अस्माभिः	हमारे द्वारा		

सप्तैते गोवृषा वीर दुर्दान्ता दुरवग्रहाः ।
एतैर्भग्नाः सुबहवो भिन्नगात्रा नृपात्मजाः ॥४३॥

सप्त एते गोवृषा वीर दुः दान्ता दुरवग्रहाः एतैः भग्नाः सुबहवः भिन्नगात्रा नृप आत्मजाः ॥४३॥

वीर	वीर !	सुबहवः	बहुत अधिक
एते सप्त	ये सात	नृप आत्मजाः	राजकुमार
दुः दान्ता	अत्यन्त असंयत	भग्नाः	हतोत्साह हो गये ॥४३॥
दुरवग्रहाः	बिना सधाये		
गोवृषा	सांड़ हैं		
एतैः भिन्नगात्रा	इनके द्वारा अङ्ग-भङ्ग किये गये		

यदिमे निगृहीताः स्युस्त्वयैव यदुनन्दन ।
वरो भवानभिमतो दुहितुर्मे श्रियः पते ॥४४॥

यदि इमे निगृहीताः स्युः त्वयि एव यदुनन्दन वरः भवान् अभिमतः दुहितुः मे श्रियः पते ॥४४॥

यदुनन्दन	यदुनन्दन !	श्रियः पते	लक्ष्मीपते
यदि इमे	यदि ये	भवान् मे दुहितुः	आप मेरी पुत्रीके लिए
त्वयि एव	तुम्हारे द्वारा ही	अभिमतः वरः	अभीष्ट वर हैं ॥४४॥
निगृहीताः स्युः	वशीभूत कर लिए जायं तो		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

एवं समयमाकर्ण्य बद्ध्वा परिकरं प्रभुः ।
आत्मानं सप्तधा कृत्वा न्यगृह्णाल्लीलयैव तान् ॥४५॥

एवं समयं आकर्ण्य बध्वा परिकरं प्रभुः आत्मानं सप्तधा कृत्वा न्यगृह्णात् लीलया एव तान् ॥४५॥

एवं समयं	इस प्रकार शर्त	सप्तधा कृत्वा	अपने सात रूप बनाकर
आकर्ण्य	सुनकर	लीलया एव	लीलासे ही
प्रभुः	समर्थ श्रीकृष्णने	तान् न्यगृह्णात्	उनको नाथ दिया ॥४५॥
परिकरं बध्वा	कमर कसकर		
आत्मानं	अपना		

बद्ध्वा तान् दामभिः शौरिर्भग्नदर्पान् हतौजसः ।
व्यकर्षल्लीलया बद्धान् बालो दारुमयान् यथा ॥४६॥

बद्ध्वा तान् दामभिः शौरिः भग्नदर्पान् हत ओजसः व्यकर्षत् लीलया बद्धान् बालः दारुमयान् यथा ॥४६॥

तान् शौरिः	उन बल-पौरुष	यथा दारुमयान्	जैसे लकड़ीसे बने (बैलों)को
भग्नदर्पान्	घमंड नष्ट हुए	बालः व्यकर्षत्	बालक (खींचे) खींचने लगे ॥४७॥
हत ओजसः	तेजोहीनोंको		
दामभि बद्ध्वा	रस्सीसे बाँधकर		
बद्धान् लीलया	बँधे हुओंको खेलमें		

ततः प्रीतः सुतां राजा ददौ कृष्णाय विस्मितः ।
तां प्रत्यगृह्णाद् भगवान् विधिवत् सदृशीं प्रभुः ॥४७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

ततः प्रीतः सुतां राजा ददौ कृष्णाय विस्मितः तां प्रत्य गृह्णात् भगवान् विधिवत् सदृशीं प्रभुः ॥४७॥

विस्मितः प्रीतः	चकित और प्रसन्न	प्रभुः सदृशीं	प्रभुने उस अपने
राजा सुतां	राजाने पुत्री		समानाको
कृष्णाय	श्रीकृष्णको	विधिवत्	विधिपूर्वक
ततः ददौ	तब दे दी,	प्रत्य गृह्णात्	ग्रहण किया ॥४७॥

राजपत्न्यश्च दुहितुः कृष्णं लब्ध्वा प्रियं पतिम् ।
लेभिरे परमानन्दं जातश्च परमोत्सवः ॥४८॥

राजपत्न्यः च दुहितुः कृष्णं लब्ध्वा प्रियं पतिं लेभिरे परम आनन्दं जातः च परमोत्सवः ॥४८॥

राजपत्न्यः च	राजमहिषियोंको भी	परम आनन्दं	परमानन्द
		लेभिरे	प्राप्त हुआ
दुहितुः	अपनी कन्याके	च परमोत्सव	तथा बहुत बड़ा
प्रियं पतिं	प्रिय पतिके रूपमें		उत्सव
कृष्णं लब्ध्वा	श्रीकृष्णको पाकर	जातः	हुआ ॥४८॥

शङ्खभेर्यानका नेदुर्गीतवाद्यद्विजाशिषः ।
नरा नार्यः प्रमुदिताः सुवासःस्रगलंकृताः ॥४९॥

शंख भेरि आनका नेदुः गीत वादित्र आशिषः नरा नार्यः प्रमुदिताः सुवासः स्रक् अलङ्कृताः ॥४९॥

शङ्ख भेरि	शंख, भेरी,	प्रमुदिताः	अत्यन्त प्रसन्न
आनका नेदुः	नगाड़े बजने लगे,	नरा नार्यः	स्त्री-पुरुष
गीत वादित्र	गाना-बजाना होने लगा,	सुवाससः	उत्तम वस्त्रों
		स्रक्	मालाओंसे
आशिषः	(ब्राह्मण) आशीर्वाद देने लगे,	अलङ्कृताः	आभूषित हुए ॥४९॥

दशधेनुसहस्राणि पारिबर्हमदाद् विभुः ।
युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीवसुवाससाम् ॥५०॥

दश धेनु सहस्राणि पारिबर्हं अदात् विभुः युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीव सुवाससाम् ॥५०॥

विभुः	राजाने	सुवाससां	उत्तम वस्त्र वाली
दश सहस्राणि	दश सहस्र	युवतीनां	युवती (दासियाँ)
धेनु त्रिसाहस्रं	गायें, तीन सहस्र	पारिबर्हं	दहेजमें
निष्कग्रीव	गलेमें हुमेल पहिने	अदात्	दीं ॥५०॥

नवनागसहस्राणि नागाच्छतगुणान् रथान् ।
रथाच्छतगुणानश्वानश्वाच्छतगुणान् नरान् ॥५१॥

नव नाग सहस्राणि नागात् शतगुणान् रथान् रथात् शतगुणान् अश्वान् अश्वात् शतगुणान् नरान् ॥५१॥

नव सहस्राणि	नौ सहस्र	अश्वान्	घोड़े और
नाग	हाथी,	अश्वात्	घोड़ोंसे
नागात्	हाथियोंसे	शतगुणान्	सौ गुने (नौ अरब)
शतगुणान्	सौ गुने (नौ लाख)	नरान्	मनुष्य (सेवक)
रथान्	रथ,		दिये ॥५१॥
रथात् शतगुणान्	रथोंसे सौ गुने (नौ करोड़)		

दम्पती रथमारोप्य महत्या सेनया वृतौ ।
स्नेहप्रक्लिन्नहृदयौ यापयामास कोसलः ॥५२॥

दम्पती रथं आरोप्य महत्या सेनया वृतौ स्नेह प्रक्लिन्न हृदयौ यापयामास कोसलः ॥५२॥

कोसलः	कोशलराजने
दम्पती रथं	दम्पतीको रथमें
आरोप्य	चढ़ाकर
महत्या	बड़ी भारी
सेनया वृतौ	सेनासे घिरे
स्नेह प्रक्लिन्न	स्नेहसे द्रवित
हृदयो	हृदय
यापयामास	विदा किया ॥५२॥

श्रुत्वैतद् रुरुधुर्भूपा नयन्तं पथि कन्यकाम् ।
भग्नवीर्याः सुदुर्मर्षा यदुभिर्गोवृषैः पुरा ॥५३॥

श्रुत्वा एतत् रुरुधुः भूपा नयन्तं पथि कन्यकां भग्नवीर्याः सुदुर्मर्षाः यदुभिः गोवृषैः पुरा ॥५३॥

पुरा यदुभिः	पहले यादवों द्वारा (फिर)
गोवृषैः	सांडों द्वारा
भग्नवीर्याः	नष्ट पराक्रम हुए
सुदुर्मर्षाः	अत्यन्त असहनशील
भूपा	राजाओंने
एतत् श्रुत्वा	यह (समाचार) सुनकर
कन्यकां नयन्तं	राजकन्याको ले जाते हुए
पथि रुरुधुः	(श्रीकृष्ण)को मार्ग में रोका ॥५३॥

तानस्यतः शरव्रातान् बन्धुप्रियकृदर्जुनः ।
गाण्डीवी कालयामास सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥५४॥

तान् अस्यतः शरव्रातान् बन्धु प्रियकृत अर्जुनः गाण्डीवी कालयामास सिंहः क्षुद्र मृगान् इव ॥५४॥

बन्धु प्रियकृत	अपने बन्धुका प्रिय करने वाले
गाण्डीवी	गान्डीवधन्वा
अर्जुनः	अर्जुनने
सिंहः इव	सिंहके समान
क्षुद्र मृगान्	तुच्छ पशुओं जैसे
तान् शरव्रातान्	उन बाण वर्षा
अस्यतः	करने वालोंको
कालयामास	मारकर भगा दिया ॥५४॥

पारिबर्हमुपागृह्य द्वारकामेत्य सत्यया ।
रेमे यदूनामृषभो भगवान् देवकीसुतः ॥५५॥

पारिबर्हं उपागृह्य द्वारकां एत्य सत्यया रेमे यदूनां ऋषभ भगवान् देवकीसुतः ॥५५॥

भगवान्	भगवान	सत्यया	सत्याके साथ
देवकीसुतः	देवकी-नन्दन,	द्वारकां एत्य	द्वारिका आकर
यदूनां ऋषभः	यदुवंश शिरोमणि	रेमे	विहार करने लगे ॥५५॥
पारिबर्हं	दहेजको		
उपागृह्य	लेकर		

श्रुतकीर्तेः सुतां भद्रामुपयेमे पितृष्वसुः ।
कैकेयीं भ्रातृभिर्दत्तां कृष्णः संतर्दनादिभिः ॥५६॥

श्रुतकीर्तेः सुतां भद्रां उपयेमे पितृष्वसुः कैकेयीं भ्रातृभिः दत्तां कृष्णः सन्तर्दन आदिभिः ॥५६॥

पितृष्वसुः	पिताकी बहिन (बुआ)	दत्तां भद्रां	दी गयी भद्रासे
श्रुतकीर्तेः सुतां	श्रुतकीर्तिकी पुत्री	कृष्णः उपयेमे	श्रीकृष्णने विवाह किया ॥५६॥
भ्रातृभिः	उसके भाई		
सन्तर्दन आदिभिः	सन्तर्दन आदि द्वारा		

सुतां च मद्राधिपतेर्लक्ष्मणां लक्षणैर्युताम् ।
स्वयंवरे जहारैकः स सुपर्णः सुधामिव ॥५७॥

सुतां च मद्र अधिपतेः लक्ष्मणां लक्षणैः युतां स्वयंवरे जहार एकः स सुपर्णैः सुधां इव ॥५७॥

सुपर्णैः सुधां इव	गरुड़ द्वारा अमृत की भाँति	मद्र अधिपतेः सुतां	मद्र देशके राजाकी कन्या

लक्षणैः युतां	उत्तम लक्षणों वाली	स्वयंवरे जहार	स्वयंवरमें हरण कर लिया ॥५७॥
लक्ष्मणां	लक्ष्मणाको		
स एकः	उन्होंने अकेले ही		

अन्याश्चैवंविधा भार्याः कृष्णस्यासन् सहस्रशः ।
भौमं हत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शनाः ॥५८॥

अन्याः च एवं विधा भार्याः कृष्णस्य आसन् सहस्रशः भौमं हत्वा तत् निरोधात् आहृताः चारुदर्शनाः ॥५८॥

एवं विधा	इसी प्रकारकी	अन्याः च	दूसरी भी
भौमं हत्वा	भौमासुरको मारक	सहस्रशः	सहस्रो
तत् निरोधात्	उसके बन्दी-घरसे	कृष्णस्य भार्याः	श्रीकृष्णकी पत्नियां
आहृताः	लायी हुई	आसन्	थीं ॥५८॥
चारुदर्शनाः	सुन्दरी		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अष्टमहिष्युद्वाहो नाम अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

अथ एकोनषष्ठितमोऽध्यायः

॥ राजोवाच ॥

यथा हतो भगवता भौमो येन च ताः स्त्रियः ।
निरुद्धा एतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १ ॥

यथा हतः भगवता भौमः येन च ताः स्त्रियः निरुद्धा एतत् आचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः ॥१॥

यथा भगवता	जैसे भगवानने	एतत्	यह भगवान
भौमः हतः	भौमासुरको मारा	शार्ङ्गधन्वनः	शारंगधन्वाका
च ताः स्त्रियः	और उन स्त्रियोंको	विक्रमं आचक्ष्व	पराक्रम सुनाइये
येन निरुद्धा	जिसने बन्दिनी बनाया था		॥१॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इन्द्रेण हृतच्छत्रेण हृतकुण्डलबन्धुना ।
हृतामराद्रिस्थानेन ज्ञापितो भौमचेष्टितम् ।
सभार्यो गरुडारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ ॥ २ ॥

इन्द्रेण हृतः छत्रेण हृतकुण्डल बन्धुना हृत अमर अद्रि स्थानेन ज्ञापितः भौम चेष्टितं सभार्यः गरुड़ आरूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ ॥२॥

हृतः छत्रेण	(वरुणका) छत्र छीन लिए जाने पर	हृतकुण्डल	(देवमाता आदिति के) कुण्डल छीने जाने पर

अमर अद्रि	(मेरु पर्वत पर) देवताओंका मणि पर्वत	ज्ञापितः	(श्रीकृष्णको) सूचित की गयीं
		सभार्यः	(तब वे) पत्नी (सत्यभामा)के साथ
हृत स्थानेन	(नामक) स्थान भी छीने जाने पर	गरुड आरूढः	गरुड़ पर चढ़कर
इन्द्रेण	इन्द्र द्वारा	प्राग्ज्योतिषपुरं	प्राग्ज्योतिषपुर
भौम चेष्टितं	भौमासुरकी ये कुचेष्टाएँ	ययौ	गये ॥२॥

गिरिदुर्गैः शस्त्रदुर्गैर्जलाग्न्यनिलदुर्गमम् ।
मुरपाशायुतैर्घोरैर्दृढैः सर्वत आवृतम् ॥ ३ ॥

गिरिदुर्गैः शस्त्रदुर्गैः जल अग्नि अनिल दुर्गमं मुरपाश अयुतैः घोरैः दृढैः सर्वत आवृतम् ॥३॥

गिरिदुर्गैः	पहाड़ोंके किलेमें	अयुतैः घोरैः	हजारों भयङ्कर
शस्त्रदुर्गैः	शस्त्रोंके किले,	दृढैः मुरपाशैः	दृढ़ मुरपाशसे
जल अग्नि अनिल दुर्गमं	जल, अग्नि, वायु (के किलों)से दुर्गम तथा	सर्वत आवृतं	चारो ओरसे (वह नगर) घिरा था ॥३॥*

---

* सुरक्षाके इतने वैज्ञानिक साधनोंकी अभी कल्पना भी नहीं है। भौमासुरकी राजधानी (१) गिरिदुर्गमें अर्थात् पर्वतोंसे घिरी थी। (२) उन पर्वतोंके भीतर स्वतः चालित शस्त्रोंका किला था जो आहट होते ही चल पड़ते थे। (३) उसके भीतर जलकी घूमती ऊँची दीवार थी। (४) जलकी दीवारके भीतर अग्निकी दीवार (५) उसके भीतर विषैली वायुकी दीवार (६) उसके भीतर छूते ही जकड़ लेने वाले कंटीले तारों (मुरपाश)का जाल और (७) उसके बाद चौड़ी जलकी खाईसे घिरा नगर था। सेनापति इस खाईमें ही रहता था।

गदया निर्बिभेदाद्रीन् शस्त्रदुर्गाणि सायकैः ।
चक्रेणाग्निं जलं वायुं मुरपाशांस्तथासिना ॥ ४ ॥

गदया निर्बिभेद अद्रीन् शस्त्रदुर्गाणि सायकैः चक्रेण अग्नि जलं वायुं मुरपाशान् तथा असिना ॥४॥

गदया अद्रीन्	गदासे पर्वतोंको	तथा असिना	तथा तलवारसे
सायकैः	बाणोंसे	मुरपाशान्	मुरके पाशोंको
शस्त्रदुर्गाणि	शस्त्रोंके दुर्गको	निर्बिभेद	छिन्न-भिन्न कर दिया ॥४॥
चक्रेण	चक्रसे		
अग्नि जलं	अग्नि, जल तथा		
वायुं	वायु (के किलों)को		

शङ्खनादेन यन्त्राणि हृदयानि मनस्विनाम् ।
प्राकारं गदया गुर्व्या निर्बिभेद गदाधरः ॥ ५ ॥

शंखनादेन यन्त्राणि हृदयानि मनस्विनां प्राकारं गदया गुर्व्या निर्बिभेद गदाधरः ॥५॥

गदाधरः	गदाधारी (श्रीकृष्ण) ने	हृदयानि	हृदयों (साहस)को और
शङ्खनादेन	अपनी शंख ध्वनिसे	गुर्व्या दगया	भारी गदासे
यन्त्राणि	(स्वतः चालित) यन्त्रोंको तथा	प्राकारं निर्बिभेद	कोट (चहार दीवारी)को तोड़ दिया ॥५॥
मनस्विनां	साहसियोंके		

पाञ्चजन्यध्वनिं श्रुत्वा युगान्ताशनिभीषणम् ।
मुरः शयान उत्तस्थौ दैत्यः पञ्चशिरा जलात् ॥ ६ ॥

पाञ्चजन्य ध्वनिं श्रुत्वा युग अन्त अशनि भीषणं मुरः शयान उत्तस्थौ दैत्यः पञ्चशिरा जलात् ॥६॥

युग अन्त	प्रलय कालीन	पञ्चशिरा	पाँच सिरों वाला
अशनि भीषणं	वज्रपातके समान भयंकर	दैत्यः मुरः	दैत्य मुर
		शयान जलात्	जो सोया था, जल में से
पाञ्चजन्य	पाञ्चजन्य शंखका		
ध्वनि	निनाद	उत्तस्थौ	जागकर ऊपर आ गया ॥६॥
श्रुत्वा	सुनकर		

त्रिशूलमुद्यम्य सुदुर्निरीक्षणो
युगान्तसूर्यानलरोचिरुल्बणः ।
ग्रसंस्त्रिलोकीमिव पञ्चभिर्मुखै-
रभ्यद्रवत्तार्क्ष्यसुतं यथोरगः ॥ ७ ॥

त्रिशूलं उद्यम्य सुदुर्निरीक्षणः युगान्तसूर्य अनल रोचिः उल्बणः ग्रसन् त्रिलोकीं इव पञ्चभिः मुखैः अभ्यद्रवत् तार्क्ष्यसुतं यथा उरगः ॥७॥

युगान्तसूर्य	प्रलयकालीन सूर्य	पञ्चभिः मुखैः	अपने पाँच मुखोंसे
अनल	एवं अग्निके समान	त्रिलोकीं	त्रिभुनको
रोचिः उल्बणः	प्रचण्ड प्रकाश वाले	ग्रसन् इव	निगलता हुआ-सा
सुदुर्निरीक्षणः	जिसकी ओर देखना बहुत कठिन था उस	तार्क्ष्यसुतं	गरुड़की ओर
		यथा उरगः	जैसे सर्प (झपटे)
त्रिशूलं उद्यम्य	त्रिशूलको उठाकर	अभ्यद्रवत्	झपटा ॥७॥

आविध्य शूलं तरसा गरुत्मते
निरस्य वक्त्रैर्व्यनदत् स पञ्चभिः ।
स रोदसी सर्वदिशोऽन्तरं महा-
नापूरयन्नण्डकटाहमावृणोत् ॥ ८ ॥

आविध्य शूलं तरसा गरुत्मते निरस्य वक्त्रैः व्यनदत् स पञ्चभिः स रोदसी सर्वदिशः अन्तरं महान् आपूरयन् अण्डकटाहं आवृणोत् ॥८॥

स गरुत्मते	उसने गरुड़ पर	स रोदसी	वह शब्द अन्तरिक्ष,
तरसा शूलं	बड़े वेगसे (वह) त्रिशूल	सर्वदिशः अन्तरं	सब दिशाओं, आकाश
आविध्य निरस्य	फेंककर उन्हें रोकते हुए	अण्डकटाहं	और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में
पञ्चभिः वक्त्रैः व्यनदत्	पाँचों मुखोंसे गर्जना की	आवृणोत्	व्याप्त हो गया ॥८॥

तदापतद् वै त्रिशिखं गरुत्मते
हरिः शराभ्यामभिनत्त्रिधौजसा ।
मुखेषु तं चापि शरैरताडयत्
तस्मै गदां सोऽपि रुषा व्यमुञ्चत ॥ ९ ॥

तदा आपतत् वै त्रिशिखं गरुत्मते हरिः शराभ्यां अभिनत् त्रिधा ओजसा मुखेषु तं च अपि शरैः अताडयत् तस्मै गदां सः अपि रुषा व्यमुञ्चत ॥९॥

तदा गरुत्मते	तब गरुड़की ओर	च तं अपि	और उसके भी
वै आपतत्	निश्चित रूपसे झपटते आते	मुखेषु शरैः	मुख पर बाण
त्रिशिखं हरिः	त्रिशूलको श्रीहरिने	अताडयत्	मारे
ओजसा	बलपूर्वक	सः अपि रुषा	उसने भी क्रोधमें आकर
शराभ्यां	बाणोंसे	तस्मै गदां	उन पर गदा
त्रिधा अभिनत्	तीन टुकड़ोंमें काट दिया,	व्यमुञ्चत	चलायी ॥९॥

तामापतन्तीं गदया गदां मृधे
गदाग्रजो निर्बिभिदे सहस्रधा ।
उद्यम्य बाहूनभिधावतोऽजितः
शिरांसि चक्रेण जहार लीलया ॥१०॥

तां आपतन्तीं गदया गदां मृधे गद अग्रजः निर्बिभिदे सहस्रधा उद्यम्य बाहून् अभिधावतः अजितः शिरांसि चक्रेण जहार लीलया ॥१०॥

तां आपतन्तीं	उस वेगसे आती
गदां गद अग्रजः	गदाको गदके बड़े भाईने
मृधे गदया	युद्धमें अपनी गदा से
सहस्रधा	हजारों टुकड़ोंमें
निर्बिभिदे	फोड़ दिया,
बाहून् उद्यम्य	फिर भुजाएँ उठाकर
अभिधावतः	सम्मुख दौड़े आते
शिरांसि	उसके सिरोंको
अजितः लीलया	अजित भगवानने खेलमें ही
चक्रेण जहार	चक्रसे काट दिया ॥१०॥

व्यसुः पपातास्भसि कृत्तशीर्षो
निकृत्तशृङ्गोऽद्रिरिवेन्द्रतेजसा ।
तस्यात्मजाः सप्त पितुर्वधातुराः
प्रतिक्रियामर्षजुषः समुद्यताः ॥११॥

व्यसुः पपात अम्भसि कृत्तशीर्षः निकृत्त शृङ्ग अद्रिः इव इन्द्र तेजसा तस्य आत्मजाः सप्त पितुः वध आतुराः प्रतिक्रिया अमर्ष जुषः समुद्यताः ॥११॥

इन्द्र तेजसा	इन्द्रके तेज (वज्र) द्वारा
निकृत्त शृङ्ग	कटे शिखर वाले
अद्रिः इव	पर्वतके समान
कृत्तशीर्षः	सिर कट जाने पर वह
व्यसुः अम्भसि	निष्प्राण होकर (खाईके) जलमें
पपात	गिर पड़ा ।
तस्य सप्त	उसके सातों
आत्मजाः	पुत्र
अमर्षजुषः	असहनशीलतावश
पितुः वध	पिताके वधसे
आतुराः	व्याकुल
प्रतिक्रिया	बदला लेनेको
समुद्यताः	उद्यत हुए ॥११॥

ताम्रोऽन्तरिक्षः श्रवणो विभावसु-
वंसुर्नभस्वानरुणश्च सप्तमः ।
पीठं पुरस्कृत्य चमूपतिं मृधे
भौमप्रयुक्ता निरगन् धृतायुधाः ॥१२॥

ताम्रः अन्तरिक्षः श्रवणः विभावसुः वसुः नभस्वान् अरुणः च सप्तमः पीठं पुरस्कृत्य चमूपतिं मृधे भौम प्रयुक्ता निरगन् धृत आयुधाः ॥१२॥

भौम प्रयुक्ता	भौमासुर द्वारा भेजे	वसुः नभस्वान्	वसु, नभस्वान्,
धृत आयुधाः	हथियार लिए	च सप्तमः	और सातवां
चमूपतिं	सेनापति	अरुणः	अरुण
पीठं पुरस्कृत्य	पीठको आगे करके	मृधे निरगन्	युद्धमें निकले ॥१२॥
ताम्रः	ताम्र,		
अन्तरिक्षः	अन्तरिक्ष,		
श्रवणः	श्रवण,		
विभावसुः	विभावसु,		

प्रायुञ्जतासाद्य शरानसीन् गदाः
शक्त्यृष्टिशूलान्यजिते रुषोल्बणाः ।
तच्छस्त्रकूटं भगवान् स्वमार्गणै-
रमोघवीर्यस्तिलशश्चकर्त ह ॥१३॥

प्रायुञ्जत आसाद्य शरान् असीन् गदाः शक्ति ऋष्टि शूलानि अजिते रुषः उल्बणाः तत् शस्त्र कूटं भगवान् स्वमार्गणैः अमोघ वीर्यः तिलशः चकर्त ह ॥१३॥

आसाद्य	समीप आकर (उन्होंने)	शूलानि	त्रिशूलोंका
शरान् असीन्	बाणों, तलवारों,	रुषः उल्बणा	प्रचण्ड क्रोधसे
गदाः शक्ति	गदा, शक्ति,	अजिते	भगवान अजित पर
ऋष्टि	ऋष्टियों,	प्रायुञ्जत	प्रयोग किया,

तत् शस्त्र कूटं	उस शस्त्र समूहको	ह तिलशः	अहो तिल-तिल करके
अमोघ वीर्यः	अमोघ पराक्रम	चकर्त	काट डाला ॥१३॥
भगवान्	भगवानने		
स्वमार्गणैः	अपने बाणोंसे		

तान् पीठमुख्याननयद् यमक्षयं
निकृत्तशीर्षोरुभुजाङ्घ्रिवर्मणः ।
स्वानीकपानच्युतचक्रसायकै-
स्तथा निरस्तान् नरको धरासुतः ॥१४॥

तान् पीठ मुख्यान् अनयत् यमक्षयं निकृत्त शीर्ष उरु भुज अंघ्रि वर्मणः स्व अनीकपान् अच्युत चक्र सायकैः तथा निरस्तान् नरकः धरासुतः ॥१४॥

शीर्ष उरु भुज	सिर, जांघें, भुजा	अच्युत चक्र	अच्युतके चक्र तथा
अंघ्रि वर्मणः	पैर, कवच	सायकैः	बाणोंसे
निकृत्त	कटे हुए	तथा निरस्तान्	इस प्रकार मारा
तान्	उन		गया देखकर
पीठ मुख्यान्	पीठ प्रधानको	धरासुतः नरकः	पृथ्वीका पुत्र
यमक्षयं अनयत्	यमराजके पास भेज दिया		नरकासुर ॥१४॥
स्व अनीकपान्	अपने सेनानायकों को		

निरीक्ष्य दुर्मर्षण आस्रवन्मदै-
र्गजैः पयोधिप्रभवैर्निराक्रमत् ।
दृष्ट्वा सभार्यं गरुडोपरि स्थितं
सूर्योपरिष्टात् सतडिद्घनं यथा ।
कृष्णं स तस्मै व्यसृजच्छतघ्नीं
योधाश्च सर्वे युगपत् स्म विव्यधुः ॥१५॥

निरीक्ष्य दुर्मर्षण आस्रवत् मदैः गजैः पयोधि प्रभवैः निराक्रमत् दृष्ट्वा सभार्यं गरुड उपरि स्थितं सूर्य उपरिष्टात् सतडित् घनं यथा कृष्णं स तस्मै व्यसृजत् शतघ्नीं योधाः च सर्वे युगपत् स्म विव्यधुः ॥१५॥

दुर्मर्षण	अत्यन्त असहनशील (वह)	कृष्णं दृष्ट्वा	श्रीकृष्णको देखकर
निरीक्ष्य	यह देखकर	स तस्मै	उसने उन पर
आस्रवत् मदैः	मदस्रावी	शतघ्नीं	शतघ्नी (तोप)
पयोधि प्रभवैः	समुद्रसे उत्पन्न (समुद्री)	व्यसृजत्	चलायी
गजैः नि ाक्रमत्	हाथियोंके साथ निकला	च सर्वे योधाः	तथा सब (उसके) सैनिकोंने
सूर्य उपरिष्टात्	सूर्यके ऊपर	युगपत् स्म	एक साथ ही
सतडित्	विजलीके साथ	विव्यधुः	(भगवान पर) प्रहार किया ॥१५॥
घनं यथा	मेघके समान		
सभार्यः	पत्नीके साथ		
गरुड	गरुड़के		
उपरिस्थितं	ऊपर बैठे		

तद् भौमसैन्यं भगवान् गदाग्रजो
विचित्रवाजैर्निशितैः शिलीमुखैः ।
निकृत्तबाहूरुशिरोध्रविग्रहं
चकार तर्ह्येव हताश्वकुञ्जरम् ॥१६॥

तत् भौमसैन्यं भगवान् गद अग्रजः विचित्र वाजैः निशितैः शिलीमुखैः निकृत्त बाहुः उरु शिरः उध्र विग्रहं चकार तर्हि एव हत अश्व कुञ्जरम् ॥१६॥

गद अग्रजः	गदके बड़े भाई	निशितैः	तीक्ष्ण
भगवान्	भगवानने	शिलीमुखैः	बाणोंसे
विचित्र वाजैः	विचित्र पत्रयुक्त	बाहु शिरः	भुजा, सिर,

उद्ग्र विग्रहं	कण्ठ और शरीर	तर्हि एव	उसी समय
निकृत्त	काटकर	हत अश्व	मारे गये घोड़े-
तत् भौमसैन्यं	उस भौमासुरकी सेनाको	कुञ्जरं	हाथी वाली
		चकार	बना दिया ॥१६॥

यानि योधैः प्रयुक्तानि शस्त्रास्त्राणि कुरूद्वह ।
हरिस्तान्यच्छिनत्तीक्ष्णैः शरैरेकैकशस्त्रिभिः ॥१७॥

यानि योधैः प्रयुक्तानि शस्त्र अस्त्राणि कुरूद्वह हरिः तानि अच्छिनत् तीक्ष्णैः शरैः एक एकशः त्रिभिः ॥१७॥

कुरूद्वह	कुरुश्रेष्ठ !	एक एकशः	प्रत्येक को
योधैः यानि	योधाओंने जिन	त्रिभिः	तीन-तीन
शस्त्र अस्त्राणि	शस्त्र-अस्त्रोंका	तीक्ष्णैः शरैः	तीक्ष्ण बाणोंसे
प्रयुक्तानि	गयोग किया था	अच्छिनत्	काट दिया ॥१७॥
हरिः तानि	श्रीहरिने उनमें		

उह्यमानः सुपर्णेन पक्षाभ्यां निघ्नता गजान् ।
गरुत्मता हन्यमानास्तुण्डपक्षनखैर्गजाः ॥१८॥

उह्यमानः सुपर्णेन पक्षाभ्यां निघ्नता गजान् गरुत्मता हन्यमानाः तुण्ड पक्ष नखैः गजाः ॥१८॥

पक्षाभ्यं गजान्	अपने पंखोंसे हाथियोंको	गरुत्मता	गरुड़ द्वारा
निघ्नता सुपर्णेन	मारते हुएके गरुड़के द्वारा	तुण्ड पक्ष नखैः	चोंच, पंख तथा नखोंसे
उह्यमानः	भगवान ढोये जा रहे थे और	हन्यमानाः गजाः	मारे जाते हाथी ॥१८॥

पुरमेवाविशन्नार्ता नरको युध्ययुध्यत ।
दृष्ट्वा विद्रावितं सैन्यं गरुडेनार्दितं स्वकम् ॥१९॥

पुरं एव अविशन् आर्तानरकः युध्य युध्यत दृष्ट्वा विद्रावितं सैन्यं गरुडेन अर्दितं स्वकम् ॥१९॥

पुरं एव	नगरमें ही
आर्ता अविशन्	व्याकुल होकर भाग गये,
युध्य युध्यत	युद्धमें युद्ध करते हुए
नरकः	नरकासुरने
स्वकं सैन्यं	अपनी सेनाको
गरुडेन अर्दितं	गरुड़ द्वारा रौंदी और
विद्रावितं	भगायी गयी
दृष्ट्वा	देखकर ॥१९॥

तं भौमः प्राहरच्छक्त्या वज्रः प्रतिहतो यतः ।
नाकम्पत तया विद्धो मालाहत इव द्विपः ॥२०॥

तं भौमः प्राहरत् शक्त्या वज्रः प्रतिहतः यतः न अकम्पत तया विद्धः मालाहत इव द्विपः ॥२०॥

भौमः तं	भौमासुरने उन (गरुड़) पर
शक्त्या प्राहरत्	शक्तिका प्रहार किया
यतः वज्रः	जिन पर वज्र भी
प्रतिहतः	व्यर्थ हो गया था
तया विद्धः	उस (शक्ति)से मारे जाने पर
मालाहत	(पुष्प) मालासे मारे गये
द्विपः इव	हाथीके समान
न अकम्पत	(गरुड़) कांपे भी नहीं ॥२०॥

शूलं भौमोऽच्युतं हन्तुमाददे वितथोद्यमः ।
तद्विसर्गात् पूर्वमेव नरकस्य शिरो हरिः ।
अपाहरद् गजस्थस्य चक्रेण क्षुरनेमिना ॥२१॥

शूलं भौमः अच्युतं हन्तुं आददे वितथ उद्यमः तत् विसर्गात् पूर्वं एव नरकस्य शिरः हरिः अपाहरत् गजस्थस्य चक्रेण क्षुरनेमिना ॥२१॥

भौमः	भौमासुरने	पूर्वं एव	पहिले ही
अच्युतं हन्तुं	अच्युतको मारने के लिए	क्षुरनेमिना	तीक्ष्ण धार वाले
		चक्रेण हरिः	चक्रसे श्रीहरिने
शूलं आददे	त्रिशूल उठाया,	गजस्थस्य	हाथी पर बैठे
वितथ उद्यमः	(किन्तु उसका) उद्योग व्यर्थ था	नरकस्य शिरः	नरकासुरका सिर
		अपाहरत्	काट दिया ॥२१॥
तत् विसर्गात्	उसे चलानेसे		

सकुण्डलं चारुकिरीटभूषणं
बभौ पृथिव्यां पतितं समुज्ज्वलत् ।
हाहेति साध्वित्यृषयः सुरेश्वरा
माल्यैर्मुकुन्दं विकिरन्त ईडिरे ॥२२॥

सकुण्डलं चारुकिरीट भूषणं बभौ पृथिव्यां पतितं समुज्ज्वलत् हा हा इति साधु इति ऋषयः सुर ईश्वरा माल्यैः मुकुन्दं विकिरन्त ईडिरे ॥२२॥

सकुण्डलं	कुण्डलोंके साथ	साधु इति	और 'अच्छा हुआ' इस प्रकार
चारुकिरीट	सुन्दर मुकुट		
भूषणं	भूषण वाले	ऋषयः	ऋषि तथा
समुज्ज्वलत्	जगमगाता (वह नरकासुरका सिर)	सुर ईश्वराः	देव प्रमुख (कहते हुए)
पृथिव्यां बभौ	पृथ्वी पर शोभित हुआ (तब)	मुकुन्दं	मुकुन्द पर
		माल्यैः	पुष्प
हा हा इति	'हाय हाय' इस प्रकार (उसके बंधु-जन)	विकिरन्त	वर्षा हुए
		ईडिरे	स्तुति करने लगे ॥२२॥

ततश्च भूः कृष्णमुपेत्य कुण्डले
प्रतप्तजाम्बूनदरत्नभास्वरे ।

सवैजयन्त्या वनमालयार्पयत्
प्राचेतसं छत्रमथो महामणिम् ॥२३॥

ततः च भूः कृष्णं उपेत्य कुण्डले प्रतप्त जाम्बूनद रत्न भास्वरे स वैजयन्त्या वनमालया अर्पयत् प्राचेतसं छत्रं अथो महामणिम् ॥२३॥

ततः भूः	तब भूदेवीने
कृष्णं च उपेत्य	श्रीकृष्णके समीप आकर
प्रतप्त जाम्बूनद	तप्ताये हुए स्वर्णमें
रत्न भास्वरे	जड़े ज्योतिर्मय रत्नों वाले
कुण्डले	दोनों (अदितिके) कुण्डल,
प्राचेतसं छत्रं	वरुणका छत्र
अथो महामणि	और (मन्दरशिखर नामक) महामणि
स वैजयन्त्या	वैजयन्ती
वनमालया	वनमालाके साथ
अर्पयत्	अर्पित की ॥२३॥

अस्तौषीदथ विश्वेशं देवी देववरार्चितम् ।
प्राञ्जलिः प्रणता राजन् भक्तिप्रवणयाधिया ॥२४॥

अस्तौषीत् अथ विश्व ईशं देवी देववर अर्चितं प्राञ्जलिः प्रणता राजन् भक्ति प्रवणया धिया ॥२४॥

राजन्	राजन् !
भक्ति प्रवणया	भक्ति-परायण
धिया	चित्तसे
अथ देवी	फिर पृथ्वीदेवी
प्राञ्जलिः	हाथ जोड़कर
प्रणता	प्रणाम करके
विश्व ईशं	जगदीश्वर,
देववर अर्चितं	श्रेष्ठ देवताओं द्वारा पूजित की
अस्तौषीत्	स्तुति करने लगीं ॥२४॥

॥ भूमिरुवाच ॥

नमस्ते देवदेवेश शंखचक्रगदाधर ।
भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन् नमोऽस्तु ते ॥२५॥

नमः ते देवदेवेश शङ्ख चक्र गदाधर भक्त इच्छा उपात्त रूपाय परमात्मन् नमः अस्तु ते ॥२५॥

शङ्ख चक्र	शंख, चक्र,	उपात्त रूपाय	रूप धारण करने वाले
गदाधर	गदाधारी	परमात्मन्	परमात्मन् !
देवदेवेश	देवदेवेश्वर !	ते नमः अस्तु	आपको नमस्कार हो ॥२५॥
ते नमः	आपको नमस्कार		
भक्त इच्छा	भक्तोंकी इच्छा के अनुसार		

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्काङ्घ्रये ॥२६॥

नमः पङ्कज नाभाय नमः पङ्कज मालिने नमः पङ्कज नेत्राय नमः ते पङ्कज अङ्घ्रये ॥२६॥

पङ्कज नाभाय	पद्मनाभको	पङ्कज नेत्राय	सरोजनयनको
नमः	नमस्कार,	नमः	नमस्कार,
पङ्कज मालिने	कमलमालीको	ते पङ्कज	आप पद्मपादको
नमः	नमस्कार,	अङ्घ्रये नमः	नमस्कार ॥२६॥

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे ।
पुरुषायादिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः ॥२७॥

नमः भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे पुरुषाय आदिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः ॥२७॥

तुभ्यं भगवते	आप भगवान	पूर्णबोधाय	पूर्णज्ञान नमस्कार
वासुदेवाय	वासुदेव	पुरुषाय	परम पुरुष
विष्णवे नमः	विष्णुको नमस्कार,	ते नमः	आपको नमस्कार ॥२७॥
आदिबीजाय	(सृष्टिके) आदि कारण		

अजाय जनयित्रेऽस्य ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
परावरात्मन् भूतात्मन् परमात्मन् नमोऽस्तु ते ॥२८॥

अजाय जनयित्रे अस्य ब्रह्मणे अनन्त शक्तये पर अवर आत्मन् भूत आत्मन् परमात्मन् नमः अस्तु ते ॥२८॥

अजाय	(स्वयं) अजन्मा	परमात्मन्	परमात्मा
अस्य जनयित्रे	इस जगतके उत्पत्तिकर्ता	ते नमः अस्तु	आपको नमस्कार हो ॥२८॥
पर अवर आत्मन्	कारण-कार्य स्वरूप तथा		
भूत आत्मन्	समस्त भूतोंके स्वरूप		

त्वं वै सिसृक्षू रज उत्कटं प्रभो
तमो निरोधाय बिभर्ष्यसंवृतः ।
स्थानाय सत्त्वं जगतो जगत्पते
कालः प्रधानं पुरुषो भवान् परः ॥२९॥

त्वं वै सिसृक्षू रज उत्कटं प्रभो तमः निरोधाय बिभर्षि असंवृतः स्थानाय सत्त्वं जगतः जगत्पते कालः प्रधानं पुरुषः भवान् परः ॥२९॥

प्रभो	प्रभो !	बिभर्षि	धारण करते हो,
वै त्वं	निश्चय आप	असंवृतः	(परगुणोंसे) ढके नहीं हो,
जगतः सिसृक्षू	संसारकी सृष्टि करनेकी इच्छासे	जगत्पते	जगदीश्वर !
उत्कटं रजः	उत्कट रजोगुण,	कालः प्रधानं	काल, प्रकृति,
निरोधाय	प्रलयके लिए	पुरुषः भवान्	जीव भी आप ही हैं
तमः	तमो गुण और	परः	और (इनसे) परे हैं ॥२९॥
स्थानाय सत्त्वं	स्थितिके लिए सत्त्व गुण		

अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो
मात्राणि देवा मन इन्द्रियाणि ।
कर्ता महानित्यखिलं चराचरं
त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं भ्रमः ॥३०॥

अहं पयः ज्योतिः अथ अनिलः नभः मात्राणि देवा मन इन्द्रियाणि कर्ता महान् इति अखिलं चर अचरं त्वयि अद्वितीये भगवन् अयं भ्रमः ॥३०॥

अहं पयः	मैं (पृथ्वी) जल,	इति अखिलं	इस प्रकार सम्पूर्ण
ज्योतिः अनिलः	अग्नि, वायु,	चर अचरं	जंगम-स्थावर
अथ नभः	और आकाश,	अयं	यह विश्व
मात्राणि देवा	तन्मात्राएँ, अधिदेवता,	त्वयि अद्वितीये	आप अद्वयमें
		भ्रमः	भ्रम (से प्रतीत हो रहा) है ॥३०॥
मन इन्द्रियाणि	मन, इन्द्रियां		
कर्ता महान्	कर्ता (अहंकार) महत्तत्व		

तस्यात्मजोऽयं तव पादपङ्कजं
भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः ।
तत् पालयैनं कुरु हस्तपङ्कजं
शिरस्यमुष्याखिलकल्मषापहम् ॥३१॥

तस्य आत्मजः अयं तव पादपङ्कजं भीतः प्रपन्न आर्तिहरः अपसादितः तत् पालय एनं कुरु हस्तपङ्कजं शिरसि अमुष्य अखिल कल्मष अपहम् ॥३१॥

तस्य	उस (भौमासुर)का	प्रपन्न आर्तिहरः	शरणागत कष्टहारी !
अयं आत्मजः	यह पुत्र		

तव पादपङ्कजं	आपके चरण-कमलों में	अखिल कल्मष	समस्त पापोंको
		अपहं	नाश करने वाला
भीतः	डरकर	हस्तपङ्कजं	अपना हस्त-कमल
अपसादितः	लाया गया है,	अमुष्य शिरसि	इसके सिर पर
तत् एनं पालय	अतः इसका पालन कीजिए	कुरु	रखें ॥३१॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इति भूम्यार्थितो वाग्भिर्भगवान् भक्तिनम्रया ।
दत्त्वाभयं भौमगृहं प्राविशत् सकलर्द्धिमत् ॥३२॥

इति भूमि अर्थितः वाक्भिः भगवान् भक्तिनम्रया दत्वा अभयं भौमगृहं प्राविशत् सफल ऋद्धिमत् ॥३२॥

इति	इस प्रकार	अभयं दत्त्वा	अभव देकर
भक्तिनम्रया	भक्ति विनम्रा	सकल ऋद्धिमत्	सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे पूर्ण
भूमि वाक्भिः	भूदेवीकी वाणीसे		
अर्थितः	प्रार्थना किये जाने पर	भौमगृहं	भौमासुरके भवनमें
		प्राविशत्	प्रविष्ट हुए ॥३२॥
भगवान्	भगवान्		

तत्र राजन्यकन्यानां षट्सहस्राधिकायुतम् ।
भौमाहृतानां विक्रम्य राजभ्यो ददृशे हरिः ॥३३॥

तत्र राजन्यकन्यानां षट् सहस्र अधिक अयुतं भौम आहृतानां विक्रम्य राजभ्यः ददृशे हरिः ॥३३॥

तत्र षट् सहस्र	वहां छः सहस्र	राजन्यकन्यानां	राजकुमारियां
अधिक अयुतं	अधिक दस सहस्र (सोलह सहस्र)	राजभ्यः	राजाओंसे
		विक्रम्य	बलपूर्वक

भौम आहृतानां	भौमासुर द्वारा हरण करके लायी	हरिः ददृशे	श्री हरिने देखीं ॥३३॥

तं प्रविष्टं स्त्रियो वीक्ष्य नरवीरं विमोहिताः ।
मनसा वव्रिरेऽभीष्टं पतिं दैवोपसादितम् ॥३४॥

तं प्रविष्टं स्त्रियः वीक्ष्य नरवीरं विमोहिताः मनसा वव्रिरे अभीष्टं पतिं दैव उपसादितम् ॥३४॥

तं नरवीरं	उन पुरुषवीरको	अभीष्टं पतिं	अभीष्ट पतिको
प्रविष्टं वीक्ष्य	आया देखकर	मनसा वव्रिरे	मनसे वरण कर लिया ॥३४॥
विमोहिताः	मोहित हुई		
स्त्रियः	स्त्रियोंने		
दैव उपसादितं	दैव द्वारा प्राप्त कराये		

भूयात् पतिरयं मह्यं धाता तदनुमोदताम् ।
इति सर्वाः पृथक् कृष्णे भावेन हृदयं दधुः ॥३५॥

भूयात् पतिः अयं मह्यं धाता तत् अनुमोदतां इति सर्वाः पृथक् कृष्णे भावेन हृदयं दधुः ॥३५॥

अयं मह्यं	'यह मेरे	पृथक्	अलग-अलग
पतिः भूयात्	पति होवें	भावेन	भावनासे
तत् धाता	इसका विधाता	कृष्णे	श्रीकृष्णमें
अनुमोदतां	अनुमोदन करें	हृदयं दधुः	चित्त लगा दिया ॥३५॥
इति सर्वाः	इस प्रकार सबने		

ताः प्राहिणोद् द्वारवतीं सुमृष्टविरजोऽम्बराः ।
नरयानैर्महाकोशान् रथाश्वान् द्रविणं महत् ॥३६॥

ताः प्राहिणोत् द्वारवतीं सुमृष्ट विरजः अम्बराः नरयानैः महाकोशान् रथ अश्वान् द्रविणं महत् ॥३६॥

ताः सुमृष्ट	उन सुन्दर	रथ अश्वान्	रथ, घोड़े
विरजः अम्बराः	निर्मल वस्त्र वालियोंको	महत् द्रविणं	महान् द्रव्योंके साथ
नरयानैः	पालकियों पर	द्वारवतीं	द्वारिका
महाकोशान्	बहुत-सा धन,	प्राहिणोत्	भेज दिया ॥३६॥

ऐरावतकुलेभांश्च चतुर्दन्तांस्तरस्विनः ।
पाण्डुरांश्च चतुःषष्टिं प्रेषयामास केशवः ॥३७॥

ऐरावत कुल इभान् च चतुः दन्तान् तरस्विनः पाण्डुरान् च चतुःषष्टिं प्रेषयामास केशवः ॥३७॥

केशवः	केशवने	च पाण्डुरान्	तथा श्वेत
ऐरावत कुल	ऐरावतके कुलमें उत्पन्न	चतुःषष्टिं	चौंसठ
चतुः दन्तान्	चार दाँत वाले	इभान् च	हाथी भी
तरस्विनः	अत्यन्त वेगवान	प्रेषयामास	भेजे ॥३७॥

गत्वा सुरेन्द्रभवनं दत्त्वादित्यै च कुण्डले ।
पूजितस्त्रिदशेन्द्रेण सहेन्द्राण्या च सप्रियः ॥३८॥

गत्वा सुरेन्द्र भवनं दत्त्वा अदित्यै च कुण्डले पूजितः त्रिदश इन्द्रेण सह इन्द्राण्या च सप्रियः ॥३८॥

सुरेन्द्र भवनं	इन्द्रके भवनमें	सह इन्द्राण्या	इन्द्राणीके साथ
गत्वा	जाकर	त्रिदश इन्द्रेण	देवताओं तथा इन्द्र द्वारा
च अदित्यै	तथा अदितिको	सप्रियः	पत्नीके साथ
कुण्डले दत्त्वा	(उनके) कुण्डल देकर	पूजितः	सत्कृत हुए ॥३८॥

चोदितो भार्ययोत्पाट्य पारिजातं गरुत्मति ।
आरोप्य सेन्द्रान् विबुधान् निर्जित्योपानयत् पुरम् ॥३६॥

चोदितः भार्यया उत्पाट्य पारिजातं गरुत्मति आरोप्य स इन्द्रान् विबुधान् निर्जित्य उप आनयत् पुरम् ॥३६॥

भार्यया	पत्नी द्वारा	स इन्द्रान्	इन्द्रके साथ
चोदितः	प्रेरित होकर	बिबुधान्	देवताओंको
पारिजातं	कल्पवृक्षको	निर्जित्य	जीतकर
उत्पाट्य	उखाड़ कर	पुरं उप	अपने नगर
गरुत्मति	गरुड़ पर	आनयत्	ले आये ॥३६॥
आरोप्य	रखकर		

स्थापितः सत्यभामाया गृहोद्यानोपशोभनः ।
अन्वगुर्भ्रमराः स्वर्गात् तद्गन्धासवलम्पटाः ॥४०॥

स्थापितः सत्यभामायाः गृह उद्यान उपशोभनः अन्वगुः भ्रमराः स्वर्गात् तत् गन्ध आसव लम्पटाः ॥४०॥

सत्यभामायाः	सत्यभामाके	आसव लम्पटा	मकरन्दके लोभी
गृह उद्यान	घरके बगीचेको	भ्रमराः	भ्रमर
उपशोभनः	सुशोभित करनेके लिए	स्वर्गात्	स्वर्गसे
		अन्वगुः	उसके पीछे आ गये ॥४०॥
स्थापितः	(वहां) लगा दिया		
तत् गन्ध	उसकी सुरभि और		

ययाच आनम्य किरीटकोटिभिः
पादौ स्पृशन्नच्युतमर्थसाधनम् ।
सिद्धार्थ एतेन विगृह्यते महा-
नहो सुराणां च तमो धिगाढ्यताम् ॥४१॥

ययाच आनम्य किरीट कोटिभिः पादौ स्पृशन् अच्युतं अर्थ साधनं सिद्ध अर्थं एतेन विगृह्यते महान् अहो सुराणां च तमः धिक् आढ्यताम् ॥४१॥

अर्थ साधनं	प्रयोजन बनानेके लिए	**सिद्ध अर्थ**	और प्रयोजन सिद्ध हो जाने पर
किरीट	मुकुटके	**एतेन विगृह्यते**	इन्हींसे विरोध करते हैं
कोटिभिः	सिरेसे	**अहो सुराणां**	अहो देवताओंका
पादौ स्पृशन्	चरणोंका स्पर्श करके	**तमः**	अज्ञान
आनम्य	बहुत विनम्र प्रणाम करके	**आढ्यतां धिक्**	इनके धनीपनेको धिक्कार ॥४१॥
अच्युतं ययाच	अच्युतसे प्रार्थना की		

अथो मुहूर्त एकस्मिन् नानागारेषु ताः स्त्रियः ।
यथोपयेमे भगवांस्तावद्रूपधरोऽव्ययः ॥४२॥

अथो मुहूर्त एकस्मिन् नाना आगारेषु ताः स्त्रियः यथा उपयेमे भगवान् तावत् रूप धरः अव्ययः ॥४३॥

अथो एकस्मिन्	फिर एक ही	**अव्ययः भगवान्**	अविनाशी भगवान् ने
मुहुर्त	मुहुर्तमें	**यथा उपयेमे**	विधिपूर्वक विवाह किया ॥४२॥
नाना अगारेषु	पृथक-पृथक गृहोंमें		
ताः स्त्रियः	उन स्त्रियोंसे		
तावत् रूप धरः	उतने ही रूपधारी		

गृहेषु तासामनपाय्यतर्क्य कृ-
न्निरस्तसाम्यातिशयेष्ववस्थितः ।
रेमे रमाभिर्निजकामसम्प्लुतो
यथेतरो गार्हकमेधिकांश्चरन् ॥४३॥

गृहेषु तासां अनपायि अतर्क्य कृत् निरस्त साम्य अतिशयेषु अवस्थितः रेमे रमाभिः निजकाम सम्प्लुतः यथा इतरः गार्हकमेधिकान् चरन् ॥४३॥

निरस्त साम्य	जिनके समान और	अनपायि	स्थिर रहने वाली
अतिशयेषु	अधिक (सामग्री) नहीं है	रमाभिः	लक्ष्मीके द्वारा
तासां गृहेषु	उनके घरोंमें	निजकाम	आत्मकाम
अवस्थितः	रहते हुए	सम्प्लुतः	निमग्न रहते
अतर्क्य कृत्	अचिन्त्य कर्मा (भगवान)	यथा इतरः	दूसरोंकी भाँति
		गार्हकमेधिकान् चरन् रेमे	गृहस्थ धर्मका पालन करते रमण करते थे ॥४३॥

इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता
ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ।
भेजुर्मुदाविरतमेधितयानुराग-
हासावलोकनवसंगमजल्पलज्जाः ॥४४॥

इत्थं रमापतिं अवाप्य पतिं स्त्रियः ताः ब्रह्म आदयः अपि न विदुः पदवीं यदीयां भेजुः मुदा अविरतं एधितया अनुराग हास अवलोक नवसङ्गम जल्पलज्जाः ॥४४॥

यदीयां पदवीं	जिनकी प्राप्तिका मार्ग	मुदा अविरतं	आनन्दसे अविराम
ब्रह्म आदयः	ब्रह्मा आदि भी	एधितया	बढ़ते हुए
न विदुः	नहीं जानते	अनुराग	प्रेमसे भरी
ताः स्त्रियः	वे स्त्रियां	हास अवलोक	हँसी युक्त चितवनसे
इत्थं रमापतिं	इस प्रकार श्रीपति को	नवसङ्गम	नवीन समागमकी
		जल्पलज्जाः	बातचीत और लज्जाको
पतिं अवाप्य	अपने पति रूपमें पाकर	भेजुः	प्राप्त करती रहीं ॥४४॥

प्रत्युद्गासनवरार्हणपादशौच-
ताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः ।
केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यै-
र्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥४५॥

प्रति उद्गम आसन वर अर्हण पादशौच ताम्बूल विश्रमण वीजन गन्ध माल्यैः केशप्रसार शयन स्नपन उपहार्यैः दासीशता अपि विभोः विदधुः स्म दास्यम् ॥४५॥

प्रति उद्गम	उठकर आगे लेने जानेमें	**केशप्रसार**	केश सुलझाने,
वर आसन	श्रेष्ठ आसन देने,	**शयन**	शय्या सजाने,
अर्हण पादशौच	पूजन, चरण-प्रक्षालन	**स्नपन**	स्नान कराने
		उपहार्यैः	अनेक भेंट देनेमें
ताम्बूल	पान देने,	**दासीशता अपि**	सैकड़ों दासियां रहने पर भी
विश्रमण	विश्राम कराने,	**विभोः**	(अपने) स्वामीकी
वीजन	पंखा झलने,	**दास्यं विदधुः**	(वे रानियां) स्वयं सेवा करती थीं ॥४५॥
गन्ध माल्यैः	चन्दन, माला (बनाने)में		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पारिजातहरणनरकवधो नाम एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५६॥

अथ षष्टितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

कर्हिचित् सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम् ।
पतिं पर्यचरद् भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ॥ १ ॥

कर्हिचित् सुखं आसीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुं पतिं पर्यचरत् भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ॥१॥

कर्हिचित	किसी दिन	सखीजनैः	सखियोंके साथ
स्वतल्पस्थं	अपनी शैय्यापर	व्यजनेन	पंखा लेकर
सुखं आसीनं	सुखपूर्वक बैठे	पर्यचरत्	सेवा कर रही थीं ॥१॥
जगद्गुरुं पतिं	जगद्गुरु अपने पति की		
भैष्मी	भीष्मक-नन्दिनी रुक्मिणी		

यस्त्वेतल्लीलया विश्वं सृजत्यत्त्यवतीश्वरः ।
स हि जातः स्वसेतूनां गोपीथाय यदुष्वजः ॥ २ ॥

यः तु एतत् लीलया विश्वं सृजति अत्ति अवति ईश्वरः स हि जातः स्वसेतूनां गोपीथाय यदुषु अजः ॥२॥

यः तु एतत्	जो तो इस	स्वसेतूनां	अपनी (धर्म) मर्यादाओंकी
विश्वं सृजति	विश्वकी सृष्टि करते हैं	गोपीथाय	रक्षाके लिए
अत्ति अवति	खालते हैं या पालन करते हैं	स हि अजः	वही अजन्मा
हि ईश्वरः	क्योंकि सर्वसमर्थ हैं	यदुषु जातः	यदुवंशमें अवतीर्ण हुए हैं ॥२॥

तस्मिन्नन्तर्गृहे भ्राजन्मुक्तादामविलम्बिना ।
विराजिते वितानेन दीपैर्मणिमयैरपि ॥ ३ ॥

तस्मिन् अन्तः गृहे भ्राजत् मुक्तादाम विलम्बिना विराजिते वितानेन दीपैः मणिमयैः अपि ।३॥

मुक्तादाम	मोतियोंकी झालरें	दीपैः अपि	दीपकोंसे भी
विलम्बिना	लटकने वाले	विराजिते	शोभित
वितानेन	चँदोवों वाले तथा	तस्मिन्	उस
मणिमयैः	मणियोंके	अन्तः गृहे	अन्तःपुरमें ॥३॥

मल्लिकादामभिः पुष्पैर्द्विरेफकुलनादितैः ।
जालरन्ध्रप्रविष्टैश्च गोभिश्चन्द्रमसोऽमलैः ॥ ४ ॥

मल्लिका दामभिः पुष्पैः द्विरेफकुल नादितैः जालरन्ध्र प्रविष्टैः च गोभिः चन्द्रमसोऽमलैः ॥४॥

द्विरेफकुल	भ्रमर समूहोंकी	च जालरन्ध्र	तथा खिड़कीकी
नादितैः	गुंजार युक्त		जालियोंके छिद्रसे
मल्लिका पुष्पैः	चमेलीके पुष्पोंकी	चन्द्रमसो अमलैः	निर्मल चाँदनीके
दामभिः	मालाओंसे (सजे)	प्रविष्टैः	प्रवेशसे (मनोरम) ॥४॥

पारिजातवनामोदवायुनोद्यानशालिना ।
धूपैरगुरुजै राजन् जालरन्ध्रविनिर्गतैः ॥ ५ ॥

पारिजात वन आमोद वायुना उद्यान शालिना धूपैः अगुरुजैः राजन् जालरन्ध्र विनिर्गतैः ॥५॥

राजन्	राजन् !	जालरन्ध्र	गवाक्षके छिद्रोंसे
पारिजात	परिजात	विनिर्गतैः	निकलते हुए
वन आमोद	वनकी सुगन्ध वाली	अगुरुजैः धूपैः	अगुरुके धुएँसे युक्त ॥५॥
वायुना	वायु वाले		
उद्यान शालिना	उद्यानसे युक्त		

पयःफेननिभे शुभ्रे पर्यङ्के कशिपूत्तमे ।
उपतस्थे सुखासीनं जगतामीश्वरं पतिम् ॥ ६ ॥

पयः फेननिभे शुभ्रे पर्यङ्के कशिपु उत्तमे उपतस्थे सुखं आसीनं जगतां ईश्वरं पतिम् ॥६॥

पयः फेननिभे	दूधके फेनके समान	जगतां ईश्वरं	सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी
शुभ्रे उत्तमे	उज्ज्वल उत्तम	पतिं उपतस्थे	अपने पतिके समीप खड़ी थीं ॥६॥
कशिपु पर्यङ्के	बिछौने युक्त पलंग पर		
सुखं आसीनं	सुखपूर्वक बैठे		

वालव्यजनमादाय रत्नदण्डं सखीकरात् ।
तेन वीजयती देवी उपासाञ्चक्र ईश्वरम् ॥ ७ ॥

वाले व्यजनं आदाय रत्नदण्डं सखीकरात् तेन वीजयती देवी उपासान् चक्र ईश्वरम् ॥७॥

सखीकरात्	सखीके हाथसे	तेन वीजयती	उससे वायु करती
रत्नदण्डं	रत्न जड़े डंडी वाला	देवी ईश्वरं	देवी रुक्मिणी पतिकी
वाल व्यजनं	छोटा पंखा	उपासान् चक्र	सेवा करने लगीं ॥७॥
आदाय	लेकर		

सोपाच्युतं क्वणयती मणिनूपुराभ्यां
रेजेऽङ्गुलीयवलयव्यजनाग्रहस्ता ।
वस्त्रान्तगूढकुचकुंकुमशोणहार-
भासा नितम्बधृतया च परार्ध्यकाञ्च्या ॥८॥

सा उप अच्युतं क्वणयती मणिनूपुराभ्यां रेजे अंगुलीयवलय व्यजन अग्रहस्ता वस्त्रान्त गूढ कुचकुंकुमशोण हार भासा नितम्ब धृतया च परार्ध्य काञ्च्या ॥८॥

अंगुलीयवलय	अंगूठी और कङ्कण
अग्रहस्ता	वाले हाथके अगले
व्यजन	भागमें पंखा लिये,
वस्त्रान्त गूढ	वस्त्रके किनारे छिपे
कुच कुंकुमशोण	स्तनों पर लगे कुंकुमसे लाल
हार भार	हारकी कान्तिसे
च नितम्ब	एवं नितम्बों पर
धृतया	पहली
पराध्यं	बहुमूल्य
काञ्च्या	करधनीसे
सा उप अच्युतं	वे अच्युतके समीप
मणिनूपुराभ्यां	मणिमय नूपुरोंकी
क्वणयती रेजे	झंकार करती शोभित हुई ॥८॥

तां रूपिणीं श्रियमनन्यगतिं निरीक्ष्य
या लीलया धृततनोरनुरूपरूपा ।
प्रीतः स्मयन्नलककुण्डलनिष्ककण्ठ-
वक्त्रोल्लसत्स्मितसुधां हरिराबभाषे ॥ ९ ॥

तां रूपिणीं श्रियं अनन्य गतिं निरीक्ष्य या लीलया धृततनोः अनुरूप रूपा प्रीतः स्मयन् अलक कुण्डल निष्क कण्ठ वक्त्र उल्लसत् स्मित सुधां हरिः आबभाषे ॥९॥

अलक कुण्डल	अलकों (से घिरे) कुण्डल,
निष्क कण्ठ	गलेमें स्वर्णहार
स्मित सुधां	मुस्कानकी सुधासे
उल्लसत् वक्त्र	सुशोभित मुख
लीलया	लीलाके लिए
धृततनोः	शरीर धारण किये
अनुरूप	(भगवान्)के अनुरूप
रूपा	रूपवाली
अनन्य गतिं	अन्यत्र कहीं न जाने वाली
तां रूपिणीं श्रियं	उन मूर्तिमती लक्ष्मी को
निरीक्ष्य	देखकर
प्रीतः स्मयन्	प्रेमसे मुस्कराते हुए
हरिः आबभाषे	श्रीहरि बोले ॥९॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

राजपुत्र्योप्सिता भूपैर्लोकपालविभूतिभिः ।
महानुभावैः श्रीमद्भी रूपौदार्यबलोर्जितैः ॥१०॥

राजपुत्रि ईप्सिता भूपैः लोकपाल विभूतिभिः महान् अनुभावैः श्रीमत्भिः रूप उदार्य बल अर्जितैः ॥१०॥

राजपुत्रि	राजकुमारी !	रूप उदार्य	सौन्दर्य, उदारता,
लोकपाल	लोकपालोंका	बल अर्जितैः	बलसे समृद्ध
विभूतिभिः	वैभव रखने वाले	भूपैः ईप्सिता	राजाओं द्वारा (तुम)
महान् अनुभावैः	महान् प्रभाव-वाले		चाही गयी थीं
श्रीमत्भिः	सम्पत्तिशाली		॥१०॥

तान् प्राप्तानर्थिनो हित्वा चैद्यादीन् स्मरदुर्मदान् ।
दत्ता भ्रात्रा स्वपित्रा च कस्मान्नो ववृषेऽसमान् ॥११॥

तान् प्राप्तान् अर्थिनः हित्वा चैद्य आदीन् स्मरदुर्मदान् दत्ता भ्रात्रा स्वपित्रा च कस्मात् नः ववृषे असमान् ॥११॥

भ्रात्रा च	अपने भाई तथा	चैद्य आदीन्	शिशुपाल आदिको
स्वपित्रा	पिताके	हित्वा नः	छोड़कर हम
दत्ता	देनेको प्रस्तुत होते	असमान्	असमानोंको
अर्थिनः	चाहने वाले	कस्मात् ववृषे	(तुमने) क्यों वरण
प्राप्तान्	आये हुए		किया ? ॥११॥
स्मरदुर्मदान्	कामोन्मत्त		

राजभ्यो बिभ्यतः सुभ्रूः समुद्रं शरणं गतान् ।
बलवद्भिः कृतद्वेषान् प्रायस्त्यक्तनृपासनान् ॥१२॥

राजभ्यः विभ्यतः सुभ्रूः समुद्रं शरणं गतान् बलवत्भिः कृत द्वेषान् प्रायः त्यक्त नृप आसनान् ॥१२॥

सुभ्रूः	सुन्दर भौंहों वाली !	कृत द्वेषान्	द्वेष कर रखा है
राजभ्यः	राजाओंसे	प्रायः	प्रायः
विभ्यतः	डरकर	नृप आसनान्	राज्यासन (राज्या-
समुद्रं शरणं	समुद्रकी शरणमें		धिकार)
गतान्	आये (बसे) हैं,	त्यक्त	छोड़ रखा है ॥१२॥
बलवत्भिः	बलवानोंसे		

अस्पष्टवर्त्मनां पुंसामलोकपथमीयुषाम् ।
आस्थिताः पदवीं सुभ्रूः प्रायः सीदन्ति योषितः ॥१३॥

अस्पष्ट वर्त्मनां पुंसां अलोक पथं इयुषां आस्थिताः पदवीं सुभ्रूः प्रायः सीदन्ति योषितः ॥१३॥

सुभ्रूः	सुभ्रू !	पदवीं आस्थिताः	मार्गानुसरण करने-वाली
अस्पष्ट वर्त्मनां	जिनका मार्ग स्पष्ट नहीं है	योषितः	स्त्रियां
अलोक पथं	(उन) अलौकिक मार्गसे	प्रायः सीदन्ति	प्रायः कष्ट पाती हैं ॥१३॥
इयुषां पुंसां	चलनेवाले पुरुषोंका		

निष्किञ्चना वयं शश्वन्निष्किञ्चनजनप्रियाः ।
तस्मात् प्रायेण न ह्याढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे ॥१४॥

निष्किञ्चना वयं शश्वत् निष्किञ्चन जन प्रियाः तस्मात् प्रायेण न हि आढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे ॥१४॥

सुमध्यमे	सुमध्यमे !	प्रियाः	(हमें) प्रिय हैं
वयं शश्वत्	हम तो सदाके	हि तस्मात्	क्योंकि इसीलिए
निष्किञ्चना	अकिञ्चन हैं,	आढ्या प्रायेण	धनवान प्रायः
निष्किञ्जन	अकिञ्चन	मां न भजन्ति	मेरी सेवा नहीं करते ॥१४॥
जन	लोग हों		

ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः ।
तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित् ॥१५॥

ययोः आत्म समं वित्तं जन्म ऐश्वर्य आकृतिः भवः तयोः विवाहः मैत्री च न उत्तमा अधमयोः क्वचित् ॥१५॥

ययोः आत्मसमं	जिनका अपने समान	ऐश्वर्य आकृतिः	ऐश्वर्य, रूप
वित्तं जन्म	धन, जाति,	भवः तयोः	और आय हो उन्हींमें

विवाहः च मैत्री	विवाह तथा मित्रता (उचित) है	अधमयोः	कनिष्ठोंमें
		क्वचित् न	कभी नहीं (होना चाहिए) ॥१५॥
उत्तमा	(उससे) श्रेष्ठ या		

वैदर्भ्येतदविज्ञाय त्वयादीर्घसमीक्षया ।
वृता वयं गुणैर्हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा ॥१६॥

वैदर्भि एतत् अविज्ञाय त्वया अदीर्घ समीक्षया वृता वयं गुणैः हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा ॥१६॥

वैदर्भि	विदर्भ-नन्दिनी !	भिक्षुभिः मुधा	भिक्षुकों द्वारा व्यर्थ
त्वया	तुमने	श्लाघिता	प्रशंसित
अदीर्घ समीक्षया	अदूरदर्शितावश	गुणैः हीना	गुणोंसे रहित
एतत् अविज्ञाय	इन बातोंको बिना जाने	वयं वृता	हमारा वरण कर लिया ॥१६॥

अथात्मनोऽनुरूपं वै भजस्व क्षत्रियर्षभम् ।
येन त्वमाशिषः सत्या इहामुत्र च लप्स्यसे ॥१७॥

अथ आत्मनः अनुरूपं वै भजस्व क्षत्रिय ऋषभं येन त्वं आशिषः सत्या इह अमुत्र च लप्स्यसे ॥१७॥

अथ वै	अतः अब भी	येन इह च	जिससे इस लोक तथा
त्वं आत्मनः	तुम अपने	अमुत्र	परलोकमें भी
अनुरूपं	योग्य	सत्या आशिषः	सच्ची अभिलाषामें
क्षत्रिय ऋषभं	किसी श्रेष्ठ क्षत्रिय-का	लप्स्यसे	प्राप्त करोगी ॥१७॥
भजस्व	सेवन करो		

चैद्यशाल्वजरासंधदन्तवक्त्रादयो नृपाः ।
मम द्विषन्ति वामोरु रुक्मी चापि तवाग्रजः ॥१८॥

चैद्य शाल्व जरासन्ध दन्तवक्त्र आदयः नृपाः मम द्विषन्ति वाम उरु रुक्मी च अपि तव अग्रजः ॥१८॥

वाम उरु	सुन्दर जांघों वाली !	**च तव अग्रजः**	और तुम्हारा बड़ा भाई
चैद्य शाल्व	शिशुपाल, शाल्व,		
जरासन्ध	जरासन्ध,	**रुक्मी अपि**	रुक्मी भी
दन्तवक्त्र	दन्तवक्त्र	**मम द्विषन्ति**	मुझसे द्वेष करते हैं ॥१८॥
आदयः नृपाः	आदि राजा		

तेषां वीर्यमदान्धानां दृप्तानां स्मयनुत्तये ।
आनीतासि मया भद्रे तेजोऽपहरतासताम् ॥१९॥

तेषां वीर्य मदान्धानां दृप्तानां स्मयनुत्तये आनीता असि मया भद्रे तेजः अपहरतां असताम् ॥१९॥

भद्रे	कल्याणी !	**असतां तेजः**	दुष्टोंके तेजको
तेषां वीर्य	उन बलके	**अपहरतां**	छीननेवाले
मदान्धानां	मदसे अन्धे हुए	**मया ते**	मेरे द्वारा तुम
दृप्तानां	मदमत्तोंके	**आनीता असि**	लायी गयी हो ॥१९॥
स्मयनुत्तये	मानमर्दनके लिए		

उदासीना वयं नूनं न स्त्यपत्यार्थकामुकाः ।
आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः ॥२०॥

उदासीनां वयं नूनं न स्त्री अपत्य अर्थ कामुकाः आत्मलब्ध्या आस्महे पूर्णा गेहयोः ज्योतिः अक्रियाः ॥२०॥

नूनं गेहयोः	निश्चय घरसे	**अक्रियाः**	निष्क्रिय
वयं उदासीना	हम उदासीन हैं,	**ज्योतिः**	प्रकाश-स्वरूप
स्त्री अपत्य	स्त्री-पुत्र,	**आत्मलब्ध्या**	आत्मलाभसे
अर्थ कामुकाः न	धन चाहनेवाले नहीं हैं,	**पूर्णा आस्महे**	(हम) परिपूर्ण हैं ॥२०॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एतावदुक्त्वा भगवानात्मानं बल्लभामिव ।
मन्यमानामविश्लेषात् तद्दर्पघ्न उपारमत् ॥२१॥

एतावत् उक्त्वा भगवान् आत्मानं बल्लभां इव मन्यमानां अविश्लेषात् तत् दर्पघ्न उपारमत् ॥२१॥

अविश्लेषात्	कभी अलग होनेसे	भगवान्	भगवान्
आत्मानं	अपनेको (अत्यन्त)	एतावत् उक्त्वा	इस प्रकार कहकर
बल्लभां इव	प्रियतमाके समान	उपारमत्	उपराम (चुप) हो गये ॥२१॥
मन्यमानां	माननें वालीसे		
तत् दर्पघ्न	उनके गर्वको नष्ट करनेके लिए		

इति त्रिलोकेशपतेस्तदाऽऽत्मनः
प्रियस्य देव्यश्रुतपूर्वमप्रियम् ।
आश्रुत्य भीता हृदि जातवेपथु-
श्चिन्तां दुरन्तां रुदती जगाम ह ॥२२॥

इति त्रिलोक ईश पतेः तत् आत्मनः प्रियस्य देवि अश्रुत पूर्वं अप्रियं आश्रुत्य भीता हृदि जातवेपथुः चिन्तां दुरन्तां रुदती जगाम ह ॥२२॥

त्रिलोक ईश	तीनों लोकोंके स्वामी	जातवेपथुः	कम्प उत्पन्न हो गया
आत्मनः	अपने	तदा रुदती	तब रोती हुई
प्रियस्य पतेः	प्रिय पतिकी	ह दुरन्तां	अहो दुष्पार
इति अश्रुत पूर्वं	इस प्रकारकी पहिले कभी न सुनी	चिन्तां	चिन्ताको
अप्रियं आश्रुत्य	अप्रिय बात सुनकर	जगाम	प्राप्त हो गयीं ॥२२॥
भीता हृदि	भयभीत होकर हृदयमें		

पदा सुजातेन नखारुणश्रिया
भुवं लिखन्त्यश्रुभिरञ्जनासितैः ।
आसिञ्चती कुंकुमरूषितौ स्तनौ
तस्थावधोमुख्यति दुःखरुद्धवाक् ॥२३॥

पदा सुजातेन नख अरुण श्रिया भुवं लिखन्ति अश्रुभिः अञ्जन असितैः आसिञ्चती कुंकुम रूषितौ स्तनौ तस्थाः अधः मुखि अति दुःख रुद्धवाक् ॥२३॥

सुजातेन पदा	सुन्दर चरणोंके	अति दुःख	अत्यन्त दुःखके कारण
अरुण श्रिया	लाल शोभाशाली	रुद्धवाक्	अवरुद्ध वाणी
नख	नखोंसे	अधः मुखी	नीचे सिर किए
भुवं लिखन्ति	पृथ्वी कुरेदती	तस्थाः	खडी रह गयीं ॥२३॥
अञ्जन असितैः	अञ्जनसे काले हुए		
अश्रुभिः	आंसुओंसे		
कुंकुम रूषितौ	कुंकुम रंजित		
स्तनौ	दोनों स्तनोंको		
आसिञ्चती	भिगाती हुई		

तस्याः सुदुःखभयशोकविनष्टबुद्धे-
र्हस्ताच्छ्लथद्वलययो व्यजनं पपात ।
देहश्च विक्लवधियः सहसैव मुह्यन्
रम्भेव वायुविहता प्रविकीर्य केशान् ॥२४॥

तस्याः सुदुःख भय शोक विनष्ट बुद्धेः हस्तात् श्लथत् वलयतः व्यजनं पपात देहः च विक्लवधियः सहसा एव मुह्यन् रम्भा इव वायु विहता प्रविकीर्य केशान् ॥२४॥

सुदुःख भय	अत्यन्त दुःख, भय,	श्लथत वलयतः	सरककर गिरे कंकणवाले
शोक	शोकसे	तस्याः हस्तात्	उनके हाथसे
विनष्ट बुद्धेः	बुद्धि नष्ट हो जानेसे		

व्यजनं	पंखा (छूटकर) और	रम्भा इव	केलेके समान
		केशान् प्रविकीर्य	केश फैलाये
विक्लवधियः	व्याकुल चित्त होनेसे	देहः च मुह्यन्	शरीर भी मूर्छित होकर
सहसा एव	अचानक ही		
वायु विहता	आँधीसे मारे	पपात	गिर पड़ा ॥२४॥

तद् दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः प्रियायाः प्रेमबन्धनम् ।
हास्यप्रौढिमजानन्त्याः करुणः सोऽन्वकम्पत ॥२५॥

तत् दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः प्रियायाः प्रेमबन्धनं हास्यप्रौढिं अजानन्त्याः करुणः सः अन्वकम्पत ॥२५॥

हास्यप्रौढिं	हास्यकी गम्भीरता	दृष्ट्वा करुणः	देखकर दयामय
अजानन्त्याः	न जाननेवाली	स भगवान्	उन भगवान
प्रियायाः	प्रियतमाके	कृष्णः	कृष्णने
तत् प्रेमबन्धनं	उस प्रेमानुबन्धको	अन्वकम्पत	अनुकम्पाकी ॥२५॥

पर्यङ्कादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुजः ।
केशान् समुह्य तद्वक्त्रं प्रामृजत् पद्मपाणिना ॥२६॥

पर्यङ्कात् अवरुह्य आशु तां उत्थाप्य चतुर्भुजः केशान् समुह्य तत् वक्त्रं प्रामृजत् पद्मपाणिना ॥२६॥

आशु पर्यङ्कात्	झटपट पलंगसे	केशान् समुह्य	(उनके) केश समेटकर
अवरुह्य	उतरकर		
चतुर्भुजः	अपनी चारों भुजाओंसे	पद्मपाणिना	कमलकरोंसे
		तत् वक्त्रं	उनके मुखको
तां उत्थाप्य	उन्हें उठाकर	प्रामृजत्	पोंछा ॥२६॥

प्रमृज्याश्रुकले नेत्रे स्तनौ चोपहतौ शुचा ।
आश्लिष्य बाहुना राजन्ननन्यविषयां सतीम् ॥२७॥

प्रमृज्य अश्रुकले नेत्रे स्तनौ च उपहतौ शुचा अश्लिष्य बाहुना राजन् अनन्य विषयां सतीम् ॥२७॥

राजन्	राजन् !
अश्रुकले नेत्रे	अश्रुपूर्ण नेत्रोंको
च शुचा उपहतौ	तथा अश्रुसिक्त
स्तनौ प्रमृज्य	स्तनोंको पोंछकर
अनन्य विषयां	जिनका और कोई आश्रय नहीं
सतीं बाहुना	उन सतीका भुजाओंसे
अश्लिष्य	आलिंगन किया ॥२७॥

सान्त्वयामास सान्त्वज्ञः कृपया कृपणां प्रभुः ।
हास्यप्रौढिभ्रमच्चित्तामतदर्हां सतां गतिः ॥२८॥

सान्त्वयामास सान्त्वज्ञः कृपया कृपणां प्रभुः हास्यप्रौढि भ्रमत् चित्तां अतत् अर्हां सतां गतिः ॥२८॥

हास्यप्रौढि	गम्भीर हास्यके कारण
भ्रमत् चित्तां	भ्रान्त चित्त हुई
कृपणां	दीन बुद्धि
अतत अर्हां	इस (हास्य) के अयोग्य (रुक्मिणीको)
सान्त्वज्ञः	समझानेमें निपुण
सतां गतिः	सत्पुरुषोंके आश्रय
प्रभुः कृपया	प्रभुने कृपापूर्वक
सान्त्वयामास	समझाया ॥२८॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मा मा वैदर्भ्यसूयेथा जाने त्वां मत्परायणाम् ।
त्वद्वचः श्रोतुकामेन क्ष्वेल्याऽऽचरितमङ्गने ॥२९॥

मा मा वैदर्भि असूयेथा जाने त्वां मत् परायणां त्वत् वचः श्रोतु कामेन क्ष्वेलि आचरितं अङ्गने ॥२९॥

वैदर्भि	विदर्भनन्दिनी
मा मा असूयेथा	मुझसे मत रुष्ट होना,
त्वां मत्	तुम्हें मेरी
परायणां	परायणा
जाने	जानता हूँ
अङ्गने	प्रियतमे !
त्वत् वचः	तुम्हारी बात
श्रोतु कामेन	सुननेकी इच्छासे
क्ष्वेलि आचरितं	(मैंने) परिहास किया था ॥२९॥

मुखं च प्रेमसंरम्भस्फुरिताधरमीक्षितुम् ।
कटाक्षेपारुणापाङ्गं सुन्दरभ्रुकुटीतटम् ॥३०॥

मुखं च प्रेमसंरम्भ स्फुरित अधरं ईक्षितुं कटाक्ष ईक्षण अरुण अपाङ्ग सुन्दर भ्रुकुटी तटम् ॥३०॥

प्रेमसंरम्भ	प्रणयकोपसे	सुन्दर भ्रुकुटी	सुन्दर भौहोंके
स्फुरित अधरं	फड़कते ओष्ठवाले	तटं	किनारेवाले
च अरुण अपाङ्ग	तथा लाल किनारे-वाले	मुखं ईक्षितुं	मुखको देखनेके लिए ॥३०॥
कटाक्ष ईक्षण	कटाक्ष पूर्वक देखते		

अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम् ।
यन्नर्मैनीयते यामः प्रियया भीरु भामिनि ॥३१॥

अयं हि परमः लाभः गृहेषु गृहमेधिनां यत् नर्मै नीयते यामः प्रियया भीरु भामिनी ॥३१॥

भीरु भामिनी	भीरु प्रिये !	यत् प्रियया	जो प्रियतमाके साथ
हि गृहमेधिनां	क्योंकि गृहस्थोंके लिए	नर्मै	हँसी करते
गृहेषु अयं	घरोंमें यही	यामः नीयते	दिन बिताते हैं ॥३१॥
परमः लाभः	बड़ा लाभ है		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

सैवं भगवता राजन् वैदर्भी परिसान्त्विता ।
ज्ञात्वा तत्परिहासोक्तिं प्रियत्यागभयं जहौ ॥३२॥

सा एवं भगवता राजन् वैदर्भी परिसान्त्विता ज्ञात्वा तत् परिहास उक्तिं प्रियत्याग भयं जहौ ॥३२॥

राजन्	राजन् !
भगवता एवं	भगवानके द्वारा इस प्रकार
परिसान्त्विता	भली प्रकार समझानेपर
सा वैदर्भी	उन विदर्भ-नन्दिनीने
तत् उक्ति	उनके वचनोंको
परिहास ज्ञात्वा	हँसी जानकर
प्रियत्याग	प्रियतम द्वारा त्यागे जानेका
भयं जहौ	भय त्याग दिया ॥३२॥

बभाष ऋषभं पुंसां वीक्षन्ती भगवन्मुखम् ।
सव्रीडहासरुचिरस्निग्धापाङ्गेन भारत ॥३३॥

बभाष ऋषभं पुंसां वीक्षन्ती भगवत् मुखं सव्रीड हास रुचिर स्निग्ध अपाङ्गेन भारत ॥३३॥

भारत	परीक्षित !
सव्रीड हास	लज्जापूर्ण हँसीयुक्त
रुचिर स्निग्ध	सुन्दर प्रेम युक्त
अपांगेन	कटाक्षसे
भगवत् मुखं	भगवानके मुखको
वीक्षन्ती	देखती हुई
पुंसां ऋषभं	उन पुरुषश्रेष्ठसे
बभाष	बोलीं ॥३३॥

॥ रुक्मिण्युवाच ॥

नन्वेवमेतदरविन्दविलोचनाह
यद् वै भवान् भगवतोऽसदृशो विभूम्नः ।
क्व स्वे महिम्न्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः
क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा ॥३४॥

ननु एवं एतत् अरविन्द विलोचन् आह यत् वै भवान् भगवतः असदृशो विभूम्नः क्वस्वे महिम्नि अभिरतः भगवान् त्रय अधीशः क्व अहं गुण प्रकृतिः अज्ञ गृहीत पादा ॥३४॥

अरविन्द	कमल-
विलोचन्	नयन
यत् भवान्	जो आपने
आह	कहा
भगवतः	आप भगवान
विभूम्नः	सर्वव्यापकके

असदृशी	(मैं) समान नहीं हूँ
ननु एतत् वै	निश्चय यह तो
एवं	ऐसा ही (ठीक) है
क्व स्वे महिम्नि	कहां अपनी महिमा-में
अभिरतः	नित्य-स्थित
त्रय अधीशः	त्रिलोकीनाथ
भगवान्	भगवान और
क्व अज्ञ	कहां अज्ञानियों द्वारा
गृहीत पादा	चरण पकड़ी जाने-वाली
अहं गुण	मैं गुणमय
प्रकृतिः	स्वभाववाली ॥३४॥

सत्यं भयादिव गुणेभ्य उरुक्रमान्तः
शेते समुद्र उपलम्भनमात्र आत्मा ।
नित्यं कदिन्द्रियगणैः कृतविग्रहस्त्वं
त्वत्सेवकैर्नृपपदं विधुतं तमोऽन्धम् ॥३५॥

सत्यं भयात् इव गुणेभ्यः उरुक्रम अन्तः शेते समुद्र उपलम्भन मात्र आत्मा नित्यं कद इन्द्रिय गणैः कृतं विग्रहः त्वं त्वत् सेवकैः नृपपदं विधुतं तमः अन्धम् ॥३५॥

उरुक्रम	अनन्त पराक्रम !
सत्यं	सचमुच ही
गुणेभ्यः	गुणोंसे
भयात् इव	भयभीतके समान
अन्तः	अन्तःकरण रूपी
समुद्र	समुद्रमें
उपलम्भन मात्र	केवल अनुभवरूप
आत्मा शेते	आत्मा (आप) सोते हैं,
नित्यं कद	सदा ही
इन्द्रिय गणैः	दुष्ट इन्द्रियोंसे
त्वं कृत विग्रहः	आपने कलह कर रखी है
त्वत् सेवकैः	आपके सेवकोंने
तमः अन्धं	घोर अन्धकार रूप
नृपपदं	राजसिंहासन
विधुतं	छोड़ रखा है ॥३५॥

त्वत्पादपद्ममकरन्दजुषां मुनीनां
वर्त्मास्फुटं नृपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम् ।
यस्मादलौकिकमिवेहितमीश्वरस्य
भूमंस्तवेहितमथो अनु ये भवन्तम् ॥३६॥

त्वत् पादपद्म मकरन्द जुषां मुनीनां वर्त्म अस्फुटं नृपशुभिः ननु दुर्विभाव्यं यस्मात् अलौकिकं इव ईहितं ईश्वरस्य भूमन् तव ईहितं अथो अनु ये भवन्तम् ॥३६॥

त्वत् पादपद्म	आपके चरण-कमलों के	यस्मात्	जिसलिए
मकरन्द जुषां	मकरन्द सेवी	भूमन्	सर्वव्यापक प्रभु
मुनीनां	मुनियों का	तव ईश्वरस्य	आप सर्वसमर्थकी
वर्त्म अस्फुटं	मार्ग अस्पष्ट और	ईहितं	चेष्टा
ननु नृपशुभिः	निश्चय नररूप पशुओंके लिए	अथो ये भवन्तं	और जो आपके
दुर्विभाव्यं	समझनेमें बहुत कठिन है	अनु ईहितं	अनुगामी हैं उनकी चेष्टा
		अलौकिकं इव	अलौकिकके समान होती है ॥३६॥

निष्किञ्चनो ननु भवान् न यतोऽस्ति किंचिद्
यस्मै बलिं बलिभुजोऽपि हरन्त्यजाद्याः ।
न त्वा विदन्त्यसुतृपोऽन्तकमाढ्यतान्धाः
प्रेष्ठो भवान् बलिभुजामपि तेऽपि तुभ्यम् ॥३७॥

निष्किञ्चनः ननु भवान् न यतः अस्ति किञ्चित् यस्मै बलिं बलिभुजः अपि हरन्ति अज आद्याः न त्वा विदन्ति असुतृपः अन्तकं आढ्यता अन्धाः प्रेष्ठः भवान् बलिभुजां अपि ते अपि तुभ्यम् ॥३७॥

ननु भवान्	निश्चय आप	बलिभुजः अपि	(दूसरोंसे) पूजित होने वाले भी
निष्किञ्चनः	निष्किञ्चन हैं	बलिं हरन्ति	पूजा भेंट देते हैं,
यतः किञ्चित्	जिनके अतिरिक्त कुछ	बलिभुजां	बलिभोक्ता (देवताओं)के
न अस्ति	है ही नहीं,	भवान प्रेष्ठः	आप प्रिय हैं
यस्मै अज आद्याः	जिनको ब्रह्मादि		

अपि ते अपि	और वे भी
तुभ्यं	आपको (प्रिय हैं)
आढ्यता अन्धाः	धनी होनेसे अन्धे
असुतृपः	अपने ही प्राणोंको तृप्त करने वाले
त्वा अन्तकं	आप कालरूपको
न विदन्ति	नहीं जानते ॥३७॥

त्वं वै समस्त पुरुषार्थमयः फलात्मा
यद्वाञ्छया सुमतयो विसृजन्ति कृत्स्नम् ।
तेषां विभो समुचितो भवतः समाजः
पुंसः स्त्रियाश्च रतयोः सुखदुःखिनोर्न ॥३८॥

त्वं वै समस्त पुरुषार्थमयः फल आत्मा यत् वाञ्छया सुमतयः विसृजन्ति कृत्स्नं तेषां विभो समुचितः भवतः समाजः पुंसः स्त्रियाः च रतयोः सुखदुःखिनोः न ॥३८॥

वै त्वं	निश्चय आप
समस्त	समस्त
पुरुषार्थमयः	पुरुषार्थ स्वरूप
फल आत्मा	और उनके फल (परमानन्द) स्वरूप हैं
यत् वाञ्छया	जिनको पानेकी इच्छासे
सुमतयः	सद्बुद्धि लोग
कृत्स्नं	सब कुछ
विसृजन्ति	त्याग देते हैं
विभो तेषां	प्रभो ! उनके लिए ही
भवतः समाजः	आपसे सम्बन्ध
समुचितः	पूरा उचित है
पुंसः च	पुरुष और
स्त्रियाः	स्त्रियों
रतयोः	की रतिसे
सुखदुःखिनोः न	सुखी-दुःखी होने वालोंको नहीं ॥३८॥

त्वं न्यस्तदण्डमुनिभिर्गदितानुभाव
आत्माऽऽत्मदश्च जगतामिति मे वृतोऽसि ।

हित्वा भवद्भ्रुव उदीरितकालवेग-
ध्वस्ताशिषोऽब्जभवनाकपतीन् कुतोऽन्ये ॥३९॥

त्वं न्यस्त दण्ड मुनिभिः गदित अनुभावः आत्मा आत्मदः च जगतां इति मे वृतः असि हित्वा भवत् भ्रुव उदीरत कालवेग ध्वस्त आशिषः अब्जभव नाकपतीन् कुतः अन्ये ॥३९॥

न्यस्त दण्ड	किसीको भी दण्ड देना त्याग देने वाले	उदीरित	संकेतसे संचालित
		कालवेग	कालकी गतिसे
मुनिभिः	मुनियों द्वारा	ध्वस्त आशिषः	अभिलाषा नष्ट हो जाने वाले
गदित अनुभावः	वर्णित प्रभाव वाले		
त्वं जगतां	आप विश्वके	अब्जभव	ब्रह्मा
आत्मा	आत्मा	नाकपतीन्	स्वर्गाधीशोंको
च आत्मदः	तथा (भक्तोंको) अपनेको भी दे देने वाले हैं	हित्वा	छोड़कर आप
		वृतः असि	(मेरे द्वारा) वरण किये गये हैं
इति मे	ऐसा जानकर मैंने	अन्ये कुतः	फिर दूसरे कहां होते हैं ॥३९॥
भवत् भ्रुव	आपकी भौंहोंके		

जाड्यं वचस्तव गदाग्रज यस्तु भूपान्
विद्राव्य शार्ङ्गनिनदेन जहर्थ मां त्वम् ।
सिंहो यथा स्वबलिमीश पशून् स्वभागं
तेभ्यो भयाद् यदुदधिं शरणं प्रपन्नः ॥४०॥

जाड्यं वचः तव गद अग्रज यः तु भूपान् विद्राव्य शार्ङ्ग निनदेन जहर्थ मां त्वं सिंहः यथा स्वबलिं ईश पशून् स्वभागं तेभ्यः भयात् यत् उदधिं शरणं प्रपन्नः ॥४०॥

गद अग्रज	गदके बड़े भाई !	स्वबलिं	अपना उपहार
यथा सिंह	जैसे सिंह		भाग

पशून्	पशुओंसे (छीन ले)
शार्ङ्ग निनदेन	शारंग धनुषकी टंकारसे
यः तु भूपान्	जो तो राजाओंको
विद्राव्य	भगाकर
स्वभागं	अपना भाग
त्वं मां जहर्थ	आपने मेरा हरण किया
तेभ्यः भयात्	उन्हींके भयसे
उदधिं शरणं	समुद्रकी शरण
प्रपन्नः	आये हैं
ईश यत् वचः	स्वामी यह जो आपकी बात है
जाडयं	भूल ही है ॥४०॥

यद्वाञ्छया नृपशिखामणयोऽङ्गवैन्य-
जायन्तनाहुषगयादय ऐकपत्यम् ।
राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमम्बुजाक्ष
सीदन्ति तेऽनुपदवीं त इहास्थिताः किम् ॥४१॥

यत् वाञ्छया नृप शिखामणयः अङ्ग वैन्य जायन्त नाहुष गय आदयः ऐकपत्यं राज्यं विसृज्य विविशुः वनं अम्बुज अक्ष सीदन्ति ते अनुपदवीं त इह आस्थिताः किम् ॥४१॥

अम्बुज अक्ष	कमल लोचन !
यत वाञ्छया	जिसे पानेकी इच्छा से
नृप	नृपति
शिखामणयः	चूड़ामणि
अङ्ग वैन्य	अङ्ग, पृथु,
जायन्त नाहुष	भरत, ययाति
गय आदयः	गय आदि
ऐकपत्यं राज्यं	चक्रवर्ती राज्य
विसृज्य	त्याग कर
वनं विविशुः	वनमें प्रवेश कर गये
ते अनुपदवीं	आपके मार्गके पीछे
इह अस्थिताः	इस विश्वमें चलने वाले
त किं सीदन्ति	वे क्या कष्ट पाते हैं ? ॥४१॥

कान्यं श्रयेत तव पादसरोजगन्ध-
माघ्राय सन्मुखरितं जनतापवर्गम् ।

लक्ष्म्यालयं त्वविगणय्य गुणालयस्य
मर्त्या सदोरुभयमर्थविविक्तदृष्टिः ॥४२॥

का अन्यं श्रयेत तव पादसरोज गन्धं आघ्राय सत् मुखरितां जनता अपवर्गं लक्ष्मि आलयं तु अविगणय्य गुण आलयस्य मर्त्या सदा उरु भयं अर्थ विविक्त दृष्टेः ॥४२॥

सत् मुखरितां	सत् पुरुषों द्वारा कीर्तित	मर्त्या सदा	मरण-धर्म नित्य
अपवर्गं जनता	मोक्षदायी	उरु भयं	बहुत भय वालेकी
लक्ष्मि आलयं	लक्ष्मीके निवास स्थान	अर्थ	अपने स्वार्थका
गुण आलयं	गुण धाम	विविक्त दृष्टेः	एकान्त विचार करने वाली
तव पादसरोज	आपके चरण-कमलों की	का अन्यं	कौन दूसरेका
गन्धं आघ्राय	सुगन्ध सूंघकर	श्रयेत	आश्रय लेगी ॥४२॥
तु अविगणय्य	फिर उनकी अवहेलना करके		

तं त्वानुरूपमभजं जगतामधीश-
मात्मानमत्र च परत्र च कामपूरम् ।
स्यान्मे तवांघ्रिररणं सृतिभिर्भ्रमन्त्या
यो वै भजन्तमुपयात्यनृतापवर्गः ॥४३॥

तं त्वा अनुरूपं अभजं जगतां अधीशं आत्मानं अत्र च परत्र च कामपूरं स्यात् मे तव अंघ्रि ररणं सृतिभिः भ्रमन्त्या यः वै भजन्तं उपयाति अनृत अपवर्गः ॥४३॥

जगतां अधीशं	समस्त संसारके अधीश्वर	अत्र च	इस लोकमें भी
		च परत्र	तथा परलोकमें

कामपूरं	सब कामनाएँ पूर्ण करने वाले
तं त्वा अनुरूपं	उस आपके अपने अनुरूप (जानकर)
अभजं	मैंने सेवन किया है
सृतिभिः	इस सृष्टि-चक्रमें
भ्रमन्त्या मे	भटकती हुई मुझे
यः वै	जो निश्चय
भजन्तं	भजन करने वालों को
अनृत	इस मिथ्या (संसार) से
अपवर्गः	मोक्षमें
उपयाति	पहुँचाते हैं उन
तव अंघ्रि ररणं	आपके चरणोंकी शरण
स्यात्	मिलती रहे ॥४३॥

तस्याः स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः
स्त्रीणां गृहेषु खरगोश्वबिडालभृत्याः ।
यत्कर्णमूलमरिकर्शन नोपयायाद्
युष्मत्कथा मृडविरिञ्चसभासु गीता ॥४४॥

तस्याः स्युः अच्युत नृपा भवतः उपदिष्टाः स्त्रीणां गृहेषु खर गो अश्व बिडाल भृत्याः यत् कर्णमूलं अरिकर्शन न उपयायात् युष्मत् कथा मृड विरिञ्च सभासु गीता ॥४४॥

अरिकर्शन	शत्रुनाशन् !
मृड विरिञ्च	शिव, ब्रह्माकी
सभासु गीता	सभामें गायी जाने वाली
युष्मत् कथा	आपकी कथा
यत् कर्णमूलं	जिसके कर्ण कुहरों के
उपयायात् न	समीप नहीं पहुँचती
अच्युत	अच्युत !
भवतः	आपके द्वारा
उपदिष्टाः	बतलाये
गृहेषु स्त्रीणां	घरोंमें स्त्रियोंके
खर गो अश्व	गधे, बैल, घोड़े
बिडाल भृत्याः	बिड़ालके समान सेवक
नृपा तस्याः	राजा लोग उसके लिए
स्युः	होवें ॥४४॥

त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्त-
मांसास्थिरक्तकृमिविट्कफपित्तवातम् ।
जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढा
या ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती स्त्री ॥४५॥

त्वक् श्मश्रुरोम नख केश पिनद्धं अन्तः मांस अस्थि रक्त कृमि विट् कफ पित्त वातं जीवत् शवं भजति कान्तमतिः विमूढा या ते पदाब्ज मकरन्दं अजिघ्रती स्त्री ॥४५॥

या स्त्री	जो स्त्री	अस्थि रक्त	हड्डी, रक्त,
ते पदाब्ज	आपके चरण-कमल	कृमि विट्	कीड़े, विष्टा,
मकरन्दं	परागको	कफ पित्त वातं	कफ, पित्त, वायु भरे
अजिघ्रती	नहीं सूंघ पाती	जीवत् शवं	जीवित मुर्देको
विमूढा	वह अत्यन्त मूर्खा	कान्तमतिः	प्रिय बुद्धिसे
त्वक् श्मश्रुरोम	त्वचा, दाढ़ी-मूँछ, रोम,	भजति	सेवन करती है ॥४५॥
नख केश पिनद्धं	नख केशसे मढ़े		
अन्तः मांस	भीतर मांस		

अस्त्वम्बुजाक्ष मम ते चरणानुराग
आत्मन् रतस्य मयि चानतिरिक्तदृष्टेः ।
यर्ह्यस्य वृद्धय उपात्तरजोऽतिमात्रो
मामीक्षसे तदु ह नः परमानुकम्पा ॥४६॥

अस्तु अम्बुज अक्ष मम ते चरण अनुरागः आत्मन् रतस्य मयि च अनतिरिक्त दृष्टेः यर्हि अस्य वृद्धय उपात्त रजः अतिमात्रः मां इक्षसे तत् उ ह नः परमा अनुकम्पा ॥४६॥

अम्बुज अक्ष	कमल-लोचन !	ते चरण	आपके चरणोंमें
आत्मन् रतस्य	आत्माराम		

मे अनुरागः	मेरा प्रेम
अस्तु	हो
मयि च	मुझ पर भी
दृष्टेः	कृपा दृष्टि
अनतिक्त	विशेष न रखने-वाले आप
यर्हि अस्य	जब इस जगतकी
वृद्धय	वृद्धिके लिए
अतिमात्रः	उत्कट
उपात्त रजः	रजोगुण स्वीकार करके
मां ईक्षसे	मेरी ओर देखते हैं
तत् उ ह	वह निश्चय ही
नः परमा	मुझ पर परम
अनुकम्पा	कृपा है ॥४६॥

नैवालीकमहं मन्ये वचस्ते मधुसूदन ।
अम्बाया इव हि प्रायः कन्यायाः स्याद् रतिः क्वचित् ॥४७॥

न एव अलीकं अहं मन्ये वचः ते मधुसूदन अम्बाया इव हि प्रायः कन्यायाः स्यात् रतिः क्वचित् ॥४८॥

मधुसूदन	मधुसूदन !
अहं ते वचः	मैं आपकी बातको
अलीकं न एव	निराधार नहीं ही
मन्ये	मानती हूँ
हि अम्बाया इव	क्योंकि अम्बाके समान
प्रायः कन्यायाः	प्रायः कन्याकी
क्वचित्	कहीं
रतिः स्यात्	प्रीति हो सकती है ॥४७॥

व्यूढायाश्चापि पुंश्चल्या मनोऽभ्येति नवं नवम् ।
बुधोऽसतीं न बिभृयात् तां बिभ्रदुभयच्युतः ॥४८॥

व्यूढायाः च अपि पुंश्चल्या मनः अभ्येति नवं नवं बुधः असतीं न बिभृयात् तां बिभ्रत् उभयच्युतः ॥४८॥

व्यूढायाः अपि	विवाहिता होने पर भी
पुंश्चल्या मनः	व्याभिचारिणीका मन

नवं नवं	नये-नयेके	तां बिभ्रत्	उसका भरण करने से
अभ्येति	पास जाता है	उभयच्युतः	दोनों लोकोंसे गिर जाता है ॥४८॥
बुधः असतीं	बुद्धिमान पुरुष कुलटाका		
बिभृयात् न	भरण-पोषण न करे		

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

साध्व्येतच्छ्रोतुकामैस्त्वं राजपुत्रि प्रलम्भिता ।
मयोदितं यदन्वात्थ सर्वं तत् सत्यमेव हि ॥४९॥

साध्वि एतत् श्रोतु कामैः त्वं राजपुत्रि प्रलम्भिता मया उदितं यत् अनुवात्थ सर्वं तत् सत्यं एव हि ॥४९॥

साध्वि	साध्वी	हि मया उदितं	क्योंकि मेरे वचनों की
राजपुत्रि	राजकुमारी !	यत् अनुवात्थ	(तुमने) जो व्याख्या की
एतत्	यह	तत् सर्वं	वह सब
श्रोतु कामैः	सुननेकी इच्छासे	सत्यं एव	सच ही है ॥४९॥
त्वं प्रलम्भिता	तुमसे हँसी की गयी थी		

यान् यान् कामयसे कामान् मय्यकामाय भामिनि ।
सन्ति ह्येकान्तभक्तायास्तव कल्याणि नित्यदा ॥५०॥

यान् यान् कामयसे कामान् मयि अकामाय भामिनी सन्ति हि एकान्त भक्तयाः तव कल्याणि नित्यदा ॥५०॥

भामिनी	सुन्दरि !	कामान् कामयसे	वरदान चाहती हो
अकामाय	सकामताकी निवृत्ति के लिए	हि एकान्त	क्योंकि तुम अनन्य
		भक्तयाः	भक्ता हो
मयि यान् यान्	मुझसे जो जो		

कल्याणि तव	कल्याणी ! तुममें (वे)	नित्यदा सन्ति	नित्य विद्यमान हैं ॥५०॥

उपलब्धं पतिप्रेम पातिव्रत्यं च तेऽनघे ।
यद्वाक्यैश्चल्यमानाया न धीर्मय्यपकर्षिता ॥५१॥

उपलब्धं पतिप्रेम पातिव्रत्यं च ते अनघे यत् वाक्यैः चल्यमानाया न धीः मयि अपकर्षिता ॥५१॥

अनघे	निष्पापे !	चल्यमानायाः	विचलित करनेकी चेष्टा करने पर भी
ते पतिप्रेम	तुम्हारा पतिसे प्रेम	धीः	(तुम्हारी) बुद्धि
च पातिव्रत्यं	तथा पतिव्रता रूप	मयि	मुझसे
उपलब्धं	(मैंने) देख लिया	अपकर्षिता न	दूर नहीं हटी ॥५१॥
यत् वाक्यैः	क्योंकि अपने वाक्यों से		

ये मां भजन्ति दाम्पत्ये तपसा व्रतचर्यया ।
कामात्मानोऽपवर्गेशं मोहिता मम मायया ॥५२॥

ये मां भजन्ति दाम्पत्ये तपसा व्रतचर्यया काम आत्मानः अपवर्ग ईशं मोहिता मम मायया ॥५२॥

अपवर्ग ईशं	मोक्षके स्वामी	दाम्पत्ये	स्त्री-पुरुष सुखके लिए
मां ये	मुझे जो	भजन्ति	भजते हैं
काम आत्मानः	सकाम चित्तसे	मम मायया	वे मेरी मायासे
तपसा	तपस्या तथा	मोहिता	मोहित हैं ॥५२॥
व्रतचर्यया	व्रत पालन करके		

मां प्राप्य मानिन्यपवर्गसम्पदं
वाञ्छन्ति ये सम्पद एव तत्पतिम् ।
ते मन्दभाग्या निरयेऽपि ये नृणां
मात्रात्मकत्वान्निरयः सुसंगमः ॥५३॥

मां प्राप्य मानिनि अपवर्ग सम्पदं वाञ्छन्ति ये सम्पद एव तत् पतिं ते मन्द भाग्या निरये अपि ये नृणां मात्रा आत्मकत्वात् निरयः सुसङ्गमः ॥५३॥

मानिनि	मानिनी !
अपवर्ग सम्पदं	मोक्ष सम्पत्ति रूप
तत् पतिं मां	उस (मोक्ष)के स्वामी मुझे
प्राप्य ये	प्राप्त करके जो
सम्पद एव	सम्पत्ति को ही
वाञ्छन्ति	चाहते हैं
ते मन्द भाग्या	वे मन्द भाग्य
ये नृणां	जो (भोग) मनुष्योंको
निरये अपि	नरकमें भी (मिलते हैं वही चाहते हैं)
मात्रा	शब्द-रूपादि
आत्मकत्वात्	तन्मात्राओंके सुखमें चित्त रहनेसे
निरयः	(उन्हें तो) नरकमें भी वे
सुसङ्गमः	सुलभतासे मिलते हैं ॥५३॥

दिष्ट्या गृहेश्वर्यसकृन्मयि त्वया
कृतानुवृत्तिर्भवमोचनी खलैः ।
सुदुष्करासौ सुतरां दुराशिषो
ह्यसुम्भरायाः निकृतिजुषः स्त्रियाः ॥५४॥

दिष्ट्या गृहेश्वरी असकृत् मयि त्वया कृत अनुवृत्तिः भवमोचनी खलैः सुदुष्करा असौ सुतरां दुराशिषः हि असुंभरायाः निकृति जुषः स्त्रियाः ॥५४॥

गृहेश्वरी	गृहस्वामिनी !
दिष्ट्या	सौभाग्यकी बात है कि
त्वया	तुममें
भवमोचिनी	संसारसे छुड़ाने वाली
मयि असकृत्	मेरी निरन्तर
अनुवृत्तिः	सेवा भावना है
खलैः असौ	दुष्टोंके लिए यह
सुदुष्करा	अत्यन्त दुष्कर है
हि	क्योंकि (जो)

दुराशिषः	बुरी कामनाएँ रखने वाली हैं
असुम्भरायाः	अपने प्राणोंको ही तृप्त करती हैं
निकृतिं जुषः	ऐसा नारकीय भोगोंमें लगी
स्त्रियाः सुतरां	स्त्रियोंके लिए तो और भी कठिन है ॥५४॥

न त्वादृशीं प्रणयिनीं गृहिणीं गृहेषु
पश्यामि मानिनि यया स्वविवाहकाले ।
प्राप्तान् नृपानवगणय्य रहोहरो मे
प्रस्थापितो द्विज उपश्रुतसत्कथस्य ॥५५॥

न त्वादृशीं प्रणयिनीं गृहिणीं गृहेषु पश्यामि मानिनि यया स्वविवाहकाले प्राप्तान् नृपान् अवगणय्य रहः हरः मे प्रस्थापितः द्विज उपश्रुत सत्कथस्य ॥५५॥

मानिनि	मानिनी !
त्वादृशीं	तुम्हारे समान
प्रणयिनीं	प्रेम करने वाली
गृहेषु गृहिणीं	अपने घरमें दूसरी पत्नी
न पश्यामि	नहीं देखता हूँ
यया सत्कथस्य	जिसने प्रशंसा
उपश्रुत	सुनकर
स्वविवाहकाले	अपने विवाहके समय
प्राप्तान् नृपान्	आये राजाओंकी
अवगणय्य	अवगणना करके
रहः हरः	एकान्त सन्देश लाने वाले
द्विज मे	ब्राह्मण मेरे पास
प्रस्थापितः	भेजा ॥५५॥

भ्रातुर्विरूपकरणं युधि निर्जितस्य
प्रोद्वाहपर्वणि च तद्वधमक्षगोष्ठ्याम् ।
दुःखं समुत्थमसहोऽस्मदयोगभीत्या
नैवाब्रवीः किमपि तेन वयं जितास्ते ॥५६॥

भ्रातुः विरूपकरणं युधि निर्जितस्य प्रोद्वाह पर्वणि च तत् वधं अक्षगोष्ठ्यां दुःखं समुत्थं असहः अस्मत् अयोग भीत्या न एव अब्रवीः किमपि तेन वयं जिताः ते ॥५६॥

प्रोद्वाह पर्वणि	विवाहोत्सवके समय
युधि निर्जितस्य	युद्धमें पराजित
भ्रातुः	भाईको
विरूपकरणं	कुरूप करना
च तत्	तथा उसका
अक्षगोष्ठ्यां	द्यूत सभामें (अनिरुद्ध विवाहके समय)
वधं	मारा जाना*
समुत्थं दुःखं	इस बढ़े हुए दुःख को
अस्मत् अयोग	हमारे वियोगके
भीत्या असहः	भयसे (तुमने) सहन कर लिया
किमपि न एव	कुछ भी नहीं ही
अब्रवीः	कहा
तेन वयं	इससे हम लोग
ते जिताः	तुम्हारे द्वारा जीत लिए गए हैं ॥५६॥

दूतस्त्वयाऽऽत्मलभने सुविविक्तमन्त्रः
प्रस्थापितो मयि चिरायति शून्यमेतत् ।
मत्वाजिहास इदमङ्ग मनन्ययोग्यं
तिष्ठेत तत्त्वयि वयं प्रतिनन्दयामः ॥५७॥

---

* इस अध्यायमें इस श्लोकके अतिरिक्त एक शब्द भी ऐसा नहीं है जो यह सूचित करे कि यह परिहास पुत्रोत्पत्तिके पश्चात्का है। श्रीबल्लभाचार्य इस श्लोककी टीकामें 'सुबोधिनी'में स्पष्ट कहते हैं कि यह परिहास प्रद्युम्नोत्पत्तिके पूर्वका है।ले किन 'तद्व धमक्षगोष्ठ्यां' इतना अंश इसे अनिरुद्ध विवाहके समयका बना देता है और यह विवाह महाभारत युद्धके बाद हुआ। महाभारतके युद्ध तक रुक्मी जीवित था। अतः या तो यह श्लोक प्रक्षिप्त होना चाहिए या 'तद्व धमक्षगोष्ठ्यां'के स्थान पर 'तद्वधमेन हृष्ट्वा' जैसा कुछ पाठ भेद होना चाहिए। कुरूप करना भी वध जैसा ही है।

दूतः त्वया आत्मलभने सुविविक्तमन्त्रः प्रस्थापितः मयि चिरायति शून्यं एतत् मत्वा जिहास इदं अङ्गम् अनन्य योग्यं तिष्ठेत तत् त्वयि वयं प्रतिनन्दयामः ॥५७॥

त्वया	तुमने	इदं अङ्गम्	यह अपना शरीर
आत्मलभने	मेरी प्राप्तिके लिए	अनन्य योग्यं	किसी दूसरेके योग्य न मानकर
सुविविक्तमन्त्रः	निश्चित मन्तव्य लेकर	जिहास	त्यागना चाहा
दूतः प्रस्थापितः	दूत भेजा और	तत्	यह (संकल्प)
मयि चिरायति	मेरे (पहुँचनेमें) विलम्ब होने पर	त्वयि तिष्ठेत	तुममें ही रहे
एतत् शून्यं	इस जगतको सूना	वयं	इसका हम
मत्वा	मानकर	प्रतिनन्दयामः	अभिनन्दन करते हैं ॥५७॥*

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एवं सौरतसंलापैर्भगवाञ्जगदीश्वरः ।
स्वरतो रमया रेमे नरलोकं विडम्बयन् ॥५८॥

एवं सौरतसंलापैः भगवान् जगदीश्वरः स्वरतः रमया रेमे नरलोकं विडम्बयन् ॥५८॥

एवं	इस प्रकार	भगवान्	भगवान्
सौरतसंलापैः	ऐकान्तिक विनोद करते	नरलोकं	मनुष्य लोकका
जगदीश्वरः	जगदीश्वर	विडम्बयन्	अनुकरण करते

---

* यह श्लोक भी श्लोक ५५ से ही सम्बन्धित है। श्लोक ५६ बीच में या तो असंगत लगता है या उसमें 'तत् वधमक्षगोष्ठ्यां'के स्थान पर 'तद्वधं एव दृष्ट्वा' कोई पाठ हो तो वह दोनों श्लोकके बीच संगत होगा। अन्यथा यह श्लोक ५७ अलग सा पड़ जाता है।

स्वरतः	आत्माराम होने पर भी	रमया रेमे	लक्ष्मीजीके साथ रमण करने लगे ॥५८॥

तथान्यासामपि विभुर्गृहेषु गृहवानिव ।
आस्थितो गृहमेधीयान् धर्मांल्लोकगुरुर्हरिः ॥५९॥

तथा अन्यासां अपि विभुः गृहेषु गृहवान् इव आस्थितः गृहमेधीयान् धर्मान् लोकगुरुः हरिः ॥५९॥

तथा अन्यासां	ऐसे ही दूसरी रानियोंके	विभुः हरिः	सर्वेश्वर श्रीहरि
अपि गृहेषु	भी घरोंमें	गृहमेधीयान्	गृहस्थ
गृहवान् इव	गृहस्थोंके समान	धर्मान्	धर्मपर
लोकगुरुः	सब लोकोंके गुरु	आस्थितः	स्थित थे ॥५९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे कृष्णरुक्मिणीसंवादो नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

अथ एकषष्टितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान् दश दशाबलाः ।
अजीजनन्ननवमान्पितुः सर्वात्मसम्पदा ॥ १ ॥

एक एकशः ताः कृष्णस्य पुत्रान् दश दश अबलाः अजीजनन् अनवमान् पितुः सर्व आत्म सम्पदा ॥१॥

ताः अबलाः	उन स्त्रियों (रानियों)में	आत्म	अपने
		सर्व सम्पदा	सब गुणोंमें
एक एकशः	प्रत्येकने	पितुः अनवमान्	पितासे अन्यून
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके	पुत्रान्	पुत्र
दश दश	दस दस	अजीजनन्	उत्पन्न किये ॥१॥

गृहादनपगं वीक्ष्य राजपुत्र्योऽच्युतं स्थितम् ।
प्रेष्ठं न्यमंसत स्वं स्वं न तत्तत्त्वविदः स्त्रियः ॥ २ ॥

गृहात् अनु अपगं वीक्ष्य राजपुत्र्यः अच्युतं स्थितं प्रेष्ठं न्यमंसत स्वं स्वं न तत् तत्व विदः स्त्रियः ॥२॥

अच्युतं गृहात्	अच्युतको अपने घर से	न विदः स्त्रियः	न जानने वाली स्त्रियोंने
अनु अपगं वीक्ष्य	कहीं अन्यत्र न जाता देखकर	स्वं स्वं	अपने-अपनेको
		प्रेष्ठं	सर्वाधिक प्रिया
तत् तत्त्व	उनका वास्तविक तत्त्व	न्यमंसत	मान लिया ॥२॥

चार्वब्जकोशवदनायतबाहुनेत्र-
सप्रेमहासरसवीक्षितवल्गुजल्पैः ।
सम्मोहिता भगवतो न मनो विजेतुं
स्वैर्विभ्रमैः समशकन् वनिता विभूम्नः ॥ ३ ॥

चारु अब्जकोश वदन आयतबाहु नेत्र सप्रेमहास रसवीक्षित वल्गुजल्पैः सम्मोहिता भगवताः न मनः विजेतुं स्वैः विभ्रमैः सम अशकन् वनिता विभूम्नः ॥३॥

चारु अब्जकोश	मनोहर कमलकोश	सम्मोहिता	स्वयं मोहित हुई
वदन	जैसे मुख,	वनिता	रानियां
आयतबाहु	विशाल बाहु और	विभूम्नः	सर्वव्यापक
नेत्र	नेत्र,	भगवतः	भगवानके
सप्रेमहास	प्रणय मुस्कान सहित	मनः विजेतुं	मनको जीतनेमें
रसवीक्षित	रसमय कटाक्षसे	स्वैः विभ्रमैः	अपने हाव-भावसे
वल्गुजल्पैः	मनमोहिनी बात-चीतसे	सम अशकन् न	कुछ भी समर्थ नहीं हुई ॥३॥

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारि-
भ्रूमण्डलप्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः ।
पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणै-
र्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः ॥ ४ ॥

स्माया अवलोक लव दर्शित भावहारि भ्रूमण्डल प्रहित सौरतमन्त्र शौण्डैः पत्न्यः तु षोडश सहस्रं अनङ्गबाणैः यस्य इन्द्रियं विमथितुं करणैः न शेकुः ॥४॥

षोडश सहस्रम्	सोलह सहस्र	स्माया अवलोक	(अपने) मुस्कान युक्त देखने,
पत्न्यः तु	रानियां तो		

लव दर्शित	कटाक्षपात से देखने
भावहारि	भावपूर्ण
भ्रू मण्डल	भ्रू भंगीसे
प्रहित	छोड़े
सौरतमन्त्र	सुरत-मन्त्र (संकेत) से
शौण्डैः	पुष्ट
अनङ्गबाणैः	कामबाणोंसे
करणैः यस्य	तथा दूसरे साधनों से जिसकी
इन्द्रियं	इन्द्रियोंको
विमथितुं	चञ्चल
न शेकुः	नहीं कर सकीं ॥४॥

इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता
ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ।
भेजुर्मुदाविरतमेधितयानुराग-
हासावलोकनवसङ्गमलालसाद्यम् ॥ ५ ॥

इत्थं रमापतिं अवाप्य पतिं स्त्रियः ता ब्रह्मा आदयः अपि न विदुः पदवीं यदीयां भेजुः मुदा अविरतं एधितया अनुराग हास अवलोक नवसङ्गम लालसा आद्यम् ॥५॥

ब्रह्मा आदयः	ब्रह्मादि
अपि	भी
यदीयां पदवीं	जिनके स्वरूपको
न विदुः	नहीं जानते
इत्थं रमापतिं	इस प्रकार (उन) श्रीपतिको
पतिं अवाप्य	पति रूपमें पाकर
ता स्त्रियः	उन स्त्रियोंने
मुदा अविरतं	आनन्दसे निरन्तर
एधितया	बढ़ने वाले
अनुराग	प्रेमसे
हास	मुस्कान युक्त
अवलोक	देखनेसे
नवसङ्गम	नवीन समागमकी
आद्यं लालसा	प्रथम लालसाको
भेजुः	(सदा) प्राप्त किया ॥५॥

प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौच-
ताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः ।

केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यै-
र्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥६॥

प्रति उद्गम आसन वर अर्हण पादशौच ताम्बूल विश्रमण वीजन गन्धमाल्यैः केशप्रसार शयन स्नपन उपहार्यैः दासीशता अपि विभोः विदधुः स्म दास्यम् ॥६॥

दासीशता अपि	सैकड़ों दासियां होने पर भी
प्रति उद्गम	उठकर आगे लेने जाते,
आसन	आसन देने,
वरअर्हण	श्रेष्ठ पूजन
पादशौच	चरण-प्रक्षालन
ताम्बूल	पान देने-
विश्रमण	विश्राम कराने
शयन	सुलाने
वीजन	पंखा झलने
गन्धमाल्यैः	चन्दन-माला देने,
केशप्रसार	केश सुलझाने
स्नपन	स्नान कराने
उपहार्यै	भेंट प्रदान कर के
विभोः दास्यं	स्वामीकी सेवा
विदधुः	(स्वयं) करती थीं ॥६॥

तासां या दशपुत्राणां कृष्णस्त्रीणां पुरोदिताः ।
अष्टौ महिष्यस्तत्पुत्रान् प्रद्युम्नादीन् गृणामि ते ॥७॥

तासां या दश पुत्राणां कृष्णस्त्रीणां पुरा उदिताः अष्टौ महिष्यः तत् पुत्रान् प्रद्युम्न आदीन् गृणामि ते ॥७॥

तासां दश	उन दस-दस
पुत्राणां	पुत्रों वाली
कृष्णस्त्रीणां	श्रीकृष्णकी रानियां में
या पुरा उदिताः	जो पहिले वर्णिता
अष्टौ महिष्यः	आठो पटरानियां हैं
तत् प्रद्युम्न	उनके प्रद्युम्न
आदीन्	आदि
पुत्रान् ते	पुत्रोंका तुमसे
गृणामि	वर्णन करता हूँ ॥७॥

चारुदेष्णः सुदेष्णश्च चारुदेहश्च वीर्यवान् ।
सुचारुश्चारुगुप्तश्च भद्रचारुस्तथापरः ॥ ८ ॥

चारुदेष्णः सुदेष्णः च चारुदेहः च वीर्यवान् सुचारुः चारुगुप्तः च भद्रचारुः तथा अपरः ॥८॥

चारुदेष्णः	चारुदेष्ण	सुचारुः	सुचारु
च सुदेष्णः	और सुदेष्ण,	च चारुगुप्तः	और चारुगुप्त,
च वीर्यवान्	एवं पराक्रमी	तथा अपरः	तथा अन्य
चारुदेहः	चारुदेह,	भद्रचारुः	भद्रचारु ॥८॥

चारुचन्द्रो विचारुश्च चारुश्च दशमो हरेः ।
प्रद्युम्नप्रमुखा जाता रुक्मिण्यां नावमाः पितुः ॥ ९ ॥

चारुचन्द्रः विचारुः च चारुः च दशमः हरेः प्रद्युम्न प्रमुखा जाता रुक्मिण्यां न अवमाः पितुः ॥९॥

चारुचन्द्र च	चारुचन्द्र और	पितुः न अवमाः	पितासे अन्यून
विचारुः च	विचार एवं	जातः	उत्पन्न हुए ॥९॥
दशमः चारुः	दसवें चारु		
प्रद्युम्न प्रमुखा	इनमें प्रमुख प्रद्युम्न		
हरेः रुक्मिण्यां	श्रीहरिसे रुक्मिणी में		

भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुर्भानुमांस्तथा ।
चन्द्रभानुर्बृहद्भानुरतिभानुस्तथाष्टमः ॥१०॥

भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुः भानुमान् तथा चन्द्रभानुः बृहद्भानुः अतिभानुः तथा अष्टमः ॥१०॥

भानुः सुभानुः	भानु, सुभानु,
स्वर्भानु प्रभानुः	स्वर्भानु, प्रभानु,
तथा भानुमान्	और भानुमान्
चन्द्रभानुः	चन्द्रभानु,
बृहद्भानुः	बृहद्भानु,
तथा अष्टमः	ऐसे ही आठवें
अतिभानुः	अतिभानु ॥१०॥

श्रीभानुः प्रतिभानुश्च सत्यभाभात्मजा दश ।
साम्बः सुमित्रः पुरुजिच्छतजिच्च सहस्रजित् ॥११॥

श्रीभानुः प्रतिभानुः च सत्यभामा आत्मजा दश साम्बः सुमित्रः पुरुजित् शतजित् च सहस्रजित् ॥११॥

श्रीभानुः च	श्रीभानु और
प्रतिभानुः	प्रतिभानु
सत्यभामा	सत्यभामाके ये
दश आत्मजा	दश पुत्र थे
साम्बः सुमित्रः	साम्ब, सुमित्र,
पुरुजित्	पुरुजित,
शतजित्	शतजित्
च सहस्रजित्	और सहस्रजित् ॥११॥

विजयश्चित्रकेतुश्च वसुमान् द्रविडः क्रतुः ।
जाम्बवत्याः सुता ह्येते साम्बाद्याः पितृसंमताः ॥१२॥

विजयः चित्रकेतुः च वसुमान् द्रविडः क्रतुः जाम्बवत्याः सुता हि एते साम्ब आद्याः पितृ सम्मताः ॥१२॥

विजयः	विजय,
चित्रकेतुः	चित्रकेतु,
वसुमान् द्रविडः	वसुमान्, द्रविड़,
च क्रतुः	और क्रतु
पितृ सम्मताः हि	पिताके समाह ही
एते साम्ब	ये साम्ब
आद्याः	आदि
हि जाम्बवत्याः	जाम्बवतीके तो
सुता	पुत्र थे ॥१२॥

वीरश्चन्द्रोऽश्वसेनश्च चित्रगुर्वेगवान् वृषः ।
आमः शंकुर्वसुः श्रीमान् कुन्तिर्नाग्नजितेः सुताः ॥१३॥

वीरः चन्द्रः अश्वसेनः च चित्रगुः वेगवान् वृषः आमः शंकुः वसुः श्रीमान् कुन्तिः नाग्नजितेः सुताः ॥१३॥

वीरः चन्द्रः	वीर, चन्द्र,	श्रीमान कुन्तिः	तेजस्वी कुन्ति
अश्वसेनः	अश्वसेन,	नाग्नजितेः	नाग्नजिती (सत्या)
चित्रगुः वेगवान्	चित्रगु, वेगवान्	सुताः	के पुत्र थे ॥१३॥
वृषः	वृष,		
आमः शंकुः	आम, शंकु,		
वसुः	वसु,		

श्रुतः कविर्वृषो वीरः सुबाहुर्भद्र एकलः ।
शान्तिर्दर्शः पूर्णमासः कालिन्द्याः सोमकोऽवरः ॥१४॥

श्रुतः कविः वृषः वीरः सुबाहुः भद्रः एकलः शान्तिः दर्शः पूर्णमासः कालिन्द्याः सोमकः अवरः ॥१४॥

श्रुतः कविः	श्रुत, कवि,	पूर्णमासः	पूर्णमास,
वृषः	वृष,	अवरः सोमकः	सबसे छोटा सोमक,
वीर सुबाहुः	वीर, सुबाहु,	कालिन्द्याः	कालिन्दीके हुए ॥१४॥
भद्रः	भद्र,		
एकलः शान्तिः	एकल, शान्ति,		
दर्शः	दर्श,		

प्रघोषो गात्रवान्सिंहो बलः प्रबल ऊर्ध्वगः ।
माद्र्याः पुत्रा महाशक्तिः सह ओजोऽपराजितः ॥१५॥

प्रघोषः गात्रवान् सिंहः बला प्रबलः उर्ध्वगः माद्र्या पुत्र महाशक्तिः सह ओजः अपराजितः ॥१५॥

प्रघोषः	प्रघोष,	सिंहः बलः	सिंह, बल,
गात्रवान्	गात्रवान,	प्रबलः	प्रबल,

उर्ध्वगः	उर्ध्वग,
महाशक्तिः	महाशक्ति,
सहः ओजः	सह, ओज,
अपराजितः	अपराजित
माद्र्याः पुत्राः	मद्रदेशीया (लक्ष्मणा)के पुत्र थे ॥१५॥

वृको हर्षोऽनिलो गृध्रो वर्धनोऽन्नाद एव च ।
महाशः पावनो वह्निर्मित्रविन्दात्मजाः क्षुधिः ॥१६॥

वृकः हर्षः अनिलः गृध्रः वर्धनः अन्नाद एव च महाशः पावनः वह्निः मित्रविन्दा आत्मजाः क्षुधि ॥१६॥

वृकः हर्षः	वृक, हर्ष,
अनिलः	अनिल,
गृध्रः वर्धनः	गृध्र, वर्धन,
अन्नादः	अन्नाद,
महाशः पावनः	महाश, पावन,
वह्निः	वह्नि,
च क्षुधिः एव	तथा क्षुधि भी
मित्रविन्दा	मित्रविन्दाके
आत्मजाः	पुत्र थे ॥१६॥

संग्रामजिद् बृहत्सेनः शूरः प्रहरणोऽरिजित् ।
जयः सुभद्रो भद्राया वाम आयुश्च सत्यकः ॥१७॥

संग्रामजित् बृहत्सेनः शूरः प्रहरणः अरिजित् जयः सुभद्रः भद्रायाः वामः आयुः च सत्यकः ॥१७॥

संग्रामजित्	संग्रामजित्,
बृहत्सेनः	बृहत्सेन,
शूरः प्रहरणः	शूर, प्रहरण
अरिजित् जयः	अरिजित, जय,
सुभद्रः वामः	सुभद्र, वाम
आयुः च	आयु और
सत्यकः	सत्यक
भद्रायाः	भद्राके पुत्र थे ॥१७॥

दीप्तिमांस्ताम्रतप्ताद्या रोहिण्यास्तनया हरेः ।
प्रद्युम्नाच्चानिरुद्धोऽभूद्रुक्मवत्यां महाबलः ॥१८॥

दीप्तिमान् ताम्रतप्त आद्या रोहिण्याः तनय हरेः प्रद्युम्नात् च अनिरुद्धः अभूत् रुक्मवत्यां महाबलः ॥१८॥

हरेः	श्रीहरिके	तनया	पुत्र हुए,
रोहिण्याः	(सोलह सहस्र रानियोंमेंसे) रोहिणी के	च प्रद्युम्नात्	और प्रद्युम्नको
		रुक्मवत्यां	रुक्मवतीसे
		महाबलः	महाबली
दीप्तिमान्	दीप्तिमान्	अनिरुद्धः	अनिरुद्ध
ताम्रतप्त	ताम्र, तप्त	अभूत्	उत्पन्न हुए ॥१८॥
आद्या	आदि हुए,		

पुत्र्यां तु रुक्मिणो राजन् नाम्ना भोजकटे पुरे ।
एतेषां पुत्रपौत्राश्च बभूवुः कोटिशो नृप ।
मातरः कृष्णजातानां सहस्राणि च षोडश ॥१९॥

पुत्र्यां तु रुक्मिणः राजन् नाम्ना भोजकटे पुरे एतेषां पुत्र पौत्राः च बभूवुः कोटिशः नृप मातरः कृष्ण जातानां सहस्राणि च षोडश ॥१९॥

राजन्	राजन् !	कोटिशः बभूवुः	करोड़ों हो गये, क्योंकि
भोजकटे नाम्ना	भोजकट नामके		
पुरे रुक्मिणः तु	नगरमें (रहने वाले) रुक्मीकी ही	कृष्ण जातानां	श्रीकृष्णके पुत्रोंकी
		मातरः च	माताएँ ही
पुत्र्यां	पुत्री (रुक्मवती)से	सहस्राणि षोडश	सोलह सहस्र थीं ॥१९॥
नृप	राजन् !		
एतेषां पुत्र च	इनके पुत्र और		
पौत्राः	पौत्र		

॥ राजोवाच ॥

कथं सुक्म्यरिपुत्राय प्रादाद् दुहितरं युधि ।
कृष्णेन परिभूतस्तं हन्तुं रन्ध्रं प्रतीक्षते ।
एतदाख्याहि मे विद्वन् द्विषोर्वैवाहिकं मिथः ॥२०॥

कथं रुक्मि अरिपुत्राय प्रादात् दुहितरं युधि कृष्णेन परिभूतः तं हन्तुं रन्ध्रं प्रतीक्षते एतत् आख्याहि मे विद्वन् द्विषोः वैवाहिकम् मिथः ॥२०॥

अरिपुत्राय	शत्रुके पुत्रको	प्रतीक्षते	प्रतीक्षा कर रहा था
रुक्मि	रुक्मीने	विद्वन्	हे विद्वान
दुहितरं कथं	पुत्री कैसे	मे एतत्	मुझको यह
प्रादात्	दे दी, (वह तो)	आख्याहि	बताइये कि
युधि कृष्णेन	युद्धमें श्रीकृष्ण द्वारा	मिथः द्विषोः	दोनों शत्रुओंके बीच कैसे
परिभूतः	पराजित होकर	वैवाहिकं	विवाहका प्रबन्ध
तं हन्तु रन्ध्रं	उनको मारनेके अवसरकी		हुआ ॥२०॥

अनागतमतीतं च वर्तमानमतीन्द्रियम् ।
विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यन्ति योगिनः ॥२१॥

अनागतं अतीतं च वर्तमानं अति इन्द्रियम् विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यन्ति योगिनः ॥२१॥

योगिनः	योगीजन	विप्रकृष्टं	दूरस्थ,
अनागतं	भविष्य,	व्यवहितं	छिपी बातको भी
अतीतं च	भूत तथा	सम्यक् पश्यन्ति	ठीक-ठाक देखते हैं ॥२१॥
वर्तमानं	वर्तमानकी		
अति इन्द्रियं	इन्द्रियातीत		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

वृतः स्वयंवरे साक्षादनङ्गोऽङ्गयुतस्तया ।
राज्ञः समेतान् निर्जित्य जहारैकरथो युधि ॥२२॥

वृतः स्वयंवरे साक्षात् अनङ्गः अङ्गयुतः तया राज्ञः समेतान् निर्जित्य जहार एक रथः युधि ॥२२॥

तया	उस (रुक्मवती) द्वारा	अङ्गयुतः	अङ्गवान्
स्वयंवरे	स्वयंवर में	साक्षात् अनङ्गः	साक्षात् कामदेव
		वृतः	वरण किये गये

एक रथः	(उन्होंने) अकेले रथसे	युधि निर्जित्य	युद्धमें जीतकर
समेतान् राज्ञः	आये हुए राजाओं को	जहार	(उसे) हरण किया ॥२२॥

यद्यप्यनुस्मरन् वैरं रुक्मी कृष्णावमानितः ।
व्यतरद् भागिनेयाय सुतां कुर्वन् स्वसुः प्रियम् ॥२३॥

यद्यपि अनुस्मरन् वैरं रुक्मी कृष्ण अवमानितः व्यतरत् भागिनेयाय सुतां कुर्वन् स्वसुः प्रियम् ॥२३॥

यद्यपि	यद्यपि	स्वसुः प्रियं	किन्तु बहिनका प्रिय
कृष्ण	श्रीकृष्ण द्वारा	कुर्वन्	करनेके लिए
अवमानितः	अपमानित	भागिनेयाय	भानजे को
रुक्मी वैरं	रुक्मी शत्रुता तो	सुतां व्यतरत्	पुत्री दे दी ॥२३॥
अनुस्मरन्	बराबर स्मरण करता था		

रुक्मिण्यास्तनयां राजन् कृतवर्मसुतो बली ।
उपयेमे विशालाक्षीं कन्यां चारुमतीं किल ॥२४॥

रुक्मिण्याः तनयां राजन् कृतवर्मसुतः बली उपयेमे विशालाक्षीं कन्यां चारुमतीं किल ॥२४॥

राजन	राजन् !	कन्यां चारुमतीं	कन्या चारुमतीको
रुक्मिण्याः	रुक्मिणीकी	किल बली	अहो बलवान
तनयां	पुत्री	कृतवर्मसुतः	कृतवर्माके पुत्रने
विशालाक्षीं	बड़े नेत्रों वाली	उपयेमे	विवाहा ॥२४॥

दौहित्रायानिरुद्धाय पौत्रीं रुक्म्यददाद्धरेः ।
रोचनां बद्धवैरोऽपि स्वसुः प्रियचिकीर्षया ।
जानन्नधर्मं तद् यौनं स्नेहपाशानुबन्धनः ॥२५॥

दौहित्राय अनिरुद्धाय पौत्रीं रुक्मि अददात् हरेः रोचनां बद्धवैरः अपि स्वसुः प्रिय चिकीर्षया जानन् अधर्मं तत् योनं स्नेहपाश अनुबन्धनः ॥२५॥

स्वसुः प्रिय	बहिनका प्रिय	अददात्	दे दी
चिकीर्षया	करनेकी इच्छासे	तत् योनं	यह वैवाहिक सम्बन्ध
हरेः	श्री हरिसे		
बद्धवैरः अपि	शत्रुता दृढ़ होने पर भी	अधर्मं जानन्	अधर्म जानते हुए भी*
रुक्मि दौहित्राय	रुक्मीने दौहित्र	स्नेहपाश	स्नेहके बन्धनमें
अनिरुद्धाय	अनिरुद्धको	अनुबन्धनः	बँधे होनेसे ॥२५॥
पौत्रीं रोचनां	अपनी पौत्री रोचना		

तस्मिन्नभ्युदये राजन् रुक्मिणी रामकेशवौ ।
पुरं भोजकटं जग्मुः साम्बप्रद्युम्नकादयः ॥२६॥

तस्मिन अभ्युदये राजन् रुक्मिणी रामकेशवौ पुरं भोजकटं जग्मुः साम्ब प्रद्युम्नक आदयः ॥२६॥

राजन्	राजन् !	साम्ब	साम्ब,
तस्मिन्	इस	प्रद्युम्नक	प्रद्युम्न
अभ्युदये	विवाहोत्सवमें	आदयः	आदि
रुक्मिणी	रुक्मिणी,	भोजकटं पुरं	भोजकट पुर
रामकेशवौ	बलराम-श्रीकृष्ण	जग्मुः	गये ॥२६॥

तस्मिन् निवृत्त उद्वाहे कालिङ्गप्रमुखा नृपाः ।
दृप्तास्ते रुक्मिणं प्रोचुर्बलमक्षैर्विनिर्जय ॥२७॥

---

* स्मृतिके अनुसार राजकुलमें एक बार तो मामाकी लड़कीसे विवाह हो सकता है, किन्तु तीसरी पीढ़ीका भी विवाह वर्जित है ।

तस्मिन् निवृत्त उद्वाहे कालिङ्ग प्रमुखा नृपाः दृप्ताः ते रुक्मिणं प्रोचुः बलं अक्षैः विनिर्जय ॥२७॥

तस्मिन् उद्वाहे	उस विवाहके	**नृपाः रुक्मिणं**	उन राजाओंने रुक्मीसे
निवृत्त	समाप्त हो जाने पर	**प्रोचुः**	कहा
ते दृप्ताः	उन गर्विष्ठ	**बलं अक्षैः**	'बलरामको पासोंसे
कालिङ्ग प्रमुखा	कलिङ्ग नरेश जिनमें मुखिया था	**विनिर्जय**	जीत लो' ॥२७॥

अनक्षज्ञो ह्ययं राजन्नपि तद्व्यसनं महत् ।
इत्युक्तो बलमाहूय तेनाक्षै रुक्म्यदीव्यत ॥२८॥

अनक्षज्ञः हि अयं राजन् अपि तत् व्यसनं महत् इति उक्तः बलं आहूय तेन अक्षैः रुक्मि दीव्यत ॥२८॥

हि राजन्	क्योंकि राजन्	**इति उक्तः**	ऐसा कहे जाने पर
अयं अनक्षज्ञः	ये जुआ खेलना नहीं जानते	**बलं आहूय**	बलरामजीको बुलाकर
अपि तत्	फिर भी उसका	**तेन रुक्मि**	उनके साथ रुक्मी
महत् व्यसनं	(इनको) भारी व्यसन है'	**अक्षैः दीव्यत**	पासे खेलने लगा ॥२८॥

शतं सहस्रमयुतं रामस्तत्राददे पणम् ।
तं तु रुक्म्यजयत्तत्र कालिङ्गः प्राहसद् बलम् ।
दन्ताद् संदर्शयन्नुच्चैर्नामृष्यत्तद्बलायुधः ॥२९॥

शतं सहस्रं अयुतं रामः तत्र आददे पणं तं तु रुक्मि अजयत् तत्र कालिङ्गः प्राहसत् बलं दन्तात् सन्दर्शयन् उच्चैः न अमृष्यत् तत् हलायुधः ॥२९॥

तत्र रामः	उसमें बलरामजीने (क्रमशः)	दन्तान्	दाँत
		सन्दर्शयन्	दिखाते हुए
शतं अहस्रं	सौ, सहस्र,	उच्चैः बलं	ऊँचे स्वरसे बलरामजी पर
अयुतं	दस सहस्रका		
पणं आददत्	दाव लगाया	प्राहसत्	हँसने लगा
तं रुक्मि	उसे रुक्मीने	हलायुधः	हलधरको
अजयत्	जीत लिया	तत् न अमृष्यत्	वह सहन नहीं हुआ ॥२९॥
तत्र कालिङ्गः	उस समय कलिंग-राज		

ततो लक्षं रुक्म्यगृह्णाद् ग्लहं तत्राजयद् बलः ।
जितवानहमित्याह रुक्मी कैतवमाश्रितः ॥३०॥

ततः लक्षं रुक्मि अगृह्णात् ग्लहं तत्र अजयत् बलः जितवान् अहं इति आह रुक्मी कैतवं आश्रितः ॥३०॥

ततः रुक्मि	फिर रुक्मीने	इति रुक्मी	इस प्रकार रुक्मी
लक्षं ग्लहं	एक लाखका दाव	कैतवं आश्रितः	छलका सहारा लेकर
अगृह्णात	लगाया		
तत्र बलः	उसे बलरामजीने	आह	बोला ॥३०॥
अजयत्	जीत लिया		
अहं जितवान्	किन्तु 'मैंने जीता है'		

मन्युना क्षुभितः श्रीमान् समुद्र इव पर्वणि ।
जात्यारुणाक्षोऽतिरुषा न्यर्बुदं ग्लहमाददे ॥३१॥

मन्युना क्षुभितः श्रीमान् समुद्र इव पर्वणि जात अति अरुण अक्षः अति रुषा न्यर्बुदं ग्लहं आददे ॥३१॥

श्रीमान्	श्रीमान् (बलरामजी इससे)	पर्वणि	पर्व (पूर्णिमा)को
		समुद्र इव	समुद्रकी भाँति

मन्युना क्षुभितः	क्रोधसे क्षुब्ध हो गये	अति रुषा	बहुत क्रोधसे
		न्यर्बुदं ग्लहं	दस करोड़का दाव
अति अरुण	अत्यन्त लाल	आददे	लगाया ॥३१॥

तं चापि जितवान् रामो धर्मेणच्छलमाश्रितः ।
रुक्मी जितं मयात्रेमे वदन्तु प्राश्निका इति ॥३२॥

तं च अपि जितवान् रामः धर्मेण छलं आश्रितः रुक्मी जितं मया अत्र इमे वदन्तु प्राश्निका इति ॥३२॥

तं च अपि	उसे भी	रुक्मी इति	रुक्मी इस प्रकार
धर्मेण रामः	धर्मपूर्वक बलरामजी ने		बोला—
		मया जितं	'मैंने जीता है,
जितवान्	जीता	अत्र इमे	इस विषयमें ये
छलं आश्रितः	छलका सहारा लेकर	प्राश्निका	प्रश्न-निर्णायक
		वदन्तु	बतलावें' ॥३२॥

तदाब्रवीन्नभोवाणी बलेनैव जितो ग्लहः ।
धर्मतो वचनेनैव रुक्मी वदति वै मृषा ॥३३॥

तदा अब्रवीत् नभः वाणी बलेन एव जितः ग्लहः धर्मतः वचनेन एव रुक्मी वदति वै मृषा ॥३३॥

तदा नभः वाणी	तब आकाशवाणीने	रुक्मी वचनेन	रुक्मी बातसे
अब्रवीत्	कहा—	एव	ही
धर्मतः बलेन एव	'धर्मपूर्वक बलरामजीने ही	वै मृषा वदति	निश्चय झूठ बोलता है' ॥३३॥
ग्लहः जितः	दाव जीता है,		

तामनादृत्य वैदर्भो दुष्टराजन्यचोदितः ।
संकर्षणं परिहसन् बभाषे कालचोदितः ॥३४॥

तां अनादृत्य वैदर्भः दुष्ट राजन्य चोदितः सङ्कर्षणं परिहसन् बभाषे कालचोदितः ॥३४॥

दुष्ट राजन्य	दुष्ट राजाओं द्वारा	सङ्कर्षणं	बलरामजीकी
चोदितः	प्रेरित और	परिहसन्	हँसी उड़ाते हुए
कालचोदितः	मृत्युकी प्रेरणासे	बभाषे	कहने लगा ॥३४॥
वैदर्भः	विदर्भ नरेश रुक्मी		
तां अनादृत्य	उस (आकाशवाणी) की उपेक्षा करके		

नैवाक्षकोविदा यूयं गोपाला वनगोचराः ।
अक्षैर्दीव्यन्ति राजानो बाणैश्च न भवादृशाः ॥३५॥

न एव अक्ष कोविदा यूयं गोपाला वनगोचराः अक्षैः दीव्यन्ति राजानः बाणैः च न भवादृशाः ॥३५॥

यूयं	'तुम लोग	राजानः	राजा लोग
वनगोचराः	वनमें दीखने वाले	अक्षैः च बाणैः	पासों और बाणोंसे
गोपाला	गोपालक हो	दीव्यन्ति	खेलते हैं,
अक्ष कोविदा	पासा खेलनेमें निपुण	भवादृशाः न	तुम जैसे लोग नहीं' ॥३५॥
न एव	नहीं ही हो		

रुक्मिणैवमधिक्षिप्तो राजभिश्चोपहासितः ।
क्रुद्धः परिघमुद्यम्य जघ्ने तं नृम्णसंसदि ॥३६॥

रुक्मिणा एवं अधिक्षिप्तः राजभिः च उपहासितः क्रुद्धः परिघं उद्यम्य जघ्ने तं नृम्णसंसदि ॥३६॥

एवं रुक्मिणा	इस प्रकार रुक्मी द्वारा	अधिक्षिप्तः	आक्षेप किये जाने पर

च राजभिः	तथा राजाओं द्वारा	परिघं उद्यम्य	परिध उठाकर
उपहासितः	हंसी उड़ाये जाने पर	तं नृम्णसंसदि	उसे उस विनोद सभामें ही
क्रुद्धः	कुपित होकर	जघ्ने	मार दिया ॥३६॥

कलिङ्गराजं तरसा गृहीत्वा दशमे पदे ।
दन्तानपातयत् क्रुद्धो योऽहसद् विवृतैर्द्विजैः ॥३७॥

कलिङ्गराजं तरसा गृहीत्वा दशमे पदे दन्तान् अपातयत् क्रुद्धः यः अहसत् विवृतैः द्विजैः ॥३७॥

यः द्विजैः	जो दांत	दशमे पदे	दशमे पद पर
विवृतैः	खोलकर	गृहीत्वा क्रुद्धः	पकड़कर कुपित
अहसत्	हंसता था उस	दन्तान्	दांत
कलिङ्गराजं	कलिङ्गराजके	अपातयत्	तोड़ डाले ॥३७॥
तरसा	वेगपूर्वक		

अन्ये निर्भिन्नबाहूरुशिरसो रुधिरोक्षिताः ।
राजानो दुद्रुवुर्भीता बलेन परिघार्दिताः ॥३८॥

अन्ये निर्भिन्न बाहु उरु शिरसः रुधिर उक्षिताः राजानः दुद्रुवु भीता बलेन परिघ अर्दिताः ॥३८॥

बलेन	बलरामजी द्वारा	रुधिर उक्षिताः	रक्त लथपथ
परिघ अर्दिताः	परिधिसे रौंदे गये	भीताः द्रुद्रुवुः	डरकर भाग गये ॥३८॥
अन्ये राजनः	दूसरे राजा लोग		
निर्भिन्न	कटे-फटे		
बाहु उरु	भुजा, जांघ,		
शिरसः	मस्तक		

निहते रुक्मिणि श्याले नाब्रवीत् साध्वसाधु वा ।
रुक्मिणीबलयो राजन् स्नेहभङ्गभयाद्धरिः ॥३९॥

निहते रुक्मिणि श्याले न अब्रवीत् साधु असाधु वा रुक्मिणी बलयोः राजन् स्नेहभङ्ग भयात् हरिः ॥३६॥

राजन्	राजन् !	स्नेहभङ्ग	प्रेम टूटनेके
श्याले रुक्मिणि	अपने साले रुक्मी के	भयात् हरिः	भयसे श्रीहरिने
		साधु वा असाधु	अच्छा या बुरा कुछ
निहते	मारे जाने पर		
रुक्मिणी	रुक्मिणी तथा	न अब्रवीत्	नहीं कहा ॥३६॥
बलयोः	बलरामजीके		

ततोऽनिरुद्धं सह सूर्यया वरं
रथं समारोप्य ययुः कुशस्थलीम् ।
रामादयो भोजकटाद् दशार्हाः
सिद्धाखिलार्था मधुसूदनाश्रयाः ॥४०॥

ततः अनिरुद्धं सह सूर्यया वरं रथं समारोप्य ययुः कुशस्थलीं राम आदयः भोजकटात् दशार्हाः सिद्धा अखिल अर्था मधुसूदन आश्रयाः ॥४०॥

मधुसूदन	मधुसूदनके	सूर्यया सह	नववधूके साथ
आश्रयाः	आश्रित होनेसे	वरं अनिरुद्धं	दूल्हे अनिरुद्धको
अर्थाः अखिल	समस्त प्रयोजन	रथं समारोप्य	रथ पर बैठाकर
सिद्धा	पूरे हो जाने पर	भोजकटात्	भोजकटपुरसे
दशार्हाः	दशार्हवंशी	कुशस्थलीं	द्वारिकापुरी
राम आदयः	बलरामजी आदि	ययुः	चले ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अनिरुद्ध विवाहे रुक्मिवधो नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

॥ राजोवाच ॥

बाणस्य तनयामूषामुपयेमे यदूत्तमः ।
तत्र युद्धमभूद् घोरं हरिशंकरयोर्महत् ।
एतत् सर्वं महायोगिन् समाख्यातुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥

बाणस्य तनयां ऊषां उपयेमे यदु उत्तमः तत्र युद्धं अभूत् घोरं हरि शङ्करयोः महत् एतत् सर्वं महायोगिन् सम आख्यातुं त्वं अर्हसि ॥१॥

यदु उत्तमः	यादव श्रेष्ठ (अनिरुद्ध)ने	महत् घोरं युद्धं	महाघोर युद्ध
		अभूत्	हुआ था
बाणस्य तनयां	बाणासुरकी पुत्री	महायोगिन्	महायोगिन् !
ऊषां उपयेमे	ऊषासे विवाह किया,	त्वं एतत् सर्वं	आपको यह सब
		आख्यातुं	बतलाना
तत्र हरि	उसमें श्रीहरि	अर्हसि	चाहिए ॥१॥
शङ्करयोः	और शङ्करजीका		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

बाणः पुत्रशतज्येष्ठो बलेरासीन्महात्मनः ।
येन वामनरूपाय हरयेऽदायि मेदिनी ॥ २ ॥

बाणः पुत्रशतज्येष्ठः बलेः आसीत् महात्मनः येन वामन रूपाय हरये अदायि मेदिनीम् ॥२॥

येन वामन रूपाय	जिन्होंने वामन रूपधारी	हरये	श्रीहरिको

मेदिनीं अदाय	पृथ्वी दान कर दिया (उन)	**पुत्रशतज्येष्ठः**	सौ पुत्रोंमें सबसे बड़ा
महात्मनः बलेः	महात्मा बलिके	**बाणः आसीत्**	बाणासुर था ॥२॥

तस्यौरसः सुतो बाणः शिवभक्तिरतः सदा ।
मान्यो वदान्यो धीमांश्च सत्यसंधो दृढव्रतः ॥ ३ ॥

तस्य औरसः सुतः बाणः शिवभक्तिरतः सदा मान्यः वदान्यः धीमान् च सत्यसन्धः दृढ़व्रतः ॥३॥

तस्य	उन (बलि)का	**धीमान्**	बुद्धिमान,
औरसः सुतः	औरस पुत्र	**सत्यसन्धः**	सत्यप्रतिज्ञ
बाणः सदा	बाण सदा	**च दृढ़व्रतः**	तथा नियमका
शिवभक्तिरतः	शंकरजीकी भक्तिमें लीन,		पक्का था ॥३॥
मान्यः वदान्यः	माननीय, उदार-चरित,		

शोणिताख्ये पुरे रम्ये स राज्यमकरोत् पुरा ।
तस्य शम्भोः प्रसादेन किंकरा इव तेऽमराः ।
सहस्रबाहुर्वाद्येन ताण्डवेऽतोषयन्मृडम् ॥ ४ ॥

शोणित अख्ये पुरे रम्ये स राज्यं अकरोत् पुरा तस्य शम्भोः प्रसादेन किङ्करा इव ते अमराः सहस्रबाहुः वाद्येन ताण्डवे अतोषयत् मृडम् ॥४॥

स पुरा	वह पहिले	**शम्भोः प्रसादेन**	शंकरजीकी कृपासे
शोणित आख्ये पुरे	शोणित-पुर नामक	**ते अमराः**	वे देवता
रम्ये	मनोरम (नगरमें)	**तस्य किङ्करा**	उसके सेवकोंके
राज्यं अकरोत्	राज्य करता था	**इव**	समान थे,

ताण्डवे	(एक बार) ताण्डव नृत्यके समय	मृडं अतोषयत्	शंकरजीको सन्तुष्ट किया ॥४॥
सहस्रबाहुः	सहस्र भुजाओंसे		
वाद्यैः	(अनेक) बाजे बजाकर		

भगवान् सर्वभूतेशः शरण्यो भक्तवत्सलः ।
वरेणच्छन्दयामास स तं वव्रे पुराधिपम् ॥ ५ ॥

भगवान् सर्वभूत ईशः शरण्यः भक्तवत्सलः वरेणत् छन्दयामास स तं वव्रे पुर अधिपम् ॥५॥

सर्वभूत ईशः	सब भूतोंके स्वामी	स तं	उसने उनको
शरण्यः	शरणदाता,	पुर अधिपं	अपने नगरपालके
भक्तवत्सलः	भक्तवत्सल	वव्रे	रूपमें वरण किया ॥५॥
भगवान्	भगवानने		
वरेणत्	(उससे) इच्छानुसार		
छन्दयामास	वरदान माँगनेको कहा		

स एकदाऽऽह गिरिशं पार्श्वस्थं वीर्यदुर्मदः ।
किरीटेनार्कवर्णेन संस्पृशंस्तत्पदाम्बुजम् ॥ ६ ॥

स एकदा आह गिरिशं पार्श्वस्थं वीर्यदुर्मदः किरीटेन अर्कवर्णेन संस्पृशन् तत् पदाम्बुजम् ॥६॥

स वीर्यदुर्मदः	वह बलोन्मत्त	किरीटेन	(अपने) मुकुटसे
एकदा पार्श्वस्थं	एक बार समीप रहने वाले	तत् पदाम्बुजं	उनके चरण-कमल
गिरिशं	शंकरजीसे	संस्पृशन् आह	छूकर बोला ॥६॥
अर्कवर्णेन	सूर्यके समान कान्तिमान		

नमस्ये त्वां महादेव लोकानां गुरुमीश्वरम् ।
पुंसामपूर्णकामानां कामपूरामराङ्घ्रिपम् ॥ ७ ॥

नमस्ये त्वां महादेव लोकानां गुरुम् ईश्वरं पुंसां अपूर्ण कामानां कामपूर अमर अंघ्रिपम् ॥७॥

महादेव	हे महादेव !	**अमर अंघ्रिपं**	कल्पवृक्ष सदृश हैं
लोकानां	सभी लोकोंके	**अपूर्ण**	जो अपूर्ण
गुरुम्	गुरुको तथा	**कामानां**	इच्छाओंवाले
ईश्वरम्	नियन्ताको	**पुंसां**	मनुष्योंके लिए
नमस्ये	प्रणाम करता हूँ ।	**कामपूर**	इच्छा पूरी करता
त्वाम्	आप		है ॥७॥

दोःसहस्रं त्वया दत्तं परं भाराय मेऽभवत् ।
त्रिलोक्यां प्रतियोद्धारं न लभे त्वदृते समम् ॥ ८ ॥

दोःसहस्रं त्वया दत्तं परं भाराय मे अभवत् त्रिलोक्यां प्रतियोद्धारं न लभे त्वत् ऋते समम् ॥८॥

त्वया	'आपने	**त्रिलोक्यां समं**	तीनों लोकोंमें अपने
दोःसहस्रं	सहस्र भुजाएँ		समान
मया दत्तं	मुझे दीं	**प्रतियोद्धारं**	मुझसे लड़ने वाला
परं मे भाराय	किन्तु मेरे लिए		योद्धा
	भार	**न लभे**	(मैं) नहीं पाता हूँ
अभवत्	हो गयीं, क्योंकि		॥८॥
त्वत् ऋते	आपको छोड़कर		

कण्डूत्या निभृतैर्दोर्भिर्युयुत्सुर्दिग्गजानहम् ।
आद्यायां चूर्णयन्नद्रीन् भीतास्तेऽपि प्रदुद्रुवुः ॥ ९ ॥

कण्डूत्या निभृतैः दोर्भिः युयुत्सुः दिग्गजान् अहं आद्यायां चूर्णयन् अद्रीन् भीताः ते अपि प्रदुद्रुवुः ॥९॥

दोर्भिः निभृतैः	भुजाओंके बहुत	दिग्गजान्	दिग्गजों
कण्डूत्या अहं	खुजलाने पर मैं	युयुत्सुः	युद्ध करने (गया)
आद्यायां अद्रिन्	पहिले मैं पर्वतोंको	ते अपि भीताः	वे भी डरकर
चूर्णयन्	चूर-चूर करता	प्रदुद्रुवुः	भाग गये ॥९॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् क्रुद्धः केतुस्ते भज्यते यदा ।
त्वद्दर्पघ्नं भवेन्मूढ संयुगं मत्समेन ते ॥१०॥

तत् श्रुत्वा भगवान् क्रुद्धः केतुः ते भज्यते यदा त्वत् दर्पघ्नं भवेत् मूढ़ संयुगं मत्समेन ते ॥१०॥

तत् श्रुत्वा	यह सुनकर	भज्यते	टूट जायगा (तब)
भगवान् क्रुद्धः	भगवान् (शिव) कुपित (होकर बोले)	ते मत्समेन	तेरा मेरे समानसे
		त्वत् दर्पघ्नं	तेरा गर्व नष्ट करने वाला
मूढ यदा	'मूर्ख ! जब	संयुगं भवेत्	युद्ध होगा' ॥१०॥
ते केतुः	तेरा झण्डा		

इत्युक्तः कुमतिर्हृष्टः स्वगृहं प्राविशन्नृप ।
प्रतीक्षन् गिरिशादेशं स्ववीर्यनशनं कुधीः ॥११॥

इति उक्तः कुमतिः हृष्टः स्वगृहं प्राविशत् नृप प्रतीक्षन् गिरिश आदेशं स्ववीर्य नशनं कुधीः ॥११॥

नृप	राजन् !	गिरिश आदेशं	भगवान शिवके बतलाये
इति उक्तः	ऐसा कहे जाने पर	स्ववीर्य नशनं	अपने पराक्रमके विनाशकी
कुमतिः हृष्टः	(वह) कुबुद्धि प्रसन्न हुआ	प्रतीक्षन्	प्रतीक्षा करने लगा ॥११॥
स्वगृहं	अपने भवनमें		
प्राविशत्	प्रविष्ट हुआ		
कुधीः	दुर्बुद्धि (वश)		

तस्योषा नाम दुहिता स्वप्ने प्राद्युम्निना रतिम् ।
कन्यालभत कान्तेन प्रागदृष्टश्रुतेन सा ॥१२॥

तस्य ऊषा नाम दुहिता स्वप्ने प्राद्युम्निना रतिं कन्या अलभत कान्तेन प्राक् अदृष्टेन श्रुतेन सा ॥१२॥

तस्य ऊषा नाम	उसकी ऊषा नाम की
दुहिता प्राक्	पुत्रीने पहिले
अदृष्टेन श्रुतेन	बिना देखे सुने
कान्तेन	परम सुन्दर
प्रद्युम्निना	प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धसे
सा कन्या	उसने कुमारावस्थामें
स्वप्ने	ही स्वप्नमें
रतिं अलभत	रति प्राप्त की ॥१२॥

सा तत्र तमपश्यन्ती क्वासि कान्तेति वादिनी ।
सखीनां मध्य उत्तस्थौ विह्वला व्रीडिता भृशम् ॥१३॥

सा तत्र तं अपश्यन्ती क्व असि कान्त इति वादिनी सखीनां मध्य उत्तस्थौ विह्वला व्रीडिता भृशम् ॥१३॥

सा उत्तस्थौ	उसने जागने पर
तत्र तं	वहां उनको
अपश्यन्ती	न देखकर
कान्त	प्रियतम !
क्व असि	कहां हो ?
इति वादिनी	ऐसा बोलती हुई
सखीनां मध्य	सखियोंके बीचमें
विह्वला	व्याकुल (होनेसे)
भृशं व्रीडिता	बहुत लज्जिता हुई ॥१३॥

बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डश्चित्रलेखा च तत्सुता ।
सख्यपृच्छत् सखीमूषां कौतूहलसमन्विता ॥१४॥

बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डः चित्रलेखा च तत् सुता सख्य पृच्छत् सखं ऊषां कौतूहल समन्विता ॥१४॥

बाणस्य मन्त्री	बाणासुरका मन्त्री	कौतूहल	कौतूहलयुक्ता
कुम्भाण्डः	कुम्भाण्ड था	समन्विता	होकर
च तत् सुता	और उसकी पुत्री थी	सखीं ऊषां	अपनी सखी ऊषासे
चित्रलेखा	चित्रलेखा (उसने)	सख्य पृच्छत्	सखी भावसे पूछा ॥१४॥

कं त्वं मृगयसे सुभ्रूः कीदृशस्ते मनोरथः ।
हस्तग्राहं न तेऽद्यापि राजपुत्र्युपलक्षये ॥१५॥

कं त्वं मृगयसे सुभ्रूः कीदृशः ते मनोरथः हस्त ग्राहं न ते अद्य अपि राजपुत्रि उपलक्षये ॥१५॥

सुभ्रूः	'सुन्दर भृकुटिवाली'	राजपुत्रि	राजकुमारी !
त्वं कं मृगयसे	तुम किसको ढूंढ़ रहो हो ?	अद्य अपि ते हस्त ग्राहं	अब भी तुम्हारे पाणिग्रहण करने वालेको
ते मनोरथः	तुम्हारा मनोरथ		
कीदृशः	कैसा है ?	न उपलक्षये	नहीं देखा है ॥१५॥

॥ ऊषोवाच ॥

दृष्टः कश्चिन्नरः स्वप्ने श्यामः कमललोचनः ।
पीतवासा बृहद्बाहुर्योषितां हृदयंगमः ॥१६॥

दृष्टः कश्चित् नरः स्वप्ने श्यामः कमललोचनः पीतवासा बृहत् बाहुः योषितां हृदयङ्गम ॥१६॥

योषितां	स्त्रियोंका मन	बृहत् बाहुः	विशाल भुजा
हृदयङ्गमः	मन लुभावना	कश्चित् नरः	कोई पुरुष
श्यामः	श्यामवर्ण	स्वप्ने दृष्टः	स्वप्नमें देखा है ॥१६॥
कमललोचनः	कमल-नयन		
पीतवासा	पीले वस्त्र वाला,		

तमहं मृगये कान्तं पाययित्वाधरं मधु ।
क्वापि यातः स्पृहयतीं क्षिप्त्वा मां वृजिनार्णवे ॥१७॥

तं अहं मृगये कान्तं पाययित्वा अधरं मधु क्व अपि यातः स्पृहयतीं क्षिप्त्वा मां वृजिन अर्णवे ॥१७॥

तं कान्तं	उस प्रियतमको	मां वृजिन	मुझे दुःख
अहं मृगये	मैं ढूंढ़ती हूँ	अर्णवे	समुद्रमें
अधरं मधु	अपना अधरामृत	क्षिप्त्वा क्व	डालकर कहीं भी
पाययित्वा	(मुझे) पिलाकर	अपि यातः	चला गया है ॥१७॥
स्पृहयतीं	चाहती हुई (अतृप्ता)		

चित्रलेखोवाच—

व्यसनं तेऽपकर्षामि त्रिलोक्यां यदि भाव्यते ।
तमानेष्ये नरं यस्ते मनोहर्ता तमादिश ॥१८॥

व्यसनं ते अपकर्षामि त्रिलोक्यां यदि भाव्यते तं आनेष्ये नरं यः ते मनः हर्ता तं आदिश ॥१८॥

यः ते मनः हर्ता	जो तुम्हारा चित-चोर	तं आनेष्ये	उसे ले आऊंगी,
		ते व्यसनं	तुम्हारा दुःख
नरं यदि	पुरुष यदि	अपकर्षामि	दूर कर दूंगी,
त्रिलोक्यां	तीनों लोकोंमें	तं आदिश	उसे बता दो ॥१८॥
भाव्यते	कहीं होगा तो		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

इत्युक्त्वा देवगन्धर्वसिद्धचारणपन्नगान् ।
दैत्यविद्याधरान् यक्षान् मनुजांश्च यथालिखत् ॥१९॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

इति उक्त्वा देवगन्धर्व सिद्धचारण पन्नगान् दैत्य विद्याधरान् यक्षान् मनुजान् च यथा अलिखत् ॥१९॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर
देवगन्धर्व	देवता, गन्धर्व,
सिद्धचारण	सिद्ध, चारण,
पन्नगान्	पन्नग (नाग)
दैत्य	दैत्य,
विद्याधरान्	विद्याधर,
यक्षान् च	यक्ष तथा
मनुजान्	मनुष्योंकी
यथा अलिखत्	हूबहू चित्रित किया ॥१९॥

मनुजेषु च सा वृष्णीन् शूरमानकदुन्दुभिम् ।
व्यलिखद् रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं वीक्ष्य लज्जिता ॥२०॥

मनुजेषु च सा वृष्णीन् शूरं आनकदुन्दुभिं व्यलिखत् रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं वीक्ष्य लज्जिता ॥२०॥

मनुजेषु च	मनुष्योंमें भी
सा वृष्णीन्	उसने वृष्णि-वंशी
शूरं	शूर,
आनकदुन्दुभिं	वसुदेव
च रामकृष्णौ	च बलराम-श्रीकृष्ण-को
व्यलिखत्	चित्रित किया,
प्रद्युम्नं वीक्ष्य	प्रद्युम्न (के चित्र) को देखकर
लज्जिता	लज्जित हो गयी ॥२१॥

अनिरुद्धं विलिखितं वीक्ष्योषावाङ्मुखी ह्रिया ।
सोऽसावसाविति प्राह स्मयमाना महीपते ॥२१॥

अनिरुद्धं विलिखितं वीक्ष्य ऊषा अवाङ्मुखी ह्रिया सः असाः असाः इति प्राह स्मयमाना महीपते ॥२१॥

महीपते	राजन् !
अनिरुद्धं	अनिरुद्धको
विलिखितं	चित्रित
वीक्ष्य	देखकर
ह्रिया	लज्जासे
अवाङ्मुखी	सिर झुकाकर
'सः असाः असाः'	'वह यहीं हैं, यहीं हैं'
इति स्मयमाना	इस प्रकार मुस्कराती
ऊषा प्राह	ऊषा बोली ॥२१॥

चित्रलेखा तमाज्ञाय पौत्रं कृष्णस्य योगिनी ।
ययौ विहायसा राजन् द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥२२॥

चित्रलेखा तं आज्ञाय पौत्रं कृष्णस्य योगिनी ययौ विहायसा राजन् द्वारकां कृष्ण पालिताम् ॥२२॥

राजन्	राजन् !	विहायसा	आकाश मार्गसे
तं कृष्णस्य	उनको श्रीकृष्णका	कृष्ण पालितां	श्रीकृष्ण द्वारा
पौत्रं आज्ञाय	पौत्र जानकर		रक्षित
योगिनी	योगिनी	द्वारकां ययौ	द्वारिकापुरी गयी
चित्रलेखा	चित्रलेखा		॥२२॥

तत्र सुप्तं सुपर्यङ्के प्राद्युम्नि योगमास्थिता ।
गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियमदर्शयत् ॥२३॥

तत्र सुप्तं सुपर्यङ्के प्राद्युम्नि योगं आस्थिता गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियं अदर्शयत् ॥२३॥

तत्र सुपर्यङ्के	वहां उत्तम शैयापर	गृहीत्वा	ले जाकर
सुप्तं	सोये	सख्यै प्रियं	अपनी सखी (ऊषा)
प्राद्युम्नि	प्रद्युम्नकुमारको		को प्रियतम
योगं आस्थिता	योगका आश्रय	अदर्शयत्	दिखला दिया
	लेकर		॥२३॥
शोणितपुरं	शोणितपुरमें		

सा च तं सुन्दरवरं विलोक्य मुदिताननां ।
दुष्प्रेक्ष्ये स्वगृहे पुम्भी रेमे प्राद्युम्निना समम् ॥२४॥

सा च तं सुन्दरवरं विलोक्य मुदित आनना दुष्प्रेक्ष्ये स्वगृहे पुम्भी रेमे प्राद्युम्निना समम् ॥२४॥

सा च तं	वह भी उनको	मुदित आनना	प्रसन्नमुखी
सुन्दरवरं	अत्यन्त सुन्दर	प्राद्युम्निना	प्रद्युम्न कुमारके
विलोक्य	देखकर	समं	साथ

पुम्भी दुष्प्रेक्ष्ये	पुरुषोंके द्वारा कठिनाईसे देखे जानेवाले	स्वगृहे रेमे	अपने घरमें रमण करती रही ॥२४॥

परार्ध्यवासः स्रग्गन्धधूपदीपासनादिभिः ।
पानभोजनभक्ष्यैश्च वाक्यैः शुश्रूषयार्चितः ॥२५॥

पर अर्ध्यवासः स्रक् गन्ध धूप दीप आसन आदिभिः पान भोजन भक्ष्यैः च वाक्यैः शुश्रूषया अर्चितः ॥२५॥

पर अर्ध्यवासः	अत्यन्त बहुमूल्य वस्त्र,	च	तथा
स्रक् गन्ध	माला, चन्दन,	वाक्यैः शुश्रूषया	सेवाके वचनोंसे
धूप दीप	धूप-दीप,	अर्चितः	सत्कृत होकर ॥२५॥
आसन आदिभिः	आसन आदि		
पान भोजन भक्ष्यैः	पीने, भोज्य-भक्ष्य पदार्थों		

गूढः कन्यापुरे शश्वत् प्रवृद्धस्नेहया तया ।
नाहर्गणान् स बुबुधे ऊषयापहृतेन्द्रियः ॥२६॥

गूढः कन्यापुरे शश्वत् प्रवृद्ध स्नेहया तया न अहर्गणान् स बुबुधे ऊषया अपहृत इन्द्रियः ॥२६॥

शश्वत् प्रवृद्ध स्नेहया	निरन्तर बढ़ते हुए प्रेमवाली	स अहर्गणान्	उन्होंने दिनोंको (बीतते)
तया ऊषया	उस ऊषा द्वारा	बुबुधे न	जाना ही नहीं ॥२६॥
अपहृत इन्द्रियः	इन्द्रियोंके आकृष्ट हो जानेसे		
कन्यापुरे गूढः	कन्याके अन्तःपुरमें छिपे		

तां तथा यदुवीरेण भुज्यमानां हतव्रताम् ।
हेतुभिर्लक्षयांचक्रुराप्रीतां दुरवच्छदैः ॥२७॥

तां तथा यदुवीरेण भुज्यमानां हतव्रतां हेतुभिः लक्षयान् चक्रुः आप्रीतां दुःअवच्छदैः ॥२७॥

यदुवीरेण तथा	यदुवीर (अनिरुद्ध) द्वारा इस प्रकार	हेतुभिः आप्रीतां	ऐसे कारणोंसे और बहुत प्रसन्न (होनेसे)
भुज्यमानां तां	भोगी जाती हुई उसे	हतव्रतां	(ब्रह्मचर्य) व्रतभ्रष्टा
दुः अवच्छदैः	जिसको छिपाना बहुत कठिन है	लक्षयान् चक्रुः	लक्षित कर लिया ॥२७॥

भटा आवेदयांचक्रू राजंस्ते दुहितुर्वयम् ।
विचेष्टितं लक्षयामः कन्यायाः कुलदूषणम् ॥२८॥

भटा आवेदयान् चक्रुः राजन् ते दुहितुः वयं विचेष्टितं लक्षयामः कन्यायाः कुलदूषणं ॥२८॥

भटा	(अतः) सैनिकोंने	कन्यायाः	कन्याके लिए
आवेदयान् चक्रुः	निवेदन किया	कुलदूषणं	कुलको दूषित करनेवाली
राजन् ते दुहितुः	'राजन् ! आपकी पुत्रीकी	वयं लक्षयामः	हम लोग देखते हैं ॥२८॥
विचेष्टितं	चेष्टाएँ		

अनपायिभिरस्माभिर्गुप्तायाश्च गृहे प्रभो ।
कन्याया दूषणं पुम्भिर्दुष्प्रेक्षाया न विद्महे ॥२९॥

अनपायिभिः अस्माभिः गुप्तायाः च गृहे प्रभो कन्यायाः दूषणं पुम्भिः दुष्प्रेक्षाया न विद्महे ॥२९॥

प्रभो	प्रभो !	अस्माभिः	हम लोगों द्वारा
अनपायिभिः	निरन्तर निर्बाध (सावधान)	गुप्तायाः	रक्षित
		कन्यायाः गृहे	कन्याके घरमें

पुम्भिः	पुरुषोंद्वारा	दूषणं न विद्महे	अतः दोष हम लोग
दुष्प्रेक्षाया	देख पाना बहुत कठिन है		नहीं जानते ॥२९॥

ततः प्रव्यथितो बाणो दुहितुः श्रुतदूषणः ।
त्वरितः कन्यकागारं प्राप्तोऽद्राक्षीद् यदूद्वहम् ॥३०॥

ततः प्रव्यथितः बाणः दुहितुः श्रुतदूषणः त्वरितः कन्यका आगारं प्राप्तः अद्राक्षीत् यदूद्वहम् ॥३०॥

ततः दुहितुः	तब पुत्रीके	कन्यका आगारं	कन्याके भवनमें
श्रुतदूषणः	दूषित होनेकी बात सुनकर	प्राप्तः यदूद्वहं	पहुँचा (वहां) यदुश्रेष्ठको
प्रव्यथितः	बहुत दुःखी होकर	अद्राक्षीत्	(उसने) देखा
बाणः त्वरितः	बाणासुर शीघ्रतासे		॥३०॥

कामात्मजं तं भुवनैकसुन्दरं
श्यामं पिशङ्गाम्बरमम्बुजेक्षणम् ।
बृहद्भुजं कुण्डलकुन्तलत्विषा
स्मितावलोकेन च मण्डिताननम् ॥३१॥

काम आत्मजं तं भुवन एक सुन्दरं श्यामं पिशंग अम्बरं अम्बुज ईक्षणं बृहत् भुजं कुण्डल कुन्तल त्विषा स्मित अवलोकेन च मण्डित आननम् ॥३१॥

तं काम आत्मजं	उन कामदेवके पुत्र	कुन्तल	अलकों एवं
भुवन एक	त्रिलोकीमें एकमात्र	कुण्डल त्विषा	कुण्डलकी कान्ति
सुन्दरं	सुन्दर	च	तथा
श्यामं	श्याम वर्ण,	स्मित अवलोकेन	मुस्कुराहटयुक्त देखनेसे
पिशङ्ग अम्बरं	पीताम्बरधारी,		
अम्बुज ईशणं	कमल-लोचन,	मण्डित आननं	सुशोभित मुखवाले
बृहत् भुजं	विशाल बाहु,		॥३१॥

दीव्यन्तमक्षैः प्रिययाभिनृम्णया
तदङ्गसङ्गस्तनकुंकुमस्रजम् ।
बाह्वोर्दधानं मधुमल्लिकाश्रितां
तस्याग्र आसीनमवेक्ष्य विस्मितः ॥३२॥

दीव्यन्तं अक्षैः प्रियया अभिनृम्णया तत् अङ्ग सङ्ग स्तन कुंकुम स्रजं बाह्वोः दधानं मधुमल्लिका आश्रितां तस्य अग्र आसीनं अवेक्ष्य विस्मितः ॥३२॥

अभिनृम्णया	अत्यन्त परिहास-मुक्ता	मधुमल्लिका	मधुमल्लिकाकी
		स्रजं	माला
प्रियया	प्रियतमाके साथ	बाह्वोः दधानं	भुजाओं धारण किये
अक्षैः दीव्यन्तं	पासा खेलते हुए	तस्य अग्र	उसके आगे
तत् अङ्ग सङ्ग	उसके अङ्ग-संगसे	आसीनं	बैठेको
स्तनकुंकुम	उसके स्तनोंपर लगे कुंकुमसे	अवेक्ष्य विस्मितः	देखकर चकित हो गया ॥३२॥
आश्रितां	अनुरंजिता		

स तं प्रविष्टं वृतमाततायिभि-
र्भटैरनीकैरवलोक्य माधवः ।
उद्यम्य मौर्वं परिघं व्यवस्थितो
यथान्तको दण्डधरो जिघांसया ॥३३॥

स तं प्रविष्टं वृतं आततायिभिः भटैः अनीकैः अवलोक्य माधवः उद्यम्य मौर्वं परिघं व्यवस्थितः यथा अन्तकः दण्डधरः जिघांसया ॥३३॥

स तं	उन्होंने उसे	माधवः	मधुवंशी (अनिरुद्ध)
आततायिभिः	आक्रमणकारी	मौर्वं परिघं	लोहेका परिघ (डंडा)
भटैः अनीकैः	सैनिकोंकी सेनासे		
वृतं प्रविष्टं	घिरा प्रवेश किये	उद्यम्य	उठाकर
अवलोक्य	देखकर	यथा दण्डधरः	जैसे दण्डधारी

अन्तकः	काल हो	व्यवस्थितः	जमकर खड़े हो
जिघांसया	मारनेके लिए		गये ॥३३॥

जिघृक्षया तान् परितः प्रसर्पतः
शुनो तथा सूकरयूथपोऽहनत् ।
ते हन्यमाना भवनाद् विनिर्गता
निर्भिन्नमूर्धोरुभुजाः प्रदुद्रुवुः ॥३४॥

जिघृक्षया तान् परितः प्रसर्पतः शुनः यथा सूकर यूथपः अहनत् ते हन्यमाना भवनात् विनिर्गता निर्भिन्न मूर्ध उरु भुजाः प्रदुद्रुवुः ॥३४॥

जिघृक्षया	पकड़नेके लिए	ते हन्यमाना	वे मारे जाते हुए
परितः तान्	चारों ओरसे उन्हें	निर्भिन्न	कटे-फटे
प्रसर्पतः	सरकते आने वालों-को	मूर्ध उरु भुजाः	सिर, जंघा, भुजा
		ते भवनात्	वे भवनसे
यथा सूकर	जैसे वाराह	विनिर्गता	निकलकर
यूथपः	यूथपति	प्रदुद्रुवुः	भाग गये ॥३४॥
शुनः अहनत्	कुत्तोंको, मारने लगे,		

तं नागपाशैर्बलिनन्दनो बली
घ्नन्तं स्वसैन्य कुपितो बबन्ध ह ।
ऊषा भृशं शोकविषादविह्वला
बद्धं निशम्याश्रुकलाक्ष्यरौदिषीत् ॥३५॥

तं नागपाशैः बलिनन्दनः बली घ्नन्तं स्वसैन्यं कुपितः बबन्ध ह ऊषा भृशं शोक विषाद विह्वला बद्धं निशम्य अश्रुकला अक्ष्य रौदिषीत् ॥३५॥

स्वसैन्यं घ्नन्तं	अपनी सेनाको मारते हुएको	बलिनन्दनः	बलिनन्दन (बाणासुर)ने
बली	बलवान	ह कुपितः	बहुत क्रुद्ध होकर

नागपाशैः	नागपाशसे	**शोकविषाद**	शोक एवं दुःखसे
बबन्ध	बाँध लिया	**विह्वला**	व्याकुल होकर
तं बद्धं निशम्य	उनको बँधा देखकर	**अश्रुकला अक्ष्य**	आँखोंसे आंसू बहाती
ऊषा भृशं	ऊषा बहुत अधिक	**रोदिषीत्**	रोने लगी ॥६५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्याम् संहितायां दशमस्कन्धे
उत्तरार्धेऽनिरुद्धबन्धो नाम द्विषष्टतमोऽध्यायः ॥६२॥

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बन्धूनां च भारत ।
चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥ १ ॥

अपश्यतां च अनिरुद्धं तत् बन्धूनां च भारत चत्वारः वार्षिका मासा व्यतीयुः अनुशोचताम् ॥१॥

भारत	परीक्षित !	वार्षिका	वर्षाके
अनिरुद्धं	अनिरुद्धको	चत्वारः	चार
अपश्यतां	बिना देखे	मासा च	महीने भी
अनुशोचतां	उनके पीछे शोक करते	व्यतीयुः	बीत गये ॥१॥
तत् बन्धूनां च	उनके सम्बन्धियोंके तो		

नारदात्तदुपाकर्ण्य वार्तां बद्धस्य कर्म च ।
प्रययुः शोणितपुरं वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ २ ॥

नारदात् तत् उपाकर्ण्य वार्तां बद्धस्य कर्म च प्रययुः शोणितपुरं वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥२॥

नारदात्	नारदजीसे	कृष्णदेवताः	जिनके श्रीकृष्ण ही आराध्य देव हैं
तत् वार्तां	वह समाचार		
बद्धस्य च कर्म	(उनके) बँधनेका और पराक्रम	वृष्णयः	(वे) यादव लोग
		शोणितपुरं	शोणितपुरको
उपाकर्ण्य	सुनकर	प्रययुः	चले ॥२॥

प्रद्युम्नो युयुधानश्च गदः साम्बोऽथ सारणः ।
नन्दोपनन्दभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिनः ॥ ३ ॥

प्रद्युम्नः युयुधानः च गदः साम्बः अथ सारणः नन्द उपनन्द भद्र आद्या रामकृष्ण अनुवर्तिनः ॥३॥

रामकृष्ण	बलराम-श्रीकृष्णके	गदः साम्बः	गद, साम्ब
अनुवर्तिनः	अनुसार चलने वाले	अथ सारणः	और सारण
		च नन्द	तथा नन्द,
प्रद्युम्नः	प्रद्युम्न,	उपनन्द	उपनन्द,
युयुधानः	सात्यकि,	भद्र आद्याः	भद्र आदि ॥३॥

अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिः समेताः सर्वतोदिशम् ।
रुरुधुर्बाणनगरं समन्तात् सात्वतर्षभाः ॥ ४ ॥

अक्षौहिणीभिः द्वादशभिः सम एताः सर्वतः दिशं रुरुधुः बाणनगरं समन्तात् सात्वत् ऋषभाः ॥४॥

द्वादशभिः	बारह	बाणनगरं	बाणासुरके नगर को
अक्षौहिणीभिः	अक्षौहिणी सेनाके	समन्तात्	चारो ओरसे
सम एताः	साथ आकर	रुरुधुः	घेर लिया ॥४॥
सात्वत्	यादव		
ऋषभाः	श्रेष्ठोंने		

भज्यमानपुरोद्यानप्राकाराट्टालगोपुरम् ।
प्रेक्षमाणो रुषाविष्टस्तुल्यसैन्योऽभिनिर्ययौ ॥ ५ ॥

भज्यमान पुर उद्यान प्राकार अट्टाल गोपुरं प्रेक्षमाणः रुषा आविष्टः तुल्यसैन्यः अभिनिर्ययौ ॥५॥

पुर उद्यान	नगरके बगीचे
प्राकार	परिखा,
अट्टाल	अटारी,
गोपुरं	गोपुर (महाद्वार) को
भज्यमान	तोड़ा जाते
प्रेक्षमाणः	देखकर
रुषा आविष्टः	क्रोधके आवेशमें आकर
तुल्यसैन्यः	(बाणासुर) बराबर की सेनाके साथ
अभिनिर्ययौ	सामने निकल आया ॥५॥

बाणार्थे भगवान् रुद्रः ससुतैः प्रमथैर्वृतः ।
आरुह्य नन्दिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः ॥ ६ ॥

बाण अर्थे भगवान् रुद्रः ससुतैः प्रमथैः वृतः आरुह्य नन्दिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः ॥६॥

भगवान् रुद्रः	भगवान रुद्रने
बाण अर्थे	बाणासुरके लिए
ससुतैः	अपने पुत्रोंके साथ
प्रमथैः वृतः	गणोंसे घिरे हुए
नन्दीवृषभं	नन्दी बैल पर
आरुह्य	चढ़कर
रामकृष्णयोः	बलराम-श्रीकृष्णसे
युयुधे	युद्ध किया ॥६॥

आसीत् सुतुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् ।
कृष्णशंकरयो राजन् प्रद्युम्नगुहयोरपि ॥ ७ ॥

आसीत् सुतुमुलं युद्धं अद्भुतं रोमहर्षणं कृष्णशङ्करयोः राजन् प्रद्युम्न गुहयोः अपि ॥७॥

राजन्	राजन् !
कृष्ण-शङ्करयोः	श्रीकृष्ण और शिवका
प्रद्युम्न गुहयोः अपि	तथा प्रद्युम्न और स्वामि कार्तिकका भी
सुतुमुलं	अत्यन्त तुमुल
अद्भुतं	अद्भुत
रोमहर्षणं	रोमांचकारी
युद्धं आसीत्	युद्ध होने लगा ॥७॥

कुम्भाण्डकूपकर्णाभ्यां बलेन सह संयुगः ।
साम्बस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः ॥ ८ ॥

कुम्भाण्ड कूपकर्णाभ्यां बलेन सह संयुगः साम्बस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः ॥८॥

कुम्भाण्ड	कुम्भाण्ड और	साम्बस्य	साम्बके साथ
कूपकर्णाभ्यां	कूपकर्णका	बाणेन सह	बाणासुरके साथ
बलेन सह	बलरामजीके साथ	सात्यकेः संयुगः	सात्यकिका युद्ध
बाणपुत्रेण	बाणासुरके पुत्रका		हुआ ॥८॥

ब्रह्मादयः सुराधीशा मुनयः सिद्धचारणाः ।
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा विमानैर्द्रष्टुमागमन् ॥ ९ ॥

ब्रह्मा आदयः सुराधीशा मुनयः सिद्ध चारणाः गन्धर्वा अप्सरसः यक्षा विमानैः द्रष्टुम् आगमन् ॥९॥

ब्रह्मा आदयः	ब्रह्मादि	यक्षाः विमानैः	यक्ष लोग विमानों से
सुराधीशा	देवगण,	द्रष्टुं आगमन्	देखने आ गये ॥९॥
मुनयः सिद्ध	मुनि लोग, सिद्ध		
चारणाः	चारण,		
गन्धर्वाः	गन्धर्व,		
अप्सरसः	अप्सराएँ		

शंकरानुचराञ्छौरिर्भूतप्रमथगुह्यकान् ।
डाकिनीर्यातुधानांश्च वेतालान् सविनायकान् ॥१०॥

शङ्कर अनुचरान् शौरिः भूत प्रमथ गुह्यकान् डाकिनीः यातुधानान् च वेतालान् सविनायकान् ॥१०॥

शौरिः	श्रीकृष्णने	शङ्कर	शंकरजीके
		अनुचरान्	सेवक

भूत प्रमथ	भूत, प्रमथ (उन्माद)	च वेतालान्	तथा वेतालोंको
गुह्यकान्	यक्ष,	सविनायकान्	विनायकोंके साथ
डाकिनीः	डाकिनी,		॥१०॥
यातुधानान्	यातुधान,		

प्रेतमातृपिशाचांश्च कूष्माण्डान् ब्रह्मराक्षसान् ।
द्रावयामास तीक्ष्णाग्रैः शरैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः ॥११॥

प्रेत मातृ पिशाचान् च कूष्माण्डान् ब्रह्मराक्षसान् द्रावयामास तीक्ष्ण अग्रैः शरैः शार्ङ्ग धनुः च्युतैः ॥११॥

प्रेत मातृ	प्रेत, मातृका गण,	तीक्ष्ण	तीक्ष्ण
पिशाचान्	पिशाचों,	अग्रैः शरैः	नोंक वाले बाणों
कूष्माण्डान्	कूष्माण्डों		से
च ब्रह्मराक्षसान्	तथा ब्रह्मराक्षसों	द्रावयामास	भगा दिया ॥११॥
	को		
शार्ङ्ग धनुः	शारंग धनुषसे		
च्युतैः	छूटे		

पृथग्विधानि प्रायुङ्क्त पिनाक्यस्त्राणि शार्ङ्गिणे ।
प्रत्यस्त्रैः शमयामास शार्ङ्गपाणिरविस्मितः ॥१२॥

पृथक् विधानि प्रायुङ्क्त पिनाकि अस्त्राणि शार्ङ्गिणे प्रति अस्त्रैः शमयामास शार्ङ्गपाणिः अविस्मितः ॥१२॥

पिनाकि	पिनाकिपाणि शिव	शार्ङ्गपाणिः	शारंगधन्वानें
	ने		उन्हें
शार्ङ्गिणे	शारंग धन्वा पर	प्रति अस्त्रैः	उनके विरोधी अस्त्र
पृथक् विधानि	अनेक प्रकारके		से
अस्त्राणि	अस्त्रोंका	शमयामास	शान्त कर दिया
प्रायुङ्क्त	प्रयोग किया		॥१२॥
अविस्मितः	बिना विस्मित हुए		

ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम् ।
आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं पाशुपतस्य च ॥१३॥

ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतं आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं पाशुपतस्य च ॥१३॥

ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं	ब्रह्मास्त्रके लिए तो ब्रह्मास्त्र,	पाशुपतस्य च नैजं	पाशुपतास्त्रके लिए नारायणास्त्र (का प्रयोग किया) ॥१३॥
वायव्यस्य च पार्वतं	वायव्यास्त्रके लिए पर्वतास्त्र,		
आग्नेयस्य च पार्जन्यं	आग्नेयास्त्रके लिए पर्जन्य (वारुण) अस्त्र,		

मोहयित्वा तु गिरिशं जृम्भणास्त्रेण जृम्भितम् ।
बाणस्य पृतनां शौरिर्जघानासिगदेषुभिः ॥१४॥

मोहयित्वा तु गिरिशं जृम्भणास्त्रेण जृम्भितं बाणस्य पृतनां शौरिः जघान असि गद इषुभिः ॥१४॥

जृम्भणास्त्रेण गिरिशं मोहयित्वा जृम्भितं	फिर जृम्भणास्त्रसे शंकरजीको सम्मोहित करके (उन्हें) जम्हाई लेते छोड़कर	शौरिः बाणस्य पृतनां असि गद इषुभिः जघान	श्रीकृष्ण बाणासुरकी सेनाको तलवार, गदा, बाणोंसे मारने लगे ॥१४॥

स्कन्दः प्रद्युम्नबाणौघैरर्द्यमानः समन्ततः ।
असृग् विमुञ्चन् गात्रेभ्यः शिखिनापाक्रमद् रणात् ॥१५॥

स्कन्दः प्रद्युम्न बाण ओघैः अर्द्यमानः समन्ततः असृक् विमुञ्चन् गात्रेभ्यः शिखिना अपाक्रमत् रणात् ॥१५॥

प्रद्युम्न	प्रद्युम्नके	असृक्	रक्त
बाण ओघैः	बाणोंकी बौछारसे	विमुञ्चन्	गिराते
समन्वतः	चारों ओरसे	शिखिना	मयूरके द्वारा
अर्द्यमानः	रौंदे जाते	रणात्	युद्धसे
स्कन्दः गात्रेभ्यः	स्वामि कार्तिक शरीर से	अपाक्रमत्	दूर चले गये ॥१५॥

कुम्भाण्डः कूपकर्णश्च पेततुर्मुसलार्दितौ ।
दुद्रुवुस्तदनीकानि हतनाथानि सर्वतः ॥१६॥

कुम्भाण्डः कूपकर्णः च पेततुः मुसल अर्दितौ दुद्रुवुः तत् अनीकानि हतनाथानि सर्वतः ॥१६॥

कुम्भाण्डः	कुम्भाण्ड	हतनाथानि	स्वामियोंके मारे जानेसे
च कूपकर्णः	और कूपकर्ण	तत् अनिकानि	उनकी सेनाएँ
मुसल अर्दितौ	मूसलसे कुचले जाकर	सर्वतः दुद्रुवुः	चारों ओर भाग गयी ॥१६॥
पेततुः	गिर पड़े		

विशीर्यमाणं स्वबलं दृष्ट्वा बाणोऽत्यमर्षणः ।
कृष्णमभ्यद्रवत् संख्ये रथी हित्वैव सात्यकिम् ॥१७॥

विशीर्यमाणं स्वबलं दृष्ट्वा बाणः अति अमर्षणः कृष्णं अभि अद्रवत् संख्ये रथी हित्वा एव सात्यकिम् ॥१७॥

स्वबलं	अपनी सेनाको	संख्ये सात्यकिं	युद्धमें सात्यकिको
विशीर्यमाणं	बिखरती हुई	हित्वा एव	छोड़कर ही
दृष्ट्वा	देखकर	कृष्णं अभि	श्रीकृष्णकी ओर
अति अमर्षणः	अत्यन्त असहनशील	अद्रवत्	झपटा ॥१७॥
बाणः रथी	रथ पर बैठा बाणासुर		

धनूंष्याकृष्य युगपद् बाणः पञ्चशतानि वै ।
एकैकस्मिञ्छरौ द्वौ द्वौ संदधे रणदुर्मदः ॥१८॥

धनूंषि आकृष्य युगपत् बाणः पञ्चशतानि वै एक एकस्मिन् शरौ द्वौ द्वौ सन्दधे रणदुर्मदः ॥१८॥

रणदुर्मदः	रणोन्मत !	धनूंषि आकृष्य	धनुष खींचकर
बाणः वै	बाणासुरने तो	एक एकस्मिन्	प्रत्येक पर
युगपत्	एक साथ	द्वौ द्वौ शरौ	दो दो बाण
पञ्चशतानि	पाँच सौ	सन्दधे	चढ़ाये ॥१८॥

तानि चिच्छेद भगवान् धनूंषि युगपद्धरिः ।
सारथिं रथमश्वांश्च हत्वा शङ्खमपूरयत् ॥१९॥

तानि चिच्छेद भगवान् धनूंषि युगपत् हरिः सारथिं रथं अश्वान् च हत्वा शङ्खम् अपूरयत् ॥१९॥

भगवान् हरिः	भगवान श्रीहरिने	च सारथिं रथं	और सारथि, रथ
तानि धनूंषि	उन धनुषोंको	अश्वान् हत्वा	घोड़ोंको मारकर
युगपत् चिच्छेद	एक साथ काट दिया	शङ्खम् अपूरयत्	शंख बजाने लगे ॥१९॥

तन्माता कोटरा नाम नग्ना मुक्तशिरोरुहा ।
पुरोऽवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राणरिरक्षया ॥२०॥

तत् माता कोटरा नाम नग्ना मुक्त शिरोरुहा पुरः अवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राण रिरक्षया ॥२०॥

पुत्र प्राण	पुत्रकी प्राण	तत् माता	उसकी माता (धाय माँ)
रिरक्षया	रक्षाकी इच्छासे		
कोटरा नाम	कोटरा नामकी	मुक्त शिरोरुहा	सिरके बाल खोले

नग्नां	नंगी होकर	अवतस्थे	(आकर) खड़ी हो
कृष्णस्य पुरः	श्रीकृष्णके सामने		गयी ॥२०॥

ततस्तिर्यङ्मुखो नग्नामनिरीक्षन् गदाग्रजः ।
बाणश्च तावद् विरथश्छिन्नधन्वाविशत् पुरम् ॥२१॥

ततः तिर्यक् मुखः नग्नां अनिरीक्षन् गद अग्रजः बाणः च तावत् विरथः छिन्न धन्वा विशत् पुरम् ॥२१॥

ततः नग्नां	तब उस नंगीको	विरथः	रथहीन,
अनिरीक्षन्	न देखते हुए	छिन्न धन्वा	धनुष कट जाने पर
गद अग्रजः	गदके बड़े भाई श्रीकृष्णने	पुरं विशत्	नगरमें चला गया ॥२१॥
तिर्यङ् मुखः	मुख घुमा लिया		
तावत् बाणः च	इतने में बाणासुर भी		

विद्राविते भूतगणे ज्वरस्तु त्रिशिरास्त्रिपात् ।
अभ्यधावत दाशार्हं दहन्निव दिशो दश ॥२२॥

विद्राविते भूतगणे ज्वरः तु त्रिशिराः त्रिपात् अभ्यधावत् दाशार्हं दहन् इव दिशः दश ॥२२॥

भूतगणे	भूतोंको	दहन् इव	भस्म करता हुआ सा
विद्राविते	भगा देने पर	दाशार्हं	दशार्हं वंशी श्रीकृष्णकी
त्रिपात्	तीन पैर वाला	अभ्यधावत्	ओर दौड़ा ॥२२॥
त्रिशिराः	त्रिशिरा		
ज्वरः तु	ज्वर तो		
दश दिशः	दसों दिशाओंको		

अथ नारायणो देवस्तं दृष्ट्वा व्यसृजज्ज्वरम् ।
माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ ॥२३॥

अथ नारायणः देवः तं दृष्ट्वा व्यसृजत् ज्वरं माहेश्वरः वैष्णवः च युयुधाते ज्वराः उभौ ॥२३॥

अथ तं दृष्ट्वा	तब उसे देखकर	माहेश्वरः च	तब माहेश्वर और
नारायणः देवः	नारायण भगवानने	वैष्णवः उभौ	वैष्णव दोनों
ज्वरं व्यसृजत्	(अपने शीत) ज्वरको छोड़ा	ज्वराः युयुधाते	ज्वर (परस्पर) लड़ने लगे ॥२३॥

माहेश्वरः समाक्रन्दन् वैष्णवेन बलार्दितः ।
अलब्ध्वाभयमन्यत्र भीतो माहेश्वरो ज्वरः ।
शरणार्थी हृषीकेशं तुष्टाव प्रणताञ्जलिः ॥२४॥

माहेश्वरः समाक्रन्दन् वैष्णवेन बल अर्दितः अलब्ध्वा अभयं अन्यत्र भीतः माहेश्वरः ज्वरः शरण अर्थी हृषीकेशं तुष्टाव प्रणत अञ्जलिः ॥२४॥

वैष्णवेन	वैष्णव (ज्वर) द्वारा	अलब्ध्वा	न पाकर
बल अर्दितः	बलपूर्वक रौंदा गया	प्रणत अञ्जलिः	विनय पूर्वक हाथ जोड़कर
भीतः	डरा हुआ	हृषीकेशं तुष्टाव	हृषीकेशकी स्तुति करने लगा ॥२४॥
माहेश्वरः ज्वरः	माहेश्वर ज्वर		
अन्यत्र अभयं	दूसरे कहीं निर्भय स्थान		

॥ ज्वर उवाच ॥

नमामि त्वानन्तशक्तिं परेशं
सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम् ।

विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं
यत्तद् ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गम् प्रशान्तम् ॥२५॥

नमामि त्वा अनन्तशक्ति परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रं विश्व उत्पत्ति स्थान संरोध हेतुं यत् तत् ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गम् प्रशान्तम् ॥२५॥

अनन्तशक्ति	अनन्त शक्ति	यत् ब्रह्म	जो ब्रह्म है
परेशं सर्वात्मानं	सबके अन्तरात्मा, परमात्मा,	तत् ब्रह्मलिङ्गम्	उस वेदवाक्योंसे जाने जाते वाले
केवलं	केवल	प्रशान्तं त्वा	शान्त स्वरूप आपको
ज्ञप्तिमात्रं	ज्ञानस्वरूप	नमामि	नमस्कार करता हूँ ॥२५॥
विश्व उत्पत्ति स्थान	जगतकी उत्पत्ति, स्थिति,		
संरोध हेतुं	प्रलयका कारण		

कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो
द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः ।
तत्संघातो बीजरोहप्रवाह-
स्त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये ॥२६॥

कालः दैवं कर्म जीवः स्वभावः द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः तत् सङ्घातः बीजरोहप्रवाहः त्वत् मायया एषा तत् निषेधं प्रपद्ये ॥२६॥

कालः दैवं कर्म	काल, देवता, कर्म,	बीजरोहप्रवाहः	बीजका उगना (प्रारब्ध) तथा जन्मादि
जीवः स्वभावः	जीव, प्रकृति,	त्वत् एषा मायया	यह सब आपकी माया है,
द्रव्यं क्षेत्रं प्राण	सूक्ष्म भूत, शरीर, प्राण		
आत्मा विकारः	अहंकार, इन्द्रियां		
तत् सङ्घातः	इनका पुंजी भाव सूक्ष्म शरीर		

तत् निषेधं	इनसे जो रहित हैं	प्रपद्ये	(उस आपकी) शरण हूँ ॥२६॥

नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नै-
र्देवान् साधूँल्लोकसेतून् बिभर्षि ।
हंस्युन्मार्गान् हिंसया वर्तमानान्
जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः ॥२७॥

नाना भावैः लीलया एव उपपन्नैः देवान् साधून् लोकसेतून् बिभर्षि हंसि उन्मार्गान् हिंसया वर्तमानान् जन्म एतत् ते भार हाराय भूमेः ॥२७॥

लीलया एव	लीलासे ही	हिंसया	हिंसा करते
उपपन्नैः	धारण किये हुए	वर्तमानान्	रहने वाले
नाना भावैः	अनेक प्रकारके रूपों से	उन्मार्गान् हंसि	कुमार्ग गामियोंको मारते हैं
देवान् साधून्	देवता, साधुओं तथा	ते एतत् जन्म	आपका यह अवतार
लोकसेतून्	लोकमर्यादाको	भूमेः भार	पृथ्वीका भार
बिभर्षि	धारण करते हैं एवं	हाराय	दूर करनेके लिए है ॥२७॥

तप्तोऽहं ते तेजसा दुःसहेन
शान्तोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण ।
तावत्तापो देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं
नो सेवेरन् यावदाशानुबद्धाः ॥२८॥

तप्तः अहं ते तेजसा दुःसहेन शान्त उग्रेण अति उल्बणेन ज्वरेण तावत् तापः देहिनां ते अंघ्रिमूलं नो सेवेरन् यावत् आशा अनुबद्धाः ॥२८॥

अहं ते दुःसहेन	मैं आपके दुःसह	उग्रेण उल्बणे	उग्र तीक्ष्ण
तेजसा	तेजस्वरूप	शान्त ज्वरेण	शीत ज्वरसे
अति	अत्यन्त		

तप्तः	संतप्त हो रहा हूँ
देहिनां	जीवको
तावत् तापः	तभी तक कष्ट होता है
यावत्	जब तक
आशा अनुबद्धाः	आशाके पीछे बँधा
ते अंघ्रिमूलं	आपके चरणोंकी
नो सेवेरन्	सेवा नहीं करता ॥२८॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद् भयम् ।
यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद् भयम् ॥२९॥

त्रिशिरः ते प्रसन्नः अस्मि व्येतु ते मत् ज्वरात् भयं यः नौ स्मरति संवादं तस्य त्वत् न भवेत् भयम् ॥२९॥

त्रिशिरः ते	त्रिशिरा ! तुम पर
प्रसन्नः अस्मि	(मैं) प्रसन्न हूँ
ते मत ज्वरात्	तुम्हें मेरे ज्वरसे
भयं व्येतु	भय मिट जाय,
यः नौ	जो हम दोनोंके (इस)
सम्वादं	संवादको
स्मरति	स्मरण करे
तस्य त्वत् भयं	उसे तुम्हारा भय
न भवेत्	न होवे ॥२९॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

इत्युक्तोऽच्युतमानम्य गतो माहेश्वरो ज्वरः ।
बाणस्तु रथमारूढः प्रागाद्योत्स्यञ्जनार्दनम् ॥३०॥

इति उक्तः अच्युतं आनम्य गतः माहेश्वरः ज्वरः बाणः तु रथं आरूढः प्रागात् योत्स्यन् जनार्दनम् ॥३०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

इति उक्तः	ऐसा कहने पर	रथं आरूढः	रथ पर चढ़कर
माहेश्वरः	माहेश्वर	जनार्दनं	जनार्दनसे
ज्वरः गतः	ज्वर चला गया	योत्स्यन्	युद्ध करने
बाणः तु	और बाणासुर भी	प्रागात्	आ गया ॥३०॥

ततो बाहुसहस्रेण नानायुधधरोऽसुरः ।
मुमोच परमक्रुद्धो बाणांश्चक्रायुधे नृप ॥३१॥

ततः बाहुसहस्रेण नाना आयुधः धरः असुरः मुमोच परमक्रुद्धः बाणान् चक्र आयुधे नृप ॥३१॥

नृप	राजन् !	धरः असुरः	लिए बाणासुर
ततः	तब	परमक्रुद्धः	अत्यन्त क्रोधसे
बाहुसहस्रेण	सहस्र हाथोंमें	चक्र आयुधे	चक्रपाणि पर
नाना आयुधः	अनेक प्रकारके हथियार	बाणान् मुमोच	बाण छोड़ने लगा ॥३१॥

तस्यास्यतोऽस्त्राण्यसकृच्चक्रेण क्षुरनेमिना ।
चिच्छेद भगवान् बाहून् शाखा इव वनस्पतेः ॥३२॥

तस्य अस्यतः अस्त्राणि असकृत् चक्रेण क्षुरनेमिना चिच्छेद भगवान् बाहून् शाखा इव वनस्पतेः ॥३२॥

तस्य असकृत्	उसके निरन्तर	बाहून् भगवान्	भुजाओंको भगवान ने
अस्त्राणि	अस्त्र चलाते	क्षुरनेमिना	तीक्ष्ण धार वाले
अस्यतः	समय	चक्रेण चिच्छेद	चक्रसे काट दिया ॥३२॥
वनस्पतेः	वृक्षकी		
शाखा इव	शाखाओंकी भाँति		

बाहुषूच्छिद्यमानेषु बाणस्य भगवान् भवः ।
भक्तानुकम्प्युपव्रज्य चक्रायुधमभाषत ॥३३॥

बाहुषु उच्छिद्यमानेषु बाणस्य भगवान् भवः भक्त अनुकम्पि उपव्रज्य चक्रायुधं अभाषत ॥३३॥

बाणस्य बाहुषु	बाणासुरकी भुजाओं के	भगवान् भवः	भगवान शंकर
उच्छिद्यमानेषु	काटे जाते समय	चक्रायुधं	चक्रपाणिके
भक्त अनुकम्पि	भक्त वत्सल	उपव्रज्य	समीप पहुँचकर
		अभाषत	कहने लगे ॥३३॥

॥ श्रीरुद्र उवाच ॥

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये ।
यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥३४॥

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिः गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये यं पश्यन्ति अमल आत्मानः आकाशं इव केवलम् ॥३४॥

हि त्वं	क्योंकि आप	यं अमल	जिसे निर्मल
ब्रह्मणि-	वेद-	आत्मानः	चित्त लोग
वाङ्मये	वाक्योंमें	आकाशं इव	आकाशकी भाँति
गूढं	छिपे	केवलं पश्यन्ति	अद्वितीय देखते हैं ॥३४॥
परं ज्योतिः	परम ज्योतिस्वरूप		
ब्रह्म	ब्रह्म हो,		

नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमम्बु रेतो
द्यौः शीर्षमाशाः श्रुतिरङ्घ्रिरुर्वी ।
चन्द्रो मनो यस्य दृगर्क आत्मा
अहं समुद्रो जठरं भुजेन्द्रः ॥३५॥

नाभिः नभः अग्निः मुखं अम्बु रेतः द्यौः शीर्षं आशाः श्रुतिः अङ्घ्रिः उर्वी चन्द्रः मनः यस्य दृक् अर्क आत्मा अहं समुद्रः जठरं भुज इन्द्रः ॥३५॥

नभः यस्य	आकाश जिनकी	चन्द्रः मनः	चन्द्रमा मन,
नाभिः	नाभि है	अर्कः दृक्	सूर्य नेत्र,
अग्निः मुखं	अग्नि मुख,	अहं आत्मा	मैं (रुद्र) चित्त
अम्बु रेतः	जल वीर्य,	समुद्रः जठरं	समुद्र उदर
द्यौः शीर्ष	स्वर्ग मस्तक	इन्द्रः भुज	इन्द्र भुजाएँ हैं
आशाः श्रुतिः	दिशाएँ कान,		॥३५॥
उर्वी अंघ्रिः	पृथ्वी पैर,		

रोमाणि यस्यौषधयोऽम्बुवाहाः
केशा विरिञ्चो धिषणा विसर्गः ।
प्रजापतिर्हृदयं यस्य धर्मः
स वै भवान् पुरुषो लोककल्पः ॥३६॥

रोमाणि यस्य औषधयः अम्बुवाहाः केशा विरिञ्चः धिषणा विसर्गः प्रजापतिः हृदयं यस्य धर्मः स वै भवान् पुरुषः लोककल्पः ॥३६॥

औषधयः	औषधियां	धर्मः यस्य	धर्म जिनका
यस्य रोमाणि	जिनकी रोम,	हृदयं	हृदय है
अम्बुवाहाः	बादल	वै लोककल्पः	निश्चय सम्पूर्ण
केशा	केश		लोकमय
विरिञ्चः	ब्रह्मा	पुरुषः भवान्	विराट् पुरुष आप
धिषणा	बुद्धि		ही हैं ॥३६॥
प्रजापतिः	प्रजापति		
विसर्गः	उपस्थ,		

तवावतारोऽयमकुण्ठधामन्
धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय ।
वयं च सर्वे भवतानुभाविता
विभावयामो भुवनानि सप्त ॥३७॥

तव अवतारः अयं अकुण्ठ धामन् धर्मस्य गुप्त्यै जगतः भवाय वयं च सर्वे भवता अनुभाविता विभावयामः भुवनानि सप्त ॥३७॥

अकुण्ठ धामन्	अप्रतिहत तेजस्व-रूप !	वयं सर्वे च	हम सब भी
तव अयं	यह आपका	भवता	आपके प्रभावसे
अवतारः	अवतार	अनुभविता	प्रभावित
धर्मस्य गुप्त्यै	धर्मकी रक्षाके लिए और	सप्त भुवनानि	सातों लोकोंका
जगतः भवाय	संसारके अभ्युदयके लिए है,	विभावयामः	पालन करते हैं ॥३७॥

त्वमेक आद्यः पुरुषोऽद्वितीय-
स्तुर्यः स्वदृग्घेतुरहेतुरीशः ।
प्रतीयसेऽथापि यथाविकारं
स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै ॥३८॥

त्वं एक आद्यः पुरुषः अद्वितीयः तुर्यः स्वदृक् हेतुः अहेतुः ईशः प्रतीयसे अथ अपि यथाविकारं स्वमायया सर्वगुण प्रसिद्ध्यै ॥३८॥

त्वं एक	आप एक	स्वमायया	अपनी मायासे
आद्यः पुरुषः	आदि पुरुष,	सर्वगुण	सब गुणोंकी
अद्वितीयः	अद्वितीय,	प्रसिद्ध्यै	सिद्धिके लिए
तुर्यः स्वदृक्	तुरीय स्वयं प्रकाश,	यथाविकारं	विकारों (शरीरों) के अनुसार
हेतुः अहेतुः	सर्वकारण, स्वयं कारण रहित	प्रतीयसे	प्रतीत होते हैं ॥३८॥
ईशः	सर्वेश्वर हैं,		
अथ अपि	फिर भी		

यथैव सूर्यः पिहितश्छायया स्वया
छायां च रूपाणि च सञ्चकास्ति ।

एवं गुणेनापिहितो गुणांस्त्व-
मात्मप्रदीपो गुणिनश्च भूमन् ॥३९॥

यथा एव सूर्यः पिहितः छायया स्वया छायां च रूपाणि च संचकास्ति एवं गुणेन आपिहितः गुणान् त्वं आत्मप्रदीपः गुणिनः च भूमन् ॥३९॥

भूमन्	सर्वव्यापक प्रभु !	सञ्चकास्ति	प्रकाशित करता है
यथा एव सूर्यः	जैसे कि सूर्य	एवं गुणेन	इसी प्रकार गुणोंसे
स्वया छायया	अपनी छाया (मेघों) से	आपिहितः	आच्छादित
		त्वं आत्मप्रदीपः	आप स्वयं प्रकाश
पिहितः	ढककर	गुणान् च	गुणोंको तथा
छायां च	छाया (मेघों)को भी	गुणिनः	गुणवान (जीवों को (प्रकाशित करते हैं) ॥३९॥
च रूपाणि	तथा (अन्य) रूपोंको भी		

यन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रसक्ता वृजिनार्णवे ॥४०॥

यत् माया मोहित धियः पुत्र दार गृहादिषु उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रसक्ता वृजिन अर्णवे ॥४०॥

यत् माया	जिसकी मायासे	प्रसक्ता	आसक्त होकर
मोहित धियः	मोहित बुद्धि (जीव)	वृजिन अर्णवे	दुःख समुद्रमें
पुत्र दार	पुत्र, स्त्री,	उन्मज्जन्ति	उतराते-
गृहादिषु	घर आदिमें	निमज्जन्ति	डूबते हैं ॥४०॥

दैवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः ।
यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवञ्चकः ॥४१॥

देवदत्तं इमं लब्ध्वा नृलोकं अजित इन्द्रियः यः न आद्रियेत त्वत् पादौ स शोच्यः हि आत्म वञ्चकः ॥४१॥

यः अजित	जो अजित	आद्रियेत न	आदर नहीं करता
इन्द्रियः	इन्द्रिय	स शोच्यः	वह शोचनीय है
देवदत्तं इमं	देव ! आपका दिया यह	हि आत्म	क्योंकि अपनेको ही
		वञ्चकः	(वह) ठगने वाला ॥४१॥
नृलोकं लब्ध्वा	मनुष्य लोक पाकर		
त्वत् पादौ	आपके चरणोंका		

यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम् ।
विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन् ॥४२॥

यः त्वां विसृजते मर्त्यः आत्मानं प्रियं ईश्वरं विपर्यय इन्द्रिय अर्थ अर्थं विषं अत्ति अमृतं त्यजन् ॥४२॥

यः मर्त्यः	जो मनुष्य	अमृतं त्यजन्	(वह) अमृतको त्यागकर
विपर्यय	(आपसे) विपरीत	विषं अत्ति	विष खाता है ॥४२॥
इन्द्रिय	इन्द्रियोंके		
अर्थ अर्थं	भोगके लिए		
आत्मानं प्रियं	अपने प्रिय		
ईश्वरं	स्वामी		
त्वां विसृजते	आपको छोडता है		

अहं ब्रह्माथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः ।
सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वरम् ॥४३॥

अहं ब्रह्मा अथ विबुधा मुनयः च अमल आशयाः सर्व आत्मना प्रपन्नाः त्वां आत्मानं प्रेष्ठं ईश्वरम् ॥४३॥

अहं ब्रह्मा अथ	मैं, ब्रह्मा और	च अमल	तथा निर्मल
विबुधा	देवगण	आशयाः	हृदय

मुनयः	मुनिगण	प्रेष्ठं ईश्वरं	परमप्रिय स्वामीकी
सर्व आत्मना	सम्पूर्ण चित्तसे	प्रपन्नाः	शरण हैं ॥४३॥
त्वां आत्मानं	आप आत्मास्वरूप		

तं त्वां जगत्स्थित्युदयान्तहेतुं
समं प्रशान्तं सुहृदात्मदैवम् ।
अनन्यमेकं जगदात्मकेतं
भवापवर्गाय भजाम देवम् ॥४४॥

तं त्वां जगत् स्थिति उदय अन्त हेतुं समं प्रशान्तं सुहृद आत्मदैवं अनन्यं एकं जगत् आत्मकेतं भव अपवर्गाय भजाम देवम् ॥४४॥

तं जगत् स्थिति	उस जगत्की स्थिति	अनन्यं एकं	अद्वितीय, एकमात्र
उदय अन्त हेतुं	उत्पत्ति, प्रलयके कारण	जगत् आत्मकेतं	जगत्के अधिष्ठान रूप
समं प्रशान्तं	सर्वत्र सम, अत्यन्त शान्त,	देवं भव अपवर्गाय	इष्ट देवको जगत्से मोक्षके लिए
सुहृद आत्मदैवं	सबके सुहृद, आत्मा ईश्वर	भजाम	भजते हैं ॥४४॥

अयं ममेष्टो दयितोऽनुवर्ती
मयाभयं दत्तममुष्य देव ।
सम्पाद्यतां तद् भवतः प्रसादो
यथा हि ते दैत्यपतौ प्रसादः ॥४५॥

अयं मम इष्टः दयितः अनुवर्ती मया अभयं दत्तं अमुष्य देव सम्पाद्यतां तत् भवतः प्रसादः यथा हि ते दैत्यपतौ प्रसादः ॥४५॥

अयं मम इष्टः दयितः अनुवर्ती	यह मेरा अभीष्ट प्रिय अनुगामी है,	देव अमुष्य	देव ! इसको

मया	मैंने	ते प्रसादः	आपकी कृपा है
अभयं दत्तं	अभय दिया है	तत् भवतः	वह आपकी
यथा हि	जैसाकि	प्रसादः	कृपा (इस पर)
दैत्यपतौ	दैत्यपति (प्रह्लाद) पर	सम्पाद्यतां	कीजिए ॥४५॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

यदात्थ भगवंस्त्वन्नः करवाम प्रियं तव ।
भवतो यद् व्यवसितं तन्मे साध्वनुमोदितम् ॥४६॥

यद् आत्थ भगवन् त्वत् नः करवाम प्रियं तव भवतः यत् व्यवसितं तत् मे साधु अनुमोदितम् ॥४६॥

भगवन्	भगवन् !	तत् मे साधु	उसका मैंने भली प्रकार
त्वत् यद् आत्थ	आपका जो कहना है	अनुमोदितं	अनुमोदन किया है ॥४६॥
तव प्रियं	आपका प्रिय		
नः करवाम	हम करेंगे		
यत् भवतः	जो आप विचार		
व्यवसितं	किया है		

अवध्योऽयं ममाप्येष वैरोचनिसुतोऽसुरः ।
प्रह्लादाय वरो दत्तो न वध्यो मे तवान्वयः ॥४७॥

अवध्यः अयं मम अपि एष वैरोचनि सुतः असुरः प्रह्लादाय वरः दत्तः न वध्यः मे तव अन्वयः ॥४७॥

अयं वैरोचनि सुतः	यह विरोचन-नन्दन बलिका पुत्र	वरः दत्तः	वरदान दिया है कि
असुरः मम अपि	असुर मेरे लिए भी	तव अन्वयः	'तुम्हारे वंशज
अवध्यः	वध योग्य नहीं है	मे वध्यः न	मेरे वध्य नहीं होंगे ॥४८॥
प्रह्लादाय	प्रह्लादको (मैंने)		

दर्पोपशमनायास्य प्रवृक्णा बाहवो मया ।
सूदितं च बलं भूरि यच्च भारायितं भुवः ॥४८॥

दर्प उपशमनाय अस्य प्रवृक्णा बाहवः मया सूदितं च बलं भूरि यत् च भारायितं भुवः ॥४८॥

अस्य दर्प	इसका गर्व	च यत् च भुवः	और पृथ्वीकी
उपशमनाय	शान्त करनेके लिए	भारायितं	भार हो रही थीं (वह]
मया बाहवः	मेरे द्वारा (इसकी) भुजाएँ	भूरि बलं	बहुत सी सेना भी
प्रवृक्णा	काट दी गयीं	च सूदितं	मार दी ॥४८॥

चत्वारोऽस्य भुजाः शिष्टा भविष्यन्त्यजरामराः ।
पार्षदमुख्यो भवतो नकुतश्चिद्भयोऽसुरः ॥४९॥

चत्वारः अस्य भुजाः शिष्टाः भविष्यन्ति अजर अमरा पार्षद मुख्यः भवतः न कुतश्चित् भयः असुरः ॥४९॥

अस्य चत्वारः	इसकी चार	पार्षद मुख्यः	मुख्य पार्षद है
भुजाः शिष्टाः	भुजाएँ बच गयीं हैं	कुतश्चित्	(इसे) कहींसे भी
अजर अमराः	(अब) अजर-अमर	भयः न	भय नहीं है ॥४९॥
भविष्यति	होगा,		
असुरः भवतः	(यह) असुर आपका		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

इति लब्ध्वाभयं कृष्णं प्रणम्य शिरसासुरः ।
प्राद्युम्निं रथमारोप्य स बध्वा समुपानयत् ॥५०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

इति लब्ध्वा अभयं कृष्णं प्रणम्य शिरसा असुरः प्राद्युम्निं रथं आरोप्य स बध्वा समुपानयत् ॥५०॥

इति	इस प्रकार	स बध्वा	बहूके साथ
अभयं लब्ध्वा	अभय पाकर	प्राद्युम्निं	प्रद्युम्न कुमार (अनिरुद्ध)को
असुरः कृष्णं	बाणासुर श्रीकृष्ण को	रथं आरोप्य	रथ पर चढ़ाकर
शिरसा प्रणम्य	मस्तक झुकाकर प्रणाम करके	समुपानयत्	भली प्रकार ले आया ॥५०॥

अक्षौहिण्या परिवृतं सुवासःसमलंकृतम् ।
सपत्नीकं पुरस्कृत्य ययौ रुद्रानुमोदितः ॥५१॥

अक्षौहिण्या परिवृतं सुवासः सम अलङ्कृतं सपत्नीकं पुरस्कृत्य ययौ रुद्र अनुमोदितः ॥५१॥

रुद्र अनुमोदितः	शंकरजीकी अनुमति लेकर	सम अलङ्कृतं	पूर्ण आभूषित
अक्षौहिण्या	एक अक्षौहिणी सेनासे	सपत्नीकं	पत्नी सहित
परिवृत्तं	घिरे हुए	पुरस्कृत्य	(अनिरुद्धको) आगे करके
सुवासः	उत्तम वस्त्र पहिने	ययौ	(यादव) चल पड़े ॥५१॥

स्वराजधानीं समलंकृतां ध्वजैः
सतोरणैरुक्षितमार्गचत्वराम् ।
विवेश शङ्खानकदुन्दुभिस्वनै-
रभ्युद्यतः पौरसुहृद्द्विजातिभिः ॥५२॥

स्वराजधानीं समलङ्कृतां ध्वजैः सतोरणैः उक्षित मार्ग चत्वरां विवेश शङ्ख आनक दुन्दुभिः स्वनैः अभ्युद्यतः पौर सुहृत् द्विजातिभिः ॥५२॥

ध्वजैः	झण्डों	पौर सुहृत्	पुरवासी, सम्बन्धी,
सतोरणैः	बन्दनवारोंसे	द्विजातिभिः	ब्राह्मणों वाली
समलङ्कृतां	भली प्रकार सजी	स्वराजधानीं	अपनी राजधानीमें
उक्षित मार्ग	सींचे मार्ग,	शङ्ख आनक	शंख, नगाड़े,
चत्वरां	चौराहों वाली	दुन्दुभिः स्वनैः	दुन्दुभी बजाते
अभ्युद्यतः	(स्वागतार्थ) आगे आये	विवेश	प्रविष्ट हुए ॥५२॥

य एवं कृष्णविजयं शंकरेण च संयुगम् ।
संस्मरेत् प्रातरुत्थाय न तस्य स्यात् पराजयः ॥५३॥

यः एवं कृष्णविजयं शङ्करेण च संयुगं संस्मरेत् प्रातः उत्थाय न तस्य स्यात् पराजयः ॥५३॥

यः प्रातः	जो सवेरे	संयुगं	युद्धका
उत्थाय	उठकर	संस्मरेत्	स्मरण करता है
एवं	इस प्रकार	तस्य पराजयः	उसकी पराजय
कृष्णविजयं	श्रीकृष्ण-विजय	न स्यात्	नहीं होती ॥५३॥
च शंकरेण	तथा शंकरजीके साथ		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धेऽनिरुद्धानयनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

अथ चतुष्षष्टितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एकदोपवनं राजन् जग्मुर्यदुकुमारकाः ।
विहर्तुं साम्बप्रद्युम्नचारुभानुगदादयः ॥ १ ॥

एकदा उपवनं राजन् जग्मुः यदुकुमारकाः विहर्तुं साम्ब प्रद्युम्न चारुभानु गद आदयः ॥१॥

राजन्	राजन् !	यदुकुमारकाः	यादव कुमार
एकदा	एक बार	विहर्तुं	क्रीड़ा करने
साम्ब प्रद्युम्न	साम्ब, प्रद्युम्न	उपवनं जग्मुः	बगीचेमें गये
चारुभानु	चारुभानु		॥१॥
गद आदयः	गद आदि		

क्रीडित्वा सुचिरं तत्र विचिन्वन्तः पिपासिताः ।
जलं निरुदके कूपे ददृशुः सत्त्वमद्भुतम् ॥ २ ॥

क्रीडित्वा सुचिरं तत्र विचिन्वन्तः पिपासिताः जलं निरुदके कूपे ददृशुः सत्त्वं अद्भुतम् ॥२॥

तत्र सुचिरं	वहाँ बहुत देर तक	निरुदके कूपे	जलहीन कुएँमें
क्रीडित्वा	खेलकर	अद्भुतं सत्त्वं	अद्भुत प्राणी
पिपासिताः	प्यास लगने पर	ददृशुः	(उन्होंने) देखा
जलं	जल		॥२॥
विचिन्वन्तः	ढूढते हुए		

कृकलासं गिरिनिभं वीक्ष्य विस्मितमानसाः ।
तस्य चोद्धरणे यत्नं चक्रुस्ते कृपयान्विताः ॥ ३ ॥

कृकलासं गिरिनिभं वीक्ष्य विस्मित मानसाः तस्य च उद्धरणे यत्नं चक्रु ते कृपया अन्विताः ॥३॥

गिरिनिभं	पर्वतके समान	कृपया अन्विताः	कृपा पूर्वक
कृकलासं	गिरगिटको	ते तस्य उद्धरणे	वे उसे निकालनेका
वीक्ष्य विस्मित	देखकर चकित	यत्नं च चक्रुः	प्रयत्न भी करने
मानसाः	चित्त		लगे ॥३॥

चर्मजैस्तान्तवैः पाशैर्बद्ध्वा पतितमर्भकाः ।
नाशक्नुवन् समुद्धर्तुं कृष्णायाचख्युरुत्सुकाः ॥ ४ ॥

चर्मजैः तान्तवैः पाशैः बद्ध्वा पतितं अर्भकाः न अशक्नुवन् सम उद्धर्तुं कृष्णाय आचख्युः उत्सुकाः ॥४॥

चर्मजैः तान्तवैः	चमड़ेकी तांतकी	अशक्नुवन	समर्थ नहीं हुए
पाशैः	रस्सियोंसे	उत्सुकाः	(तब) उत्सुक
पतितं बद्ध्वा	उस गिरेको बाँध-		होकर
	कर	कृष्णाय	श्रीकृष्णसे
अर्भकाः	बालक (उसे)	आचख्युः	सब बतलाया
सम उद्धर्तुं	पूरा ऊपर निका-		॥४॥
	लनेमें		

तत्रागत्यारविन्दाक्षो भगवान् विश्वभावनः ।
वीक्ष्योज्जहार वामेन तं करेण स लीलया ॥ ५ ॥

तत्र आगत्य अरविन्द अक्षः भगवान् विश्वभावनः वीक्ष्य उज्जहार वामेन तं करेण स लीलया ॥५॥

अरविन्द अक्षः	कमल-नयन	लीलया तं	लीलापूर्वक उसे
विश्वभावनः	विश्वम्भर	वामेन करेण	बायें हाथसे
भगवान्	भगवानने	उज्जहार	ऊपर निकाल लिया
तत्र आगत्य	वहाँ आकर		॥५॥
वीक्ष्य स	देखकर उन्होंने		

स उत्तमश्लोककराभिमृष्टो
विहाय सद्यः कृकलासरूपम् ।
संतप्तचामीकरचारुवर्णः
स्वर्ग्यद्भुतालंकरणाम्बरस्रक् ॥ ६ ॥

स उत्तमश्लोक कर अभिमृष्टः विहाय सद्यः कृकलास रूपं संतप्त चामीकर चारुवर्णः स्वर्ग्य अद्भुत अलङ्करण अम्बर स्रक् ॥६॥

सः उत्तमश्लोक	वह पवित्र कीर्ति	चारुवर्ण	सुन्दर रंगका
कर अभिमृष्टः	(भगवान)के कर स्पर्शसे	अद्भुत	विचित्र
		अलङ्करण	आभूषण,
सद्यः कृकलास	तुरन्त गिरगिट	अम्बर स्रक्	वस्त्र-मालाधारी
रूपं विहाय	रूप त्यागकर	स्वर्ग्य	देवता हो गया
संतप्त चामीकर	तपाये स्वर्णके समान		॥६॥

पप्रच्छ विद्वानपि तन्निदानं
ननेषु विख्यापयितुं मुकुन्दः ।

पप्रच्छ विद्वान् अपि तत् निदानं जनेषु विख्यापयितुं मुकुन्दः

मुकुन्दः	मुकुन्दने	विख्यापयितुं	प्रसिद्ध करनेके लिए
तत् निदानं	उसका कारण	पप्रच्छ	पूछा—
विद्वान् अपि	जानते हुए भी		
जनेषु	लोगोंमें		

॥ श्रीभगवानुवाच ॥*

कस्त्वं महाभाग वरेण्यरूपो
देवोत्तमं त्वां गणयामि नूनम् ॥ ७ ॥

कः त्वं महाभाग वरेण्य रूपः देव उत्तमं त्वां गणयामि नूनम् ॥७॥

महाभाग	'महाभाग	नूनं त्वां	निश्चय आपको (हम)
वरेण्य रूपः	चाहने योग्य रूप-वाले	देव उत्तमं	देवश्रेष्ठ
त्वं कः	आप कौन हैं	गणयामि	मानते हैं ॥७॥

दशामिमां वा कतमेन कर्मणा
सम्प्रापितोऽस्यतदर्हः सुभद्र ।
आत्मानमाख्याहि विवित्सतां नो
यन्मन्यसे नः क्षममत्र वक्तुम् ॥ ८ ॥

दशां इमां वा कतमेन कर्मणा सम्प्रापितः अस्य अतदर्हः सुभद्र आत्मानं आख्याहि विवित्सतां नः यत् मन्यसे नः क्षमं अत्र वक्तुम् ॥८॥

सुभद्र	कल्याण रूप !	नः विवित्सतां	हम जानना चाहने वालोंसे
वा	अथवा	आत्मानं	अपना
कतमेन कर्मणा	किस कर्मसे	आख्याहि	परिचय दीजिए
इमां दशां	इस दशाको	यत् अत्र नः	यदि यहाँ हम लोगों को
सम्प्रापितः	प्राप्त कराये गये	वक्तुं क्षमं	बात करने योग्य
अतदर्हः	(तुम तो) इसके योग्य नहीं हो,	मन्यसे	मानते हों ॥८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इति स्म राजा सम्पृष्टः कृष्णेनानन्तमूर्तिना ।
माधवं प्रणिपत्याह किरीटेनार्कवर्चसा ॥ ६ ॥

इति स्म राजा सम्पृष्टः कृष्णेन अनन्त मूर्तिना माधवं प्रणिपत्य आह किरीटेन अर्कवर्चसा ॥६॥

अनन्त मूर्तिना	अनन्त स्वरूप	अर्कवर्चसा	सूर्यके समान तेजस्वी
कृष्णेन इति स्म	श्रीकृष्ण द्वारा इस प्रकार	किरीटेन	मुकुटसे
सम्पृष्टः	पूछे जाने पर	प्रणिपत्य	प्रणाम करके
राजा माधवं	राजा नृगने माधव को	आह	बोला ॥६॥

॥ नृग उवाच ॥

नृगो नाम नरेन्द्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो ।
दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम् ॥१०॥

नृगः नाम नरेन्द्रः अहं इक्ष्वाकुतनयः प्रभो दानिषु आख्याय मानेषु यदि ते कर्ण अस्पृशम् ॥१०॥

प्रभो	प्रभो !	आख्याय मानेषु	चर्चामें
अहं	मैं	यदि ते	कदाचित् आपके
इक्ष्वाकुतनयः	इक्ष्वाकुका पुत्र	कर्णं	कानोंको
नृगः नाम	नृग नामका	अस्पृशं	(मेरी चर्चाने भी) स्पर्श किया हो ॥१०॥
नरेन्द्रः	राजा हूँ,		
दानिषु	दानियोंकी		

किं नु तेऽविदितं नाथ सर्वभूतात्मसाक्षिणः ।
कालेनाव्याहतदृशो वक्ष्येऽथापि तवाज्ञया ॥११॥

किं नुते अविदितं नाथ सर्वभूत आत्म साक्षिणः कालेन अव्याहत दृशः वक्ष्ये अथ अपि तव आज्ञया ॥११॥

नाथ	नाथ	नु ते किं	भला आपसे
सर्वभूत	सब प्राणियोंके	अविदितं	अज्ञात है
आत्म साक्षिणः	अन्तःकरणके साक्षी	अथ अपि	फिर भी
कालेन	कालके द्वारा	तव आज्ञया	आपकी आज्ञासे
अव्याहत दृशः	अप्रतिरुद्ध दृष्टि	वक्ष्ये	बतलाता हूँ ॥११॥

यावत्यः सिकता भूमेर्यावत्यो दिवि तारकाः ।
यावत्यो वर्षधाराश्च तावतीरददां स्म गाः ॥१२॥

यावत्यः सिकता भूमेः यावत्य- दिवि तारकाः यावत्यः वर्षधाराः च तावतीः अददां स्म गाः ॥१२॥

यावत्यः	जितनी	च यातत्यः	तथा जितनी
भूमेः सिकता	पृथ्वीमें धूलि कण हैं,	वर्षधाराः	वर्षाकी धाराएँ हैं
		तावतीः गाः	उतनी गायें
यावत्यः	जितने	अददां	(मैंने) दान कीं
दिवि तारकाः	आकाशमें तारा हैं		॥१२॥

पयस्विनीस्तरुणीः शीलरूप-
गुणोपपन्नाः कपिला हेमशृङ्गीः ।
न्यायार्जिता रूप्यखुराः सवत्सा
दुकूलमालाभरणा ददावहम् ॥१३॥

पयस्विनी तरुणीः शील रूप गुण उपपन्नाः कपिला हेमशृङ्गीः न्याय अर्जिता रूप्यखूराः सवत्सा दुकूल माला आभरणा ददाः अहम् ॥१३॥

पयस्विनी	दूध देने वाली	शील रूप	स्वभाव, रूप,
तरुणी	युवा	गुण उपपन्ना	गुण सम्पन्ना,

कपिला	कपिला (जिसके दूधमें घी अधिक हो)
हेमशृङ्गी	सोनेसे मढ़े सींग
रूप्यखुरा	चांदीसे मढ़े खुर
न्याय अर्जिता	न्याय पूर्वक प्राप्त की गयी
सवत्सा	बछड़ेके साथ
दुकूल माला	वस्त्र, माला
आभरणा	पहिनाकर
अहं ददाः	मैंने दान कीं ॥१३॥

स्वलंकृतेभ्यो गुणशीलवद्भ्यः
सीदत्कुटुम्बेभ्य ऋतव्रतेभ्यः ।
तपःश्रुतब्रह्मवदान्यसद्भ्यः
प्रादां युवभ्यो द्विजपुङ्गवेभ्यः ॥१४॥

स्वलङ्कृतेभ्य गुण शीलवत्भ्यः सीदत् कुटुम्बेभ्यः ऋतव्रतेभ्यः तपः श्रुत ब्रह्मवदान्य सत्भ्यः प्रादां युवेभ्यः द्विज पुंगवेभ्यः ॥१४॥

स्वलङ्कृतेभ्यः	भली प्रकार आभूषित
गुण	गुण एवं
शीलवत्भ्यः	सदाचार सम्पन्न
सीदत्	जिनके
कुटुम्बेभ्यः	कुटुम्ब अर्थकष्ट पा रहे थे,
ऋतवेतेभ्यः	सत्यपरायण,
तपः श्रुत	तपस्वी, वेदपाठी,
ब्रह्मवदान्य	वेदाध्यापन करनें वाले
सत्भ्यः	सज्जन,
युवेभ्यः	युवा
द्विज पुङ्गवेभ्यः	ब्राह्मणोत्तमोंको
प्रादां	दान कीं ॥१४॥

गोभूहिरण्यायतनाश्वहस्तिनः
कन्याः सहासोस्तिलरूप्यशय्याः ।
वासांसि रत्नानि परिच्छदान् रथा-
निष्टं च यज्ञैश्चरितं च पूर्वम् ॥१५॥

गो भू हिरण्य आयतन अश्व हस्तिनः कन्याः सदासीः तिल रूप्य शय्याः वासांसि रत्नानि परिच्छदान् रथान् इष्टं च यज्ञैः चरितं च पूर्तम् ॥१५॥

गो भू हिरण्य	गायें, भूमि, सोना	परिच्छदान्	अन्य सामग्री,
आयतन	भवन,	रथान्	रथ (दान किये)
अश्व हस्तिनः	घोड़े, हाथी,	च यज्ञैः इष्टं	तथा यज्ञसे इष्ट कर्म
सदासीः कन्याः	दासियोंके साथ कन्या,	च पूर्तं	तथा पूर्त कर्म (कुआं आदि बनवाना)
तिल रूप्य	तिल, चांदी		
शय्याः	शय्या,		
वासांसि रत्नानि	वस्त्र, रत्न	चरितं	(मैंने) किये ॥१५॥

कस्यचिद् द्विजमुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने ।
सम्पृक्ताविदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥१६॥

कस्यचित् द्विजमुख्यस्य भ्रष्टा गौः मम गोधने सम्पृक्ता अविदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥१६॥

कस्यचित्	किसी	अविदुषा	(यह) न जानने वाले
द्विजमुख्यस्य	ब्राह्मण प्रमुखकी	मया सा च	मेरे द्वारा वह भी
भ्रष्टा गौः	बिछुड़ी गाय	द्विजातये दत्ता	ब्राह्मणको दे दी गयी ॥१६॥
मम गोधने	मेरी गायोंमें		
सम्पृक्ता	मिल गयी		

तां नीयमानां तत्स्वामी दृष्ट्वोवाच ममेति तम् ।
ममेति प्रतिग्राह्याह नृगो मे दत्तवानिति ॥१७॥

तां नीयमानां तत् स्वामी दृष्ट्वा उवाच मम इति तं मम इति प्रतिग्राह्य आह नृगः मे दत्तवान् इति ॥१७॥

तां नीयमानां	उसे ले जाते समय	इति आह	ऐसा कहा
तत् स्वामी	उसके स्वामीने	मे नृगः दत्वान्	'मुझे नृगने दिया है
दृष्ट्वा	देखकर	इति मम	इसलिए मेरी है
उवाच मम इति	कहा—'यह मेरी हैं' इस प्रकार		॥१७॥
तं प्रतिग्राह्य	उससे दान लेने वालेने		

विप्रौ विवदमानौ मामूचतुः स्वार्थसाधकौ ।
भवान् दातापहर्तेति तच्छ्रुत्वा मेऽभवद् भ्रमः ॥१८॥

विप्रौ विवदमानौ मां ऊचतुः स्वार्थसाधकौ भवान् दाता अपहर्ता इति तत् श्रुत्वा मे अभवत् भ्रमः ॥१८॥

स्वार्थसाधकौ	अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाले	इति अपहर्ता	(दूसरेने कहा) 'इस प्रकार (मेरी गौ) अपहरण करने वाले हैं ?
विवदमानौ	परस्पर विवाद करने वाले		
विप्रौ मां	ब्राह्मणोंने मुझसे	तत् श्रुत्वा	यह सुनकर
उचतुः	कहा—	मे भ्रमः	मुझे भ्रम
भवान्	'आप (इस गौको)	अभवत्	हो गया ॥१८॥
दाता	देने वाले हैं ?		

अनुनीतावुभौ विप्रौ धर्मकृच्छ्रगतेन वै ।
गवां लक्षं प्रकृष्टानां दास्याम्येषा प्रदीयताम् ॥१९॥

अनुनीतः उभौ विप्रौ धर्मकृच्छ्र गतेन मे गवां लक्ष प्रकृष्टानां दास्यामि एषा प्रदीयताम् ॥१९॥

उभौ विप्रौ	दोनों ब्राह्मणोंकी	गतेन मे	पड़े हुए मेंने
धर्मकृच्छ्र	धर्म संकटमें	अनुनीतः	अनुनय की

प्रकृष्टानां	अत्युत्तम	एष प्रदीयतां	इसे दे दीजिए
लक्ष गवां	एक लाख गायें		॥१९॥
दास्यामि	दूंगा		

भवन्तावनुगृह्णीतां किंकरस्याविजानतः ।
समुद्धरत मां कृच्छ्रात् पतन्तं निरयेऽशुचौ ॥२०॥

भवन्ताः अनुगृह्णीतां किंकरस्य अविजानतः समुद्धरत मां कृच्छ्रात् पतन्तं निरये अशुचौ ॥२०॥

अविजानतः	अनजानमें (अपराध करने वाले)	अनुगृह्णतां	अनुग्रह करें
		अशुचौ निरये	अपवित्र नरकमें
किंकरस्य	अपने (इस) सेवक पर	पतन्तं मां	गिरते हुए मेरा
		कृच्छ्रात्	इस संकटसे
भवन्ताः	आप दोनों	समुद्धरत	उद्धार करें ॥२०॥

नाहं प्रतीच्छे वै राजन्नित्युक्त्वा स्वाम्यपाक्रमत् ।
नान्यद् गवामप्ययुतमिच्छामीत्यपरो ययौ ॥२१॥

न अहं प्रति इच्छे वै राजन् इति उक्त्वा स्वामि अपाक्रमत् न अन्यत् गवां अपि अयुतं इच्छामि इति अपरः ययौ ॥२१॥

वै राजन्	'निश्चय राजन् !	अन्यत् गवां	'दूसरीं गायें
अहं प्रति	मैं (इसके) बदलेमें	अयुतं अपि न	दस हजार भी नहीं '(लूंगा)'
न इच्छे	कुछ नहीं चाहता		
इति उक्त्वा	ऐसा कहकर	इति अपरः ययौ	ऐसा कहकर दूसरा भी चला गया
स्वामि	(उस गौका) स्वामी		
अपाक्रमत्	चला गया		॥२१॥

एतस्मिन्नन्तरे याम्यैर्दूतैर्नीतो यमक्षयम् ।
यमेन पृष्टस्तत्राहं देवदेव जगत्पते ॥२२॥

एतस्मिन् अन्तरे याम्यैः दूतैः नीतः यमक्षयं यमेन पृष्टः तत्र अहं देवदेव जगत्पते ॥२२॥

देवदेव	देवाधिदेव !	यमक्षयं नीतः	यमलोक ले जाये जाने पर
जगत्पते	जगदीश्वर !	यमेन तत्र	यमराज द्वारा वहाँ
एतस्मिन्	इसी	अहं पृष्टः	मुझसे पूछा गया ॥२२॥
अन्तरे	बीचमें		
याम्यैः दूतैः	यमदूतों द्वारा		

पूर्वं त्वमशुभं भुङ्क्षे उताहो नृपते शुभम् ।
नान्तं दानस्य धर्मस्य पश्ये लोकस्य भास्वतः ॥२३॥

पूर्वं त्वं अशुभं भुङ्क्षे उत अहो नृपते शुभं न अन्तं दानस्य धर्मस्य पश्ये लोकस्य भास्वतः ॥२३॥

नृपते त्वं पूर्वं	'राजन् ! तुम पहिले	भास्वतः	तेजोमय
		लोकस्य	लोक दिलाने वाले
अशुभं भुङ्क्षे	पाप कर्मोंका फल भोगोगे	दानस्य धर्मस्य	(तुम्हारे) दान और धर्मका
उत अहो शुभं	अथवा तो पुण्य कर्मोंका	अन्तं न पश्ये	अन्त (मुझे) नहीं दीखता है ॥२३॥

पूर्वं देवाशुभं भुञ्ज इति प्राह पतेति सः ।
तावदद्राक्षमात्मानं कृकलासं पतन् प्रभो ॥२४॥

पूर्वं देव अशुभं भुञ्ज इति प्राह पत इति सः तावत् अद्राक्षं आत्मानं कृकलासं पतन् प्रभो ॥२४॥

प्रभो	प्रभो !		पहिले
देव पूर्वं	(मैंने कहा) 'देव	अशुभं भुञ्ज	पाप कर्म भोगूंगा

इति सः प्राह	ऐसा कहने पर वे बोले—	आत्मानं	(मैंने) अपना शरीर
इदि पत	'ऐसा है तो गिरो !'	छुकलासं	गिरगिटका
तावत् पतन्	उसी समय गिरते हुए	अद्राक्षं	देखा ॥२४॥

ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव ।
स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्संदर्शनार्थिनः ॥२५॥

ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव स्मृतिः न अद्य अपि विध्वस्ता भवत् सन्दर्शन अर्थिनः ॥२५॥

केशव	केशव !	अर्थिनः	चाहने वालेकी
ब्रह्मण्यस्य	ब्राह्मण भक्त,	अद्य अपि	अब तक भी
वदान्यस्य	दानी,	स्मृतिः	स्मृति
तव दासस्य	आपके दास	विध्वस्तां न	नष्ट नहीं हुई है ॥२५॥
भवत् सन्दर्शन	आपका दर्शन		

स त्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा
योगेश्वरैः श्रुतिदृशामलहृद्विभाव्यः ।
साक्षादधोक्षज उरुव्यसनान्धबुद्धेः
स्यान्मेऽनुदृश्य इह यस्य भवापवर्गः ॥२६॥

स त्वं कथं मम विभो अक्षिपथः परात्मा योगेश्वरैः श्रुतिदृश अमल हृदि विभाव्यः साक्षात् अधोक्षज उरु व्यसन अन्धबुद्धेः स्यात् मे अनुदृश्य इह यस्य भव अपवर्गः ॥२६॥

श्रुतिदृश अमल	श्रुतिदर्शी निर्मल	स त्वं साक्षात्	वे आप साक्षात्
योगेश्वरैः	योगेश्वरों द्वारा	परात्मा	परमात्मा
हृदि विभाव्यः	जिनकी हृदयमें भावना की जाती है	इह यस्य	इस लोकमें जिसकी

भव अपवर्गः	संसारसे मुक्ति होने वाली होती है	अन्धबुद्धेः	अन्धी बुद्धि वाले
		मे अक्षिपथः	मेरे नेत्रोंके सामने
अनुदृश्य	उसे दर्शन देने वाले	कथं स्यात्	कैसे आ गये ॥२६॥
उरु व्यसन	अनेक व्यसनोंसे		

देवदेव जगन्नाथ गोविन्द पुरुषोत्तम ।
नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोकाच्युताव्यय ॥२७॥

देवदेव जगन्नाथ गोविन्द पुरुषोत्तम नारायण हृषिकेश पुण्यश्लोक अच्युत अव्यय ॥२७॥

देवदेव	देवदेवेश्वर !	पुण्यश्लोक	पवित्र कीर्ति !
जगन्नाथ	जगन्नाथ !	अव्यय	अविनाशी
गोविन्द	गोविन्द !	अच्युत	अच्युत ! ॥२७॥
पुरुषोत्तम	पुरुषोत्तम !		
नारायण	नारायण !		
हृषीकेश	हृषीकेश !		

अनुजानीहि मां कृष्ण यान्तं देवगतिं प्रभो ।
यत्र क्वापि सतश्चेतो भूयान्मे त्वत्पदास्पदम् ॥२८॥

अनुजानी हि मां कृष्ण यान्तं देवगतिं विभो यत्र क्व अपि सतः चेतः भूयात् मे त्वत् पद आस्पदम् ॥२८॥

विभो कृष्ण	प्रभो ! कृष्ण !	चेतः त्वत् पद	(मेरा) चित्त आपके चरणोंमें
देवगतिं यान्तं	देवलोक जा रहा हूँ	आस्पदं भूयात्	लगा रहे ॥२८॥
मां अनुजानी	मुझे अनुमति		
हि	दीजिए		
यत्र क्व	चाहे जहां कहीं		
अपि सतः	भी रहना हो		

नमस्ते सर्वभावाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
कृष्णाय वासुदेवाय योगानां पतये नमः ॥२९॥

नमः ते सर्वभावाय ब्रह्मणे अनन्तशक्तये कृष्णाय वासुदेवाय योगानां पतये नमः ॥२९॥

सर्वभावाय	सब प्राणि-पदार्थ रूप	**कृष्णाय**	श्रीकृष्ण,
		वासुदेवाय	वासुदेव
अनन्तशक्तये	अनन्त शक्ति	**योगानां पतये**	योगेश्वरको
ब्रह्मणे ते नमः	आप परम ब्रह्मको नमस्कार	**नमः**	नमस्कार ॥२९॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

इत्युक्त्वा तं परिक्रम्य पादौ स्पृष्ट्वा स्वमौलिना ।
अनुज्ञातो विमानाग्र्यमारुहत् पश्यतां नृणाम् ॥३०॥

इति उक्त्वा तं परिक्रम्य पादौ स्पृष्ट्वा स्वमौलिना अनुज्ञातः विमान अग्र्यं आरुहत् पश्यतां नृणाम् ॥३०॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर	**अनुज्ञातः**	अनुमति पाकर
तं परिक्रम्य	उनकी परिक्रमा करके	**नृणां पश्यतां**	लोगोंके देखते हुए
		विमान अग्र्यं	श्रेष्ठ विमान पर
स्वमौलिना	अपने मस्तकसे	**आरुहत्**	चढ़ गया ॥३०॥
पादौ स्पृष्ट्वा	(उनके) चरण-स्पर्श करके		

कृष्णः परिजनं प्राह भगवान् देवकीसुतः ।
ब्रह्मण्यदेवो धर्मात्मा राजन्याननुशिक्षयन् ॥३१॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

कृष्णः परिजनं प्राह भगवान् देवकीसुतः ब्रह्मण्यदेवः धर्मात्मा राजन्यान् अनुशिक्षयन् ॥३१॥

राजन्यान्	राजकुमारोंको	**देवकी सुतः**	देवकीनन्दन
अनुशिक्षयन्	शिक्षा देते हुए	**भगवान् कृष्णः**	भगवान श्रीकृष्णने
ब्रह्मण्य देवः	ब्राह्मणोंको देवता माननेवाले	**परिजनं प्राह**	अपने कुटुम्बियोंसे कहा ॥३१॥
धर्मात्मा	धर्मात्मा		

श्री भगवानुवाच—*

दुर्जरं बत ब्रह्मस्वं भुक्तमग्नेर्मनागपि ।
तेजीयसोऽपि किमुत राज्ञामीश्वरमानिनाम् ॥३२॥

दुर्जरं बत ब्रह्मस्वं भुक्तं अग्नेः मनाक् अपि तेजीयसः अपि किं उत राज्ञां ईश्वर मानिनाम् ॥३२॥

बत ब्रह्मस्वं	अहो, ब्राह्मणका धन	**दुर्जरं**	दुष्पाच्य है
अग्नेः अपि	अग्निके समान भी	**उत ईश्वर**	फिर अपनेको समर्थ
तेजीयसः	तेजस्वीके लिए	**मानिनां**	माननेवाले
मनाक् अपि	तनिक-सा भी	**राज्ञां किं**	राजाओंकी क्या
भुक्तं	खानेपर		चर्चा ॥३२॥

नाहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया ।
ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तं नास्य प्रतिविधिर्भुवि ॥३३॥

न अहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तं न अस्य प्रतिविधि भुवि ॥३३॥

यस्य प्रतिक्रिया	जिसका प्रतिकार (सम्भव) है	**हालाहलं**	उस हलाहलको
		अहं विषं न मन्ये	मैं विष नहीं मानता

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

हि ब्रह्मस्वं	क्योंकि ब्राह्मणका धन	प्रतिविधिः	प्रतिकार
विषं प्रोक्तं	विष कहा गया है	भुवि न	पृथ्वीपर नहीं है ॥३३॥
अस्य	इसका		

हिनस्ति विषमत्तारं वह्निरद्भिः प्रशाम्यति ।
कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ॥३४॥

हिनस्ति विषं अत्तारं वह्निः अद्भिः प्रशाम्यति कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्व अरणि पावकः ॥३४॥

विषं अत्तारं	विष (केवल) खाने वालेको	ब्रह्मस्व अरणि	ब्राह्मणके धनरूपी अरणिसे
हिनस्ति	मारता है	पावकः समूलं	(उत्पन्न) अग्नि जड़के साथ
वह्निः अद्भिः	अग्नि (लगी हो तो) जलसे	कुलं दहति	पूरे कुलको जला देता है ॥३४॥
प्रशाम्यति	शान्त हो जाता है, किन्तु		

ब्रह्मस्वं दुरनुज्ञातं भुक्तं हन्ति त्रिपूरुषम् ।
प्रसह्य तु बलाद् भुक्तं दश पूर्वान् दशापरान् ॥३५॥

ब्रह्मस्वं दुः अनुज्ञातं भुक्तं हन्ति त्रिपूरुषं प्रसह्य तु बलात् भुङ्क्तं दश पुर्वान् दश अपरान् ॥३५॥

दुः अनुज्ञातं	दुष्टतापूर्वक (छलसे) अनुमति लेकर	भुङ्क्तं तु	भोगनेपर तो
ब्रह्मस्वं भुक्तं	ब्राह्मणका धन खानेपर	दश पूर्वान्	दस पीढ़ी पहिलेकी
त्रिपूरुषं	तीन पीढ़ीको और	दश अपरान्	दस पीढ़ी पीछेकी
प्रसह्य बलात्	हठपूर्वक बलात्कारसे	हन्ति	नष्ट करता है ॥३५॥

राजानो राजलक्ष्म्यान्धा नात्मपातं विचक्षते ।
निरयं येऽभिमन्यन्ते ब्रह्मस्वं साधु बालिशाः ॥३६॥

राजानः राजलक्ष्मि अन्धा न आत्मपातं विचक्षते निरयं ये अभिमन्यन्ते ब्रह्मस्वं साधु बालिशाः ॥३६॥

राजलक्ष्मि	राजलक्ष्मीसे	**आत्मपातं**	अपना गिरना
अन्धा	अन्धे हुए	**न विचक्षते**	नहीं देखते
बालिशाः	मूर्ख	**ये ब्रह्मस्वं**	जो ब्राह्मणके धनको
राजानः	राजा लोग	**साधु**	अच्छा
निरयं	नरकमें	**अभिमन्यन्ते**	समझते हैं ॥३६॥

गृह्णन्ति यावतः पांसून् क्रन्दतामश्रुबिन्दवः ।
विप्राणां हृतवृत्तीनां वदान्यानां कुटुम्बिनाम् ॥३७॥

गृह्णन्ति यावतः पांसून् क्रन्दतां अश्रुबिन्दवः विप्राणां हृतवृतीनां वदान्यानां कुटुम्बिनां ॥३७॥

वदान्यानां	उदार,	**विप्राणां**	ब्राह्मणोंकी
कुटुम्बिनां	कुटुम्बवाले	**अश्रुबिन्दवः**	आंसुओंकी बूँदें
हृतवृत्तीनां	आजीविका छीने गये	**यावतः पांसून्**	जितने धूलिकण
क्रन्दतां	बिलखते	**गृह्णन्ति**	पकड़ (भिगा) लेती हैं ॥३७॥

राजानो राजकुल्याश्च तावतोऽब्दान्निरंकुशाः ।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते ब्रह्मदायापहारिणः ॥३८॥

राजानः राजकुल्याः च तावतः अब्दान् निरंकुशाः कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते ब्रह्मदाय अपहारिणः ॥३८॥

तावतः च	उतने ही वर्ष	**राजानः च**	राजा तथा
अब्दान्	तक	**राजकुल्या**	राजकुलके लोग
ब्रह्मदाय	ब्राह्मणके स्वत्वका	**कुम्भीपाकेषु**	कुम्भीपाक नरकमें
अपहारिणः	अपहरण करनेवाले	**पच्यन्ते**	पकाये जाते हैं ॥३८॥
निरंकुशाः	उच्छृंखल		

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्टायां जायते कृमिः ॥३९॥

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत् च यः षष्टि वर्षसहस्राणि विष्टायां जायते कृमिः ॥३९॥

स्वदत्तां	अपनी दी हुई	**षष्टि**	साठ
वा परदत्तां	अथवा दूसरेकी दी हुई	**वर्षसहस्राणि**	सहस्र वर्ष तक
ब्रह्मवृत्तिं	ब्राह्मणकी आजी-विकाका	**विष्टायांकृमिः**	विष्ठामें क्रीड़ा होकर
यः च हरेत्	जो भी हरण करता है (वह)	**जायते**	उत्पन्न होता है ॥३९॥

न मे ब्रह्मधनं भूयाद् यद् गृद्ध्वाल्पायुषो नराः ।
पराजिताश्च्युताराज्याद् भवन्त्युद्वेजिनोऽहयः ॥४०॥

न मे ब्रह्मधनं भूयात् यत् गृद्ध्वा अल्पायुषः नराः पराजिताः च्युता राज्यात् भवन्ति उद्वेजिनः अहयः ॥४०॥

मे ब्रह्मधनं	मुझे ब्राह्मणका धन	**राज्यात् च्युता**	राज्य भ्रष्ट एवं
न भूयात्	न प्राप्त हो,	**उद्वेजिनः**	(दूसरोंको) उद्विग्न करनेवाले
यत् गृद्ध्वा	जिसका लोभ करके	**अहयः भवन्ति**	सर्प होते हैं ॥४०॥
नराः अल्पायुषः	मनुष्य अल्पायु,		
पराजिताः	पराजित,		

विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः ।
घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः ॥४१॥

विप्रं कृत आगसं अपि न एव द्रुह्यत मामकाः घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमः कुरुत नित्यशः ॥४१॥

मामकाः	मेरे सुहृदो !	**अपि**	भी
कृत आगसं	अपराध करनेपर	**विप्रं**	ब्राह्मणसे

न एव दुह्यत	शत्रुता नहीं ही करना,	नित्यशः	को भी सदा
घ्नन्तं वा	मारते या	नमः कुरुत	नमस्कार ही करो ॥४१॥
बहु शपन्तं	बहुत गाली देते		

यथाहं प्रणमे विप्राननुकालं समाहितः ।
तथा नमत यूयं च योऽन्यथा मे स दण्डभाक् ॥४२॥

यथा अहं प्रणमे विप्रान् अनुकालं सम आहितः तथा नमत यूयं च यः अन्यथा मे स दण्डभाक् ॥४२॥

यथा अहं	जैसे मैं	नमत यः	प्रणाम करो, जो
अनुकालं	प्रत्येक समय	अन्यथा	इसके विपरीत करेगा
सम आहितः	भली प्रकार एकाग्र होकर	स मे दण्डभाक्	वह मुझसे दण्ड पाने योग्य होगा ॥४२॥
विप्रान् प्रणमे	ब्राह्मणोंको प्रणाम करता हूँ		
तथा यूयं च	वैसे ही तुम लोग भी		

ब्राह्मणार्थो ह्यपहृतो हर्तारं पातयत्यधः ।
अजानन्तमपि ह्येनं नृगं ब्राह्मणगौरिव ॥४३॥

ब्राह्मण अर्थः हि उपहृतः हर्तारं पातयति अधः अजानन्तं अपि हि एनं नृगं ब्राह्मण गौः इव ॥४३॥

ब्राह्मण अर्थः	ब्राह्मणका धन	अजानन्तं अपि	न जानते हुए भी
हि उपहृतः	क्योंकि छीने जाने पर	एनं नृगं	इस नृगको
हर्तारं अधः	छीनने वालेको	ब्राह्मण	ब्राह्मणकी
पातयति हि	नीचे गिराता ही है	गौ इव	गायके समान ॥४३॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

एवं विश्राव्य भगवान् मुकुन्दो द्वारकौकसः ।
पावनः सर्वलोकानां विवेश निजमन्दिरम् ॥४४॥

एवं विश्राव्य भगवान् मुकुन्दः द्वारकौकसः पावनः सर्वलोकानां विवेश निज मन्दिरम् ॥४४॥

सर्वलोकानां	सब लोकोंको	एवं विश्राव्य	इस प्रकार उपदेश सुनाकर
पावनः	पवित्र करने वाले		
भगवान् मुकुन्दः	भगवान मुकुन्द	निज मन्दिरं	अपने भवन
द्वारकौकसः	द्वारिकावासियोंको	विवेश	चले गये ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे नृगोपाख्यानं नाम चतुष्षष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अथ पंचषष्टितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान् रथमास्थितः ।
सुहृद्दिदृक्षुरुत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥

बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान् रथं आस्थितः सुहृत् दिदृक्षुः उत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥१॥

कुरुश्रेष्ठ	कुरुश्रेष्ठ !	**उत्कण्ठः**	उत्सुक होकर
भगवान्	भगवान	**नन्दगोकुलं**	नन्दजीके गोकुल
बलभद्रः	बलराम	**रथं आस्थितः**	रथ पर बैठकर
सुहृत् दिदृक्षुः	सुहृदोंको देखनेके लिए	**प्रययौ**	गये ॥१॥

परिष्वक्तश्चिरोत्कण्ठैर्गोपैर्गोपीभिरेव च ।
रामोऽभिवाद्य पितरावाशीर्भिरभिनन्दितः ॥ २ ॥

परिष्वक्तः चिर उत्कण्ठैः गोपैः गोपीभिः एव च रामः अभिवाद्य पितराः आशीः भिः अभिनन्दितः ॥२॥

चिर उत्कण्ठैः	बहुत समयसे उत्सुक	**अभिवाद्य**	प्रणाम किया
गोपैः च	गोपों तथा	**आशीः भिः**	(उनसे) आशीर्वाद द्वारा
गोपीभिः एव	गोपियों द्वारा भी	**अभिनन्दितः**	अभिनन्दित हुए ॥२॥
परिष्वक्तः	आलिंगत हुए		
रामः पितरा:	बलरामजीने माता-पिताको		

चिरं नः पाहि दाशार्ह सानुजो जगदीश्वरः ।
इत्यारोप्याङ्कमालिङ्ग्य नेत्रैः सिषिचतुर्जलैः ॥ ३ ॥

चिरं नः पाहि दाशार्ह सानुजः जगदीश्वरः इति आरोप्य अङ्कम् आलिङ्ग्य नेत्रैः सिषिचतुः जलैः ॥३॥

दाशार्ह	दाशार्ह !	इति	इस प्रकार
जगदीश्वरः	जगदीश्वर !	आरोप्य अङ्कम्	करकर गोदमें बैठाकर
सानुजः नः	छोटे भाईके साथ हमारी	आलिंग्य	आलिंगन करके
चिरं पाहि	चिर काल तक रक्षा करो'	नेत्रैः जलैः सिषिचतुः	नेत्राश्रुओंसे भिगोने लगे ॥३॥

गोपवृद्धांश्च विधिवद् यविष्ठैरभिवन्दितः ।
यथावयो यथासख्यं यथासम्बन्धमात्मनः ॥ ४ ॥

गोपवृद्धान् च विधिवत् यविष्ठैः अभिवन्दितः यथावयः यथासख्यं यथासम्बन्धम् आत्मनः ॥४॥

गोपवृद्धान्	बड़े गोपोंसे	विधिवत	विधि पूर्वक
च यविष्ठैः	तथा छोटोंसे	अभिवन्दितः	प्रणमित हुए ॥४॥
यथावयः	आयुके अनुसार		
यथा सख्यं	मित्रताके अनुसार		
आत्मनः	अपने		
यथा सम्बन्धं	सम्बन्धके अनुसार		

समुपेत्याथ गोपालान् हास्यहस्तग्रहादिभिः ।
विश्रान्तं सुखमासीनं पप्रच्छुः पर्युपागताः ॥ ५ ॥

सम उपेत्य अथ गोपालान् हास्य हस्तग्रह आदिभिः विश्रान्तं सुखं आसीनं पप्रच्छुः परि उपागताः ॥५॥

अथ गोपालान्	फिर गोपकुमारोंके
सम उपेत्य	समीप जाकर
हास्य हस्तग्रह	हँसी, हाथ पकड़ना
आदिभिः	आदि द्वारा (उनका सत्कार किया)
विश्रन्तं	विश्राम कर लेने पर
सुखं आसीनं	सुख पूर्वक बैठ जाने पर
परि उपागताः	चारो ओरसे आये
पप्रच्छुः	(सखाओंने) पूछा ॥५॥

पृष्टाश्चानामयं स्वेषु प्रेमगद्गदया गिरा ।
कृष्णे कमलपत्राक्षे संन्यस्ताखिलराधसः ॥ ६ ॥

पृष्टः च अनामयं स्वेषु प्रेम गद् गदया गिरा कृष्णे कमलपत्र अक्षे सन्यस्त अखिल राधसः ॥६॥

प्रेम	प्रेम
गद् गदया गिरा	गद्गद् वाणीसे
स्वेषु अनामयं	अपनोंका स्वास्थ्य
पृष्टाः	प्रश्न करके
च कमल पत्र	तथा कमल-दल
अक्षे	लोचन
कृष्णे	श्रीकृष्णके लिए
अखिल राधसः	सम्पूर्ण भोग
सन्यस्त	त्यागे हुए (उन लोगोंने) ॥६॥

कच्चिन्नो बान्धवा राम सर्वे कुशलमासते ।
कच्चित् स्मरथ नो राम यूयं दारसुतान्विताः ॥ ७ ॥

कच्चित् नः बान्धवा रामः सर्वे कुशलं आसते कच्चित् स्मरथ नः राम यूयं दार सुत अन्विताः ॥७॥

रामः कच्चित्	(पूछा)— 'बलराम जी ! क्या
नः बान्धवाः	हमारे बन्धु-बान्धव
सर्वे कुशलं	सब कुशल
आसते	हैं ?

राम यूयं	बलरामजी आप लोग	कच्चित् नः स्मरथ	क्या हम लोगोंका स्मरण करते हो ॥७॥
दार सुत अन्विताः	(अब) स्त्री-पुत्र वाले होकर		

दिष्ट्या कंसो हतः पापो दिष्ट्या मुक्ताः सुहृज्जनाः ।
निहत्य निर्जित्य रिपून् दिष्ट्यादुर्गं समाश्रिताः ॥ ८ ॥

दिष्ट्या कंसः हतः पापः दिष्ट्या मुक्ताः सुहृत् जनाः निहत्य निर्जित्य रिपून् दिष्ट्या दुर्गं सम आश्रिताः ॥८॥

दिष्ट्या	सौभाग्यसे	रिपून् निहत्य	शत्रुओंको मारकर
कंसः हतः	कंस मारा गया	निर्जित्य	या जीतकर
दिष्ट्या	सौभाग्य वश	दिष्ट्या दुर्गं	सौभाग्यवश दुर्गम स्थलमें
सुहृत् जनाः	सुहृत् लोग	सम आश्रिताः	भली प्रकार रहने लगे ॥८॥
मुक्तः	(बन्धनसे) छूटे और		

गोप्यो हसन्त्यः पप्रच्छू रामसंदर्शनादृताः ।
कच्चिदास्ते सुखं कृष्णः पुरस्त्रीजनवल्लभः ॥ ९ ॥

गोप्यः हसन्त्यः पप्रच्छू राम सन्दर्शन आदृताः कच्चित् आस्ते सुखं कृष्णः पुरस्त्रीजन वल्लभः ॥९॥

हसन्त्यः	हंसजी हुई	वल्लभः कृष्णः	प्रियतम श्रीकृष्ण
गोप्यः पप्रच्छूः	गोपियोंने पूछा	कच्चित्	क्या
राम	'बलरामजी !	सुखं आस्ते	सुखपूर्वक हैं ॥९॥
पुरस्त्रीजन	नगरकी नारियोंके		

कच्चित् स्मरति वा बन्धून् पितरं मातरं च सः ।
अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति ।
अपि वा स्मरतेऽस्माकमनुसेवां महाभुजः ॥१०॥

कच्चित् स्मरति वा बन्धून् पितरं मातरं च सः अपि असौ मातरं द्रष्टुं सकृत् अपि आगमिष्यति अपि वा स्मरते अस्माकं अनु सेवां महाभुजः ॥१०॥

कच्चित् सः	क्या वे
मातरं पितरं	माता-पिता
वा बन्धून्	या सखाओंको
स्मरति	स्मरण करते है ?
सकृत् अपि	एक बार भी
मातरं द्रष्टुं	माताका दर्शन करने
असौ	ये
आगमिष्यति	आवेंगे ?
महाभुजः	वे विशाल बाहु
अस्माकं	हम लोगोंकी
अनु सेवां	बराबर की गयी सेवाओंको
अपि वा स्मरते	क्या कभी स्मरण करते हैं ? ॥१०॥

मातरं पितरं भ्रातॄन् पतीन् पुत्रान् स्वसॄरपि ।
यदर्थे जहिम दाशार्ह दुस्त्यजान् स्वजनान् प्रभो ॥११॥

मातरं पितरं भ्रातॄन् पतीन् पुत्रान् स्वसॄः अपि यत् अर्थे जहिम दाशार्ह दुस्त्यजान् स्वजनान् प्रभो ॥११॥

प्रभो दाशार्ह	प्रभो ! दाशार्ह !
यत् अर्थे	जिनके लिए
दुस्त्यजान्	दुस्त्याज्य
स्वजनान्	स्वजन
मातरं पितरं	माता-पिता
भ्रातॄन् पतीन्	भाई, पति,
पुत्रान्	पुत्र,
स्वसॄः अपि	बहिनको भी
जहिम	हमने त्याग दिया ॥११॥

ता नः सद्यः परित्यज्य गतः संछिन्नसौहृदः ।
कथं नु तादृशं स्त्रीभिर्नं श्रद्धीयेत भाषितम् ॥१२॥

ता नः सद्यः परित्यज्य गतः संछिन्न सौहृदः कथं नु तादृशं स्त्रीभिः श्रद्धीयेत भषितम् ॥१२॥

संछिन्न सौहृदः	स्नेह बन्धनको काटकर
ता नः सद्यः	इन हमको तत्काल
परित्यज्य	त्याग करके
गतः	चले गये
तादृशं	इस प्रकारके
भाषितं	(उनके) वचनों पर
नु कथं स्त्रीभिः	भला कैसे स्त्रियों द्वारा
श्रद्धीयेत	विश्वास किया जाता होगा ॥१२॥

कथं नु गृह्णन्त्यनवस्थितात्मनो
वचः कृतघ्नस्य बुधाः पुरस्त्रियः ।
गृह्णन्ति वै चित्रकथस्य सुन्दर-
स्मितावलोकोच्छ्वसितस्मरातुराः ॥१३॥

कथं नु गृह्णन्ति अनवस्थित आत्मनः वचः कृतघ्नस्य बुधाः पुरस्त्रियः गृह्णन्ति वै चित्रकथस्य सुन्दर स्मित अवलोक उच्छ्वसित स्मर आतुराः ॥१३॥

अनवस्थित	अस्थिर
आत्मनः	चित्त
कृतघ्नस्य	(उन) कृतघ्नकी
वचः बुधाः	बातको बुद्धिमती
पुरस्त्रियः	नगरकी नारियाँ
नु	भला
कथं गृह्णन्ति	कैसे मानती होंगीं
वै चित्रकथस्य	निश्चय विचित्र बातें करने वाले
सुन्दर स्मित	(उन) सुन्दरके मुस्कान युक्त
अवलोक	देखनेसे
उच्छ्वसित स्मर	बढ़े कामवेगसे
आतुराः	व्याकुल होकर
गृह्णन्ति	मानती होंगी ॥१३॥

किं नस्तत्कथया गोप्यः कथाः कथयतापराः ।
यात्यस्माभिर्विना कालो यदि तस्य तथैव नः ॥१४॥

किं नः तत् कथया गोप्यः कथाः कथयत अपराः याति अस्माभिः विना कालः यदि तस्य तथा एव नः ॥१४॥

गोप्यः	अरी गोपियो !	तस्य याति	उनका बीतता है
तत् कथया	उनकी चर्चासे		तो
नः किं	हमें क्या (लाभ)	तथा एव	वैसे ही
अपराः कथाः	(कोई) दूसरी चर्चा	नः	हमारा भी (बीत
कथयत	कहो,		ही रहा है)'
यदि अस्माभिः	यदि हमलोगोंके		॥१४॥
विना कालः	बिना समय		

इति प्रहसितं शौरेर्जल्पितं चारु वीक्षितम् ।
गतिं प्रेमपरिष्वङ्गं स्मरन्त्यो रुरुदुः स्त्रियः ॥१५॥

इति प्रहसितं शौरेः जल्पितं चारु वीक्षितं गतिं प्रेम परिष्वङ्गम् स्मरन्त्यः रुरुदुः स्त्रियः ॥१५॥

इति शौरेः	इस प्रकार (कहकर) श्रीकृष्णकी	गतिं	चाल,
		प्रेम परिष्वङ्गम्	प्रेमालिंगनको
प्रहसितं	हंसी,	स्मरन्त्यः	स्मरण करती हुई
जल्पितं	बातचीत,	स्त्रियः रुरुदुः	स्त्रियां रोने लगीं
चारु वीक्षितं	सुन्दर अवलोकन,		॥१५॥

संकर्षणस्ताः कृष्णस्य संदेशैर्हृदयंगमैः ।
सान्त्वयामास भगवान् नानानुनयकोविदः ॥१६॥

सङ्कर्षणः ताः कृष्णस्य सन्देशैः हृदयङ्गमैः सान्त्वयामास भगवान् नाना अनुनय कोविदः ॥१६॥

नाना	अनेक प्रकारसे	कृष्णस्य सन्देशैः	श्रीकृष्णके सन्देशों से
अनुनय	अनुनय	ताः	उनको
कोविदः	विनयमें निपुण	सान्त्वयामास	सान्त्वना दी
भगवान्	भगवान		॥१६॥
सङ्कर्षणः	बलरामने		
हृदयङ्गमैः	मर्मस्पर्शी		

द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च ।
रामः क्षपासु भगवान् गोपीनां रतिमावहन् ॥१७॥

द्वौ मासौ तत्र च अवात्सीत् मधुं माधवं एव च रामः क्षपासु भगवान् गोपीनां रतिं अवहन् ॥१७॥

भगवान् रामः	भगवान् बलराम	तत्र द्वौ मासौ	वहां दो महीने
गोपीनां	गोपियोंका	मधुं च माधवं	चैत्र और बैशाख
क्षपासु	रात्रियोंमें	एव च	में भी
रतिं अवहन्	प्रेमवर्धन करते हुए	अवात्सीत्	बसे रहे ॥१७॥

पूर्णचन्द्रकलामृष्टे कौमुदीगन्धवायुना ।
यमुनोपवने रेमे सेविते स्त्रीगणैर्वृतः ॥१८॥

पूर्ण चन्द्रकला मृष्टे कौमुदी गन्धवायुना यमुना उपवने रेमे सेविते स्त्रीगणैः वृतः ॥१८॥

पूर्ण चन्द्रकला	पूर्णिमाकी चन्द्रकला से	स्त्रीगणैः वृतः सेविते रेमे	स्त्रियोंसे घिरे (उनसे)सेवित विहार करते रहे ॥१८॥
मृष्टे कौमुदी	उज्जवल ज्योत्स्ना में		
गन्धवायुना	सुगन्धित वायु वाले		
यमुना उपवने	यमुना तटके उपवनमें		

वरुणप्रेषिता देवी वारुणी वृक्षकोटरात् ।
पतन्ती तद् वनं सर्वं स्वगन्धेनाध्यवासयत् ॥१९॥

वरुण प्रेषिता देवी वारुणी वृक्षकोटरात् पतन्ती तत् वनं सर्वं स्वगन्धेन अध्यवासयत् ॥१९॥

वरुण प्रेषिता	वरुण देवकी भेजी	तत् सर्वं वनं	उस समूचे वनको
देवी वारुणी	देवी वारुणीने	स्वगन्धेन	अपनी गन्धसे
वृक्षकोटरात्	वृक्षके खोखलेसे	अध्यवासयत्	सुगन्धित कर दिया
पतन्ती	गिरते हुए		॥१९॥

तं गन्धं मधुधाराया वायुनोपहृतं बलः ।
आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ ॥२०॥

तं गन्धं मधुधारायाः वायुना उपहृतं बलः आघ्राय उपगतः तत्र ललनाभिः समं पपौ ॥२०॥

वायुना उपहृतं	वायु द्वारा लायी गयी	बलः	बलरामजी
मधुधारायाः	मधुधारकी	ललनाभिः समं	सुन्दरियोंके साथ
तं गन्धं आघ्राय	उस गन्धको सूँघकर	तत्र उपगतः	वहां जाकर
		पपौ	पिया ॥२०॥

उपगीयमानचरितो वनिताभिर्हलायुधः ।
वनेषु व्यचरत् क्षीबो मदविह्वललोचनः ॥२१॥

उपगीयमान चरितः वनिताभिः हल आयुधः वनेषु व्यचरत् क्षीबः मदविह्वल लोचनः ॥२१॥

वनिताभिः	स्त्रियों द्वारा	लोचनः क्षीबः	नेत्र, मतवालेसे
चरितः	सुयश	हल आयुधः	श्रीहलधर
उपगीयमान	गाये जाते हुए	वनेषु व्यचरत्	वनोंमें घूमने लगे
मदविह्वल	मदसे चञ्चल		॥२१॥

स्रग्व्येककुण्डलो मत्तो वैजयन्त्या च मालया ।
बिभ्रत् स्मितमुखाम्भोजं स्वेदप्रालेयभूषितम् ॥२२॥

स्रक् एक कुण्डलः मत्तः वैजयन्त्या च मालया बिभ्रत् स्मित मुखाम्भोजं स्वेद प्रालेय भूषितम् ॥२१॥

स्रक्	माला	स्वेद प्रालेय	स्वेदरूप तुषार कणों से
एक कुण्डलः	एक कुण्डल	भूषितं	भूषित
च वैजयन्त्या	तथा वैजयन्ती	स्मितः	मुस्कराहट युक्त
मालया	माला	मुखाम्भोजम्	कमल-मुख वाले ॥२२॥
बिभ्रत् मत्तः	धारण किये आनन्दोत्मत्त		

स आजुहाव यमुनां जलक्रीडार्थमीश्वरः ।
निजं वाक्यमनादृत्य मत्त इत्यापगां बलः ।
अनागतां हलाग्रेण कुपितो विचकर्ष ह ॥२३॥

स आजुहाव यमुनां जलक्रीडा अर्थं ईश्वरः निजं वाक्यं अन आदृत्य मत्त इति आपगां बलः अनागतां हल अग्रेण कुपितः विचकर्ष ह ॥२३॥

स ईश्वरः	उन सर्वसमर्थने	अनागतां	न आने वाली
जलक्रीडा अर्थं	जल क्रीड़ाके लिए	आपगां	नदीको
यमुनां	यमुनाको	कुपितः ह	क्रोधित होकर
आजुहाव	पुकारा	बलः	बलरामजीने
मत्त इति	ये मतवाले हैं' ऐसा मानकर	हल अग्रेण	हलकी नोंकसे
		विचकर्ष	खींचा ॥२३॥
निजं वाक्यं	अपनी बातका		
अन आदृत्य	अनादर करके		

पापे त्वं मामवज्ञाय यन्नायासि मयाऽऽहुता ।
नेष्ये त्वां लाङ्गलाग्रेण शतधा कामचारिणीम् ॥२४॥

पापे त्वं मां अवज्ञाय यत् न आयासि मया आहुता नेष्ये त्वां लाङ्गल अग्रेण शतधा कामचारिणीम् ॥२४॥

पापे	(कहने लगे) 'पापिष्ठे !
त्वं मां अवज्ञाय	तू मेरी अवहेलना करके
यत् मया	जो मेरे
आहुता	पुकारने पर
न आयासि	नहीं आ रही है
कामचारिणीं	(अतः) स्वेच्छाचारिणी
त्वां लाङ्गल अग्रेण	तुझे हलकी नोंकसे
शतधा नेष्ये	सैकड़ों टुकड़े कर दूंगा' ॥२४॥

एवं निर्भर्त्सिता भीता यमुना यदुनन्दनम् ।
उवाच चकिता वाचं पतिता पादयोर्नृप ॥२५॥

एवं निर्भर्त्सिता भीता यमुना यदुनन्दनं उवाच चकिता वाचं पतिता पादयोः नृप ॥२५॥

नृप	राजन् !
एवं	इस प्रकार
निर्भर्त्सिता	डांटी जाने पर
भीता चकिता	डरी हुई और आश्चर्यमें पड़ी
यमुना	यमुना
पादयोः पतिता	चरणों पर गिरकर
यदुनन्दनं	यदुनन्दन बलरामजीसे
उवाच	बोली ॥२५॥

राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम् ।
यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पते ॥२६॥

राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमं यस्य एक अंशेन विधृता जगती जगतः पते ॥२६॥

जगतः पते	जगत्पते !
राम	बलरामजी !
महाबाहो राम	विशाल भुजा बलराम !
यस्य एक अंशेन	जिन्होंने अपने एक अंशसे
जगती विधृता	जगतको धारण कर रखा है
तव विक्रमं	(उस) आपके पराक्रमको
न जाने	मैं नहीं जानती ॥२६॥

परं भावं भगवतो भगवन् मामजानतीम् ।
मोक्तुमर्हसि विश्वात्मन् प्रपन्नां भक्तवत्सल ॥२७॥

परं भावं भगवतः भगवन् मां अजानतीं मोक्तुं अर्हसि विश्व आत्मन् प्रपन्नां भक्त वत्सल ॥२७॥

विश्व आत्मन्	विश्वात्मा !	अजानतीं	न जानने वाली
भगवन्	भगवन् !	मां प्रपन्नां	मुझ शरणागतको
भक्त वत्सल	भक्त वत्सल !	मोक्तुं अर्हसि	छोड़ देना चाहिए'
भगवतः	आपके		॥२७॥
परं भावं	वास्तविक रूपको		

ततो व्यमुञ्चद् यमुनां याचितो भगवान् बलः ।
विजगाह जलं स्त्रीभिः करेणुभिरिवेभराट् ॥२८॥

ततः व्यमुञ्चत् यमुनां याचितः भगवान् बलः विजगाह जलं स्त्रीभिः करेणुभिः इव इभराट् ॥२८॥

ततः याचितः	तब प्रार्थना करने पर	इभराट् इव	गजराजके समान
		स्त्रीभिः जलं	स्त्रियोंके साथ जल
भगवान् बलः	भगवान बलरामने	विजगाह	स्नान किया ॥२८॥
यमुनां	यमुनाको		
व्यमुञ्चत्	छोड़ दिया		
करेणुभिः	(और) हथिनियोंके साथ		

कामं विहृत्य सलिलादुत्तीर्णायासिताम्बरे ।
भूषणानि महार्हाणि ददौ कान्तिः शुभां स्रजम् ॥२९॥

कामं विहृत्य सलिलात् उत्तीर्णाया असित अम्बरे भूषणानि महा अर्हाणि ददौ कान्तिः शुभां स्रजम् ॥२९॥

कामं विहृत्य	यथेष्ट विहार करके	महा अर्हाणि	बहुमूल्य
सलिलात्	जलसे	भूषणानि	आभूषण एवं
उत्तीर्णाया	निकले हुएको	कान्तिः शुभां	सुन्दर कान्ति वाली
असित अम्बरे	नीले वस्त्र,	स्रजं ददौ	माला दी ॥२६॥

वसित्वा वाससी नीले मालामामुच्य काञ्चनीम् ।
रेजे स्वलंकृतो लिप्तो माहेन्द्र इव वारणः ॥३०॥

वसित्वा वाससी नीले मालां आमुच्य काञ्चनीं रेजे स्वलङ्कृतः लिप्तः माहेन्द्र इव वारणः ॥३०॥

नीले वाससी	नीले वस्त्र	लिप्तः	(अंगराग) लेप
वसित्वा	पहिनकर		करके
काञ्चनी मालां	स्वर्णकी माला	माहेन्द्र	इन्द्रके
आमुच्य	(गलेमें) डालकर	वारणः इव	ऐरावत हाथीके
स्वलङ्कृतः	भली प्रकार		समान
	आभूषित होकर	रेजे	शोभित हुए ॥३०॥

अद्यापि दृश्यते राजन् यमुनाऽऽकृष्टवर्त्मना ।
बलस्यानन्तवीर्यस्य वीर्यं सूचयतीव हि ॥३१॥

अद्य अपि दृश्यते राजन् यमुना अकृष्ट वर्त्मना बलस्य अनन्त वीर्यस्य वीर्य सूचयती इव हि ॥३१॥

राजन्	राजन् !	बलस्य वीर्यं	बलरामजी पराक्रम
अद्य अपि	आज भी	सूचयती इव	सूचित करती सी
आकृष्ट वर्त्मना	खींचे हुए मार्गसे	दृश्यते	दीखती हैं ॥३१॥
यमुना	(बहती) यमुना		
हि अनन्त	क्योंकि अनन्त-		
वीर्यस्य	पराक्रम		

एवं सर्वा निशा याता एकेव रमतो व्रजे ।
रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥३२॥

एवं सर्वा निशा याता एक एव रमतः व्रजे रामस्य अक्षिप्त चित्तस्य माधुर्यैः व्रजयोषिताम् ॥३२॥

एवं व्रजयोषितां	इस प्रकार व्रज-स्त्रियोंकी
माधुर्यैः	मधुरिमासे
अक्षिप्त चित्तस्य	आकृष्ट चित्त
रामस्य	बलरामजीका
सर्वा निशा	सब रात्रियाँ
एक एव व्रजे	अकेले ही व्रजमें
रमतः याता	विहार करते बीतीं ॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे बलदेवविजये यमुनाकर्षणं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

नन्दव्रजं गते रामे करूषाधिपतिर्नृप ।
वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत् ॥ १ ॥

नन्दव्रजं गते रामे करूष अधिपतिः नृप वासुदेवः अहं इति अज्ञः दूतं कृष्णाय प्राहिणोत् ॥१॥

नृप	राजन् !	**अहं वासुदेवः**	'मैं वसुदेव हूँ'
रामे	बलरामजीके	**इति दूतं**	यह सन्देश देकर
नन्दव्रजं गते	नन्दव्रज चले जाने पर		दूत
		कृष्णाय	श्रीकृष्णके
अज्ञः	मूर्ख	**प्राहिणोत्**	पास भेजा ॥१॥
करूष अधिपतिः	करूष प्रदेशके राजाने		

त्वं वासुदेवो भगवानवतीर्णो जगत्पतिः ।
इति प्रस्तोभितो बालैर्मेन आत्मानमच्युतम् ॥ २ ॥

त्वं वासुदेवः भगवान् अवतीर्णः जगत् पतिः इति प्रस्तोभितः बालैः मेन आत्मनं अच्युतम् ॥२॥

त्वं जगत् पतिः	'आप जगत्पति	**इति बालैः**	इस प्रकार मूर्खोंके
भगवान्	भगवान	**प्रस्तोभितः**	बहकानेसे (उसने)
वासुदेवः	वसुदेव	**आत्मानं अच्युतं**	अपनेको अच्युत
अवतीर्णः	अवतरित हुए हैं	**मेन**	मान लिया ॥२॥

दूतं च प्राहिणोन्मन्दः कृष्णायाव्यक्तवर्त्मने ।
द्वारकायां यथा बालो नृपो बालकृतोऽबुधः ॥ ३ ॥

दूतं च प्राहिणोत् मन्दः कृष्णाय अव्यक्त वर्त्मने द्वारकायां यथा बालः नृपः बालकृतः अबुधः ॥३॥

यथा बालकृतः	जैसे (खेलमें) बच्चों द्वारा बनाया	अव्यक्त वर्त्मने	अचिन्त्य गति
		कृष्णाय	श्रीकृष्णके समीप
बालः नृपः	कोई बच्चा राजा हो	दूतं च	दूत भी
		प्राहिणोत्	भेज दिया ॥३॥
अबुधः मन्दः	उस मंदमति मूर्खने		

दूतस्तु द्वारकामेत्य सभायामास्थितं प्रभुम् ।
कृष्णं कमलपत्राक्षं राजसंदेशमब्रवीत् ॥ ४ ॥

दूतः तु द्वारकां एत्य सभायां आस्थितं प्रभुं कृष्णं कमलपत्र अक्षं राजसन्देशं अब्रवीत् ॥४॥

दूतः तु	दूतने भी	प्रभुं कृष्णं	भगवान श्रीकृष्णसे
द्वारकां एत्य	द्वारिकापुरी आकर	राजसन्देशं	अपने राजाका सन्देश
सभायां	राजसभामें		
आस्थितं	बैठे	अब्रवीत्	सुनाया ॥४॥
कमलपत्र अक्षं	कमल-दल लोचन		

॥ पौण्ड्रक उवाच ॥*

वासुदेवोऽवतीर्णोऽहमेक एव न चापरः ।
भूतानामनुकम्पार्थं त्वं तु मिथ्याभिधां त्यज ॥ ५ ॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

वासुदेवः अवतीर्णः अहं एक एव न च अपरः भूतानां अनुकम्पा अर्थं त्वं तु मिथ्या अभिधां त्यज ॥५॥

भूतानां	'प्राणियों पर	त्वं तु	तुम तो
अनुकम्पा अर्थं	कृपा करनेके लिए	मिथ्या अभिधां	(अपने) झूठे (वासुदेव) नामको
एक एव अहं	एक मात्र मुझ		
वासुदेवः	वासुदेवने	त्यज	त्याग दो ॥५॥
अवतीर्णः	अवतार लिया है		
अपरः न च	दूसरा कोई नहीं ही है		

यानि त्वमस्मच्चिह्नानि मौढ्याद् बिभर्षि सात्वत ।
त्यक्त्वैहि मां त्वं शरणं नो चेद् देहि ममाहवम् ॥ ६ ॥

यानि त्वं अस्मत् चिह्नानि मौढ्यात् बिभर्षि सात्वत त्यक्त्वा एहि मां त्वं शरणं नो चेत् देहि मम आहवम् ॥६॥

सात्वत	यादव !	त्वं एहि	तुम आ जाओ
त्वं यानि	तुम जिन	नो चेत्	यदि ऐसा नहीं करना है तो
अस्मत् चिह्नानि	मेरे चिह्नोंको	मम आहवं देहि	मुझे युद्ध दो (मुझ से युद्ध करो) ॥६॥
मौढ्यात् बिभर्षि	मूर्खतावश धारण करते हो		
त्यक्त्वा	(उन्हें) त्यागकर		
मां शरणं	मेरी शरण		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

कत्थनं तदुपाकर्ण्य पौण्ड्रकस्याल्पमेधसः ।
उग्रसेनादयः सभ्याः उच्चकैर्जहसुस्तदा ॥ ७ ॥

कत्थनं तत् उपाकर्ण्य पौण्ड्रकस्य अल्पमेधसः उग्रसेन आदयः सभ्याः उच्चकैः जहसुः तदा ॥७॥

तत् अल्पमेधसः	उस मन्दमति
पौण्ड्रकस्य	पौण्ड्रककी
कत्थनं	बकवाद
उपाकर्ण्य	सुनकर
तदा	उस समय
उग्रसेन आदयः	उग्रसेन आदि
सभ्याः	सभासद
उच्चकैः जहसुः	उच्च स्वरसे हँसने लगे ॥७॥

उवाच दूतं भगवान् परिहासकथामनु ।
उत्स्रक्ष्ये मूढ चिह्नानि यैस्त्वमेवं विकत्थसे ॥ ८ ॥

उवाच दूतं भगवान् परिहास कथां अनु उत्स्रक्ष्ये मूढ चिह्नानि यैः त्वं एवं विकत्थसे ॥८॥

परिहास कथां अनु	परिहास चर्चाके बाद
भगवान्	भगवानने
दूतं उवाच	दूतसे कहा—
मूढ चिह्नानि	'मूर्ख ! (मैं अपने चक्रादि) चिह्नोंको
यैः त्वं एवं	जिनके कहनेसे तू इस प्रकार
विकत्थसे	बकवाद कर रहा है
उत्स्रक्ष्ये	(उन पर भी) छोड़ूंगा ॥८॥

मुखं तदपिधायाज्ञ कङ्कगृध्रवटैर्वृतः ।
शयिष्यसे हतस्तत्र भविता शरणं शुनाम् ॥ ९ ॥

मुखं तत् पिधाय अज्ञ कङ्क गृध्र वटैः वृतः शयिष्यसे हतः तत्र भविता शरणं शुनाम् ॥९॥

तत्र हतः	वहां मारा जाकर
तत् मुखं	उस (बकवादी) मुख
पिधाय	को छिपाकर
अज्ञ	मूर्ख !
कङ्क गृध्र	कांक, गीध
वटैः वृतः	कौए आदिसे घिरा
शुनां शरणं	कुत्तेकी शरणमें
भविता	जायगा' ॥९॥

इति दूतस्तदाक्षेपं स्वामिने सर्वमाहरत् ।
कृष्णोऽपि रथामास्थाय काशीमुपजगाम ह ॥१०॥

इति दूतः तत् आक्षेपं स्वामिने सर्वं आहरत् कृष्णः अपि रथं आस्थाय काशीं उप जगाम ह ॥१०॥

इति तत्	इस प्रकारके उनके	कृष्णः अपि	श्रीकृष्ण भी
आक्षेपं	आक्षेपको	रथं आस्थाय	रथ पर बैठ कर
दूतः स्वामिने	दूतने अपने स्वामी के पास	ह काशीं उप	अरे, काशीके समीप*
सर्वं आहरत्	सब पहुँचा दिया	जगाम	चले ॥१०॥

पौण्ड्रकोऽपि तदुद्योगमुपलभ्य महारथः ।
अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तो निश्चक्राम पुराद् द्रुतम् ॥११॥

पौण्ड्रकः अपि तत् उद्योगं उपलभ्य महारथः अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तः निः चक्राम पुरात् द्रुतम् ॥११॥

महारथः	महारथी	संयुक्तः	साथ
पौण्ड्रकः अपि	पौण्ड्रक भी	पुरात् द्रुतं	नगरसे शीघ्र
तत् उद्योगं	उनका प्रयत्न	निः चक्राम	निकल आया ॥११॥
उपलभ्य	देखकर		
अक्षौहिणीभ्यां	दो अक्षौहिणी सेना के		

तस्य काशिपतिर्मित्रं पार्ष्णिग्राहोऽन्वयान्नृप ।
अक्षौहिणीभिस्तिसृभिरपश्यत् पौण्ड्रकं हरिः ॥१२॥

---

*काशीके समीप चरणाद्रि (चुनार)का राजा पौण्ड्रक था । उसके आसपासका पर्वतीय क्षेत्र करूष कहलाता था ।

तस्य काशिपतिः मित्रं पाण्डिग्राहः अन्वयात् नृप अक्षौहिणीभिः तिसृभिः अपश्यत् पौण्ड्रकं हरिः ॥१२॥

नृप	राजन्	अन्वयात्	उसके पीछे आया
तस्य मित्रं	उसका मित्र	हरि पौण्ड्रकं	(इस प्रकार) श्रीकृष्णने पौण्ड्रक को
काशिपतिः	काशीराज		
तिसृभिः	तीन		
अक्षौहिणीभिः	अक्षौहिणी सेनाके साथ	अपश्यत्	देखा ॥१२॥
पाण्डिग्राहः	उसकी सहायताके लिए		

शङ्खारिसिगदाशार्ङ्गश्रीवत्साद्युपलक्षितम् ।
बिभ्राणं कौस्तुभमणिं वनमालाविभूषितम् ॥१३॥

शङ्ख अरि असि गदा शार्ङ्ग श्रीवत्स आदि उपलक्षितं बिभ्राणं कौस्तुभमणि वनमाला विभूषितम् ॥१३॥

शङ्ख अरि असि	शंख, चक्र, तलवार	कौस्तुभमणि	कौस्तुभमणि
गदा शार्ङ्ग	गदा, शारंग धनुष	बिभ्राणं	धारण किए
श्रीवत्स आदि	श्रीवत्स चिह्नादिसे	वनमाला	वनमालासे
उपलक्षितं	युक्त	विभूषितं	सुशोभित ॥१३॥

कौशेयवाससी पीते वसानं गरुडध्वजम् ।
अमूल्यमौल्याभरणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥१४॥

कौशेय वाससी पीते वसानं गरुडध्वजं अमूल्य मौलि आभरणं स्फुरन् मकरकुण्डलम् ॥१४॥

पीते कौशेय	पीला रेशमी	अमूल्य	अमूल्य
वाससी	वस्त्र	मौलि आभरणं	शिरोभूषण (मुकुट)

स्फुरत्	चमकते	गरुडध्वजं	गरुड़ चिह्नवाली ध्वजा (लगाये था) ॥१४॥
मकरकुण्डलं	मकराकृति कुंडल		
वसानं	धारण किये		

दृष्ट्वा तमात्मनस्तुल्यवेषं कृत्रिममास्थितम् ।
यथा नटं रङ्गगतं विजहास भृशं हरिः ॥१५॥

दृष्ट्वा तं आत्मनः तुल्य वेषं कृत्रिमं आस्थितं यथा नटं रङ्गगतं विजहास भृशं हरिः ॥१५॥

यथा रङ्गगतं	जैसे रंगमञ्च पर आया	आस्थितं	बनाये
		तं दृष्ट्वा	उसे देखकर
नटं	नट हो	हरिः	श्रीहरि
आत्मनः तुल्य	अपने ही समान	भृशं विजहास	बहुत हँसे ॥१५॥
कृत्रिमं वेषं	नकली वेश		

शूलैर्गदाभिः परिघैः शक्त्यृष्टिप्रासतोमरैः ।
आसिभिः पट्टिशैर्बाणैः प्राहरन्नरयो हरिम् ॥१६॥

शूलैः गदाभिः परिघैः शक्ति ऋष्टि प्रास तोमरैः असिभिः पट्टिशैः बाणैः प्राहरन् नरयोः हरिम् ॥१६॥

शूलैः गदाभिः	त्रिशूल, गदा	पट्टिशैः बाणैः	पट्टिश और बाणोंसे
परिघैः शक्ति	परिघ, शक्ति,	नरयोः हरिं	उन मनुष्योंने श्रीहरि पर
ऋष्टि प्रास	ऋष्टि, प्रास,	प्राहरन्	प्रहार किया ॥१६॥
तोमरैः	तोमर,		
असिभिः	तलवार,		

कृष्णस्तु तत्पौण्ड्रककाशिराजयो-
र्बलं गजस्यन्दनवाजिपत्तिमत् ।

गदासिचक्रेषुभिरार्दयद् भृशं
यथा युगान्ते हुतभुक् पृथक् प्रजाः ॥१७॥

कृष्णः तु तत् पौण्ड्रक काशिराजयोः बलं गज स्यन्दन वाजि पत्तिमत् गदा असि चक्र इषुभिः अर्दयत् भृशं यथा युगान्ते हुतभुक् पृथक् प्रजाः ॥१७॥

कृष्णः तु	श्रीकृष्ण तो
तत् पौण्ड्रक	उस पौण्डक एवं
काशिराजयोः	काशिराजकी
गज स्यन्दन	हाथी रथ,
वाजि पत्तिमत्	अश्व, पैदल वाली (चतुरंगिणी)
बलं	सेनाको
यथा युगान्ते	जैसे युगके अन्तमें (प्रलयके समय)
पृथक प्रजाः	विभिन्न प्रजाको
हुतभुक्	अग्नि (नष्ट करता है)
गदा असि	गदा, तलवार
चक्र इषुभिः	चक्र तथा बाणोंसे
भृशं अर्दयत्	पूर्णतः कुचल डाला ॥१७॥

आयोधनं तद्रथवाजिकुञ्जर-
द्विपत्खरोष्ट्रैरिणावखण्डितैः ।
बभौ चितं मोदवहं मनस्विना-
माक्रीडनं भूतपतेरिवोल्बणम् ॥१८॥

आयोधनं तत् रथ वाजि कुञ्जर द्विपत् खर उष्ट्रैः अरिणा अवखण्डितैः बभौ चितं मोदवहं मनस्विनां आक्रीडनं भूतपतेः इव उल्बणम् ॥१८॥

अरिणा	चक्रसे
अवखण्डितैः	खण्ड-खण्ड हुए
रथ वाजि	रथ, अश्व,
कुञ्जर	गज,
द्विपत् खर उष्ट्रैः	मनुष्य, गधे, ऊंटों वाला
तत् आयोधनं	वह युद्धस्थल
भूतपतेः	भूतनाथके

उल्बणम्	भङ्कर
आक्रीडनं इव	क्रीडास्थलकी भाँति
मनस्विनां चितं	साहसियोंके चित्त को
मोदवहं बभौ	आनन्ददायी शोभित हुआ ॥१८॥

अथाह पौण्ड्रकं शौरिर्भो भोः पौण्ड्रक यद् भवान् ।
दूतवाक्येन मामाह तान्यस्त्राण्युत्सृजामि ते ॥१९॥

अथ आह पौण्ड्रकं शौरिः भो भोः पौण्ड्रक यत् भवान् दूत वाक्येन मां आह तानि अस्त्राणि उत्सृजामि ते ॥१९॥

अथ शौरिः	फिर श्रीकृष्णने
पौण्ड्रकं आह	पौण्ड्रकसे बोले—
भो भोः पौण्ड्रक	'हे हे पौण्ड्रक
भवान् दूत	तुमने दूतके
वाक्येन	वाक्योंसे
यत् आह	जिनको कहा था
तानि अस्त्राणि	उन अस्त्रोंको
ते उत्सृजामि	तुम पर छोड़ता हूँ ॥१९॥

त्याजयिष्येऽभिधानं मे यत्त्वयाज्ञ मृषा धृतम् ।
व्रजामि शरणं तेऽद्य यदि नेच्छामि संयुगम् ॥२०॥

त्याजयिष्ये अभिधानं मे यत् त्वया अज्ञ मृषा धृतं व्रजामि शरणं ते अद्य यदि न इच्छामि संयुगम् ॥२०॥

यत् त्वया अज्ञ	जो तुझ मूर्खने
मृषा अभिधानं	झूठा नाम
धृतं	(वासुदेव) धारण किया है
त्याजयिष्ये	छुड़ा दूंगा (अथवा)
यदि अद्य	यदि आज
संयुगं न इच्छामि	युद्ध नहीं करना चाहूँगा तो
ते शरणं	तेरी शरणमें
व्रजामि	आ जाऊंगा ॥२०॥

इति क्षिप्त्वा शितैर्बाणैर्विरथीकृत्य पौण्ड्रकम् ।
शिरोऽवृश्चद् रथाङ्गेन व्रजेनेन्द्रो यथा गिरेः ॥२१॥

इति क्षिप्त्वा शितैः बाणैः विरथी कृत्य पौण्ड्रकं शिरः अवृश्चत् रथाङ्गेन वज्रेण इन्द्रः यथा गिरेः ॥२१॥

इति क्षिप्त्वा	इस प्रकार आक्षेप करके	गिरेः वज्रेण	पर्वतको वज्रसे (काटते हैं)
शितैः बाणैः	तीक्ष्ण बाणोंसे	रथाङ्गेन	चक्रसे
विरथी कृत्य	रथहीन करके	पौण्ड्रकं शिरः	पौण्ड्रकका सिर
यथा इन्द्रः	जैसे इन्द्र	अवृश्चत्	काट दिया ॥२१॥

तथा काशिपतेः कायाच्छिर उत्कृत्य पत्रिभिः ।
न्यपातयत् काशिपुर्यां पद्मकोशमिवानिलः ॥२२॥

तथा काशिपतेः कायात् शिर उत्कृत्य पत्रिभिः न्यपातयत् काशिपुर्यां पद्मकोश इव अनिलः ॥२२॥

तथा काशिपतेः	इसी प्रकार काशि-राजका	अनिलः	वायु द्वारा
शिर पत्रिभिः	सिर बाणोंसे	पद्मकोशं इव	कमल पुष्पके समान
उत्कृत्य	काटकर	काशिपुर्यां	काशीपुरीमें
		न्यपातयत्	गिरा दिया ॥२२॥

एवं मत्सरिणं हत्वा पौण्ड्रकं ससखं हरिः ।
द्वारकामाविशत् सिद्धैर्गीयमानकथामृतः ॥२३॥

एवं मत्सरिणं हत्वा पौण्ड्रकं ससखं हरिः द्वारकां आविशत् सिद्धैः गीयमान कथामृतः ॥२३॥

सिद्धैः कथामृतः	सिद्धों द्वारा चरितामृतका	पौण्ड्रकं ससखं	पौण्ड्रकको उसके मित्रके साथ
गीयमान	गायन होते हुए	हत्वा द्वारकां	मारकर द्वारिका-पुरीमें
हरिः	श्रीहरि	आविशत्	लौट आये ॥२३॥
एवं मत्सरिणं	इस प्रकार स्पर्धा रखने वाले		

स नित्यं भगवद्ध्यानप्रध्वस्ताखिलबन्धनः ।
बिभ्राणश्च हरे राजन् स्वरूपं तन्मयोऽभवत् ॥२४॥

स नित्यं भगवत् ध्यान प्रध्वस्त अखिल बन्धनः बिभ्राणः च हरेः राजन् स्वरूपं तन्मयः अभवत् ॥२४॥

राजन्	राजन् !	प्रध्वस्त	नष्ट हो गये थे
स नित्य	वह सदा	च हरेः स्वरूपं	तथा श्रीहरिका ही रूप
भगवत् ध्यान	भगवानका ध्यान करनेसे (उसके)	बिभ्राणः	धारण करता था
		तन्मयः अभवत्	अतः तद्रूप हो गया
अखिल बन्धनः	समस्त बन्धन		॥२४॥

शिरः पतितमालोक्य राजद्वारे सकुण्डलम् ।
किमिदं कस्य वा वक्त्रमिति संशिश्यिरे जनाः ॥२५॥

शिरः पतितं आलोक्य राजद्वारे सकुण्डलं किं इदं कस्य वा वक्त्रं इति संशिश्यिरे जनाः ॥२५॥

राजद्वारं	राज-भवनके द्वार पर	वा कस्य वक्त्रं	अथवा किसका मुख है ?'
सकुण्डलं शिरः	कुण्डल युक्त सिर	इति जनाः	इस प्रकार लोग
पतितं आलोक्य	गिरा देखकर	संशिश्यिरे	सन्देह करने लगे
इदं किं	'यह क्या है ?		॥२५॥

राज्ञः काशिपतेर्ज्ञात्वा महिष्यः पुत्रबान्धवाः ।
पौराश्च हा हता राजन् नाथ नाथेति प्रारुदन् ॥२६॥

राज्ञः काशिपतेः ज्ञात्वा महिष्यः पुत्रबान्धवाः पौराः च हा हता राजन् नाथ नाथ इति प्रारुदन् ॥२६॥

राज्ञः काशिपतेः	काशीपति राजाका	पुत्रबान्धवाः	पुत्र, सम्बन्धी लोग
ज्ञात्वा महिष्यः	जानकर रानियां		

पौराः च	पुरवासी भी	हता	मारे गये'
हा नाथ	'हा नाथ !	इति प्रारुदन्	इस प्रकार विलाप
राजन् नाथ	राजन् ! स्वामी		करने लगे ॥२६॥

सुदक्षिणस्तस्य सुतः कृत्वा संस्थाविधिं पितुः ।
निहत्य पितृहन्तारं यास्याम्यपचितिं पितुः ॥२७॥

सुदक्षिणः तस्य सुतः कृत्वा संस्थाविधिं पितुः निहत्य पितृ हन्तारं याःयामि अपचितिं पितुः ॥२७॥

पितृः	पिताका	हन्तारं निहत्य	हत्यारेको मारकर
संस्थाविधिं	अन्त्येष्टि संस्कार	पितृ अपचितिं	पितृ-ऋणसे
कृत्वा	करके		उऋणता
तस्य सुतः	उसके पुत्र	यामि	पाऊंगा' ॥२७॥
सुदक्षिणः	सुदक्षिणने		
पितृः	पिताके		

इत्यात्मनाभिसंधाय सोपाध्यायो महेश्वरम् ।
सुदक्षिणोऽर्चयामास परमेण समाधिना ॥२८॥

इति आत्मना अभिसन्धाय स उपाध्यायः महेश्वरं सुदक्षिणः अर्चयामास परमेण समाधिना ॥२८॥

इति आत्मना	इस प्रकार चित्तमें	परमेण	अत्यन्त
अभिसन्धाय	निश्चय करके	समाधिना	एकाग्रता पूर्वक
सुदक्षिणः	सुदक्षिण	महेश्वरं	महेश्वरकी
स उपाध्यायः	उपाध्याय (आचार्य) के साथ	अर्चयामास	पूजा करने लगे ॥२८॥

प्रीतोऽविमुक्ते भगवांस्तस्मै वरमदाद् भवः ।
पितृहन्तृवधोपायं स वव्रे वरमीप्सितम् ॥२९॥

प्रीतः अविमुक्तेः भगवान् तस्मै वरं अदात् भवः पितृ हन्तृ वध उपायं स वव्रे वरं ईप्सितम् ॥२६॥

अविमुक्तेः	अविमुक्त क्षेत्रमें	पितृ हन्तृ	पिताको मारने वालेके
तस्मै प्रीतः	उस पर प्रसन्न	वध उपायं वव्रे	वधका उपाय वर मांगा ॥२६॥
भगवान् भवः	भगवान शिवने		
वरं अदात्	वरदान देने (मांगने)को कहा		
स ईप्सितं वरं	उसने अपना अभीष्ट वरदान		

दक्षिणाग्नि परिचर ब्राह्मणैः सममृत्विजम् ।
अभिचारविधानेन स चाग्निः प्रमथैर्वृतः ॥३०॥

दक्षिणाग्नि परिचर ब्राह्मणैः सम ऋत्विजं अभिचार विधानेन स च अग्निः प्रमथैः वृतः ॥३०॥

दक्षिणाग्निं	(भगवान रुद्रने कहा)— दक्षिणाग्नि की	परिचर	सेवा करो
		स अग्निः च	वह अग्नि भी
		प्रमथैः वृतः	प्रथम गणोंसे घिरा ॥३०॥
सम ऋत्विजं	ऋत्विके समान		
ब्राह्मणैः	ब्राह्मणों द्वारा		
अभिचार	अभिचार		
विधानेन	विधिसे		

साधयिष्यति संकल्पमब्रह्मण्ये प्रयोजितः ।
इत्यादिष्टस्तथा चक्रे कृष्णायाभिचरन् व्रती ॥३१॥

साधयिष्यति सङ्कल्पं अब्रह्मण्ये प्रयोजितः इति आदिष्टः तथा चक्रे कृष्णाय अभिचरन् व्रती ॥३१॥

अब्रह्मण्ये	जो ब्राह्मणका भक्त नहीं है*	इति आदिष्टः	ऐसा आदेश पाकर
प्रयोजितः	उस पर प्रयोग करने पर	व्रती तथा	व्रत लेकर उसी प्रकार
स सङ्कल्पं	वह संकल्पको	कृष्णाय	श्रीकृष्ण पर
साधयिष्यति	सिद्ध करेगा	अभिचरन् चक्रे	अभिचार करने लगा ॥३१॥

ततोऽग्निरुत्थितः कुण्डान्मूर्तिमानतिभीषणः ।
तप्ततास्रशिखाश्मश्रुरङ्गारोद्गारिलोचनः ॥३२॥

ततः अग्निः उत्थितः कुण्डात् मूर्तिमान् अतिभीषणः तप्त ताम्र शिखा श्मश्रुः अङ्गार उद्गारि लोचनः ॥३२॥

ततः कुण्डात्	तब (अनुष्ठान पूरा होने पर) कुण्डसे	तप्त ताम्र	तपाये तांबेके समान
अतिभीषणः	अत्यन्त भयङ्कर	शिखा श्मश्रुः	केश-दाढ़ी
मूर्तिमान् अग्निः	मूर्तिमान होकर अग्नि	अङ्गार उद्गारि लोचनः	अंगार उगलते नेत्रों वाला ॥३२॥
उत्थितः	प्रगट हुआ		

दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीदण्डकठोरास्यः स्वजिह्वया ।
आलिहन् सृक्किणी नग्नो विधुन्वंस्त्रिशिखं ज्वलन् ॥३३॥

दंष्ट्र उग्र भ्रुकुटी दण्ड कठोर आस्यः स्वजिह्वया आलिहन् सृक्किणी नग्नः विधुन्वन् त्रिशिखं ज्वलन् ॥३३॥

---

* क्रोधके आवेशमें सुदक्षिणने भगवान शंकरके आदेशों पर ध्यान नहीं दिया, इससे उलटा फल हुआ—

१—अब्रह्मण्य पर प्रयोग करनेको कहा गया था और उसने ब्रह्मण्यदेव पर प्रयोग किया ।

२—अग्निकी आराधना ऋत्विक् रूपमें करनी थी पर हुई इष्ट रूपमें ।

दंष्ट्र उग्र	भयानक दाढें
दण्ड भ्रुकुटीः	डण्डेके समान भौहें
कठोर आस्यः	क्रूर मुख,
स्वजिह्वया	अपनी जीभसे
सृक्किणी	गलफड़े
आलिहन्	चाटता हुआ,
नग्नः	नंगा
ज्वलन् त्रिशिखं	चमकते त्रिशूलको
विधुन्वन्	हिलाता हुआ

॥३३॥

पद्भ्यां तालप्रमाणाभ्यां कम्पयन्नवनीतलम् ।
सोऽभ्यधावद् वृतो भूतैर्द्वारकां प्रदहन् दिशः ॥३४॥

पद्भ्यां ताल प्रमाणाभ्यां कम्पयन् अवनीतलं सः अभ्यधावत् वृतः भूतैः द्वारकां प्रदहन् दिशः ॥३४॥

ताल	ताड़ वृक्षके
प्रमाणाभ्यां	बराबरके
पद्भ्यां	पैरोंसे
अवनीतलं	भूतलको
कम्पयन्	कम्पित करता
भूतैः वृतः	भूतोंसे घिरा हुआ
दिशः प्रदहन्	दिशाओंको जलाता
द्वारकां	द्वारिकाकी ओर
अभ्यधावत्	दौड़ा ॥३४॥

तमाभिचारदहनमायान्तं द्वारकौकसः ।
विलोक्य तत्रसुः सर्वे वनदाहे मृगा यथा ॥३५॥

तं अभिचार दहनं आयान्तं द्वारकौकसः विलोक्य तत्रसुः सर्वे वनदाहे मृगाः यथा ॥३५॥

तं	उस
अभिचार दहनं	अभिचाराग्निको
आयान्तं	आते हुए
विलोक्य	देखकर
सर्वे	सब
द्वारकौकसः	द्वारकावासी
यथा वनदाहे	जैसे दावाग्निसे
मृगाः तत्रसुः	पशु, भयभीत हो गये ॥३५॥

अक्षैः सभायां क्रीडन्तं भगवन्तं भयातुराः ।
त्राहि त्राहि त्रिलोकेश वह्नेः प्रदहतः पुरम् ॥३६॥

अक्षैः सभायां क्रीडन्तं भगवन्तं भय आतुराः त्राहि त्राहि त्रिलोकेश वह्नेः प्रदहतः पुरम् ॥३६॥

सभायां अक्षैः	सभामें पासे	त्राहि त्राहि	रक्षा कीजिए ! रक्षा कीजिए !
क्रीडन्तं भगवन्तं	खेलते भगवानसे		॥३६॥
भय आतुराः	भय व्याकुल बोले—		
त्रिलोकेश	'त्रिलोकीनाथ !		
वह्नेः प्रदहतः पुरं	अग्निसे जलाये जाते नगरकी		

श्रुत्वा तज्जनवैक्लव्यं दृष्ट्वा स्वानां च साध्वसम् ।
शरण्यः सम्प्रहस्याह मा भैष्टेत्यवितास्म्यहम् ॥३७॥

श्रुत्वा तत् जन वैक्लव्यं दृष्ट्वा स्वानां च साध्वसं शरण्यः सम्प्रहस्य आह मा भैष्ट इति अविता अस्मि अहम् ॥३७॥

तत् जन	वह प्रजाजनकी	सम्प्रहस्य आह	खुलकर हंसकर कहा—
वैक्लव्यं	व्याकुलता	मा भैष्ट	'मत डरो,
च स्वानां	तथा अपने लोगों की	इति अहं	इस प्रकार मैं तो
साध्वसं	घबड़ाहट	अविता अस्मि	रक्षक हूँ ही
दृष्ट्वा शरण्यः	देखकर उन शरण दाताने		॥३७॥

सर्वस्यान्तर्बहिः साक्षी कृत्यां माहेश्वरीं विभुः ।
विज्ञाय तद्विघातार्थं पार्श्वस्थं चक्रमादिशत् ॥३८॥

सर्वस्य अन्तः बहिः साक्षी कृत्यां माहेश्वरीं विभुः विज्ञाय तत् विघात अर्थं पार्श्वस्थं चक्रं आदिशत् ॥३८॥

सर्वस्य अन्तः	सबके भीतर और	तत्	उसको
बहिः	बाहरके	विघात अर्थं	नष्ट करनेके लिए
साक्षी विभुः	द्रष्टा प्रभुने	पार्श्वस्थं चक्रं	समीपमें स्थित चक्रको
माहेश्वरीं कृत्यां	माहेश्वरी कृत्याको	आदिशत्	आज्ञा दी ॥३८॥
विज्ञाय	जानकर		

तत् सूर्यकोटिप्रतिमं सुदर्शनं
जाज्वल्यमानं प्रलयानलप्रभम् ।
स्वतेजसा खं ककुभोऽथ रोदसी
चक्रं मुकुन्दास्त्रमथाग्निमार्दयत् ॥३९॥

तत् सूर्यकोटि प्रतिमं सुदर्शनं जाज्वल्यमानं प्रलय अनल प्रभं स्वतेजसा खं ककुभः अथ रोदसी चक्रं मुकुन्द अस्त्रं अथ अग्निं अर्दयत् ॥३९॥

तत्	उन	स्वतेजसा	अपने तेजसे
सूर्यकोटि प्रतिमं	करोड़ों सूर्यके समान	खं ककुभः	आकाश, दिशाओं
		अथ रोदसी	तथा अन्तरिक्षको
प्रलय अनल	प्रलयाग्निके	जाज्वल्यमानं	प्रज्वलितसा करता हुआ
प्रभं	समान तेजस्वी		
मुकुन्द अस्त्रं	मुकुन्दके अस्त्र	अथ अग्निं	फिर कृत्याग्निको
सुदर्शनं चक्रं	सुदर्शन चक्र	अर्दयत्	रौंदा ॥३९॥

कृत्यानलः प्रतिहतः स रथाङ्गपाणे-
रस्त्रौजसा स नृप भग्नमुखो निवृत्तः ।
वाराणसीं परिसमेत्य सुदक्षिणं तं
सर्त्विग्जनं समदहत् स्वकृतोऽभिचारः ॥४०॥

कृत्या अनलः प्रतिहतः स रथाङ्ग पाणेः अस्त्र ओजसा स नृप भग्नमुखः निवृत्तः वाराणसीं परिसमेत्य सुदक्षिणं तं स ऋत्विक् जनं सम अदहत् स्वकृतः अभिचारः ॥४०॥

नृप	राजन् !
रथाङ्ग पाणेः	चक्रपाणिके
अस्त्र ओजसा	अस्त्र-तेजसे
प्रतिहतः	पराजित,
भग्नमुखः	भग्नमुख
स कृत्या अनलः	वह कृत्याग्नि
निवृत्तः	लौट पड़ा
वाराणसीं	वाराणसीमें
परिसमेत्य	पहुँचकर
स ऋत्विक् जनं	ऋत्विक् लोगोंके साथ
तं सुदक्षिणं	उस सुदक्षिणको
स स्वकृतः	उस अपने किये
अभिचारः	अभिचारने
सम अदहत्	पूर्णतः जला दिया ॥४०॥

चक्रं च विष्णोस्तदनुप्रविष्टं
वाराणसीं साट्टसभालयापणाम् ।
सगोपुराट्टालककोष्ठसंकुलां
सकोशहस्त्यश्वरथान्नशालाम् ॥४१॥

चक्रं च विष्णोः तत् अनुप्रविष्टं वाराणसीं स अट्टसभा आलय आपणां सगोपुर अट्टालक कोष्ठसंकुलां स कोश हस्ति अश्व रथ अन्न शालाम् ॥४१॥

अट्टसभा	अट्टालिका, सभा-भवन
स आलय	भवन,
अपणां	बाजारों वाली
सगोपुर	गोपुर युक्ता,
अट्टालक	अटारियों वाले
कोष्ठसंकुलां	कोठोंसे भरी
कोश हस्ति	कोश, हाथी
अश्व रथ	अश्व, रथ,
स अन्न शालां	अन्न शालाओं सहित
वाराणसीं	वाराणसीपुरीमें
तत्	उस (कृत्या)के
अनुप्रविष्टं	पीछे ही पहुँचा
विष्णोः	विष्णुका
चकं च	चक्र भी ॥४१॥

दग्ध्वा वाराणसीं सर्वां विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ।
भूयः पार्श्वमुपातिष्ठत् कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥४२॥

दग्ध्वा वाराणसीं सर्वां विष्णोः चक्रं सुदर्शनं भूयः पार्श्वं उपातिष्ठत् कृष्णस्य आक्लिष्ट कर्मणः ॥४२॥

सर्वां वाराणसीं	सम्पूर्ण वाराणसीको	**आक्लिष्ट**	अनायास
दग्ध्वा	जलाकर	**कर्मणः**	कर्म करने वाले
विष्णो. चक्रं	विष्णु भगवानका चक्र	**कृष्णस्य**	श्रीकृष्णके
		पार्श्वं भूयः	समीप फिर
सुदर्शनं	सुदर्शन	**उपातिष्ठत्**	पहुँच गया ॥४२॥

य एतच्छ्रावयेन्मर्त्य उत्तमश्लोकविक्रमम् ।
समाहितो वा शृणुयात् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४३॥

यः एतत् श्रावयेत् मर्त्यः उत्तमश्लोक विक्रमं समाहितः वा शृणुयात् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४३॥

यः मर्त्यः	जो मनुष्य	**समाहितः**	एकाग्र होकर
एतत्	इस प्रकार	**शृणुयात्**	सुनता है,
उत्तमश्लोक	पुण्यकीर्ति	**सर्वपापैः**	(वह) सब पापों से
विक्रमं	(भगवान)के पराक्रमको	**प्रमुच्यते**	छूट जाता है ॥४३॥
श्रावयेत् वा	सुनाता है अथवा		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
उत्तरार्धे पौण्ड्रकादिवधो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

॥ राजोवाच ॥

भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि रामस्याद्भुतकर्मणः ।
अनन्तस्याप्रमेयस्य यदन्यत् कृतवान् प्रभुः ॥ १ ॥

भूयः अहं श्रोतुं इच्छामि रामस्य अद्भुत कर्मणः अनन्तस्य अप्रमेयस्य यत् अन्यत् कृतवान् प्रभुः ॥१॥

अद्भुत कर्मणः	अद्भुतकर्मा	**अहं भूयः**	मैं फिर
अनन्तस्य	अनन्त	**श्रोतुं इच्छामि**	सुनना चाहता हूँ
अप्रमेयस्य	अप्रमेय	**प्रभुः यत्**	उन समर्थने जो
रामस्य	बलरामजीके (चरित)	**अन्यत् कृतवान्**	दूसरा कुछ किया ॥१॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

नरकस्य सखा कश्चिद् द्विविदो नाम वानरः ।
सुग्रीवसचिवः सोऽथ भ्राता मैन्दस्य वीर्यवान् ॥ २ ॥

नरकस्य सखा कश्चित् द्विविदः नाम वानरः सुग्रीवसचिवः सः अथ भ्राता मैन्दस्य वीर्यवान् ॥२॥

नरकस्य सखा	नरकासुरका मित्र	**कश्चित्**	कोई
सुग्रीवसचिवः	सुग्रीवका मन्त्री	**द्विविदः नाम**	द्विविद नामक
अथ सः मैन्दस्य	और वह मन्दका	**वानरः**	वानर था ॥२॥
वीर्यवान् भ्राता	बलवानका भाई		

सख्युः सोऽपचितिं कुर्वन् वानरो राष्ट्रविप्लवम् ।
पुरग्रामाकरान् घोषानदहद् वह्निमुत्सृजन् ॥ ३ ॥

सख्युः सः अपचितिं कुर्वन् वानरः राष्ट्रविप्लवं पुरग्राम आकरान् घोषान् अदहत् वह्निं उत्सृजन् ॥३॥

सः सख्युः	वह अपने मित्र (नरकासुर)का	वह्निं उत्सृजन्	आग लगाकर
अपचितिं	बदला चुकाता	अदहत्	जलाता हुआ
पुरग्राम	नगर, गाँव	राष्ट्रविप्लवं	राष्ट्रोंमें उथल-पुथल
आकरान्	खदानों तथा	कुर्वन्	करने लगा ॥३॥
घोषान्	झोपड़ियोंके गाँवों को		

क्वचित् स शैलानुत्पाट्य तैर्देशान् समचूर्णयत् ।
आनर्तान् सुतरामेव यत्रास्ते मित्रहा हरिः ॥ ४ ॥

क्वचित् शैलान् अनुत्पाट्य तैः देशान् सम चूर्णयत् आनर्तान् सुतरां एव यत्र आस्ते मित्रहा हरिः ॥४॥

क्वचित् शैलान्	कभी पहाड़ोंको	आनर्तान् एव	आनर्तके ही (प्रदेशों)को
अनुत्पाट्य	पूरा उखाड़ कर	यत्र मित्रहा	जहाँ उसके मित्रको मारने वाले
तैः देशान्	उनसे प्रदेशोंको	हरिः आस्ते	श्रीहरि रहते थे
सम चूर्णयत्	पूर्णतः पीस देता था		॥४॥
सुतरां	विशेषतः		

क्वचित् समुद्रमध्यस्थो दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तज्जलम् ।
देशान् नागायुतप्राणो वेलाकूलानमज्जयत् ॥ ५ ॥

क्वचित् समुद्र मध्यस्थः दोर्भ्यां उत्क्षिप्य तत् जलं देशान् नाग अयुत प्राणः वेला कूलान् अमज्जयत् ॥५॥

क्वचित्	कभी	तत् जलं	उसका जल
नाग अयुत	दस सहस्र हाथियों	दोर्भ्यां उत्क्षिप्य	भुजाओंसे उछाल कर
प्राणः	की शक्तिवाला (वह)	वेला कूलान्	समुद्रके किनारेके
समुद्र मध्यस्थः	समुद्रके बीचमें खड़े होकर	देशान्	प्रदेशोंको
		अमज्जयत्	डुबा देता था ॥५॥

आश्रमान्ऋषिमुख्यानां कृत्वा भग्नवनस्पतीन् ।
अदूषयच्छकृन्मूत्रैरग्नीन् वैतानिकान् खलः ॥ ६ ॥

आश्रमान् ऋषिमुख्यानां कृत्वा भग्न वनस्पतीन् अदूषयत् शकृत् मूत्रैः अग्नीन् वैतानिकान् खलः ॥६॥

खलः	वह दुष्ट	शकृत मूत्रैः	मल-मूत्रसे
ऋषिमुख्यानां	प्रमुख ऋषियोंके	वैतानिकान्	यज्ञीय
आश्रमान्	आश्रमोंके	अग्नीन्	अग्नियोंको
वनस्पतीन्	वृक्षोंको	अदूषयत्	दूषित कर देता था ॥६॥
भग्न कृत्वा	उखाड़ कर		

पुरुषान् योषितो दृप्तः क्ष्माभृद्द्रोणीगुहासु सः ।
निक्षिप्य चाप्यधाच्छैलैः पेशस्कारीव कीटकम् ॥ ७ ॥

पुरुषान् योषितः दृप्तः क्ष्माभृत् द्रोणी गुहासु सः निक्षिप्य च अपि धात् शैलैः पेशस्कारी इव कीटकम् ॥७॥

पेशस्कारी	भृङ्गी कीड़ा	सः दृप्तः	वह मदोन्मत्त
कीटकं इव	जैसे दूसरे कीड़ोंको (बन्द करता है)	पुरुषान् योषितः	पुरुष और स्त्रियों को

क्षमाभृत् द्रोणी	पर्वतोंकी तलहटी की	शैलैः च अपि धात्	पर्वतोंसे ही बन्द कर देता था
गुहासु निक्षिप्य	गुफाओंमें फेंककर		॥७॥

एवं देशान् विप्रकुर्वन् दूषयंश्च कुलस्त्रियः ।
श्रुत्वा सुललितं गीतं गिरिं रैवतकं ययौ ॥ ८ ॥

एवं देशान् विप्रकुर्वन् दूषयन् च कुलस्त्रियः श्रुत्वा सुललितं गीतं गिरिं रैवतकं ययौ ॥८॥

एवं देशान्	इस प्रकार प्रदेशोंको	श्रुत्वा	सुनकर
विप्रकुर्वन्	उजाड़ता हुआ	रैवतकं	रैवतक
च कुलस्त्रियः	तथा कुलीना स्त्रियों को	गिरिं ययौ	पर्वत पर गया ॥८॥
दूषयन्	दूषित करता		
सुललितं गीतं	अत्यन्त सुन्दर गायन		

तत्रापश्यद् यदुपतिं रामं पुष्करमालिनम् ।
सुदर्शनीयसर्वाङ्गम् ललनायूथमध्यगम् ॥ ९ ॥

तत्र पश्यत् यदुपतिं रामं पुष्कर मालिनं सुदर्शनीय सर्व अङ्गम् यलनायूथ मध्यगम् ॥९॥

तत्र	वहाँ	पुष्कर मालिनं	कमल मालाधारी
ललनायूथ मध्यगं	सुन्दरियोंके समूहके बीचमें चलते	यदुपतिं रामं	यदुपति बलरामजी को
सुदर्शनीय सर्व अङ्ग	सुन्दर दर्शन करने योग्य समस्त अंगों वाले	पश्यत्	देखा ॥९॥

गायन्तं वारुणीं पीत्वा मदविह्वललोचनम् ।
विभ्राजमानं वपुषा प्रभिन्नमिव वारणम् ॥१०॥

गायन्तं वारुणीं पीत्वा मदविह्वल लोचनं विभ्राजमानं वपुषा प्रभिन्नं इव वारणम् ॥१०॥

वारुणीं पीत्वा	वारुणी पीकर	वपुषा	अपने शरीरसे
मदविह्वल	मदसे विह्वल	विभ्राजमानं	अत्यन्त शोभित हो
लोचनं	नेत्र,		रहे थे ॥१०॥
गायन्तं	गाते हुए		
प्रभिन्नं	मद मस्त		
वारणं इव	गजके समान		

दुष्टः शाखामृगः शाखामारूढः कम्पयन् द्रुमान् ।
चक्रे किलकिलाशब्दमात्मानं सम्प्रदर्शयन् ॥११॥

दुष्टः शाखामृगः शाखां आरूढः कम्पयन् द्रुमान् चक्रे किलकिला शब्दं आत्मानं सम्प्रदर्शयन् ॥११॥

दुष्टः	वह दुष्ट	आत्मनं	अपनी
शाखामृगः	वानर	सम्प्रदर्शयन्	हेकड़ी दिखाता
शाखां आरूढः	शाखाओं पर चढ़-	किलकिला	किलकारी
	कर	शब्दं चक्रे	मारने लगा ॥११॥
द्रुमान् कम्पयन्	वृक्षोंको हिलाता		
	हुआ		

तस्य धाष्टर्यं कपेर्वीक्ष्य तरुण्यो जातिचापलाः ।
हास्यप्रिया विजहसुर्बलदेवपरिग्रहाः ॥१२॥

तस्य धाष्टर्यं कपेः वीक्ष्य तरुण्यः जातिचापलाः हास्यप्रियाः विजहसुः बलदेव परिग्रहाः ॥१२॥

तरुण्यः	तरुणियां	बलदेव	बलरामजी की
जातिचापलाः	स्वभावसे ही चपल एवं	परिग्रहाः	स्त्रियां
		तस्य कपेः	उस वानरकी
हास्यप्रिया	हास्यप्रिय होती हैं (अतः)	धाष्ट्यं वीक्ष्य	धृष्टता देखकर
		विजहसुः	हंसने लगीं ॥१२॥

ता हेलयामास कपिर्भ्रूक्षेपैः सम्मुखादिभिः ।
दर्शयन् स्वगुदं तासां रामस्य च निरीक्षतः ॥१३॥

ता हेलयामास कपिः भ्रूक्षेपैः सम्मुख आदिभिः दर्शयन् स्वगुदं तासां रामस्य च निरीक्षतः ॥१३॥

कपिः भ्रूक्षेपैः	वह वानर भौंहें मटकाकर	दर्शयन्	दिखलाता हुआ
		रामस्य च	बलरामजीके भी
सम्मुख	सामने	निरीक्षतः	देखते हुए
आदिभिः	आने आदिसे	ता हेलयामास	उनका अपमन करने लगा ॥१३॥
तासां स्वगुदं	उनको अपनी गुदा		

तं ग्राव्णा प्राहरत् क्रुद्धो बलः प्रहरतां वरः ।
स वञ्चयित्वा ग्रावाणं मदिराकलशं कपिः ॥१४॥

तं ग्राव्णा प्राहरत् क्रुद्धः बलः प्रहरतां वरः स वञ्चयित्वा ग्रावाणं मदिराकलशं कपिः ॥१४॥

प्रहरतां वरः	प्रहार करने वालोंमें श्रेष्ठ	स कपिः	उस बानरने
		ग्रावाणं	पत्थरोंको
क्रुद्धः बलः	कुपित बलरामजी ने	वञ्चयित्वा	बचाकर
तं ग्राव्णा	उसे पत्थर मारे; किन्तु	मदिराकलशं	मदिराके घड़ेको ॥१४॥

गृहीत्वा हेलयामास धूर्तस्तं कोपयन् हसन् ।
निर्भिद्य कलशं दुष्टो वासांस्यास्फालयद् बलम् ॥१५॥

गृहीत्वा हेलयामास धूर्तः तं कोपयन् हसन् निर्भिद्य कलशं दुष्टः वासांसि आस्फालयत् बलम् ॥१५॥

गृहीत्वा	उठा लिया,	हसन् कलशं	हँसते हुए कलशको
तं कोपयन्	उन्हें क्रुद्ध करता हुआ	निर्भिद्य	फोड़कर
		बलं वासांसि	बलरामजीके वस्त्र
धूर्तः दुष्टः	उस धूर्त दुष्टने	आस्फालयत्	फाड़ दिये ॥१५॥

कदर्थीकृत्य बलवान् विप्रचक्रे मदोद्धतः ।
तं तस्याविनयं दृष्ट्वा देशांश्च तदुपद्रुतान् ॥१६॥

कदर्थीकृत्य बलवान् विप्रचक्रे मद उद्धतः तं तस्य अविनयं दृष्ट्वा देशान् च तत् उपद्रुतान् ॥१६॥

मद उद्धतः	उस मदोन्मत्त	दृष्ट्वा च	देखकर और
बलवान्	बलवान्ने	तत् उपद्रुतान्	उसके द्वारा उपद्रव-ग्रस्त,
तं कदर्थीकृत्य	उनकी अवज्ञा करके		
विप्रचक्रे	अप्रिय किया (तब)	देशान्	प्रदेशोंका (स्मरण करके) ॥१६॥
तस्य अविनयं	उसकी धृष्टता		

क्रुद्धो मुसलमादत्त हलं चारिजिघांसया ।
द्विविदोऽपि महावीर्यः शालमुद्यम्य पाणिना ॥१७॥

क्रुद्धः मुसलं आदत्त हलं च अरि जिघांसया द्विविदः अपि महावीर्यः शालं उद्यम्य पाणिना ॥१७॥

क्रुद्धः	कुपित होकर	महावीर्यः	अत्यन्त बलवान
अरि जिघांसया	इस शत्रुको मार देनेके लिए	द्विविदः अपि	द्विविदने भी
		पाणिना	हाथमें
मुसलं च हलं	मूसल और हल	शालं उद्यम्य	शाल वृक्ष उठा
आदत्त	उठा लिए,		लिया ॥१७॥

अभ्येत्य तरसा तेन बलं मूर्ध्न्यताडयत् ।
तं तु संकर्षणो मूर्ध्नि पतन्तमचलो यथा ॥१८॥

अभ्येत्य तरसा तेन बलं मूर्धनि अताडयत् तं तु सङ्कर्षणः मूर्ध्नि पतन्तं अचलं यथा ॥१८॥

तरसा बलं	वेगपूर्वक बलराम-जीके	तं तु मूर्ध्नि	उसे तो सिरपर
		अचलः यथा	पर्वतके समान
अभ्येत्य	सामने आकर	पतन्तं	गिरते हुएको
तेन मूर्धनि	उससे सिर पर	संकर्षणः	बलरामजीने ॥१८॥
अताडयत्	प्रहार किया		

प्रतिजग्राह बलवान् सुनन्देनाहनच्च तम् ।
मुसलाहतमस्तिष्को विरेजे रक्तधारया ॥१९॥

प्रति जग्राह बलवान् सुनन्देन अहनत् च तं मुसल आहत मस्तिष्कः विरेजे रक्तधारया ॥१९॥

प्रति जग्राह	बीचमें ही पकड़ लिया	मुसल आहत	मुसलकी चोट लगनेसे
बलवान्	(फिर उन) बल-वानने	मस्तिष्कः	उसका सिर
		रक्तधारायां	रक्तकी धारासे
तं सुनन्देन	उसे (अपने मूसल) सुनन्दसे	विरेजे	(ऐसा) शोभित हुआ ॥१९॥
अहनत्	मारा		

गिरिर्यथा गैरिकया प्रहारं नानुचिन्तयन् ।
पुनरन्यं समुत्क्षिप्य कृत्वा निष्पत्रमोजसा ॥२०॥

गिरिः यथा गैरिकया प्रहारं न अनु चिन्तयन् पुनः अन्यं सम उत्क्षिप्य कृत्वा निष्पत्रं ओजसा ॥२०॥

यथा गैरिकया	जैसे गेरूकी (धारा) से	अनु चिन्तयन् न	फिर चिन्ता न करके
गिरिः	पर्वत,	पुनः अन्यं	फिर दूसरे (वृक्ष)-को
प्रहारं	प्रहारकी		

समम् उत्क्षिप्य	समूचा उखाड़कर	**कृत्वा**	करके ॥२०॥
ओजसा निष्पत्रं	बलपूर्वक पत्रहीन		

तेनाहनत् सुसंक्रुद्धस्तं बलः शतधाच्छिनत् ।
ततोऽन्येन रुषा जघ्ने तं चापि शतधाच्छिनत् ॥२१॥

तेन अहनत् सुसङ् क्रुद्धः तं बलः शतधा अच्छिनत् ततः अन्येन रुषा जघ्ने तं च अपि शतधा अच्छिनत् ॥२१॥

सुसङ् क्रुद्धः	अत्यन्त क्रोधसे	**अन्येन जघ्ने**	दूसरे (वृक्ष) से मारा
तेन अहनत्	उससे मारा	**तं च अपि**	उसे भी
तं बलः	उसे बलरामजीने	**शतधा**	सैकड़ों
शतधा	सैकड़ों	**अच्छिनत्**	टुकड़े कर दिये
अच्छिनत्	टुकड़े कर दिये,		॥२१॥
ततः रुषा	फिर क्रोधसे		

एवं युध्यन् भगवता भग्ने भग्ने पुनः पुनः ।
आकृष्य सर्वतो वृक्षान् निर्वृक्षमकरोद् वनम् ॥२२॥

एवं युध्यन् भगवता भग्ने भग्ने पुनः पुनः आकृष्य सर्वतः वृक्षान् निःवृक्षं अकरोत् वनम् ॥२२॥

एवं भगवता	इस प्रकार भगवान (बलराम) से	**सर्वतः वृक्षान्**	चारों ओरसे वृक्षों-को
युध्यन्	युद्ध करते हुए (उसने)	**आकृष्य**	खींचता (उखाड़ता)
पुनः पुनः	बार-बार	**वनं निः वृक्षं**	वनको वृक्षहीन
भग्ने भग्ने	(वृक्षके) टूट जाने-पर	**अकरोत्**	कर दिया ॥२२॥

ततोऽमुञ्चच्छिलावर्षं बलस्योपर्यमर्षितः ।
तत् सर्वं चूर्णयामास लीलया मुसलायुधः ॥२३॥

ततः अमुञ्चत् शिला वर्षं बलस्य उपरि अमर्षितः तत् सर्वं चूर्णयामास लीलया मुसल आयुधः ॥२३॥

तत्: अमर्षितः	तब असहनशील होकर	तत् सर्वं	उस सबको
बलस्य उपरि	बलरामजीके ऊपर	लीलया	लीला पूर्वक
शिला वर्षं	चट्टानोंकी वर्षा	चूर्णयामास	चूर्ण कर दिया ॥२३॥
अमुञ्चत्	करने लगा,		
मुसल आयुधः	मूसल अस्त्र वाले (बलरामजी)ने		

स बाहू तालसंकाशौ मुष्टीकृत्य कपीश्वरः ।
आसाद्य रोहिणीपुत्रं ताभ्यां वक्षस्यरूरुजत् ॥२४॥

स बाहू तालसङ्काशौ मुष्टी कृत्य कपीश्वरः आसाद्य रोहिणी पुत्रं ताभ्यां वक्षसि अरूरुजत् ॥२४॥

स कपीश्वरः	उस वानरराजने	आसाद्य	समीप आकर
तालसङ्काशौ	ताड़ वृक्षके समान	ताभ्यां वक्षसि	उनसे (उनकी) छाती पर
बाहू मुष्टी	हाथोंका घूँसा		
कृत्य	बनाकर	अरूरुजत्	चोट की ॥२४॥
रोहिणी पुत्रं	रोहिणी-नन्दनके		

यादवेन्द्रोऽपि तं दोर्भ्यां त्यक्त्वा मुसललाङ्गले ।
जत्रावभ्यर्दयत्क्रुद्धः सोऽपतद् रुधिरं वमन् ॥२५॥

यादवेन्द्रः अपि तं दोर्भ्यां त्यक्त्वा मुसल लाङ्गले जत्रा: अभ्यर्दयत् क्रुद्धः सः अपत् रुधिरं वमन् ॥२५॥

यादवेन्द्र अपि	यादवेन्द्र (बलरामजी) ने भी	मुसल लाङ्गलेत्यक्त्वा	मूसल-हल छोड़कर

क्रुद्धः दोर्भ्यां	क्रोध करके दोनों हाथोंसे	स रुधरं वमन्	(इससे) वह रक्त वमन करता
जत्रोः अभ्यर्दयत्	जत्रुको दबाया	अपतत्	गिर पड़ा ॥२५॥

चकम्पे तेन पतता सटङ्कः सवनस्पतिः ।
पर्वतः कुरुशार्दूल वायुना नौरिवाम्भसि ॥२६॥

चकम्पे तेन पतता सटङ्कः स वनस्पतिः पर्वतः कुरु शार्दूल वायुना नौः इव अम्भसि ॥२६॥

कुरु शार्दूल	कौरवसिंह !	सटङ्कः	सजल कुण्डों एवं
तेन पतता	उसके गिरनेसे	स वनस्पतिः	वृक्षोंके साथ
अम्भसि वायुना	जलमें आंधीके कारण	पर्वतः चकम्पे	पर्वत हिल उठा ॥२६॥
नौः इव	नौकाके समान		

जयशब्दो नमःशब्दः साधु साध्विति चाम्बरे ।
सुरसिद्धमुनीन्द्राणामासीत् कुसुमवर्षिणाम् ॥२७॥

जयशब्दः नमःशब्दः साधु साधु इति च अम्बरे सुरसिद्ध मुनीन्द्राणां आसीत् कुसुमवर्षिणाम् ॥२७॥

अम्बरे	आकाशसे	च साधु साधु	तथा 'अच्छा किया अच्छा किया
कुसुम वर्षिणाम्	पुष्प वर्षा करने वाले	इति आसीत्	ऐसी ध्वनि होने लगी ॥२७॥
सुरसिद्ध मुनीन्द्राणां	देवता, सिद्ध, मुनिश्रेष्ठोंकी		
जयशब्दः	जय-ध्वनि,		
नमःशब्दः	नमस्कार-ध्वनि		

एवं निहत्य द्विविदं जगद्व्यतिकरावहम् ।
संस्तूयमानो भगवाज्जनैः स्वपुरमाविशत् ॥२८॥

एवं निहत्य द्विविदं जगत् व्यतिकर आवहं संस्तूयमानः भगवान् जनैः स्वपुरं आविशत् ॥२८॥

एवं	इस प्रकार
जगत् व्यतिकर	संसारमें अव्यवस्था
आवहं	फैलाने वाले
द्विविदं निहत्य	द्विविदको मारकर
जनैः	लोगों द्वारा
संस्तूयमानः	प्रशंसित होते
भगवान्	भगवान बलराम
स्वपुरं आविशत्	अपने नगरमें आ गये ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्विविदवधो नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

अथ अष्टषष्टितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

दुर्योधनसुतां राजन् लक्ष्मणां समितिंजयः ।
स्वयंवरस्थामहरत् साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥ १ ॥

दुर्योधनसुतां राजन् लक्ष्मणां समितिञ्जयः स्वयंवरस्थां अहरत् साम्बः जाम्बवतीसुतः ॥१॥

राजन्	राजन्
समितिञ्जयः	समूहको जीतने वाले
जाम्बवतीसुतः	जाम्बवती-नन्दन
साम्बः	साम्बने
स्वयंवरस्थां	स्वयम्वरमें स्थिति
दुर्योधनसुतां	दुर्योधनकी पुत्री
लक्ष्मणां अहरत्	लक्ष्मणाका हरण कर लिया ॥१॥

कौरवाः कुपिता ऊचुर्दुर्विनीतोऽयमर्भकः ।
कदर्थीकृत्य नः कन्यामकामामहरद् बलात् ॥ २ ॥

कौरवाः कुपिता ऊचुः दुर्विनीतः अयं अर्भकः कदर्थीकृत्य नः कन्यां अकामां अहरत् बलात् ॥२॥

कुपिता कौरवाः	क्रुद्ध होकर कौरव
ऊचुः	बोले—
अयं अर्भकः	'यह बालक
दुर्विनीतः	ढीठ है
न कदर्थीकृत्य	हम सबको तुच्छ बनाकर
अकामां कन्यां	अपनेको न चाहने वाली कन्याका
बलात् अहरत	बलपूर्वक हरण किया है ॥२॥

बध्नीतेमं दुर्विनीतं किं करिष्यन्ति वृष्णयः ।
येऽस्मत्प्रसादोपचितां दत्तां नो भुञ्जते महीम् ॥ ३ ॥

बध्नीत इमं दुर्विनीतं किं करिष्यन्ति वृष्णयः ये अस्मत् प्रसाद उपचितां दत्तां नः भुञ्जते महीम् ॥३॥

इमं दुर्विनीतं	इस ढीठको
बध्नीत	बाँध लो,
वृष्णयः	वृष्णि-वंशी
किं करिष्यन्ति	क्या कर लेंगे
ये अस्मत्	जो हमारी
प्रासाद	कृपासे
उपचितां	सम्पन्ना
नः दत्तां	हमारी दी हुई
महीम् भुञ्जते	पृथ्वी (का राज) भोगते हैं ॥३॥

निगृहीतं सुतं श्रुत्वा यद्येष्यन्तीह वृष्णयः ।
भग्नदर्पाः शमं यान्ति प्राणा इव सुसंयताः ॥ ४ ॥

निगृहीतं सुतं श्रुत्वा यदि एष्यन्ति इह वृष्णयः भग्नदर्पाः शमं यान्ति प्राणाः इव सुसंयताः ॥४॥

सुतं निगृहीतं	पुत्रको बन्धनमें पड़ा
श्रुत्वा वृष्णयः	सुनकर वृष्णि-वंशी (यादव)
यदि इह	यदि यहाँ
एष्यन्ति	आवेंगे तो
भग्नदर्पाः	गर्व चूर होनेसे
सुसंयताः	अत्यन्त संयमित
प्राणाः इव	प्राणोंके समान
शमं यान्ति	शान्त हो जायेंगे' ॥४॥

इति कर्णः शलो भूरिर्यज्ञकेतुः सुयोधनः ।
साम्बमारेभिरे बद्धुं कुरुवृद्धानुमोदिताः ॥ ५ ॥

इति कर्णः शलः भूरिः यज्ञकेतुः सुयोधनः साम्बं आरेभिरे बद्धुं कुरुवृद्धा अनुमोदिताः ॥५॥

इति कुरुवृद्धा	इस प्रकार कौरव वृद्धोंसे
अनुमोदिता	अनुमोदित होकर
कर्णः शलः	कर्ण, शल
भूरिः यज्ञकेतुः	भूरिश्रवा, यज्ञकेतु और
सुयोधन	दुर्योधन
साम्बं बद्धुं	साम्बको बांधनेमें
आरेभिरे	सब ओरसे भिड़ गये ॥५॥

दृष्ट्वानुधावतः साम्बो धार्तराष्ट्रान् महारथः ।
प्रगृह्य रुचिरं चापं तस्थौ सिंह इवैकलः ॥ ६ ॥

दृष्ट्वा अनुधावतः साम्बः धार्तराष्ट्रान् महारथः प्रगृह्य रुचिरं चापं तस्थौ सिंह इव एकलः ॥६॥

धार्तराष्ट्रान्	धृतराष्ट्रके पुत्रोंको
अनुधावतः	अपने पीछे दौड़े आते
दृष्ट्वा	देखकर
महारथः	महारथी
साम्बः	साम्ब (अपना)
रुचिरं चापं	सुन्दर धनुष
प्रगृह्य	पकड़ कर
सिंह इव	सिंहके समान
एकलः तस्थौ	अकेले ही खड़े हो गये ॥६॥

तं ते जिघृक्षवः क्रुद्धास्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणः ।
आसाद्य धन्विनो बाणैः कर्णाग्रण्यः समाकिरन् ॥ ७ ॥

तं ते जिघृक्षवः क्रुद्धाः तिष्ठ तिष्ठ इति भाषिणः आसाद्य धन्विनः बाणैः कर्ण अग्रण्यः सम आकिरन् ॥७॥

ते क्रुद्धाः	वे कुपित
जिघृक्षवः	पकड़नेकी इच्छा वाले
कर्ण अग्रण्यः	कर्णके सेनापतित्व वाले
धन्विनः	धनुषधारी

तिष्ठ तिष्ठ	'ठहर ! ठहर !'	नम आकिरन्	अच्छी बौछार
इति भाषिणः	ऐसा कहते हुए		करने लगे ॥७॥
तं बाणैः	उन बाणोंकी		

सोऽपविद्धः कुरुश्रेष्ठ कुरुभिर्यदुनन्दनः ।
नामृष्यत्तदचिन्त्यार्भः सिंहः क्षुद्रमृगैरिव ॥ ८ ॥

सः अपविद्धः कुरुश्रेष्ठ कुरुभिः यदुनन्दनः न अमृष्यत् तत् अचिन्त्य अर्भः सिंहः क्षुद्र मृगैः इव ॥८॥

कुरुश्रेष्ठ	कुरुश्रेष्ठ परीक्षित !	क्षुद्र मृगैः	क्षुद्र पशुओंको
कुरुभिः	कौरवों द्वारा	सिंहः इव	सिंहके समान
अपविद्धः	आक्रान्त होने पर	न अमृष्यत्	नहीं सह सका ॥८॥
सः यदुनन्दनः	वह यदुनन्दन		
अचिन्त्य अर्भः	अचिन्त्य श्रीकृष्ण-पुत्र		

विस्फूर्ज्य रुचिरं चापं सर्वान् विव्याध सायकैः ।
कर्णादीन् षड्रथान् वीरांस्तावद्भिर्युगपत् पृथक् ॥९॥

विस्फूर्ज्य रुचिरं चापं सर्वान् विव्याध सायकैः कर्ण आदीन् षट् रथान् वीरान् तावद्भिः युगपत् पृथक् ॥९॥

रुचिरं चाप	(अपने) सुन्दर धनुषकी	तावत्	उतने ही (६-६)
विस्फूर्ज्य	टंकार करके	भिः सायकैः	बाणोंने
कर्ण आदीन्	कर्णादि	सर्वान् पृथक्	सबको अलग-अलग
षट्	छहों	युगपत् विव्याध	एक साथ बेध दिया ॥९॥
रथान् वीरान्	वीर महारथियोंको		

चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकैकेन च सारथीन् ।
रथिनश्च महेष्वासांस्तस्य तत्तेऽभ्यपूजयन् ॥१०॥

चतुः भिः चतुरः वाहान् एक एकेन च सारथीन् रथिनः च महेष्वासान् तस्य तत् ते अभ्यपूजयन् ॥१०॥

चतुः भिः	चार-चार बाणोंसे	रथिनः	राथियोंका
चतुरः वाहान्	चार-चार घोड़ोंको	तस्य ते	उसके इस (पराक्रम) की वे
च एक एकेन	तथा एक-एकसे	अभ्यपूजयन्	प्रशंसा करने लगे ॥१०॥
सारथीन्	सारथियोंको		
च महेष्वासान्	तथा महा धनुर्धर		

तं तु ते विरथं चक्रुश्चत्वारश्चतुरो हयान् ।
एकस्तु सारथिं जघ्ने चिच्छेदान्यः शरासनम् ॥११॥

तं तु ते विरथं चक्रुः चत्वारः चतुरः हयान् एकः तु सारथिं जघ्ने चिच्छेद अन्यः शरासनम् ॥११॥

तु चत्वारः	उनमें से चारने तो	अन्यः शरासनं	दूसरेने धनुषको
चतुरः हयान्	चारों घोड़ोंको और	चिच्छेद	काट दिया (इस प्रकार
एकः तु	एक तो	तं ते	उसको उन्होंने
सारथिं जघ्ने	सारथिको मार दिया	विरथं चक्रुः	रथहीन कर दिया ॥११॥

तं बद्ध्वा विरथीकृत्य कृच्छ्रेण कुरवो युधि ।
कुमारं स्वस्य कन्यां च स्वपुरं जयिनोऽविशन् ॥१२॥

तं बद्ध्वा विरथीकृत्य कृच्छ्रेण कुरवः युधि कुमारं स्वस्य कन्यां च स्वपुरं जयिनः आविशन् ॥१२॥

कृच्छ्रेण युधि	कठिनाईसे युद्धमें	जयिनः कुरवः	विजयी कौरव
विरथीकृत्य	रथहीन करके	कुमारं च	कुमार तथा
तं कुमारं बध्वा	उनको बाँधकर		

स्वस्यै कन्यां	अपनी कन्या (के साथ)	स्वपुरं आविशन्	अपने नगर लौट आये ॥१२॥

तच्छ्रुत्वा नारदोक्तेन राजन् संजातमन्यवः ।
कुरून् प्रत्युद्यमं चक्रुरुग्रसेनप्रचोदिताः ॥१३॥

तत् श्रुत्वा नारद उक्तेन राजन् सञ्जात मन्यवः कुरून् प्रति उद्यमं चक्रुः उग्रसेन प्रचोदिताः ॥१३॥

राजन्	राजन् !	उग्रसेन	(महाराज) उग्रसेन द्वारा
नारद उक्तेन	नारदजीके कहनेसे	प्रचोदिताः	प्रेरित होकर
तत् श्रुत्वा	वह समाचार सुनकर	कुरून् प्रति	कौरवोंके विरुद्ध
सञ्जात	कुपित	उद्यमं चक्रुः	उद्योग करने लगे ॥१३॥
मन्यवः	हुए (यादव)		

सान्त्वयित्वा तु तान् रामः संनद्धान् वृष्णिपुङ्गवान् ।
नैच्छत् कुरूणां वृष्णीनां कलिं कलिमलापहः ॥१४॥

सान्त्वयित्वा तु तान् रामः सन्नद्धान् वृष्णि पुङ्गवान् न इच्छत् कुरूणां वृष्णीनां कलिं कलिमल अपहः ॥१४॥

कलिमल अपहः	कलि कलुष नाशक	न इच्छात्	न चाहते हुए
रामः कुरूणां	बलरामजी कौरवों का और	तान् सन्नद्धान्	(युद्धको) प्रस्तुत
वृष्णीनां कलिं	वृष्णिवंशियोंका झगड़ा	वृष्णि	यादव
		पुङ्गवान् तु	श्रेष्ठोंको तो
		सान्त्वयित्वा	समझाकर ॥१४॥

जगाम हास्तिनपुरं रथेनादित्यवर्चसा ।
ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च वृतश्चन्द्र इव ग्रहैः ॥१५॥

जगाम हस्तिनपुरं रथेन आदित्य वर्चसा ब्राह्मणैः कुलवृद्धैः च वृतः चन्द्र इव ग्रहैः ॥१५॥

ग्रहैः चन्द्र इव	ग्रहोंसे चन्द्रमाके समान	रथेन	रथसे
ब्राह्मणैः च	ब्राह्मणों तथा	हस्तिनपुरं	हस्तिनापुरको
कुलवृद्धैः वृतः	कुलके बड़ोंसे घिरे हुए	जगाम	प्रस्थान किया ॥१५॥
आदित्य वर्चसा	सूर्यके समान कान्तिवाले		

गत्वा गजाह्वयं रामो बाह्योपवनमास्थितः ।
उद्धवं प्रेषयामास धृतराष्ट्रं बुभुत्सया ॥१६॥

गत्वा गजाह्वयं रामः बाह्य उपवनं आस्थितः उद्धवं प्रेषयामास धृतराष्ट्रं बुभुत्सया ॥१६॥

गजाह्वयं गत्वा	हस्तिनापुर जाकर	बुभुत्सया	समाचार जाननेकी इच्छासे
बाह्य उपवनं	बाहरी बगीचेमें	धृतराष्ट्रं	धृतराष्ट्रके पास
आस्थितः	ठहरकर	प्रेषयामास	भेजा ॥१६॥
रामः उद्धवं	बलरामजीने उद्धवको		

सोऽभिवन्द्याम्बिकापुत्रं भीष्मं द्रोणं च बाह्लिकम् ।
दुर्योधनं च विधिवद् राममागतमब्रवीत् ॥१७॥

सः अभिवन्द्य अम्बिकापुत्रं भीष्मं द्रोणं च बाह्लिकं दुर्योधनं च विधिवत् रामं आगतं अब्रवीत् ॥१७॥

सः विधिवत्	उन्होंने विधिपूर्वक	दुर्योधनं च	दुर्योधनको भी
अम्बिकापुत्रं	अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र	अभिवन्द्य	अभिवादन करके
भीष्मं द्रोणं	भीष्म, द्रोणाचार्य	रामं आगतं	बलरामजीको आया
च बाह्लिकं	और बह्लिक	अब्रवीत्	बतलाया ॥१७॥

तेऽतिप्रीतास्तमाकर्ण्य प्राप्तं रामं सुहृत्तमम् ।
तमर्चयित्वाभिययुः सर्वे मङ्गलपाणयः ॥१८॥

ते अति प्रीताः तं आकर्ण्य प्राप्तं रामं सुहृत् तमं तं अर्चयित्वा अभिययुः सर्वे मङ्गल पाणयः ॥१८॥

ते तं सुहृत् तमं	वे उन अत्यन्त सुहृद
रामं प्राप्तं	बलरामजीको आया
आकर्ण्य	सुनकर
अति प्रीताः	बहुत प्रसन्न हुए
तं अर्चयित्वा	उन (उद्धव)का सत्कार करके
सर्वे मङ्गल पाणयः	सब हाथोंमें मङ्गल द्रव्य लेकर
अभिययुः	(बलरामजीके) समीप आये ॥१८॥

तं संगम्य यथान्यायं गामर्घ्यं च न्यवेदयन् ।
तेषां ये तत्प्रभावज्ञाः प्रणेमुः शिरसा बलम् ॥१९॥

तं सङ्गम्य यथान्यायं गां अर्घ्यं च न्यवेदयन् तेषां ये तत् प्रभावज्ञाः प्रणेमुः शिरसा बलम् ॥१९॥

यथान्यायं	औचित्यके अनुसार
तं सङ्गम्य	उनसे मिलकर
गां च अर्घ्यं	गाय और अर्घ्य
निवेदयन्	निवेदन किया
तेषां ये	उनमें जो
तत् प्रवावज्ञाः	उनके प्रभावको जानने वाले थे
बलं	बलरामजीको (उन्होंने)
शिरसा प्रणेमुः	सिर झुकाकर प्रणाम किया ॥१९॥

बन्धून् कुशलिनः श्रुत्वा पृष्ट्वा शिवमनामयम् ।
परस्परमथो रामो बभाषेऽविक्लवं वचः ॥२०॥

बन्धून कुशलिनः श्रुत्वा पृष्ट्वा शिवं अनामयं परस्परं अथो रामः बभाषे अविक्लवं वचः ॥२०॥

परस्परं	आपसमें	**अथो रामः**	फिर बलरामजी
शिव अनामयं	मंगल तथा स्वस्थता	**अविक्लवं**	व्याकुलताहीन
पृष्ट्वा	पूछकर	**वचः बभाषे**	वाणीसे बोले
बन्धून्	सम्बन्धियोंको		॥२०॥
कुशलिनः	सकुशल		
श्रुत्वा	सुनकर		

उग्रसेनः क्षितीशेशो यद् व आज्ञापयत् प्रभुः ।
तदव्यग्रधियः श्रुत्वा कुरुध्वं माविलम्बितम् ॥२१॥

उग्रसेनः क्षितीश ईशः यत् वः आज्ञापयत् प्रभुः तत् अव्यग्र धियः श्रुत्वा कुरुध्वं मा विलम्बितम् ॥२१॥

प्रभुः	समर्थ	**तत्**	उसे
क्षितीश ईशः	राजाधिराज	**अव्यग्र धियः**	अचंचल चित्तसे
उग्रसेनः	उग्रसेनजी	**श्रुत्वा कुरुध्वं**	सुनकर पालन करो
यत् वः	जो आप लोगोंको	**मा विलम्बितं**	देर मत करो
आज्ञापयत्	आज्ञा दे रहे हैं		॥२१॥

यद् यूयं बहवस्त्वेकं जित्वाधर्मेण धार्मिकम् ।
अबध्नीताथ तन्मृष्ये बन्धूनामैक्यकाम्यया ॥२२॥

यत् यूयं बहवः तु एकं जित्वा अधर्मेण धार्मिकं अबध्नीत अथ तत् मृष्ये बन्धूनां ऐक्य काम्यया ॥२२॥

यत् बहवः	जो बहुतसे	**एकं धार्मिकं**	अकेले धर्मात्माको
यूयं तु	तुम लोगोंने	**जित्वा**	जीतकर
अधर्मेण	अधर्म पूर्वक	**अबध्नीत**	बाँध लिया है

अथ तत्	अब इसे तो	मृष्ये	(हमने) सहन कर
बन्धूनां	सम्बन्धियोंमें		लिया' ॥२२॥
ऐक्य काम्यया	एकता रखनेकी		
	इच्छासे		

वीर्यशौर्यबलोन्नद्धमात्मशक्तिसमं वचः ।
कुरवो बलदेवस्य निशम्योचुः प्रकोपिताः ॥२३॥

वीर्य शौर्य बल उन्नद्धं आत्मशक्ति समं वचः कुरवः बलदेवस्य निशम्य ऊचुः प्रकोपिताः ॥२३॥

कुरवः	कौरव	समं वचः	समान वाणी
बलदेवस्य	बलरामजीकी	निशम्य	सुनकर
वीर्य शौर्य	पराक्रम, शूरता	प्रकोपिताः	बहुत कुपित होकर
बल उन्नद्धं	बलसे परिपूर्ण	ऊचुः	बोले ॥२३॥
आत्मशक्ति	अपनी शक्तिके		

॥ कुरवोऊचुः ॥*

अहो महच्चित्रमिदं कालगत्या दुरत्यया ।
अरुरुक्षत्युपानद् वै शिरो मुकुटसेवितम् ॥२४॥

अहो महत् चित्रं इदं कालगत्या दुः अत्यया आरुरुक्षति उपानत् वै शिरः मुकुट सेवितम् ॥२४॥

अहो	अहो	वै उपानत्	निश्चय जूता
महत् चित्रं	बहुत विचित्र बात	मुकुट सेवितं	मुकुटसे सेवित
	है	शिरः	सिर पर
कालगत्या	कालकी गति	आरुरुक्षति	चढ़ना चाहता है
दुः अत्यया	दुर्लघ्य है		॥२४॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

एते यौनेन सम्बद्धाः सहशय्यासनाशनाः ।
वृष्णयस्तुल्यतां नीता अस्मद्दत्तनृपासनाः ॥२५॥

एते यौनेन सम्बद्धाः सह शय्या आसन अशनाः वृष्णयः तुल्यतां नीता अस्मत् दत्त नृप आसनाः ॥२५॥

एते वृष्णयः	ये यादव	तुल्यतां नीता	बराबर बना लिये गये
यौनेन सम्बद्धाः	वैवाहिक सम्बन्धसे सम्बन्धी हो गये	अस्मत दत्त	हमारा दिया
शय्या आसन	सोने, बैठने,	नृप आसनाः	राज्यासन (इनके पास है) ॥२५॥
अशनाः	भोजनमें		

चामरव्यजने शङ्खमातपत्रं च पाण्डुरम् ।
किरीटमासनं शय्यां भुञ्जन्त्यस्मदुपेक्षया ॥२६॥

चामर व्यजने शङ्खं आतपत्रं च पाण्डुरं किरीटं आसनं शय्यां भुञ्जन्ति अस्मत् उपेक्षया ॥२६॥

अस्मत् उपेक्षया	हमारे उपेक्षा (कर देने)से	पाण्डुरं आतपत्रं	श्वेत छत्र
चामर व्यजने	चामर, व्यञ्जन	किरीटं आसनं	मुकुट, सिंहासन
शङ्खं च	शंख और	शय्यां भुञ्जन्ति	शय्या भोगते हैं ॥२६॥

अलं यदूनां नरदेवलाञ्छने-
र्दातुः प्रतीपैः फणिनामिवामृतम् ।
येऽस्मत्प्रसादोपचिता हि यादवा
आज्ञापयन्त्यद्य गतत्रपा बत ॥२६॥

अलं यदूनां नरदेव लाञ्छनैः दातुः प्रतीपैः फणिनां इव अमृतं ये अस्मत् प्रसाद उपचिता हि यादवा आज्ञापयन्ति अद्य गतत्रपा बत ॥२७॥

फणिनां अमृतं	सर्पोंको अमृत
दातुः	देनेवालेके ही
प्रतीपैः इव	विरुद्ध होनेके समान
हि ये यादवा	क्योंकि जो यादव
अस्मत् प्रसाद	हमारी कृपासे
उपचिता	समृद्ध हुए
वै गतत्रपा	निश्चय निर्लज्ज होकर
बतं अद्य	अहो आज
आज्ञापयन्ति	(हमको ही) आज्ञा दे रहे हैं, अतः
यदूनां	यदुवंशियोंको
नरदेव	राजाओंके
लाञ्छनैः	चिह्न
अलं	बहुत हो गये (इनके छीन लेना चाहिए) ॥२७॥

कथमिन्द्रोऽपि कुरुभिर्भीष्मद्रोणार्जुनादिभिः ।
अदत्तमवरुन्धीत सिंहग्रस्तमिवोरणः ॥२८॥

कथं इन्द्रः अपि कुरुभिः भीष्म द्रोण अर्जुन आदिभिः अदत्तं अवरुन्धीत सिंहग्रस्तं इव उरणः ॥२८॥

सिंह ग्रस्तं	सिंहके पकड़े हुएको
उरणः इव	भेड़ेके समान
भीष्म द्रोण	भीष्म, द्रोणाचार्य
अर्जुन आदिभिः	अर्जुन आदि
कुरुभि अदत्तं	कौरवोंके दिये बिना
इन्द्रः अपि कथं	इन्द्र भी कैसे
अवरुन्धीत	(कोई वस्तु) भोग सकता है ॥२८॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

जन्मबन्धुश्रियोन्नद्धमदास्ते भरतर्षभ ।
आश्राव्य रामं दुर्वाच्यमसभ्याः पुरमाविशन् ॥२९॥

जन्म बन्धु श्रिय उन्नद्ध मदाः ते भरत ऋषभ आश्राव्य रामं दुर्वाच्यं असभ्याः पुरं आविशन् ॥२९॥

भरत ऋषभ	भरत श्रेष्ठ !
जन्म बन्धु श्रिय	कुल कुटुम्ब, धनसे
उन्नद्ध मदाः	बढ़े घमण्ड वाले
ते असभ्याः	वे असभ्य
रामं दुर्वाच्यं	बलरामजीको दुर्वचन
आश्राव्य	सुनाकर
पुरं आविशन्	नगरमें चले गये ॥२६॥

दृष्ट्वा कुरूणां दौःशील्यं श्रुत्वावाच्यानि चाच्युतः ।
अवोचत् कोपसंरब्धो दुष्प्रेक्ष्यः प्रहसन् मुहुः ॥३०॥

दृष्ट्वा कुरूणां दौःशीलं श्रुत्वा अवाच्यानि च अच्युतः अवोचत् कोप संरब्धः दुष्प्रेक्ष्यः प्रहसन् मुहुः ॥३०॥

कुरूणां दौःशीलं	कौरवोंकी कुटिलता
दृष्ट्वा च	देखकर तथा
अवाच्यानि	न कहने योग्य वचन
श्रुत्वा	सुनकर
कोपसंरब्धः	क्रोधावेशसे
दुष्प्रेक्ष्यः	देखना कठिन हो गयी आकृति वाले
अच्युतः	अच्युत बलरामजी
मुहुः प्रहसन्	बार-बार अट्टहास करते
अवोचत्	कहने लगे ॥३०॥

नूनं नानामदोन्नद्धाः शान्ति नेच्छन्त्यसाधवः ।
तेषां हि प्रशमो दण्डः पशूनां लगुडो यथा ॥३१॥

नूनं नाना मद उन्नद्धाः शान्ति न इच्छन्ति असाधवः तेषां हि प्रशमः दण्डः पशूनां लगुडः यथा ॥३१॥

नाना	नाना प्रकारके
मद उन्नद्धाः	मदोंसे उन्नत
असाधवः	दुष्ट लोग
नूनं शान्ति	निश्चय शान्ति
न इच्छन्ति	नहीं चाहते
हि तेषां	क्योंकि उनको

प्रशमः दण्डः	शान्त करनेका (उपाय) दण्ड ही है	यथा पशूनां लगुडः	जैसे पशुओंके लिए डण्डा ॥३१॥

अहो यदून् सुसंरब्धान् कृष्णं च कुपितं शनैः ।
सान्त्वयित्वाहमेतेषां शममिच्छन्निहागतः ॥३२॥

अहो यदून् सुसंरब्धान् कृष्णं च कुपितं शनैः सान्त्वयित्वा अहं एतेषां शमं इच्छन् इह आगतः ॥३२॥

अहो सुसंरब्धान्	अहो अत्यन्त उत्तेजित	एतेषां	इनकी ही
यदून् च कुपितं	यादवोंको तथा क्रुद्ध	शमं इच्छन्	शान्तिकी इच्छासे
कृष्णं	श्रीकृष्णको	अहं इह आगतः	मैं यहाँ आया ॥३२॥
शनैः	धीरे-धीरे		
सान्त्वयित्वा	समझाकर		

त इमे मन्दमतयः कलहाभिरताः खलाः ।
तं मामवज्ञाय मुहुर्दुर्भाषान् मानिनोऽब्रुवन् ॥३३॥

त इमे मन्दमतयः कलह अभिरताः खलाः तं मां अवज्ञाय मुहुः दुर्भाषान् मानिनः अब्रुवन् ॥३३॥

त इमे	वे ये	तं मां अवज्ञाय	उस मेरी अवज्ञा करके
मन्दमतयः	मन्दमति	मुहुः दुर्भाषान्	बार-बार दुर्वचन
कलह	कलह	अब्रुवन्	कहते रहे ॥३३॥
अभिरताः	प्रिय		
खलाः मानिनः	दुष्ट घमण्डी		

नोग्रसेनः किल विभुर्भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः ।
शक्रादयो लोकपाला यस्यादेशानुवर्तिनः ॥३४॥

न उग्रसेनः किल विभुः भोज वृष्णि अन्धक ईश्वरः शक्र आद्यः लोकपाला यस्य आदेश अनुवर्तिनः ॥३४॥

शक्र आदयः	इन्द्रादि	**विभुः न**	सम्राट् नहीं हैं (केवल)
लोकपाला	लोकपाल	**भोज वृष्णि**	भोज, वृष्णि,
यस्य आदेश	जिनकी आज्ञाके	**अन्धक ईश्वरः**	अन्धक वंशियोंके स्वामी हैं ? ॥३४॥
अनुवर्तिनः	अनुसार चलने वाले हैं		
किल उग्रसेनः	अहो वे उग्रसेनजी		

सुधर्माऽऽक्रम्यते येन पारिजातोऽमराङ्घ्रिपः ।
आनीय भुज्यते सोऽसौ न किलाध्यासनार्हणः ॥३५॥

सुधर्मा आक्रम्यते येन पारिजातः अमर अंघ्रिपः आनीय भुज्यते सः असौ न किल अध्यासन अर्हणः ॥३५॥

येन सुधर्मा	जिनके द्वारा (देव सभा) सुधर्मा	**सः असौ किल**	वही ये (श्रीकृष्ण) अहो
आक्रम्यते	आक्रान्त होती है,	**अध्यासन**	राजसिंहासनके
अमर अंघ्रिपः	देववृक्ष	**अर्हणः न**	योग्य नहीं है ? ॥३५॥
पारिजातः	कल्पवृक्ष		
आनीय भुज्यते	लाकर भोगा जाता है		

यस्य पादयुगं साक्षात् श्रीरुपास्तेऽखिलेश्वरी ।
स नार्हति किल श्रीशो नरदेवपरिच्छदान् ॥३६॥

यस्य पादयुगं साक्षात् श्रीः उपास्ते अखिल ईश्वरी स न अर्हति किल श्रीशः नरदेव परिच्छदान् ॥३६॥

यस्य पादयुगं	जिनके चरण-युगल की	**साक्षात् श्रीः**	साक्षात् लक्ष्मी
अखिलः ईश्वरी	सर्वेश्वरी	**उपास्ते**	सेवा करती हैं
		स श्रीशः किल	वे लक्ष्मीनाथ अहो

नरदेव परिच्छदान्	राजाओंके उपकरण	अर्हति न	पाने योग्य नहीं हैं ? ॥३६॥

यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजोऽखिललोकपालै-
र्मौल्युत्तमैर्धृतमुपासिततीर्थतीर्थम् ।
ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः
श्रीश्चोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क्व ॥३७॥

यस्य अंघ्रि पङ्कज रजः अखिल लोकपालैः मौलि उत्तमैः धृतं उपासित तीर्थं तीर्थं ब्रह्मा भवः अहं अपि यस्य कलाः कलायाः श्रीः च उद्वहेम चिरं अस्य नृप आसनं क्व ॥३७॥

यस्य अंघ्रि पङ्कज रजः	जिनके चरण-कमलकी रज	अहं अपि	तथा मैं भी
अखिल लोकपालैः	समस्त लोकपालों द्वारा	श्रीः च	एवं लक्ष्मी
मौलि उत्तमैः	सिरके श्रेष्ठ मुकुट पर	यस्य कलायाः कलाः	जिनके अंशके अंशसे (उत्पन्न) होकर
धृतं उपासित	धारण करके सेवित होती है	चिरं उद्वहेम	अनन्त कालसे (वह चरण-रज) धारण करते हैं
तीर्थं तीर्थं	और तीर्थोंको भी पवित्र करने वाली है	अस्य	इन (श्रीकृष्ण)के लिए
ब्रह्मा भवः	ब्रह्मा; शिव	नृप आसनं क्व	राज्यासन होता क्या है ॥३७॥

भुञ्जते कुरुभिर्दत्तं भूखण्डं वृष्णयः किल ।
उपानहः किल वयं स्वयं तु कुरवः शिरः ॥३८॥

भुञ्जते कुरुभिः दत्तं भूखण्डं वृष्णयः किल उपानहः किल वयं स्वयं तु कुरवः शिरः ॥३८॥

किल कुरुभिः	अहो कौरवोंका	उपानहः	जूते हैं
दत्तं	दिया	तु स्वयं	और स्वयं
भूखण्डं	भूमिका टुकड़ा	कुरवः शिरः	कौरव मस्तक हैं
वृष्णयः भुञ्जते	यादव भोगते हैं		॥३८॥
किल वयं	अहो, हम लोग		

अहो ऐश्वर्यमत्तानां मत्तानामिव मानिनाम् ।
असम्बद्धा गिरो रूक्षाः कः सहेतानुशासिता ॥३९॥

अहो ऐश्वर्य मत्तानां मत्तानां इव मानिनां असम्बद्धा गिरः रूक्षाः कः सहेत अनुशासिता ॥३९॥

अहो ऐश्वर्य	अहो, ऐश्वर्य	रूक्षाः गिरः	रूखी बातें
मत्तानां	मदोन्मत्त	अनुशासिता	(इनका) शासन
मानिनां	अभिमानी		करनेमें समर्थ
मत्तानां इव	उन पागलोंके	कः सहेत	कौन सहन करेगा
	समानोंकी		॥३९॥
असम्बद्धा	बेसिर पैरकी		

अद्य निष्कौरवीं पृथ्वीं करिष्यामीत्यमर्षितः ।
गृहीत्वा हलमुत्तस्थौ दहन्निव जगत्त्रयम् ॥४०॥

अद्य निष्कौरवीं पृथ्वीं करिष्यामि इति अमर्षितः गृहीत्वा हलं उत्तस्थौ दहन् इव जगत् त्रयम् ॥४०॥

अद्य पृथ्वी	(अतः) आज पृथ्वी	जगत् त्रयं	तीन लोकोंको
	को	दहन् इव	भस्म करते हुए से
निष्कौरवीं	कौरवहीन	हलं गृहीत्वा	हल लेकर
करिष्यामि	कर दूंगा'	उत्तस्थौ	उठ खड़े हुए ॥४०॥
इति अमर्षितः	इस प्रकार असहन-		
	शील होकर		

लाङ्गलाग्रेण नगरमुद्विदार्य गजाह्वयम् ।
विचकर्ष स गङ्गायां प्रहरिष्यन्नमर्षितः ॥४१॥

लाङ्गल अग्रेण नगरं उद् विदार्य गज आह्वयं विचकर्ष स गङ्गायां प्रहरिष्यन् अमर्षितः ॥४१॥

अमर्षितः	असहनशील हो उठे थे अतः	लाङ्गल अग्रेण	हलकी नोंकसे
		उद् विदार्य	उखाड़कर
गज आह्वयं नगरं	हस्तिनापुरको	गङ्गायां	गंगाकी ओर
प्रहरिष्यन्	नष्ट करनेके लिए	विचकर्ष	खींचने लगे ॥४१॥

जलयानमिवाघूर्णं गङ्गायां नगरं पतत् ।
आकृष्यमाणमालोक्य कौरवा जातसम्भ्रमाः ॥४२॥

जलयानं इव आघूर्णं गङ्गायां नगरं पतत् आकृष्यमाणं आलोक्य कौरवा जात सम्भ्रमाः ॥४२॥

आकृष्यमाणं	खींचे जाते हुए	आलोक्य	देखकर
गङ्गायां पतत्	गंगामें गिरते	कौरवा	कौरव
नगरं	नगरको	जात सम्भ्रमाः	घबड़ाहटमें पड़ गये ॥४२॥
जलयानं इव	नौकाके समान		
आघूर्णं	घूमता		

तमेव शरणं जग्मुः सकुटुम्बा जिजीविषवः ।
सलक्ष्मणं पुरस्कृत्य साम्बं प्राञ्जलयः प्रभुम् ॥४३॥

तं एव शरणं जग्मुः सकुटुम्बा जिजीविषवः सलक्ष्मणं पुरस्कृत्य साम्बं प्राञ्जलयः प्रभुम् ॥४३॥

जिजीविषवः	जीनेकी इच्छासे	सलक्ष्मणं	लक्ष्मणाके साथ
सकुटुम्बा	कुटुम्बके साथ		

साम्बं	साम्बको	तं एव प्रभुं	उन्हीं समर्थकी
पुरस्कृत्य	आगे करके	शरणं जग्मुः	शरणमें हो गये
प्राञ्जलयः	हाथ जोड़कर		॥४३॥

॥ कौरवा ऊचुः ॥*

राम रामाखिलाधार प्रभावं न विदाम ते ।
मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षन्तुमर्हस्यतिक्रमम् ॥४४॥

राम राम अखिल आधार प्रभावं न विदाम ते मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षन्तुं अर्हसि अतिक्रमम् ॥४४॥

राम	बलरामजी !	कुबुद्धीनां	दुर्बुद्धियों (द्वारा हुयी)
अखिल आधार	सर्वाधार	अतिक्रमं	अवज्ञाको
राम	बलरामजी !	क्षन्तुं अर्हसि	(आपको) क्षमा कर देना चाहिए
ते प्रभावं	आपका प्रभाव		॥४४॥
न विदाम	(हम) नहीं जानते		
नः मूढानां	हम मूर्खों		

स्थित्युत्पत्त्यप्ययानां त्वमेको हेतुर्निराश्रयः ।
लोकान् क्रीडनकानीश क्रीडतस्ते वदन्ति हि ॥४५॥

स्थिति उत्पत्ति अप्ययानां त्वं एकः हेतुः निराश्रयः लोकान् क्रीडनकान् ईश क्रीडतः ते वदन्ति हि ॥४५॥

एकः त्वं	अकेले आप	स्थिति उत्पत्ति	(जगत्की) स्थिति सृष्टि
निराश्रयः	बिना दूसरेकी सहायताके		

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अप्ययानां	प्रलयके	वदन्ति	(शास्त्र) बतलाते हैं ॥४५॥
हेतुः	कारण हैं		
हि लोकान्	क्योंकि लोकोंको		
क्रीडतः ते	खेलते हुए आपके		
क्रीडनकान्	खिलौने		

त्वमेव मूर्ध्नेदमनन्त लीलया
भूमण्डलं बिभर्षि सहस्रमूर्धन् ।
अन्ते च यः स्वात्मनि रुद्धविश्वः
शेषेऽद्वितीयः परिशिष्यमाणः ॥४६॥

त्वं एव मूर्ध्नि इदं अनन्त लीलया भूमण्डलं बिभर्षि सहस्रमूर्धन् अन्ते च यः स्व आत्मनि रुद्ध विश्वः शेषे अद्वितीयः परिशिष्यमाणः ॥४६॥

सहस्रमूर्धन्	सहस्रशीर्षा !	यः विश्वः	जो विश्वको
अनन्त	अनन्त !	आत्मनि रुद्ध	अपनेमें लीन करके
इदं भूमण्डलं	इस भूमण्डलको	परिशिष्यमाणः	एकमात्र बचे हुए
लीलया	लीला पूर्वक	अद्वितीयः शेषे	अद्वितीय रूपसे सोते हैं
मूर्ध्नि बिभर्षि	सिर पर धारण करते हैं,	त्वं एव	वे (नारायण भी) आप ही हैं ॥४६॥
च अन्ते	तथा प्रलय-काल में		

कोपस्तेऽखिलशिक्षार्थं न द्वेषान्न च मत्सरात् ।
बिभ्रतो भगवन् सत्त्वं स्थितिपालनतत्परः ॥४७॥

कोपः ते अखिल शिक्षा अर्थं न द्वेषात् न च मत्सरात् बिभ्रतः भगवन् सत्त्वं स्थिति पालन तत्परः ॥४७॥

भगवन्	भगवन् !	कोपः न द्वेषात्	क्रोध न द्वेषसे है,
सत्त्वं विभ्रतः	सत्त्व गुण धारण करके	च न मत्सरात्	और न मात्सर्यके कारण है
स्थिति पालन	(जगतकी) स्थिति और पालनमें	अखिल	सबको
तत्परः ते	लगे हुए आपका	शिक्षा अर्थं	शिक्षा देनेके लिए है ॥४७॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

नमस्ते सर्वभूतात्मन् सर्वशक्तिधराव्यय ।
विश्वकर्मन् नमस्तेऽस्तु त्वां वयं शरणं गताः ॥४८॥

नमः ते सर्वभूत आत्मन् सर्वशक्तिधर अव्यय विश्वकर्मन् नमः ते अस्तु त्वां वयं शरणं गताः ॥४८॥

सर्वभूत	सब प्राणियोंके	विश्वकर्मन्	विश्व-विधायक !
आत्मन्	आत्मा	ते नमः अस्तु	आपको नमस्कार हो
सर्वशक्तिधर	समस्त शक्तियोंके धारक	वयं त्वां	हम आपके
अव्यय	अविनाशी	शरणं गताः	शरणागत हैं ॥४८॥
ते नमः	आपको नमस्कार,		

एवं प्रपन्नैः संविग्नैर्वेपमानायनैर्बलः ।
प्रसादितः सुप्रसन्नो मा भैष्टेत्यभयं ददौ ॥४९॥

एवं प्रपन्नैः संविग्नैः वेपमान अयनैः बलः प्रसादितः सुप्रसन्नः मा भैष्ट इति अभयं ददौ ॥४९॥

वेपमान अयनैः	डगमगाते घरोंके कारण	संविग्नैः	अत्यन्त उद्विग्न होकर

एवं प्रपन्नैः	इस प्रकार शरणागतों द्वारा	बलः	बलरामजीने
		मा भैष्ट इति	'मत डरो' यह कह कर
प्रसादितः	प्रसन्न किये जाने पर	अभयं ददौ	अभय दे दिया ॥४९॥
सुप्रसन्नः	ठीक-ठीक प्रसन्न होकर		

दुर्योधनः पारिबर्हं कुञ्जरान् षष्टिहायनान् ।
ददौ च द्वादशशतान्ययुतानि तुरङ्गमान् ॥५०॥

दुर्योधनः पारिबर्हं कुञ्जरान् षष्टि हायनान् ददौ च द्वादश शतानि अयुतानि तुरङ्गमान् ॥५०॥

दुर्योधनः	दुर्योधनने	द्वादश शतानि	बारह सौ
पारिबर्हं	दहेजमें	कुञ्जरान्	हाथी
षष्टि हायनान्	साठ वर्षकी अवस्था वाले	च अयुतानि	तथा दस हजार
		तुरङ्गमान् ददौ	घोड़े दिये ॥५०॥

रथानां षट्सहस्राणि रौक्माणां सूर्यवर्चसाम् ।
दासीनां निष्ककण्ठीनां सहस्रं दुहितृवत्सलः ॥५१॥

रथानां षट् सहस्राणि रौक्माणां सूर्यवर्चसां दासीनां निष्ककण्ठीनां सहस्रं दुहितृ वत्सलः ॥५१॥

दुहितृ वत्सलः	उस पुत्री-वत्सलने	रथानां	रथ एवं
षट् सहस्राणि	छ सहस्र	निष्ककण्ठीनां	पदक गलेमें पहिने
रौक्माणां	स्वर्ण-मण्डित	दासीनां सहस्रं	एक सहस्र दासियां दीं ॥५१॥
सूर्यवर्चसां	सूर्यके समान कान्तियुक्त		

प्रतिगृह्य तु तत् सर्वं भगवान् सात्वतर्षभः ।
ससुतः सस्नुषः प्रागात् सुहृद्भिरभिनन्दितः ॥५२॥

प्रतिगृह्य तु तत् सर्वं भगवान् सात्वत् ऋषभः ससुतः सस्नुषः प्रागात् सुहृत् भिः अभिनन्दितः ॥५२॥

सात्वत ऋषभः	यादव श्रेष्ठ
भगवान्	भगवान (बलराम जी)
तत् सर्वं तु	वह सब कुछ
प्रतिगृह्य	लेकर
ससुतः सस्नुषः	पुत्र (साम्ब) के साथ तथा पुत्र वधू के साथ
सुहृत् भिः	बन्धुजनोंसे
अभिनन्दितः	सत्कृत होकर
प्रागात्	चले गये ॥५२॥

ततः प्रविष्टः स्वपुरं हलायुधः
समेत्य बन्धूननुरक्तचेतसः ।
शशंस सर्वं यदुपुङ्गवानां
मध्ये सभायां कुरुषु स्वचेष्टितम् ॥५३॥

ततः प्रविष्टः स्वपुरं हल आयुधः सम एत्य बन्धून् अनुरक्त चेतसः शशंस सर्वं यदुपुङ्गवानां मध्ये सभायां कुरुषु स्वचेष्टितम् ॥५३॥

ततः	फिर
हल आयुधः	हलधरजी
स्वपुरं प्रविष्टः	अपने नगरमें प्रविष्ट हुए
अनुरक्त चेतसः	अनुरक्त चित्त
बन्धून् सम एत्य	बन्धुओंके समीप पहुँचकर
सभायां मध्ये	राजसभाके बीचमें
यदुपुङ्गवानां	यादव-श्रेष्ठोंसे
कुरुषु	कौरवोंके साथ
स्वचेष्टितं	अपना व्यवहार
सर्वं शशंस	सब बतलाया ॥५३॥

अद्यापि च पुरं ह्येतत् सूचयद् रामविक्रमम् ।
समुन्नतं दक्षिणतो गङ्गायामनुदृश्यते ॥५४॥

अद्य अपि च पुरं हि एतत् सूचयत् राम विक्रमं सम उन्नतं दक्षिणतः गङ्गायां अनु दृश्यते ॥५४॥

हि एतत् पुरं	क्योंकि यह नगर	दृश्यते	दीखता है
अद्य अपि च	आज भी	राम विक्रमं	बलरामजीका पराक्रम
दक्षिणतः	दक्षिणकी ओर		
सम उन्नतं	पर्याप्त ऊँचा उठा और	सूचयत्	सूचित करता है ॥५४॥
गङ्गायां अनु	गंगाकी ओर नीचा		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे हस्तिनपुरकर्षणरूपसंकर्षणविजयो नाम अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥

अथ एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

नरकं निहतं श्रुत्वा तथोद्वाहं च योषिताम् ।
कृष्णेनैकेन बह्वीनां तद् दिदृक्षुः स्म नारदः ॥ १ ॥

नरकं निहतं श्रुत्वा तथा उद्वाहं च योषितां कृष्णेन एकेन बहूवीनां तत् दिदृक्षुः स्म नारदः ॥१॥

नरकं निहत	नरकासुरको मारा गया	उद्वाहं च	विवाह भी
		श्रुत्वा नारदः	सुनकर नारदजी
तथा एकेन	तथा अकेले	तत् दिदृक्षुः स्म	उसे देखनेकी इच्छा से ही ॥१॥
कृष्णेन बहूवीनां	श्रीकृष्णका बहुतसी		
योषितां	स्त्रियोंसे		

चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत् पृथक् ।
गृहेषु द्व्यष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत् ॥ २ ॥

चित्रं बत् एतत् एकेन वपुषा युगपत् पृथक् गृहेषु द्वयष्ट साहस्रं स्त्रिय एक उद् आवहत् ॥२॥

बत् एतत् चित्रं	(यह सोचकर कि) 'अहो यह अद्भुत बात है कि	द्वयष्ट साहस्रं	दो आठ (सोलह) सहस्र
		स्त्रिय एक	स्त्रियोंसे एकने ही
एकेन वपुषा	एक ही शरीरसे	उद् आवहत्	विवाह कर लिया' ॥२॥
युगपत्	एक साथ		
पृथक् गृहेषु	अलग-अलग घरोंमें		

इत्युत्सुको द्वारवतीं देवर्षिर्द्रष्टुमागमत् ।
पुष्पितोपवनारामद्विजालिकुलनादिताम् ॥ ३ ॥

इति उत्सुकः द्वारवतीं देवर्षिः द्रष्टुं आगमत् पुष्पित उपवन आराम द्विज अलिकुल नादिताम् ॥३॥

इति उत्सुकः	इस प्रकार उत्सुक होकर
देवर्षिः द्रष्टुं	देवर्षि देखनेके लिए
पुष्पित उपवन	पुष्पित उद्यान
आराम	क्रीड़ास्थल
द्विज अलिकुल	पक्षियों तथा भ्रमरों (के शब्दसे)
नादितां	गुंजायमान
द्वारवतीं	द्वारिकापुरी
आगमत्	आये ॥३॥

उत्फुल्लेन्दीवराम्भोजकह्लारकुमुदोत्पलैः ।
छुरितेषु सरस्सूच्चैः कूजितां हंससारसैः ॥ ४ ॥

उत्फुल्ल इन्दीवर अम्भोज कह्लार कुमुद उत्पलैः छुरितेषु सरसि उच्चैः कूजितां हंस सारसैः ॥४॥

उत्फुल्ल	प्रफुल्ल
इन्दीवर	नीलकमल,
अम्भोज	गुलाबी कमल
कह्लार कुमुद	लाल कमल, कुमुदिनी,
उत्पलैः	श्वेत कमल वाले
सरसि उच्चैः	सरोवरोंमें उच्च स्वरसे
हंस सारसैः	हंस एवं सारसोंके
कूजितां	कूजनसे गूंजती ॥४॥

प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टां स्फाटिकराजतैः ।
महामरकतप्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः ॥ ५ ॥

प्रासाद लक्षैः नवभिः जुष्टां स्फाटिक राजतैः महामरकत प्रख्यैः स्वर्णरत्न परिच्छदैः ॥५॥

स्वर्णरत्न	स्वर्ण एवं रत्नोंके	**नवभिः लक्षैः**	नौ लाख
परिच्छदैः	उपकरणों युक्त	**प्रासाद जुष्टां**	भवनोंसे युक्त
महामरकत	महामरकत-		॥५॥
प्रख्यैः	मणिके समान		
स्फाटिक	स्फाटिक तथा		
राजतैः	चाँदीके		

विभक्तरथ्यापथचत्वरापणैः
शालासभाभी रुचिरां सुरालयैः ।
संसिक्तमार्गाङ्गणवीथिदेहलीं
पतत्पताकाध्वजवारितातपाम् ॥ ६ ॥

विभक्त रथ्या पथ चत्वर आपणैः शाला सभाभी रुचिरां सुर आलयैः संसिक्त मार्ग अङ्गण वीथि देहलीं पतत् पताका ध्वज वारित आतपाम् ॥६॥

विभक्त	अलग-अलग बने	**वीथि देहलीं**	गलियां, द्वार
रथ्या पथ	गली, मार्ग	**संसिक्त**	सींचे हुए,
चत्वर आपणैः	चौराहे, बाजार,	**पतत्**	उड़ती
शाला सभाभी	शाला, सभा-	**पताका ध्वज**	झंडियों एवं झण्डों
	भवन,		से
सुर आलयैः	देव-मन्दिरोंसे	**वारित आतपां**	धूपका निवारण
रुचिरां	सुन्दर लगती		जहाँ होता था
मार्ग अङ्गण	मार्ग, आंगन,		॥६॥

तस्यामन्तःपुरं श्रीमदर्चितं सर्वधिष्ण्यपैः ।
हरेः स्वकौशलं यत्र त्वष्ट्रा कात्स्न्र्येन दर्शितम् ॥ ७ ॥

तस्यां अन्तःपुरं श्रीमत् अर्चितं सर्व धिष्ण्यपैः हरेः स्वकौशलं यत्र त्वष्ट्रा कात्स्न्र्येन दर्शितम् ॥७॥

तस्यां श्रीमत्	उस (पुरी)में सम्पन्न	यत्र त्वष्ट्रा	जिसमें विश्वकर्माने
सर्व धिष्ण्यपैः	समस्त लोकपालों द्वारा	स्व कौशलं	अपनी कारीगरी
अर्चितं	पूजित	कात्स्न्येन	पूर्ण रूपसे
हरेः अन्तःपुरं	श्रीहरिका अन्तः पुर था	दर्शितां	दिखलायी थी ॥७॥

तत्र षोडशभिः सद्मसहस्रैः समलंकृतम् ।
विवेशैकतमं शौरेः पत्नीनां भवनं महत् ॥ ८ ॥

तत्र षोडशभिः सद्म सहस्रैः सम अलङ्कृतं विवेश एकतमं शौरेः पत्नीनां भवनं महत् ॥८॥

तत्र शौरेः	वहाँ श्रीकृष्णकी	महत् सद्म	विशाल भवनोंमेंसे
पत्नीनां	पत्नियोंके	एकतमं भवनं	एक भवनमें
षोडशभिः	सोलह		(नारद जी)
सहस्रैः	सहस्र	विवेश	प्रविष्ट हुए ॥८॥
सम अलंकृतं	भली प्रकार सजे		

विष्टब्धं विद्रुमस्तम्भैर्वैदूर्यफलकोत्तमैः ।
इन्द्रनीलमयैः कुड्यैर्जगत्या चाहतत्विषा ॥ ९ ॥

विष्टब्धं विद्रुमस्तम्भैः वैदूर्य फलक उत्तमैः इन्द्रनीलमयैः कुड्यैः जगत्या च अहत त्विषा ॥९॥

विद्रुमस्तम्भैः	मूंगेके खम्भोंसे,	विष्टब्धं	सुदृढ़ बना था
उत्तमैः वैदूर्य	उत्तम लहसनियाकी	च जगत्या	तथा (उसका) फर्श
फलक	छतसे	त्विषा अहत	कान्तिसे अम्लान
इन्द्रनीलमयैः	नीलमजड़ी		था ॥९॥
कुड्यैः	भित्तियोंसे		

वितानैर्निमितैस्त्वष्ट्रा मुक्तादामविलम्बिभिः ।
दान्तैरासनपर्यङ्कैर्मण्युत्तमपरिष्कृतैः ॥१०॥

वितानैः निर्मितैः त्वष्ट्रा मुक्तादाम विलम्बिभिः दान्तैः आसन पर्यङ्कैः मणि उत्तम परिष्कृतैः ॥१०॥

त्वष्ट्रा निर्मितैः	विश्वकर्माके बनाये	**परिष्कृतैः**	जड़े हुए
मुक्तादाम	मोतियोंकी झालरें	**दान्तैः आसन**	हाथी दांतके आसन
विलबिभिः	लटकते हुए		एवं
वितानैः	चंदोवों युक्त था,	**पर्यङ्कैः**	पलंग युक्त था
उत्तम मणि	श्रेष्ठ मणि		॥१०॥

दासीभिर्निष्ककण्ठीभिः सुवासोभिरलंकृतम् ।
पुम्भिः सकञ्चुकोष्णीषसुवस्त्रमणिकुण्डलैः ॥११॥

दासीभिः निष्ककण्ठीभिः सुवासः भिः अलङ्कृत पुम्भिः सकञ्चुक उष्णीष सुवस्त्र मणि कुण्डलैः ॥११॥

सुवासः भिः	उत्तम वस्त्र वाली	**उष्णीष**	पगड़ी,
निष्ककण्ठीभिः	गलेमें पदिक पहिने	**मणि कुण्डलैः**	मणि-कुण्डल धारी
दासीभिः	दासियोंसे एवं	**पुम्भिः अलंकृतं**	सेवकोंसे सुशोभित
सुवस्त्र	उत्तम वस्त्रोंके		था ॥११॥
सकञ्चुक	कुर्ते पहिने		

रत्नप्रदीपनिकरद्युतिभिर्निरस्त-
ध्वान्तं विचित्रवलभीषु शिखण्डिनोऽङ्ग ।
नृत्यन्ति यत्र विहितागुरुधूपमक्षै-
र्निर्यान्तमीक्ष्य घनबुद्धय उन्नदन्तः ॥१२॥

रत्न प्रदीप निकर द्युतिभिः निरस्त ध्वान्तं विचित्र वलभीषु शिखण्डिनः अङ्ग नृत्यन्ति यत्र विहित अगुरु धूपं अक्षैः निर्यान्तं ईक्ष्य घनबुद्धय उन्नदन्तः ॥१२॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !
रत्न प्रदीप	रत्न दीपकोंके
निकर द्युतिभिः	समूहोंकी कान्तिसे
ध्वान्तं निरस्त	अन्धकार दूर हो गया था
विचित्र	विभिन्न
बलभीषु	छज्जों पर
शिखण्डिनः	मयूर
नृत्यन्ति	नाचते थे तथा
विहित	जलायी गयी
अगुरु धूपं	अगुरुकी धूप
अक्षैः निर्यान्तं	खिड़कियोंसे निकलती
ईक्ष्य घनबुद्धय	देखकर (उसे) मेघ समझकर
उन्नदन्तः	उच्च स्वरमें बोलते थे ॥१२॥

तस्मिन् समानगुणरूपवयस्सुवेष-
दासीसहस्रयुतयानुसवं गृहिण्या ।
विप्रो ददर्श चमरव्यजनेन रुक्म-
दण्डेन सात्वतपतिं परिवीजयन्त्या ॥१३॥

तस्मिन् समान गुण रूप वयः सुवेष दासी सहस्र अयुतया अनुसवं गृहिण्या विप्रः ददर्श चमरव्यजनेन रुक्मदण्डेन सात्वतपतिं परिवीजयन्त्या ॥१३॥

विप्रः तस्मिन्	ब्रह्मपुत्र नारदने उस (भवनमें)
समान गुण	(अपने) समान गुण
रूप वयः	सौन्दर्य, आयु,
सुवेष	उत्तम वेश वाली
अयुतया दासी	दस सहस्र दासियों (के रहने पर भी)
गृहिण्या अनुसवं	(स्वयं) महारानी प्रत्येक समय
रुक्मदण्डेन	सोनेकी डंडी वाले
चमरव्यजनेन	चमरको डुलाकर
सात्वतपतिं	श्रीयदुनाथके
परिवीजन्त्या	चारो ओर वायु करती
ददर्श	देखा ॥१३॥

तं संनिरीक्ष्य भगवान् सहसोत्थितः श्री-
पर्यङ्कतः सकलधर्मभृतां वरिष्ठः ।

आनम्य पादयुगलं शिरसा किरीट-
जुष्टेन साञ्जलिरवीविशदासने स्वे ॥१४॥

तं सन्निरीक्ष्य भगवान् सहसा उत्थितः श्रीपर्यङ्कुतः सकल धर्मभृतां वरिष्ठः आनम्य पादयुगलं शिरसा किरीट जुष्टेन साञ्जलिः अवीविशत् आसने स्वे ॥१४॥

सकल धर्मभृतां	समस्त धर्मपालकों में	**किरीट जुष्टेन**	मुकुट मण्डित
वरिष्ठः	श्रेष्ठ	**शिरसा**	सिरसे
भगवान्	भगवान	**पादयुगलं**	(उनके) दोनों चरणोंमें
तं सन्निरीक्ष्य	उन (नारद)को पास आया देखकर	**आनम्य**	प्रणाम करके
श्रीपर्यङ्कुतः	लक्ष्मीजीके पलंगसे	**साञ्जलिः**	हाथ जोड़कर
सहसा उत्थितः	झट उठकर	**स्वे आसने**	अपने आसनपर
		आवीविशत्	बैठाया ॥१४॥

तस्यावनिज्य चरणौ तदपः स्वमूर्ध्ना
बिभ्रज्जगद्गुरुतरोऽपि सतां पतिर्हि ।
ब्रह्मण्यदेव इति यद्गुणनाम युक्तं
तस्यैव यच्चरणशौचमशेषतीर्थम् ॥१५॥

तस्य अवनिज्य चरणौ तत् अपः स्वमूर्ध्ना बिभ्रत् जगद् गुरुतरः अपि सतां पतिः हि ब्रह्मण्यदेव इति यत् गुण नाम युक्तं तस्य एव यत् चरण शौचं अशेष तीर्थम् ॥१५॥

तस्य एव	उनका ही	**नाम गुण युक्तं**	(उनका) नाम गुणानुसार है
चरण शौचं	चरणोदक	**हि सतां पतिः**	क्योंकि सत्पुरुषोंके स्वामी हैं,
अशेष तीर्थं	सम्पूर्ण तीर्थ (रूपा गंगाजी) है	**जगद् गुरुतरः**	संसारमें सर्वश्रेष्ठ
यत् ब्रह्मण्यदेव	क्योंकि ब्रह्मण्यदेव	**अपि**	होने पर भी
इति	ऐसा		

तस्य चरणौ	उन (नारदजी)के चरणोंको	तत् अपः	वह जल
अवनिज्य	धोकर	स्वमूर्ध्ना बिभ्रत्	अपने सिर पर चढ़ाया ॥१५॥

सम्पूज्य देवऋषिवर्यमृषिः पुराणो
नारायणो नरसखो विधिनोदितेन ।
वाण्याभिभाष्य मितयामृतमिष्टया तं
प्राह प्रभो भगवते करवाम हे किम् ॥१६॥

सम्पूज्य देवऋषिवर्यं ऋषिः पुराणः नारायणः नरसखः विधिना उदितेन वाण्या अभिभाष्य मितया अमृत मिष्टया तं प्राह प्रभो भगवते करवाम हे किम् ॥१६॥

पुराणः ऋषिः	सनातन ऋषि	अमृत मिष्टया	अमृतके समान मधुर
नरसखः	नरके सखा	मितया वाण्या	संक्षिप्त बचनसे
नारायणः	नारायणने	अभिभाष्य	बातचीत करके
देवऋषिवर्यं	देवता-ऋषियोंमें श्रेष्ठ	तं प्राह	उनसे पूछा—
उदितेन विधिना	(नारदजीकी) शास्त्रोक्त विधिसे	प्रभो भगवते	'प्रभो ! भगवन्
सम्पूज्य	भली भाँति पूजा करके	किं करवाम हे	(हम आपकी) क्या सेवा करें' ॥१६॥

॥ नारद उवाच ॥

नैवाद्भुतं त्वयि विभोऽखिललोकनाथे
मैत्री जनेषु सकलेषु दमः खलनाम् ।
निःश्रेयसाय हि जगत्स्थितिरक्षणाभ्यां
स्वैरावतार उरुगाय विदाम सुष्ठु ॥१७॥

न एव अद्भुतं त्वयि विभो अखिल लोकनाथे मैत्री जनेषु सकलेषु दमः खलानां निःश्रेयसाय हि जगत् स्थितिः ईक्षणाभ्यां स्वैरावतार उरुगाय विदाम सुष्ठु ॥१७॥

विभो	प्रभो !	हि जगत्	क्योंकि जगतकी
अखिल	सम्पूर्ण	स्थितिः	स्थिति
लोकनाथे	लोकोंके स्वामी	ईक्षणाभ्यां	रक्षाके लिए
त्वयि सकलेषु	आपके लिए सम्पूर्ण	उरुगाय	महायशस्विन्
जनेषु मैत्री	भक्तोंसे मित्रता और	स्वैरावतार	स्वेच्छासे अवतार लिया है
खलानां दमः	दुष्टोंको दण्ड देना	सुष्ठु विदाम	यह हम भली प्रकार जानते हैं ॥१७॥
अद्भुतं न एव	आश्चर्यकी बात नहीं ही है		

दृष्टं तवाङ्घ्रियुगलं जनतापवर्ग
ब्रह्मादिभिर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
ध्यायंश्चराम्यनुगृहाण यथा स्मृतिः स्यात् ॥१८॥

दृष्टं तव अंघ्रियुगलं जगत अपवर्ग ब्रह्मा आदिभिः हृदि विचिन्त्यं अगाध बोधैः संसार कूप पतित उत्तरण अवलम्बं ध्यायन् चरामि अनुगृहाण यथा स्मृतिः स्यात् ॥१८॥

जगत अपवर्ग	संसारसे मोक्ष देने वाले,	उत्तरण	निकालनेके
अगाध बोधैः	अथाह ज्ञानवान्	अवलम्बं	सहारे
ब्रह्मा आदिभिः	ब्रह्मादि द्वारा	तव	आपके
हृदि विचिन्त्यं	हृदयमें चिन्तनीय,	अंघ्रियुगलं	दोनों चरणोंका
संसार	संसारके	दृष्टं	दर्शन हुआ
कूप पतित	कुएं में गिरोंको		

ध्यायन् चरामि	(इनका) ध्यान करते विचरण करूँ	यथा स्मृतिः स्यात्	जिससे (आपका) स्मरण रहे ॥१८॥
अनुगृहाण	कृपा कीजिए		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

ततोऽन्यदाविशद् गेहं कृष्णपत्न्याः स नारदः ।
योगेश्वरेश्वरस्याङ्ग योगमायाविवित्सया ॥१९॥

ततः अन्यत् आविशत् गेहं कृष्णपत्न्याः स नारदः योगेश्वर ईश्वरस्य अङ्ग योगमाया विवित्सया ॥१९॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !	स नारदः	वे नारदजी
योगेश्वर	योगेश्वरोंके	ततः अन्यत्	फिर दूसरी
ईश्वरस्य	स्वामीकी	कृष्णपत्न्याः	श्रीकृष्ण-पत्नीके
योगमाया	योगमायाको	गेहं आविशत्	भवनमें प्रविष्ट हुए ॥१९॥
विवित्सया	जाननेकी इच्छासे		

दीव्यन्तमक्षैस्तत्रापि प्रियया चोद्धवेन च ।
पूजितः परया भक्त्या प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥२०॥

दीव्यन्तं अक्षैः तत्र अपि प्रियया च उद्धवेन च पूजितः परया भक्त्या प्रत्युत्थान आसनादिभिः ॥२०॥

तत्र अपि	वहां भी	अक्षैः दीव्यन्तं	पासे खेलते हुए (भगवान) द्वारा
प्रियया च	प्रियतमा और		
उद्धवेन च	उद्धवके साथ भी		

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

परया भक्त्या	परम भक्ति सहित	आसनादिभिः	आसनादि द्वारा
प्रत्युत्थान	स्वागतमें उठ खड़े होने,	पूजितः	(नारदजी) पूजित हुए ॥२०॥

पृष्टश्चाविदुषेवासौ कदाऽऽयातो भवानिति ।
क्रियते किं नु पूर्णानामपूर्णैरस्मदादिभिः ॥२१॥

पृष्टः च अविदुषा इव असौ कदा आयातो भवान् इति क्रियते किं नु पूर्णानां अपूर्णैः अस्मत् आदिभिः ॥२१॥

अविदुषा इव	अनजानकी भाँति	अपूर्णैः	अपूर्ण (सकाम)
असौ	इन (भगवान)के द्वारा	अस्मत्	हम लोगों
		आदिभिः	द्वारा
इति पृष्टः च	यह पूछा भी गया—	पूर्णानां	(आप) प्राप्त काम की
भवान् कदा	'आप कब	नु किं क्रियते	भला क्या सेवा हो
आयातो	पधारे हैं ?		सकती है ॥२१॥

अथापि ब्रूहि नो ब्रह्मन् जन्मैतच्छोभनं कुरु ।
स तु विस्मित उत्थाय तूष्णीमन्यदगाद् गृहम् ॥२२॥

अथ अपि ब्रूहि नः ब्रह्मन् जन्म एतत् शोभनं कुरु स तु विस्मित उत्थाय तूष्णीं अन्यत् अगात् गृहम् ॥२२॥

अथ अपि ब्रह्मन्	फिर भी ब्रह्मन् !	स तु विस्मित	वे (नारद) तो चकित होकर
ब्रूहि	(कोई सेवा) बतलाइये,	तूष्णीं उत्थाय	चुपचाप उठकर
एतत् जन्म	(मेरा) यह जीवन	अन्यत् गृहं	दूसरे घरमें
शोभनं कुरु	सफल कीजिए	अगात्	चले गये ॥२२॥

तत्राप्यचष्ट गोविन्दं लालयन्तं सुताञ्छिशून् ।
ततोऽन्यस्मिन् गृहेऽपश्यन्मज्जनाय कृतोद्यमम् ॥२३॥

तत्र अपि अचष्ट गोविन्दं लालयन्तं सुतान् शिशून् ततः अन्यस्मिन् गृहे अपश्यत् मज्जनाय कृत उद्यमम् ॥२३॥

तत्र अपि	वहां भी	ततः	फिर
गोविन्दं	गोविन्दको	अन्यस्मिन् गृहे	दूसरे घरमें
शिशून् सुतान्	शिशु पुत्रोंसे	मज्जनाय	स्नानके लिए
लालयन्तं	लाड़ करते	कृत उद्यमं	उद्योग (तैयारी)
अचष्ट	देखा		देखा ॥२३॥

जुह्वन्तं च वितानाग्नीन् यजन्तं पञ्चभिर्मखैः ।
भोजयन्तं द्विजान् क्वपि भुञ्जानमवशेषितम् ॥२४॥

जुह्वन्तं च वितान अग्नीन् यजन्तं पञ्चभिः मखैः भोजयन्तं द्विजान् क्वपि भुञ्जानं अवशेषितम् ॥२४॥

वितान	यज्ञीय	क्वपि	कहीं
अग्नीन्	अग्नियोंमें	अवशेषितं	यज्ञावशिष्ट
जुह्वन्तं च	हवन करते एवं	भुञ्जानं	भोजन करते
पञ्चभिः मखैः	पञ्च महायज्ञसे		॥२४॥
यजन्तं	यजन करते		
द्विजान्	ब्राह्मणोंको		
भोजयन्तं	भोजन कराते,		

क्वपि संध्यामुपासीनं जपन्तं ब्रह्म वाग्यतम् ।
एकत्र चासिचर्मभ्यां चरन्तमसिवर्त्मसु ॥२५॥

क्व अपि सन्ध्यां उपासीनं जपन्तं ब्रह्म वाक् यतं एकत्र च असि चर्मभ्यां चरन्तं असि वर्त्मसु ॥२५॥

क्व अपि	कहीं पर	वाक् यतं	वाणी संयमित
सन्ध्यां	सन्ध्या		करके
उपासीनं	करते बैठे		

ब्रह्म जपन्तं	गायत्री जप करते	असि वर्त्मसु	तलवारके मार्ग (पैंतरे)
एकत्र	एक स्थान पर	चरन्तं	चलते हुए ॥२५॥
असि चर्मभ्यां	तलवार ढाल लेकर		

अश्वैर्गजै रथैः क्वापि विचरन्तं गदाग्रजम् ।
क्वचिच्छयानं पर्यङ्के स्तूयमानं च वन्दिभिः ॥२६॥

अश्वैः गजैः रथैः क्व अपि विचरन्तं गद अग्रजं क्वचित् शयानं पर्यङ्के स्तूयमानं च वन्दिभिः ॥२६॥

गद अग्रजं	उन गदके बड़े भाई को	क्वचित्	कभी
क्व अपि	कहीं तो	पर्यङ्के शयानं	पलंग पर सोये
अश्वैः गजैः	घोड़े, हाथी या	च वन्दिभिः	तथा बन्दियों द्वारा
रथैः विचरन्तं	रथ पर चढ़कर विचरण करते,	स्तूयमानं	स्तुत होते ॥२६॥

मन्त्रयन्तं च कस्मिंश्चिन्मन्त्रिभिश्चोद्धवादिभिः ।
जलक्रीडारतं क्वापि वारमुख्याबलावृतम् ॥२७॥

मन्त्रयन्तं च कस्मिन् चित् मन्त्रिभिः च उद्धव आदिभिः जलक्रीडारतं क्व अपि वार मुख्य अबला वृतम् ॥२७॥

कस्मिन् चित्	किसी (भवनमें)	वार मुख्य	गणिका
उद्धव आदिभिः	उद्धव आदि	अबला वृतं	स्त्रियोंसे घिरे
मन्त्रिभिः	मन्त्रियोंके साथ	जलक्रीडारतं	जलक्रीड़ा करते ॥२७॥
मन्त्रयन्तं	मन्त्रणा करते हुए		
च क्व अपि	तथा कहीं भी		

कुत्रचिद् द्विजमुख्येभ्यो ददतं गाः स्वलंकृताः ।
इतिहास पुराणानि शृण्वन्तं मङ्गलानि च ॥२८॥

कुत्रचित् द्विज मुख्येभ्यः ददतं गाः स्वलङ्कृताः इतिहास पुराणानि शृण्वन्तं मङ्गलानि च ॥२८॥

कुत्रचित्	कहीं	च इतिहास	तथा इतिहास
द्विज मुख्येभ्यः	ब्राह्मण प्रमुखोंको	पुराणानि	पुराणों,
स्वलङ्कृताः	भली प्रकार अलंकृत	मङ्गलानि	स्वस्ति वाचनादि
गाः ददतं	गोदान करते हुए	शृण्वन्तं	सुनते हुए ॥२८॥

हसन्तं हास्यकथया कदाचित् प्रियया गृहे ।
क्वापि धर्मं सेवमानमर्थकामौ च कुत्रचित् ॥२९॥

हसन्तं हास्यकथया कदाचित प्रियया गृहे क्व अपि धर्मं सेवमानं अर्थकामौ च कुत्रचित् ॥२९॥

कदाचित्	कहीं	धर्मं कुत्रचित्	धर्म और कहीं
प्रियया गृहे	प्रिय पत्नीके घरमें	अर्थकामौ	अर्थ या कामका
हास्यकथया	हँसीकी चर्चासे	सेवमानं	सेवन करते हुए
हसन्तं	हँसते हुए,		॥२९॥
क्व अपि	कहीं तो		

ध्यायन्तमेकमासीनं पुरुषं प्रकृतेः परम् ।
शुश्रूषन्तं गुरून् क्वापि कामैर्भोगैः सपर्यया ॥३०॥

ध्यायन्तं एकं आसीनं पुरुषं प्रकृतेः परं शुश्रूषन्तं गुरून् क्व अपि कामैः भोगैः सपर्यया ॥३०॥

एकं आसीनं	एकान्तमें बैठकर	कामैः भोगैः	इच्छित भोग सामग्री
प्रकृतेः परं	प्रकृतिसे अतीत	सपर्यया	समर्पित करके
पुरुषं ध्यायन्तं	पुराण पुरुषका ध्यान करते,	शुश्रूषन्तं	सेवा करते हुए ॥३०॥
क्व अपि	कहीं तो		
गुरून्	गुरुजनोंकी		

कुर्वन्तं विग्रहं कैश्चित् संधिं चान्यत्र केशवम् ।
कुत्रापि सह रामेण चिन्तयन्तं सतां शिवम् ॥३१॥

कुर्वन्तं विग्रहं कैश्चित् सन्धिम च अन्यत्र केशवं कुत्र अपि सह रामेण चिन्तयन्तं सतां शिवम् ॥३१॥

केशवं	केशवको	कुत्र चित् अपि	कहीं तो
कैश्चित् विग्रहं	किन्हीं के साथ लड़ाई	रामेण सह	बलरामजी के साथ
च अन्यत्र	तथा दूसरे स्थानपर	सतां शिवं	सत्पुरुषोंका कल्याण
सन्धि कुर्वन्तं	सन्धि करते हुए,	चिन्तयन्तं	सोचते हुए ॥३१॥

पुत्राणां दुहितॄणां च काले विध्युपयापनम् ।
दारैर्वरैस्तत्सदृशैः कल्पयन्तं विभूतिभिः ॥३२॥

पुत्राणां दुहितॄणां च काले विधि उपयापनं दारैः वरैः तत् सदृशैः कल्पयन्तं विभूतिभिः ॥३२॥

पुत्राणं च	पुत्रोंका और	विभूतिभिः	वैभवके साथ
दुहितॄणां	पुत्रियोंको	विधि उपयापनं	विधिपूर्वक विवाह
काले	समय पर	कल्पयन्तं	कराते हुए ॥३२॥
तत् सदृशै	उनके समान		
दारैः वरैः	स्त्री या वरके साथ		

प्रस्थापनोपानयनैरपत्यानां महोत्सवान् ।
वीक्ष्य योगेश्वरेशस्य येषां लोका विसिस्मिरे ॥३३॥

प्रस्थापन उपानयनैः अपत्यानां महोत्सवान् वीक्ष्य योगेश्वर ईशस्य येषां लोका विसिस्मिरे ॥३३॥

प्रस्थापन	(कन्याओंको) विदा करते समय	महोत्सवान्	महोत्सवों को
		वीक्ष्य	देखकर
उपानयनैः	बुलाते समय तथा	लोका	लोग
अपत्यानां	पुत्रोंके (जन्मादि दिवस)के	विसिस्मिरे	आश्चर्य में पड़ ॥३३॥
येषां योगेश्वर ईशस्य	जिन योगेश्वरोंके भी स्वामीके		

यजन्तं सकलान् देवान् क्वापि क्रतुभिरूर्जितैः ।
पूर्तयन्तं क्वचिद् धर्मं कूपाराममठादिभिः ॥३४॥

यजन्तं सकलान् देवान् क्व अपि क्रतुभिः ऊर्जितैः पूर्तयन्तं क्वचित् धर्मं कूप आराम मठ आदिभिः ॥३४॥

क्व अपि	कहीं तो	क्वचित्	कहीं
ऊर्जितैः क्रतुभिः	बहुत बड़े यज्ञों द्वारा	कूप आराम मठ आदिभिः	कुआं, बगीचा धर्मशालादि द्वारा
सकलान् देवान् यजन्तं	सब देवताओं का यजन करते हुए	धर्मं पूर्तयन्तं	पूर्तधर्म करते हुए ॥३४॥

चरन्तं मृगयां क्वापि हयमारुह्य सैन्धवम् ।
घ्नन्तं ततः पशून् मेध्यान् परीतं यदुपुङ्गवैः ॥३५॥

चरन्तं मृगयां क्वापि हयं आरुह्य सैन्धवं घ्नन्तं ततः पशून् मेध्यान् परीतं यदुपुङ्गवैः ॥३५॥

क्व अपि	कहीं	यदुपुङ्गवैः	यादव श्रेष्ठोंसे
सैन्धवं हयं	सिन्धु देशीय अश्व पर	परीतं	घिरे
आरुह्य	चढ़कर		

मृगयां चरन्तं	आखेट करते हुए	**पशून् घ्नन्तं**	पशुओंके मारते हुए ॥३५॥
ततः मेध्यान्	वहां (आखेटके लिए) पवित्र*		

अव्यक्तलिङ्गं प्रकृतिष्वन्तःपुरगृहादिषु ।
क्वचिच्चरन्तं योगेशं तत्तद्भावबुभुत्सया ॥३६॥

अव्यक्तालिङ्गः प्रकृतिषु अन्तःपुर गृह आदिषु क्वचित् चरन्तं योगेशं तत् तत् भाव बुभुत्सया ॥३६॥

तत् तत् भाव	उन-उन लोगोंका भाव	**अव्यक्तालिङ्गः**	अपने चिह्न छिपाकर
बुभुत्सया	जाननेकी इच्छासे	**योगेशं**	योगेश्वरको
प्रकृतिषु	प्रजाजनोंसे तथा	**क्वचित् चरन्तं**	कभी (गुप्त रूपसे) घूमते ॥३६॥
अन्तःपुर	अन्तःपुर एवं		
गृह आदिषु	घर आदिके लोगों से		

अथोवाच हृषीकेशं नारदः प्रहसन्निव ।
योगमायोदयं वीक्ष्य मानुषीमीयुषो गतिम् ॥३७॥

अथ उवाच हृषीकेशं नारदः प्रहसन् इव योगमाया उदयं वीक्ष्य मानुषीं ईयुषः गतिम् ॥३७॥

---

* आखेट-शास्त्र में आखेट के लिए कुछ प्रकार के पशु पवित्र माने गये हैं। जैसे—

१—जो नरभक्षी हो गये हैं।

२—जो अतिवृद्ध होने से आहारादि में असमर्थ प्रायः हैं।

३—जिनकी संख्या इतनी बढ़ गयी है कि समीपकी कृषि तथा वनके लिए विनाशक हो गये हैं। उनकी संख्या-नियन्त्रण आवश्यक है।

मानुषीं गतिं	मनुष्य लीला	**उदयं वीक्ष्य**	उत्कर्ष देखकर
ईयुषः	करते हुए	**नारदः**	नारदजी
हृषीकेशं	हृषीकेश से	**प्रहसन् इव**	हँसते हुए
अथ योगमाया	इस प्रकार उनकी योगमाया का	**उवाच**	बोले ॥३७॥

विदाम योगमायास्ते दुर्दर्शा अपि मायिनाम् ।
योगेश्वरात्मन् निर्भाता भवत्पादनिषेवया ॥३८॥

विदाम योगमायाः ते दुर्दर्शा अपि मायिनां योगेश्वर आत्मन् निर्भाता भवत् पाद निषेवया ॥३८॥

योगेश्वर	योगेश्वर !	**भवत पाद**	आपके चरणों की
आत्मन्	आत्मन् !	**निषेवया**	सेवा से
मायिनां अपि	(ब्रह्मादि) मायावियोंके लिए भी	**निर्भाता**	भासित होनेके कारण
दुर्दर्शा	जिसे देखना अत्यन्त कठिन है	**विदाम**	मैं जानता हूँ ॥३८॥
ते योगमायाः	उस आपकी योग-माया को		

अनुजानीहि मां देव लोकांस्ते यशसाऽऽप्लुतान् ।
पर्यटामि तवोद्गायन् लीलां भुवनपावनीम् ॥३९॥

अनुजानीहि मां देव लोकान् ते यशसा आप्लुतान् पर्यटामि तव उद्गायन् लीलां भुवन पावनीम् ॥३९॥

देव ! ते यशसा	देव ! आपके सुयश से	**तव**	आपकी
आप्लुतान् लोकान्	परिपूर्ण लोकों में	**भुवन पावनीं**	त्रिभुवन को पवित्र करने वाली

लीलां	लीलाओं को	अनुजानीहि	(अतः अब जानेकी) अनुमति दीजिए ॥३९॥
उद्गायन	उच्च स्वरसे गाता		
पर्यटामि	घूमता रहता हूँ		

श्रीभगवानुवाच–

ब्रह्मन् धर्मस्य वक्ताहं कर्ता तदनुमोदिता ।
तच्छिक्षयँल्लोकमिममास्थितः पुत्र मा खिदः ॥४०॥

ब्रह्मन् धर्मस्य वक्ता अहं कर्ता तत् अनुमोदिता तत् शिक्षयन् लोकं इमं आस्थितः पुत्र मा खिदः ॥४०॥

ब्रह्मन् अहं	ब्रह्मन् ! मैं	आस्थितः	(उस पर) ठीक-ठीक स्थित हूँ
धर्मस्य वक्ता	धर्म का उपदेशक		
कर्ता	आचरणकर्ता	पुत्र मा खिदः	वत्स (तुम व्यर्थ) खिन्न मत हो ॥४०॥
तत्	और उसका		
अनुमोदिता	समर्थक हूँ		
इमं लोकं	इस लोकको		
तत् शिक्षयन्	उसकी शिक्षा देने के लिए		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इत्याचरन्तं सद्धर्मान् पावनान् गृहमेधिनाम् ।
तमेव सर्वगेहेषु सन्तमेकं ददर्श ह ॥४१॥

इति आचरन्तं सत् धर्मान् पावनान् गृहमेधिनां तं एव सर्वगेहेषु सन्तं एकं ददर्श ह ॥४१॥

इति पावनान्	इस प्रकार पवित्र करने वाले	गृहमेधिनां	गृहस्थोंके

सत् धर्मान्	श्रेष्ठ धर्मोंका	सर्वगेहेषु	सब भवनोंमें
आचरन्तं	आचरण करते हुए	तं एव ददर्श	उनको ही देखा
एकं सन्तं ह	एक होते हुए ही		॥४१॥

कृष्णस्यानन्तवीर्यस्य योगमायामहोदयम् ।
मुहुर्दृष्ट्वा ऋषिरभूद् विस्मितो जातकौतुकः ॥४२॥

कृष्णस्य अनन्त वीर्यस्य योगमाया महा उदयं मुहुः दृष्ट्वा ऋषिः अभूत् विस्मितः जातकौतुकः ॥४२॥

जातकौतुकः	कुतूहल उत्पन्न होनेसे (आये)	योगमाया	योगमायाका
		महा उदयं	महान उत्कर्ष
ऋषिः मुहुः	देवर्षि बार-बार	दृष्ट्वा	देखकर
अनन्त वीर्यस्य	अनन्त पराक्रम	विस्मितः	चकित
कृष्णस्य	श्रीकृष्ण की	अभूत	हो गये ॥४२॥

इत्यर्थकामधर्मेषु कृष्णेन श्रद्धितात्मना ।
सम्यक् सभाजितः प्रीतस्तमेवानुस्मरन् ययौ ॥४३॥

इति अर्थ कामधर्मेषु कृष्णेन श्रद्धित आत्मना सम्यक् सभाजितः प्रीतः तं एव अनुस्मरन् ययौ ॥४३॥

इति अर्थ	इस प्रकार अर्थ	सभाजितः	सत्कृत होकर
कामधर्मेषु	भोग एवं धर्ममें	तं एव	उनका ही
श्रद्धित आत्मना	आस्थावान चित्त वाले	अनुस्मरन्	बार-बार स्मरण करते
कृष्णेन सम्यक्	श्रीकृष्णके द्वारा भली प्रकार	ययौ	चले गये ॥४३॥

एवं मनुष्यपदवीमनुवर्तमानो
नारायणोऽखिलभवाय गृहीतशक्तिः ।

रेमेऽङ्ग षोडशसहस्रवराङ्गनानां
सव्रीडसौहृदनिरीक्षणहासजुष्टः ॥४४॥

एवं मनुष्य पदवीं अनुवर्तमानः नारायणः अखिल भवाय गृहीत शक्तिः रेमे अङ्ग षोडश सहस्र वर अङ्गनानां सव्रीड सौहृद निरीक्षण हास जुष्टः ॥४४॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !
एवं	इस प्रकार
मनुष्य पदवीं	मनुष्य लीला
अनुवर्तमानः	बराबर करते हुए
अखिल भवाय	सम्पूर्ण जगतके उत्कर्ष के लिए
गृहीत शक्तिः	माया शक्तिको स्वीकार करके
नारायणः	नारायण
षोडश सहस्र	सोलह सहस्र
वर अङ्गनानां	श्रेष्ठ स्त्रियों द्वारा
सव्रीड सौहृद	लज्जा संहित प्रेमपूर्ण
हास निरीक्षण	मुस्कराहट भरी दृष्टिसे
जुष्टः रेमे	युक्त होकर (देखे जाते) रमण करते रहे ॥४४॥

यानीह विश्वविलयोद्भववृत्तिहेतुः
कर्माण्यनन्यविषयाणि हरिश्चकार ।
यस्त्वङ्ग गायति शृणोत्यनुमोदते वा
भक्तिर्भवेद् भगवति ह्यपवर्गमार्गे ॥४५॥

यानि इह विश्वविलय उद्भव वृत्ति हेतुः कर्माणि अनन्य विषयाणि हरिः चकार यस्तु अङ्ग गायति शृणोति अनुमोदते वा भक्तिः भवेत् भगवति हि अपवर्गमार्गे ॥४५॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !
हि	क्योंकि
विश्वविलय	विश्वके प्रलय
उद्भव वृत्ति	उत्पति, पालन के
हेतुः	एकमात्र कारण
हरिः इह	श्रीहरिने इस लोकसे
यानि	जिन
अनन्य विषयाणि	किसी दूसरे से न हो सकने वाले
कर्माणि चकार	कर्मोंको किया

यस्तु गायति	जो भी उनको वर्णन करता है	**अपवर्गमार्गे**	(उसकी) मोक्षदायक
शृणोति वा	सुनता है या	**भगवति**	भगवानमें
अनुमोदते	समर्थन करता है,	**भक्तिः भवेत्**	भक्ति होती है ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे कृष्णगार्हस्थ्यदर्शनं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

अथ सप्ततितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

अथोषस्युपवृत्तायां कुक्कुटान् कूजतोऽशपन् ।
गृहीतकण्ठ्यः पतिभिर्माधव्यो विरहातुराः ॥ १ ॥

अथ उषसि उपवृत्तायां कुक्कुटान् कूजितः अशपन् गृहीत कण्ठ्यः पतिभिः माधव्यः विरह आतुराः ॥१॥

अथ उषसि	जब उषाकाल	**विरह आतुराः**	वियोग (भय)से व्याकुल होकर
उपवृत्तायां	सन्निकट होता था (तब)	**कूजितः**	बोलते
पतिभिः	पति द्वारा	**कुक्कुटान्**	मुर्गोंको
गृहीत कण्ठ्यः	कण्ठ आलिंगिता	**अशपन्**	कोसतीं थी ॥१॥
माधव्यः	माधव की रानियां		

वयांस्यरूरुवन् कृष्णं बोधयन्तीव वन्दिनः ।
गायत्स्वलिष्वनिद्राणि मन्दारवनवायुभिः ॥ २ ॥

वयांसि अरूरुवन् कृष्णं बोधयन्त इव वन्दिनः गायत्सु अलिषु अनिद्राणि मन्दारवन वायुभिः ॥२॥

मन्दार वन	पारिजात-वनकी	**वन्दिनः इव**	बन्दी-जनोंके समान
वायुभिः	वायुसे (आकृष्ट)	**कृष्णं बोधयन्त**	श्रीकृष्णको जगाते हुए
अनिद्राणि	जगे हुए	**अरूरुवन्**	चहचहाने लगे ॥२॥
अलिषु	भ्रमरोंके		
गायत्सु वयांसि	गुञ्जार करनेसे पक्षी		

मुहूर्तं तं तु वैदर्भी नामृष्यदतिशोभनम् ।
परिरम्भणविश्लेषात् प्रियबाह्वन्तरं गता ॥ ३ ॥

मुहूर्तं तं तु वैदर्भी न अमृष्यत् अतिशोभनं परिरम्भण विश्लेषात् प्रियबाहु अन्तरं गता ॥३॥

प्रियबाहु	प्रियतमकी भुजाओं के	विश्लेषात्	पृथक होनेके कारण
अन्तरं गता	बीचमें पहुँची	तं अतिशोभनं	उस अत्यन्त सुहावने
वैदर्भी	विदर्भ-नन्दिनी रुक्मिणी	मुहूर्तं तु	समयको
परिरम्भण	आलिंगनसे	न अमृष्यत्	नहीं सह सकीं ॥३॥

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः ।
दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥ ४ ॥

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वारि उपस्पृश्य माधवः दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥४॥

माधवः	श्रीकृष्ण	प्रसन्नकरण	निर्मलेन्द्रिय
ब्राह्मे मुहूर्त	ब्राह्म-मुहूर्तमें	तमसः परं	मायातीत
उत्थय	उठकर	आत्मानं दध्यौ	आत्माका ध्यान करने लगे ॥४॥
वारि उपस्पृश्य	जलसे आचमन करके		

एकं स्वयंज्योतिरनन्यमव्ययं
स्वसंस्थया नित्यनिरस्तकल्मषम् ।
ब्रह्माख्यमस्योद्भवनाशहेतुभिः
स्वशक्तिभिर्लक्षितभावनिर्वृतिम् ॥ ५ ॥

एकं स्वयं ज्योतिः अनन्यं अव्ययं स्वसंस्थया नित्य निरस्त कल्मषं ब्रह्म आख्यं अस्य उद्भव नाश हेतुभिः स्वशक्तिभिः लक्षित भाव निर्वृतिम् ॥५॥

एकं स्वयं	अखण्ड, स्वयं
ज्योतिः	प्रकाश,
अनन्यं अव्ययं	अद्वितीय, अविनाशी
स्वसंस्थया	अपने स्वरूपसे ही
नित्य	नित्य
निरस्त कल्मषं	मलिनताको मिटाये,
अस्य उद्भव	इस जगतकी उत्पत्ति
नाश हेतुभिः	विनाशके कारण
स्वशक्तिभिः	अपनी शक्तियों द्वारा
भाव निर्वृति	सदानन्द स्वरूपसे
लक्षित	लक्षित होने वाले
ब्रह्म आख्यं	ब्रह्म नामक (तत्त्व का ध्यान करते थे) ॥५॥

अथाप्लुतोऽम्भस्यमले यथाविधि
क्रियाकलापं परिधाय वाससी ।
चकार संध्योपगमादि सत्तमो
हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः ॥ ६ ॥

अथ आप्लुतः अम्भसि अमले यथाविधि क्रियाकलापं परिधाय वाससी चकार सन्ध्या उपगम आदि सत् तमः हुत अनलः ब्रह्म जजाप वाक् यतः ॥६॥

सत् तमः	उन सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ ने
अथ अमले	फिर निर्मल
अम्भसि	जलसे
आप्लुतः	स्नान करके
वाससी	वस्त्र
परिधाय	पहिनकर
यथाविधि	विधिपूर्वक
सन्ध्या	सन्ध्या
उपगम आदि	उपासनादि
क्रियाकलापं	कर्म
चकार	किये,
हुत अनलः	अग्निहोत्र करके
वाक्यतः	मौन होकर
ब्रह्म जजाप	गायत्री जप करने लगे ॥६॥

उपस्थायार्कमुद्यन्तं तर्पयित्वाऽऽत्मनः कलाः ।
देवानृषीन् पितॄन् वृद्धान् विप्रानभ्यर्च्य चात्मवान् ॥ ७ ॥

उपस्थाय अर्कं उद्यन्तं तर्पयित्वा आत्मनः कलाः देवान् ऋषीन् पितॄन् वृद्धान् विप्रान् अभ्यर्च्य च आत्मवान ॥७॥

आत्मवान्	मनस्वी (श्रीकृष्ण) ने	**पितॄन् तर्पयित्वा**	पितरोंका तर्पण करके
उद्यन्तं	उगते हुए	**वृद्धान् च**	वृद्धों तथा
अर्कं उपस्थाय	सूर्यका उपस्थान करके	**विप्रान्**	ब्राह्मणोंका
आत्मनः कलाः	अपने ही अंश रूप	**अभ्यर्च्य**	पूजन किया ॥७॥
देवान् ऋषीन्	देवता, ऋषि,		

धेनूनां रुक्मशृंगीणां साध्वीनां मौक्तिकस्रजाम् ।
पयस्विनीनां गृष्टीनां सवत्सानां सुवाससाम् ॥ ८ ॥

धेनूनां रुक्म शृङ्गीनां साध्वीनां मौक्तिक स्रजां पयस्विनीनां गृष्टीनां सवत्सानां सुवाससाम् ॥८॥

रुक्म शृङ्गीनां	स्वर्णसे मढ़ी सींग वाली;	**पयस्विनीनां**	दूध देने वाली
साध्वीनां	सीधी	**गृष्टीनां**	पहली बारकी ब्यायी
धेनूनां	गाय	**सवत्सानां**	बछड़ोंके साथ
मौक्तिक स्रजां	मोतियोंकी माला पहिने,	**सुवाससां**	अच्छे वस्त्रोंसे ढकी ॥८॥

ददौ रूप्यखुराग्राणां क्षौमाजिनतिलैः सह ।
अलङ्कृतेभ्यो विप्रेभ्यो बद्धं बद्धं दिने दिने ॥ ९ ॥

ददौ रूप्यखुराग्राणां क्षौम अजिन तिलैः सह अलङ्कृतेभ्यः विप्रेभ्यः बद्धं बद्धं दिने दिने ॥९॥

रूप्यखुराग्राणां	चाँदीसे मढ़े खुरों वाली	विप्रेभ्यः	ब्राह्मणोंको
क्षौम अजिन	रेशम, मृगचर्म,	दिने दिने	प्रतिदिन
तिलैः सह	तिलके साथ	बद्धं बद्धं ददौ	एक एक बद्ध* दान करते थे ॥९॥
अलङ्कृतेभ्यः	आभूषण भूषित		

गोविप्रदेवतावृद्धगुरून् भूतानि सर्वशः ।
नमस्कृत्यात्मसम्भूतीर्मङ्गलानि समस्पृशत् ॥१०॥

गो विप्र देवता वृद्धान् गुरून् भूतानि सर्वशः नमस्कृत्य आत्म सम्भूतीः मङ्गलानि समस्पृशत् ॥१०॥

आत्मसम्भूतीः	अपने विभूति स्वरूप	नमस्कृत्य	नमस्कार
गो विप्र देवता	गौ, ब्राह्मण, देवता,	मङ्गलानि	मांगलिक वस्तुओंमें
वृद्धान् गुरून्	वृद्ध, गुरुजन एवं	समस्पृशत्	सबका स्पर्श किया ॥१०॥
सर्वशः भूतानि	सम्पूर्ण प्राणियोंको		

आत्मानं भूषयामास नरलोकविभूषणम् ।
वासोभिर्भूषणैः स्वीयैर्दिव्यस्रगनुलेपनैः ॥११॥

आत्मानं भूषयामास नरलोक विभूषणं वासोभिः भूषणैः स्वीयैः दिव्यस्रक् अनुलेपनैः ॥११॥

नरलोक	नरलोकको	वासोभिः स्वीयैः	वस्त्रोंसे, अपने
विभूषणं	भूषित करने वाले	भूषणैः	आभूषणोंसे,
आत्मानं	अपने शरीरको		

---

* चतुर्दशानां लक्षाणां सप्ताधिकशतांशकाः बद्धं चतुरशीति अग्र सहस्राणि अर्थात चौदह लाखका एकसौ सातवाँ भाग—तेरह हजार चौरासी एक 'बद्ध' कहलाता है ।

दिव्यस्रक्	दिव्यमाला तथा	भूषयामास	आभूषित किया
अनुलेपनैः	अंगरागसे		॥११॥

अवेक्ष्याज्यं तथाऽऽदर्शं गोवृषद्विजदेवताः ।
कामांश्च सर्ववर्णानां पौरान्तःपुरचारिणाम् ।
प्रदाप्य प्रकृतीः कामैः प्रतोष्य प्रत्यनन्दत ॥१२॥

अवेक्ष्य आज्यं तथा आदर्शं गो वृष द्विज देवताः कामान् च सर्व वर्णानां पौर अन्तःपुर चारिणां प्रदाप्य प्रकृतीः कामैः प्रतोष्य प्रत्यनन्दत ॥१२॥

आज्यं तथा	घृत तथा	सर्व वर्णानां	सब वर्णके लोगोंको
आदर्शं	दर्पणमें (मुख देख-कर)	च प्रकृतीः	तथा मन्त्रियोंको
		कामैः कामान्	इच्छित भोग पदार्थ
गो वृष द्विज	गौ, बैल, ब्राह्मण	प्रदाप्य प्रतोष्य	देकर सन्तुष्ट करके
देवताः	देवताका	प्रत्यनन्दत	(स्वयं) सन्तुष्ट हुए ॥१२॥
अवेक्ष्य	दर्शन करके		
पौर अन्तःपुर	नगर एवं अन्तःपुरमें		
चारिणां	रहने वाले		

संविभज्याग्रतो विप्रान् स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः ।
सुहृदः प्रकृतीर्दारानुपायुङ्क्त ततः स्वयम् ॥१३॥

संविभज्य अग्रतः विप्रान् स्रक् ताम्बूल अनुलेपनैः सुहृदः प्रकृतीः दारान् उपायुंक्त ततः स्वयम् ॥१३॥

अग्रतः विप्रान्	पहिले ब्राह्मणको	संविभज्य	भली प्रकार बांट-कर
सुहृदः प्रकृतीः	सम्बन्धियों, मन्त्रियों	ततः स्वयं	तब स्वयं
दारान्	स्त्रियों	उपायुंक्त	(उनका) उपयोग किया ॥१३॥
स्रक् ताम्बूल अनुलेपनैः	माला, पान, अंगरागादि		

तावत् सूत उपानीय स्यन्दनं परमाद्भुतम् ।
सुग्रीवाद्यैर्हयैर्युक्तं प्रणम्यावस्थितोऽग्रतः ॥१४॥

तावत् सूत उप आनीय स्यन्दनं परम अद्भुतं सुग्रीव आद्यैः हयैः युक्तं प्रणम्य अवस्थितः अग्रतः ॥१४॥

तावत् सूत	इतनेमें सारथी	प्रणम्य	प्रणाम करके
सुग्रीव आद्यैः	सुग्रीव आदि	अग्रतः	आगे
हयैः युक्तं	घोड़ोंसे जुता	अवस्थित	खड़ा हो गया ॥१४॥
परम अद्भुतं	अत्यन्त अद्भुत		
स्यन्दनं	रथ		
उप आनीय	समीप लाकर		

गृहीत्वा पाणिना पाणी सारथेस्तमथारुहत् ।
सात्यक्युद्धवसंयुक्तः पूर्वाद्रिमिव भास्करः ॥१५॥

गृहीत्वा पाणिना पाणी सारथेः रथं आरूहत् सात्यकि उद्धव संयुक्तः पूर्व अद्रि इव भास्करः ॥१५॥

पूर्व अद्रि	पूर्वाद्रि (उदयाचल) पर	पाणी गृहीत्वा	हाथ पकड़ कर
		सात्यकि उद्धव	सात्यकि एवं उद्धव के
भास्करः इव	सूर्यके समान		
पाणिना सारथेः	अपने हाथसे सारथिका	संयुक्तः	साथ
		रथं आरुहत्	रथ पर चढ़े ॥१५॥

ईक्षितोऽन्तःपुरस्त्रीणां सव्रीडप्रेमवीक्षितैः ।
कृच्छ्राद् विसृष्टो निरगाज्जातहासो हरन् मनः ॥१६॥

ईक्षितः अन्तःपुर स्त्रीणां सव्रीड प्रेम वीक्षितैः कृच्छ्रात् विसृष्टः निरगात् जात हासः हरन् मनः ॥१६॥

अन्तः पुर	अन्तःपुरकी	मनः हरन्	उनका चित्त चुराते
स्त्रीणां	स्त्रियों द्वारा	कृच्छ्रात्	कठिनाईसे
सव्रीड प्रेम	लज्जा एवं प्रेमयुक्त	विसृष्टः	विदा होकर
वीक्षितैः	कटाक्षसे देखे जाते	निरगात्	(भवनसे) निकले
जात हासः	मुस्कराहट आनेसे		॥१६॥

सुधर्माख्यां सभां सर्वैर्वृष्णिभिः परिवारितः ।
प्राविशद् यन्निविष्टानां न सन्त्यङ्ग षड्ऊर्मयः ॥१७॥

सुधर्मा आख्यां सभां सर्वैः वृष्णिभिः परिवारितः प्राविशत् यत् निविष्टानां न सन्ति अङ्ग षट् ऊर्मयः ॥१७॥

सर्वैः वृष्णिभिः	सब यदुवंशियोंसे	षट् ऊर्मयः	छः(क्षुधा-पिपासा,
परिवारितः	चारों ओरसे घिरे		शोक-मोह,
सुधर्मा	सुधर्मा		जरा-मृत्यु) ऊर्मियाँ
आख्यां सभां	नामकी सभामें	न सन्ति	नहीं होतीं ॥१७॥
प्राविशत्	प्रविष्ट हुए		
अङ्ग	प्रिय परीक्षित् !		
यत् निविष्टानां	जिसमें प्रवेश करने वालेको		

तत्रोपविष्टः परमासने विभु-
र्बभौ स्वभासा ककुभोऽवभासयन् ।
वृतो नृसिंहैर्यदुभिर्यदूत्तमो
यथोडुराजो दिवि तारकागणैः ॥१८॥

तत्र उपविष्टः परम आसने विभुः बभौ स्वभासा ककुभः अवभासयन् वृतः नृसिंहैः यदुभिः यदूत्तमः यथा उडुराजः दिवि तारकागणैः ॥१८॥

यथा दिवि	जैसे आकाशमें	तारकागणैः	तारागणोंसे (घिरा)

उडुराजः	चन्द्रमा हो	यदुभिः वृतैः	यादवोंसे घिरे
तत्र	उस (सभा)में	स्वभासा	अपनी कान्तिसे
परम आसने	उच्च सिंहासन पर	ककुभः	दिशाओंको
उपविष्टः विभुः	बैठे हुए प्रभु	अवभासयन्	आलोकित करके
यदूत्तमः	यादव श्रेष्ठ	बभौ	सुशोभित हुए
नृसिंहैः	नर केशरी		॥१८॥

तत्रोपमन्त्रिणो राजन् नानाहास्यरसैर्विभुम् ।
उपतस्थुर्नटाचार्या नर्तक्यस्ताण्डवैः पृथक् ॥१९॥

तत्र उपमन्त्रिणः राजन् नाना हास्यरसैः विभुं उपतस्थुः नट आचार्या नर्तक्यः ताण्डवैः पृथक् ॥१९॥

राजन्	राजन् !	नट आचार्या	नटोंके आचार्य
नाना हास्यरसैः	अनेक प्रकारके हास्यरसमें (कुशल)		और
		नर्तक्यः	नर्तकियां
तत्र उपमन्त्रिणः	वहां उपमन्त्री गण	पृथक् ताण्डवैः	अलग-अलग नृत्योंसे
विभुं उपतस्थुः	उन प्रभुकी सेवामें उपस्थित हुए		॥१९॥

मृदङ्गवीणामुरजवेणुतालदरस्वनैः ।
ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्च सूतमागधवन्दिनः ॥२०॥

मृदङ्ग वीणा मुरज वेणु ताल दरस्वनैः ननृतुः जगुः तुष्टुवुः च सूत मागध वन्दिनः ॥२०॥

च सूत मागध	तथा सूत, मागध,	दरस्वनैः	एवं शंख-ध्वनिसे
वन्दिनः	बन्दी लोग	ननृतुः जगुः	नाचने, गाने एवं
मृदङ्ग वीणा	मृदंग, वीणा	तुष्टुवुः	स्तुति करने लगे
मुरज वेणु	मुरज, वंशी		॥२०॥

तत्राहुर्ब्राह्मणाः केचिदासीना ब्रह्मवादिनः ।
पूर्वेषां पुण्ययशसां राज्ञां चाकथयन् कथाः ॥२१॥

तत्र आहुः ब्राह्मणाः केचित् आसीना ब्रह्मवादिनः पूर्वेषां पुण्ययशसां राज्ञां च अकथयन् कथाः ॥२१॥

तत्र केचित्	वहाँ कुछ	पुण्ययशसां	पवित्र कीर्ति
ब्राह्मणाः	ब्राह्मण	राज्ञां कथाः	राजाओंकी कथा
ब्रह्मवादिनः	वेद मन्त्रोंकी व्याख्या	अकथयन्	करते हुए
आहुः	करते	आसीना	बैठे थे ॥२१॥
च पूर्वेषां	तथा पहिलेके		

तत्रैकः पुरुषो राजन्नागतोऽपूर्वदर्शनः ।
विज्ञापितो भगवते प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥२२॥

तत्र एकः पुरुषः राजन् आगतः अपूर्व दर्शनः विज्ञापितः भगवते प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥२२॥

राजन्	राजन् !	प्रतीहारैः	द्वारपालों द्वारा
तत्र अपूर्व दर्शनः	वहाँ पहिले कभी न देखा गया (अपरिचित)	भगवते	भगवानको
		विज्ञापितः	सूचना देकर
		प्रवेशितः	प्रविष्ट किया गया ॥२२॥
एकः पुरुषः	एक पुरुष आया		
आगतः	आया		

स नमस्कृत्य कृष्णाय परेशाय कृताञ्जलिः ।
राज्ञामावेदयद् दुःखं जरासन्धनिरोधजम् ॥२३॥

स नमस्कृत्य कृष्णाय परेशाय कृत अञ्जलिः राज्ञां आवेदयत् दुःखं जरासन्ध निरोधजम् ॥२३॥

स परेशाय	उनसे परमेश्वर
कृष्णाय	श्रीकृष्णको
नमस्कृत्य	नमस्कार
कृत अञ्जलिः	हाथ जोड़कर
जरासन्ध	जरासन्ध द्वारा
निरोधजं	बन्दी बनानेका
राज्ञां दुःखं	राजाओंका दुःख
आवेदयत्	निवेदन किया ॥२३॥

ये च दिग्विजये तस्य संनतिं न ययुर्नृपाः ।
प्रसह्य रुद्धास्तेनासन्नयुते द्वे गिरिव्रजे ॥२४॥

ये च दिग्विजये तस्य सन्नतिं न ययुः नृपाः प्रसह्य रुद्धाः तेन आसन् अयुते द्वे गिरिव्रजे ॥२४॥

ये नृपाः	जो राजा
तस्य दिग्विजये	उसकी दिग्विजयके समय
सन्नतिं न ययुः	विनम्रता पूर्वक (उसके पास) नहीं आये
च	तथा
तेन	उनके द्वारा
प्रसह्य रुद्धाः	बलपूर्वक बन्दी
अयुते द्वे	बीस सहस्र (राजा)
गिरिव्रजे आसन्	गिरिव्रज (नामक दुर्गमें) हैं ॥२४॥

कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् प्रपन्नभयभञ्जन ।
वयं त्वां शरणं यामो भवभीताः पृथग्धियः ॥२५॥

कृष्ण कृष्ण अप्रमेय आत्मन् प्रपन्न भय भंजन वयं त्वां शरणं यामः भवभीताः पृथक् धियः ॥२५॥

कृष्ण	श्रीकृष्ण
अप्रमेय	अप्रमेय
आत्मन् कृष्ण	स्वरूप कृष्ण !
प्रपन्न भय	शरणागतके भय
भञ्जन	नाशक
वयं	हम
पृथक् धियः	भेद-बुद्धि वाले
भवभीताः	संसारसे डरे हुए
त्वां	आपकी
शरणं यामः	शरण आते हैं ॥२५॥

लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः
कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ।
यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां
सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥२६॥

लोकः विकर्म निरतः कुशले प्रमत्तः कर्मणि अयं त्वत् उदिते भवत् अर्चने स्वे यः तावत् अस्य बलवान् इह जीवित आशां सद्यः छिनत्ति अनिमिषाय नमः अस्तु तस्मै ॥२६॥

अयं लोकः	ये (सांसारिक) व्यक्ति	यः अस्य तावत्	जो इसकी अचानक
त्वत् उदिते	आपके बतलाये	इह	इस लोकमें
भवत अर्चने	आपकी पूजा रूप	जीवित आशां	जीवनकी आशाको
स्व कुशले	अपने मंगलकारी	सद्यः छिनत्ति	तुरन्त काट देते हैं
कर्मणि	कर्मसे	तस्मै	उस
प्रमत्तः	असावधान होकर	अनिमिषाय	कालदेवको
विकर्म निरतः	काम्यकर्मोंमें लगा रहता है,	नमः अस्तु	नमस्कार हो ॥ ६॥

लोके भवाञ्जगदिनः कलयावतीर्णः
सद्रक्षणाय खलनिग्रहणाय चान्यः ।
कश्चित् त्वदीयमतियाति निदेशमीश
किं वा जनः स्वकृतमृच्छति तन्न विद्मः ॥२७॥

लोके भवान् जगदि नः कलया अवतीर्णः सत् रक्षणाय खल निग्रहणाय च अन्यः कश्चित् त्वदीयं अतियाति निदेशं ईश किं वा जनः स्वकृतं ऋच्छति तत् न विद्मः ॥२७॥

लोके	इस लोकमें	नः सत् रक्षणाय	हम सत्पुरुषोंकी रक्षाके लिए
भवान् जगदि	आप जगदीश्वरने		

च खल	तथा दुष्टोंका
निग्रहणाय	दमन करनेके लिए
कलया	अपनी कलाओंके
अवतीर्णः	साथ अवतार लिया
अन्यः कश्चित्	(अब) दूसरा कोई
त्वदीयं निदेशं	आपकी आज्ञाका
अतियाति	उल्लंघन कर रहा है
वा ईश	अथवा स्वामी !
जनः स्वकृतं	आपके भक्त अपना कर्मफल
ऋच्छति	भोग रहे हैं
तत् न विद्मः	यह हम नहीं जाते ॥२७॥

स्वप्नायितं नृपसुखं परतन्त्रमीश
शश्वद्भयेन मृतकेन धुरं वहामः ।
हित्वा तदात्मनि सुखं त्वदनीहलभ्यं
क्लिश्यामहेऽतिकृपणास्तव माययेह ॥२८॥

स्वप्नायितं नृपसुखं परतन्त्रं ईश शश्वत् भयेन मृतकेन धुरं वहामः हित्वा तत् आत्मनि सुखं त्वत् अनीह लभ्यं क्लिश्यामहे अतिकृपणाः तव मायया इह ॥२८॥

ईश	स्वामी
अनीह लभ्यं	निष्काम पुरुषोंको प्राप्त होने वाला
तत् आत्मनि	वह अपनेमें ही
त्वत्	आपका
सुखं हित्वा	आनन्द त्यागकर
तव मायया	आपकी मायासे
इह	इस
अति कृपणाः	संसारमें अत्यन्त दीन हुए
क्लिश्यामहे	कष्ट उठा रहे हैं
परतन्त्रं	परतन्त्र (प्रारब्धाधीन)
स्वप्नायितं	स्वप्नके समान
नृपसुखं	राजसुख जो
शश्वत् भयेन	निरन्तर भय ग्रस्त है (उसका)
मृतकेन	मृतकके समान
धुरं वहामः	भार ढोते हैं ॥२८॥

तन्नो भवान् प्रणतशोकहरांघ्रियुग्मो
बद्धान् वियुङ्क्ष्व मगधाह्वयकर्मपाशात् ।

यो भूभुजोऽयुतमतङ्गजवीर्यमेको
बिभ्रद् रुरोध भवने मृगराडिवावीः ॥२९॥

ततः नः भवान् प्रणत शोक हर अंघ्रि युग्मः बद्धान् वियुङ्क्ष्व मगध आह्वय कर्मपाशात् यः भूभुजः अयुत मतङ्गज वीर्यं एकः बिभ्रत् रुरोध भवने मृगराट् इव आवीः ॥२८॥

प्रणत शोक हर	शरणागतोंका शोक दूर करने वाले
अंघ्रियुग्म	युगल-चरण वाले
भवान्	आप
ततः नः	इसलिए हम लोगों को
मगध आह्वय	मगधराज नामक
कर्मपाशात्	कर्म-बन्धनमें,
बद्धान्	बँधोंको
वियुङ्क्ष्व	छुड़ाइये,
यः एकः	जिसने अकेले
अयुत मतङ्गज	दस सहस्र हाथियों की
वीर्यं बिभ्रत्	शक्ति धारण करके
आवीः	भेड़ोंको
मृगराट् इव	सिंहके समान
भूभुजः भवने	राजाओंको अपने भवनमें
रुरोध	बन्दी कर रखा है ॥२९॥

यो वै त्वया द्विनवकृत्व उदात्तचक्र
भग्नो मृधे खलु भवन्तमनन्तवीर्यम् ।
जित्वा नृलोकनिरतं सकृदूढदर्पो
युष्मत्प्रजा रुजति नोऽजित तद् विधेहि ॥३०॥

यः वै त्वया द्विनवकृत्य उदात्त चक्र भग्नः मृधे खलु भवन्तं अनन्त वीर्यं जित्वा नृलोक निरतं सकृत् ऊढदर्पः युष्मत् प्रजा रुजति नः अजित तत् विधेहि ॥३०॥

उदात्त चक्र	चक्र उठाने वाले प्रभु !
यः वै त्वया	जो निश्चय आपके द्वारा
मृधे द्विनवकृत्य	युद्धमें दो नव (अठारह वार)
भग्नः	पराजित हुआ,

खलु नृलोक	अहो नरलोकका	अजित	अजित !
निरतं	अनुकरण करते	युष्मत् प्रजा	आपकी प्रजा
भवन्त	आप	रुजति	कष्ट पा रही है
अनन्त वीर्यं	अनन्त पराक्रमको	तत् विधेहि	(अब जैसी इच्छा
सकृत् जित्वा	एक बार जीत कर		हो) वह व्यवस्था
ऊढ दर्पः	गर्वित हो गया है,		कीजिये ॥३०॥

॥ दूत उवाच ॥

इति मागधसंरुद्धा भवद्दर्शनकांक्षिणः ।
प्रपन्नाः पादमूलं ते दीनानां शं विधीयताम् ॥३१॥

इति मागध संरुद्धा भवत् दर्शन कंक्षिणः प्रपन्नाः पादमूलं ते दीनानां शं विधीयताम् ॥३१॥

इति मागध	इस प्रकार मगध-	ते पादमूलं	आपके चरणोंकी
	राज द्वारा	प्रपन्नाः	शरण आये हैं
संरुद्धा	बन्दी	दीनानां	उन दीनोंका
भवत्	आपके	शं विधीयतां	कल्याण कीजिए
दर्शन कांक्षिणः	दर्शनाभिलाषी		॥३१॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

राजदूते ब्रुवत्येवं देवर्षिः परमद्युतिः ।
बिभ्रत् पिङ्गजटाभारं प्रादुरासीद् यथा रविः ॥३२॥

राजदूते ब्रुवति एवं देवर्षिः परमद्युतिः बिभ्रत् पिङ्ग जटाभारं प्रादुः आसीत् यथा रविः ॥३२॥

एवं राजदूते	इस प्रकार राजदूत के	ब्रुवति	कहते समय ही
		परमद्युतिः	अत्यन्त तेजस्वी

पिङ्ग जटाभारं	पिंगल जटाजूट	देवर्षिः	देवर्षि नारद
बिभ्रत्	धारण किये	प्रादुः आसीत्	प्रकट हुए ॥३२॥
यथा रविः	जैसे सूर्य		

तं दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः सर्वलोकेश्वरेश्वरः ।
ववन्द उत्थितः शीर्ष्णा ससभ्यः सानुगो मुदा ॥३३॥

तं दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः सर्वलोक ईश्वर ईश्वरः ववन्द उत्थितः शीर्ष्णा ससभ्यः सानुगः मुदा ॥३३॥

तं दृष्ट्वा	उनको देखकर	भगवान् कृष्णः	भगवान श्रीकृष्णने
ससभ्यः	सभासदोंके साथ	उत्थितः	उठकर
सानुगः मुदा	अनुचरोंके साथ आनन्दित होकर	शीर्ष्णा ववन्द	सिर झुकाकर प्रणाम किया ॥३३॥
सर्वलोक ईश्वर ईश्वरः	सब लोकोंके स्वामियोंके भी स्वामी		

सभाजयित्वा विधिवत् कृतासनपरिग्रहम् ।
बभाषे सूनृतैर्वाक्यैः श्रद्धया तर्पयन् मुनिम् ॥३४॥

सभाजयित्वा विधिवत् कृत आसन परिग्रहं बभाषे सूनृतैः वाक्यैः श्रद्धया तर्पयन् मुनिम् ॥३४॥

कृत आसन परिग्रहः	आसनको स्वीकार कर लेने पर	मुनिं श्रद्धया तर्पयन्	मुनिको श्रद्धासे तृप्त करते हुए
विधिवत्	विधिपूर्वक	सूनृतैः वाक्यैः	अत्यन्त मधुर वाणी से
सभाजयित्वा	सत्कार करके	बभाषे	बोले ॥३४॥

अपि स्विदद्य लोकानां त्रयाणामकुतोभयम् ।
ननु भूयान् भगवतो लोकान् पर्यटतो गुणः ॥३५॥

अपि स्वित अद्य लोकानां त्रयाणां अकुतः भयं ननु भूयात् भगवतः लोकान् पर्यटतः गुणः ॥३५॥

त्रयाणां	तीनों	ननु भगवतः	निश्चय आपके
लोकानां	लोकोंमें	लोकान् पर्यटतः	लोकोंमें घूमनेका
अद्य	इस समय	गुणः भूयात्	(हमको) लाभ होता है ॥३५॥
अकुतः भयं	सब ओर निर्भयता		
अपि स्वित्	तो है ?		

न हि तेऽविदितं किंचिल्लोकेष्वीश्वरकर्तृषु ।
अथ पृच्छामहे युष्मान् पाण्डवानां चिकीर्षितम् ॥३६॥

न हि ते अविदितं किञ्चित् लोकेषु ईश्वर कर्तृषु अथ पृच्छामहे युष्मात् पाण्डवानां चिकीर्षितम् ॥३६॥

ईश्वर कर्तृषु	ईश्वरके द्वारा निर्मित	अथ युष्मात्	अतः आपसे
		पाण्डवानां	पाण्डवोंकी
लोकेषु	लोकोंमें	चिकीर्षितं	जो करनेकी इच्छा हो
हि ते किञ्चित्	क्योंकि आपसे कुछ भी	पृच्छामहे	(हम) पूछते हैं ॥३६॥
अविदितं न	अज्ञात नहीं है		

॥ नारद उवाच ॥

दृष्टा मया ते बहुशो दुरत्यया
माया विभो विश्वसृजश्च मायिनः ।
भूतेषु भूमंश्चरतः स्वशक्तिभि-
र्वह्नेरिवच्छन्नरुचो न मेऽद्भुतम् ॥३७॥

दृष्टा मया ते बहुशः दुरत्यया माया विभो विश्वसृजः च मायिनः
भूतेषु भूमन् चरतः स्वशक्तिभिः वह्नेः इव छन्नरुचः न मे अद्भुतम्
॥३७॥

विभो भूमन्	प्रभो ! भूमन् !
ते विश्वसृजः	आप विश्वस्रष्टा
मायिनः	मायाधिपकी
दुरत्यया माया	दुस्तर मायाको
मया बहुशः	मैंने बहुत बार
दृष्टा	देखा है
वह्नेः इव	अग्निके समान
स्वशक्तिभिः	अपनी शक्ति द्वारा
भूतेषु चरतः	प्राणि-पदार्थोंमें रहते हुए भी
छन्नरुचः	अपना तेज छिपाये हैं
मे अद्भुतं न	यह मेरे लिए आश्चर्यजनक नहीं है ॥३७॥

तवेहितं कोऽर्हति साधु वेदितुं
स्वमाययेदं सृजतो नियच्छतः ।
यद् विद्यमानात्मतयावभासते
तस्मै नमस्ते स्वविलक्षणात्मने ॥३८॥

तव ईक्षितं कः अर्हति साधु वेदितुं स्वमायया इदं सृजतः नियच्छतः
यत् अविद्यमान आत्मतया अवभासते तस्मै नमः ते स्वविलक्षण आत्मने
॥३८॥

यत् अविद्यमान	जो विद्यमान न होने (मिथ्या होने) पर भी
आत्मतया	आत्मरूपसे
अवभासते	प्रतीत हो रहा है
स्वमायया इदं	अपनी मायासे इस जगतको
सृजतः	उत्पन्न करने तथा
नियच्छतः	लय करने वाले
तव ईहितं	आपकी चेष्टाको
कः साधु	कौन भली प्रकार
वेदितुं अर्हति	जान सकता है
स्वविलक्षण	अतः स्वयंमें अचिन्त्य
आत्मने	स्वरूप
तस्मै ते नमः	उस आपको नमस्कार ॥३८॥

जीवस्य यः संसरतो विमोक्षणं
न जानतोऽनर्थवहाच्छरीरतः ।
लीलावतारैः स्वयशःप्रदीपकं
प्राज्वालयत्त्वा तमहं प्रपद्ये ॥३९॥

जीवस्य यः संसरतः विमोक्षणं न जानतः अनर्थ वहात् शरीरतः लीला अवतारैः स्वयशः प्रदीपकं प्राज्वालयत् त्वा तं अहं प्रपद्ये ॥३९॥

यः	अनर्थ वहात् जिस अनर्थ ढोने वाले	लीला अवतारैः	लीला पूर्वक अवतार लेकर
शरीरतः	अपने शरीरसे	स्वयशः प्रदीपकं	अपने यशका दीपक
विमोक्षणं	घुटनेका उपाय	प्राज्वालयत्	प्रज्वलित करने वाले
न जानतः	न जानते हुए	तं त्वा अहं	उस आपकी मैं
संसरतः	(जन्म-मरण चक्रमें) भटकते	प्रपद्ये	शरणमें हूँ ॥३९॥
जीवस्य	जीवके लिए		

अथाप्याश्रावये ब्रह्म नरलोकविडम्बनम् ।
राज्ञः पैतृष्वसेयस्य भक्तस्य च चिकीर्षितम् ॥४०॥

अथ अपि आश्रावये ब्रह्म नरलोक विडम्बनं राज्ञः पैतृष्वसेयस्य भक्तस्य च चिकीर्षितम् ॥४०॥

ब्रह्म	ब्रह्म होने पर	राज्ञस्य	राजाकी
अथ अपि	फिर भी	भक्तस्य च	(जो आपके) भक्त भी हैं
नरलोक	मनुष्य लोककी	चिकीर्षितं	करनेकी इच्छा
विडम्बनं	लीला करने वाले आपको	आश्रावये	सुनाता हूँ ॥४०॥
पैतृष्वसेयस्य	आपके पिताकी बहिनके पुत्र		

यक्ष्यति त्वां मखेन्द्रेण राजसूयेन पाण्डवः ।
पारमेष्ठ्यकामो नृपतिस्तद् भवाननुमोदताम् ॥४१॥

यक्ष्यति त्वां मख इन्द्रेण राजसूयेन पाण्डवः पारमेष्ठ्य कामः नृपतिः तत् भवान् अनुमोदताम् ॥४१॥

पारमेष्ठ्य	चक्रवर्तित्वकी	त्वां यक्ष्यति	आपका यजन करना
कामः	कामनासे		चाहते हैं
पाण्डवः नृपतिः	पाण्डव राजा	तत् भवान्	अतः आप
	युधिष्ठिर	अनुमोदतां	(उसका) अनुमोदन
मख इन्द्रेण	मखेन्द्र		कीजिए ॥ १॥
राजसूयेन	राजसूय द्वारा		

तस्मिन् देव क्रतुवरे भवन्तं वै सुरादयः ।
दिदृक्षवः समेष्यन्ति राजानश्च यशस्विनः ॥४२॥

तस्मिन् देव क्रतुवरे भवन्तं वै सुर आदयः दिदृक्षवः सम एष्यन्ति राजानः च यशस्विनः ॥४२॥

देव तस्मिन्	देव ! उस	राजानः	राजा लोग
क्रतुवरे	श्रेष्ठ यज्ञमें	भवन्तं दिदृक्षवः	आपका दर्शन करने
वैः सुर आदयः	निश्चय देवता		के लिए
	आदि	सम एष्यन्ति	एक साथ आवेंगे
च यशस्विनः	तथा यशस्वी		॥४२॥

श्रवणात् कीर्तनाद् ध्यानात् पूयन्तेऽन्तेवसायिनः ।
तव ब्रह्ममयस्येश किमुतेक्षाभिमर्शिनः ॥४३॥

श्रवणात् कीर्तनात् ध्यानात् पूयन्ते अन्तेवसायिनः तव ब्रह्ममयः ईशस्य किं उत ईक्षा अभिमर्शिनः ॥४३॥

तव ब्रह्ममयः	आप ब्रह्म स्वरूप	अन्तेवसायिनः	चाण्डाल भी
ईशस्य	सर्वेश्वरके	पूयन्ते	पवित्र हो जाते हैं
श्रवणात्	श्रवण,	उत ईक्षा	फिर दर्शन
कीर्तनात्	कीर्तन	अभिमर्शिनः	स्पर्श करने वालोंका
ध्यानात्	ध्यानसे	किं	क्या कहना ॥४३॥

यस्यामलं दिवि यशः प्रथितं रसायां
भूमौ च ते भुवनमङ्गल दिग्वितानम् ।
मन्दाकिनीति दिवि भोगवतीति चाधो
गङ्गेति चेह चरणाम्बु पुनाति विश्वम् ॥४४॥

यस्य अमलं दिवि यशः प्रथितं रसायां भूमौ च ते भुवनमङ्गल दिक् वितानं मन्दाकिनी इति दिवि भोगवती इति च अधः गङ्गा इति च इह चरण अम्बु पुनाति विश्वम् ॥४४॥

भुवनमङ्गल	भुवनमगंल	मन्दाकिनी	मन्दाकिनी
यस्य अमलं	जिसका निर्मल	इति दिवि	इस नामसे स्वर्गको
यशः	यश	भोगवती	भोगवती
दिवि रसायां	स्वर्ग, पाताल,	इति अधः	इस नामसे नीचेके लोकोंको
भूमौ च	पृथ्वीमें भी		
दिक् वितानं	(दसों) दिशाओंमें व्याप्त	च गङ्गा इति	तथा गंगा इस नाम से
प्रथितं	फैला हुआ है,	इह च विश्वं	यहां भी जगतको
ते चरण अम्बु	आपका चरणोदक ही	पुनाति	पवित्र करता है ॥४४॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

तत्र तेष्वात्मपक्षेष्वगृह्णत्सु विजिगीषया ।
वाचः येशैः स्मयन् भृत्यमुद्धवं प्राह केशवः ॥४५॥

तत्र तेषु आत्म पक्षेषु अगृह्णत्सु विजिगीषया वाचः पेशैः स्मयन् भृत्यं उद्धवं प्राह केशवः ॥४५॥

तत्र तेषु	वहां उन (यादव) लोगोंको	भृत्यं उद्धवं	अपने सेवक उद्धवसे
आत्म पक्षेषु	अपने पक्षको	केशवः	केशवने मुस्कराते हुए
विजिगीषया	विजयी बनानेकी इच्छासे	पेशैः वाचः	कोमल वाणीमें
अगृह्णत्सु	(नारदजीकी बात) न स्वीकार करते (देखकर)	प्राह	कहा ॥४५॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

त्वं हि नः परमं चक्षुः सुहृन्मन्त्रार्थतत्त्ववित् ।
अथात्र ब्रूह्यनुष्ठेयं श्रद्दध्मः करवाम तत् ॥४६॥

त्वं हि नः परमं चक्षुः सुहृत् मन्त्र अर्थ तत्त्ववित् अथ अत्र ब्रूहि अनुष्ठेयं श्रद्दध्मः करवाम तत् ॥४६॥

हि त्वं नः	क्योंकि तुम हमारे	अनुष्ठेयं ब्रूहि	करने योग्य बतलाओ
परमं चक्षुः	उत्तम नेत्र	श्रद्दध्मः	(हम उस पर) श्रद्धा करेंगे और
मन्त्र अर्थ तत्त्ववित्	मन्त्रणाका प्रयोजन तथा तत्त्व जानने वाले	तत् करवाम	उसे करेंगे ॥४६॥
सुहृत् तथा अत्र	सुहृद हो, इसलिए इस विषय में		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

इत्युपामन्त्रितो भर्त्रा सर्वज्ञेनापि मुग्धवत् ।
निदेशं शिरसाऽऽधाय उद्धवः प्रत्यभाषत ॥४७॥

इति उपामन्त्रितः भर्त्रा सर्वज्ञेन अपि मुग्धवत् निदेशं शिरसा आधाय उद्धवः प्रत्यभाषत ॥४७॥

इति	इस प्रकार	निदेशं	(उनकी) आज्ञाको
सर्वज्ञेन अपि	सर्वज्ञ होने पर भी	शिरसा आधाय	शिरोधार्य करके
मुग्धवत्	अनजानके समान	उद्धवः	उद्धवजी
भर्त्रा	स्वामीके	प्रत्यभाषत	समझाते हुए बोले
उपामन्त्रितः	पूछने पर		॥४७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भगवद्यानविचारे सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य देवर्षेरुद्धवोऽब्रवीत् ।
सभ्यानां मतमाज्ञाय कृष्णस्य च महामतिः ॥१॥

इति उदीरितं आकर्ण्य देवर्षेः उद्धवः अब्रवीत् सभ्यानां मतं अज्ञाय कृष्णस्य च महामतिः ॥१॥

इति उदीरितं	इस प्रकार (श्रीकृष्णके) वचन	देवर्षेः	देवर्षि नारदका,
		सभ्यानां	सभासदोंका
आकर्ण्य	सुनकर	च कृष्णस्य	तथा श्रीकृष्णका
महामतिः	अत्यन्त बुद्धिमान	मतं आज्ञाय	भाव जानकर
उद्धवः	उद्धव	अब्रवीत्	बोले ॥१॥

॥ उद्धव उवाच ॥

यदुक्तमृषिणा देव साचिव्यं यक्ष्यतस्त्वया ।
कार्यं पैतृष्वसेयस्य रक्षा च शरणैषिणाम् ॥ २ ॥

यत् उक्तं ऋषिणा देव साचिव्यं यक्ष्यतः त्वया कार्यं पैतृष्वसेयस्य रक्षा च शरण एषिणाम् ॥२॥

देव	देव !	पतृष्वसेयस्य	पिताकी बहिनके पुत्रोंकी
यत्	जो		
ऋषिणा उक्तं	देवर्षिने कहा	त्वया साचिव्यं	आपको सहायता
यक्ष्यतः	यज्ञ करने वाले		

च शरण एषिणां	तथा शरण चाहने वालोंकी	रक्षा कार्यं	रक्षा भी करनी चाहिए ॥२॥

यष्टव्यं राजसूयेन दिक्चक्रजयिना विभो ।
अतो जरासुतजय उभयार्थो मतो मम ॥ ३ ॥

यष्टव्यं राजसूयेन दिक्चक्र जयिना विभो अतः जरासुत जयः उभय अर्थः मतः मम ॥३॥

विभो	प्रभो !	जरासुत जयः	जराके पुत्र (जरासन्ध)को जीतना
दिक्चक्र जयिना	सब दिशाओंको जीतने वाला ही	उभय अर्थः	दोनों प्रयोजनोंके लिए (आवश्यक) है ॥३॥
राजसूयेन यष्टव्यं	राजसूय यज्ञ कर सकता है		
अतः मम मतं	अतः मेरी सम्मति में		

अस्माकं च महानर्थो ह्येतेनैव भविष्यति ।
यशश्च तव गोविन्द राज्ञो बद्धान् विमुञ्चतः ॥ ४ ॥

अस्माकं च महान् अर्थः हि एतेन एव भविष्यति यशः च तव गोविन्द राज्ञ बद्धान् विमुञ्चतः ॥४॥

एतेन एव	इतने से ही	बद्धान् राज्ञः	बन्दी राजाओंको
अस्माकं च	हम लोगोंका भी	विमुञ्चतः	छुड़ा देने से
महान् अर्थः	बहुत बड़ा प्रयोजन	तव यशः च	आपका सुयश भी
च गोविन्द	और गोविन्द !	भविष्यति	होगा ॥४॥

स वै दुर्विषहो राजा नागायुतसमो बले ।
बलिनामपि चान्येषां भीमं समबलं विना ॥ ५ ॥

स वै दुर्विषहः राजा नाग अयुत समः बले बलिनां अपि च अन्येषां भीमं समबलं विना ॥५॥

बले	बलमें	भीमं विना	भीमसेनको छोड़कर
नाग अयुत समः	दस सहस्र हाथियों के समान	अन्येषां बलिनां	दूसरे बलवानोंके लिए
वै स राजा	निश्चय वह राजा	अपि दुर्विषहः	भी असह्य है ॥५॥
समबलं	अपने समान बलवान		

द्वैरथे स तु जेतव्यो मा शताक्षौहिणीयुतः ।
ब्रह्मण्योऽभ्यर्थितो विप्रैर्न प्रत्याख्याति कर्हिचित् ॥६॥

द्वैरथे स तु जेतव्यः मा शत अक्षौहिणी युतः ब्रह्मण्यः अभ्यर्थितः विप्रैः न प्रत्याख्याति कर्हिचित् ॥६॥

स तु द्वैरथे	वह तो द्वन्द-युद्धमें ही	विप्रैः	ब्राह्मणोंके
जेतव्यः	जीतने योग्य	अभ्यर्थितः	प्रार्थना करने पर
शत अक्षौहिणी	सौ अक्षौहिणी सेना के	प्रत्याख्याति	(उनकी बात) अस्वीकार
युतः मा	साथ नहीं,	कर्हिचित् न	कभी नहीं करता ॥६॥
ब्रह्मण्यः	(वह) ब्राह्मण-भक्त है		

ब्रह्मवेषधरो गत्वा तं भिक्षेत वृकोदरः ।
हनिष्यति न संदेहो द्वैरथे तव संनिधौ ॥ ७ ॥

ब्रह्मवेषधरः गत्वा तं भिक्षेत वृकोदरः हनिष्यति न सन्देहः द्वैरथे तव सन्निधौ ॥७॥

वृकोदरः	भीमसेन	तव सन्निधौ	आपके सानिध्यमें
ब्रह्मवेशधरः	ब्राह्मणका वेष बनाकर	न सन्देहः	निसन्देह
तं भिक्षेत	उससे (द्वन्द्व-युद्धकी) भिक्षा मांगे	द्वैरथे हनिष्यति	द्वन्द्व-युद्धमें (उसे) मार देंगे ॥७॥

निमित्तं परमीशस्य विश्वसर्गनिरोधयोः ।
हिरण्यगर्भः शर्वश्च कालस्यारूपिणस्तव ॥ ८ ॥

निमित्तं परं ईशस्य विश्व सर्ग निरोधयोः हिरण्यगर्भः शर्वः च कालस्य अरूपिणः तव ॥८॥

तव अरूपिणः	आप रूपहीन	शर्वः	शङ्करजी
कालस्य	काल	निमित्तं	निमित्त हैं (इसी
परं ईशस्य	परमेश्वरके		प्रकार जरासन्ध
विश्व सर्ग	संसारकी सृष्टिमें		वधमें भीम निमित्त
हिरण्यगर्भ	ब्रह्माजी		होंगे) ॥८॥
च निरोधयोः	तथा प्रलयमें		

गायन्ति ते विशदकर्म गृहेषु देव्यो
राज्ञां स्वशत्रुवधमात्मविमोक्षणं च ।
गोप्यश्च कुञ्जरपतेर्जनकात्मजायाः
पित्रोश्च लब्धशरणा मुनयो वयं च ॥ ९ ॥

गायन्ति ते विशद कर्म गृहेषु देव्यः राज्ञां स्वशत्रु वधं आत्म विमोक्षणं च गोप्यः च कुञ्जरपतेः जनकात्माजायाः पित्रोः च लब्धशरणा मुनयः वयं च ॥९॥

राज्ञां देव्यः	(जरासन्धके मरने पर बन्धनसे छूटे) राजाओंकी रानियां	स्वशत्रु वधं	अपने शत्रुके मारे जाने

ते विशद कर्म	आपके प्रशस्त कर्म को
गृहेषु गायन्ति	घरोंमें वर्णन करेंगी
गोप्यः	(जैसे) गोपियां
आत्म विमोक्षणं	अपने (शंखचूड़से) छुड़ानेकी
मुनयः	मुनिगण
कुञ्जरपतेः	गजेन्द्र (उद्धार)को
च	तथा
जनकात्मजायाः	जनक-नन्दिनीका (लंकासे छुड़ाया जाना)
च लब्धशरणा	और शरण प्राप्त
वयं च	हम लोग भी
पित्रोः	आपके माता-पिता (वसुदेव-देवकीका कंसके बन्धनसे छुड़ाया जाने)को भी (गावे) हैं ॥९॥

जरासंधवधः कृष्ण भूर्यर्थायोपकल्पते ।
प्रायः पाकविपाकेन तव चाभिमतः क्रतुः ॥१०॥

जरासन्ध वधः कृष्ण भूरि अर्थाय उपकल्पते प्रायः पाक विपाकेन तव च अभिमतः क्रतुः ॥१०॥

कृष्ण	श्रीकृष्ण !
जरासन्ध वधः	जरासन्धका मारा जाना
भूरि अर्थाय उपकल्पते	बहुत प्रयोजन सिद्ध करने वाला होगा
च	तथा
पाक विपाकेन	(राजाओंके पुण्य) परिणाम एवं जरासन्धके पाप विपाकको देखते
क्रतुः तव च अभिमतः	यज्ञ आपको भी अभीष्ट ही है ॥१०॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इत्युद्धववचो राजन् सर्वतोभद्रमच्युतम् ।
देवर्षिर्यदुवृद्धाश्च कृष्णश्च प्रत्यपूजयन् ॥११॥

इति उद्धव वचः राजन् सर्वतः भद्रं अच्युतं देवर्षिः यदुवृद्धाः च कृष्णः च प्रत्यपूजयन् ॥११॥

राजन्	राजन् !	यदुवृद्धाः च	वयोवृद्ध यादवों एवं
इति	इस प्रकार	कृष्णः	श्रीकृष्णने
सर्वतः भद्रं	सर्वथा मंगलमय	प्रत्यपूजयन्	सम्मान किया ॥११॥
अच्युतं	निर्दोष		
उद्धव वचः	उद्धवजीके वचनोंका		
देवर्षिः च	देवर्षि और		

अथादिशत् प्रयाणाय भगवान् देवकीसुतः ।
भृत्यान् दारुकजैत्रादीननुज्ञाप्य गुरून् विभुः ॥१२॥

अथ आदिशत् प्रयाणाय भगवान् देवकीसुतः भृत्यान् दारुक जैत्र आदीन् अनुज्ञाप्य गुरून् विभुः ॥१२॥

अथ विभुः	फिर प्रभु	भृत्यान्	सेवकोंको
भगवान	भगवान	प्रयाणाय	प्रस्थान की तैयारीकी
देवकीसुतः	देवकी-नन्दनने	आदिशत्	आज्ञा दी ॥१२॥
गुरून् अनुज्ञाप्य	गुरुजनोंसे अनुमति लेकर		
दारुक जैत्र	दारुक, जैत्र		
आदीन्	आदि		

निर्गमय्यावरोधान् स्वान् ससुतान् सपरिच्छदान् ।
संकर्षणमनुज्ञाप्य यदुराजं च शत्रुहन् ।
सूतोपनीतं स्वरथमारुहद् गरुडध्वजम् ॥१३॥

निर्गमय्य अवरोधान् स्वान् ससुतान् सपरिच्छदान् सङ्कर्षणं अनुज्ञाप्य यदुराजं च शत्रुहन् सूत उपनीतं स्व रथं आरुहत् गरुडध्वजम् ॥१३॥

ससुतान्	पुत्रोंके साथ,
सपरिच्छदान्	सामग्रियोंके साथ
स्वान्	अपनी
अवरोधान	अन्तःपुर वासिनियों को
निर्गमय्य	आगे निकाल कर
सङ्कर्षणं	बलरामजी
च यदुराजं	तथा यादव महाराज उग्रसेनसे
अनुज्ञाप्य	अनुमति लेकर
सूत उपनीतं	सारथिके द्वारा समीप लाये
स्व गरुडध्वजं	अपने गरुड चिह्नाङ्कित ध्वजा वाले
रथं आरुहत्	रथ पर चढ़े ॥१३॥

ततो रथद्विपभटसादिनायकैः
करालया परिवृत आत्मसेनया ।
मृदङ्गभेर्यानकशङ्खगोमुखैः
प्रघोषघोषितककुभो निराक्रमत् ॥१४॥

ततः रथ द्विप भट सादि नायकैः करालया परिवृत आत्म सेनया मृदङ्ग भेरि आनक शङ्ख गोमुखैः प्रघोष घोषित ककुभः निराक्रमत् ॥१४॥

ततः मृदङ्ग	तब मृदङ्ग,
भेरि आनक	भेरी, नगाड़े,
शङ्ख गोमुखैः	शंख, गोमुख आदि (वाद्यों)की
प्रघोष	ध्वनिसे
ककुभः घोषित	दिशाओंको गुंजित करते
रथ द्विप भट	रथ, गज, पैदल
सादि नायकैः	अश्व सेनाके यूथपों से
करालया	भयानक
आत्म	अपनी
सेनया परिवृतः	सेनासे घिरे
निराक्रमत्	(नगरसे) निकले ॥१४॥

नृवाजिकाञ्चनशिबिकाभिरच्युतं
सहात्मजाः पतिमनु सुव्रता ययुः ।
वराम्बराभरणविलेपनस्रजः
सुसंवृता नृभिरसिचर्मपाणिभिः ॥१५॥

नृवाजि काञ्चन शिबिकाभिः अच्युतं सह आत्मजाः पतिं अनु सुव्रता ययुः वर अम्बर आभरण विलेपन स्रजः सुसंवृता नृभिः असि चर्म पाणिभिः ॥१५॥

नृवाजि	नरयान, अश्वयान तथा	सह आत्मजाः	अपने पुत्रोंके साथ
काञ्चन	स्वर्ण	असि चर्म	हाथोंमें
शिबिकाभिः	पालिकियों द्वारा	पाणिभिः	तलवार-ढाल लिए
वर अम्बर	श्रेष्ठ वस्त्र	नृभिः सुसंवृता	मनुष्यों (सैनिकों)से भली प्रकार घिरी
आभरण	आभूषण,	सुव्रता	पतिव्रताएँ
विलेपन	अंगराग,	पतिं अच्युतं	अपने पति अच्युतके
स्रजः	मालाओंसे (अलंकृता)	अनु ययुः	पीछे चलीं ॥१५॥

नरोष्ट्रगोमहिषखराश्वतर्यनैः-
करेणुभिः परिजनवारयोषितः ।
सुअलंकृताः कटकुटिकम्बलाम्बरा-
द्युपस्करा ययुरधियुज्य सर्वतः ॥१६॥

नर उष्ट्र गो महिष खर अश्वतरि अनः करेणुभिः परिजन वारयोषितः सु अलंकृताः कटक कुटि कम्बल अम्बर आदि उपस्करा ययुः अधियुज्य सर्वतः ॥१६॥

परिजन वारयोषितः	अनुचरोंकी स्त्रियां और वारांगनाएँ	कटक कम्बल	खसादि तथा कंबल के (ऊनी) तम्बू

अम्बर आदि	वस्त्रादि
उपस्करा	सामग्री
नर उष्ट्र गो	मनुष्यों, ऊंटों, बैलों
महिष खर	भैंसों, गधों
अश्वतरि अनैः	खच्चरों, छकड़ों पर
सर्वतः	चारों ओरसे
अधियुज्य	लादकर
करेणुभिः ययुः	हथिनियों पर चढ़कर चलीं ॥१६॥

बलं बृहद्ध्वजपटछत्रचामरै-
र्वरायुधाभरणकिरीटवर्मभिः ।
दिवांशुभिस्तुमुलरवं बभौ रवे-
र्यथार्णवःक्षुभिततिमिङ्गिलोर्मिभिः ॥१७॥

बलं बृहत् ध्वज पट छत्र चामरैः वर आयुध आभरण किरीट वर्मभिः दिवा अंशुभिः तुमुल रवं बभौ रवेः यथा अर्णवः क्षुभित तिमिङ्गिल उर्मिभिः ॥१७॥

तुमुल रवं बलं	तुमुल कोलाहल वाली वह सेना
ध्वज पट	ध्वजाओंके वस्त्र
छत्र चामरैः	छत्र, चमर
वर आयुध	श्रेष्ठ आयुध
आभरण	आभूषण
किरीट वर्मभिः	मुकुठ, कवचसे युक्त
बभौ यथा	(ऐसी) शोभित हुई जैसे
दिवा	दिनमें
रवेः अंशुभिः	सूर्यकी किरणों तथा
क्षुभित	उछलते
तिमिङ्गिल	तिमिंगल (ह्वेल) एवं
उर्मिभिः अर्णवः	लहरोंसे समुद्र ॥१७॥

अथो मुनिर्यदुपतिना सभाजितः
प्रणम्य तं हृदि विदधद् विहायसा ।

निशम्य तद्व्यवसितमाहृतार्हणो
मुकुन्दसंदर्शननिर्वृतेन्द्रियः ॥१८॥

अथो मुनिः यदुपतिना सभाजितः प्रणम्य तं हृदि विदधत् विहायसा निशम्य तत् व्यवसितं आहृत अर्हणः मुकुन्द सन्दर्शन निर्वृत इन्द्रियः ॥१८॥

अथो मुनिः	फिर मुनि नारदजी	निर्वृत इन्द्रियः	प्रसन्नेन्द्रिय
यदुपतिना	यदुपति द्वारा	तं प्रणम्य	उनको प्रणाम करके
सभाजितः	सत्कृत होकर	हृदि विदधत्	(उनको) हृदयमें धारण करके
आहृत अर्हणः	उनकी पूजा स्वीकार करके	विहायसा	आकाश-मार्गसे (चले गये) ॥१८॥
तत्	उनका		
व्यवसितं	निश्चय		
निशम्य	देखकर		
मुकुन्द	मुकुन्द		
सन्दर्शन	दर्शनसे		

राजदूतमुवाचेदं भगवान् प्रीणयन् गिरा ।
मा भैष्ट दूत भद्रं वोघातयिष्यामि मागधम् ॥१९॥

राजदूतं उवाच इदं भगवान् प्रीणयन् गिरा मा भैष्ट दूत भद्रं वः घातयिष्यामि मागधम् ॥१९॥

भगवान् गिरा	भगवानने वाणीसे	वः भद्रं	तुम लोगोंका कल्याण हो
प्रीणयन्	प्रसन्न करते हुए	मागधं	मगधराजको
राजदूतं	राजदूतसे	घातयिष्यामि	मरवा दूँगा' ॥१९॥
इदं उवाच	यह कहा—		
दूत मा भैष्ट	'दूत ! मत डरो,		

इत्युक्तः प्रस्थितो दूतो यथावदवदन्नृपान् ।
तेऽपि संदर्शनं शौरेः प्रत्यैक्षन् यन्मुमुक्षवः ॥२०॥

इति उक्तः प्रस्थितः दूतः यथावत् अवदत् नृपान् ते अपि सन्दर्शनं शौरेः प्रत्यैक्षन् यत् मुमुक्षवः ॥२०॥

इति उक्तः	ऐसा कहे जाने पर	ते अपि	वे भी
दूतः प्रस्थितः	दूत प्रस्थान कर गया,	यत् मुमुक्षवः	क्योंकि छूटना चाहते थे
नृपान् यथावत्	राजाओंको ठीक-ठीक	शौरेः सन्दर्शनं	श्रीकृष्णके दर्शनकी
अवदत्	बतला दिया	प्रत्यैक्षन्	प्रतीक्षा करने लगे ॥२०॥

आनर्तसौवीरमरूंस्तीर्त्वा विनशनं हरिः ।
गिरीन् नदीरतीयाय पुरग्रामव्रजाकरान् ॥२१॥

आनर्त सौवीर मरून् तीर्त्वा विनशनं हरिः गिरीन् नदीः अतीयाय पुर ग्राम व्रज आकरान् ॥२१॥

हरिः	श्रीहरि	पुर ग्राम व्रज	नगर, ग्राम, व्रज
आनर्त सौवीर	आनर्त, सौवीर,	आकरान्	खदानोंको
मरून् विनशनं	मरु और कुरुक्षेत्र को	अतीयाय	पार करते ॥२१॥
गिरीन् नदीः	पर्वतों, नदियों को		

ततो दृषद्वतीं तीर्त्वा मुकुन्दोऽथ सरस्वतीम् ।
पञ्चालानथ मत्स्यांश्च शक्रप्रस्थमथागमत् ॥२२॥

ततः दृषद्वतीं तीर्त्वा मुकुन्दः अथ सरस्वतीं पञ्चालान् अथ मत्स्यान् च शक्रप्रस्थं अथ आगमत् ॥२२॥

ततः मुकुन्दः	फिर मुकुन्द
दृषद्वतीं	दृषद्वती और
सरस्वतीं	सरस्वतीको
तीर्त्वा	पार करके
पञ्चालान्	पाञ्चाल
अथ मत्स्यान् च	और मत्स्य प्रदेश को भी
अथ शक्रप्रस्थं	फिर इन्द्रप्रस्थ
आगमत्	पहुँचे ॥२२॥

तमुपागतमाकर्ण्य प्रीतो दुर्दर्शनं नृणाम् ।
अजातशत्रुर्निरगात् सोपाध्यायः सुहृद्वृतः ॥२३॥

तं उप आगतं आकर्ण्य प्रीतः दुर्दर्शनं नृणां अजातशत्रुः निरगात् स उपाध्यायः सुहृत् वृतः ॥२३॥

नृणां दुर्दर्शनं	मनुष्योंके लिए जिनका दर्शन कठिन है
तं उप आगतं	उनको समीप आया
आकर्ण्य	सुनकर
प्रीतः	प्रसन्न होकर
अजातशत्रुः	अजातशत्रु (युधिष्ठिर)
स उपाध्यायः	उपाध्यायके साथ
सुहृत् वृतः	बन्धु-वर्गसे घिरे
निरगात्	(नगरसे) निकले ॥२३॥

गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा ।
अभ्ययात् स हृषीकेशं प्राणाः प्राणमिवादृतः ॥२४॥

गीत वादित्र घोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा अभ्ययात् स हृषीकेशं प्राणाः प्राणं इव आदृतः ॥२४॥

प्राणाः प्राणं इव	इन्द्रियां मुख्य प्राण (से मिलने)की भांति
आदृतः स	आदर पूर्वक वे
गीत वादित्र	गाने बजानेकी
घोषेण	ध्वनिके साथ
भूयसा	तुमुल
ब्रह्मघोषेण	वेद-ध्वनिके साथ
हृषीकेशं	हृषीकेश
अभ्ययात्	की ओर चले ॥२४॥

दृष्ट्वा विलिक्कन्नहृदयः कृष्णं स्नेहेन पाण्डवः ।
चिराद् दृष्टं प्रियतमं सस्वजेऽथ पुनः पुनः ॥२५॥

दृष्ट्वा विलिक्कन्न हृदयः कृष्णं स्नेहेन पाण्डवः चिरात् दृष्टं प्रियतमं सस्वजे अथ पुनः पुनः ॥२५॥

चिरात् दृष्टं	बहुत दिनों पर दीखे	स्नेहेन विलिक्कन्न हृदयः	प्रेमार्द्र चित्त
प्रियतमं कृष्णं	अत्यन्त प्रिय श्रीकृष्णको	अथ पुनः पुनः सस्वजे	होनेसे बार-बार आलिंगन करने लगे ॥२५॥
दृष्ट्वा पाण्डवः	देखकर पाण्डव (युधिष्ठर)		

दोर्भ्यां परिष्वज्य रमामलालयं
मुकुन्दगात्रं नृपतिर्हताशुभः ।
लेभे परां निर्वृतिमश्रुलोचनो
हृष्यत्तनुर्विस्मृतलोकविभ्रमः ॥२६॥

दोर्भ्यां परिष्वज्य रमा अमल आलयं मुकुन्दगात्रं नृपतिः हत अशुभः लेभे परां निर्वृतिं अश्रु लोचनः हृष्यत् तनुः विस्मृत लोक विभ्रमः ॥२६॥

रमा	लक्ष्मीके	विस्मृत लोक	लौकिक व्यवहार
अमल आलयं	निर्मल निवास	विभ्रमः	भूलकर
मुकुन्दगात्रं	मुकुन्दके शरीरका	अश्रु लोचनः	नेत्रोंसे अश्रु गिराते
दोर्भ्यां	भुजाओंसे	हृष्यत् तनुः	रोमाञ्चित शरीर
परिष्वज्य	आलिंगन करके	परां	परमानन्द
हत अशुभः	सब पाप नष्ट हुए	निर्वृतिं लेभे	प्राप्त हुआ ॥२६॥
नृपतिः	राजा युधिष्ठिरको		

तं मातुलेयं परिरभ्य निर्वृतो
भीमः स्मयन् प्रेमजवाकुलेन्द्रियः ।
यमौ किरीटी च सुहृत्तमं मुदा
प्रवृद्धबाष्पाः परिरेभिरेऽच्युतम् ॥२७॥

तं मातुलेयं परिरभ्य निर्वृतः भीमः स्मयन् प्रेमजव आकुल इन्द्रियः यमौ किरीटी च सुहृत्तमं मुदा प्रवृद्ध बाष्पाः परिरेभिरे अच्युतं ॥२७॥

तं मातुलेयं	उन मामाके पुत्रका	प्रवृद्ध बाष्पाः	उमड़ते आंसुओं सहित
स्मयन् भीमः	मुस्कराते हुए भीमसेन	सुहृत्तमं	अपने परत सुहृद का
परिरभ्य	आलिंगन करके	अच्युतं	श्रीकृष्णका
निर्वृतः	परम शान्तिको प्राप्त हुए	परिरेभिरे	आलिंगन किया ॥२७॥
प्रेमजव	प्रेमावेगसे		
आकुल इन्द्रियः	उनकी इन्द्रियां व्याकुल हो गयीं		
यमौ च किरीटी	युग्मज (नकुल-सहदेव) और अर्जुन ने		

अर्जुनेन परिष्वक्तो यमाभ्यामभिवादितः ।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य वृद्धेभ्यश्च यथार्हतः ॥२८॥

अर्जुनेन परिष्वक्तः यमाभ्यां अभिवादितः ब्राह्मणेभ्यः नमस्कृत्य वृद्धेभ्यः च यथा अर्हतः ॥२८॥

यथा अर्हतः	यथा योग्य	यमाभ्यां	युग्मजों (नकुल-सहदेव) द्वारा
अर्जुनेन	अर्जुनके द्वारा		
परिष्वक्तः	आलिंगित हुए		

अभिवादितः	प्रणाम किया गया	नमस्कृत्य	नमस्कार किया
ब्राह्मणेभ्यः	ब्राह्मणोंको		॥२८॥
च वृद्धेभ्यः	तथा वृद्धोंको		

मानितो मानयामास कुरुसृञ्जयकैकयान् ।
सूतमागधगन्धर्वा वन्दिनश्चोपमन्त्रिणः ॥२९॥

मानितः मानयामास कुरु सृञ्जय कैकयान् सूत मागध गन्धर्वा वन्दिनः च उपमन्त्रिणः ॥२९॥

कुरु सृञ्जय	कुरु, सृञ्जय,	सूत मागध	सूत, मागध,
कैकयान्	कैकय देशके	गन्धर्वा	गन्धर्व
	राजाओंसे-	च उपमन्त्रिणः	तथा उपमन्त्री-गण
मानितः	सम्मानित होकर		॥२९॥
मानयामास	(उनका) सम्मान		
	किया । फिर		

मृदङ्गशङ्खपटहवीणापणवगोमुखैः ।
ब्राह्मणाश्चारविन्दाक्षं तुष्टुवुर्ननृतुर्जगुः ॥३०॥

मृदङ्ग शङ्ख पटह वीणा पणव गोमुखैः ब्राह्मणाः च अरविन्द अक्षं तुष्टुवुः ननृतुः जगुः ॥३०॥

ब्राह्मणाः च	ब्राह्मण भी	अरविन्द अक्षं	कमल-नयनकी
मृदङ्ग शङ्ख	मृदंग, शंख,	तुष्टुवुः	स्तुति करने लगे,
पटह वीणा	पटह (तासा),	ननृतुः जगुः	नाचने-गाने लगे
	वीणा		॥३०॥
पणव गोमुखैः	पणव, गोमुख		
	(बजाते)		

एवं सुहृद्भिः पर्यस्तः पुण्यश्लोकशिखामणिः ।
संस्तूयमानो भगवान् विवेशालंकृतं पुरम् ॥३१॥

एवं सुहृद्भिः पर्यस्तः पुण्यश्लोक शिखामणिः संस्तूयमानः भगवान् विवेश अलङ्कृतं पुरम् ॥३१॥

एवं सुहृद्भिः	इस प्रकार सुहृदोंसे	**भगवान्**	भगवान
पर्यस्तः	घिरे हुए	**संस्तूयमानः**	स्तुत होते हुए
पुण्यश्लोक	पवित्र कीर्ति वालोंके	**अलङ्कृतं पुरं**	सजाये हुए नगरमें
शिखामणिः	चूड़ामणि	**विवेश**	प्रवृष्ट हुए ॥३१॥

संसिक्तवर्त्म करिणां मदगन्धतोयै-
श्चित्रध्वजैः कनकतोरणपूर्णकुम्भैः ।
मृष्टात्मभिर्नवदुकूलविभूषणस्रग्-
गन्धैर्नृभिर्युवतिभिश्च विराजमानम् ॥३२॥

संसिक्तवर्त्म करिणां मद गन्धतोयैः चित्रध्वजैः कनकतोरण पूर्णकुम्भैः मृष्ट आत्मभिः नवदूकूल विभूषण स्रक् गन्धैःनृभिः युवतिभिः च विराजमानम् ॥३२॥

करिणां मद	हाथियोंके मदसे	**मृष्ट आत्मभिः**	स्वच्छ शरीर
गन्धतोयैः	सुगन्धित जलसे	**नवदूकूल**	नये वस्त्र
संसिक्तवर्त्म	सींचे मार्ग वाले,	**विभूषण**	आभूषण
चित्रध्वजैः	अनेक रंगोंके झण्डों	**स्रक् गन्धैः**	माला-चन्दनधारी
कनकतोरण	स्वर्णके वन्दन-वार,	**नृभिः च युवतिभिः**	पुरुषों तथा युव-तियोंसे
पूर्णकुम्भैः	जलपूर्ण कलशों,	**विराजमानं**	सुशोभित (नगर में)

उद्दीप्तदीपबलिभिः प्रतिसद्मजाल-
निर्यातधूपरुचिरं विलसत्पताकम् ।
मूर्धन्यहेमकलशै रजतोरुशृङ्गै-
र्जुष्टं ददर्श भवनैः कुरुराजधाम ॥३३॥

उद्दीप्त दीप बलिभिः प्रतिसद्मजाल निर्यात धूप रुचिरं विलसत् पताकं
मूर्धन्य हेमकलशै रजत उरुशृङ्गैः जुष्टं ददर्श भवनैः कुरुराजधाम ॥३३॥

कुरुराजधाम	पाण्डव राजधानीको	**विलसत्**	सुशोभित,
उद्दीप्त दीप	प्रदीप्त दीपक,	**रजत उरुशृङ्ग**	चांदीके ऊँचे शिखरों के
बलिभिः	पूजा पदार्थोंसे युक्त		
प्रतिसद्मजाल	प्रत्येक घरोंके झरोखोंसे	**मूर्धन्य**	ऊपर
		हेमकलशं	स्वर्ण कलश
धूप निर्यात	धूपका धुआं निकलते	**जुष्टं भवनैः**	युक्त भवनों वाली
रुचिरं पताकं	सुन्दर झण्डोंसे	**ददर्श**	देखा ॥३३॥

प्राप्तं निशम्य नरलोचनपानपात्र-
औत्सुक्यविश्लथितकेशदुकूलबन्धाः ।
सद्यो विसृज्य गृहकर्म पतींश्च तल्पे
द्रष्टुं ययुर्युवतयः स्म नरेन्द्रमार्गे ॥३४॥

प्राप्तं निशम्य नरलोचन पान पात्रं औत्सुक्य विश्लथित केशदुकूलबन्धाः सद्यः विसृज्य गृहकर्म पतीन् च तल्पे द्रष्टुं ययुः युवतयः स्म नरेन्द्रमार्गे ॥३४॥

नरलोचन	मनुष्योंके नेत्रोंके लिए	**विश्लथित**	ढीले पड़ गये हैं ऐसी
		युवतयः	युवतियां
पान पात्रं	पीने ही योग्य	**सद्य गृहकर्म**	तत्काल घरके कार्य
प्राप्तं निशम्य	(श्रीकृष्णको) आया सुनकर	**च पतीन् तल्पे**	तथा पतियोंको शय्या पर
औत्सुक्य	उत्सुकताके कारण	**विसृज्य**	छोड़कर
केशदुकूलबन्धाः	केश एवं वस्त्रोंके बन्धन	**नरेन्द्रमार्गे**	राजमार्ग पर
		द्रष्टुं ययुः स्म	देखने आ गयीं॥३४॥

तस्मिन् सुसंकुल इभाश्वरथद्विपद्भिः
कृष्णं सभार्यमुपलभ्य गृहाधिरूढाः ।
नार्यो विकीर्य कुसुमैर्मनसोपगुह्य
सुस्वागतं विदधुरुत्स्मयवीक्षितेन ॥३५॥

तस्मिन् सुसंकुल इभ अश्व रथ द्विपत्भिः कृष्णं सभार्यं उपलभ्य गृह अधिरूढाः नार्यः विकीर्य कुसुमैः मनसा उपगुह्य सुस्वागतं विदधुः उत्स्मय वीक्षितेन ॥३५॥

तस्मिन्	उस	नार्यः	स्त्रियोंने
इभ अश्व	हाथी, घोड़ों	कुसुमैः विकीर्य	पुष्प बिखेर (वर्षा) करके
रथ द्विपत्भिः	रथ, पैदलोंसे	मनसा उपगुह्य	मनसे आलिंगन करके
सुसङ्कुल	अत्यन्त भीड़भरे (मार्ग पर)	उत्स्मय वीक्षितेन	मुस्कान भरी चितवनसे
सभार्यं कृष्णं	पत्नियोंके साथ श्रीकृष्णको	सुस्वागतं	उत्तम स्वागत
उपलभ्य	पा (देख) कर	विदधुः	विधान किया ॥३५॥
गृह अधिरूढाः	भवनोंपर चढ़ी		

ऊचुः स्त्रियः पथि निरीक्ष्य मुकुन्द पत्नी-
स्तारा यथोपदुपसहाः किमकार्यमूभिः ।
यच्चक्षुषां पुरुषमौलिरुदारहास-
लीलावलोककलयोत्सवमातनोति ॥३६॥

ऊचुः स्त्रियः पथि निरीक्ष्य मुकुन्द पत्नीः तारा यथा उडुपसहाः किं अकार्यं अमूभिः यत् चक्षुषां पुरुषमौलिः उदारहास लीला अवलोक कलया उत्सवं आतनोति ॥३६॥

यथा उडुपसहाः जैसे चन्द्रमाके साथ
तारा: ताराएँ हों (वैसे)
पथि मुकुन्द पत्नीः मार्गमें मुकुन्दकी पत्नियोंको
निरीक्ष्य देखकर
स्त्रियः ऊचुः स्त्रियां बोलीं
अमूभिः इनके द्वारा
किं अकार्यं क्या (पुण्य)किया
यत् पुरुषमौलिः जिससे पुरुष शिरोमणि (श्रीकृष्णचन्द्र)
उदारहास उन्मुक्त हास्य युक्त
लीला अवलोक लीलापूर्ण चितवनके
कलया अंशसे
चक्षुषां (इनके) नेत्रोंका
उत्सवं आतनोति आनन्द देते हैं
॥३६॥

तत्र तत्रोपसङ्गम्य पौरा मङ्गलपाणयः ।
चक्रुः सपर्यां कृष्णाय श्रेणीमुख्या हतैनसः ॥३७॥

तत्र तत्र उपसंगम्य पौरा मङ्गल पाणयः चक्रुः सपर्यां कृष्णाय श्रेणीमुख्याः हत एनसः ॥३७॥

हत एनसः निष्पाप
श्रेणीमुख्याः अपनी श्रेणियोंके प्रमुख
पौरा नगरवासी
तत्र तत्र जहां-तहां
मङ्गल पाणयः हाथोंमें मंगल द्रव्य लिए
उपसङ्गम्य समीप आकर
कृष्णाय श्रीकृष्णका
सपर्यां चक्रुः सत्कार करतेथे
॥३७॥

अन्तःपुरजनैः प्रीत्या मुकुन्दः फुल्ललोचनैः ।
ससम्भ्रमैरभ्युपेतः प्राविशद् राजमन्दिरम् ॥३८॥

अन्तःपुरजनैः प्रीत्या मुकुन्दः फुल्ललोचनैः ससम्भ्रमैः अभ्युपेतः प्राविशत् राजमन्दिरम् ॥३८॥

प्रीत्या	प्रेमके कारण	अभ्युपेतः	सामने आकर (स्वागत करनेपर)
फुल्ललोचनैः	उत्फुल्ल नेत्र	मुकुन्दः	मुकुन्दने
अन्तः पुरजनैः	अन्तःपुरके लोगों द्वारा	राजमन्दिरं	राज-भवनमें
ससम्भ्रमैः	उतावली पूर्वक	प्राविशत्	प्रवेश किया ॥३८॥

पृथा विलोक्य भ्रात्रेयं कृष्णं त्रिभुवनेश्वरम् ।
प्रीतात्मोत्थाय पर्यङ्कात् सस्नुषा परिषस्वजे ॥३९॥

पृथा विलोक्य भ्रात्रेयं कृष्णं त्रिभुवन ईश्वरं प्रीत आत्मा उत्थाय पर्यङ्कात् सस्नुषा परिषस्वजे ॥३९॥

पृथा	कुन्तीने	सस्नुषा	पुत्रवधू (द्रौपदी) के साथ
त्रिभुवन ईश्वरं	त्रिलोकीनाथ	पर्यङ्कात्उत्थाय	पलंगसे उठकर
भ्रात्रेयं कृष्णं	(अपने) भतीजे श्रीकृष्णको	परिषस्वजे	आगे जाकर आलिंगन किया ॥३९॥
विलोक्य	देखकर		
प्रीत आत्मा	प्रसन्नचित्त		

गोविन्दं गृहमानीय देवदेवेशमाहृतः ।
पूजायां नाविदत् कृत्यं प्रमोदोपहतो नृपः ॥४०॥

गोविन्दं गृहं आनीय देवदेवेशं आहृतः पूजायां न अविदत् कृत्यं प्रमोद उपहतः नृपः ॥४०॥

नृपः	राजन् !	प्रमोद उपहतः	आनन्दाधिक्यके मारे
देवदेवेशं	देवदेवेश्वर	पूजायां कृत्यं	पूजादि करनेके क्रम कोभी
गोविन्दं	गोविन्दका	अविदत् न	जान नहीं सके ॥४०॥
आहृतः	आदरपूर्वक		
गृहं आनीय	भवनमें लाकर		

पितृष्वसुर्गुरुस्त्रीणां कृष्णश्चक्रेऽभिवादनम् ।
स्वयं च कृष्णया राजन् भगिन्या चाभिवन्दितः ॥४१॥

पितृष्वसुः गुरुस्त्रीणां कृष्णः चक्रे अभिवादनं स्वयं च कृष्णया राजन् भगिन्या च अभिवन्दितः ॥४१॥

राजन्	राजन् !	अभिवादनं चक्रे	अभिवादन किया
पितृष्वसुः	पिताकी बहिन (आ)	च स्वयं	तथा स्वयं
गुरुस्त्रीणां	तथा बड़ी वृद्धा स्त्रियोंको	कृष्णया च भगिन्या	द्रौपदी तथा बहिन सुभद्रा द्वारा
कृष्णः	श्रीकृष्णने	अभिवन्दितः	नमस्कृत हुए ॥४१॥

श्वश्रवा संचोदिता कृष्णा कृष्णपत्नीश्च सर्वशः ।
आनर्चुरुक्मिणीं सत्यां भद्रां जाम्बवतीं तथा ॥४२॥

श्वश्रूवा संचोदिता कृष्णा कृष्णपत्नीः च सर्वशः आनर्चुः रुक्मिणीं सत्यां भद्रां जाम्बवतीं तथा ॥४२॥

श्वश्रूवा संचोदिता	सासने प्रेरित होकर	च आनर्चुः	का भी सत्कार किया
कृष्णा	द्रौपदीने	रुक्मिणीं सत्यां	रुक्मिणी, सत्या
सर्वशः	सभी	भद्रां तथा	भद्रा तथा
कृष्णपत्नीः	श्रीकृष्ण पत्नियों	जाम्बवतीं	जाम्बवती ॥४३॥

कालिन्दीं मित्रविन्दां च शैब्यां नाग्नजितीं सतीम् ।
अन्याश्चाभ्यागता यास्तु वासः स्रङ्मण्डनादिभिः ॥४३॥

कालिन्दीं मित्रविन्दां च शैब्यां नाग्नजितीं सतीं अन्याः च अभ्यागता याः तु वासः स्रक् मण्डन आदिभिः ॥४३॥

कालिन्दीं च	कालिन्दी और	अभ्यागता	आयी थीं(उनका)
मित्रविन्दां	मित्रविन्दा,	वासः स्रक्	वस्त्र, माला
शैब्यां	लक्ष्मणा,	मण्डन आदिभिः	शृंगार सामग्री
सतीं नाग्नजितीं	साध्वी सत्या		आदिसे (सत्कार
च अन्याः याः तु	तथा दूसरी जो		किया) ॥४३॥
	भी		

सुखं निवासयामास धर्मराजो जनार्दनम् ।
ससैन्यं सानुगामात्यं सभार्यं च नवं नवम् ॥४४॥

सुखं निवासयामास धर्मराजः जनार्दनं ससैन्य सानुग अमात्यं सभार्यं च नवं नवम् ॥४४॥

धर्मराजः	धर्मराज (युधिष्ठिर) ने	नवं नवं सुखं	नये-नये सुख देते हुए
ससैन्यं	सेनाके साथ,	जनार्दनं	जनार्दनको
सानुग अमात्यं	अनुचरों तथा मन्त्रियोंके साथ	निवासयामास	ठहराया ॥४४॥
च सभार्यं	एवं पत्नियोंके साथ		

तर्पयित्वा खाण्डवेन वह्निं फाल्गुनसंयुतः ।
मोचयित्वा मयं येन राज्ञे दिव्या सभा कृता ॥४५॥

तर्पयित्वा खाण्डवेन वह्निं फाल्गुन संयुतः मोचयित्वा मयं येन राज्ञे दिव्या सभाकृता ॥४५॥

येन	जिन (भगवान)ने	वह्निं	अग्निको
फाल्गुन संयुतः	अर्जुनके साथ होकर	तर्पयित्वा	तृप्त करके
खाण्डवेन	खाण्डव-वनके द्वारा		

मयं मोचयित्वा	मयको (उस अग्नि से) छुड़ाकर	दिव्या सभाकृता	दिव्य राजसभा बनवायी थी ॥४५॥

उवास कतिचिन्मासान् राज्ञः प्रियचिकीर्षया ।
विहरन् रथमारुह्य फाल्गुनेन भटैर्वृतः ॥४६॥

उवास कतिचित् मासान् राज्ञः प्रिय चिकीर्षया विहरन् रथं आरुह्य फाल्गुनेन भटैः वृतः ॥४६॥

फाल्गुनेन	अर्जुनके साथ	कतिचित्	कुछ
रथं आरुह्य	रथ पर चढ़कर	मासान्	महीने
भटैः वृतः	सैनिकोंसे घिरे	उवास	(वहां) रहे ॥४६॥
विहरन्	विचरण करते हुए		
राज्ञः	राजाका		
प्रिय चिकीर्षया	प्रिय करनेकी इच्छासे		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे कृष्णस्येन्द्रप्रस्थगमनं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एकदा तु सभामध्ये आस्थितो मुनिभिर्वृतः ।
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्भ्रातृभिश्च युधिष्ठिरः ॥ १ ॥

एकदा तु सभामध्ये आस्थितः मुनिभिः वृतः ब्राह्मणैः क्षत्रियैः वैश्यैः भ्रातृभिः च युधिष्ठिरः ॥१॥

एकदा तु	एक बार तो	**क्षत्रियैः वैश्यैः**	क्षत्रियों, वैश्यों
सभामध्ये	राज सभाके बीचमें	**च भ्रातृभिः**	तथा भाइयोंसे
युधिष्ठिरः	राजा युधिष्ठिर	**वृतः आस्थितः**	घिरे बैठे थे ॥१॥
मुनिभिः	मुनियों,		
ब्राह्मणैः	ब्राह्मणों,		

आचार्यैः कुलवृद्धैश्च ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः ।
शृण्वतामेव चैतेषामाभाष्येदमुवाच ह ॥ २ ॥

आचार्यैः कुलवृद्धैः च ज्ञाति सम्बन्धि बान्धवैः शृण्वतां एव सर्वेषां च एतेषां आभाष्य इदं उवाच ह ॥२॥

आचार्यैः	आचार्यों,	**शृण्वतां**	सुनाते हुए
कुलवृद्धैः	कुलके बड़ों	**आभाष्य**	(श्रीकृष्णको)
च ज्ञाति	तथा जातिके		सम्बोधित करके
सम्बन्धि	सम्बन्धी	**ह इदं उवाच**	निश्चित स्वरमें
बान्धवैः	बन्धुजनोंको		बोले ॥२॥
च सर्वेषां एव	और सबको ही		

॥ युधिष्ठिर उवाच ॥

क्रतुराजेन गोविन्द राजसूयेन पावनीः ।
यक्ष्ये विभूतीर्भवतस्तत् सम्पादय नः प्रभो ॥ ३ ॥

क्रतुराजेन गोविन्द राजसूयेन पावनीः यक्ष्ये विभूतिः भवतः तत् सम्पादय नः प्रभो ॥३॥

प्रभो गोविन्द	प्रभो ! गोविन्द !	यक्ष्ये	यजन करना चाहता हूँ
क्रतुराजेन	यज्ञराज		
राजसूयेन	राजसूय द्वारा	तत् नः	वह हमारा (सङ्कल्प)
भवतः पावनीः	आपकी परम पवित्र		
विभूतिः	(इन्द्रादि) विभूतियों का	सम्पादय	पूर्ण कीजिये ॥३॥

त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरन्ति
ध्यायन्त्यभद्रनशने शुचयो गृणन्ति ।
विन्दन्ति ते कमलनाभ भवापवर्ग-
माशासते यदि त आशिष ईश नान्ये ॥ ४ ॥

त्वत् पादुके अविरतं परि ये चरन्ति ध्यायन्ति अभद्र नशने शुचयः गृणन्ति विन्दन्ति ते कमलनाभ भव अपवर्गं आशासते यदि त आशिष ईश न अन्ये ॥४॥

कमलनाभ	कमलनाभ !	परि चरन्ति	परिचर्या (सेवा) करते हैं,
ये शुचयः	जो शुद्ध चित्त लोग		
त्वत् पादुके	आपकी पादुकाओं की	अभद्र नशने	उन पापनाशिनीका
		ध्यायन्ति	ध्यान करते हैं
अविरतं	निरन्तर	गृणन्ति	वर्णन करते हैं (वे)

भव अपवर्ग	संसार से मोक्ष	त	तो उसे (पाते हैं)
विन्दन्ति	पा जाते हैं	ईश न अन्ये	स्वामी ! दूसरे
यदि आशिष	यदि भोगोंकी		नहीं (पाते) ॥४॥
आशासते	इच्छा करते हैं		

तद् देवदेव भवतश्चरणारविन्द-
सेवानुभावमिह पश्यतु लोक एषः ।
ये त्वां भजन्ति न भजन्त्युत वोभयेषां
निष्ठां प्रदर्शय विभो कुरुसृञ्जयानाम् ॥ ५ ॥

तत् देवदेव भवतः चरणारविन्द सेवा अनुभावं इह पश्यतु लोक एषः ये त्वां भजन्ति न भजन्ति उत वा उभयेषां निष्ठां प्रदर्शय विभो कुरु सृञ्जयानाम् ॥५॥

तत् देवदेव	अतः देवदेव !	ये त्वां भजन्ति	जो आपकी सेवा
भवतः	आपके		करते हैं
चरणाविन्द	चरण-कमलोंकी	उत वा न	अथवा नहीं
सेवा अनुभावं	सेवाका प्रभाव	भजन्ति	सेवा करते
इह लोक	यहाँ लोग	उभयेषां	दोनोंकी
पश्यतु	देखें,	निष्ठां प्रदर्शय	स्थिति दिखलाइये
विभो	प्रभो !		॥५॥
कुरु सृञ्जयानां	कुरु तथा सृञ्जय. वंशी राजाओंको		

न ब्राह्मणः स्वपरभेदमतिस्तव स्यात्
सर्वात्मनः समदृशः स्वसुखानुभूतेः ।
संसेवतां सुरतरोरिव ते प्रसादः
सेवानुरूपमुदयो न विपर्ययोऽत्र ॥ ६ ॥

न ब्रह्मणः स्व पर भेद मतिः तव स्यात् सर्व आत्मनः समदृशः स्वसुख अनुभूतेः संसेवतां सुरतरोः इव ते प्रसादः सेवा अनुरूपं उदयः न विपर्ययः अत्र ॥६॥

सर्व आत्मनः	सबके आत्मा
समदृशः	समदर्शी
स्वसुख अनुभूतेः	आत्मा सुखानुभव
ब्रह्मणः	परम ब्रह्म
तव स्व पर	आपमें अपने पराये की
मतिः न स्यात्	बुद्धि नहीं है, किन्तु
ससेवतां	सम्यक् सेवा करने वालोंका
सुरतरो इव	कल्पवृक्षके समान
सेवा अनुरूपं	सेवाके अनुसार
उदयः	अभ्युदय होता है
अत्र	इस विषयमें
विपर्ययः न	उलटापना (भेद-भाव) नहीं (माना जाता) ॥६॥

श्रीभगवानुवाच–

सम्यग् व्यवसितं राजन् भवता शत्रुकर्शन ।
कल्याणी येन ते कीर्तिर्लोकाननु भविष्यति ॥ ७ ॥

सम्यक् व्यवसितं राजन् भवता शत्रुकर्शन कल्याणी येन ते कीर्तिः लोकान् अनु भविष्यति ॥७॥

शत्रुकर्शन	शत्रुदमन !
राजन्	राजन् !
भवता	आपने
सम्यक्	उचित
व्यवसितं	निश्चय किया है
येन लोकान्	जिससे लोकोंमें
ते	आपकी
कल्याणी कीर्तिः	मंगलमयी कीर्तिका
अनु भविष्यति	अनुभव किया जायगा ॥७॥

ऋषीणां पितृदेवानां सुहृदामपि नः प्रभो ।
सर्वेषामपि भूतानामीप्सितः क्रतुराडयम् ॥ ८ ॥

ऋषीणां पितृदेवानां सुहृदां अपि नः प्रभो सर्वेषां अपि भूतानां ईप्सितः क्रतुराट् अयम् ॥८॥

प्रभो	प्रभो !
ऋषीणां	ऋषियोंको,
पितृदेवानां	पितरों तथा देवताओंको,
नः सुहृदां अपि	हम सम्बन्धियोंको भी
सर्वेषां	सभी
भूतानां अपि	प्राणियोंको भी
अयं क्रतुराट्	यह यज्ञराज
ईप्सितः	वाञ्छित है ॥८॥

विजित्य नृपतीन् सर्वान् कृत्वा च जगतीं वशे ।
सम्भृत्य सर्वसम्भारानाहरस्व महाक्रतुम् ॥ ९ ॥

विजित्य नृपतीन् सर्वान् कृत्वा च जगतीं वशे सम्भृत्य सर्वसम्भारान् आहरस्व महाक्रतुम् ॥९॥

सर्वान् नृपतीन्	सब राजाओंको
विजित्य	जीतकर
च जगतीं	तथा संसारको
वशे कृत्वा	अपने वशमें करके
सर्वसम्भारान्	सब सामग्रियोंको
सम्भृत्य	जुटाकर
महाक्रतुं	यह महायज्ञ
आहरस्व	आरम्भ कीजिए ॥९॥

एते ते भ्रातरो राजन् लोकपालांशसम्भवाः ।
जितोऽस्म्यात्मवता तेऽहं दुर्जयो योऽकृतात्मभिः ॥१०॥

एते ते भ्रातरः राजन् लोकपाल अंश सम्भवाः जितः अस्मि आत्मवता ते अहं दुर्जयः यः अकृत आत्मभिः ॥१०॥

राजन्	राजन् !
एते ते भ्रातरः	ये आपके भाई
लोकपाल	लोकपालोंके
अंश सम्भवाः	अंशसे उत्पन्न हैं
अकृत आत्मभिः	अजितेन्द्रियों द्वारा

यः दुर्जयः	जिसको जीतना बहुत कठिन है	अहं जितः	(वह) मैं जीत लिया गया हूँ ॥१०॥
ते आत्मवता	आप मनस्वी द्वारा		

न कश्चिन्मत्परं लोके तेजसा यशसा श्रिया ।
विभूतिभिर्वाभिभवेद् देवोऽपि किमु पार्थिवः ॥११॥

न कश्चित् मत् परं लोके तेजसा यशसा श्रिया विभूतिभिः वा अभिभवेत् देवः अपि किमु पार्थिवः ॥११॥

मत् परं	मेरे परायणको	वा विभूतिभिः	अथवा वैभवसे
कश्चित्	कोई	अभिभवेत् न	दबा नहीं सकता
देवः अपि	देवता भी	किमु पार्थिवः	फिर राजाओंकी क्या बात है ॥११॥
लोके तेजसा	संसारमें तेजसे		
यशसा श्रिया	यशसे, लक्ष्मीसे		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

निशम्य भगवद्गीतं प्रीतः फुल्लमुखाम्बुजः ।
भ्रातॄन् दिग्विजयेऽयुंक्त विष्णुतेजोपबृंहितान् ॥१२॥

निशम्य भगवत् गीतं प्रीतः फुल्ल मुखाम्बुजः भ्रातॄन् दिग्विजये अयुङ्क्त विष्णुतेज उपबृंहितान् ॥१२॥

भगवत् गीतं	भगवानका कथन	भ्रातॄन्	भाइयोंको
निशम्य प्रीतः	सुनकर प्रसन्नतासे	दिग्विजये	दिग्विजय करनेके लिये
मुखाम्बुजः	मुखकमल	अयुङ्क्त	नियुक्त किया ॥१२॥
फुल्ल	खिल गया		
विष्णुतेज	श्रीकृष्णके तेजसे		
उपबृंहितान्	समृद्ध		

सहदेवं दक्षिणस्यामादिशत् सह सृञ्जयैः ।
दिशि प्रतीच्यां नकुलमुदीच्यां सव्यसाचिनम् ।
प्राच्यां वृकोदरं मत्स्यैः केकयैः सह्यमद्रकैः ॥१३॥

सहदेवं दक्षिणस्यां आदिशत् सह सृञ्जयैः दिशि प्रतीच्यां नकुलं उदीच्यां सव्यसाचिनम् प्राच्यां वृकोदरं मत्स्यैः केकयैः सह्यमद्रकैः ॥१३॥

सृंजयैः सह	सृञ्जय देशीयोंके साथ	**उदीच्यां**	उत्तरकी ओर
सहदेवं	सहदेवको	**सव्यसाचिनं**	अर्जुनको,
दक्षिणस्यां	दक्षिणकी ओर	**प्राच्यां वृकोदरं**	पश्चिमकी ओर भीमसेनको
प्रतीच्यां दिशि	पश्चिम दिशाकी ओर	**सह्यमद्रकैः**	मद्रदेशीय वीरोंके साथ
नकुलं	नकुलको	**आदिशत्**	(जानेका) आदेश दिया ॥१३॥
मत्स्यैः	मत्स्य देशीयोंके साथ और		
केकयैः	कैकय देशीयोंके साथ		

ते विजित्य नृपान् वीरा आजुह्रुर्दिग्भ्य ओजसा ।
अजातशत्रवे भूरि द्रविणं नृप यक्ष्यते ॥१४॥

ते विजित्य नृपान् वीराः आजह्रुः दिग्भ्य ओजसा अजातशत्रवे भूरि द्रविणं नृप यक्ष्यते ॥१४॥

नृप	राजन् !	**यक्ष्यते**	यज्ञ करने वाले
ते वीराः	वे वीर	**अजातशत्रवे**	अजातशत्रु (युधिष्ठिर)के लिए
दिग्भ्य ओजसा	दिशाओंसे बल-पूर्वक	**भूरि द्रविणं**	बहुत-सा धन
नृपान् विजित्य	राजाओंको जीत-कर	**आजह्रुः**	ले आये ॥१४॥

श्रुत्वाजितं जरासंधं नृपतेर्ध्यायतो हरिः ।
आहोपायं तमेवाद्य उद्धवो यमुवाच ह ॥१५॥

श्रुत्वा अजितं जरासन्धं नृपतेः ध्यायतः हरिः आह उपायं तं एव अद्य उद्धवः यं उवाच ह ॥१५॥

जरासन्धं अजितं श्रुत्वा	जरासन्धको अजेय सुनकर	**ह अद्य तं एव**	'निश्चय इस समय वही
ध्यायतः नृपतेः	चिन्ता करते राजा (युधिष्ठिर)से	**उपायं**	उपाय है
हरिः आह	श्रीहरिने कहा	**यं उद्धवः उवाच**	जिसे उद्धवने कहा था' ॥१५॥

भीमसेनोऽर्जुनः कृष्णो ब्रह्मलिङ्गधरास्त्रयः ।
जग्मुर्गिरिव्रजं तात बृहद्रथसुतो यतः ॥१६॥

भीमसेनः अर्जुनः कृष्णः ब्रह्मलिङ्ग धराः त्रयः जग्मुः गिरिव्रजं तात बृहद्रथ सुतः यतः ॥१६॥

तात	तात परीक्षित !	**गिरिव्रजं जग्मुः**	गिरिव्रज चले
भीमसेनः	भीमसेन,	**यतः**	जहाँ
अर्जुनः कृष्णः	अर्जुन और श्रीकृष्ण	**बृहद्रथ सुतः**	वृहद्रथका पुत्र जरासन्ध रहता था ॥१६॥
त्रयः	तीनों		
ब्रह्मलिङ्ग धराः	ब्राह्मणोंका वेश बनाकर		

ते गत्वाऽऽतिथ्यवेलायां गृहेषु गृहमेधिनम् ।
ब्रह्मण्यं समयाचेरन् राजन्या ब्रह्मलिङ्गिनः ॥१७॥

ते गत्वा आतिथ्य वेलायां गृहेषु गृहमेधिनं ब्रह्मण्यं समयाचेरन् राजन्या ब्रह्मलिङ्गिनः ॥१७॥

ते ब्रह्मलिङ्गिनः	उन ब्राह्मणवेश धारी	**ब्रह्मण्यं**	ब्राह्मणभक्त
राजन्या	क्षत्रियोंने	**गृहमेधिनं**	गृहस्थके
आतिथ्य वेलायां	अतिथिके आनेके समय	**गृहेषु गत्वा**	घरमें जाकर
		समयाचेरन्	उचित ढंगसे याचना की ॥१७॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥*

राजन् विद्ध्यतिथीन् प्राप्तानर्थिनो दूरमागतान् ।
तन्नः प्रयच्छ भद्रं ते यद् वयं कामयामहे ॥१८॥

राजन् विद्धि अतिथीन् प्राप्तान् अर्थिनः दूरं आगतान् तत् नः प्रयच्छ भद्रं ते यत् वयं कामयामहे ॥१८॥

राजन्	राजन् !	**प्राप्तान् विद्धि**	आया जानिये
ते भद्रं	आपका कल्याण हो	**यत् वयं**	जो हम लोग
दूरं आगतान्	दूरसे आये	**कामयामहे**	चाहते हैं
अर्थिनः	कुछ चाहने वाले	**तत् नः प्रयच्छ**	वह हमें दीजिए ॥१८॥
अतिथीन्	अतिथियोंको		

किं दुर्मर्षं तितिक्षूणां किमकार्यमसाधुभिः ।
किं न देयं वदान्यानां कः परः समदर्शिनाम् ॥१९॥

किं दुर्मर्षं तितीक्षूणां किं अकार्यं असाधुभिः किं न देयं वदान्यानां कः परः समदर्शिनाम् ॥१९॥

तितीक्षूणां	तितीक्षुओंके लिए	**असाधुभिः**	दुष्टोंके लिए
किं दुर्मर्षं	क्या सहना कठिन है		

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

किं अकार्यं	कौन सा (बुरा) काम अकरणीय है	समदर्शिनां	समदर्शियोंके लिए
वदान्यानां	उदार पुरुषोंके लिए	कः परः	कौन पराया है ॥२०॥
किं न देयं	क्या वस्तु देने योग्य नहीं है,		

योऽनित्येन शरीरेण सतां गेयं यशो ध्रुवम् ।
नाचिनोति स्वयं कल्पः स वाच्यः शोच्य एव सः ॥२०॥

यः अनित्येन शरीरेण सतां गेयं यशः ध्रुवं न आचिनोति स्वयं कल्पः स वाच्यः शोच्य एव सः ॥२०॥

यः अनित्येन	जो (इस) अनित्य	न आचिनोति	नहीं उपार्जित कर लेता
शरीरेण	शरीरके द्वारा	स वाच्यः	वह निन्दनीय है
सतां	सज्जनोंके द्वारा	सः शोच्य एव	वह शोचनीय है ॥२०॥
गेयं	गान करने योग्य		
ध्रुवं यशः	स्थायी सुयश		
स्वयं कल्पः	स्वयं समर्थ होते भी		

हरिश्चन्द्रो रन्तिदेव उञ्छवृत्तिः शिबिर्बलिः ।
व्याधः कपोतो बहवो ह्यध्रुवेण ध्रुवं गताः ॥२१॥

हरिश्चन्द्रः रन्तिदेवः उञ्छवृत्तिः शिबिः बलिः व्याधः कपोतः बहवः हि अध्रुवेण ध्रुवं गताः ॥२१॥

हरिश्चन्द्रः	हरिश्चन्द्र,	उञ्छवृत्तिः	शिलोञ्छजीव (मुद्गल ऋषि)
रन्तिदेवः	रन्तिदेव,		

शिबिः बलिः	शिबि, बलि	**अध्रुवेण**	नाशवान (शरीर) से
व्याधः कपोतः	व्याध, कबूतर आदि	**अध्रुवं गताः**	अविनाशी हो गये हैं' ॥२१॥
बहवः हि	बहुतसे क्योंकि		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

स्वरैराकृतिभिस्तांस्तु प्रकोष्ठैर्ज्याहतैरपि ।
राजन्यबन्धून् विज्ञाय दृष्टपूर्वानचिन्तयत् ॥२२॥

स्वरैः आकृतिभिः तान् तु प्रकोष्ठैः ज्या हतैः अपि राजन्यबन्धून् विज्ञाय दृष्टपूर्वान् अचिन्तयत् ॥२२॥

स्वरैः	स्वरसे	**दृष्टपूर्वान्**	पहिले देखे हुए
आकृतिभिः	आकृतिसे	**राजन्यबन्धून्**	राजबन्धु (क्षत्रिय)
प्रकोष्ठैः	कलाई पर	**विज्ञाय**	जानकर
ज्या हतैः अपि	धनुषकी प्रत्यंचाकी रगड़का चिह्न होनेसे भी	**अचिन्तयत्**	(जरासन्धने) विचार किया ॥२२॥

राजन्यबन्धवो ह्येते ब्रह्मलिङ्गानि बिभ्रति ।
ददामि भिक्षितं तेभ्य आत्मानमपि दुस्त्यजम् ॥२३॥

राजन्यबन्धवः हि एते ब्रह्मलिङ्गानि बिभ्रति ददामि भिक्षितं तेभ्यः आत्मानं अपि दुस्त्यजम् ॥२३॥

एते	ये	**तेभ्यः भिक्षितं**	इनके मांगने पर
राजन्यबन्धवः	क्षत्रिय	**दुस्त्यजं**	दुस्त्याज्य
हि	क्योंकि	**आत्मानं अपि**	अपना शरीर भी
ब्रह्मलिङ्गानि	ब्राह्मणोंका वेष	**ददामि**	दे दूँगा ॥२३॥
बिभ्रति	धारण किये हैं,		

बलेर्नु श्रूयते कीर्तिर्विततादिक्ष्वकल्मषा ।
ऐश्वर्याद् भ्रंशितस्यापि विप्रव्याजेन विष्णुना ॥२४॥

बलेः नु श्रूयते कीर्तिः विततादिक्षु अकल्मषा ऐश्वर्यात् भ्रंशितस्य अपि विप्रव्याजेन विष्णुना ॥२४॥

विप्रव्याजेन	ब्राह्मणके बहाने (आये)	**नु बलेः**	अहो बलिकी
विष्णुना	विष्णु द्वारा	**अकल्मषा**	निर्मल
ऐश्वर्यात्	ऐश्वर्य	**कीर्तिः**	कीर्ति
भ्रंशितस्य अपि	भ्रष्ट कर देने पर भी	**दिक्षु विततादिक्षु**	दिशाओंमें फैली
		श्रूयते	सुनी जाती है ॥२४॥

श्रियं जिहीर्षतेन्द्रस्य विष्णवे द्विजरूपिणे ।
जानन्नपि महीं प्रादाद् वार्यमाणोऽपि दैत्यराट् ॥२५॥

श्रियं जिहीर्षति इन्द्रस्य विष्णवे द्विजरूपिणे जानन् अपि महीं प्रादात् वार्यमाणः अपि दैत्यराट् ॥२५॥

इन्द्रस्य	इन्द्रत्वकी	**जानन् अपि**	जानते हुए भी
श्रियं	राजलक्ष्मी	**वार्यमाणः अपि**	(शुक्राचार्यके) मना करने पर भी
जिहीर्षति	हरण करनेके लिए (आये)	**दैत्यराट्**	दैत्यराज (बलि)ने
द्विजरूपिणे	ब्राह्मण वेष धारी	**महीं प्रादात्**	पृथ्वी दे डाली ॥२५॥
विष्णवे	विष्णु (वामन)को		

जीविता ब्राह्मणार्थाय को न्वर्थः क्षत्रबन्धुना ।
देहेन पतमानेन नेहता विपुलं यशः ॥२६॥

जीविता ब्राह्मण अर्थाय कः नु अर्थः क्षत्रबन्धुना देहेन पतमानेन न ईहता विपुलं यशः ॥२६॥

ब्राह्मण अर्थाय	ब्राह्मणके लिए ही	**ईहता**	चाहने वाले
न जीविता	जीवन न धारण करने वाले	**क्षत्रबन्धुना**	क्षत्रियका
विपुलं यशः	महान यश	**नु कः अर्थः**	भला प्रयोजन क्या है ॥२६॥

इत्युदारमतिः प्राह कृष्णार्जुनवृकोदरान् ।
हे विप्रा व्रियतां कामो ददाम्यात्मशिरोऽपि वः ॥२७॥

इति उदारमतिः प्राह कृष्ण-अर्जुन वृकोदरान् हे विप्रा व्रियतां कामः ददामि आत्मशिरः अपि वः ॥२७॥

इति उदारमतिः	इस प्रकारके उदार बुद्धि (जरा-सन्ध)ने	**कामः व्रियतां**	इच्छानुसार मांग लो,
कृष्ण-अर्जुन वृकोदरान् प्राह	श्रीकृष्ण, अर्जुन भीमसेनसे कहा—	**वः**	तुम लोगोंको
हे विप्रा	'हे ब्राह्मणो !	**आत्मशिरः अपि ददामि**	अपना सिर भी दे दूँगा ॥२७॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

युद्धं नो देहि राजेन्द्र द्वन्द्वशो यदि मन्यसे ।
युद्धार्थिनो वयं प्राप्ता राजन्या नान्नकांक्षिणः ॥२८॥

युद्धं नः देहि राजेन्द्र द्वन्द्वशः यदि मन्यसे युद्ध आर्थिनः वयं प्राप्ता राजन्या न अन्न कांक्षिणः ॥२८॥

राजेन्द्र	राजेन्द्र !	**प्राप्ता राजन्या**	आये क्षत्रिय हैं
यदि मन्यसे	यदि मन हो तो	**अन्न कांक्षिणः**	भोजन चाहने वाले
नः द्वन्द्वशः	हम लोगोंको द्वन्द्व	**न**	नहीं ॥२८॥
युद्धं देहि	युद्ध दीजिये		
वयं युद्ध	हम युद्ध		
अर्थिनः	चाहने वाले		

असौ वृकोदरः पार्थस्तस्य भ्रातार्जुनो ह्ययम् ।
अनयोर्मातुलेयं मां कृष्णं जानीहि ते रिपुम् ॥२९॥

असौ वृकोदरः पार्थः तस्य भ्राता अर्जुनः हि अयं अनयोः मातुलेयं मां कृष्णं जानीहि ते रिपुम् ॥२९॥

हि	क्योंकि
असौ पार्थः	ये कुन्ती-नन्दन
वृकोदरः	भीमसेन हैं,
तस्य भ्राता	उनके भाई
अयं अर्जुनः	ये अर्जुन हैं,
अनयोः मातुलेयं	इनके मामाका पुत्र
ते रिपुम् मां	तुम्हारा शत्रु मुझे
कृष्णं जानीहि	कृष्ण जानो' ॥२९॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥.*

एवमावेदितो राजा जहासोच्चैः स्म मागधः ।
आह चामर्षितो मन्दा युद्धं तर्हि ददामि वः ॥३०॥

एवं आवेदितः राजा जहास उच्चैः स्म मागधः आह च अमर्षितः मन्दा युद्धं तर्हि ददामि वः ॥३०॥

एवं आवेदितः	इस प्रकार सूचित किये जाने पर
मागधः राजा	मगधराज (जरासन्ध)
उच्चैः स्म	अट्टहास करके
जहास	हँसने लगा
च	तथा
अमर्षितः आह	असहनशील होकर बोला
मन्दा तर्हि	'मूर्खो ! तब
वः युद्धं ददामि	तुम लोगोंको युद्ध ही दूँगा ॥३०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

न त्वया भीरुणा योत्स्ये युधि विक्लवचेतसा ।
मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः ॥३१॥

न त्वया भीरुणा योत्स्ये युधि विक्लव चेतसा मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः ॥३१॥

स्वपुरीं	अपने नगर
मथुरां त्यक्त्वा	मथुराको छोड़कर
समुद्रं	समुद्रकी
शरणं गतः	शरण चले गये
युधि	युद्धमें
विक्लव चेतसा	व्याकुल चित्त
त्वया भीरुणा	तुझ डरपोकसे
योत्स्ये न	युद्ध नहीं करूँगा ॥३१॥

अयं तु वयसा तुल्यो नातिसत्त्वो न मे समः ।
अर्जुनो न भवेद् योद्धा भीमस्तुल्यबलो मम ॥३२॥

अयं तु वयसा तुल्यः न अतिसत्त्वः न मे समः अर्जुनः न भवेत् योद्धा भीमः तुल्यबलः मम ॥३२॥

अयं	यह
वयसा तु तुल्यः	आयुमें तो बराबर है, पर
अतिसत्त्वः न	बहुत बलवान नहीं है,
अर्जुनः	अर्जुन
न मे समः	मेरी जोड़का नहीं है,
योद्धा न भवेत्	(मुझसे) युद्ध करने वाला नहीं हो सकता
भीमः मम	भीमसेन मेरे
तुल्यबलः	समान बलवान हैं ॥३२॥

इत्युक्त्वा भीमसेनाय प्रादाय महतीं गदाम् ।
द्वितीयां स्वयमादाय निर्जगाम पुराद् बहिः ॥३३॥

इति उक्त्वा भीमसेनाय प्रादाय महतीं गदां द्वितीयां स्वयं आदाय निर्जगाम पुरात् बहिः ॥३३॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर	**पुरात् बहिः**	नगरसे बाहर
भीमसेनाय	भीनसेनको	**निर्जगाम**	निकल आया
महतीं गदां	भारी गदा		॥३३॥
प्रादाय	देकर		
द्वितीयां स्वयं	दूसरी स्वयं		
आदाय	लेकर		

ततः समे खले वीरौ संयुक्तावितरेतरौ ।
जघ्नतुर्वज्रकल्पाभ्यां गदाभ्यां रणदुर्मदौ ॥३४॥

ततः समे खले वीरौ संयुक्ताः इतरः इतरौ जघ्नतुः वज्रकल्पाभ्यां गदाभ्यां रणदुर्मदौ ॥३४॥

ततः	तब	**इतरः इतरौ**	एक दूसरेको
रणदुर्मदौ	युद्धोन्मत्त	**वज्र कल्पाभ्यां**	वज्रके समान
समे खले वीरौ	समतल भूमि पर दोनों वीर		(कठोर)
		गदाभ्यां जघ्नतुः	गदासे मारने लगे
संयुक्ताः	परस्पर मिलकर		॥३४॥

मण्डलानि विचित्राणि सव्यं दक्षिणमेव च ।
चरतोः शुशुभे युद्धं नटयोरिव रङ्गिणोः ॥३५॥

मण्डलानि विचित्राणि सव्यं दक्षिणं एव च चरतः शुशुभे युद्धं नटयोः इव रङ्गिणोः ॥३५॥

रङ्गिणोः	रंगमंच पर आये	**सव्यं च**	बायें और
नटयोः इव	नटोंके समान	**दक्षिणं एव च**	दाहिने भी

विचित्राणि	अनेक प्रकारके	**युद्धं शुशुभे**	वह युद्ध शोभित
मण्डलानि	पैंतरे		हुआ ॥३५॥
चरतः	लेते हुए		

ततश्चटचटाशब्दो वज्रनिष्पेषसन्निभः ।
गदयोः क्षिप्तयो राजन् दन्तयोरिव दन्तिनोः ॥३६॥

ततः चटचटा शब्दः वज्र निष्पेष सन्निभः गदयोः क्षिप्तयोः राजन् दन्तयोः इव दन्तिनोः ॥३६॥

राजन्	राजन् !	**वज्र निष्पेष**	वज्रपातके
दन्तयोः	एक हाथीके	**सन्निभः**	समान
दन्तिनोः इव	दूसरे हाथीसे	**ततः**	तब
	(युद्ध)के समान	**चटचटा शब्दः**	चटचटाहटका
गदयोः	गदाओंके		शब्द (होने लगा)
क्षिप्तयोः	टकरानेका		॥३६॥

ते वै गदे भुजजवेन निपात्यमाने
अन्योन्यतोंऽसकटिपादकरोरुजत्रून् ।
चूर्णीबभूवतुरुपेत्य यथार्कशाखे
संयुध्यतोर्द्विरदयोरिव दीप्तमन्यवोः ॥३७॥

ते वै गदे भुज जवेन निपात्यमाने अन्यः अन्यतः अंस कटिपाद कर उरुजत्रून् चूर्णी बभूवतुः उपेत्य यथा अर्कशाखे संयुध्यतः द्विरदयोः इव दीप्तमन्यवो. ॥३७॥

यथा	जैसे	**अर्कशाखे**	आककी डालोंसे
दीप्तमन्यवोः	प्रदीप्त क्रोध	**संयुध्यतः**	युद्ध करते समय वे
द्विरदयोः	दो गजोंके	**वै ते गदे**	निश्चय वे गदाएँ

अन्य अन्यतः	एक दूसरेके	जवेन	वेगसे
अंश कटिपाद	गर्दन, कमर, पैर	निपात्यमाने	गिराई जानेसे
कर उरुजत्रून्	हाथ, जांघ हँसलियोंपर,	चूर्णौ बभूवतुः	चूर्ण हो गयीं ॥३७॥
भुज	भुजाओंसे		

इत्थं तयोः प्रहतयोर्गदयोर्नृवीरौ
क्रुद्धौ स्वमुष्टिभिरयः स्पर्शैरपिष्टाम् ।
शब्दस्तयोः प्रहरतोरिभयोरिवासी-
न्निर्घातवज्रपरुषस्तलताडनोत्थः ॥३८॥

इत्थं तयोः प्रहतयोः गदयोः नृवीरौ क्रुद्धौ स्व मुष्टिभिः अयः स्पर्शैः अपिष्टां शब्दः तयोः प्रहरतोः इभयोः इव आसीत् निर्घात वज्रपरुषः तलताडन उत्थः ॥३८॥

इत्थं	इस प्रकार	इभयोः इव	हाथियोंके समान
तयोः गदयोः	उन गदाओंके	तयोः प्रहरतोः	उनके (परस्पर)
प्रहतयोः	नष्ट हो जाने पर		प्रहार करनेसे
नृवीरौ	वे नरवीर	तलताडन	थप्पड़ोंके प्रहारसे
अयः स्पर्शैः	लोहेके समान	उत्थः	उठा
	कठोर	शब्दः	शब्द
स्व क्रुद्धौ	अपने क्रोधसे	वज्रपरुषः-	वज्रपातके
मुष्टिभिः बद्धैः	घूँसे बाँधकर	निर्घात	समान कठोर
अपिष्टां	(एक दूसरेको)	आसीत्	हो रहा था ॥३८॥
	कुचलने लगे,		

तयोरेवं प्रहरतोः समशिक्षाबलौजसोः ।
निर्विशेषमभूद् युद्धमक्षीणजवयोर्नृप ॥३९॥

तयोः एवं प्रहरतोः सम शिक्षा बल ओजसोः निर्विशेषं अभूत् युद्धं अक्षीण जवयोः नृप ॥३९॥

नृप	राजन् !
सम शिक्षा	समान शिक्षा,
बल ओजसोः	बल और उत्साह वाले
तयोः एवं	उनके इस प्रकार
प्रहरतोः	प्रहार करके
अक्षीण नवयोः	अशिथिल वेग
तयोः युद्धं	उनका युद्ध
निर्विशेषं अभूत	(किसी ओर) विशेषताके बिना हुआ ॥३९॥

एवं तयोर्महाराज युध्यतोः सप्तविंशतिः ।
दिनानि निरगंस्तत्र सुहृद्वन्निशि तिष्ठतोः ॥४०॥

एवं तयोः महाराज युध्यतः सप्तविंशतिः दिनानि निरगन् तत्र सुहृत्वत् निशि तिष्ठतोः ॥४०॥

महाराज	महाराज !
एवं तयोः	इस प्रकार उनके
युध्यतः	युद्ध करते हुए तथा
सुहृत्वत्	मित्रोंके समान
निशि तिष्ठतोः	रात्रिमें रहते हुए
तत्र	वहां
सप्तविंशतिः	सत्ताइस
दिनानि	दिन
निरगन्	निकल गये ॥४०॥

एकदा मातुलेयं वै प्राह राजन् वृकोदरः ।
न शक्तोऽहं जरासंधं निर्जेतुं युधि माधव ॥४१॥

एकदा मातुलेयं वै प्राह राजन् वृकोदरः न शक्तः अहं जरासन्धं निर्जेतुं युधि माधव ॥४१॥

राजन्	राजन् !
एकदा मातुलेयं	एक बार मामाके पुत्र (श्रीकृष्ण)से
वृकोदरः प्राह	भीमसेनने कहा—
माधव वै	'माधव ! निश्चय
जरासन्धं	जरासन्धको
युधि निर्जेतुं	युद्धमें जीत लेने में
अहं शक्तः न	मैं समर्थ नहीं हूँ' ॥४१॥

शत्रोर्जन्ममृती विद्वान् जीवितं च जराकृतम् ।
पार्थमाप्याययन् स्वेन तेजसाचिन्तयद्धरिः ॥४२॥

शत्रोः जन्ममृती विद्वान् जीवितं च जराकृतं पार्थं आप्याययन् स्वेन तेजसा अचिन्तयत् हरिः ॥४२॥

शत्रोः	शत्रु (जरासन्ध)का	**विद्वान्**	जानने वाले
जन्ममृती	मरे हुए उत्पन्न होना	**हरिः**	श्रीहरिने
		स्वेन तेजसा	अपने तेजसे
च जराकृतं	तथा जरा राक्षसी द्वारा	**पार्थं आप्याययन्**	पार्थ भीमसेनको परिपूर्ण-करके
जीवितं	उसे जिला देना	**अचिन्तयत्**	सोचा ॥४२॥

संचिन्त्यारिवधोपायं भीमस्यामोघदर्शनः ।
दर्शयामास विटपं पाटयन्निव संज्ञया ॥४३॥

सञ्चिन्त्य अरिवध उपायं भीमस्य अमोघदर्शनः दर्शयामास विटपं पाटयन् इव संज्ञया ॥४२॥

अमोघदर्शनः	अव्यर्थ दृष्टि (भगवान)ने	**संज्ञया**	संकेतसे
		विटपं	शाखा
अरिवध उपायं	शत्रुके वधका उपाय	**पाटयन् इव**	चीरते हुएसे
		दर्शयामास	दिखलाया ॥४३॥
सञ्चिन्त्य	सोचकर		
भीमस्य	भीमसेनको		

तद् विज्ञाय महासत्त्वो भीमः प्रहरतां वरः ।
गृहीत्वा पादयोः शत्रुं पातयामास भूतले ॥४४॥

तत् विज्ञाय महासत्त्वः भीमः प्रहरतां वरः गृहीत्वा पादयोः शत्रुं पातयामास भूतले ॥४४॥

तत् विज्ञाय	उस (संकेत)को समझकर	**पादयोः**	पैर
		गृहीत्वा	पकड़कर
प्रहरतां वरः	प्रहार करने वालोंमें श्रेष्ठ	**भूतले**	पृथ्वी पर
		पातयामास	गिर दिया ॥४४॥
महासत्त्वः	महान् बलवान		
भीमः शत्रुं	भीमसेनने शत्रु		

एकं पादं पदाऽऽक्रम्य दोर्भ्यामन्यं प्रगृह्यसः ।
गुदतः पाटयामास शाखामिव महागजः ॥४५॥

एक पादं पदा आक्रम्य दोःभ्यां अन्यं प्रगृह्य सः गुदतः पाटयामास शाखां इव महागजः ॥४५॥

पदा एक पादं	पैरसे एक पैरको	**महागजः**	गजराज द्वारा
आक्रम्य	दबाकर	**शाखां इव**	शाखाकी भांति
दोःभ्यां	हाथसे	**मुदतः**	गुदा (के बीच)से
अन्यं प्रगृह्य	दूसरा (पैर) पकड़कर	**पाटयामास**	फाड़ दिया ॥४५॥

एकपादोरुवृषणकटिपृष्ठस्तनांसके ।
एकबाह्वक्षिभ्रूकर्णे शकले ददृशुः प्रजाः ॥४६॥

एक पाद उरु वृषण कटि पृष्ठ स्तन अंसके एक बाहु अक्षि भ्रू कर्ण शकले ददृशुः प्रजाः ॥४६॥

प्रजाः	प्रजाने (जरासन्धके शरीरके)	**शकले**	दोनों टुकड़ोंमें

एक एक पाद	एक एक पैर,	**बाहु अक्षि**	भुजा, नेत्र,
उरु वृषण	जांघ, अंडकोश,	**भ्रू कर्ण**	भौंह, कान,
कटि पृष्ठ	कमर, पीठ,	**ददृशुः**	देखा ॥४६॥
स्तन अंसके	स्तन, कन्धा		

हाहाकारो महानासीन्निहते मगधेश्वरे ।
पूजयामासतुर्भीमं परिरभ्य जयाच्युतौ ॥४७॥

हाहाकारः महान् आसीत् निहते मगध ईश्वरे पूजयामास तुः भीमं परिरभ्य जय अच्युतौ ॥४७॥

मगध ईश्वरे	मगधराजके	**परिरभ्य**	आलिंगन करके
निहते	मारे जाने पर	**भीमं**	भीमसेनका
महान्	महान्	**पूजयामास तुः**	सत्कार किया
हाहाकारः	हा हा कार		॥४७॥
आसीत्	होने लगा,		
जय अच्युतौ	विजय (अर्जुन) और अच्युतने		

सहदेवं तत्तनयं भगवान् भूतभावनः ।
अभ्यषिञ्चदमेयात्मा मगधानां पतिं प्रभुः ।
मोचयामास राजन्यान् संरुद्धा मागधेन ये ॥४८॥

सहदेवं तत् तनयं भगवान् भूत भावनः अभ्यषिञ्चत् अमेय आत्मा मगधानां पतिं प्रभुः मोचयामास राजन्यान् संरुद्धा मागधेन ये ॥४८॥

अमेय आत्मा	अप्रमेय स्वरूप	**सहदेवं**	सहदेवको
भूत भावनः	प्राणियोंके पालक	**मागधानां पतिं**	मगध देशीयोंके स्वामी
प्रभुः भगवान्	सर्वेश्वर भगवानने		
तत् तनयं	उस (जरासन्ध)के पुत्र		

अभ्यषिञ्चत्	पद पर अभिषिक्त किया	**संरुद्धा**	बन्दी बनाये गये
ये मागधेन	और जो मगधराज जरासन्ध द्वारा	**राजन्यान्**	राजा थे
		मोचयामास	(उन्हें) छुड़ा दिया ॥४८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे जरासंधवधो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥

अथ त्रिसप्ततत्योऽध्यायः

। श्रीशुक उवाच ।।

अयुते द्वे शतान्यष्टौ लीलया युधि निर्जिताः ।
ते निर्गता गिरिद्रोण्यां मलिना मलवाससः ।। १ ।।

अयुते द्वे शतानि अष्टौ लीलया युधि निर्जिताः ते निर्गता गिरिद्रोण्यां मलिना मलवाससः ।।१।।

लीलया	(जरासन्ध द्वारा) खेलमें ही	**मलवाससः**	मैले वस्त्र वाले (राजा)
युधि निर्जिताः	युद्धमें जीते गये	**गिरिद्रोण्यां**	पर्बतकी तलहटी (के दुर्ग)से
अयुते द्वे शतानि	बीस सहस्र		
अष्टौ	आठ सौ	**निर्गता**	निकले ।।१।।
ते मलिना	वे मैले शरीर		

क्षुत्क्षामाः शुष्कवदनाः संरोधपरिकर्शिताः ।
ददृशुस्ते घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।। २ ।।

क्षुत् क्षामाः शुष्कवदनाः संरोध परिकर्शिताः ददृशुः ते घनश्याम पीतकौशेय वाससम् ।।२।।

क्षुत् क्षामाः	भूखसे दुर्बल,	**पीतकौशेय**	पीली रेशमी
शुष्कवदनाः	सूखे मुख वाले	**वाससं**	वस्त्रधारी
संरोध	बन्दी होनेसे	**ददृशुः**	(श्रीकृष्णको) देखा ।।३।।
परिकर्शिताः	कृशित		
ते घनश्यामं	उन्होंने मेघश्याम		

श्रीवत्साङ्कं चतुर्बाहुं पद्मगर्भारुणेक्षणम् ।
चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३ ॥

श्रीवत्स अङ्कम् चतुर्बाहुं पद्मगर्भ अरुण ईक्षणं चारु प्रसन्नवदनं स्फुरत् मकर कुण्डलम् ॥३॥

श्रीवत्स अङ्कम्	श्रीवत्स चिह्न युक्त	चारु	सुन्दर
		प्रसन्नवदनं	प्रसन्न मुख
चतुर्बाहुं	चतुर्भुज,	स्फुरत्	चमकते
पद्मगर्भ	कमलके भीतरी भागके समान	मकर कुण्डलं	मकराकार कुण्डलधारी ॥३॥
अरुण ईक्षणं	रतनारे नेत्र वाले		

पद्महस्तं गदाशङ्खरथाङ्गैरुपलक्षितम् ।
किरीटहारकटककटिसूत्राङ्गदाचितम् ॥ ४ ॥

पद्महस्तं गदा शङ्ख रथाङ्गैः उपलक्षितं किरीट हार कटक कटिसूत्र अङ्गद आचितम् ॥४॥

पद्महस्तं	एक हाथमें कमल लिए	किरीट हार	मुकुट, माला
		कटक कटिसूत्र	कंकण, काञ्ची एवं
गदा शङ्ख	गदा, शङ्ख		
रथाङ्गैः	चक्रसे	अङ्गद आचितं	अङ्गदसे आभूषित ॥४॥
उपलक्षितं	पहिचानने जाते		

भ्राजद्वरमणिग्रीवं निवीतं वनमालया ।
पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया ॥ ५ ॥

भ्राजत् वरमणि ग्रीवं निवीतं वनमालया पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया ॥५॥

वरमणि	श्रेष्ठ (कौस्तुभ) मणि	**चक्षुर्भ्यां**	नेत्रोंसे
		पिबन्त इव	पीतेके समान
ग्रीवं भ्राजत्	कण्ठमें सुशोभित	**जिह्वया**	जिह्वासे
वनमालया	वनमाला	**लिहन्त इव**	चाटतेके समान
निवीतं	पहिने उनको		॥५॥

जिघ्रन्त इव नासाभ्यां रम्भन्त इव बाहुभिः ।
प्रणेमुर्हतपाप्मानो मुर्धभिः पादयोर्हरेः ॥ ६ ॥

जिघ्रन्त इव नासाभ्यां रम्भन्त इव बाहुभिः प्रणेमुः हत पाप्मानः मूर्धभिः पादयोः हरेः ॥६॥

नासाभ्यां	नाकसे	**हत पाप्मानः**	वे निष्पाप हुए (राजा लोगों)ने
जिघ्रन्त इव	सूंघतेके समान		
बाहुभिः	भुजाओंसे	**हरेः पादयोः**	श्रीहरिके चरणोंमें
रम्भन्त इव	आलिंगन करनेके समान	**मूर्धभिः प्रणेमुः**	सिर रखकर प्रणाम किया ॥७॥

कृष्णसंदर्शनाह्लादध्वस्तसंरोधनक्लमाः ।
प्रशशंषुर्हृषीकेशं गीर्भिः प्राञ्जलयो नृपाः ॥ ७ ॥

कृष्ण सन्दर्शन आह्लाद ध्वस्त संरोधन क्लमाः प्रशशंषुः हृषीकेशं गीर्भिः प्राञ्जलयः नृपाः ॥७॥

कृष्ण सन्दर्शन आह्लाद	श्रीकृष्णके दर्शनके आनन्दसे	**प्राञ्जलयः**	हाथ जोड़कर
		गीर्भिः हृषीकेशं	अपनी वाणीसे हृषीकेशकी
संरोधन क्लमाः	बन्दी रहनेके क्लेश		
ध्वस्त	नष्ट हुए राजा लोग	**प्रशशंषुः**	प्रशंसा करने लगे ॥७॥

॥ राजन ऊचुः ॥

नमस्ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराव्यय ।
प्रपन्नान् पाहि नः कृष्ण निविण्णान् घोरसंसृतेः ॥८॥

नमः ते देवदेवेश प्रपन्न आर्तिहर अव्यय प्रपन्नान् पाहि नः कृष्ण निर्विण्णान् घोर संसृतेः ॥८॥

देवदेवेश	देवदेवेश्वर !	**निर्विण्णान्**	अत्यन्त उदासीन हुए
प्रपन्न आर्तिहर	शरणागत क्लेश-हारी	**प्रपन्नान् नः**	शरणागत हम लोगोंकी
अव्यय	अविनाशी	**पाहि**	रक्षा कीजिए ॥८॥
ते नमः	आपको नमस्कार !		
कृष्ण	श्रीकृष्ण		
घोर संसृतेः	घोर संसारसे		

नैनं नाथान्वसूयामो मागधं मधुसूदन ।
अनुग्रहो यद् भवतो राज्ञां राज्यच्युतिर्विभो ॥ ९ ॥

न एनं नाथ अनुसूयामः मागधं मधुसूदन अनुग्रहः यत् भवतः आज्ञां राज्यच्युतिः विभो ॥९॥

विभो मधुसूदन	प्रभो ! मधुसूदन !	**राज्यच्युतिः**	राज्यसे भ्रष्ट हो जाना
एनं मागधं	इस मगधराज (जरासन्ध)को	**भवतः अनुग्रहः**	आपकी कृपा है ॥९॥
नाथ	स्वामी !		
अनुसूयामः न	हम दोष नहीं देते		
यत् राज्ञां	क्योंकि राजाओं पर		

राज्यैश्वर्यमदोन्नद्धो न श्रेयो विन्दते नृपः ।
त्वन्मायामोहितोऽनित्या मन्यते सम्पदोऽचलाः ॥१०॥

राज्य ऐश्वर्य मद उन्नद्धः न श्रेयः विन्दते नृपः त्वत् माया मोहितः अनित्या मन्यते सम्पदः अचलाः ॥१०॥

राज्य ऐश्वर्य	राज्यके वैभवसे
उन्नद्धः मदः	बढ़े गर्व वाले
नृपः	राजा
श्रेयः न विन्दते	आत्म कल्याण नहीं पाते,
त्वत् माया	आपकी मायासे
मोहितः	मोहित
अनित्या	अनित्य
सम्पदः	सम्पत्तिको
अचलाः मन्यते	अचल मानते हैं ॥१०॥

मृगतृष्णां यथा बाला मन्यन्त उदकाशयम् ।
एवं वैकारिकीं मायामयुक्ता वस्तु चक्षते ॥११॥

मृगतृष्णां यथा बाला मन्यन्त उदक आशयं एवं वैकारिकीं मायां अयुक्ता वस्तु चक्षते ॥११॥

यथा बाला	जैसे बालक
मृगतृष्णां	मृगतृष्णाको
उदक आशयं	जलाशय
मन्यन्त	मानते हैं
एवं	इस प्रकार
वैकारकीं मायां	विकारमयी माया को
अयुक्ता	अज्ञानी
वस्तु चक्षते	वास्तविक देखते हैं ॥११॥

वयं पुरा श्रीमदनष्टदृष्टयो
जिगीषयास्या इतरेतरस्पृधः ।
घ्नन्तः प्रजाः स्वा अतिनिर्घृणाः प्रभो
मृत्युं पुरस्त्वाविगणय्य दुर्मदाः ॥१२॥

वयं पुरा श्रीमद नष्टदृष्टयः जिगीषया अस्या इतर इतरः स्पृधः घ्नन्तः प्रजाः स्वा अतिनिर्घृणाः प्रभो मृत्युं पुरः त्वा अविगणय्य दुर्मदाः ॥१२॥

प्रभो	प्रभो !
पुरा वयं	पहिले हम लोग
श्रीमद	लक्ष्मीके मदसे
नष्टदृष्टयः	अन्धे होकर
इतर इतरः	एक दूसरेसे
स्पृधः अस्या	स्पर्धा करके इस पृथ्वीको
जिगीषया	जीतनेकी इच्छासे
पुरः त्वा मृत्युं	सम्मुख खड़े आप मृत्यु रूपकी
अविगणय्य	अवगणना करके
दुर्मदाः	अत्यन्त मदके कारण
अतिनिर्घृणाः	अत्यन्त निर्दय होकर
स्वा प्रजाः	अपनी प्रजाको
घ्नन्तः	मारते थे ॥१२॥

त एव कृष्णाद्य गभीररंहसा
दुरन्तवीर्येण विचालिताः श्रियः ।
कालेन तन्वा भवतोऽनुकम्पया
विनष्टदर्पाश्चरणौ स्मराम ते ॥१३॥

त एव कृष्ण अद्य गभीर रंहसा दुरन्तवीर्येण विचालिताः श्रियः कालेन तन्वा भवतः अनुकम्पया विनष्टदर्पाः चरणौ स्मराम ते ॥१३॥

कृष्ण	श्रीकृष्ण !
अद्य त एव	आज वही हम लोग
गभीर रंहसा	गम्भीर वेग वाले
दुरन्तवीर्येण	अनन्त पराक्रम
तन्वा कालेन	आपके स्वरूप काल के द्वारा
श्रियः	श्रीहीन
विचालिताः	हो जाने से
भवतः	आपकी
अनुकम्पया	कृपासे
विनष्टदर्पाः	गर्व नष्ट होनेसे
ते चरणौ	आपके चरणोंका
स्मराम	स्मरण करते हैं ॥१३॥

अथो न राज्यं मृगतृष्णिरूपितं
देहेन शश्वत् पतता रुजां भुवा ।
उपासितव्यं स्पृहयामहे विभो
क्रियाफलं प्रेत्य च कर्णरोचनम् ॥१४॥

अथो न राज्यं मृगतृष्णि रूपितं देहेन शश्वत् पतता रुजां भुवा उपासितव्यं स्पृहयामहे विभो क्रियाफलं प्रेत्य च कर्णरोचनम् ॥१४॥

विभो	प्रभो !
शश्वत् पतता	निरन्तर क्षीण होने वाले
रुजां भुवा	रोगोंकी उत्पत्ति स्थली
देहेन	शरीरके द्वारा
उपासितव्यं	भोगे जाने वाले
मृगतृष्णि	मृगतृष्णाके
रूपितं	समान
राज्यं	राज्यका
च प्रेत्य	तथा मरने पर (मिलने वाले)
कर्णरोचनं	कानोंको रुचिकर लगने वाले
क्रियाफलं	कर्मोंके फल (स्वर्गादि)की
अथो	अब (हम)
न स्पृहयामहे	इच्छा नहीं करते ॥१४॥

तं नः समादिशोपायं येन ते चरणाब्जयोः ।
स्मृतिर्यथा न विरमेदपि संसरतामिह ॥१५॥

तं नः सम आदिश उपायं येन ते चरणाब्जयोः स्मृतिः यथा न विरमेत् अपि संसरतां इह ॥१५॥

नः तं उपायं	हम लोगोंको उस उपायको
सम आदिश	भली प्रकार बतलाइये
येन इह	जिससे इस संसार में
संसरतां अपि	(अनेक योनियोंमें) घूमते हुए
ते	आपके

चरणाब्जयोः	चरण-कमलोंकी	**यथा न विरमेत्**	जैसे नहीं रुके
स्मृति	स्मृति		॥१५॥

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ॥१६॥

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने प्रणत क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ॥१६॥

वासुदेवाय	वासुदेव	**गोविन्दाय**	गोविन्द
हरये परमात्मने	श्रीहरि परमात्मा	**कृष्णाय**	श्रीकृष्णचन्द्रको
प्रणत	शरणागत-	**नमो नमः**	बारम्बार नमस्कार
क्लेशनाशाय	क्लेश-नाशक		॥१६॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

संस्तूयमानो भगवान् राजभिर्मुक्तबन्धनैः ।
तानाह करुणस्तात शरण्यः श्लक्ष्णया गिरा ॥१७॥

संस्तूयमानः भगवान् राजभिः मुक्त बन्धनैः तान् आह करुणः तात शरण्यः श्लक्ष्णया गिरा ॥१७॥

तात	तात परीक्षित !	**भगवान्**	भगवान
मुक्त बन्धनैः	बन्धनसे छूटे हुए	**तान्**	उनसे
राजभिः	राजाओं द्वारा	**श्लक्ष्णया गिरा**	मधुरवाणीमें
संस्तूयमानः	स्तुत होते	**आह**	बोले ॥१७॥
करुणः शरण्यः	करुणामय, शरण-दाता		

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

अद्यप्रभृति वो भूपा मय्यात्मन्यखिलेश्वरे ।
सुदृढा जायते भक्तिर्बाढमाशंसितं तथा ॥१८॥

अद्य प्रभृति वः भूपा मयि आत्मनि अखिल ईश्वरे सुदृढा जायते भक्तिः बाढं आशंसितं तथा ॥१८॥

भूपा तथा	नृपतिगणो तुम सबने जो	अखिल ईश्वरे	सर्वेश्वरमें
		सुदृढ़ा भक्तिः	सुदृढ़ भक्ति
आशंसितं बाढं	कहा वह ठीक है	जायते	होगी ॥१८॥
अद्य प्रभृति	आज से		
वः मयि	मुझ		
आत्मनि	सर्वात्मा		

दिष्ट्या व्यवसितं भूपा भवन्त ऋतभाषिणः ।
श्रियैश्वर्यमदोन्नाहं पश्य उन्मादकं नृणाम् ॥१९॥

दिष्ट्या व्यवसितं भूपा भवन्तः ऋतभाषिणः श्रिय ऐश्वर्य मद उन्नाहं पश्य उन्मादकं नृणाम् ॥१९॥

भूपा भवन्तः	राजाओ, तुम सब	श्रिय ऐश्वर्य	धन और वैभवसे
दिष्ट्या	सौभाग्यवश	मद उन्नाहं	मदोन्मत्त
व्यवसितं	ठीक निश्चय	नृणां उन्मादकं	मनुष्योंका पागलपन
ऋतभाषिणः	और सत्य कहते हो	पश्य	देखो ॥१९॥

हैहयो नहुषो वेनो रावणो नरकोऽपरे ।
श्रीमदाद् भ्रंशिताः स्थानाद् देवदैत्यनरेश्वराः ॥२०॥

हैहयः नहुषः वेनः रावणः नरकः अपरे श्रीमदात् भ्रंशिताः स्थानात् देवदैत्य नर ईश्वराः ॥२०॥

हैहयः	सहस्रार्जुन,	**नर ईश्वराः**	राजा लोग
नहुषः वेनः	नहुष, वेन	**श्रीमदात्**	धनमदके कारण
रावणः नरकः	रावण, नरकासुर	**स्थानात्**	स्थान
अपरे देवदैत्य	तथा दूसरे देवता दैत्य,	**भ्रंशिताः**	भ्रष्ट हुए ॥२०॥

भवन्त एतद् विज्ञाय देहाद्युत्पाद्यमन्तवत् ।
मां यजन्तोऽध्वरैर्युक्ताः प्रजा धर्मेण रक्षथ ॥२१॥

भवन्त एतत् विज्ञाय देहादि उत्पाद्यम् अन्तवत् मां यजन्तः अध्वरैः युक्ता प्रजा धर्मेण रक्षथ ॥२१॥

भवन्त एतत्	तुम लोग इस	**मां यजन्तः**	मेरी आराधना करते हुए
उत्पाद्यम् देहादि	उत्पन्न होने वाले शरीरादिको	**धर्मेण प्रजा**	धर्मपूर्वक प्रजाकी
अन्तवत् विज्ञाय	नाशवान जानकर	**रक्षथ**	रक्षा करो ॥२१॥
युक्ता अध्वरैः	संयम पूर्वक यज्ञों द्वारा		

संतन्वन्तः प्रजातन्तून् सुखं दुःखं भवाभवौ ।
प्राप्तं प्राप्तं च सेवन्तो मच्चित्ता विचरिष्यथ ॥२२॥

सन्तन्वन्तः प्रजातन्तून् सुखं दुःखं भव अभवौ प्राप्तं प्राप्तं च सेवन्तः मत् चित्ता विचरिष्यथ ॥२२॥

प्रजातन्तून्	सन्तान परम्परा	**मत् चित्ता**	मुझमें चित्त लगा-कर
सन्तन्वन्तः	बढ़ाते हुए	**विचरिष्यथ**	विचरण करो ॥२२॥
सुखं दुःखं	सुख-दुःख		
भव अभवौ	लाभ-हानि		
प्राप्तं प्राप्तं	जब जो मिल जाय		
च सेवन्तः	उसे ही भोगते हुए		

उदासीनाश्च देहादावात्मारामा धृतव्रताः ।
मय्यावेश्य मनः सम्यङ् मामन्ते ब्रह्म यास्यथ ॥२३॥

उदासीनाः च देहादाः आत्मारामा धृतव्रताः मयि आवेश्य मनः सम्यक् मां अन्ते ब्रह्म यास्यथ ॥२३॥

देहादाः च	देहादिसे तो	**मयि आवेश्य**	मुझमें प्रविष्ट करके
उदासीनाः	उदासीन होकर	**अन्ते मां ब्रह्म**	अन्तमें मुझ ब्रह्मको
आत्मारामा	आत्मराम होकर	**यास्यथ**	प्राप्त हो जाओगे ॥२३॥
धृतव्रता	व्रत (संयम) पालन करते हुए		
मनः सम्यक्	मनको भली प्रकार		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इत्यादिश्य नृपान् कृष्णो भगवान् भुवनेश्वरः ।
तेषां न्ययुङ्क्त पुरुषान् स्त्रियो मज्जनकर्मणि ॥२४॥

इति आदिश्य नृपान् कृष्णः भगवान् भुवन ईश्वरः तेषां न्ययुङ्क्त पुरुषान् स्त्रियः मज्जनकर्मणि ॥२४॥

नृपान् इति	राजाओंको इस प्रकार	**पुरुषान् स्त्रियः**	पुरुष एवं स्त्री (सेवकों)को
आदिश्य	आदेश देकर	**न्ययुङ्क्त**	नियुक्त किया ॥२४॥
भुवन ईश्वरः	त्रिभुवनाधीश		
भगवान् कृष्णः	भगवान श्रीकृष्णने		
तेषां	उनको		
मज्जनकर्मणि	स्नान करानेके लिए		

सपर्यां कारयामास सहदेवेन भारत ।
नरदेवोचितैर्वस्त्रैर्भूषणैः स्रग्विलेपनैः ॥२५॥

सपर्यां कारयामास सहदेवेन भारत नरदेव उचितैः वस्त्रैः भूषणैः स्रक् विलेपनैः ॥२५॥

भारत	परीक्षित् !	**सहदेवेन**	सहदेव द्वारा (उनकी)
नरदेव उचितैः	राजाओंके योग्य	**सपर्यां**	सत्कार
वस्त्रैः भूषणैः	वस्त्राभूषण एवं	**कारयामास**	करवाया ॥२५॥
स्रक् विलेपनैः	माला-चन्दनसे		

भोजयित्वा वरान्नेन सुस्नातान् समलंकृतान् ।
भोगैश्च विविधैर्युक्तांस्ताम्बूलाद्यैर्नृपोचितैः ॥२६॥

भोजयित्वा वर अन्नेन सुस्नातान् समलंकृतान् भोगैः च विविधैः युक्तान् ताम्बूल आद्यैः नृप उचितैः ॥२६॥

सुस्नातान्	भली प्रकार स्नान किये	**च नृप उचितैः**	तथा राजोचित
समलंकृतान्	पूर्णतः अलंकृत	**ताम्बूल आद्यैः**	पान आदि
वर अन्नेन	श्रेष्ठ अन्नका	**विविधैः भोगैः**	अनेक भोगपदार्थ
भोजयित्वा	भोजन कराके	**युक्तान्**	देकर ॥२६॥

ते पूजिता मुकुन्देन राजानो मृष्टकुण्डलाः ।
विरेजुर्मोचिताः क्लेशात् प्रावृडन्ते यथा ग्रहाः ॥२७॥

ते पूजिता मुकुन्देन राजानः मृष्ट कुण्डलाः विरेजुः मोचिताः क्लेशात् प्रावृट् अन्ते यथा ग्रहाः ॥२८॥

मुकुन्देन	मुकुन्द द्वारा	**ते राजानः**	वे राजा लोग
पूजिता	सत्कृत	**क्लेशात्**	कष्टोंसे
मृष्ट कुण्डलाः	चमकते कुण्डलों वाले		

मोचितः	छुड़ाये गये	**यथा ग्रहाः**	जैसे ग्रह (शोभित हों)
प्रावृट् अन्ते	वर्षाके अन्तमें	**विरेजुः**	शोभित हुए ॥२७॥

रथान् सदश्वानारोप्य मणिकाञ्चनभूषितान् ।
प्रीणय्य सूनृतैर्वाक्यैः स्वदेशान् प्रत्ययापयत् ॥२८॥

रथान् सद् अश्वान् आरोप्य मणिकाञ्चन भूषितान् प्रीणय्य सूनृतैः वाक्यैः स्वदेशान् प्रत्ययापयत् ॥२८॥

मणिकाञ्चन	मणि और स्वर्णसे	**प्रीणय्य**	सन्तुष्ट करके
भूषितान्	अलंकृत	**स्वदेशान्**	उनके अपने देश
सद् अश्वान्	अच्छे घोड़ों वाले	**प्रत्ययापयत्**	भेज दिया ॥२८॥
रथान् आरोप्य	रथों पर चढ़ाकर		
सूनृतैः वाक्यैः	मधुर वचनोंसे		

त एवं मोचिताः कृच्छ्रात् कृष्णेन सुमहात्मना ।
ययुस्तमेव ध्यायन्तः कृतानि च जगत्पतेः ॥२९॥

त एवं मोचिताः कृच्छ्रात् कृष्णेन सुमहात्मना ययुः तं एव ध्यायन्तः कृतानि च जगत्पतेः ॥२९॥

एवं त कृच्छ्रात्	इस प्रकार वे संकट से	**तं एव च**	उन्हींको तथा
		जगत्पतेः	उन जगदीशके
सुमहात्मना	श्रेष्ठ महात्मा	**कृतानि ध्यायन्तः**	कर्मोंका चिन्तन करते हुए
कृष्णेन	श्रीकृष्ण द्वारा		
मोचिताः	छुड़ाये जाकर	**ययुः**	गये ॥२९॥

जगदुः प्रकृतिभ्यस्ते महापुरुषचेष्टितम् ।
यथान्वशासद् भगवांस्तथा चक्रुरतन्द्रिताः ॥३०॥

जगदुः प्रकृतिभ्यः ते महापुरुष चेष्टितं यथा अनु अशासत् भगवान् तथा चक्रुः अतन्द्रिताः ॥३०॥

ते प्रकृतिभ्यः	उन्होंने मन्त्रियों आदिसे	**यथा अनु**	जैसी पीछे
		अशासत्	आज्ञा दी थी
महापुरुष	महापुरुष (श्रीकृष्ण)	**तथा अतन्द्रिताः**	वैसा ही सावधान होकर
चेष्टितं	का क्रिया कलाप		
जगदुः	सुनाया और	**चक्रुः**	करने लगे ॥३०॥
भगवान्	भगवानने		

जरासंधं घातयित्वा भीमसेनेन केशवः ।
पार्थाभ्यां संयुतः प्रायात् सहदेवेन पूजितः ॥३१॥

जरासन्धं घातयित्वा भीमसेनेन केशवः पार्थाभ्यां संयुतः प्रायात् सहदेवेन पूजितः ॥३१॥

केशवः	केशवने	**पार्थाभ्यां**	दोनों पृथापुत्र (भीम-अर्जुन)
भीमसेनेन	भीमसेन द्वारा		
जरासन्धं	जरासन्धको	**संयुतः**	सहित
घातयित्वा	मरवाकर	**प्रायात्**	लौट चले ॥३१॥
सहदेवेन पूजितः	सहदेव द्वारा सत्कृत होकर		

गत्वा ते खाण्डवप्रस्थं शङ्खान् दध्मुर्जितारयः ।
हर्षयन्तः स्वसुहृदो दुर्हृदां चासुखावहाः ॥३२॥

गत्वा ते खाण्डवप्रस्थं शङ्खान् दध्मुः जित अरयः हर्षयन्तः स्वसुहृदः दुर्हृदां च असुख आवहाः ॥३२॥

जित अरयः	शत्रुविजयी	**ते खाण्डवप्रस्थं**	वे खाण्डवप्रस्थ (इन्द्रप्रस्थ)

गत्वा	जाकर
स्वसुहृदः	अपने सुहृदोंको
हर्षयन्तः	हर्षित करते हुए
च दुर्हृदां	तथा द्वेषियोंके लिए
असुख आवहाः	दुःखदायी
शङ्खान् दध्मुः	शंख बजाये

॥३२॥

तच्छ्रुत्वा प्रीतमनस इन्द्रप्रस्थनिवासिनः ।
मेनिरे मागधं शान्तं राजा चाप्तमनोरथः ॥३३॥

तत् श्रुत्वा प्रीतमनस इन्द्रप्रस्थ निवासिनः मेनिरे मागधं शान्तं राजा च आप्त मनोरथः ॥३३॥

तत् श्रुत्वा	उसे सुनकर
प्रीतमनस	प्रसन्न चित्त
इन्द्रप्रस्थ	इन्द्रप्रस्थ
निवासिनः	वासियोंने
मागधं शान्तं	जरासन्धको मारा-गया
च राजा	तथा राजा (युधि-ष्ठिर)को
आप्त	प्राप्त
मनोरथः मेनिरे	मनोरथ मान लिया

॥३३॥

अभिवन्द्याथ राजानं भीमार्जुनजनार्दनाः ।
सर्वमाश्रावयांचक्रुरात्मना यदनुष्ठितम् ॥३४॥

अभिवन्द्य अथ राजानं भीम अर्जुन जनार्दनाः सर्वं आश्रावयान् चक्रुः आत्मना यत् अनुष्ठितम् ॥३४॥

अथ भीम	फिर भीमसेन
अर्जुन	अर्जुन एवं
जनार्दनाः	जनार्दनने
राजानं	राजा (युधिष्ठिर)को
अभिवन्द्य	प्रणाम करके
आत्मना यत्	अपने द्वारा जो
अनुष्ठितं सर्वं	किया गया था वह सब
आश्रावयान् चक्रुः	सुनाया ॥३४॥

निशम्य धर्मराजस्तत् केशवेनानुकम्पितम् ।
आनन्दाश्रुकलां मुञ्चन् प्रेम्णा नोवाच किञ्चन ॥३५॥

निशम्य धर्मराजः तत् केशवेन अनुकम्पितं आनन्द अश्रुकलां मुञ्चन् प्रेम्णा न उवाच किञ्चन ॥३५॥

केशवेन	केशवके उस	**मुञ्चन् प्रेम्णा**	बहाते, प्रेमके कारण
अनुकम्पितं	अनुग्रहपूर्ण कर्मको	**किञ्चन न**	कुछ नहीं
निशम्य	सुनकर	**उवाच**	बोल सके ॥३५॥
धर्मराजः	धर्मराज (युधिष्ठिर)		
आनन्द	आनन्दके		
अश्रुकलां	आंसू		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्याम् **संहितायां** दशमस्कन्धे **उत्तरार्धे** कृष्णाद्यागमने त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एवं युधिष्ठिरो राजा जरासंधवधं विभोः ।
कृष्णस्य चानुभावं तं श्रुत्वा प्रीतस्तमब्रवीत् ॥ १ ॥

एवं युधिष्ठिरः राजा जरासन्धवधं विभोः कृष्णस्य च अनुभावं तं श्रुत्वा प्रीतः तं अब्रवीत् ॥१॥

एवं राजा	इस प्रकार राजा	तं अनुभावं	उस प्रभावको
युधिष्ठिरः	युधिष्ठिर	श्रुत्वा	सुनकर
जरासन्धवधं	जरासन्ध-वध	प्रीतः तं	प्रसन्न होकर उनसे
च विभोः	तथा प्रभु	अब्रवीत्	बोले ॥१॥
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके		

॥ युधिष्ठिर उवाच ॥

ये स्युस्त्रैलोक्यगुरवः सर्वे लोकमहेश्वराः ।
वहन्ति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसैवानुशासनम् ॥ २ ॥

ये स्युः त्रैलोक्य गुरवः सर्वे लोकमहेश्वराः वहन्ति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसा एव अनुशासनम् ॥२॥

ये त्रैलोक्य	जो त्रिलोकीके	सर्वे	सब
गुरवः	गुरु एवं	लोकमहेश्वराः	लोकोंके महान् ईश्वर
		स्युः	हैं

दुर्लभं	(वे ब्रह्मादि भी आपकी) दुर्लभ
अनुशासनं	आज्ञा
लब्ध्वा	पाकर
शिरसा एव वहन्ति	शिरोधार्य ही करते हैं ॥२॥

स भवानरविन्दाक्षो दीनानामीशमानिनाम् ।
धत्तेऽनुशासनं भूमंस्तदत्यन्तविडम्बनम् ॥ ३ ॥

स भवान् अरविन्द अक्षः दीनानां ईश मानिनां धत्ते अनुशासनं भूमन् तत् अत्यन्त विडम्बनम् ॥३॥

स भवान् भूमन्	वह आप भूमन् !
अरविन्द अक्ष	कमल-लोचन
ईश मानिनां	अपनेको समर्थ मानने वाले
दीनानां	(हम) दीनोंकी
अनुशासनं धत्ते	आज्ञा स्वीकार करते हैं
तत् अत्यन्त विडम्बनं	यह अत्यन्त लीला है ॥३॥

न ह्येकस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणः परमात्मनः
कर्मभिर्वर्धते तेजो ह्रसते च यथा रवेः ॥ ४ ॥

न हि एकस्य अद्वितीयस्य ब्रह्मणः परमात्मनः कर्मभिः वर्धते तेजः ह्रसते च यथा रवेः ॥४॥

हि एकस्य	क्योंकि एक
अद्वितीयस्य	अद्वितीय
ब्रह्मणः	परं ब्रह्म
परमात्मनः	परमात्माका
तेजः यथा रवेः	तेज जैसे सूर्यका (तेज)
कर्मभिः वर्धते	(किसी) कर्मसे बढ़ता
च ह्रसते न	तथा घटता नहीं है ॥४॥

न वै तेऽजित भक्तानां ममाहमिति माधव ।
त्वं तवेति च नानाधीः पशूनामिव वैकृता ।। ५ ।।

न वै ते अजित भक्तानां मम अहं इति माधव त्वं तव इति च नाना धीः पशूनां इव वैकृता ।।५।।

अजित माधव	अजित ! माधव !
ते भक्तानां	आपके भक्तोंकी
मम अहं इति	(मैं-मेरा) इस-प्रकारकी
च त्वं तव इति	तथा 'तुम-तुम्हारा' इस प्रकारकी
पशूनां इव	पशुओंके समान
वैकृता नाना	विकारवान नानात्मक (भेद-वाली)
धीः वै न	बुद्धि निश्चय नहीं होती ।।५।।

।। श्रीशुक उवाच ।।

इत्युक्त्वा यज्ञिये काले वव्रे युक्तान् स ऋत्विजः ।
कृष्णानुमोदितः पार्थो ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः ।। ६ ।।

इति उक्त्वा यज्ञिये काले वव्रे युक्तान् स ऋत्विजः कृष्ण अनुमोदितः पार्थः ब्राह्मणन् ब्रह्मवादिनः ।।६।।

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर
यज्ञिये काले	यज्ञके (उपयुक्त) समयमें
कृष्ण	श्रीकृष्णकी
अनुमोदितः	अनुमतिसे
स पार्थः	उन पृथा-पुत्र युधिष्ठिरने
युक्तान्	उपयुक्त
ब्रह्मवादिनः	वेदवादी
ब्राह्मणान्	ब्राह्मणोंको
ऋत्विजः वव्रे	ऋत्विक वरण किया ।।६।।

द्वैपायनो भरद्वाजः सुमन्तुर्गौतमोऽसितः ।
वसिष्ठश्च्यवनः कण्वो मैत्रेयः कवषस्त्रितः ॥ ७ ॥

विश्वामित्रो वामदेवः सुमतिर्जैमिनिः क्रतुः ।
पैलः पराशरो गर्गो वैशम्पायन एव च ॥ ८ ॥

अथर्वा कश्यपो धौम्यो रामो भार्गव आसुरिः ।
वीतिहोत्रो मधुच्छन्दा वीरसेनोऽकृतव्रणः ॥ ९ ॥

द्वैपायनः (व्यास), भरद्वाजः, सुमन्तुः, गौतमः, असितः, वसिष्ठः, च्यवनः, कण्वः, मैत्रेयः, कवषः, त्रितः, विश्वामित्रः, वामदेवः, सुमतिः, जैमिनिः, क्रतुः, पैलः, पराशरः, गर्गः, वैशम्पायन, एव च (भी) अथर्वा, कश्यपः, धौम्यः, रामः, भार्गव (भृगवंशी परशुराम), आसुरिः, वीतिहोत्रः, मधुच्छन्दा, वीरसेनः, अकृतव्रणः ॥७, ८, ९॥*

उपहूतास्तथा चान्ये द्रोणभीष्मकृपादयः ।
धृतराष्ट्रः सहसुतो विदुरश्च महामतिः ॥१०॥

उपहूताः तथा च अन्ये द्रोण भीष्म कृप आदयः धृतराष्ट्रः सहसुतः विदुरः च महामतिः ॥१०॥

तथा च अन्ये	और दूसरे भी	च महामतिः	एवं महाबुद्धि
द्रोण भीष्म	द्रोणाचार्य, भीष्म,	विदुरः उपहूताः	विदुर बुलाये गये ॥१०॥
कृप आदयः	कृपाचार्य आदि		
सहसुतः	पुत्रोंके साथ		
धृतराष्ट्रः	धृतराष्ट्र		

---

* ये केवल नाम हैं, अतः इनका अन्वय अर्थ नहीं है ।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा यज्ञदिदृक्षवः ।
तत्रेयुः सर्वराजानो राज्ञां प्रकृतयो नृप ॥११॥

ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्रा यज्ञदिदृक्षवः तत्र ईयुः सर्वराजानः राज्ञां प्रकृतयः नृप ॥११॥

नृप	राजन् !	**वैश्याः शूद्रा**	वैश्य, शूद्र
तत्र	वहां	**सर्वराजानः**	सब राजा तथा
यज्ञदिदृक्षवः	यज्ञ-दर्शनके लिए	**राज्ञां प्रकृतयः**	राजाओंके मन्त्री-गण
ब्राह्मणाः	ब्राह्मण,		
क्षत्रियाः	क्षत्रिय,	**ईयुः**	आये ॥११॥

ततस्ते देवयजनं ब्राह्मणाः स्वर्णलाङ्गलैः ।
कृष्ट्वा तत्र यथाम्नायं दीक्षयाञ्चक्रिरे नृपम् ॥१२॥

ततः ते देवयजनं ब्राह्मणाः स्वर्णलाङ्गलैः कृष्ट्वा तत्र यथा आम्नायं दीक्षयान् चक्रिरे नृपम् ॥१२॥

ततः ते	तब उन	**तत्र**	वहां
ब्राह्मणाः	ब्राह्मणोंने	**यथा आम्नायं**	शास्त्रीय विधिसे
देवयजनं	देव-यज्ञकी भूमिको	**नृपं**	राजा युधिष्ठिरको
स्वर्ण लाङ्गलैः	स्वर्णके हलसे	**दीक्षयान् चक्रिरे**	(यज्ञकी) दीक्षा दी ॥१२॥
कृष्ट्वा	जुतवाकर		

हैमाः किलोपकरणा वरुणस्य यथा पुरा ।
इन्द्रादयो लोकपाला विरिञ्चभवसंयुताः ॥१३॥

हैमाः किल उपकरणा वरुणस्य यथा पुरा इन्द्र आदयः लोकपाला विरिञ्च भव संयुताः ॥१३॥

यथा पुरा	जैसे प्राचीन कालमें	**किल**	अहो (सब)
वरुणस्य	वरुणके (यज्ञमें था)	**हैमाः उपकरणा**	स्वर्णपात्र थे,

विरिञ्च भव संयुताः	ब्रह्मा, शंकरजी सहित	**इन्द्र आदयः लोकपाला**	इन्द्रादि लोकपाल ॥१३॥

सगणाः सिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ।
मुनयो यक्षरक्षांसि खगकिन्नरचारणाः ॥१४॥

सगणाः सिद्ध गन्धर्वा विद्याधर महा उरगाः मुनयः यक्ष रक्षांसि खग किन्नर चारणाः ॥१४॥

सगणाः	अपने गणों सहित	**मुनयः**	मुनिगण,
सिद्ध	सिद्ध	**यक्ष रक्षांसि**	यक्ष-राक्षस,
गन्धर्वा	गन्धर्व,	**खग किन्नर**	पक्षी, किन्नर
विद्याधर	विद्याधर	**चारणाः**	चारण ॥१४॥
महा उरगाः	बड़े नाग,		

राजानश्च समाहूता राजपत्न्यश्च सर्वशः ।
राजसूयं समीयुः स्म राज्ञः पाण्डुसुतस्य वै ॥१५॥

राजानः च सम आहूता राजपत्न्यः च सर्वशः राजसूयं सम ईयुः स्म राज्ञः पाण्डुसुतस्य वै ॥१५॥

सम आहूता	भली प्रकार बुलाये गये	**पाण्डुसुतस्य**	पाण्डुनन्दन
		राज्ञः	राजाके
राजानः च	राजा लोग तथा	**राजसूयं वै**	राजसूय-यज्ञमें निश्चय
सर्वशः	सभी		
राजपत्न्यः च	राजाओंकी रानियां भी	**सम ईयुः स्म**	सब ओरसे आये ॥१५॥

मेनिरे कृष्णभक्तस्य सूपपन्नमविस्मिताः ।
अयाजयन् महाराजं याजका देववर्चसः ।
राजसूयेन विधिवत् प्राचेतसमिवामराः ॥१६॥

मेनिरे कृष्णभक्तस्य स उपपन्नं अविस्मिताः अयाजयन् महाराजं याजका देववर्चसः राजसूयेन विधिवत् प्राचेतसं इव अमराः ॥१६॥

अविस्मिताः	बिना आश्चर्यके	**महाराजं**	महाराज युधिष्ठिर से
कृष्णभक्तस्य	श्रीकृष्ण भक्तके लिए	**अमराः**	देवताओं द्वारा
स उपपन्नं	पूर्णतः उपयुक्त	**प्राचेतसं इव**	वरुणसे करानेकी भांति
मेनिरे	माना ।		
देववर्चसः	देवताओंके समान तेजस्वी	**विधिवत्**	विधिपूर्वक
		राजसूयेन	राजसूय
याजका	यज्ञ कराने वाले (ऋत्विकों)ने	**अयाजयन्**	यज्ञ कराया ॥१६॥

सौत्येऽहन्यवनीपालो याजकान् सदसस्पतीन् ।
अपूजयन् महाभागान् यथावत् सुसमाहितः ॥१७॥

सौत्ये अहनि अवनीपालः याजकान् सदसस्पतीन् अपूजयन् महाभागान् यथावत् सुसमाहितः ॥१७॥

सौत्ये अहनि	सोमवल्लीसे रस निकालनेके दिन	**सदसस्पतीन्**	यज्ञ-सभाके सदस्यों का
अवनीपालः	भूपाल युधिष्ठिरने	**सुसमाहितः**	अत्यन्त सावधानीसे
महाभागान्	महाभाग	**यथावत्**	विधिपूर्वक
याजकान्	याजकों (ऋत्विकों) एवं	**अपूजयन्**	पूजन किया ॥१७॥

सदस्याग्र्यार्हणार्हं वै विमृशन्तः सभासदः ।
नाध्यगच्छन्ननैकान्त्यात् सहदेवस्तदाब्रवीत् ॥१८॥

सदस्य अग्र्य अर्हण अर्हं वै विमृशन्तः सभासदः न अध्यगच्छन्न् अनैकान्त्यात् सहदेवः तदा अब्रवीत् ॥१८॥

सभासदः	सभासदगण	**न अध्यगच्छन्**	जब (किसीको) नहीं पा सके
सदस्य	सदस्योंमें	**तदा सहदेवः**	तब सहदेव
अग्रय अर्हण	प्रथम पूजाके	**अब्रवीत्**	बोले ॥१८॥
अर्हं वै	योग्य निश्चित रूप से		
विमृशन्तः	विचार करते हुए		
अनेकान्त्यात्	अनेक मत होनेके कारण		

अर्हति ह्यच्युतः श्रैष्ठच्यं भगवान् सात्वतां पतिः ।
एष वै देवताः सर्वा देशकालधनादयः ॥१९॥

अर्हति हि अच्युतः श्रैष्ठचं भगवान् सात्वतां पतिः एष वै देवताः सर्वा देश काल धन आदयः ॥१९॥

सात्वतां पतिः	यदुनाथ	**हि एष वै**	क्योंकि यही निश्चय
भगवान्	भगवान्	**सर्वा देवताः**	सब देवता
अच्युतः	अच्युत्	**देश काल**	स्थान, समय
श्रैष्ठचं अर्हति	इस श्रेष्ठत्वके योग्य हैं	**धन आदयः**	सम्पत्ति आदि हैं ॥१९॥

यदात्मकमिदं विश्वं क्रतवश्च यदात्मकाः ।
अग्निराहुतयो मन्त्राः सांख्यं योगश्च यत्परः ॥२०॥

यत् आत्मकं इदं विश्वं क्रतवः च यत् आत्मकाः अग्निः आहुतयः मन्त्राः सांख्यं योगः च यत् परः ॥२०॥

इदं विश्वं	यह विश्व	**यत् आत्मकाः**	जिनके स्वरूप हैं
यत् आत्मकं	जिनका स्वरूप है	**अग्निः आहुतयः**	अग्नि, आहुतियां
च क्रतवः	तथा यज्ञ		

मन्त्राः च	मन्त्र तथा	**यत् परः**	जिनके परायण हैं
सांख्यं योगः	सांख्य और योग		॥२०॥

एक एवाद्वितीयोऽसावेतदात्म्यमिदं जगत् ।
आत्मनाऽऽत्माश्रयः सभ्याः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥२१॥

एक एव अद्वितीयः असाः एतत् आत्म्यं इदं जगत् आत्मना आत्म आश्रयः सभ्याः सृजति अवति हन्ति अजः ॥२१॥

सभ्याः	सभासदों	**आत्म आश्रयः**	अपने ही द्वारा
असाः एक एव	ये एकमात्र	**अजः सृजति**	ये अजन्मा सृष्टि करते,
अद्वितीयः	अद्वितीय हैं	**अवति हन्ति**	पालन और संहार करते हैं ॥२१॥
इदं जगत्	यह जगत्		
एतत् आत्म्यं	इनका स्वरूप हैं		
आत्मना	अपने भीतर		

विविधानीह कर्माणि जनयन् यदवेक्षया ।
ईहते यदयं सर्वः श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥२२॥

विविधानि इह कर्माणि जनयन् यत् अवेक्षया ईहते हृदयं सर्वः श्रेयः धर्म आदि लक्षणम् ॥२२॥

यत् अवेक्षया	जिनके अनुग्रहसे	**सर्वः श्रेयः**	सम्पूर्ण मंगलोंको
धर्म आदि	धर्मादि	**जनयन्**	उत्पन्न करना चाहता है
लक्षणं	पुरुषार्थ रूप	**हृदयं**	(उसके यही) हृदय हैं ॥२२॥
विविधानि	अनेक प्रकारके		
कर्माणि	कर्म		
इह ईहते	इस संसारमें करता है		

तस्मात् कृष्णाय महते दीयतां परमार्हणम् ।
एवं चेत् सर्वभूतानामात्मनश्चार्हणं भवेत् ॥२३॥

तस्मात् कृष्णाय महते दीयतां परम अर्हणं एवं चेत् सर्वभूतानां आत्मनः च अर्हणं भवेत् ॥२३॥

तस्मात्	इसलिए	**एवं चेत्**	ऐसा होने पर
महते कृष्णाय	महात्मा श्रीकृष्ण को	**सर्वभूतानां**	समस्त प्राणियोंकी
		च आत्मनः	तथा अपनी भी
परम अर्हणं	यह श्रेष्ठ पूजा	**अर्हणं भवेत्**	पूजा हो जायगी ॥२३॥
दीयतां	अर्पित करो		

सर्वभूतात्मभूताय कृष्णायानन्यदर्शिने ।
देयं शान्ताय पूर्णाय दत्तस्यानन्त्यमिच्छता ॥२४॥

सर्वभूत आत्मभूताय कृष्णाय अनन्य दर्शिने देयं शान्ताय पूर्णाय दत्तस्य आनन्त्यं इच्छता ॥२४॥

दत्तस्य	अपने दानका	**अनन्य दर्शिने**	भेदशून्य दृष्टि वाले
आनन्त्यं	अनन्तफल		
इच्छता	चाहने वालेको	**शान्ताय पूर्णाय**	शान्त, परिपूर्ण
सर्वभूत	समस्त प्राणियोंके	**कृष्णाय देयं**	श्रीकृष्णको देना चाहिए ॥२४॥
आत्मभूताय	अन्तरात्मा स्वरूप		

इत्युक्त्वा सहदेवोऽभूत् तूष्णीं कृष्णानुभाववित् ।
तच्छ्रुत्वा तुष्टु वुः सर्वे साधु साध्विति सत्तमाः ॥२५॥

इति उक्त्वा सहदेवः अभूत् तूष्णीं कृष्ण अनुभाववित् तत् श्रुत्वा तुष्ट वुः सर्वे साधु साधु इति सत्तमाः ॥२५॥

इति उक्त्वा	इतना कहकर	**तत् श्रुत्वा सर्वे**	उसे सुनकर सब
कृष्ण	श्रीकृष्णका	**साधु साधु**	'ठीक बहुत ठीक'
अनुभाववित्	प्रभाव जानने वाला	**इति सत्तमाः**	ऐसा समर्थन करते हुए
सहदेवः	सहदेव	**तुष्टुवुः**	प्रशंसा करने लगे
तूष्णीं अभूत्	चुप हो गया,		॥२५॥

श्रुत्वा द्विजेरितं राजा ज्ञात्वा हार्दं सभासदाम् ।
समर्हयद्धृषीकेशं प्रीतः प्रणयविह्वलः ॥२६॥

श्रुत्वा द्विज ईरितं राजा ज्ञात्वा हार्दं सभासदां सम अर्हयत् हृषीकेश प्रीतः प्रणयविह्वलः ॥२६॥

द्विज	ब्राह्मणोंकी	**प्रीतः राजा**	प्रसन्न होकर राजा युधिष्ठिरने
ईरितं श्रुत्वा	बात सुनकर	**हृषीकेशं**	हृषीकेशका
सभासदां	(तथा) सभासदोंका	**सम अर्हयत्**	भली प्रकार पूजन किया ॥२६॥
हार्दं ज्ञात्वा	अभिप्राय जानकर		
प्रणयविह्वलः	प्रेम विह्वल		

तत्पादावनिज्यापः शिरसा लोकपावनीः ।
सभार्यः सानुजामात्यः सकुटुम्बोऽवहन्मुदा ॥२७॥

तत् पाद अवनिज्य आपः शिरसा लोकपावनीः सभार्यः सानुज अमात्यः सकुटुम्बः आवहन् मुदा ॥२७॥

तत् पाद	उनके चरण	**आपः**	चरणोदक
अवनिज्य	धोकर	**सभार्यः सानुजः**	पत्नीके साथ, भाइयोंके साथ
लोकपावनीः	वह(सम्पूर्ण) लोकों को पवित्र करने वाला		

अमात्यः	मंत्रियों एवं	**मुदा शिरसा**	आनन्दपूर्वक मस्तक-
सकुटुम्बः	कुटुम्बके साथ		पर
		आवहन्	चढ़ाया ॥२७॥

वासोभिः पीतकौशेयैर्भूषणैश्च महाधनैः ।
अर्हयित्वाश्रुपूर्णाक्षो नाशकत् समवेक्षितुम् ॥२८॥

वासोभिः पीत कौशेयैः भूषणैः च महाधनैः अर्हयित्वा अश्रु पूर्ण अक्षः न अशकत् सम अवेक्षितुम् ॥२८॥

पीत कौशेयैः	पीले रेशमी	**अश्रुपूर्ण अक्षः**	अश्रुपूर्ण नेत्र होनेसे
वासोभिः	वस्त्रोंसे	**सम अवेक्षितुं**	ठीक स्पष्ट देखनेमें
च महाधनैः	तथा बहुमूल्य	**अशकत् न**	समर्थ नहीं हुए
भूषणैः	आभूषणोंसे		॥२८॥
अर्हयित्वा	पूजन करके		

इत्थं सभाजितं वीक्ष्य सर्वे प्राञ्जलयो जनाः ।
नमो जयेति नेमुस्तं निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥२९॥

इत्थं सभाजितं वीक्ष्य सर्वे प्राञ्जलयः जनाः नमः जय इति नेमुः तं निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥२९॥

इत्थं सभाजितं	इस प्रकार सत्कृत हुए	**प्राञ्जलयः**	हाथ जोड़कर
		नेमुः	प्रणाम करने लगे और
तं वीक्ष्य	उन (श्रीकृष्ण)को देखकर	**पुष्पवृष्टयः निपेतुः**	पुष्पोंकी वर्षा होने लगी ॥२९॥
सर्वे जनाः	सब लोग		
नमः जय इति	'नमः जय हो, इस प्रकार कहते		

इत्थं निशम्य दमघोषसुतः स्वपीठा-
दुत्थाय कृष्णगुणवर्णनजातमन्युः ।

उत्क्षिप्य बाहुमिदमाह सदस्यमर्षी
संश्रावयन् भगवते परुषाण्यभीतः ॥३०॥

इत्थं निशम्य दमघोषसुतः स्वपीठात् उत्थाय कृष्ण गुण वर्णन जातमन्युः उत्क्षिप्य बाहुं इदं आह सदसि अमर्षी संश्रावयन् भगवते परुषाणि अभीतः ॥३०॥

इत्थं	इस प्रकार
कृष्ण गुण वर्णन	श्रीकृष्णके गुणोंका वर्णन
निशम्य अमर्षी	सुनकर असहन-शील
दमघोषसुतः	दमघोष-पुत्र शिशुपाल
जातमन्युः	क्रोध उत्पन्न होनेसे
स्वपीठात्	अपने आसनसे
उत्थाय	उठकर
बाहुं उत्क्षिप्य	हाथ उठाकर
अभीतः	निर्भय होकर
सदसि भगवते	सभामें भगवानको
परुषाणि	कठोर वचन
संश्रावयन्	सुनाते हुए
इदं आह	इस प्रकार कहने लगा ॥३०॥

ईशो दुरत्ययः काल इति सत्यवती श्रुतिः ।
वृद्धानामपि यद् बुद्धिर्बालवाक्यैर्विभिद्यते ॥३१॥

ईशः दुरत्ययः कालः इति सत्यवती श्रुतिः वृद्धानां अपि यत् बुद्धिः बालवाक्यैः विभिद्यते ॥३१॥

कालः दुरत्यय	काल दुष्पार है
इति श्रुतिः	यह श्रुति
सत्यवती	सच्ची है
ईशः	यही ईश्वर है
यत् वृद्धानां	क्योंकि बूढ़ोंकी
अपि बुद्धिः	बुद्धि भी
बालवाक्यैः	बालक (सहदेव)की बातोंसे
विभिद्यते	भ्रममें पड़ गयी है ॥३१॥

यूयं पात्रविदां श्रेष्ठा मा मन्ध्वं बालभाषितम् ।
सदसस्पतयः सर्वे कृष्णो यत् सम्मतोऽर्हणे ॥३२॥

यूयं पात्रविदां श्रेष्ठा मा मन्ध्वं बालभाषितं सदसस्पतयः सर्वे कृष्णः यत् सम्मतः अर्हणे ॥३२॥

सर्वे	सब	**यत् कृष्णः**	जो 'कृष्ण
सदसस्पतयः	सभापति गण	**अर्हणे सम्मतः**	पूजाके योग्य हैं'
यूयं	आप	**बालभाषितं**	यह बालककी कही
पात्रविदां श्रेष्ठा	सत्पात्र जानने वालोंमें श्रेष्ठ हैं		बात
		मा मन्ध्वं	मत मानिये ॥३२॥

तपोविद्याव्रतधरान् ज्ञानविध्वस्तकल्मषान् ।
परमर्षीन् ब्रह्मनिष्ठान् लोकपालैश्च पूजितान् ॥३३॥

तपः विद्या व्रतधरान् ज्ञान विध्वस्त कल्मषान् परम ऋषीन् ब्रह्मनिष्ठान् लोकपालैः च पूजितान् ॥३३॥

तपः विद्या	तपस्या, विद्या,	**ब्रह्मनिष्ठान्**	ब्रह्मनिष्ठ
व्रतधरान्	व्रतधारी	**च लोकपालैः**	तथा लोकपालों
कल्मषान्	पापोंको		द्वारा
ज्ञान विध्वस्त	ज्ञानसे नष्ट कर देने वाले	**पूजितान्**	पूजित
		परम ऋषीन्	परमर्षि ॥३३॥

सदस्पतीनतिक्रम्य गोपालः कुलपांसनः ।
यथा काकः पुरोडाशं सपर्यां कथमर्हति ॥३४॥

सदस्पतीन् अतिक्रम्य गोपालः कुलपांसनः यथा काकः पुरोडाशं सपर्यां कथं अर्हति ॥३४॥

सदस्पतीन्	सभापतियोंका
अतिक्रम्य	अतिक्रमण करके
यथा पुरोडाशं	जैसे पुरोडाश (हवि)
काकः	कौआ (चाहे)
कुलपांसनः	कुलकलंक
गोपालः	गोपाल
कथं	कैसे
सपर्यां अर्हति	पूजा पाने योग्य हो सकता है ।।३४।।

वर्णाश्रमकुलापेतः सर्वधर्मबहिष्कृतः ।
स्वैरवर्ती गुणैर्हीनः सपर्यां कथमर्हति ।।३५।।

वर्ण आश्रम कुल उपेतः सर्व धर्म बहिष्कृतः स्वैरवर्ती गुणैः हीनः सपर्यां कथं अर्हति ।।३५।।

वर्ण आश्रम	वर्ण-आश्रम
कुल उपेतः	कुलसे पृथक
सर्व धर्म	सब धर्मोंसे
बहिष्कृतः	बहिष्कृत
स्वैरवर्ती	स्वेच्छाचारी
गुणैः हीनः	गुणहीन
कथं	कैसे
सपर्यां अर्हति	पूजा पाने योग्य हो सकता है ।।३५।।

ययातिनैषां हि कुलं शप्तं सद्भिर्बहिष्कृतम् ।
वृथापानरतं शश्वत् सपर्यां कथमर्हति ।।३६।।

ययातिना एषां हि कुलं शप्तं सत्भिः बहिष्कृतं वृथापानरतं शश्वत् सपर्यां कथं अर्हति ।।३६।।

हि एषां कुलं	क्योंकि इसका कुल
ययातिना शप्तं	ययाति द्वारा प्रशप्त-है
सत्भिः	(अतः) सत्पुरुषों द्वारा
बहिस्कृतं	बहिष्कृत है
शश्वत्	बराबर
वृथापानरतं	व्यर्थ मद्यपानमें तत्पर
कथं	कैसे
सपर्यां अर्हति	पूजा पाने योग्य हो सकता है ।।३६।।

ब्रह्मर्षिसेवितान् देशान् हित्वैतेऽब्रह्मवर्चसम् ।
समुद्रं दुर्गमाश्रित्य बाधन्ते दस्यवः प्रजाः ॥३७॥

ब्रह्मर्षि सेवितान् देशान् हित्वा एते अब्रह्मवर्चसं समुद्रं दुर्गं आश्रित्य बाधन्ते दस्यवः प्रजाः ॥३७॥

ब्रह्मर्षि	ब्रह्मर्षियोंसे	दुर्ग समुद्रम्	दुर्गम समुद्रका
सेवितान्	सेवित	आश्रित्य	अश्रय लेकर
देशान् हित्वा	(सथुरादि) देशोंको छोड़कल	दस्यवः	(ये) डाकू (यादव)
अब्रह्मवर्चसं	ब्रह्मतेजहीन	प्रजाः बाधन्ते	प्रजाको पीड़ा देते हैं" ॥३७॥

एवमादीन्यभद्राणि बभाषे नष्टमङ्गलः ।
नोवाच किञ्चिद् भगवान् यथा सिंहः शिवारुतम् ॥३८॥

एवं आदीन् अभद्राणि बभाषे नष्टमङ्गलः न उवाच किञ्चित् भगवान् यथा सिंहः शिवारुतम् ॥३८॥

नष्टमङ्गलः	जिसका सौभाग्य नष्ट हो गया	शिवारुतं	गीदड़के शब्दसे (तटस्थ रहे)
एवं आदीन्	(उसने) इस प्रकार के बहुतसे	भगवान्	भगवानने
अभद्राणि	कटुवचन	किञ्चित् न	कुछ भी नहीं
बभाषे	कहे, किन्तु	उवाच	कहा ॥३८॥
यथा सिंहः	जैसे सिंह		

भगवन्निन्दनं श्रुत्वा दुःसहं तत् सभासदः ।
कर्णौ पिधाय निर्जग्मुः शपन्तश्चेदिपं रुषा ॥३९॥

भगवत् निन्दनं श्रुत्वा दुःसहं तत् सभासदः कर्णौ पिधाय निर्जग्मुः शपन्तं चेदिपं रुषा ॥३९॥

भगवत् दुःसहं	भगवानकी असह्य	**शपन्तं**	गाली देते
निन्दनं श्रुत्वा	निन्दा सुनकर	**कर्णौ पिधाय**	कान बन्द करके
तत्	उस	**निर्जग्मुः**	निकल गये ॥३९॥
सभासदः	सभाके सदस्य		
रुषा चेदिपं	क्रोधसे चेदिराज शिशुपालको		

निन्दां भगवतः शृण्वंस्तत्परस्य जनस्य वा ।
ततो नापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्च्युतः ॥४०॥

निन्दां भगवतः शृण्वन् तत् परस्य जनस्य वा ततः न अपैति यः सः अपि याति अधः सुकृतात् च्युतः ॥४०॥

भगवतः वा	भगवानकी अथवा	**सः अपि**	वह भी
तत्	उनके	**सुकृतात् च्युतः**	पुण्य-भ्रष्ट होकर
परस्य जनस्य	परायण भक्तकी	**अधः याति**	नीच गतिको जाता है ॥४०॥
निदां शृण्वन् यः	निन्दा सुनकर जो		
ततः न अपैति	वहाँसे हट नहीं जाता		

ततः पाण्डुसुताः क्रुद्धा मत्स्यकैकयसृञ्जयाः ।
उदायुधाः समुत्तस्थुः शिशुपालजिघांसवः ॥४१॥

ततः पाण्डुसुताः क्रुद्धा मत्स्य कैकय सृञ्जयाः उदायुधाः सम उत्तस्थः शिशुपाल जिघांसवः ॥४१॥

ततः क्रुद्धा	तब कुपित	**मत्स्य कैकय**	मत्स्य, कैकय
पाण्डुसुताः	पाण्डव	**सृञ्जयाः**	सृञ्जय देशीय लोग

शिशुपाल	शिशुपालको	**सम उत्तस्थुः**	एक साथ उठ खड़े
जिघांसवः	मारनेके लिए		हुए ॥४१॥
उदायुधः	हथियार उठाकर		

ततश्चैद्यस्त्वसम्भ्रान्तो जगृहे खड्गचर्मणी ।
भर्त्सयन् कृष्णपक्षीयान् राज्ञः सदसि भारत ॥४२॥

ततः चैद्यः तु असम्भ्रान्तः जगृहे खड्ग चर्मणी भर्त्सयन् कृष्णपक्षीयान् राज्ञः सदसि भारत ॥४२॥

भारत	परीक्षित् !	**सदसि**	सभामें
ततः चैद्यः तु	तब चेदिराज	**कृष्णपक्षीयान्**	श्रीकृष्णके पक्ष वाले
	शिशुपालने भी	**राज्ञः भर्त्सयन्**	राजाओंको डांटने
असम्भ्रान्त	बिना हड़बड़ी पड़े		लगा ॥४२॥
खड्ग	तलवार-		
चर्मणी जगृहे	ढाल पकड़ी		

तावदुत्थाय भगवान् स्वान् निवार्य स्वयं रुषा ।
शिरः क्षुरान्तचक्रेण जहारापततो रिपोः ॥४३॥

तावत् उत्थाय भगवान् स्वान् निवार्य स्वयं रुषा शिरः क्षुरान्त चक्रण जहार आपततः रिपोः ॥४३॥

तावत् उत्थाय	तब तक उठकर	**क्षुरान्त चक्रेण**	छुरेकी धारके
भगवान्	भगवानने		समान चक्रसे
स्वान् निवार्य	अपनोंको रोककर	**जहार**	काट दिया ॥४३॥
स्वयं रुषा	स्वयं क्रोध पूर्वक		
आपततः	झपटते आते		
रिपोः शिरः	शत्रुका सिर		

शब्दः कोलाहलोऽप्यासीत् शिशुपाले हते महान् ।
तस्यानुयायिनो भूपा दुद्रुवुर्जीवितैषिणः ॥४४॥

शब्दः कोलाहलः अपि आसीत् शिशुपाले हते महान् तस्य अनुयायिनः भूपा दुद्रुवुः जीवित ईषिणः ॥४४॥

शिशुपाले हते	शिशुपालके मारे जाने पर
महान्	महान्
कोलाहलः	कोलाहलका
शब्दः आसीत्	शब्द होने लगा
तस्य	उनके
अनुयायिनः	अनुयायी
जीवित ईषिणः	जीवित रहनेकी इच्छा वाले
भूपा अपि	राजा भी
दुद्रुवुः	भाग गये ॥४४॥

चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत् ।
पश्यतां सर्वभूतानामुल्केव भुवि खाच्च्युता ॥४५॥

चैद्य देह उत्थितं ज्योतिः वासुदेवं उप आविशत् पश्यतां सर्व भूतानां उल्का इव भुवि खात् च्युता ॥४५॥

चैद्य देह	चेदिराज शिशुपाल के शरीरसे
उत्थितं ज्योतिः	निकली ज्योति
खात् च्युता	आकाशसे गिरी
उल्का भुवि इव	उल्काके पृथ्वीमें (मिलने)के समान
वासुदेवं	वासुदेवमें
सर्व भूतानां	सब प्राणियोंके
पश्यतां	देखते हुए
उप आविशत्	प्रवेश कर गयी ॥४५॥

जन्मत्रयानुगुणितवैरसंरब्धया धिया ।
ध्यायंस्तन्मयतां यातो भावो हि भवकारणम् ॥४६॥

जन्मत्रय अनुगुणित वैरसंरब्धया धिया ध्यायन् तन्मयतां यातःभावः हि भवकारणम् ॥४६॥

जन्मत्रय	तीन जन्मसे	**तन्मयतां यातः**	तन्मय हो गया था
अनुगुणित	बढ़ते हुए	**हि भावः**	क्योंकि भाव ही
वैरसंरब्धया	शत्रुताके आवेश वाली	**भवकारणं**	जन्मका कारण है ॥४६॥
धिया ध्यायन्	बुद्धिसे चिन्तन करते हुए		

ऋत्विग्भ्यः ससद स्येभ्यो दक्षिणां विपुलामदात् ।
सर्वान् सम्पूज्य विधिवच्चक्रेऽवभृथमेकराट् ॥४७॥

ऋत्विक्भ्यः ससद स्येभ्यः दक्षिणां विपुलां अदात् सर्वान् सम्पूज्य विधिवत् चक्रे अवभृथं एकराट् ॥४७॥

एकराट्	एकछत्र सम्राट् (युधिष्ठिरने)	**अदात्**	दी
ससद स्येभ्यः	सदस्योंके साथ	**विधिवत्**	विधिपूर्वक
ऋत्विक्भ्यः	ऋत्विजोंको	**सर्वान् सम्पूज्य**	सबकी पूजा करके
विपुलां दक्षिणां	बहुत अधिक दक्षिणा	**अवभृथं चक्रे**	अवभृथ स्नान किया ॥४७॥

साधयित्वा क्रतुं राज्ञः कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ।
उवास कतिचिन्मासान् सुहृद्भिरभियाचितः ॥४८॥

साधयित्वा क्रतुः राज्ञः कृष्णः योगेश्वर ईश्वरः उवास कतिचित् मासान् सुहृत्भिः अभियाचितः ॥४८॥

योगेश्वर	योगेश्वरोंके भी	**कृष्णः**	श्रीकृष्ण
ईश्वरः	स्वामी	**राज्ञः क्रतुः**	राजाका यज्ञ

साधयित्वा	सम्पन्न कराके
सुहृत्भिः	सुहृदों द्वारा
अभियाचितः	बहुत प्रार्थना करने
कतिचित्	कुछ
मासान्	महीने
उवास	वहीं बसे रहे ॥४८॥

ततोऽनुज्ञाप्य राजानमनिच्छन्तमपीश्वरः ।
ययौ सभार्यः सामात्यः स्वपुरं देवकीसुतः ॥४९॥

ततः अनुज्ञाप्य राजानं अनिच्छन्तं अपि ईश्वरः ययौ सभार्यः सअमात्यः स्वपुरं देवकीसुतः ॥४९॥

ततः	तब
अनिच्छन्तं अपि	न चाहते हुए भी
राजानं	राजा (युधिष्ठिर)से
अनुज्ञाप्य	अनुमति लेकर
ईश्वरः	सर्वेश्वर
देवकीसुतः	देवकी-नन्दन
सभार्यः	पत्नियों तथा
सअमात्यः	मन्त्रियोंके साथ
स्वपुरं ययौ	अपने नगर चले गये ॥४९॥

वर्णितं तदुपाख्यानं मया ते बहुविस्तरम् ।
वैकुण्ठवासिनोर्जन्म विप्रशापात् पुनः पुनः ॥५०॥

वर्णितं तत् उपाख्यानं मया ते बहुविस्तरं वैकुण्ठ वासिनोः जन्म विप्रशापात् पुनः पुनः ॥५०॥

वैकुण्ठ वासिनोः	वैकुण्ठके निवासियों का
विप्रशापात्	ब्राह्मणोंके शापसे
पुनः पुनः जन्म	बार-बार जन्म लेने का
तत् बहुविस्तरं	यह बहुत विस्तृत
उपाख्यानं	उपाख्यान
मया ते वर्णितं	मैंने तुमसे वर्णन किया ॥५०॥

राजसूयावभृथ्येन स्नातो राजा युधिष्ठिरः ।
ब्रह्मक्षत्रसभामध्ये शुशुभे सुरराडिव ॥५१॥

राजसूय अवभृथ्येन स्नातः राजा युधिष्ठिरः ब्रह्म क्षत्र सभामध्ये शुशुभे सुरराट् इव ॥५१॥

राजा	राजा
युधिष्ठिरः	युधिष्ठिर
राजसूय	राजसूय यज्ञका
अवभृथ्येन	अभृथ (यज्ञान्त)
स्नातः	स्नान करके
ब्रह्म क्षत्र	ब्राह्मण-क्षत्रियोंकी
सभामध्ये	सभाके बीचमें
सुरराट् इव	देवराज इन्द्रके समान
शुशुभे	सुशोभित हुए ॥५१॥

राज्ञा सभाजिताः सर्वे सुरमानवखेचराः ।
कृष्णं क्रतुं च शंसन्तः स्वधामानि ययुर्मुदा ॥५२॥

राज्ञा सभाजिताः सर्वे सुर मानव खेचराः कृष्णं क्रतुं च शंसन्तः स्वधामानि ययुः मुदा ॥५२॥

राज्ञा सभाजिताः	राजा युधिष्ठिर द्वारा सत्कृत होकर
सर्वे सुर मानव	सब देवता, मनुष्य
खेचराः	आकाशचारी (सिद्धादि)
कृष्णं च क्रतुं	श्रीकृष्ण और यज्ञ की
शंसन्तः	प्रशंसा करते हुए
मुदा स्वधामानि	आनन्दित होकर अपने धाम
ययुः	चले गये ॥५२॥

दुर्योधनमृते पापं कलिं कुरुकुलामयम् ।
यो न सेहे श्रियं स्फीतां दृष्ट्वा पाण्डुसुतस्य तान् ॥५३॥

दुर्योधनं ऋते पापं कलिं कुरुकुल आमयं यः न सेहे श्रियं स्फीतां दृष्ट्वा पाण्डुसुतस्य तान् ॥५३॥

यः पाण्डुसुतस्य	जो पाण्डवोंकी	**कुरुकुल आमयं**	कुरुकुलके रोग रूप
तां स्फीतां	उस निर्मल	**कलिं पापं**	कलियुग रूप पापी
श्रियं दृष्ट्वा	सम्पत्ति देखकर	**दुर्योधनं ऋते**	दुर्योधनको छोड़-
सेहे न	सहन नहीं कर सका		कर ॥५३॥

य इदं कीर्तयेद् विष्णोः कर्म चैद्यवधादिकम् ।
राजमोक्षं वितानं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५४॥

यः इदं कीर्तयेत् विष्णोः कर्म चैद्य वध आदिकं राजमोक्षं वितानं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५४॥

यः इदं	जो इस	**च**	तथा
राजमोक्षं	राजाओंको छुड़ाना	**वितानं कीर्तयेत्**	यज्ञका वर्णन करता
चैद्य	चेदिराज शिशुपालका		है
वध आदिकं	वध आदि	**सर्वपापैः**	(वह) सब पापोंसे
विष्णोः कर्म	श्रीकृष्णके कर्मों	**प्रमुच्यते**	छूट जाता है ॥५४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे शिशुपाल नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

अथ पंचसप्ततितमोऽध्यायः

॥ राजोवाच ॥

अजातशत्रोस्तं दृष्ट्वा राजसूयमहोदयम् ।
सर्वे मुमुदिरे ब्रह्मन् नृदेवा ये समागताः ॥ १ ॥

अजातशत्रोः तं दृष्ट्वा राजसूय महा उदयं सर्वे मुमुदिरे ब्रह्मन् नृ देवा ये सम आगताः ॥१॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन्	**महा उदयं**	महान् अभ्युदय
अजातशत्रोः	अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिर का	**दृष्ट्वा**	देखकर
		ये सम आगताः	जो सब ओरसे आये
		नृ देवा सर्वे	मनुष्य, देवता सब
तं राजसूय	उस राजसूय यज्ञ रूप	**मुमुदिरे**	आनन्दित हुए ॥१॥

दुर्योधनं वर्जयित्वा राजानः सर्षयः सुराः ।
इति श्रुतं नो भगवंस्तत्र कारणमुच्यताम् ॥ २ ॥

दुर्योधनं वर्जयित्वा राजानः सऋषयः सुराः इति श्रुतं नः भगवन् तत्र कारणं उच्यताम् ॥२॥

भगवन्	भगवन्	**इति नः श्रुतं**	ऐसा हमने (अभी) सुना
सऋषयः	ऋषियोंके साथ		
राजानः	राजा लोग	**तत्र कारणं**	इसका कारण
सुराः	देवता भी	**उच्यतां**	बतलाइये ॥२॥
दुर्योधनं	दुर्योधनको		
वर्जयित्वा	छोड़कर		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

पितामहस्य ते यज्ञे राजसूये महात्मनः ।
बान्धवाः परिचर्यायां तस्यासन् प्रेमबन्धनाः ॥ ३ ॥

पितामहस्य ते यज्ञे राजसूये महात्मनः बान्धवाः परिचर्यायां तस्य आसन् प्रेमबन्धनाः ॥३॥

ते महात्मनः	तुम्हारे महात्मा	**बान्धवाः**	सम्बन्धी लोग
पितामहस्य	पितामहके	**तस्य**	उस (यज्ञ)की
राजसूये यज्ञे	राजसूय यज्ञमें	**परिचर्यायां**	सेवामें
प्रेमबन्धनाः	प्रेममें बँधे	**आसन्**	लगे थे ॥३॥

भीमो महानसाध्यक्षः धनाध्यक्षः सुयोधनः ।
सहदेवस्तु पूजायां नकुलो द्रव्यसाधने ॥ ४ ॥

भीमः महानस अध्यक्षः धन अध्यक्षः सुयोधनः सहदेवः तु पूजायां नकुलः द्रव्य साधने ॥४॥

महानस	पाठशालाके	**द्रव्य**	सामग्री
अध्यक्षः	अध्यक्ष	**साधने नकुलः**	एकत्रित करनेमें नकुल लगे थे ॥४॥
भीमः	भीमसेन		
धन अध्यक्षः	कोषाध्यक्ष		
सुयोधनः	दुर्योधन,		
तु पूजायां	और पूजा-सत्कारोंमें		
सहदेवः	सहदेव		

गुरुशुश्रूषणे जिष्णुः कृष्णः पादावनेजने ।
परिवेषणे द्रुपदजा कर्णो दाने महामनाः ॥ ५ ॥

---

* गीता प्रेसकी प्रतिमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है ।

गुरु शुश्रूषणे जिष्णुः कृष्णः पाद अवनेजने परिवेषणे द्रुपदजा कर्णः दाने महामनाः ॥५॥

गुरु शुश्रूषणे	गुरुजनोंकी सेवामें	**परिवेषणे**	परोसनेमें
जिष्णुः	अर्जुन,	**द्रुपदजा**	द्रुपद-पुत्री द्रौपदी
पाद अवनेजने	(अतिथिके) पाद-प्रक्षालनमें	**दाने**	दानमें
कृष्णः	श्रीकृष्ण,	**महामनाः कर्णः**	उदार चित्त कर्ण लगे थे ॥५॥

युयुधानो विकर्णश्च हार्दिक्यो विदुरादयः ।
बाह्लीकपुत्रा भूर्याद्या ये च सन्तर्दनादयः ॥ ६ ॥

युयुधानः विकर्णः च हार्दिक्यः विदुर आदयः बाह्लीक पुत्रा भूरि आद्या ये च सन्तर्दन आदयः ॥६॥

युयुधानः	सात्यकि	**बाह्लीक पुत्रा**	बाह्लीकके पुत्र,
विकर्णः च	विकर्ण तथा	**भूरि सन्तर्दन**	भूरिश्रवा, सन्तर्दन
हार्दिक्यः	हार्दिक्य,	**आदयः च ये**	आदि और जो थे ॥६॥
विदुर आदयः	विदुर आदि		

निरूपिता महायज्ञे नानाकर्मसु ते तदा ।
प्रवर्तन्ते स्म राजेन्द्र राज्ञः प्रियचिकीर्षवः ॥ ७ ॥

निरूपिता महायज्ञे नाना कर्मसु ते तदा प्रवर्तन्ते स्म राजेन्द्र राज्ञः प्रियचिकीर्षवः ॥७॥

राजेन्द्र	महाराज !	**तदा**	उस समय
ते राज्ञः	वे राजा युधिष्ठिर का	**नाना कर्मसु**	अनेक कार्यों में
प्रियचिकीर्षवः	प्रिय करनेकी इच्छा वाले		

निरूपिता	नियुक्त होकर	प्रवर्तन्ते स्म	(उन कामोंको) कर रहे थे ॥७॥

ऋत्विक्सदस्यबहुवित्सु सुहृत्तमेषु
स्विष्टेषु सूनृतसमर्हणदक्षिणाभिः ।
चैद्ये च सात्वतपतेश्चरणं प्रविष्टे
चक्रुस्ततस्त्ववभृथस्नपनं द्युनद्याम् ॥ ८ ॥

ऋत्विक् सदस्य बहुवित् सु सुहृत्तमेषु सु इष्टेषु सूनृत समर्हण दक्षिणाभिः चैद्ये च सात्वतपतेः चरणं प्रविष्टे चक्रुः ततः तु अवभृथ स्नपनं द्युनद्याम् ॥८॥

ऋत्विक् सदस्य	ऋत्विज, सदस्य,	सात्वतपतेः	यदुनाथके
बहुवित् सु	बहुज्ञ पुरुषोंका	चरणं प्रविष्टे	चरणोंमें लीन हो जाने पर
सुहृत्तमेषु	बन्धु-बान्धवोंका		
सूनृत समर्हण	मधुरवाणी, उत्तम पूजन सामग्री	ततः द्युनद्यां	तब (सबने) सुरसरि में
दक्षिणाभिः	तथा दक्षिणा द्वारा	अवभृथ स्नपनं	अवभृथ स्नान
सु इष्टेषु	भली प्रकार सत्कार हो जाने पर	चक्रुः	किया ॥८॥
च चैद्ये	तथा चेदिराज शिशुपालके		

मृदङ्गशंखपणवधुन्धुर्यानकगोमुखाः
वादित्राणि विचित्राणि नेदुरावभृथोत्सवे ॥ ९ ॥

मृदङ्गः शङ्ख पणव धुन्धुः आनक गोमुखाः वादित्राणि विचित्राणि नेदुः अवभृथ उत्सवे ॥९॥

अवभृथ उत्सवे	अवभृथ स्नानोत्सव के समय	**गोमुखाः**	गोमुख
मृदङ्ग शङ्ख	मृदंग, शंख,	**विचित्राणि**	अनेक प्रकारके
पणव	पणव	**वादित्राणि**	वाद्य
धुन्धुः आनक	भेरी, नगाड़े	**नेदुः**	बजने लगे ॥९॥

नर्तक्यो ननृतुर्हृष्टा गायका यूथशो जगुः ।
वीणावेणुतलोन्नादस्तेषां स दिवमस्पृशत् ॥१०॥

नर्तक्यः ननृतुः हृष्टा गायका यूथशः जगुः वीणा वेणु तल उन्नादः तेषां स दिवं अस्पृशत् ॥१०॥

हृष्टा	प्रसन्न होकर	**तेषां वीणा वेणु**	उनकी वीणा, वंशी
नर्तक्यः	नर्तकियां	**तल स उन्नादः**	तालकी वह उच्च ध्वनि
ननृतुः	नाचने लगीं	**दिवं अस्पृशत्**	स्वर्ग छूने लगी ॥१०॥
यूथशः	समूह बनाकर		
गायका जगुः	गायक गाने लगे		

चित्रध्वजपताकाग्रैरिभेन्द्रस्यन्दनार्वभिः ।
स्वलंकृतैर्भटैर्भूपा निर्ययू रुक्ममालिनः ॥११॥

चित्रध्वज पताका अग्रैः इभ इन्द्र स्यन्दन अर्वभिः स्वलङ्कृतैः भटैः भूपा निर्ययुः रुक्ममालिनः ॥११॥

पताका अग्रैः	ऊपर पताका लगी	**रुक्ममालिनः**	स्वर्णमालाधारी
चित्रध्वज	अनेक प्रकारकी ध्वजा वाले	**इन्द्र इव**	इन्द्रके समान
इभ स्यन्दन	हाथी, रथ,	**भूपा निर्ययुः**	राज लोग निकले ॥११॥
अर्वभिः	घोड़ों द्वारा		
स्वलङ्कृतैः	खूब सजे		
भटैः	सैनिकों सहित		

यदुसृञ्जयकाम्बोजकुरुकेकयकोसलाः ।
कम्पयन्तो भुवं सैन्यैर्यजमानपुरः सराः ॥१२॥

यदु सृञ्जय काम्बोज कुरु केकय कोसलाः कम्पयन्तः भुवं सैन्यैः यजमान पुरः सराः ॥१२॥

यदु सृञ्जय	यदु, सृञ्जय,
काम्बोज कुरु	काम्बोज, कुरु
केकय कोसलाः	केकय, कोसल देश के (नरेश गण)
यजमान	यजमान (राजा युधिष्ठिर)को
पुरः सराः	आगे करके
सैन्यैः	सेनासे
भुवं कम्पयन्तः	पृथ्वीको कंपित करते चले ॥१२॥

सदस्यर्त्विग्द्विजश्रेष्ठा ब्रह्मघोषेण भूयसा ।
देवर्षिपितृगन्धर्वास्तुष्टुवुः पुष्पवर्षिणः ॥१३॥

सदस्य ऋत्विक् द्विज श्रेष्ठा ब्रह्मघोषेण भूयसा देव ऋषि पितृ गन्धर्वाः तुष्टुवुः पुष्प वर्षिणः ॥१३॥

सदस्य ऋत्विक्	सदस्य, ऋत्विजादि
द्विज श्रेष्ठा	श्रेष्ठ ब्राह्मण
भूयसा	उच्च स्वरसे
ब्रह्मघोषेण	वेदपाठ करते (चले)
देव ऋषि पितृ	देवता, ऋषि, पितर
गन्धर्वाः	गन्धर्व
पुष्प वर्षिणः	पुष्पोंकी वर्षा करते हुए
तुष्टुवुः	स्तुत करने लगे ॥१३॥

स्वलंकृता नरा नार्यो गन्धस्रग्भूषणाम्बरैः ।
विलिम्पन्त्योऽभिषिञ्चन्त्यो विजह्रुर्विविधै रसैः ॥१४॥

स्वलङ्कृता नरा नार्यः गन्ध स्रक् भूषण अम्बरैः विलिम्पन्त्यः अभिषिञ्चन्त्यः विजह्रुः विविधैः रसैः ॥१४॥

गन्ध स्रक	चन्दन-माला	विलिम्पन्त्यः	(एक दूससे पर) पोतते हुए
भूषण अम्बरैः	वस्त्राभूषणोंसे	अभिषिञ्चन्त्यः	चारों ओर जल (सब पर) उछालते
स्वलङ्कृता	भली प्रकार अलंकृत	विजह्रुः	क्रीड़ा करने लगे ॥१४॥
नरा नार्यः	पुरुष-स्त्री		
विविधैः रसैः	अनेक प्रकारके (दधि आदि)रस		

तैलगोरसगन्धोदहरिद्रासान्द्रकुङ्कुमैः ।
पुम्भिर्लिप्ताः प्रलिम्पन्त्यो विजह्रुर्वारयोषितः ॥१५॥

तैल गोरस गन्धोद हरिद्रा सान्द्र कुङ्कुमैः पुम्भिः लिप्ताः प्रलिम्पन्त्यः विजह्रुः वारयोषितः ॥१५॥

वारयोषितः	वाराङ्गनाएं	प्रलिम्पन्त्यः	(उन्हें) भली प्रकार पोतती
तैल गोरस	तेल, गोरस	विजह्रुः	क्रीड़ा करने लगीं ॥१६॥
गन्धोद सान्द्र	सुगन्धित, गीली		
हरिद्रा	हल्दी,		
कुङ्कुमैः	कुंकुमसे		
पुंभिः लिप्ताः	पुरुषों द्वारा पोतीं गयीं		

गुप्ता नृभिर्निरगमन्नुपलब्धुमेतद्
देव्यो यथा दिवि विमानवरैर्नृदेव्यः ।
ता मातुलेयसखिभिः परिषिच्यमानाः
सव्रीडहासविकसद्वदना विरेजुः ॥१६॥

गुप्ता नृभिः निरगमन् उपलब्धुं एतत् देव्यः यथा दिवि विमान वरैः नृदेव्यः ता मातुलेय सखिभिः परिषिच्य मानाः सव्रीडहास विकसत् वदना विरेजुः ॥१६॥

एतत् उपलब्धुं	इस अवसरका लाभ उठानेके लिए
यथा दिवि	जैसे आकाशमें
वरैः विमान	श्रेष्ठ विमानों पर
देव्यैः	देवियां आयी
नृभिः गुप्ता	सैनिकोंसे रक्षिता
नृदेव्यः	महारानियां (आयीं)
ता मातुलेय	वे (पाण्डवोंके) मामाके पुत्र
सखिभिः	तथा उनके मित्रों द्वारा
परिषिच्य माना:	चारों ओरसे भिगयी जाती हुई
सव्रीडहास	लज्जा पूर्ण हास्यसे
विकसत् वदना	प्रफुल्ल मुख
विरेजुः	शोभित हुईं ॥१६॥

ता देवरानुत सखीन् सिषिचुर्दृतीभिः
क्लिन्नाम्बरा विवृतगात्रकुचोरुमध्याः ।
औत्सुक्यमुक्तकबराच्च्यवमानमाल्याः
क्षोभं दधुर्मलधियां रुचिरैर्विहारैः ॥१७॥

ता देवरान् उत सखीन् सिषिचुः दृतीभिः क्लिन्न अम्बरा विवृत गात्र कुच उरु मध्याः औत्सुक्य मुक्त कबराः च्यवमान माल्याः क्षोभं दधुः मलधियां रुचिरैः विहारैः ॥१७॥

ता	वे
क्लिन्न अम्बरा	भीगे वस्त्र होनेसे
विवृत गात्र	झलकते शरीर
कुच उरु मध्याः	स्तन, जंघा, कटि वाली
देवरान् उत	देवरों तथा
सखीन्	सखाओंको
दृतीभिः	पिचकारियोंसे
सिषिचुतुः	भिगाने लगीं
औत्सुक्य	उत्सुकताके कारण
मुक्त कबराः	(उनके) जूड़े खुल गये,
च्यवमान माल्याः	मालाएं गिरने लगीं
रुचिरै विहारैः	इस सुन्दर क्रीड़ासे
मलधियां	मलिन बुद्धि वालों में
क्षोभं दधुः	क्षोभ उत्पन्न करने लगीं ॥१७॥

स सम्राड् रथमारूढः सदश्वं रुक्ममालिनम् ।
व्यरोचत स्वपत्नीभिः क्रियाभिः क्रतुराडिव ॥१८॥

स सम्राट् रथं आरूढः सत् अश्वं रुक्ममालिनं व्यरोचत स्वपत्नीभिः क्रियाभिः क्रतुराट् इव ॥१८॥

स सम्राट्	वे सम्राट् युधिष्ठिर	**आरूढः**	चढ़े हुए
स्वपत्नीभिः	अपनी पत्नियोंके साथ	**क्रियाभिः**	क्रियाओंके साथ
रुक्ममालिनं	स्वर्णमाला धारी	**क्रतुराट् इव**	यज्ञपुरुषके समान
सत् अश्वं रथं	उत्तम घोड़ों वाले रथ पर	**व्यरोचत**	सुशोभित हुए ॥१८॥

पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते तमृत्विजः ।
आचान्तं स्नापयांचक्रुर्गङ्गायां सह कृष्णया ॥१९॥

पत्नी संयाज अवभृथ्यैः चरित्वा ते तं ऋत्विजः आचान्तं स्नापयान् चक्रुः गङ्गायां सह कृष्णया ॥१९॥

ते ऋत्विजः	उन ऋत्विजोंने	**आचान्तं**	आचमन कराके
तं पत्नी संयाज	उनसे पत्नी संयाज (नामक यज्ञ)	**सह कृष्णया**	द्रोपदीके साथ
अवभृथ्यैः	तथा अवभृथ	**गङ्गायां**	गंगामें
चरित्वा	सम्बन्धी कर्म कराके	**स्नापयान् चक्रुः**	स्नान कराया ॥१९॥

देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभिभिः समम् ।
मुमुचुः पुष्पवर्षाणि देवर्षिपितृमानवाः ॥२०॥

देव दुन्दुभयः नेदुः नर दुन्दुभिभिः समं मुमुचुः पुष्प वर्षाणि देव ऋषि पितृ मानवाः ॥२०॥

नेदुः नर दुन्दुभिः	(उस समय) मानव दुन्दुभियों	**देव ऋषि**	देवता, ऋषि
समं देव	देवताओंकी	**पितृ मानवाः**	पितर और मनुष्य
दुन्दुभयः	दुन्दुभियां बजाने लगीं	**पुष्प वर्षाणि**	पुष्पोंकी वर्षा
		मुमुचुः	करने लगे ॥२०॥

सस्नुस्तत्र ततः सर्वे वर्णाश्रमयुता नराः ।
महापातक्यपि यतः सद्यो मुच्येत किल्बिषात् ॥२१॥

सस्नुः तत्र ततः सर्वे वर्ण आश्रम युता नराः महापातकि अपि यतः सद्यः मुच्येत किल्बिषात् ॥२१॥

ततः सर्वे	फिर सब	**महापातकि**	महापाप करने वाला
वर्ण आश्रम	वर्ण और आश्रमों	**अपि**	भी
युता	वाले	**सद्यः**	तत्काल
नराः	मनुष्योंने	**मुच्येत**	पापोंसे
तत्र सस्नुः	वहाँ स्नान किया	**किल्बिषात्**	छूट जाता है ॥२१॥
यतः	क्योंकि (वहां स्नान करनेसे)		

अथ राजाहते क्षौमे परिधाय स्वलंकृतः ।
ऋत्विक्सदस्यविप्रादीनानर्चाभरणाम्बरैः ॥२२॥

अथ राजा अहते क्षौमे परिधाय सुअलंकृतः ऋत्विक् सदस्य विप्र आदीन् आनर्च आभरण अम्बरैः ॥२२॥

अथ राजा	फिर राजा युधिष्ठिरने	**परिधाय**	पहिन कर
अहते क्षौमे	दो बिना कटे-सिले रेशमी वस्त्र	**सुअलङ्कृतः**	उत्तम आभूषण धारण करके

ऋत्विक् सदस्य	ऋत्विक्, सदस्य,	**आनर्च**	सत्कार किया
विप्र आदीन्	ब्राह्मणादिका		॥२२॥
आभरण	आभूषण,		
अम्बरैः	वस्त्रोंसे		

बन्धुज्ञातिनृपान् मित्रसुहृदोऽन्यांश्च सर्वशः ।
अभीक्ष्णं पूजयामास नारायणपरो नृपः ॥२३॥

बन्धु ज्ञाति नृपान् मित्र सुहृदः अन्यान् च सर्वशः अभीक्ष्णं पूजयामास नारायणपरः नृपः ॥२३॥

नारायणपरः	नारायण परायण	**नृपान्**	राजाओं
नृपः अभीक्ष्णं	राजा युधिष्ठिरने (इस प्रकार) बराबर	**मित्र सुहृदः**	मित्र, बान्धवों
		च	तथा
		अन्यान् सर्वशः	दूसरे सभीका
बन्धु ज्ञाति	सम्बन्धी एवं जाति के	**पूजयामास**	सत्कार किया ॥२३॥

सर्वे जनाः सुररुचो मणिकुण्डलस्रग्-
गुष्णीषकञ्चुकदुकूलमहार्घ्यहाराः ।
नार्यश्च कुण्डलयुगालकवृन्दजुष्ट-
वक्त्रश्रियः कनकमेखलया विरेजुः ॥२४॥

सर्वे जनाः सुररुचः मणि कुण्डल स्रक् उष्णीष कञ्चुक दुकूल महार्घ्य हाराः नार्यः च कुण्डलयुग अलकवृन्द जुष्ट वक्त्र श्रियः कनक मेखलया विरेजुः ॥२४॥

सर्वे जनाः	(उस समय) सब लोग	**सुररुचः**	देवताओंके समान कान्तिमान

मणि	मणियोंके
कुण्डल स्रक्	कुण्डल, माला
उष्णीष कञ्चुक	पगड़ी, कुर्त्ता
दुकूल	दुपट्टा,
महार्घ्य हाराः	बहुमूल्य हार पहिने
च नार्यः	तथा स्त्रियां
कुण्डलयुग	युगल कुण्डलेंयुक्त
अलकवृन्द जुष्ट	अलकावली वाली
वक्त्र श्रियः	मुखकी शोभा तथा
कनक मेखलया	स्वर्ण काञ्चीसे
विरेजुः	शोभित हुई ॥२४॥

अथर्त्विजो महाशीलाः सदस्या ब्रह्मवादिनः ।
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा राजानो ये समागताः ॥२५॥

अथ ऋत्विजः महाशीलाः सदस्या ब्रह्मवादिनः ब्रह्म क्षत्रिय विट् शूद्रा राजानः ये समागताः ॥२५॥

अथ महाशीलाः	फिर महाशील
ऋत्विजः	ऋत्विक्गण
ब्रह्मवादिनः	वेदवादी
सदस्या	सदस्य
ब्रह्म क्षत्रिय	ब्राह्मण, क्षत्रिय
विट् शूद्रा	वैश्य, शूद्र,
राजानः	राज लोग
ये समागताः	जो सब ओरसे आये थे ॥२५॥

देवर्षिपितृभूतानि लोकपालाः सहानुगाः ।
पूजितास्तमनुज्ञाप्य स्वधामानि ययुर्नृप ॥२६॥

देव ऋषि पितृ भुतानि लोकपालाः सह अनुगाः पूजिताः तं अनुज्ञाप्य स्वधामानि ययुः नृप ॥२६॥

नृप	राजन् !
देव ऋषि पितृ भूतानि	देवता, ऋषि, पितर प्रमथ गण
सह अनुगाः	अनुचरोंके साथ
लोकपालाः	लोकपाल गण
पूजिताः	पूजित होकर
तं अनुज्ञाप्य	उन (धर्मराज)से अनुमति लेकर
स्वधामानि	अपने धाम
ययुः	चले गये ॥२६॥

हरिदासस्य राजर्षे राजसूयमहोदयम् ।
नैवातृप्यन् प्रशंसन्तः पिबन् मर्त्योऽमृतं यथा ॥२७॥

हरिदासस्य राजर्षे राजसूय महा उदयं न एव अतृप्यन् प्रशंसन्तः पिबन् मर्त्यः अमृतं यथा ॥२७॥

यथा मर्त्यः	जैसे मनुष्य	**राजसूय**	राजसूय यज्ञके
अमृतं पिबन्	अमृत पीते हुए (तृप्त नहीं होता)	**महा उदयं**	महोत्कर्षकी
		प्रशंसन्तः	प्रशंसा करते हुए
हरिदासस्य	श्रीहरिके भक्त	**अतृप्यन् न एव**	तृप्त नहीं ही होते थे ॥२७॥
राजर्षे	राजर्षि युधिष्ठिरके		

ततो युधिष्ठिरो राजा सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान् ।
प्रेम्णा निवासयामास कृष्णं च त्यागकातरः ॥२८॥

ततः युधिष्ठिरः राजा सुहृत् सम्बन्धि बान्धवान् प्रेम्णा निवासयामास कृष्णं च त्यागकातरः ॥२८॥

ततः राजा	उस समय राजा	**बान्धवान्**	बन्धुजनोंको
युधिष्ठिरः	युधिष्ठिरने	**च कृष्णं प्रेम्णा**	तथा श्रीकृष्णको प्रेम से
त्यागकातरः	छोड़ने में व्याकुल होकर	**निवासयामास**	टिकाये रखा ॥२८॥
सुहृत् सम्बंधि	मित्र, सम्बन्धी		

भगवानपि तत्राङ्ग न्यवात्सीत्तत्प्रियङ्करः ।
प्रस्थाप्य यदुवीरांश्च साम्बादींश्च कुलस्थलीम् ॥२९॥

भगवान् अपि तत्र अङ्ग न्यवात्सीत् तत् प्रियङ्करः प्रस्थाप्य यदुवीरान् च साम्ब आदीन् च कुशस्थलीम् ॥२९॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !	**यदुवीरान्**	यादव वीरोंको
तत् प्रियङ्करः	उनका प्रिय करने वाले	**कुशस्थलीं**	द्वारिका
		प्रस्थाप्य	भेजकर
भगवान् अपि	भगवान भी	**तत्र न्यवात्सीत्**	वहीं निवास करते रहे ॥२९॥
साम्ब आदीन्	साम्ब आदि		

इत्थं राजा धर्मसुतो मनोरथमहार्णवम् ।
सुदुस्तरं समुत्तीर्य कृष्णेनासीद् गतज्वरः ॥३०॥

इत्थं राजा धर्मसुतः मनोरथ महार्णवं सुदुस्तरं सम उत्तीर्य कृष्णेन आसीत् गतज्वरः ॥३०॥

इत्थं राजा	इस प्रकार राजा	**महार्णवं**	महासागरको
धर्मसुतः	धर्मपुत्र युधिष्ठिर	**सम उत्तीर्य**	भली प्रकार पार करके
कृष्णेन सुदुस्तरं	श्रीकृष्ण द्वारा अत्यन्त दुष्पार	**गतज्वरः**	संतापहीन
मनोरथ	मनोरथ रूपी	**आसीत्**	हो गये ॥३०॥

एकदान्तःपुरे तस्य वीक्ष्य दुर्योधनः श्रियम् ।
अतप्यद् राजसूयस्य महित्वं चाच्युतात्मनः ॥३१॥

एकदा अन्तःपुरे तस्य वीक्ष्य दुर्योधनः श्रियं अतप्यत् राजसूयस्य महित्वं च अच्युत आत्मनः ॥३१॥

एकदा	एक बार	**श्रियं च**	शोभा तथा
अच्युत आत्मनः	भगवानमें अर्पित चित्त	**राजसूयस्य**	राजसूय यज्ञकी
		महित्वं वीक्ष्य	महिमा देखकर
तस्य अन्तःपुरे	उन (युधिष्ठिर)के अन्तःपुरकी	**दुर्योधनः**	दुर्योधन
		अतप्यत्	संतप्त हुआ ॥३१॥

यस्मिन् नरेन्द्रदितिजेन्द्रसुरेन्द्रलक्ष्मी-
र्नाना विभान्ति किल विश्वसृजोपकॢप्ताः ।
ताभिः पतीन् द्रुपदराजसुतोपतस्थे
यस्यां विषक्तहृदयः कुरुराडतप्यत् ॥३२॥

यस्मिन् नरेन्द्र दितिजेन्द्र सुरेन्द्र लक्ष्मीः नाना विभान्ति किल विश्वसृज उपकॢप्ताः ताभिः पतीन् द्रुपदराजसुता उपतस्थे यस्यां विषक्तहृदयः कुरुराट् अतप्यत् ॥३२॥

यस्मिन्	जिस (अन्तःपुर)में	**उपतस्थे**	(पतियोंकी) सेवा करती थीं
किल विश्वसृज	अहो विश्वकर्माकी*	**यस्मिन्**	जिनमें
उपकॢप्ताः	उपस्थित हुई	**विषक्तहृदयः**	आसक्त चित्त
नरेन्द्र दितिजेन्द्र	नरेन्द्र, दैत्येन्द्र	**कुरुराट्**	कौरव राजा दुर्योधन
सुरेन्द्र लक्ष्मीः	सुरेन्द्रोंकी सम्पत्ति	**अतप्यत्**	सन्तप्त हुआ था ॥३२॥
नाना विभान्ति	अनेक रूपोंमें शोभित थी		
ताभिः	उनके द्वारा		
द्रुपदराजसुता	द्रुपदराज तनया		

यस्मिंस्तदा मधुपतेर्महिषीसहस्रं
श्रोणीभरेण शनकैः क्वणदंघ्रिशोभम् ।
मध्ये सुचारु कुचकुंकुमशोणहारं
श्रीमन्मुखं प्रचलकुण्डलकुन्तलाढ्यम् ॥३३॥

---

* 'विश्वसृज'का अर्थ कुछ टीकाकारोंने मयदानव किया है, किन्तु पाण्डव-राजधानी विश्वकर्माकी बनायी है (१०/५८/२४)

यस्मिन् तदा मधुपतेः महिषी सहस्रं श्रोणीभरेण शनकैः क्वणत् अंघ्रि शोभं मध्ये सुचारु कुच कुङ्कुम शोण हारं श्रीमत् मुखं प्रचल कुण्डल कुन्तल आढ्यम् ॥३३॥

यस्मिन् तदा	जिस (राज-भवन) में उस समय	**मध्ये**	मध्य (कण्ठ)में किये
श्रोणी भरेण	नितम्बके भारसे	**प्रचल कुण्डल**	हिलते कुण्डलों तथा
शनकैः	धीरे-धीरे	**कुन्तल आढ्यं**	सघन अलकावलीसे
क्वणत् अंघ्रि	झंकार करते चरणों की	**श्रीमत् मुखं**	शोभाशाली मुख-वाली
शोभं	शोभा वाली,	**मधुपतेः**	मधुपति श्रीकृष्णकी
कुच कुंकुम	स्तनों पर लगे कुंकुमसे	**महिषी सहस्रं**	सहस्रों रानियां थीं ॥३३॥
शोण हारं	अरुण हार		

सभायां मयकल्पितायां क्वापि धर्मसुतोऽधिराट् ।
वृतोऽनुजैर्बन्धुभिश्च कृष्णेनापि स्वचक्षुषा ॥३४॥

सभायां मय कल्पितायां क्वापि धर्मसुतः अधिराट् वृतः अनुजैः बन्धुभिः च कृष्णेन अपि स्वचक्षुषा ॥३४॥

क्वापि	कभी	**अनुजैः बन्धुभिः**	भाइयों, बन्धुगणों
मय कल्पितयां	मय दानवकी बनायी	**च स्वचक्षुषा**	तथा अपने नेत्र स्वरूप
सभायां	सभामें	**कृष्णेन**	श्रीकृष्णसे
अधिराट्	सम्राट्	**अपि वृतः**	भी घिरे हुए ॥३४॥
धर्मसुतः	धर्मपुत्र युधिष्ठिर		

आसीनः काञ्चने साक्षादासने मघवानिव ।
पारमेष्ठ्यश्रिया जुष्टः स्तूयमानश्च वन्दिभिः ॥३५॥

आसीनः काञ्चने साक्षात् आसने मघवान् इव पारमेष्ठ्य श्रिया जुष्टः स्तुयमानः च बन्दिभिः ॥३५॥

काञ्चने आसने	स्वर्ण सिंहासन पर	**च बन्दिभिः**	तथा बन्दियों द्वारा
साक्षात्	साक्षात्	**स्तूयमानः**	स्तुत होते
मघवान् इव	इन्द्रके समान	**आसीनः**	विराजमान थे
पारमेष्ठ्यः	चक्रवर्तित्वकी		॥३५॥
श्रिया जुष्टः	शोभासे सम्पन्न		

तत्र दुर्योधनो मानी परीतो भ्रातृभिर्नृप ।
किरीटमाली न्यविशदसिहस्तः क्षिपन् रुषा ॥३६॥

तत्र दुर्योधनः मानी परीतः भ्रातृभिः नृप किरीट माली न्यविशत् असिहस्तः क्षिपन् रुषा ॥३६॥

नृप	राजन् !	**असिहस्तः**	हाथमें तलवार लिया
तत्र मानी	वहाँ अभिमानी	**रुषा क्षिपन्**	क्रोधसे (द्वारपालों) को झिड़कता
दुर्योधनः	दुर्योधन	**न्यविशत्**	प्रविष्ट हुआ ॥३६॥
भ्रातृभिः परीतः	भाइयोंसे घिरा		
किरीट माली	मुकुट, मालाधारी		

स्थलेऽभ्यगृह्णात् वस्त्रान्तं जलं मत्वा स्थलेऽपतत् ।
जले च स्थलवद् भ्रान्त्या मयमायाविमोहितः ॥३७॥

स्थले अभ्य गृह्णात् वस्त्र अन्तं जलं मत्वा स्थले अपतत् जले च स्थलवत् भ्रान्त्या मय माया विमोहितः ॥३७॥

मय माया	मय दानवकी माया से	**विमोहितः**	मोहित होकर

स्थले जलं	स्थलमें जल
मत्वा	मानकर
वस्त्र अन्तं	वस्त्रका छोर
अभ्य गृह्णात्	ऊपर उठा लिया,
जले च	जलमें
स्थलवत्	स्थलके समान
भ्रान्त्या	भ्रमसे
स्थले अपतत्	उस स्थान पर गिर पड़ा ॥३७॥

जहास भीमस्तं दृष्ट्वा स्त्रियो नृपतयोऽपरे ।
निवार्यमाणा अप्यङ्गराज्ञा कृष्णानुमोदिताः ॥३८॥

जहास भीमः तं दृष्ट्वा स्त्रियः नृपतयः अपरे निवार्यमाणा अपि अङ्ग राज्ञा कृष्ण अनुमोदिताः ॥३८॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !
तं दृष्ट्वा	उसे देखकर
भीमः स्त्रियः	भीमसेन, स्त्रियां
अपरे नृपतयः	दूसरे राजा
राज्ञा	राजा युधिष्ठिरके
निवार्यमाणा	बहुत रोकने पर
अपि	भी
कृष्ण	श्रीकृष्ण द्वारा
अनुमोदिताः	समर्थन पाकर
जहास	हँसने लगे ॥३८॥

सव्रीडितोऽवाग्वदनो रुषा ज्वलन्
निष्क्रम्य तूष्णीं प्रययौ गजाह्वयम् ।
हाहेति शब्दः सुमहानभूत् सता-
मजातशत्रुर्विमना इवाभवत् ।
बभूव तूष्णीं भगवान् भुवो भरं
समुज्जिहीर्षुर्भ्रमति स्म यद्दृशा ॥३९॥

सव्रीडितः अवाक् वदनः रुषा ज्वलन् निष्क्रम्य तूष्णीं प्रययौ गज आह्वयं हा हा इति शब्दः सुमहान् अभूत् सतां अजातशत्रुः विमना इव अभवत् बभूव तूष्णीं भगवान् भुवः भरं सम उज्जिहीर्षुः भ्रमति स्म यत् दृशा ॥३९॥

सव्रीडितः	वह लज्जित होकर
अवाक् वदनः	सिर झुकाये,
रुषा ज्वलन्	क्रोधसे जलता हुआ
तूष्णीं निष्क्रम्य	(वहांसे) चुपचाप निकल कर
गज आह्वयं	हस्तिनापुर
प्रययौ	चला गया,
सतां हा हा इति	(उस समय) सज्जनों में 'हाय हाय' ऐसा
सुमहान्	बहुत बड़ा
शब्दः अभूत्	शब्द होने लगा
अजातशत्रुः	युधिष्ठिर
विमना इव	उदास जैसे
अभवत्	हो गये, पर
यत् दृशा	जिनकी दृष्टिसे
भ्रमति स्म	(दुर्योधन) भ्रमति हुआ था वे
भुवः भरं	पृथ्वीका भार
सम	पूर्णतः
उज्जिहीर्षुः	उतारनेकी इच्छा वाले
भगवान्	भगवान
तूष्णीं बभूव	चुप हो गये ॥३९॥

एतत्तेऽभिहितं राजन् यत् पृष्टोऽहमिह त्वया ।
सुयोधनस्य दौरात्म्यं राजसूये महाक्रतौ ॥४०॥

एतत् ते अभिहितं राजन् यत् पृष्टः अहं इह त्वया सुयोधनस्य दौरात्म्यं राजसूये महाक्रतौ ॥४०॥

राजन्	राजन् !
यत् त्वया	जो तुम्हारे द्वारा
इह अहं पृष्टः	इस विषयमें मुझसे पूछा गया था
एतत्	वह यह
महाक्रतौ	महायज्ञ
राजसूये	राजसूयमें

सुयोधनस्य दुर्योधनकी | **अभिहितं** सुना दी ॥४०॥
दौरात्म्यं ते दुष्टता तुम्हें

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां **संहितायां दशमस्कन्धे** उत्तरार्धे दुर्योधनमानभंगो नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

अथान्यदपि कृष्णस्य शृणु कर्माद्भुतं नृप ।
क्रीडानरशरीरस्य यथा सौभपतिर्हतः ॥ १ ॥

अथ अन्यत् अपि कृष्णस्य शृणु कर्म अद्भुतं नृप क्रीडानर शरीरस्य यथा सौभपतिः हतः ॥१॥

नृप	राजन् !	**अद्भुतं कर्म**	अद्भुत कर्म
क्रीडानर	लीलासे मनुष्य	**यथा सौभपतिः**	जैसे सौभ विमानके स्वामी
शरीरस्य	शरीरधारी		
कृष्णस्य	श्रीकृष्णका	**हतः शृणु**	(शाल्व)को मारा सुनो ॥१॥
अथ	अब		
अन्यत् अपि	दूसरा भी		

शिशुपालसखः शाल्वो रुक्मिण्युद्वाह आगतः ।
यदुभिर्निर्जितः संख्ये जरासंधादयस्तथा ॥ २ ॥

शिशुपालसखः शाल्वः रुक्मिणि उद्वाह आगतः यदुभिः निर्जितः संख्ये जरासन्ध आदयः तथा ॥२॥

शिशुपालसखः	शिशुपालका मित्र	**आगतः**	आने पर
शाल्वः तथा	शाल्व और	**संख्ये यदुभिः**	युद्धमें यादवों द्वारा
जरासन्ध	जरासन्ध	**निर्जितः**	जीत लिए गये ॥२॥
आदयः	आदि		
रुक्मिणि उद्वाह	रुक्मिणीके विवाह में		

शाल्वः प्रतिज्ञामकरोत् शृण्वतां सर्वभूभुजाम् ।
अयादवीं क्ष्मां करिष्ये पौरुषं मम पश्यत ॥ ३ ॥

शाल्वः प्रतिज्ञां अकरोत् शृण्वतां सर्व भूभुजां अयादवीं क्ष्मां करिष्ये पौरुषं मम पश्यत ॥३॥

सर्व भूभुजां	सब राजाओंके	**क्ष्मां अयादवीं**	पृथ्वीको यादव हीना
शृण्वतां शाल्वः	सुनाते हुए शाल्वने	**करिष्ये**	कर दूंगा' ॥३॥
प्रतिज्ञां अकरोत्	प्रतिज्ञा की		
मम पौरुषं	'मेरा पुरुषार्थ		
पश्यत	देखना		

इति मूढः प्रतिज्ञाय देवं पशुपतिं प्रभुम् ।
आराधयामास नृप पांसुमुष्टिं सकृद् ग्रसन् ॥ ४ ॥

इति मूढः प्रतिज्ञाय देवं पशुपतिं प्रभुं आराधयामास नृप पांसु मुष्टिं सकृत् ग्रसन् ॥४॥

नृप	राजन् !	**प्रभुं पशुपतिं**	भगवान पशुपतिकी
इति प्रतिज्ञाय	इस प्रकार प्रतिज्ञा करके	**आराधयामास**	आराधना करने लगा ॥४॥
मूढः सकृत्	वह मूर्ख एक बार		
पांसु मुष्टिं	एक मुट्ठी भस्म		
ग्रसन्	खाकर		

संवत्सरान्ते भगवानाशुतोष उमापतिः ।
वरेणच्छन्दयामास शाल्वं शरणमागतम् ॥ ५ ॥

संवत्सर अन्ते भगवान् आशुतोष उमापतिः वरेण छन्दयामास शाल्वं शरणं आगतम् ॥५॥

संवत्सर अन्ते एक वर्ष बीत जाने पर
आशुतोष शीघ्र सन्तुष्ट होने वाले
भगवान् भगवान
उमापतिः उमापतिने
शरण आगतं शरणमें आये
शाल्वं वरेण शाल्वसे वरदान
छन्दयामास मांगनेको कहा ॥५॥

देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
अभेद्यं कामगं वव्रे स यानं वृष्णिभीषणम् ॥ ६ ॥

देव असुर मनुष्याणां गन्धर्व उरग रक्षसां अभेद्यं कामगं वव्रे स यानं वृष्णिभीषणम् ॥६॥

स वृष्णिभीषणं उसने यादवोंको भयभीत करने वाला
देव असुर देवता, असुर
मनुष्याणां मनुष्यों
गन्धर्व उरग गन्धर्व, नाग तथा
रक्षसां अभेद्यं राक्षसोंके लिए अभेद्य
कामगं इच्छानुसार
यानं वव्रे चलने वाला विमान मांगा ॥६॥

तथेति गिरिशादिष्टो मयः परपुरञ्जयः ।
पुरं निर्माय शाल्वाय प्रादात्सौभमयस्मयम् ॥ ७ ॥

तथा इति गिरिश आदिष्टः मयः परपुरञ्जयः पुरं निर्माय शाल्वाय प्रादात् सौभं अयस् मयम् ॥७॥

तथा इति 'तथास्तु' (कहकर)
गिरिश भगवान शिवके
आदिष्टः आदेश देनेसे
परपुरञ्जयः शत्रु नगरोंको जीतने वाले
मयः मय दानवने
अयस् मयं सौभं लौह मय सौभ नामक

पुरं निर्माय	(उड़ता) नगर बनाकर	**शाल्वाय प्रदात्**	शाल्वको दिया ॥७॥

स लब्ध्वा कामगं यानं तमोधाम दुरासदम् ।
ययौ द्वारवतीं शाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन् ॥ ८ ॥

स लब्ध्वा कामगं यानं तमः धाम दुरासदं ययौ द्वारवतीं शाल्वः वैरं वृष्णिकृतं स्मरन् ॥८॥

कामगं	इच्छाधारी	**वृष्णिकृतं वैरं**	यादवोंसे की गयी शत्रुताको
तमः धाम	अन्धकारमय	**स्मरन्**	स्मरण करके
दुरासदं यानं	अभेद्य विमानको	**द्वारवतीं ययौ**	द्वारिका पहुँचा ॥८॥
लब्ध्वा	पाकर		
स शाल्वः	वह शाल्व		

निरुद्धय सेनया शाल्वो महत्या भरतर्षभ ।
पुरीं बभञ्जोपवनान्युद्यानानि च सर्वशः ॥ ९ ॥

निरुद्धय सेनया शाल्वः महत्या भरतर्षभ पुरीं बभञ्ज उपवनानि उद्यानानि च सर्वशः ॥९॥

भरतर्षभ	भरतश्रेष्ठ परीक्षित् !	**उपवनानि च सर्वशः**	उपवनों तथा सब
महत्या सेनया	बहुत बड़ी सेनासे	**उद्यानानि**	पुष्पोद्यानोंको
शाल्वः	शाल्वने	**बभञ्ज**	तोड़ने लगा ॥९॥
पुरीं निरुद्धय	द्वारिकापुरीको घेर कर		

सगोपुराणि द्वाराणि प्रासादाट्टालतोलिकाः ।
विहारान् स विमानाग्र्यान्निपेतुः शस्त्रवृष्टयः ॥१०॥

स गोपुराणि द्वाराणि प्रासाद अट्टाल तोलिकाः विहारान् स विमान अग्रचात् निपेतुः शस्त्रवृष्टयः ॥१०॥

स गोपुराणि	गोपुरोंके साथ	**तोलिकाः**	मुंडेलियों पर
द्वाराणि	द्वारों	**विमान अग्रचात्**	विमानके अगले भागसे
स विहारान्	घूमनेके स्थानों सहित	**शस्त्रः-**	शस्त्रोंकी
प्रासाद अट्टाल	भवनोंकी अटारियों एवं	**वृष्टयः निपेतुः**	वर्षा होने लगी ॥१०॥

शिला द्रुमाश्चाशनयः सर्पा आसारशर्कराः ।
प्रचण्डश्चक्रवातोऽभूद् रजसाऽऽच्छादिता दिशः ॥११॥

शिला द्रुमाः च अशनयः सर्पा आसार शर्कराः प्रचण्डः चक्रवातः अभूत् रजसा आच्छादितः दिशा ॥११॥

शिला द्रुमाः च	चट्टानें, वृक्ष तथा	**चक्रवातः**	बवण्डर
अशनयः	वज्र, सर्प	**अभूत्**	उठा (जिससे)
आसार शर्कराः	ओलोंकी वर्षा होने लगी	**दिशः रजसा**	दिशाएँ धूलिसे
प्रचण्डः	प्रचण्ड	**आच्छादिता**	ढक गयीं ॥११॥

इत्यर्द्यमाना सौभेन कृष्णस्य नगरी भृशम् ।
नाभ्यपद्यत शं राजंस्त्रिपुरेण यथा मही ॥१२॥

इति अर्द्यमाना सौभेन कृष्णस्य नगरी भृशं न अभ्यपद्यत शं राजन् त्रिपुरेण यथा मही ॥१२॥

राजन्	राजन् !	**इति सौभेन**	इस प्रकार सौभ द्वारा
यथा	जैसे (पहिले)		
त्रिपुरेण मही	त्रिपुरों द्वारा पृथ्वी (पीड़ित हुई थी)		

भृशं अर्द्यमाना बार-बार रौंदी जाती
कृष्णस्य नगरी श्रीकृष्णकी पुरी
शं न अभ्यपद्यत शान्ति नहीं पा सकी ॥१२॥

प्रद्युम्नो भगवान् वीक्ष्य बाध्यमाना निजाः प्रजाः ।
मा भैष्टेत्यभ्यधाद् वीरो रथारूढो महायशाः ॥१३॥

प्रद्युम्नः भगवान् वीक्ष्य बाध्यमानाः निजाः प्रजाः मा भैष्ट इति अभ्यधात् वीरः रथारूढः महायशाः ॥१३॥

निजाः प्रजाः अपनी प्रजाको
बाध्यमानाः उत्पीड़िता
वीक्ष्य देखकर
महायशाः वीरः महान् यशस्वी वीर
भगवान् भगवान
प्रद्युम्नः प्रद्युम्न
मा भैष्ट इति 'मत डरो' इस प्रकार
अभ्यधात् बोलकर
रथारूढः रथ पर चढ़े ॥१३॥

सात्यकिश्चारुदेष्णश्च साम्बोऽक्रूरः सहानुजः ।
हार्दिक्यो भानुविन्दश्च गदश्च शुकसारणौ ॥१४॥

सात्यकिः चारुदेष्णः च साम्बः अक्रूरः सह अनुजः हार्दिक्यः भानुविन्दः च गदः च शुक सारणौ ॥१४॥

सात्यकिः च सात्यकि और
चारुदेष्णः चारुदेष्ण
साम्बः साम्ब तथा
सह अनुजः भाईके साथ
अक्रूरः अक्रूर,
हार्दिक्यः हार्दिक्य
भानुविन्दः च भानुविन्द तथा
गदः गद
शुक च सारणौ शुक एवं सारण ॥१४॥

अपरे च महेष्वासा रथयूथपयूथपाः ।
निर्ययुर्दंशिता गुप्ता रथेभाश्वपदातिभिः ॥१५॥

अपरे च महा इषु आसा रथ यूथप यूथपाः निर्ययुः दंशिता गुप्ता रथ इभ अश्व पदातिभिः ॥१५॥

अपरे च	दूसरे भी	**पदातिभिः**	तथा पैदलोंसे
महा इषु आसा	महा धनुर्धर	**गुप्ता**	रक्षित होकर
रथ यूथपाः	रथी सेनानायकोंके	**दंशिता निर्ययुः**	कवच पहिनकर निकले ॥१५॥
यूथप	यूथपति		
रथ इभ अश्व	रथ, हाथी, घोड़ों		

ततः प्रववृते युद्धं शाल्वानां यदुभिः सह ।
यथासुराणां विबुधैस्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥१६॥

ततः प्रववृते युद्धं शाल्वानां यदुभिः सह यथा असुराणां विबुधैः तुमुलं लोमहर्षणम् ॥१६॥

यथा असुराणां	जैसे असुरोंका	**यदुभिः सह**	यादवोंके साथ
विबुधैः	देवताओंके साथ (युद्ध हुआ था)	**तुमुलं**	तुमुल
		लोमहर्षणं	रोमहर्षक
ततः शाल्वानां	उस समय शाल्वके सैनिकोंका	**युद्धं प्रववृते**	युद्ध होने लगा ॥१६॥

ताश्च सौभपतेर्माया दिव्यास्त्रै रुक्मिणीसुतः ।
क्षणेन नाशयामास नैशं तम इवोष्णगुः ॥१७॥

ताः च सौभपतेः माया दिव्यास्त्रैः रुक्मिणीसुतः क्षणेन नाशयामास नैशं तमः इव उष्णगुः ॥१७॥

सौभपतेः	सौभके स्वामी (शाल्व)की
ताः माया च	उस माया (बवण्डर वर्षादि)को भी
रुक्मिणीसुतः	रुक्मिणी-नन्दन प्रद्युम्नने
दिव्यास्त्रैः	दिव्यास्त्रोंसे
क्षणेन	क्षण भरमें
नैशं तमः	रात्रिके अन्धकारको
उष्णगुः इव	सूर्यके समान
नाशयामास	नष्ट कर दिया ॥१७॥

विव्याध पञ्चविंशत्या स्वर्णपुङ्खैरयोमुखैः ।
शाल्वस्य ध्वजिनीपालं शरैः संनतपर्वभिः ॥१८॥

विव्याध पञ्चविंशत्या स्वर्णपुङ्खैः अयः मुखैः शाल्वस्य ध्वजिनीपालं शरैः सन्नत पर्वभिः ॥१८॥

पञ्चविंशत्या	पच्चीस
स्वर्णपुङ्खैः	सोनेके पंखवाले
अयः मुखैः	लोहेकी नोक वाले
सन्नत पर्वभिः	झुकी गांठों वाले
शरैः	बाणोंसे
शाल्वस्य	शाल्वके
ध्वजिनीपालं	सेनापतिको
विव्याध	बेधा ॥१८॥

शतेनाताडयच्छाल्वमेकैकेनास्य सैनिकान् ।
दशभिर्दशभिर्नेतॄन् वाहनानि त्रिभिस्त्रिभिः ॥१९॥

शतेन अताडयत् शाल्वं एक एकेन अस्य सैनिकान् दशभिः दशभिः नेतॄन् वाहनानि त्रिभिः त्रिभिः ॥१९॥

शतेन शाल्वं	सौ (बाणों)से शाल्व को
एक एकेन	एक एकसे
अस्य सैनिकान्	इसके सैनिकोंको
दशभिः दशभिः	दस दससे
नेतॄन्	सेनानायकोंको
त्रिभिः त्रिभिः	तीन तीन (बाणों) से
वाहनानि	वाहनोंको
अताडयत्	मारा ॥१९॥

तदद्भुतं महत् कर्म प्रद्युम्नस्य महात्मनः ।
दृष्ट्वा तं पूजयामासुः सर्वे स्वपरसैनिकाः ॥२०॥

तत् अद्भुतं महत् कर्म प्रद्युम्नस्य महात्मनः दृष्ट्वा तं पूजयामासुः सर्वे स्व पर सैनिकाः ॥२०॥

महात्मनः	महात्मा	**सर्वे स्व पर**	सब अपने-पराये
प्रद्युम्नस्य	प्रद्युम्नका	**सैनिकाः तं**	सैनिकोंने उनकी
तत् महत्	वह महान्	**पूजयामासुः**	प्रशंसा करने लगे
अद्भुतं	अद्भुत		॥२०॥
कर्म दृष्ट्वा	कर्म देखकर		

बहुरूपैकरूपं तद् दृश्यते न च दृश्यते ।
मायामयं मयकृतं दुर्विभाव्यं परैरभूत् ॥२१॥

बहुरूप एक रूपं तत् दृश्यते न च दृश्यते मायामयं मयकृतं दुर्विभाव्यं परैः अभूत् ॥२१॥

तत् मयकृतं	वह मय दानव निर्मित	**न च दृश्यते**	कभी नहीं भी दीखता था (अतः)
मायामयं	मायामय (विमान)	**परैः दुर्विभाव्यं**	शत्रुके लिए उसकी स्थिति जानना कठिन
बहुरूप	कभी अनेक रूप		
एक रूपं	कभी एक रूप		
दृश्यते	कभी दीखता था,	**अभूत्**	हो गयी थी ॥२१॥

क्वचिद् भूमौ क्वचिद् व्योम्नि गिरिमूर्ध्नि जले क्वचित् ।
अलातचक्रवद् भ्राम्यत् सौभं तद् दुरवस्थितम् ॥२२॥

क्वचित् भूमौ क्वचित् व्योम्नि गिरिमूर्ध्नि जले क्वचित् अलात् चक्रवत् भ्राम्यत् सौभं तत् दुः अवस्थितम् ॥२२॥

क्वचित् भूमौ	कभी पृथ्वी पर	**अलात् चक्रवत्**	अलात चक्रके समान
क्वचित्	कभी	**भ्राम्यत्**	घूमता था
व्योम्नि	आकाशमें	**तत्**	उसका
क्वचित्	कभी	**दुः अवस्थितं**	ठहरना कठिन था ॥२२॥
गिरिमूर्ध्नि	पर्वतके ऊपर या		
जले	जलमें		

यत्र यत्रोपलक्ष्येत ससौभः सहसैनिकः ।
शाल्वस्ततस्ततोऽमुञ्चन् शरान् सात्वतयूथपाः ॥२३॥

यत्र यत्र उपलक्ष्येत ससौभः सहसैनिकः शाल्वः ततः ततः अमुञ्चन् शरान् सात्वत यूथपाः ॥२३॥

ससौभः	सौभ विमानके साथ एवं	**उपलक्ष्येते**	दीखता था
सहसैनिकः	सैनिकोंके साथ	**सात्वत यूथपाः**	यादव सेनानायक
शाल्वः यत्र यत्र	शाल्व जहाँ जहाँ	**ततः ततः शरान्**	वहीं वहीं बाण
		अमुञ्चन्	मारते थे ॥२३॥

शरैरग्न्यर्कसंस्पर्शैराशीविषदुरासदैः ।
पीड्यमानपुरानीकः शाल्वोऽमुह्यत् परेरितैः ॥२४॥

शरैः अग्नि अर्क संस्पर्शैः आशीविष दुरासदैः पीड्यमानः पुर अनीकः शाल्वः मुह्यत् पर ईरितैः ॥२४॥

पर ईरितैः	शत्रुओं द्वारा छोड़े गये	**आशीविष**	सर्प विषके समान
अग्नि अर्क	अग्नि और सूर्यके	**दुरासदैः**	असह्य
संस्पर्शैः	समान उष्ण-स्पर्श वाले	**शरैः**	बाणोंसे
		पीड्यमानः	पीडित होकर

पुर अनीकः विमान और सेना सहित
शाल्वः मुह्यत् शाल्व मूर्छित हो गया ॥२४॥

शाल्वानीकपशस्त्रौर्घवृष्णिवीरा भृशार्दिताः ।
न तत्यजू रणं स्वं स्वं लोकद्वयजिगीषवः ॥२५॥

शाल्व अनीकप शस्त्र औधैः वृष्णि वीरा भृश अर्दिताः न तत्यजू रणं स्वं स्वं लोकद्वय जिगीषवः ॥२५॥

लोक द्वय दोनों लोकों (इह लोक और परलोक)को
जिगीषवः जीतनेकी इच्छा वाले
वृष्णि वीरा यादव वीरोंने
शाल्व अनीकप शाल्वके सेनापतियों की
अस्त्र ओधैः अस्त्र वर्षासे
भृश आर्दिताः बार-बार रौंदे जाने पर भी
स्वं स्वं रणं अपना-अपना युद्ध-मोर्चा
न तत्यजू नहीं छोड़ा ॥२५॥

शाल्वामात्यो द्युमान् नाम प्रद्युम्नं प्राक् प्रपीडितः ।
आसाद्य गदया मौर्व्या व्याहत्य व्यनदद् बली ॥२६॥

शाल्व अमात्यः द्युमान् नाम प्रद्युम्नं प्राक् प्रपीडितः आसाद्य गदया मौर्व्या व्याहत्य व्यनदत् बली ॥२६॥

प्राक् प्रपीडितः पहिले (प्रद्युम्न द्वारा) बहुत पीड़ित
द्युमान् द्युमान्
नाम बली नामक बलवान
शाल्व अमात्यः शाल्वके मन्त्रीने
प्रद्युम्नं आसाद्य प्रद्युम्नके पास पहुँचकर
मौर्व्या गदया वज्र लोहेसे बनी गदासे
व्याहत्य मारकर
व्यनदत् गर्जना की ॥२६॥

प्रद्युम्नं गदया शीर्णवक्षःस्थलमरिन्दमम् ।
अपोवाह रणात् सूतो धर्मविद् दारुकात्मजः ॥२७॥

प्रद्युम्नं गदया शीर्ण वक्षःस्थलं अरिन्दमं अपोवाह रणात् सूतः धर्मवित् दारुक आत्मजः ॥२७॥

गदया शीर्ण	गदा (लगनेसे) फट गये	**धर्मवित्**	धर्मज्ञ
		दारुक आत्मजः	दारुकके पुत्र
वक्षःस्थलं	वक्ष स्थल वाले	**सूतः रणात्**	सारथी युद्धसे
अरिन्दमं	शत्रुदमन-कर्ता	**अपोवाह**	पृथक ले गया ॥२७॥
प्रद्युम्नं	प्रद्युम्नको		

लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन कार्ष्णिः सारथिमब्रवीत् ।
अहो असाध्विदं सूत यद् रणान्मेऽपसर्पणम् ॥२८॥

लब्धसंज्ञः मुहूर्तेन कार्ष्णिः सारथिं अब्रवीत् अहो असाधु इदं सूतः यत् रणात् मे अपसर्पणम् ॥२८॥

मुहूर्तेन	एक मुहूर्त बीतने पर	**सारथिं अब्रवीत्**	सारथिसे बोले—
		अहो सूत इदं	'हे सूत ! यह
लब्धसंज्ञः	चेतना प्राप्त होने पर	**असाधु यत्**	बुरा हुआ जो
		मे रणात्	मेंरा युद्धसे
कार्ष्णिः	श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न	**अपसर्पणं**	हटना हुआ ॥२८॥

न यदूनां कुले जातः श्रूयते रणविच्युतः ।
विना मत् क्लीबचित्तेन सूतेन प्राप्तकिल्बिषात् ॥२९॥

न यदूनां कुले जातः श्रूयते रण विच्युतः विना मत् क्लीब चित्तेन सूतेन प्राप्त किल्बिषात् ॥२९॥

क्लीब चित्तेन	कायर स्वभावके	जातः	उत्पन्न हुए का
सूतेन प्राप्त	सारथि द्वारा मिले	रण विच्युतः	युद्धसे हट जाना
किल्बिषात्	इस कलंक वाले	न श्रुयते	नहीं सुना जाता
मत् विना	मेरे अतिरिक्त		॥२९॥*
यदूनां कुले	यदुकुलमें		

किं नु वक्ष्येऽभिसङ्गम्य पितरौ रामकेशवौ ।
युद्धात् सम्यगपक्रान्तः पृष्टस्तत्रात्मनः क्षमम् ॥३०॥

किं नु वक्ष्ये अभिसङ्गम्य पितरौ रामकेशवौ युद्धात् सम्यक् अपक्रान्तः पृष्टः तत्र आत्मनः क्षमम् ॥३०॥

नु पितरौ	भला पिता	पृष्टः तत्र	(उनके) पूछने पर
रामकेशवौ	बलराम और श्रीकृष्णके	आत्मनः क्षमं	वहाँ अपने योग्य
अभिसङ्गम्य	समीप आने पर	किं वक्ष्ये	क्या कहूँगा ॥३०॥
युद्धात् सम्यक्	युद्धसे ठीक-ठीक		
अपक्रान्तः	भाग निकला (मैं)		

व्यक्तं मे कथयिष्यन्ति हसन्त्यो भ्रातृजामयः ।
क्लैब्यं कथं कथं वीर तवान्यैः कथ्यतां मृधे ॥३१॥

व्यक्तं मे कथयिष्यन्ति हसन्त्यः भ्रातृजामयः क्लैब्यं कथं कथं वीर तव अन्यैः कथ्यतां मृधे ॥३१॥

---

*यह प्रद्युम्नका शौर्य है, अन्यथा इनके पिताश्री ही रणछोड़ राय प्रसिद्ध हैं ।

व्यक्तं	स्पष्ट है कि	**मृधे अन्यैः**	युद्धमें दूसरोंने
भ्रातृजामयः	भौजाइयाँ	**तव कथं कथं**	तुमको कैसे कैसे
हसन्त्यः मे	हँसती हुई मुझसे	**क्लैब्यं**	कायर (कर दिया)
कथयिष्यन्ति	कहेंगी—		॥३१॥
वीर कथ्यतां	'वीर ! बतलाओ		

॥ सारथिरुवाच ॥

धर्मं विजानताऽऽयुष्मन् कृतमेतन्मया विभो ।
सूतः कृच्छ्रगतं रक्षेद् रथिनं सारथिं रथी ॥३२॥

धर्मं विजानता आयुष्मन् कृतं एतत् मया विभो सूतः कृच्छ्रगतं रक्षेत् रथिनं सारथिं रथी ॥३२॥

विभो आयुष्मन्	प्रभो ! आयुष्मन् !	**धर्मं विजानता**	यह धर्म जानते हुए
कृच्छ्रगतं	सङ्कटमें पड़े	**एतत् मया कृतं**	यह (कार्य) मैंने किया है ॥३२॥
रथिनं सूतः	रथीकी सारथि एवं		
सारथिं	सारथिकी		
रथी रक्षेत्	रथी रक्षा करे		

एतद् विदित्वा तु भवान् मयापोवाहितो रणात् ।
उपसृष्टः परेणेति मूर्च्छितो गदया हतः ॥३३॥

एतत् विदित्वा तु भवान् मया अपोवाहितः रणात् उपसृष्टः परेण इति मूर्च्छितः गदया हतः ॥३३॥

परेण उपसृष्टः	शत्रु द्वारा निकटसे फेंकी गयी	**गदया हतः**	गदासे मारे जाकर

मूर्च्छितः इति	मूर्छित हो गये हैं ऐसा	**मया भवान्**	मेरे द्वारा आप
एतत्	यह	**रणात्**	युद्धसे
विदित्वा तु	जानकर ही	**अपोवाहितः**	पृथक हटाये गये ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे शाल्वयुद्धे **षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥**

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

स तूपस्पृश्य सलिलं दंशितो धृतकार्मुकः ।
नय मां द्युमतः पार्श्वं वीरस्येत्याह सारथिम् ॥ १ ॥

स तु उपस्पृश्य सलिलं दंशितः धृत कार्मुकः नय मां द्युमतः पार्श्वं वीरस्य इति आह सारथिम् ॥१॥

स सलिलं	उन्होंने जलसे
उपस्पृश्य	आचमन करके
दंशितः	कवच धारण करके
धृत कार्मुकः	धनुष लेकर
मां वीरस्य	'मुझे वीर
द्युमतः पार्श्वं	द्युमान्के समीप
नय इति	ले चलो' इस प्रकार
सारथि आह	सारथीसे कहा ॥१॥

विधमन्तं स्वसैन्यानि द्युमन्तं रुक्मिणीसुतः ।
प्रतिहत्य प्रत्यविध्यन्नाराचैरष्टभिः स्मयन् ॥ २ ॥

विधमन्तं स्वसैन्यानि द्युमन्तं रुक्मिणीसुतः प्रतिहत्य प्रत्यविध्यत् नाराचैः अष्टभिः स्मयन् ॥२॥

स्वसैन्यानि	अपनी सेनाका
विधमन्तं	संहार करते हुए
द्युमन्तं	द्युमान्को
रुक्मिणीसुतः	रुक्मिणी पुत्र प्रद्युम्न ने
स्मयन्	मुस्कराते हुए
अष्टभिः नाराचैः	आठ बाणोंसे
प्रतिहत्य	मारकर
प्रत्यविध्यत्	बींध दिया ॥२॥

चतुर्भिश्चतुरो वाहान् सूतमेकेन चाहनत् ।
द्वाभ्यां धनुश्च केतुं च शरेणान्येन वै शिरः ॥ ३ ॥

चतुःभिः चतुरः वाहान् सूतं एकेन च अहनत् द्वाभ्यां धनुः च केतुं च शरेण अन्येन वै शिरः ॥३॥

चतुःभिः	चार (बाणों)से	**द्वाभ्यां धनुः**	दोसे धनुष
चतुरः वाहान्	चारों वाहनों (घोड़ों)को	**च केतुं च**	तथा ध्वजाको भी
च एकेन सूतं	तथा एकसे सारथि को	**वै अन्येन शिरः**	तथा एक दूसरेसे सिरको भी
		अहनत्	काट दिया ॥३॥

गदसात्यकिसाम्बाद्या जघ्नुः सौभपतेर्बलम् ।
पेतुः समुद्रे सौभेयाः सर्वे संछिन्नकन्धराः ॥ ४ ॥

गद सात्यकि साम्ब आद्या जघ्नुः सौभपतेः बलं पेतुः समुद्रे सौभेयाः सर्वे संछिन्न कन्धराः ॥४॥

गद सात्यकि	गद, सात्यकि	**सर्वे सौभेयाः**	सब सौभमें स्थित सैनिक
साम्ब आद्याः	साम्ब आदिने		
सौभपतेः	सौभके स्वामी शाल्व को	**समुद्रे पेतुः**	समुद्रमें गिर पड़े ॥४॥
बलं जघ्नुः	सेनाको मारा		
संछिन्न-	सिर		
कन्धराः	कट जानेसे		

एवं यदूनां शाल्वानां निघ्नतामितरेतरम् ।
युद्धं त्रिणवरात्रं तदभूत्तुमुलमुल्बणम् ॥ ५ ॥

एवं यदूनां शाल्वानां निघ्नतां इतर इतरं युद्धं त्रिणव रात्रं तत् अभूत तुमुलं उल्बणम् ॥५॥

एवं यदूनां	इस प्रकार यदु-वंशियोंका	**त्रिणव रात्रं**	तीन नव (सत्ताइस) दिन-रात
शाल्वानां	और शाल्वके सैनिकोंका	**उल्बणं तुमुलं युद्धं अभूत्**	घोर तुमुल युद्ध होता रहा ॥५॥
इतर इतरं निघ्नतां	एक दूसरेको मारते हुए		

इन्द्रप्रस्थं गतः कृष्ण आहूतो धर्मसूनुना ।
राजसूयेऽथ निर्वृत्ते शिशुपाले च संस्थिते ॥ ६ ॥

इन्द्रप्रस्थं गतः कृष्णः आहूतः धर्मसूनुना राजसूये अथ निर्वृत्ते शिशुपाले च संस्थिते ॥६॥

धर्मसूनुना	धर्मपुत्र युधिष्ठिर द्वारा	**निर्वृत्ते च**	समाप्त हो जाने पर और
आहूतः कृष्णः	बुलाये गये श्रीकृष्ण	**शिशुपाले**	शिशुपालके
इन्द्रप्रस्थं गतः	इन्द्रप्रस्थ गये थे	**संस्थिते**	मर जाने पर ॥६॥
अथ राजसूये	फिर वहां राजसूय यज्ञके		

कुरुवृद्धाननुज्ञाप्य मुनींश्च ससुतां पृथाम् ।
निमित्तान्यतिघोराणि पश्यन् द्वारवतीं ययौ ॥ ७ ॥

कुरुवृद्धान् अनुज्ञाप्य मुनीन् च ससुतां पृथां निमित्तानि अतिघोराणि पश्यन् द्वारवतीं ययौ ॥७॥

अतिघोराणि निमित्तानि	अत्यन्त भयानक अपशकुन	**ससुतां पृथां**	पुत्रोंके साथ कुन्ती से
पश्यन्	देखकर	**अनुज्ञाप्य**	अनुमति लेकर
कुरुवृद्धान् मुनीन् च	कुरुकुलके वृद्धों, मुनियों तथा	**द्वारवतीं ययौ**	द्वारिकापुरीको चले ॥७॥

आह चाहमिहायात आर्यमिश्राभिसङ्गतः ।
राजन्याश्चैद्यपक्षीया नूनं हन्युः पुरीं मम ॥ ८ ॥

आह च अहं इह आयातः आर्यमिश्र अभिसङ्गतः राजन्याः चैद्यपक्षीया नूनं हन्युः पुरीं मम ॥८॥

आह च	(मन ही मन) बोले भी—	**राजन्याः नूनं**	राजा निश्चय
अहं आर्यमिश्र	'मैं बड़े भाईके	**मम पुरीं हन्युः**	मेरी पुरीको आक्रान्त किये होंगे ॥८॥
अभिसङ्गतः	साथ		
इह आयातः	यहां आया हूँ,		
चैद्यपक्षीया	चेदिराज शिशुपाल के पक्ष वाले		

वीक्ष्य तत् कदनं स्वानां निरूप्य पुररक्षणम् ।
सौभं च शाल्वराजं च दारुकं प्राह केशवः ॥ ९ ॥

वीक्ष्य तत् कदनं स्वानां निरूप्य पुररक्षणं सौभं च शाल्वराजं च दारुकं प्राह केशवः ॥९॥

तत स्वानां	वह अपनोंका	**पुररक्षणं**	नगर-रक्षा
कदनं	उत्पीडन	**निरूप्य**	(बलरामजीको) सौंपकर
च सौभं	तथा सौभ विमान		
च	एवं	**केशवः**	श्रीकृष्णने
शाल्वराजं	राजा शाल्वको	**दारुकं प्राह**	(सारथि) दारुकसे कहा ॥९॥
वीक्ष्य	देखकर		

रथं प्रापय मे सूत शाल्वस्यान्तिकमाशु वै ।
सम्भ्रमस्ते न कर्तव्यो मायावी सौभराडयम् ॥१०॥

रथं प्रापय मे सूत शाल्वस्य अन्तिकं आशु वै सम्भ्रमः ते न कर्तव्यः मायावी सौभराट् अयम् ॥१०॥

सूत मे रथं	सूत ! मेरे रथको	**न कर्तव्यः**	नहीं करनी चाहिए
शाल्वस्य	शाल्वके		क्योंकि
अन्तिकं	समीप	**अयं सौभराट्**	यह सौभका राजा
वै आशु प्रापय	निश्चय शीघ्र पहुँचाओ	**मायावी**	मायावी है ॥१०॥
ते सम्भ्रमः	किन्तु तुम्हें कोई हड़बड़ी		

इत्युक्तश्चोदयामास रथमास्थाय दारुकः ।
विशन्तं ददृशुः सर्वे स्वे परे चारुणानुजम् ॥११॥

इति उक्तः चोदयामास रथं आस्थाय दारुकः विशन्तं ददृशुः सर्वे स्वे परे च अरुण अनुजम् ॥११॥

इति उक्तः	ऐसा कहे जाने पर	**अरुण अनुजं**	अरुणके छोटे भाई गरुड़ (का ध्वजा वाला रथ)
रथं आस्थाय	रथ पर बैठकर	**विशन्तं ददृशुः**	प्रवेश करते देखा ॥११॥
दारुकः	दारुकने		
चोदयामास	(रथ) बढ़ाया		
सर्वे स्वे परे च	सब अपनों और शत्रुओंने भी		

शाल्वश्च कृष्णमालोक्य हतप्रायबलेश्वरः ।
प्राहरत् कृष्णसूताय शक्तिं भीमरवां मृधे ॥१२॥

शाल्वः च कृष्णं आलोक्य हतप्राय बल ईश्वरः प्राहरत् कृष्ण सूताय शक्तिं भीमरवां मृधे ॥१२॥

बल ईश्वरः	(जिसके) सब सेना-पति	**कृष्ण सूताय**	श्रीकृष्णके सारथि पर
हतप्राय	प्रायः मारे जा चुके थे (उस)	**मृधे भीमरवां**	युद्धमें भयंकर शब्द करने वाली
शाल्वः च	शाल्वने भी	**शक्तिं प्राहरत्**	शक्तिका प्रहार
कृष्णं आलोक्य	श्रीकृष्णको देखकर		किया ॥१२॥

तामापतन्तीं नभसि महोल्कामिव रंहसा ।
भासयन्तीं दिशः शौरिः सायकैः शतधाच्छिनत् ॥१३॥

तां आपतन्तीं नभसि महा उल्कां इव रंहसा भासयन्तीं दिशः शौरिः सायकैः शतधा अच्छिनत् ॥१३॥

तां नभसि	उसे आकाशमें	**सायकैः शौरिः**	बाणोंसे श्रीकृष्णने
महा उल्कां इव	बड़ी उल्काके समान	**शतधा**	सैकड़ों
दिशः भासयन्तीं	दिशाओंको आलोकित करती	**अच्छिनत्**	टुकड़ोंमें काट दिया ॥१३॥
रंहसा	वेगसे		
आपतन्तीं	झपटती आतीको		

तं च षोडशभिर्विद्ध्वा बाणैः सौभं च खे भ्रमत् ।
अविध्यच्छरसन्दोहैः खं सूर्य इव रश्मिभिः ॥१४॥

तं च षोडशभिः विद्ध्वा बाणैः सौभं च खे भ्रमत् अविध्यात् शर सन्दोहैः खं सूर्य इव रश्मिभिः ॥१४॥

तं च षोशभिः	उस (शाल्व)को भी सोलह	**खं इव**	आकाशको (बींधने) के समान
बाणैः विद्ध्वा	बाणोंसी बींधकर		
रश्मिभिः सूर्य	रश्मियोंसे सूर्यके		

खे भ्रमत्	आकाशमें घूमते	**शर सन्दोहैः**	बाण समूहसे
सौभं च	सौभ विमानको भी	**अविध्यत्**	बेधा ॥१४॥

शाल्वः शौरेस्तु दोः सव्यं सशार्ङ्गं शार्ङ्गधन्वनः ।
बिभेद न्यपतद्धस्तात् शार्ङ्गमासीत्तदद्भुतम् ॥१५॥

शाल्वः शौरेः तु दोः सव्यं सशार्ङ्गम् शार्ङ्गधन्वनः विभेद न्यपतत् हस्तात शार्ङ्गं आसीत् तत् अद्भुतम् ॥१५॥

शार्ङ्गं धन्वनः	शारंगधारी	**न्यपतत्**	गिर गया
शौरेः तु	श्रीकृष्णकी तो	**तत् अद्भुतं**	यह अद्भुत बात
शार्ङ्गं सव्यं दोः	शारंग धनुष सहित बायीं भुजाको	**आसीत्**	हुई ॥१५॥
शाल्वः विभेद	शाल्वने बींधा		
हस्तात शार्ङ्गम्	(इससे) हाथसे शारंग		

हाहाकारो महानासीद् भूतानां तत्र पश्यताम् ।
विनद्य सौभराडुच्चैरिदमाह जनार्दनम् ॥१६॥

हा हाकारः महान् आसीत् भूतानां तत्र पश्यतां विनन्द्य सौभराट् उच्चैः इदं आह जनार्दनम् ॥१६॥

तत्र पश्यतां	वहां देखने वाले	**सौभराट्**	सौभका राजा शाल्व
भूतानां महान्	प्राणियोंमें बड़ा भारी	**जनार्दनं**	जनार्दनसे
हा हाकारः	हाहाकार	**इदं आह**	यह बोला ॥१६॥
आसीत्	होने लगा		
उच्चैः विनद्य	(तब) उच्च स्वरसे गर्जना करके		

यत्त्वया मूढ नः सख्युर्भ्रातुर्भार्या हृतेक्षताम् ।
प्रमत्तः स सभामध्ये त्वया व्यापादितः सखा ॥१७॥

यः त्वया मूढ नः सख्युः भ्रातुः भार्या हृत ईक्षतां प्रमत्तः स सभामध्ये त्वया व्यापादितः सखा ॥१७॥

त्वया मूढ	तुझ मूर्खने	**सभामध्ये**	सभाके बीचमें
यः नः ईक्षतां	जो हमारे देखते-देखते	**स प्रमत्तः सखा**	वह असावधान सखा
सख्युः भ्रातुः	(हमारे) सखा (अपने ममेरे) भाई की	**त्वया व्यापादितः**	तेरे द्वारा मार डाला गया ॥१७॥
भार्या हृत	पत्नी का हरण किया और		

तं त्वाद्य निशितैर्बाणैरपराजितमानिनम् ।
नयाम्यपुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेर्ममाग्रतः ॥१८॥

तं तु अद्य निशितैः बाणैः अपराजित मानिनं नयामि अपुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेः मम अग्रतः ॥१८॥

तं अपराजित	उस अपनेको अपराजित	**अपुनरावृत्तिं**	जहांसे फिर लौटना नहीं होता वहां
मानिनं तु	माननेवाले को तो	**नयामि**	भेज देता हूँ
अद्य निशितैः बाणैः	आज तीक्ष्ण बाणोंसे	**यदि मम अग्रतः**	यदि मेरे आगे
		तिष्ठेः	ठहर गया ॥१८॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

वृथा त्वं कत्थसे मन्द न पश्यस्यन्तिकेऽन्तकम् ।
पौरुषं दर्शयन्ति स्म शूरा न बहुभाषिणः ॥१९॥

वृथा त्वं कत्थसे मन्द न पश्यसि अन्तिके अन्तकं पौरुषं दर्शयन्ति स्म शूरा न बहुभाषिणः ॥१९॥

मन्द त्वं	मूर्ख ! तू	**शूरा पौरुषं**	शूर लोग पुरुषार्थ
वृथा कत्थसे	व्यर्थ बकवाद करता है	**दर्शयन्ति स्म**	दिखलाते हैं
अन्तकं अन्तिके	काल को अपने समीप	**बहुभाषिणः न**	बहुत बोलने वाले नहीं होते ॥१९॥
न पश्यसि	नहीं देखता है,		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

इत्युक्त्वा भगवाञ्छाल्वं गदया भीमवेगया ।
ततार जत्रौ संरब्धः स चकम्पे वमन्नसृक् ॥२०॥

इति उक्त्वा भगवान् शाल्वं गदया भीम वेगया ततार जत्रौ संरब्धः स चकम्पे वमन् असृक् ॥२०॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर		पर मारा
संरब्धः भगवान्	क्रोधमें भरकर भगवान ने	**स असृक् वमन्**	वह रक्त वमन करता
भीम वेगया गदया	भयंकर वेग वाली गदासे	**चकम्पे**	काँपने लगा ॥२०॥
शाल्वं जत्रौ ततार	शाल्वकी जत्रु		

गदायां सन्निवृत्तायां शाल्वस्त्वन्तरधीयत ।
ततो मुहूर्त आगत्य पुरुषः शिरसाच्युतम् ।
देवक्या प्रहितोऽस्मीति नत्वा प्राह वचो रुदन् ॥२१॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

गदायां सन्निवृत्तायां शाल्वः तु अन्तरधीयत ततः मुहूर्त आगत्य पुरुषः शिरसा अच्युतं देवक्या प्रहितः अस्मि इति नत्वा प्राह वचः रुदन् ॥२१॥

गदायां	गदाके	**अच्युतं शिरसा**	अच्युत को सिर झुकाकर
सन्निवृत्तायां	स्वतः लौट जाने पर	**नत्वा रुदन्**	प्रणाम करके रोते हुए
शाल्वः तु	शाल्व तो		
अन्तरधीयत	अन्तर्धान हो गया	**इति वचः प्राह**	यह बात बोला
ततः मुहुर्त	फिर एक मुहुर्तमें	**देवक्या**	(मैं) देवकीका
पुरुषः आगत्य	एक पुरुष आकर	**प्रहितः अस्मि**	भेजा हूँ ॥२१॥

कृष्ण कृष्ण महाबाहो पिता ते पितृवत्सल ।
बद्ध्वापनीतः शाल्वेन सौनिकेन यथा पशुः ॥२२॥

कृष्ण कृष्ण महाबाहो पिता ते पितृवत्सल बद्ध्वा अपनीतः शाल्वेन सौनिकेन यथा पशुः ॥२२॥

महाबाहो कृष्णः	महाबाहु कृष्ण !	**शाल्वेन ते पिता**	शाल्व द्वारा तुम्हारे पिता
पितृवत्सल कृष्ण	पितृभक्त कृष्ण !	**बद्ध्वा अपनीतः**	बाँधकर बुरी भाँति लेजाये गये ॥२२॥
सौनिकेन	कसाई द्वारा		
यथा पशुः	जैसे पशु (ले जाये जाते हैं)		

निशम्य विप्रियं कृष्णो मानुषीं प्रकृतिं गतः ।
विमनस्को घृणी स्नेहाद् बभाषे प्राकृतो यथा ॥२३॥

निशम्य विप्रियं कृष्णः मानुषीं प्रकृतिं गतः विमनस्कः घृणी स्नेहात् बभाषे प्राकृतः यथा ॥२३॥

विप्रियं निशम्य	यह अप्रिय (समाचार) सुनकर	**मानुषीं प्रकृतिं गतः**	मनुष्य स्वभाव स्वीकार करके

कृष्णः स्नेहात्	श्रीकृष्ण स्नेहवश	**बभाषे**	बोले ॥२३॥
घृणी विमनस्कः	करुणासे उदास होकर		

कथं राममसम्भ्रान्तं जित्वाजेयं सुरासुरैः ।
शाल्वेनाल्पीयसा नीतः पिता मे बलवान् विधिः ॥२४॥

कथं रामं असम्भ्रान्तं जित्वा अजेयं सुर असुरैः शाल्वेन अल्पीयसा नीतः पिता मे बलवान् विधिः ॥२४॥

विधिः बलवान्	'देव बड़ा बलवान है'	**अल्पीयसा**	अल्पवीर्य
सुर असुरैः	(नहीं तो) देवता-दैत्योंसे भी	**शाल्वेन**	शाल्व द्वारा
अजेयं असम्भ्रान्तं	अजेय सदा सावधान	**मे पिता**	मेरे पिता
रामं जित्वा	बलरामजी को जीतकर	**कथं नीतः**	कैसे ले जाये गये ॥२४॥

इति ब्रुवाणे गोविन्दे सौभराट् प्रत्युपस्थितः ।
वसुदेवमिवानीय कृष्णं चेदमुवाच सः ॥२५॥

इति ब्रुवाणे गोविन्दे सौभराट् प्रत्युपस्थितः वसुदेवं इव आनीय कृष्णं च इदं उवाच सः ॥२५॥

गोविन्दे इति ब्रुवाणे	गोविन्दके यह कहते समय ही	**सौभराट्**	सौभका राजा
वसुदेवं इव	वसुदेवके समान (एकको)	**प्रत्युपस्थितः**	सामने उपस्थित हो गया
आनीय	ले आकर	**च सः कृष्णं**	तथा वह श्रीकृष्णसे
		इदं उवाच	यह बोला ॥२५॥

एष ते जनिता तातो यदर्थमिह जीवसि ।
वधिष्ये वीक्षतस्तेऽमुमीशश्चेत् पाहि बालिश ॥२६॥

एष ते जनिता तातः यत् अर्थं इह जीवसि वधिष्ये वीक्षतः ते अमुं ईशः चेत् पाहि बालिश ॥२६॥

एष ते जनिता	यह तुझे जन्म देने वाले	**बालिश**	मूर्ख !
		ते वीक्षतः	तेरे देखते हुए
तातः यत् अर्थं	पिता हैं जिनके लिए	**अमुं वधिष्ये**	इनका वध करूँगा
इह जीवसि	इस लोकमें (तू) जी रहाहै	**ईशः चेत् पाहि**	समर्थ हो तो रक्षा कर ॥३६॥

एवं निर्भर्त्स्य मायावी खड्गनानकदुन्दुभेः ।
उत्कृत्य शिर आदाय खस्थं सौभं समाविशत् ॥२७॥

एवं निर्भर्त्स्य मायावी खड्गेन आनकदुन्दुभेः उत्कृत्य शिर आदाय खस्थं सौभं समाविशत् ॥२७॥

एवं निर्भर्त्स्य	इस प्रकार डाँटकर	**आदाय**	उसे लेकर
मायावी खड्गेन	उस मायाचीने तलवारसे	**खस्थं सौभं**	आकाशमें स्थित सौभ विमानमें
आनकदुन्दुभेः	(उस) वसुदेवका	**समाविशत्**	प्रविष्ट हो गया ॥२७॥
शिर उत्कृत्य	सिर काटकर		

ततो मुहूर्तं प्रकृतावुपप्लुतः
स्वबोध आस्ते स्वजनानुषङ्गतः ।
महानुभावस्तदबुद्ध्यदासुरीं
मायां स शाल्वप्रसृतां मयोदिताम् ॥२८॥

ततः मुहूर्तं प्रकृताः उपप्लुतः स्वबोध आस्ते स्वजन अनुषङ्गतः महानुभावः तत् अबुद्ध्यत आसुरीं मायां स शाल्व प्रसृतां मय उदिताम् ॥२८॥

स्वजन अनुषङ्गतः	स्वजन (वसुदेव) के सम्बन्धसे	स्वबोध आस्ते	स्वयं सावधान हो गये
ततः मुहूर्त	तब एक मुहूर्त (दो घड़ी) केलिए	तत् मय उदितां	फिर उस मयदानव द्वारा उपदिष्ट
प्रकृताः	साधारण व्यक्तिके समान	शाल्व प्रसृतां	शाल्वकी फैलायी
उपप्लुतः	शोकाभिभूत हो गये	मायां अबुद्ध्यत्	माया को समझ गये ॥२८॥
महानुभावः	फिर महाप्रभाव-शाली (भगवान)		

न तत्र दूतं न पितुः कलेवरं
प्रबुद्ध आजौ समपश्यदच्युतः ।
स्वाप्नं यथा चाम्बरचारिणं रिपुं
सौभस्थमालोक्य निहन्तुमुद्यतः ॥२९॥

न तत्र दूतं न पितुः कलेवरं प्रबुद्ध आजौ सम पश्यत् अच्युतः स्वाप्नं यथा च अम्बर चारिणं रिपुं सौभस्थं आलोक्य निहन्तुं उद्यतः ॥२९॥

प्रबुद्ध आजौ	सावधान होकर उन अजन्मा	अम्बर चारिणं	आकाशगामी
अच्युतः	अच्युतने	सौभस्थं रिपुं	सौभ विमानमें शत्रुको
यथा स्वाप्नं	स्वप्नके समान	आलोक्य	देखकर
तत्र न दूतं च	न वहाँ दूत और	निहन्तुं उद्यतः	(उसे) मारनेको
न पितुः कलेवरं	न पिताके शरीरको		प्रस्तुत हो गये ॥२९॥
सम पश्यत्	सामने देखा		

एवं वदन्ति राजर्षे ऋषयः के च नान्विताः ।
यत् स्ववाचो विरुध्येत नूनं ते न स्मरन्त्युत ॥३०॥

एवं वदन्ति राजर्षे ऋषयः के च न अन्विताः यत् स्ववाचः विरुध्येत नूनं ते न स्मरन्ति उत ॥३०॥

राजर्षे	राजर्षि परीक्षित !	**स्ववाचः**	अपनी बातसे ही
न अन्विताः	पूर्वा पर का विचार न करने वाले	**विरुध्येत**	विरोध पड़ता है
		नूनं ते	निश्चय वे
के च ऋषयः	कोई तो ऋषि	**न स्मरन्ति**	स्मरण नहीं करते ॥३०॥
एवं वदन्ति	ऐसा कहते हैं		
उत यत्	किन्तु जो		

क्व शोकमोहौ स्नेहो वा भयं वा येऽज्ञसम्भवाः ।
क्व चाखण्डितविज्ञानज्ञानैश्वर्यस्त्वखण्डितः ॥३१॥

क्व शोक मोहौ स्नेहः वा भयं वा ये अज्ञ सम्भवाः क्व च अखण्डित विज्ञान ज्ञान ऐश्वर्यः तु अखण्डितः ॥३१॥

क्व शोक मोहौ	कहां तो शोक, मोह	**विज्ञान ज्ञान**	विज्ञान, ज्ञान
वा स्नेहः	या स्नेह	**तु अखण्डितः**	तथा अखण्ड
वा भयं	अथवा भय	**ऐश्वर्यः**	ऐश्वर्य (वान् भगवान) ॥३१॥
ये अज्ञ सम्भवाः	जो अज्ञानियोंको होते हैं		
च क्व	और कहां		
अखण्डित	अखण्ड		

यत्पादसेवोर्जितऽऽयात्मविद्यया
हिन्वन्त्यनाद्यात्मविपर्ययग्रहम् ।
लभन्त आत्मीयमनन्तमैश्वरं
कुतो नु मोहः परमस्य सद्गतेः ॥३२॥

यत् पादसेवा ऊर्जितया आत्मविद्यया हिन्वन्ति अनादि आत्मविपर्यय ग्रहं लभन्त आत्मीयं अनन्तन्तं ऐश्वरं कुतः नु मोहः परमस्य सत् गतेः ॥३२॥

यत् पादसेवा	जिनके चरणोंकी सेवासे
ऊर्जितया	अभिवृद्ध हुई
आत्मविद्यया	अध्यात्म विद्याके द्वारा
अनादि	अनादि
आत्मविपर्यय	अपनेमें उलटा
ग्रहं	आग्रह (शरीरमें आत्मबुद्धि)
हिन्वन्ति	(मुनिजन) छोड़ देते हैं एवं
आत्मीयं अनन्तं	अपने (स्वरूप भूत) अनन्त
ऐश्वरं लभन्त	ऐश्वर्यको प्राप्त करते हैं
सत् गतेः	सत्पुरुषोंकी परम-गति
परमस्य	उन परम पुरुषमें
नु मोहः कुतः	भला मोह कहाँसे आवेगा ॥३३॥

तं शस्त्रपूगैः प्रहरन्तमोजसा
शाल्वं शरैः शौरिरमोघविक्रमः ।
विद्ध्वाच्छिनद् वर्म धनुः शिरोमणिं
सौभं च शत्रोर्गदया रुरोज ह ॥३३॥

तं शस्त्रपूगैः प्रहरन्तं ओजसा शाल्वं शरैः शौरिः अमोघ विक्रमः बिद्ध्वा अच्छिनत् वर्म धनुः शिरोमणि सौभं च शत्रोः गदया रुरोज ह ॥३३॥

तं शाल्वं	उस शाल्वके
ओजसा	वेगसे
शस्त्रपूगैः	शस्त्र समूहसे
प्रहरन्तं	प्रहार करते हुए
अमोघ विक्रमः	अमोघ पराक्रम
शौरिः शरैः	श्रीकृष्णने बाणोंसे (उसके)
वर्म धनुः	कवच, धनुष,
शिरोमणिं	शीर्षत्राणोंको

विद्ध्वा अच्छिनत्	बेधकर काट दिया	**गदया रुरोज ह**	गदासे चूर ही कर दिया ॥३३॥
शत्रोः सौभं च	शत्रुके सौभ विमान को भी		

तत् कृष्णहस्तेरितया विचूर्णितं
पपात तोये गदया सहस्रधा ।
विसृज्य तद् भूतलमास्थितो गदा-
मुद्यम्य शाल्वोऽच्युतमभ्यगाद् द्रुतम् ॥३४॥

तत् कृष्ण हस्त ईरितया विचूर्णितं पपात तोये गदया सहस्रधा विसृज्य तत् भूतलं आस्थितः गदां उद्यम्य शाल्वः अच्युतं अभ्यगात् द्रुतम् ॥३४॥

कृष्ण हस्त	श्रीकृष्णके हाथसे	**तत् विसृज्य**	उसे छोड़कर
ईरितया गदया	फेंकी गयी गदासे	**भूतलं आस्थितः**	पृथ्वी पर खड़ा
सहस्रधा	सहस्रों टुकड़ोंमें	**शाल्वः गदां**	शाल्व गदा
विचूर्णितं	चूर्ण होकर	**उद्यम्य**	उठाकर
तत् तोये पपात	वह (विमान) जलमें गिर पड़ा	**द्रुतं अच्युतं अभ्यगात्**	वेगपूर्वक अच्युतकी ओर दौड़ा ॥३४॥

आधावतः सगदं तस्य बाहुं
भल्लेन छित्त्वाथ रथाङ्गमद्भुतम् ।
वधाय शाल्वस्य लयार्कसन्निभं
बिभ्रद् बभौ सार्क इवोदयाचलः ॥३५॥

आधावतः सगदं तस्य बाहुं भल्लेन छित्त्वा अथ रथाङ्गम् अद्भुतं वधाय शाल्वस्य लय अर्क सन्निभं बिभ्रत् बभौ स अर्क इव उदयाचलः ॥३५॥

आधावतः	अपनी ओर दौड़े आते	**सगदं तस्य बाहुं**	गदा सहित उसकी भुजाको

भल्लेन छित्त्वा	बाणसे काटकर	अद्भुतं रथाङ्गं	अद्भुत चक्रको
अथ शाल्वस्य	फिर शाल्वके	बिभ्रत्	धारण करके
वधाय	वधके लिए	स अर्क	सूर्यके साथ
लय	प्रलय कालीन	उदयाचलः इव	उदयाचलके समान
अर्क सन्निभं	सूर्यके समान	बभौ	शोभित हुए ॥३५॥

जहार तेनैव शिरः सकुण्डलं
किरीटयुक्तं पुरुमायिनो हरिः ।
वज्रेण वृत्रस्य यथा पुरन्दरो
बभूव हाहेति वचस्तदा नृणाम् ॥३६॥

जहार तेन एव शिरः सकुण्डलं किरीटयुक्तं पुरुमायिनः हरिः वज्रेण वृत्रस्य यथा पुरन्दरः बभूव हा हा इति वचः तदा नृणाम् ॥३६॥

तेन एव	उसी (चक्र)से	वज्रेण	वज्रसे (काटा था)
पुरुमायिनः	महा मायावी (शाल्व)का	तदा नृणां	उस समय उसके लोगोंमें
सकुण्डलं	कुण्डलके साथ	हा हा इति	'हाय ! हाय ! इस प्रकार
किरीटयुक्तं	मुकुट युक्त	वचः बभूव	शब्द होने लगा ॥३६॥
शिरः जहार	सिर काट दिया		
यथा पुरन्दरः	जैसे इन्द्रने		
वृत्रस्य	वृत्रासुरका (सिर)		

तस्मिन् निपतिते पापे सौभे च गदया हते ।
नेदुर्दुन्दुभयो राजन् दिवि देवगणेरिताः ।
सखीनामपचितिं कुर्वन् दन्तवक्त्रो रुषाभ्यगात् ॥३७॥

तस्मिन् निपतिते पापे सौभे च गदया हते नेदुः दुन्दुभयः राजन् दिवि देवगण ईरिताः सखीनां अपचितिं कुर्वन् दन्तवक्त्रः रुषा अभ्यगात् ॥३७॥

राजन्	राजन् !
तस्मिन् पापे निपतिते	उस पापीके मरकर गिर जाने पर
च सौभे	तथा सौभ विमान के
गदया हते	गदासे नष्ट हो जाने पर
देवगण ईरितराः	देवताओंकी बजायी
दुन्दुभयः	दुन्दुभियां
दिवि नेदुः	आकाशमें बजने लगीं
सखीनां	(इसी समय) मित्रोंका
अपचितिं कुर्वन्	बदला चुकानेके लिए
रुषा दन्तवक्त्रः	क्रोधपूर्वक दन्त-वक्त्र
अभ्यगात्	सामने आया

॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सौभवधो नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥

अथ अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

शिशुपालस्य शाल्वस्य पौण्ड्रकस्यापि दुर्मतिः ।
परलोकगतानां च कुर्वन् पारोक्ष्यसौहृदम् ॥ १ ॥

शिशुपालस्य शाल्वस्य पौण्ड्रकस्य अपि दुर्मतिः परलोक गतानां च कुर्वन् पारोक्ष्य सौहृदम् ॥१॥

दुर्मतिः	वह दुर्बुद्धि	**च पौण्ड्रकस्य**	तथा पौण्ड्रकका
परलोकगतानां	परलोक चले गये	**अपि**	भी
शिशुपालस्य	शिशुपाल,	**पारोक्ष्य सौहृदं**	पीछे मित्रता
शाल्वस्य	शाल्व	**कुर्वन्**	निभाता ॥१॥

एकः पदातिः संक्रुद्धो गदापाणिः प्रकम्पयन् ।
पद्भ्यामिमां महाराज महासत्त्वो व्यदृश्यत ॥ २ ॥

एकः पदातिः संक्रुद्धः गदापाणिः प्रकम्पयन् पद्भ्यां इमां महाराज महासत्त्वः व्यदृश्यत ॥२॥

एकः पदातिः	अकेला पैदल	**महासत्त्वः**	महान् बलवान
गदापाणिः	हाथमें गदा लिये	**पद्भ्यां इमां**	पैरोंसे इस पृथ्वीको
सङ्क्रुद्धः	अत्यन्त क्रोधमें भरा	**प्रकम्पयन्**	कँपाता
		व्यदृश्यत	दिखायी पड़ा ॥२॥

तं तथाऽऽयान्तमालोक्य गदामादाय सत्वरः ।
अवप्लुत्य रथात् कृष्णः सिन्धुं वेलेव प्रत्यधात् ॥ ३ ॥

तं तथा आयान्तं आलोक्य गदां आदाय सत्त्वरः अवप्लुत्य रथात् कृष्णः सिन्धुं वेला इव प्रत्यधात् ॥३॥

तथा तं आयान्तं	इस प्रकार उसे आता हुआ	**रथात् अवप्लुत्य**	रथसे कूद कर
		सिन्धुं वेला इव	समुद्रको किनारेके समान (रोकने)
आलोक्य कृष्णः	देखकर श्रीकृष्ण	**प्रत्यधात्**	उसकी ओर बढ़ गये ॥३॥
सत्वरः गदां	झटपट गदा		
आदाय	लेकर		

गदामुद्यम्य कारूषो मुकुन्दं प्राह दुर्मदः ।
दिष्ट्या दिष्ट्या भवानद्य मम दृष्टिपथं गतः ॥ ४ ॥

गदां उद्यम्य कारूषः मुकुन्दं प्राह दुर्मदः दिष्ट्या दिष्ट्या भवान् अद्य मम दृष्टिपथं गतः ॥४॥

दुर्मदः कारूषः	मदान्ध करूषराज दन्तवक्त्र	**अद्य भवान्**	आज तुम
		मम दृष्टिपथं	मेरे नेत्रोंके सामने
गदां उद्यम्य	गदा उठाकर	**गतः**	आये हो ॥४॥
मुकुन्दं प्राह	मुकुन्दसे बोला		
दिष्ट्या	देववश		
दिष्ट्या	सौभाग्यसे		

त्वं मातुलेयो नः कृष्ण मित्रध्रुङ्मां जिघांससि ।
अतस्त्वां गदया मन्द हनिष्ये वज्रकल्पया ॥ ५ ॥

त्वं मातुलेयः नः कृष्ण मित्रध्रुक् मां जिघांससि अतः त्वां गदया मन्द हनिष्ये वज्रकल्पया ॥५॥

कृष्ण त्वं नः	कृष्ण ! तुम हमारे	**मित्रध्रुक**	(मेरे) मित्रद्रोही हो,
मातुलेयः	मामाके पुत्र हो (किन्तु)		

मां जिघांससि	मुझे भी मारना चाहते हो	**वज्र कल्पया**	वज्रके समान (अपनी)
अतः मन्द त्वां	इसलिए मूर्ख तुझे	**गदया हनिष्ये**	गदासे मार दूँगा ॥५॥

तर्ह्यनृण्यमुपैम्यज्ञ मित्राणां मित्रवत्सलः ।
बन्धुरूपमरिं हत्वा व्याधिं देहचरं यथा ॥ ६ ॥

तर्हि अन ऋण्यं उपैमि अज्ञ मित्राणां मित्रवत्सलः बन्धुरूपं अरिं हत्वा व्याधिं देहचरं यथा ॥६॥

यथा देहचरं	जैसे शरीरमें रहने वाला	**अरिं हत्वा**	शत्रुको मारकर
		तर्हि	तब (मैं)
व्याधिं	रोग हो	**मित्रवत्सलः**	मित्र-वत्सल
अज्ञ	मूर्ख !	**मित्राणां**	मित्रोंसे
बन्धुरूपं	(ममेरे) भाई रूप (तुम)	**अन ऋण्यं**	उऋणता
		उपैमि	पाऊंगा' ॥६॥

एवं रूक्षैस्तुदन् वाक्यैः कृष्णं तोत्त्रैरिव द्विपम् ।
गदयाताडयन्मूर्ध्नि सिंहवद् व्यनदच्च सः ॥ ७ ॥

एवं रूक्षैः तुदन् वाक्यैः कृष्णं तोत्त्रैः इव द्विपं गदया ताडयत् मूर्ध्नि सिंहवत् व्यनदत् च सः ॥७॥

द्विपं तोत्त्रैः इव	हाथीको अंकुशसे (मारने)के समान	**गदया मूर्ध्नि**	गदासे (उनके) सिर पर
एवं	इस प्रकारके	**ताडयत् च**	मारा तथा
रूक्षैः वाक्यैः	कटु वचनोंसे	**सः सिंहवत्**	उसने सिंहके समान
कृष्णं तुदन्	श्रीकृष्णको वेधता हुआ	**व्यनदत्**	गर्जना की ॥७॥

गदयाभिहतोऽप्याजौ न चचाल यदूद्वहः ।
कृष्णोऽपि तमहन् गुर्व्या कौमोदक्या स्तनान्तरे ॥ ८ ॥

गदया अभिहतः अपि आजौ न चचाल यदु उद्वहः कृष्ण अपि तं अहन् गुर्व्या कौमोदक्या स्तन अन्तरे ॥८॥

आजौ	अजन्मा
यदु उद्वहः	यदुनाथ
गदया	गदासे
अभिहतः अपि	आहत होकर भी
चचाल न	हिले नहीं
कृष्णः अपि	श्रीकृष्णने भी
गुर्व्या	भारी
कौमोदक्या	कौमोदकी गदासे
तं स्तन अन्तरे	उसके स्तनोंके बीच में
अहत्	मारा ॥८॥

गदा निर्भिन्नहृदय उद्वमन् रुधिरं मुखात् ।
प्रसार्य केशबाह्वङ्घ्रीन् धरण्यां न्यपतद् व्यसुः ॥ ९ ॥

गदा निर्भिन्न हृदयः उद्वमन् रुधिरं मुखात् प्रसार्य केश बाहु अंघ्रीन् धरण्यां न्यपतत् व्यसुः ॥९॥

गदा हृदयः	गदा लगनेसे हृदय
निर्भिन्न	फट जानेसे
मुखात् रुधिरं	मुखसे रक्त
उद्वमन	वमन करता हुआ
केश बाहु	केश, भुजा,
अंघ्रीन्	पैरोंको
प्रसार्य धरण्यां	पृथ्वी पर फैलाकर
व्यसुः न्यपतत्	निष्प्राण होकर गिर पड़ा ॥९॥

ततः सूक्ष्मतरं ज्योतिः कृष्णमाविशदद्भुतम् ।
पश्यतां सर्वभूतानां यथा चैद्यवधे नृप ॥१०॥

ततः सूक्ष्मतरं ज्योतिः कृष्णं आविशत् अद्भुतं पश्यतां सर्वभूतानां यथाचैद्य वधे नृप ॥१०॥

नृप	राजन् !
यथा चैद्यवधे	जैसे चेदिराज शिशुपालको मारने पर तुला हुआ था
ततः सर्वभूतानां	इस समय भी सब प्राणियोंके
पश्यतां अद्भुतं	देखते हुए आश्चर्य-जनक
सूक्ष्मतरं	अत्यन्त सूक्ष्म
ज्योतिः	ज्योति
कृष्णं आविशत्	श्रीकृष्णमें प्रवेश कर गयी ॥१०॥

विदूरथस्तु तद्भ्राता भ्रातृशोकपरिप्लुतः ।
आगच्छदसिचर्मभ्यामुच्छ्वसंस्तज्जिघांसया ॥११॥

विदूरथः तु तत् भ्राता भ्रातृशोक परिप्लुतः आगच्छत् असि चर्मभ्यां उच्छ्वसन् तत् जिघांसया ॥११॥

भ्रातृशोक	भाईके शोकमें
परिप्लुतः	डूबा
तत् भ्राता	उस (दन्तवक्त्र)का भाई
विदूरथः तु	विदूरथ तो
तत् जिघांसया	उन (श्रीकृष्ण)को मारनेके लिए
उच्छ्वसन्	लम्बी श्वास लेता
असि चर्मभ्यां	तलवार-ढाल लेकर
आगच्छत्	आया ॥११॥

तस्य चापततः कृष्णश्चक्रेण क्षुरनेमिना ।
शिरो जहार राजेन्द्र सकिरीटं सकुण्डलम् ॥१२॥

तस्य च आपततः कृष्णः चक्रेण क्षुरनेमिना शिरः जहार राजेन्द्र सकिरीटं सकुण्डलम् ॥१२॥

कृष्ण	श्रीकृष्णके
क्षुरनेमिना	तीक्ष्ण धार वाले
चक्रेण तस्य	चक्रसे उस
आपततः च	झपटते आतेका भी

सकिरीटं	मुकुट युक्त	**जहार**	काट दिया ॥१२॥
सकुण्डलं शिरः	कुण्डल सहित सिर		

एवं सौभं च शाल्वं च दन्तवक्त्रं सहानुजम् ।
हत्वा दुर्विषहानन्यैरीडितः सुरमानवैः ॥१३॥

एवं सौभं च शाल्वं च दन्तवक्त्रं सह अनुजं हत्वा दुर्विषहान् अन्यैः ईडितः सुरमानवैः ॥१३॥

एवं अन्यैः	इस प्रकार दूसरोंके लिए	**च सह अनुजं**	तथा छोटे भाई (विदूरथ)के साथ
दुर्विषहान्	जिनका (आक्रमण) सहना अत्यन्त कठिन था उन	**दन्तवक्त्रं हत्वा**	दन्तवक्त्रको मारकर
सौभं च शाल्वं	सौभ विमान तथा शाल्व	**सुरमानवैः**	देवताओं तथा मनुष्यों द्वारा
		ईडितः	स्तुत होते ॥१३॥

मुनिभिः सिद्धगन्धर्वैर्विद्याधरमहोरगैः ।
अप्सरोभिः पितृगणैर्यक्षैः किन्नरचारणैः ॥१४॥

मुनिभिः सिद्ध गन्धर्वैः विद्याधर महा उरगैः अप्सरःभिः पितृगणैः यक्षैः किन्नर चारणैः ॥१४॥

मुनिभिः	मुनियों	**पितृगणैः**	पितृगणों
सिद्ध गन्धर्वैः	सिद्धों, गन्धर्वों,	**यक्षैः किन्नर**	यक्षों, किन्नरों,
विद्याधर	विद्याधरों,	**चारणैः**	चारणों द्वारा ॥१४॥
महा उरगैः	महानागों,		
अप्सरःभिः	अप्सराओं		

उपगीयमानविजयः कुसुमैरभिवर्षितः ।
वृतश्च वृष्णिप्रवरैर्विवेशालङ्कृतां पुरीम् ॥१५॥

उपगीयमान विजयः कुसुमैः अभिवर्षितः वृतः च वृष्णि प्रवरैः विवेश अलङ्कृतां पुरीम् ॥१५॥

विजयः	विजय	**च वृष्णि**	तथा यादव
उपगीयमान	गाये जाते हुए,	**प्रवरैः वृतः**	प्रमुखोंसे घिरे हुए
कुसुमैः	चारों ओर पुष्प	**अलङ्कृतां पुरीम्**	सजे हुए नगरमें
अभिवर्षितः	वर्षा होते हुए	**विवेश**	प्रमुख हुए ॥१५॥

एवं योगेश्वरः कृष्णो भगवाञ्जगदीश्वरः ।
ईयते पशुदृष्टीनां निर्जितो जयतीति सः ॥१६॥

एवं योगेश्वरः कृष्णः भगवान् जगदीश्वरः ईयते पशु दृष्टीनां निर्जितः जयति इति सः ॥१६॥

एवं योगेश्वरः	इस प्रकार योगेश्वर	**पशु दृष्टीनां**	पशु दृष्टि (अज्ञानियों)के लिए ही
जगदीश्वरः	जगदीश्वर	**निर्जितः**	कहीं जीते जाते (और कहीं)
भगवान् कृष्णः	भगवान श्रीकृष्ण	**सः जयति**	वे जीतते हैं ॥१६॥
ईयते	लीलाएँ करते हैं,		

श्रुत्वा युद्धोद्यमं रामः कुरूणां सह पाण्डवैः ।
तीर्थाभिषेकव्याजेन मध्यस्थः प्रययौ किल ॥१७॥

श्रुत्वा युद्ध उद्यमं रामः कुरूणां सह पाण्डवैः तीर्थ अभिषेक व्याजेन मध्यस्थः प्रययौ किल ॥१७॥

कुरूणां	कौरवोंका	**किल मध्यस्थः**	निश्चित मध्यस्थ होनेसे
पाण्डवैः सह	पाण्डवोंके साथ	**तीर्थ अभिषेक**	तीर्थ-स्नानके
युद्ध उद्यमं	युद्धोद्योग	**व्याजेन प्रययौ**	बहाने प्रस्थान कर दिया ॥१७॥
श्रुत्वा	सुनकर		
रामः	बलरामजी		

स्नात्वा प्रभासे सन्तर्प्य देवर्षिपितृमानवान् ।
सरस्वतीं प्रतिस्रोतं ययौ ब्राह्मणसंवृतः ॥१८॥

स्नात्वा प्रभासे सन्तर्प्य देव ऋषि पितृ मानवान् सरस्वतीं प्रतिस्रोतं ययौ ब्राह्मणसंवृतः ॥१८॥

प्रभासे स्नात्वा	प्रभासमें स्नान करके	**सरस्वती प्रतिस्रोत ययौ**	सरस्वतीके प्रवाहके अभिमुख (ऊपर) चले ॥१८॥
देव ऋषि	देवता, ऋषि,		
पितृ मानवान्	पितर-मनुष्योंका		
सन्तर्प्य	तर्पण करके		
ब्राह्मणसंवृतः	ब्राह्मणोंसे घिर हुए		

पृथूदकं बिन्दुसरस्त्रितकूपं सुदर्शनम् ।
विशालं ब्रह्मतीर्थं च चक्रं प्राचीं सरस्वतीम् ॥१९॥

पृथूदकं बिन्दुसरः त्रितकूपं सुदर्शनं विशालं ब्रह्मतीर्थं च चक्रं प्राचीं सरस्वतीम् ॥१९॥

पृथूदकं	पृथूदक,	**ब्रह्मतीर्थं च**	ब्रह्मतीर्थ तथा
बिन्दुसरः	बिन्दुसर,	**चक्रं**	चक्र तीर्थ,
त्रितकूपं	त्रितकूप	**प्राचीं सरस्वतीं**	पूर्व वाहिनी सरस्वती ॥१९॥
सुदर्शनं विशालं	सुदर्शन, विशाल,		

यमुनामनु यान्येव गङ्गामनु च भारत ।
जगाम नैमिषं यत्र ऋषयः सत्रमासते ॥२०॥

यमुनां अनु यानि एव गङ्गां अनु च भारत जगाम नैमिषं यत्र ऋषयः सत्रं आसते ॥२०॥

भारत	भरतवंशी परीक्षित्	**नैमिषं जगाम**	(उनमें होते) नैमिषारण्य गये
यानि	जो (तीर्थ)	**यत्र ऋषयः**	जहाँ ऋषि लोग
यमुनां अनु	यमुनाके आसपास	**सत्रं आसते**	यज्ञ कर रहे थे ॥२०॥
च गङ्गां अनु	तथा गंगाके आस-पास थे		

तमागतमभिप्रेत्य मुनयो दीर्घसत्रिणः ।
अभिनन्द्य यथान्यायं प्रणम्योत्थाय चार्चयन् ॥२१॥

तं आगतं अभिप्रेत्य मुनयः दीर्घ सत्रिणः अभिनन्द्य यथान्यायं प्रणम्य उत्थाय च अर्चयन् ॥२१॥

तं आगतं	उनको आया	**अभिनन्द्य**	स्वागत करके
अभिप्रेत्य	जानकर	**च यथान्यायं**	तथा मर्यादानुसार
दीर्घ सत्रिणः	दीर्घ कालीन यज्ञ करने वाले	**प्रणम्य**	प्रणाम करके
		अर्चयन्	पूजा की ॥२१॥
मुनयः	मुनिगण		
उत्थाय	(आसनोंसे) उठ-कर		

सोऽर्चितः सपरीवारः कृतासनपरिग्रहः ।
रोमहर्षणमासीनं महर्षेः शिष्यमैक्षत ॥२२॥

सः अर्चितः सपरीवारः कृत आसन परिग्रहः रोमहर्षणं आसीनं महर्षेः शिष्यं ऐक्षत ॥२२॥

सपरीवारः	परिवारके साथ	**महर्षेः शिष्यं**	महर्षि (व्यास)के शिष्य
सः अर्चितः	पूजित होकर	**रोमहर्षणं**	रोमहर्षणको
आसन परिग्रहः	आसन स्वीकार	**आसीनं ऐक्षत**	बैठे देखा ॥२२॥
कृत	करके		

अप्रत्युत्थायिनं सूतमकृतप्रह्वणाञ्जलिम् ।
अध्यासीनं च तान् विप्रांश्चुकोपोद्वीक्ष्य माधवः ॥२३॥

अप्रत्युत्थायिनं सूतं अकृत प्रह्वण अंजलिम् अधि आसीनं च तान् विप्रान् चुकोप उद्वीक्ष्य माधवः ॥२३॥

अप्रत्युत्थायिनं	स्वागतमें उठकर न खड़े होने वाले-
प्रह्वण अञ्जलि	नम्रतासे हाथ जोड़ना
अकृत	न करने वाले
च सूतं	तथा सूत (जातीय) होकर
तान् विप्रान्	उन ब्राह्मणोंसे
अधि आसीनं	उच्चासन पर बैठे
उद्वीक्ष्य माधवः	देखकर बलरामजी
चुकोप	कुपित हो गये ॥२३॥

कस्मादसाविमान् विप्रानध्यास्ते प्रतिलोमजः ।
धर्मपालांस्तथैवास्मान् वधमर्हति दुर्मतिः ॥२४॥

कस्मात् असाः इमान् विप्रान् अधि आस्ते प्रतिलोमजः धर्मपालान् तथा एव अस्मान् वधं अर्हति दुर्मतिः ॥२४॥

कस्मात् असाः	'क्योंकि यह
प्रतिलोमजः	प्रतिलोमज (होकर भी)
इमान् विप्रान्	इन ब्राह्मणों
तथा एव	इसी प्रकार
अस्मान्	हम
धर्मपालान्	धर्मरक्षकोंसे
अधि आसते	उच्चासन पर बैठा है
दुर्मतिः	(अतः यह) दुर्बुद्धि
वधं अर्हति	वधके योग्य है ॥२४॥

ऋषेर्भगवतो भूत्वा शिष्योऽधीत्य बहूनि च ।
सेतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ॥२५॥

ऋषेः भगवतः भूत्वा शिष्यः अधीत्य बहूनि च स इतिहास पुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ॥२५॥

भगवतः ऋषेः	भगवान महर्षि (व्यास)का	**स पुराणानि**	पुराणोंके साथ
शिष्यः भूत्वा	शिष्य होकर	**सर्वशः**	सभी
च बहूनि	तथा बहुतसे	**धर्मशास्त्राणि**	धर्मशास्त्रोंका
इतिहास	इतिहास	**अधीत्य**	अध्ययन करके ॥२५॥

अदान्तस्याविनीतस्य वृथा पण्डितमानिनः ।
न गुणाय भवन्ति स्म नटस्येवाजितात्मनः ॥२६॥

अदान्तस्य अविनीतस्य वृथा पण्डित मानिनः न गुणाय भवन्ति स्म नटस्य इव अजितात्मनः ॥२६॥

अजित आत्मनः	अजितेन्द्रिय	**गुणाय**	(उसकी विद्या) सद्गुण दायिनी
नटस्य इव	नटके समान	**न भवन्ति स्म**	नहीं होती है ॥२६॥
अदान्तस्य	अजितेन्द्रिय		
अविनीतस्य	अशिष्ट		
वृथा	(अपनेको) व्यर्थ		
पण्डित मानिनः	पण्डित मानने वाले को		

एतदर्थो हि लोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः ।
वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः ॥२७॥

एतत् अर्थः हि लोके अस्मिन् अवतारः मया कृतः वध्या मे धर्मध्वजिनः ते हि पातकिनः अधिकाः ॥२७॥

हि एतत् अर्थः	क्योंकि इसी प्रयोजनसे	**मया**	मेरे द्वारा
अस्मिन् लोके	इस लोकमें	**अवतारः कृतः**	अवतार लिया गया है

धर्मध्वजिनः	पाखण्डी	हि ते अधिकाः	क्योंकि वे अधिक
मे वध्या	मेरे द्वारा मारणीय हैं	पातकिनः	पापी होते हैं' ॥२७॥

एतावदूक्त्वा भगवान् निवृत्तोऽसद्वधादपि ।
भावित्वातं कुशाग्रेण करस्थेनाहनत् प्रभुः ॥२८॥

एतावत् उक्त्वा भगवान् निवृत्तः असत् वधात् अपि भावित्वात् तं कुश अग्रेण करस्थेन अहनत् प्रभुः ॥२८॥

एतावत् उक्त्वा	इतना कहकर	करस्थेन	हाथमें स्थित
असत् वधात्	दुष्टोंके वधको	कुश अग्रेण	कुशकी नोंकसे
निवृत्तः अपि	छोड़े हुए होने पर भी	तं अहनत्	उनको मार दिया ॥२८॥
भावित्वात्	होनहारवश		
प्रभुः भगवान्	समर्थ भगवान (बलराम)ने		

हा हेति वादिनः सर्वे मुनयः खिन्नमानसाः ।
ऊचुः सङ्कर्षणं देवमधर्मस्ते कृतः प्रभो ॥२९॥

हा हा इति वादिनः सर्वे मुनयः खिन्न मानसाः ऊचुः सङ्कर्षणं देवं अधर्मः ते कृतः प्रभो ॥२९॥

हा हा	'हाय ! हाय !'	देवं सङ्कर्षणं	देव बलरामजीसे
इति	इस प्रकार	ऊचुः	बोले
वादिनः सर्वे	कहने वाले सब	प्रभो ते	'प्रभो ! आपने
खिन्न मनसाः	खिन्न चित्त	अधर्मः कृतः	अधर्म कर डाला ॥२९॥
मुनयः	मुनि गण		

अस्य ब्रह्मासनं दत्तमस्माभिर्यदुनन्दन ।
आयुश्चात्माक्लमं तावद् यावत् सत्रं समाप्यते ॥३०॥

अस्य ब्रह्म आसनं दत्तं अस्माभिः यदुनन्दन आयुः च आत्म अक्लमं तावत् यावत् सत्रं समाप्यते ॥३०॥

यदुनन्दन	यदुनन्दन !	**अक्लमं आयुः**	थकान रहित आयु
अस्माभिः अस्य	हम लोगों द्वारा इनको	**दत्तं**	दी गयी थी
		यावत् सत्रं	जब तक (हमारा) यज्ञ
ब्रह्म आसनं	ब्रह्मासन		
च तावत्	तथा तब तकके लिए	**समाप्यते**	समाप्त हो ॥३०॥

अजानतैवाचरितस्त्वया ब्रह्मवधो यथा ।
योगेश्वरस्य भवतो नाम्नायोऽपि नियामकः ॥३१॥

अजानता एव आचरितः त्वया ब्रह्मवधः यथा योगेश्वरस्य भवतः न आम्नायः अपि नियामकः ॥३१॥

अजानता एव	अनजानमें ही	**योगेश्वरस्य**	योगेश्वरका
त्वया यथा	आपके द्वारा जैसे	**आम्नायः अपि**	वेद भी
ब्रह्मवधः	ब्रह्महत्याके समान	**नियामकः न**	नियन्त्रणकर्ता नहीं है ॥३१॥
आचरितः	आचरण हो गया,		
भवतः	आप		

यद्येतद् ब्रह्महत्यायाः पावनं लोकपावन ।
चरिष्यति भवाँल्लोकसङ्ग्रहोऽनन्यचोदितः ॥३२॥

यदि एतत् ब्रह्महत्यायाः पावनं लोकपावन चरिष्यति भवान् लोक सङ्ग्रहः अनन्य चोदितः ॥३२॥

लोकपावन	लोकपावन !	**यदि एतत्**	यदि इस
अनन्य चोदितः	किसी दूसरे द्वारा प्रेरित न होने वाले आप	**ब्रह्महत्यायाः**	ब्रह्महत्याका
		भवान्	आप

पावनं	प्रायश्चित	**लोक सङ्ग्रहः**	लोकको शिक्षा
चरिष्यति	करेंगे तो		मिलेगी ॥३२॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

करिष्ये वधनिर्वेशं लोकानुग्रहकाम्यया ।
नियमः प्रथमे कल्पे यावान् स तु विधीयताम् ॥३३॥

करिष्ये वधनिर्वेशं लोक अनुग्रह काम्यया नियमः प्रथमे कल्पे यावान् स तु विधीयताम् ॥३३॥

वधनिर्वेशं	(इस) हत्याका प्रायश्चित	**प्रथमे कल्पे**	प्रथम कल्प (उत्तम) के
लोक अनुग्रह	लोकों पर कृपा	**यावान् नियमः**	जितने नियम हों
काम्यया	करनेकी इच्छासे	**स तु विधीयतां**	उनका ही विधान
करिष्ये	करूँगा		करें ॥३३॥

दीर्घमायुर्बतैतस्य सत्त्वमिन्द्रियमेव च ।
आशासितं यत्तद् ब्रूत साधये योगमायया ॥३४॥

दीर्घ आयुः बत एतस्य सत्त्वं इन्द्रियं एव च आशसितं यत् तत् ब्रूत साधये योगमायया ॥३४॥

बत एतस्य	तथा इस (सूत)के लिए	**आशसितं**	(आप लोगोंकी) अभिलाषा हो
दीर्घ आयुः	दीर्घायु	**तत् ब्रूत**	उसे बतलाइये
इन्द्रियं	ऐन्द्रिक	**योगमायया**	योगमाया द्वारा
सत्त्वं एव	बल भी	**साधये**	सम्पन्न कर दूंगा
च यत	तथा जो		॥३५॥

॥ ऋषय ऊचुः ॥

अस्त्रस्य तव वीर्यस्य मृत्योरस्माकमेव च ।
यथा भवेद् वचः सत्यं तथा राम विधीयताम् ॥३५॥

अस्त्रस्य तव वीर्यस्य मृत्योः अस्माकं एव च यथा भवेत् वचः सत्यं तथा राम विधीयताम् ॥३५॥

राम	बलरामजी	वचः एव	वचन भी
तव अस्त्रस्य	आपका अस्त्र	यथा सत्यं भवेत्	जैसे सत्य हों
वीर्यस्य	पराक्रम,	तथा विधीयतां	वैसा उपाय कीजिए
मृत्योः	(इसकी) मृत्यु		॥३५॥
च अस्माकं	तथा हम लोगोंका		

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेदानुशासनम् ।
तस्मादस्य भवेद् वक्ता आयुरिन्द्रियसत्त्ववान् ॥३६॥

आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेद अनुशासनं तस्मात् अस्य भवेत् वक्ता आयुः इन्द्रियसत्त्व वान् ॥३६॥

वै आत्मा	निश्चय आत्मा ही	तस्मात् अस्य	इसलिये इसका पुत्र
पुत्र उत्पन्न	पुत्ररूप में उत्पन्न है	आयुः	दीर्घायु
		इन्द्रियसत्त्व	इन्द्रियबल
इति वेद	ऐसी वेदकी	वान् वक्ता	वाला वक्ता
अनुशासनं	आज्ञा है	भवेत्	होगा ॥३६॥

किं वः कामो मुनिश्रेष्ठा ब्रूताहं करवाण्यथ ।
अजानतस्त्वपचितिं यथा मे चिन्त्यतां बुधाः ॥३७॥

किं वः कामः मुनिश्रेष्ठा ब्रूत अहं करवाणि अथ अजानतः तु अपचितिं यथा मे चिन्त्यतां बुधाः ॥३७॥

मुनिश्रेष्ठा	मुनिवरो !	अजानतः मे	मुझसे अनजान में
वः किं कामः	आप लोगोंका क्या काम	अपचितिं यथा चिन्त्यतां	(पापका) प्रायश्चित जैसे हो (उसे) विचार करें ॥३७॥
करवाणि	करूँ		
अथ बुधाः	और बुद्धिमानो		

॥ ऋषय ऊचुः ॥

इल्वलस्य सुतो घोरो बल्वलो नाम दानवः ।
स दूषयति नः सत्रमेत्य पर्वणि पर्वणि ॥३८॥

इल्वलस्य सुतः घोरः बल्वलः नाम दानवः स दूषयति नः सत्रं एत्य पर्वणि पर्वणि ॥३८॥

इल्वलस्य सुतः	इल्वलका पुत्र	एत्य नः सत्रं	आकर हमारे यज्ञ को
बल्वलः नाम	बल्वल नामक		
घोरः दानवः	घोर दानव है	दूषयति	दूषित करता है ॥३८॥
स पर्वणि पर्वणि	वह प्रत्येक पर्व पर		

तं पापं जहि दाशार्ह तन्नः शुश्रूषणं परम् ।
पूयशोणितविण्मूत्रसुरामांसाभिवर्षिणम् ॥३९॥

तं पापं जहि दाशार्ह तत् नः शुश्रूषणं परं पूय शोणित विट् मूत्र सुरा मांस अभिवर्षिणम् ॥३९॥

दाशार्ह	यदुनन्दन !	पापं जहि	पापीको मार दीजिए
तं पूय शोणित	उस पीब, रक्त,		
विट् मूत्र	विष्ठा, मूत्र	तत् नः परं	यही हम सबकी सबसे बड़ी
सुरा मांस	मदिरा, मांस		
अभिवर्षिणं	चारों ओर वर्षा करने वाले	शुश्रूषणं	सेवा होगी ॥३९॥

ततश्च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहितः ।
चरित्वा द्वादश मासांस्तीर्थस्नायी विशुद्धचसे ॥४०॥

ततः च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहितः चरित्वा द्वादश मासान् तीर्थस्नायी विशुद्धचसे ॥४०॥

ततः च	इसके अनन्तर	**परीत्य चरित्वा**	सब ओर घूमकर
भारतं वर्षं	भारतवर्ष में	**तीर्थस्नायी**	तीर्थ-स्नान करके
सुसमाहितः	पूर्ण एकाग्र होकर	**विशुद्धचसे**	(आप) शुद्ध हो
द्वादश मासान्	बारह महीने		जायेंगे ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
उत्तरार्धे बल्देवचरित्रे बल्वलवधोपक्रमो नाम
अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

अथ एकोनाशीतितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

ततः पर्वण्युपावृत्ते प्रचण्डः पांसुवर्षणः ।
भीमो वायुरभूद् राजन् पूयगन्धस्तु सर्वशः ॥ १ ॥

ततः पर्वणि उपावृत्ते प्रचण्डः पांसु वर्षणः भीमः वायुः अभूत् राजन् पूयगन्धः तु सर्वशः ॥१॥

राजन्	राजन् !	**भीमः वायुः**	भयंकर आंधी
ततः पर्वणि	पर्व काल	**तु सर्वशः**	और सब ओर
उपावृत्ते	आने पर	**पूयगन्धः**	दुर्गन्धि
पांसु वर्षणः	धूलि वर्षा करने वाली	**अभूत्**	फैल गयी ॥१॥

ततोऽमेध्यमयं वर्षं बल्वलेन विनिर्मितम् ।
अभवद् यज्ञशालायां सोऽन्वदृश्यत शूलधृक् ॥ २ ॥

ततः अमेध्यमयं वर्ष बल्वलेन विनिर्मितं अभवत् यज्ञशालायां सः अनु अदृश्यत शूलधृक् ॥२॥

ततः बल्वलेन	फिर बल्वल द्वारा	**अभवत्**	होने लगी
विनिर्मितं	उत्पन्न की गयी	**सः अनु**	वह इसके पीछेही
अमेध्यमयं वर्षं	अपवित्र वस्तुओं की वर्षा	**शूलधृक्**	त्रिशूल लिए
		अदृश्यत	दिखलायी पड़ा ॥२॥
यज्ञशालायां	यज्ञशालामें		

तं विलोक्य बृहत्कायं भिन्नाञ्जनचयोपमम् ।
तप्ततास्रशिखाश्मश्रुं दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीमुखम् ॥ ३ ॥

तं विलोक्य बृहत् कायं भिन्न अञ्जन चय उपमं तप्त ताम्र शिखा श्मश्रुं दंष्ट्रा उग्र भ्रुकुटी मुखम् ॥३॥

तं बृहत् कायं	उस बड़े भारी शरीर वाले	**शिखा श्मश्रुं**	केश तथा दाढ़ी-मूँछ वाले
भिन्न अञ्जन चय	कज्जल समूहको फोड़ कर निकलेके	**दंष्ट्रा भ्रुकुटी उग्र मुखं**	दाढ़ों और भौंहोंसे भयानक मुख वाले को
उपमं	समान		
तप्त ताम्र	तपाये तांबेके समान	**विलोक्य**	देखकर ॥३॥

सस्मार मुसलं रामः परसैन्यविदारणम् ।
हलं च दैत्यदमनं ते तूर्णमुपतस्थतुः ॥ ४ ॥

सस्मार मुसलं रामः परसैन्य विदारणं हलं च दैत्यदमनं ते तूर्णं उपतस्थतुः ॥४॥

परसैन्य विदारणं	शत्रु-सैन्य संहारक	**ते तूर्णं उपतस्थतुः**	वे शीघ्र (उनके) समीप उपस्थित हो गये ॥४॥
मुसलं च	मूसल तथा		
दैत्यदमनं	दैत्य-दलनकर्त्ता		
हलं	हलको		
रामः सस्मार	बलरामजीने स्मरण किया		

तमाकृष्य हलाग्रेण बल्वलं गगनेचरम् ।
मुसलेनाहनत् क्रुद्धो मूर्ध्नि ब्रह्मद्रुहं बलः ॥ ५ ॥

तं आकृष्य हल अग्रेण बल्वलं गगनेचरं मुसलेन अहनत् क्रुद्धः मूर्ध्नि ब्रह्म द्रुहं बलः ॥५॥

बलः तं	बलरामजीने उस	**आकृष्य**	खींचकर
ब्रह्म द्रुहं	ब्राह्मणद्रोही	**क्रुद्धः मुसलेन**	कुपित होकर मूसलसे
गगनेचरं	आकाशचारी	**मूर्ध्नि अहनत्**	सिर पर मारा ॥५॥
बल्वलं	बल्वलको		
हल अग्रेण	हलके अगले भागसे		

सोऽपतद् भुवि निर्भिन्नललाटोऽसृक् समुत्सृजन् ।
मुञ्चन्नार्तस्वरं शैलो यथा वज्रहतोऽरुणः ॥ ६ ॥

सः अपतत् भुवि निर्भिन्न ललाटः असृक् समुत्सृजन् मुञ्चन् आर्तस्वरं शैलः यथा वज्रहतः अरुणः ॥६॥

सः	वह	**यथावज्र हतः**	जैसे वज्रका मारा
निर्भिन्न ललाटः	ललाट फट जानेसे	**अरुणः शैलः**	लाल पर्वत हो
असृक्	बहुत	**भुवि अपतत्**	पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥६॥
समुत्सृजन्	रक्त बहाता		
आर्तस्वरं	आर्तनाद		
मुञ्चन्	करता		

संस्तुत्य मुनयो रामं प्रयुज्यावितथाशिषः ।
अभ्यषिञ्चन् महाभागा वृत्रघ्नं विबुधा यथा ॥ ७ ॥

संस्तुत्य मुनयः रामं प्रयुज्य अवितथ आशिषः अभ्यषिञ्चन् महाभागा वृत्रघ्नं विबुधा यथा ॥७॥

महाभागा	महाभाग	**अवितथ**	अमोघ
मुनयः	मुनियोंने	**आशिषः**	आशीर्वाद देकर
रामं	बलरामजीकी	**यथा वृत्रघ्नं**	जैसे वृत्रको मारने वाले इन्द्रका
संस्तुत्य	प्रशंसा करके		

विबुधा	देवताओंने (अभिषेक किया था)	**अभ्यषिञ्चन्**	अभिषेक किया ॥७॥

वैजयन्तीं ददुर्मालां श्रीधामाम्लानपङ्कजाम् ।
रामाय वाससी दिव्ये दिव्यान्याभरणानि च ॥ ८ ॥

वैजयन्तीं ददुः मालां श्रीधाम अम्लान पङ्कजां रामाय वाससी दिव्ये दिव्यानि आभरणानि च ॥८॥

रामाय	बलरामजीको	**दिव्ये वाससी**	दिव्य दो वस्त्र
श्रीधाम	शोभामयी	**च दिव्यानि**	तथा दिव्य
अम्लान पङ्कजां	न कुम्हलाने वाले कमलोंकी	**आभरणानि**	आभूषण
		ददुः	दिये ॥८॥
वैजयन्तीं मालां	वैजयन्ती (घुटनों तक लटकती) माला		

अथ तैरभ्यनुज्ञातः कौशिकीमेत्य ब्राह्मणैः ।
स्नात्वा सरोवरमगाद् यतः सरयुरास्रवत् ॥ ९ ॥

अथ तैः अभ्य अनुज्ञातः कौशिकीं एत्य ब्राह्मणैः स्नात्वा सरोवरं अगात् यतः सरयुः आस्रवत् ॥९॥

अथ तैः	फिर उन (मुनियों) से	**कौशिकीं एत्य**	कौशिकी (विश्वामित्री) नदीके पास आकर
अभ्य अनुज्ञातः	भली प्रकार अनुमति लेकर	**स्नात्वा**	(उसमें) स्नान करके
ब्राह्मणैः	ब्राह्मणोंके साथ		

सरोवरं अगात्	उस सरोवर पर गये	**आस्रवत्**	चारो ओरसे झरती है ॥९॥*
यतः सरयु	जिसमें सरयू नदी		

अनुस्रोतेन सरयूं प्रयागमुपगम्य सः ।
स्नात्वा सन्तर्प्य देवादीन् जगाम पुलहाश्रमम् ॥१०॥

अनुस्रोतेन सरयूं प्रयागं उपगम्य सः स्नात्वा सन्तर्प्य देव आदीन् जगाम पुलह आश्रमम् ॥१०॥

सरयूं	सरयूकी	**स्नात्वा**	स्नान करके
अनुस्रोतेन	धाराके साथ चलकर	**देव आदीन्**	देवतादिका
		सन्तर्प्य	तर्पण करके
सः प्रयागं	वे प्रयाग	**पुलह आश्रमं**	पुलह आश्रम
उपगम्य	पहुँचकर	**जगाम**	गये ॥१०॥

गोमतीं गण्डकीं स्नात्वा विपाशां शोण आप्लुतः ।
गयां गत्वा पितॄनिष्ट्वा गङ्गासागरसङ्गमे ॥११॥

गोमतीं गण्डकीं स्नात्वा विपाशां शोण आप्लुतः गयां गत्वा पितॄन् इष्ट्वा गङ्गासागर सङ्गमे ॥११॥

गोमतीं गण्डकीं	गोमती, गण्डकीमें	**पितॄन् इष्ट्वा**	पितृ पूजा करके
स्नात्वा	स्नान करके	**गङ्गासागर**	गंगा-सागर
शोण आप्लुतः	सोनमें स्नान किया	**सङ्गमे**	संगम गये ॥११॥
गयां गत्वा	गया जाकर		

---

*सरयू किसी एक हिम स्रोतसे नहीं निकलती। चारों ओर के पर्वतों से गिरते झरने एक स्थान पर मिलते हैं। इसीसे उसे 'सौधार' कहते हैं।

उपस्पृश्य महेन्द्राद्रौ रामं दृष्ट्वाभिवाद्य च ।
सप्तगोदावरीं वेणां पम्पां भीमरथीं ततः ॥१२॥

उपस्पृश्य महेन्द्र अद्रौ रामं दृष्ट्वा अभिवाद्य च सप्त गोदावरीं वेणां पम्पां भीमरथीं ततः ॥१२॥

महेन्द्र अद्रौ	महेन्द्राचल पर	**सप्तगोदावरीं**	सप्त गोदावरी
उपस्पृश्य	पहुँचकर	**वेणां पम्पां**	वेणा, पम्पा
रामं दृष्ट्वा	परशुरामजीका दर्शन करके	**ततः भीमरथीं**	फिर भीमरथी नदीमें स्नान किया) ॥१२॥
च अभिवाद्य	तथा उनको प्रणाम करके		

स्कन्दं दृष्ट्वा ययौ रामः श्रीशैलं गिरिशालयम् ।
द्रविडेषु महापुण्यं दृष्ट्वाद्रिं वेङ्कटं प्रभुः ॥१३॥

स्कन्दं दृष्ट्वा ययौ रामः श्रीशैलं गिरिश आलयं द्रविडेषु महापुण्यं दृष्ट्वा अद्रिं वेङ्कटं प्रभुः ॥१३॥

स्कन्दं दृष्ट्वा	स्वामि कार्तिकका दर्शन करके	**महापुण्यं**	महान् पवित्र
गिरिश आलयं	शंकरजीके निवास स्थान	**वेङ्कटं अद्रि**	वेङ्कटाचल (तिरुपति)का
श्रीशैलं	श्रीशैल पर गये	**प्रभुः दृष्ट्वा**	उन समर्थने दर्शन किया ॥१३॥
द्रविडेषु	द्रविड़ देशमें		

कामकोष्णीं पुरीं काञ्चीं कावेरीं च सरिद्वराम् ।
श्रीरङ्गाख्यं महापुण्यं यत्र सन्निहितो हरिः ॥१४॥

कामकोष्णीं पुरीं काञ्चीं कावेरीं च सरित् वरां श्रीरङ्ग आख्यं महापुण्यं यत्र सन्निहितः हरिः ॥१४॥

काम कोष्णीं	कामकोष्णी (नदीमें स्नान करके)	**महापुण्यं**	परम पवित्र
		श्रीरङ्ग आख्यं	श्रीरङ्ग नामक (क्षेत्र गये)
काञ्चीं पुरीं	काञ्ची पुरी गये,		
च सरित् वरां	तथा सरिता श्रेष्ठ	**यत्र हरिः**	जहाँ श्रीहरि
कावेरीं	कावेरी (में स्नान करके)	**सन्निहतः**	सदा विराजमान हैं ॥१४॥

ऋषभाद्रिं हरेः क्षेत्रं दक्षिणां मथुरां तथा ।
सामुद्रं सेतुमगमन्महापातकनाशनम् ॥१५॥

ऋषभाद्रिं हरेः क्षेत्रं दक्षिणां मथुरां तथा सामुद्रं सेतुं अगमन् महापातक नाशनम् ॥१५॥

हरेः क्षेत्रं	(वहाँसे) हरि क्षेत्र	**महापातक**	फिर महापाप
ऋषभाद्रिं	ऋषभादि	**माशनं**	नाशक
तथा दक्षिणां	तथा दक्षिणी	**सामुद्रं सेतुं**	सेतुबन्ध (रामेश्वर)
मथुरां	मथुरा गये	**अगमन्**	पहुँचे ॥१५॥

तत्रायुतमदाद् धेनूर्ब्राह्मणेभ्यो हलायुधः ।
कृतमालां ताम्रपर्णीं मलयं च कुलाचलम् ॥१६॥

तत्र अयुतं अदात् धेनुं ब्राह्मणेभ्यः हलायुधः कृतमालां ताम्रपर्णीं मलयं च कुल अचलम् ॥१६॥

हलायुधः	श्रीहलधरने	**कृतमालां**	(वहाँसे) कृतमाला
तत्र	वहाँ	**ताम्रपर्णीं**	ताम्रपर्णी
ब्राह्मणेभ्यः	ब्राह्मणोंको		
अयुतं	दस सहस्र		
अदात् धेनुं	गोदान किया		

च कुल अचलं	(में स्नान करते) फिर कुल पर्वत	मलयं	मलय (पर पहुँचे) ॥१६॥

तत्रागस्त्यं समासीनं नमस्कृत्याभिवाद्य च ।
योजितस्तेन चाशीर्भिरनुज्ञातो गतोऽर्णवम् ।
दक्षिणं तत्र कन्याख्यां दुर्गां देवीं ददर्श सः ॥१७॥

तत्र अगस्त्यं समासीनं नमस्कृत्य अभिवाद्य च योजितः तेन च आशीर्भिः अनुज्ञातः गतः अर्णवं दक्षिणं तत्र कन्या आख्यां दुर्गां देवीं ददर्श सः ॥१७॥

तत्र समासीनं	वहाँ विराजमान	**दक्षिणं**	दक्षिणी
अगस्त्यं	अगस्त्य ऋषिको	**अर्णवं गतः**	महासागर गये
नमस्कृत्य	नमस्कार	**तत्र कन्या**	वहाँ कन्या
च अभिवाद्य	तथा प्रणाम करके	**आख्यां**	नामवाली
तेन	उनके द्वारा	**दुर्गां देवीं**	दुर्गा देवीका
आशीर्भिः	आशीर्वाद	**सः ददर्श**	दर्शन किया ॥१७॥
योजितः	दिये जाने पर		
च अनुज्ञातः	एवं (उनकी) अनुमति लेकर		

ततः फाल्गुनमासाद्य पञ्चाप्सरसमुत्तमम् ।
विष्णुः सन्निहितो यत्र स्नात्वास्पर्शद् गवायुतम् ॥१८॥

ततः फाल्गुनं आसाद्य पञ्च अप्सरसं उत्तमं विष्णुः सन्निहितः यत्र स्नात्वा स्पर्शत् गवा अयुतम् ॥१८॥

ततः **फाल्गुनं**	फिर फाल्गुन क्षेत्र (अनन्तपुर)	**यत्र विष्णुः**	जहाँ भगवान विष्णु ही
आसाद्य	पहुँचकर		

सन्निहितः	(सदा) सन्निधि रहती है	**स्नात्वा**	स्नान करके
उत्तमं	उस श्रेष्ठ	**गवा अयुतं**	दस सहस्र गायें
पञ्च अप्सरसं	पञ्चाप्सरस* तीर्थ में	**स्पर्शत्**	दान कीं ॥१८॥

ततोऽभिव्रज्य भगवान् केरलांस्तु त्रिगर्तकान् ।
गोकर्णाख्यं शिवक्षेत्रं सान्निध्यं यत्र धूर्जटेः ॥१९॥

ततः अभिव्रज्य भगवान् केरलान् तु त्रिगर्तकान् गोकर्ण आख्यं शिवक्षेत्रं सान्निध्यं यत्र धूर्जटेः ॥१९॥

ततः भगवान्	फिर भगवान बलरामजी	**यत्र धूर्जटेः**	जहाँ शंकरजीकी
केरलान् तु	केरल और	**सान्निध्यं**	सदा सन्निधि है
त्रिगर्तकान्	त्रिगर्त देशमें	**गोकर्ण आख्यं**	उस गोकर्ण नामक
अभिव्रज्य	चलते हुए	**शिवक्षेत्रं**	शिवक्षेत्रमें पहुँचे ॥१९॥

आर्यां द्वैपायनीं दृष्ट्वा शूर्पारकमगाद् बलः ।
तापीं पयोष्णीं निर्विन्ध्यामुपस्पृश्याथ दण्डकम् ॥२०॥

आर्यां द्वैपायनीं दृष्ट्वा शूर्पारकं अगात् बलः तापीं पयोष्णीं निर्विन्ध्यां उपस्पृश्य अथ दण्डकम् ॥२०॥

द्वैपायनीं	द्वीपमें विराजमान	**आर्यां दृष्ट्वा**	आर्या देवीका दर्शन करके

---

*अनन्तपुर (त्रिवेन्द्रम्)में पञ्चाप्सर सरोवर तो हैं, किन्तु पश्चिमी समुद्र तट पर उडूपी-गोकर्णके बीचमें एक स्थान पर पाँच नदियोंका संगम है। 'पञ्च-अप्सरास' यह व्युत्पत्ति समीचीन लगी वहांके एक विद्वान की ।

बलः शूर्पारकं	बलरामजी शूर्पारक क्षेत्र	**निर्विन्ध्यां**	निर्विन्ध्यामें
		उपस्पृश्य	स्नान करके
अगात्	गये (फिर)	**अथ दण्डकं**	फिर दण्डकारण्य गये ॥२०॥
तापीं पयोष्णीं	तापी, पयोष्णी		

प्रविश्य रेवामगमद् यत्र माहिष्मती पुरी ।
मनुतीर्थमुपस्पृश्य प्रभासं पुनरागमत् ॥२१॥

प्रविश्य रेवां अगमत् यत्र माहिष्मती पुरी मनुतीर्थ उपस्पृश्य प्रभासं पुनः आगमत् ॥२१॥

यत्र	जहाँ	**मनुतीर्थ**	मनुतीर्थमें
माहिष्मती पुरी	माहिष्मती पुरी है	**उपस्पृश्य**	स्नान करके
रेवां प्रविश्य	वहां नर्मदा तट पर पहुँचकर	**पुनः प्रभासं**	फिर प्रभासक्षेत्रमें
		आगमत्	लौट आये ॥२१॥

श्रुत्वा द्विजैः कथ्यमानं कुरुपाण्डवसंयुगे ।
सर्वराजन्यनिधनं भारं मेने हृतं भुवः ॥२२॥

श्रुत्वा द्विजैः कथ्यमानं कुरु पाण्डव संयुगे सर्वराजन्य निधनं भारं मेने हृतं भुवः ॥२२॥

द्विजैः कथ्यमानं	ब्राह्मणों द्वारा वर्णन किया जाता	**श्रुत्वा भुवः**	सुनकर पृथ्वीका
		भारं	भार
कुरु पाण्डव	कौरव-पाण्डव	**हृतं मेने**	दूर हो गया माना ॥२२॥
संयुगे	युद्धमें		
सर्वराजन्य	सब राजाओंका		
निधनं	संहार		

स भीमदुर्योधनयोर्गदाभ्यां युध्यतोर्मृधे ।
वारयिष्यन् विनशनं जगाम यदुनन्दनः ॥२३॥

स भीम दुर्योधनयोः गदाभ्यां युध्यतः मृधे वारयिष्यन् विनशनं जगाम यदुनन्दनः ॥२३॥

स यदुनन्दनः	वे यदुनन्दन	**युध्यतः**	युद्ध करते हुए
भीम	भीमसेन और	**वारयिष्यन**	मना करनेके लिए
दुर्योधनयो	दुर्योधनको	**विनशनं जयाम**	कुरुक्षेत्र गये ॥२३॥
मृधे गदाभ्यां	युद्ध स्थलमें गदा द्वारा		

युधिष्ठिरस्तु तं दृष्ट्वा यमौ कृष्णार्जुनावपि ।
अभिवाद्याभवंस्तूष्णीं किंविवक्षुरिहागतः ॥२४॥

युधिष्ठिरः तु तं दृष्ट्वा यमौ कृष्ण अर्जुनाः अपि अभिवाद्य अभवन् तूष्णीं किं विवक्षुः इह आगतः ॥२४॥

युधिष्ठिरः तु	युधिष्ठिरने तो	**तूष्णीं अभवन्**	चुप हो गये
यमौ कृष्ण	युग्मज नकुल-सहदेव श्रीकृष्ण	**किं विवक्षु**	(सोचने लगे कि ये) क्या कहनेकी इच्छा से
अर्जुनाः अपि	तथा अर्जुन भी	**इह आगतः**	यहां आये हैं ॥२४॥
तं दृष्ट्वा	उनको देखकर		
अभिवाद्य	प्रणाम करके		

गदापाणी उभौ दृष्ट्वा संरब्धौ विजयैषिणौ ।
मण्डलानि विचित्राणि चरन्ताविदमब्रवीत् ॥२५॥

गदापाणी उभौ दृष्ट्वा संरब्धौ विजय ईषिणौ मण्डलानि विचित्राणि चरन्ताः इदं अब्रवीत् ॥२५॥

उभौ संरब्धौ	दोनोंको क्रोधमें भरे	**विचित्राणि**	अनेक प्रकारके
विजय ईषिणौ	विजय चाहने वाले	**मण्डलानि**	पैंतरे
गदापाणी	गदा हाथमें लिए	**चरन्ताः**	लेते
		दृष्ट्वा इदं	देखकर यह
		अब्रवीत्	बोले ॥२५॥

युवां तुल्यबलौ वीरौ हे राजन् हे वृकोदर ।
एकं प्राणाधिकं मन्ये उतैकं शिक्षयाधिकम् ॥२६॥

युवां तुल्यबलौ वीरौ हे राजन् हे वृकोदर एकं प्राण अधिकं मन्ये उत एकं शिक्षया अधिकम् ॥२६॥

हे राजन्	'हे राजन् (दुर्योधन) !	**उत**	तथा
हे वृकोदर	हे भीमसेन !	**एकं शिक्षया**	एक (दुर्योधन)को शिक्षामें
युवां तुल्यबलौ	तुम दोनों समान बलवान	**अधिकं मन्ये**	अधिक मानता हूँ ॥२६॥
वीरौ	वीर हो		
एकं	एक (भीम)को		
प्राण अधिकं	बलमें अधिक		

तस्मादेकतरस्येह युवयोः समवीर्ययोः ।
न लक्ष्यते जयोऽन्यो वा विरमत्यफलो रणः ॥२७॥

तस्मात् एकतरस्य इह युवयोः समवीर्ययोः न लक्ष्यते जयः अन्यः वा विरमतु अफलः रणः ॥२७॥

तस्मात्	इसलिए	**न लक्ष्यते**	नहीं दीखती है
समवीर्ययोः	समान बलवान	**अफलः रणः**	(अतः यह) निष्फल युद्ध
युवयोः इह	तुम दोनोंमेंसे यहां	**विरमतु**	रोक दिया जाय ॥२७॥
एकतरस्य	किसी एककी		
जयः अन्यः वा	विजया या दूसरी (पराजय)		

न तद्वाक्यं जगृहतुर्बद्धवैरौ नृपार्थवत् ।
अनुस्मरन्तावन्योन्यं दुरुक्तं दुष्कृतानि च ॥२८॥

न तत् वाक्यं जगृहतुः बद्धवैरौ नृप अर्थवत् अनुस्मरन्तः अन्य अन्यं दुरुक्तं दुष्कृतानि च ॥२८॥

नृप	राजन् !	अर्थवत् बद्धवैरौ	सप्रयोजन दृढ़ शत्रुता किये (उन्होंने)
अन्य अन्यं	एक दूसरेके	तत् वाक्यं	उनकी बातको
दुरुक्तं च	कटु वचनों तथा	न जगृहतुः	नहीं स्वीकार किया ॥२८॥
दुष्कृतानि	अपकर्मोंको		
अनुस्मरन्तः	बराबर स्मरण करते हुए		

दिष्टं तदनुमन्वानो रामो द्वारवतीं ययौ ।
उग्रसेनादिभिः प्रीतैर्ज्ञातिभिः समुपागतः ॥२९॥

दिष्टं तत् अनुमन्वानः रामः द्वारवतीं ययौ उग्रसेन आदिभिः प्रीतैः ज्ञातिभिः सम उपागतः ॥२९॥

तत् दिष्टं	तब दैव	प्रीतैः	प्रसन्नता पूर्वक
अनुमन्वानः	जो करेगा-होगा 'यह मानकर	उग्रसेन आदिभिः	उग्रसेनादि
		ज्ञातिभिः	जातिके लोग
रामः	बलरामजी	सम उपागतः	आगे आकर मिले ॥२९॥
द्वारवतीं ययौ	द्वारिका चले गये (वहां)		

तं पुनर्नैमिषं प्राप्तमृषयोऽयाजयन् मुदा ।
क्रत्वङ्गं क्रतुभिः सर्वैर्निवृत्ताखिलविग्रहम् ॥३०॥

तं पुनः नैमिषं प्राप्तं ऋषयः अयाजयन् मुदा क्रतु अङ्गम् क्रतुभिः सर्वैः निवृत्त अखिल विग्रहम् ॥३०॥

तं	उन	क्रतु अङ्गम्	यज्ञमूर्ति (बलराम जी)के
अखिल विग्रहं	सम्पूर्ण विरोधोंके		
निवृत्त	छोड़े हुए		

पुनः नैमिषं	फिर नैमिषारण्य	सर्वैः क्रतुभिः	सब प्रकारके यज्ञ
प्राप्तं	आने पर	अयाजयन्	करवाये ॥३०॥
मुदा ऋषयः	प्रसन्नतापूर्वक ऋषियोंने		

तेभ्यो विशुद्धविज्ञानं भगवान् व्यतरद् विभुः ।
येनैवात्मन्यदो विश्वमात्मानं विश्वगं विदुः ॥३१॥

तेभ्यः विशुद्ध विज्ञानं भगवान् व्यतरत् विभुः येन ऐव आत्मनि अदः विश्वं आत्मानं विश्वगं विदुः ॥३१॥

विभुः भगवान्	समर्थ भगवान बलरामजीने	विश्वं अदः	विश्वको व्याप्त (समाया)
तेभ्यः विशुद्ध	उनको विशुद्ध	आत्मानं	तथा आत्माको
विज्ञानं	विज्ञानका	विश्वगं	विश्वमें व्याप्त
व्यतरत	बाटा (उपदेश किया)	विदुः	(ऋषियोंने) जाना ॥३१॥
येन	जिससे		
आत्मनि एव	आत्मामें ही		

स्वपत्न्यावभृथस्नातो ज्ञातिबन्धुसुहृद्वृतः ।
रेजे स्वज्योत्स्नयेवेन्दुः सुवासाः सुष्ठ्वलङ्कृतः ॥३२॥

स्वपत्न्या अवभृथः स्नातः ज्ञाति बन्धु सुहृत् वृतः रेजे स्वज्योत्स्ना इव इन्दुः सुवासाः सुष्ठु अलङ्कृतः ॥३२॥

ज्ञाति बन्धु	जाति भाई	सुवासाः	उत्तम वस्त्र एवं
सुहृत् वृतः	मित्रोंसे घिरे	सुष्ठु	अच्छे आभूषणोंसे
स्वपत्न्या	अपनी पत्नियों सहित	अलङ्कृतः	अलंकृत होकर
अवभृथः स्नातः	अवभृथ (यज्ञान्त) स्नान करके	स्वज्योत्स्ना	अपनी चन्द्रिकासे
		इन्दुः इव रेजे	चन्द्रमाके समान शोभित हुए ॥३२॥

ईदृग्विधान्यसंख्यानि बलस्य बलशालिनः ।
अनन्तस्याप्रमेयस्य मायामर्त्यस्य सन्ति हि ॥३३॥

ईदृक् विधानि असंख्यानि बलस्य बलशालिनः अनन्तस्य अप्रमेयस्य मायामर्त्यस्य सन्ति हि ॥३३॥

अनन्तस्य	अनन्त	**हि असंख्यानि**	क्योंकि असंख्यों (चरित)
अप्रमेयस्य	अप्रमेय		
मायामर्त्यस्य	मायासे मनुष्य बने	**सन्ति**	हैं ॥३३॥
बलशालिनः	बलवान		
बलस्य ईदृक्	बलरामजीके इस प्रकारके		

योऽनुस्मरेत रामस्य कर्माण्यद्भुतकर्मणः ।
सायं प्रातरनन्तस्य विष्णोः स दयितो भवेत् ॥३४॥

यः अनुस्मरेत रामस्य कर्माणि अद्भुत कर्मणः सायं प्रातः अनन्तस्य विष्णोः स दयितः भवेत् ॥३४॥

अद्भुत कर्मणः	अद्भुतकर्मा	**स विष्णोः**	यह श्रीहरिको
अनन्तस्य	अनन्त	**दयितः**	प्रिय
रामस्य	बलरामजीके	**भवेत्**	हो जाता है ॥३४॥
कर्मणः यः	कर्मोंको जो		
सायं प्रातः	सायं-प्रातः		
अनुस्मरेत्	बराबर स्मरण करता है		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे बलदेवतीर्थयात्रानिरूपणं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

अथ अशीतितमोऽध्यायः

॥ राजोवाच ॥

भगवन् यानि चान्यानि मुकुन्दस्य महात्मनः ।
वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य श्रोतुमिच्छामहे प्रभो ॥ १ ॥

भगवन् यानि च अन्यानि मुकुन्दस्य महात्मनः वीर्याणि अनन्त वीर्यस्य श्रोतुं इच्छामहे प्रभो ॥१॥

भगवन् प्रभो	भगवन् ! प्रभो !	**वीर्याणि**	पराक्रम हैं
अनन्त वीर्यस्य	अनन्त पराक्रम	**श्रोतुं इच्छामहे**	उन्हें सुनाना चाहता हूँ ॥१॥
महात्मनः	महात्मा		
मुकुन्दस्य	मुकुन्दके		
अन्यानि च	दूसरे भी		
यानि	जो		

को नु श्रुत्वासकृद् ब्रह्मन्नुत्तमश्लोकसत्कथाः ।
विरमेत विशेषज्ञो विषण्णः काममार्गणैः ॥ २ ॥

कः नु श्रुत्वा असकृत् ब्रह्मन् उत्तमश्लोक सत् कथाः विरमेत विशेषज्ञः विषण्णः काममार्गणैः ॥२॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**सत् कथाः**	उत्तम कथाको
काम मार्गणैः	भोगोंको ढूढ़ते-ढूढ़ते	**असकृत् श्रुत्वा**	बार-बार सुनकर
विषण्णः	थक चुका	**विरमेत**	उससे उपरत होगा ॥२॥
नु कः विशेषज्ञः	भला कौन विशेषज्ञ		
उत्तमश्लोक	पवित्र कीर्ति भगवानकी		

सा वाग् यया तस्य गुणान् गृणीते
करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च ।
स्मरेद् वसन्तं स्थिरजङ्गमेषु
शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ॥ ३ ॥

सा वाक् यया तस्य गुणान् गृणीते करौ च तत् कर्म करौ मनः च स्मरेत् वसन्तं स्थिर जङ्गमेषु शृणोति तत् पुण्य कथाः स कर्णः ॥३॥

सा वाक्	वही वाणी है	वसन्तं स्मरेत्	निवास करने वाले को स्मरण करें
यया तस्य	जिससे उनका	मनः	वह मन है
गुणान् गृणीते	गुणगान होता है,	तत् पुण्य कथाः	और उनकी पवित्र कथा
च तत् कर्म	तथा उनके लिए कर्म	शृणोति स कर्णः	सुनें वे कान (सफल) हैं ॥३॥
करौ करौ	करने वाले हाथ हाथ हैं		
च	एवं		
स्थिर जङ्गमेषु	स्थावरज-ङ्गममें		

शिरस्तु तस्योभयलिङ्गमानमे-
त्तदेव यत् पश्यति तद्धि चक्षुः ।
अङ्गानि विष्णोरथ तज्जनानां
पादोदकं यानि भजन्ति नित्यम् ॥ ४ ॥

शिरः तु तस्य उभयलिङ्गम् आनमेत् तत् एव यत् पश्यति तत् हि चक्षुः अङ्गानि विष्णोः अथ तत् जनानां पाद उदकं यानि भजन्ति नित्यम् ॥४॥

तस्य	उनकी (चल-अचल)	आनमेत्	प्रणाम करे
उभयलिङ्गम्	दोनों प्रकारकी मूर्तियोंको	शिरः तु	वही सिर
		तत् एव यत्	उनका ही जो

पश्यति	दर्शन करे	**यानि भजन्ति**	जिनसे सेवन किया जाय
हि तत् चक्षुः	क्योंकि वही नेत्र	**अङ्गानि**	वे अङ्ग (सफल) हैं ॥४॥
विष्णोः अथ	श्रीहरि और		
तत् जनानां	उनके भक्तोंका		
पाद उदकं	चरणोदकका		
नित्यं	सदा		

॥ सूत उवाच ॥

विष्णुरातेन सम्पृष्टो भगवान् बादरायणिः ।
वासुदेवे भगवति निमग्नहृदयोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥

विष्णुरातेन सम्पृष्टः भगवान् बादरायणिः वासुदेवे भगवति निमग्न हृदयः अब्रवीत् ॥५॥

विष्णुरातेन	परीक्षित द्वारा	**भगवति**	भगवान
सम्पृष्टः	पूछे जाने पर	**वासुदेवे**	वासुदेवमें
भगवान्	भगवान	**निमग्न हृदयः**	तल्लीन हृदय
बादरायणि	व्यास-नन्दन	**अब्रवीत्**	बौले ॥५॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

कृष्णस्यासीत् सखा कश्चिद् ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ।
विरक्त इन्द्रियार्थेषु प्रशान्तात्मा जितेन्द्रियः ॥ ६ ॥

कृष्णस्य आसीत् सखा कश्चित् ब्राह्मणः ब्रह्मवित्तमः विरक्तः इन्द्रिय अर्थेषु प्रशान्त आत्मा जितेन्द्रियः ॥६॥

ब्रह्मवित्तमः	ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ	**विरक्तः**	विरक्त
इन्द्रिय अर्थेषु	इन्द्रियोंके विषयोंसे	**प्रशान्त आत्मा**	अत्यन्त शान्त चित्त

जितेन्द्रियः	जितेन्द्रियः	**कृष्णस्य सखा**	श्रीकृष्णका सखा
कश्चित्	कोई	**आसीत्**	था ॥६॥
ब्राह्मणः	ब्राह्मण		

यदृच्छयोपपन्नेन वर्तमानो गृहाश्रमी ।
तस्य भार्या कुचैलस्य क्षुत्क्षामा च तथाविधा ॥ ७ ॥

यदृच्छया उपपन्नेन वर्तमानः गृह आश्रमी तस्य भार्या कुचैलस्य क्षुत् क्षामा च तथा विधा ॥७॥

यदृच्छया	अपने आप	**क्षुत् क्षाम**	भूखसे दुबली
उपपन्नेन	प्राप्तसे	**भार्या च**	पत्नी भी
वर्तमानः	निर्वाह करने वाले वे	**तथा विधा**	उन्हींकी भांति थी ॥७॥
गृह आश्रमी	गृहस्थ थे,		
तस्य कुचैलस्य	उन फटे-पुराने वस्त्रों वालेकी		

पतिव्रता पतिं प्राह म्लायता वदनेन सा ।
दरिद्रा सीदमाना सा वेपमानाभिगम्य च ॥ ८ ॥

पतिव्रता पतिं प्राह म्लायता वदनेन सा दरिद्रा सीदमाना सा वेपमाना अभिगम्य च ॥८॥

सा दरिद्रा	वह दरिद्रा	**च वेपमाना**	तथा (डरसे) कांपती हुई
सीदमाना	दुःखिनी	**अभिगम्य**	समीप जाकर
पतिव्रता	पतिव्रता	**सा पतिं प्राह**	उसने पतिसे कहा ॥८॥
म्लायता	मलिन		
वदनेन	मुखसे		

ननु ब्रह्मन् भगवतः सखा साक्षाच्छ्रियः पतिः ।
ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च भगवान् सात्वतर्षभः ॥ ९ ॥

ननु ब्रह्मन् भगवतः सखा साक्षात् श्रियः पतिः ब्राह्मण्यः च शरण्यः च भगवान् सात्वत ऋषभः ॥९॥

ब्रह्मन् ननु	ब्रह्मन् ! भला	**ब्रह्मण्यः च**	ब्राह्मण भक्त एवं
साक्षात्	साक्षात्	**शरण्यः च**	शरणदाता भी
श्रियः पतिः	श्रीपति	**भगवतः सखा**	आपकेके मित्र हैं ॥९॥
भगवान्	भगवान्		
सात्वत ऋषभः	यदुश्रेष्ठ		
च	तथा		

तमुपैहि महाभाग साधूनां च परायणम् ।
दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुम्बिने ॥१०॥

तं उपैहि महाभाग साधूनां च परायणं दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुम्बिने ॥१०॥

साधूनां च	सत्पुरुषोंके तो	**ते सीदते**	आप कष्ट पाते
परायणं	वे परमाश्रय हैं	**कुटुम्बिने**	कुटुम्बवानको
महाभाग	महाभाग	**भूरि द्रविणं**	(वे) बहुत-सा धन
तं उपैहि	उनके समीप जाइये	**दास्यति**	देंगे ॥१०॥

आस्तेऽधुना द्वारवत्यां भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः ।
स्मरतः पादकमलमात्मानमपि यच्छति ।
किं न्वर्थकामान् भजतो नात्यभीष्टाञ्जगद्गुरुः ॥११॥

आस्ते अधुना द्वारवत्यां भोजवृष्णि अन्धक ईश्वरः स्मरतः पादकमलं आत्मानं अपि यच्छति किं नु अर्थ कामान् भजतः न अति अभीष्टान् जगद्गुरुः ॥११॥

अधुना	इन दिनों वे	**भोजवृष्णि**	भोजवृष्णि
द्वारवत्यां	द्वारिकामें		

अन्धक ईश्वरः	अन्धक वंशीयोंके स्वामी
आस्ते	विराजमान हैं
पादकमलं	(अपने) चरण-कमलोंका
स्मरतः	स्मरण करने वाले को
आत्मानं अपि	अपने आपको भी
यच्छति	दे देते हैं
भजतः	भजन करने वालेको
अति अभीष्टान्	बहुत अभीष्ट नहीं
अर्थ कामान्	धन और भोग
जगद्गुरुः नु किं	भला उन जगद्गुरुके लिए क्या होते हैं ॥११॥

स एवं भार्यया विप्रो बहुशः प्रार्थितो मृदु ।
अयं हि परमो लाभ उत्तमश्लोकदर्शनम् ॥१२॥

स एवं भार्यया विप्रः बहुशः प्रार्थितः मृदु अयं हि परमः लाभः उत्तमश्लोक दर्शनम् ॥१२॥

स	वह
एवं भार्यया	इस प्रकार पत्नी द्वारा
बहुशः मृदु	बहुत बार नम्रता पूर्वक
प्रार्थितः विप्रः	प्रार्थना किये जाने पर ब्राह्मणने
हि अयं	(सोचा) क्योंकि यह
उत्तमश्लोक	पुण्यकीर्ति (भगवान)का
दर्शनं	दर्शन
परमः लाभः	परम लाभ है ॥१२॥

इति सञ्चिन्त्य मनसा गमनाय मतिं दधे ।
अप्यस्त्युपायनं किञ्चिद् गृहे कल्याणि दीयताम् ॥१३॥

इति सञ्चिन्त्य मनसा गमनाय मतिं दधे अपि अस्ति उपायनं किञ्चित् गृहे कल्याणि दीयताम् ॥१३॥

मनसा इति	मनमें इस प्रकार
सञ्चिन्त्य	विचार करके
गमनाय	जानेका
मतिं दधे	निश्चय किया
कल्याणि	(पत्नीसे बोले) 'कल्याणि'
अपि गृहे	क्या घरमें

किञ्चित्	कुछ	अस्ति दीयतां	है तो दो' ॥१३॥
उपायनं	उपहार		

याचित्वा चतुरो मुष्टीन् विप्रान् पृथुकतण्डुलान् ।
चैलखण्डेन तान् बद्ध्वा भर्त्रे प्रादादुपायनम् ॥१४॥

याचित्वा चतुरः मुष्टीन् विप्रान् पृथक तण्डुलान् चैलखण्डेन तान् बद्ध्वा भर्त्रे प्रादात् उपायनम् ॥१४॥

विप्रान्	(उसने) ब्राह्मणोंके	भर्त्रे उपायनं	पतिको उपहार देनेको
चतुरः मुष्टीन्	चार मुट्ठी		
पृथक् तण्डुलान्	चिउड़े	प्रादात्	दे दिया ॥१४॥
याचित्वा तान्	मांगकर उन्हें		
चैलखण्डेन	वस्त्रके टुकड़ेमें		
बद्ध्वा	बांधकर		

स तानादाय विप्राग्र्यः प्रययौ द्वारकां किल ।
कृष्णसन्दर्शनं मह्यं कथं स्यादिति चिन्तयन् ॥१५॥

स तान् आदाय विप्र अग्र्यः प्रययौ द्वारिकां किल कृष्ण सन्दर्शनं मह्यं कथं स्यात् इति चिन्तयन् ॥१५॥

स विप्र अग्र्यः	वे ब्राह्मण श्रेष्ठ	चिन्तयन्	सोचते हुए
किल तान् आदाय	अहो उन्हींको लेकर	किल द्वारिकां	अहो द्वारिका
मह्यं कृष्ण	'मुझे श्रीकृष्णका	प्रययौ	चल पड़े ॥१५॥
सन्दर्शनं	दर्शन ठीक ढंगसे		
कथं स्यात् इति	कैसे होगा' इस प्रकार		

त्रीणि गुल्मान्यतीयाय तिस्रः कक्षाश्च स द्विजः ।
विप्रोऽगम्यान्धकवृष्णीनां गृहेष्वच्युतधर्मिणाम् ॥१६॥

त्रीणि गुल्मानि अतीयाय तिस्रः कक्षाः च स द्विजः अगम्य अन्धक वृष्णीनां गृहेषु अच्युत धर्मिणाम् ॥१६॥

स द्विजः	(द्वारिकामें दूसरे) ब्राह्मणोंके साथ
त्रीणि गुल्मानि	(सैनिकोंकी) तीन छावनियां
च तिस्रः कक्षाः	तीन ड्योढ़ियां
अतीयाय	पार करके
अच्युत धर्मिणां	भगवद्धर्मका पालन करने वाले
अन्धक वृष्णीनां	अन्धक, वृष्णि वंशियोंके
अगम्य गृहेषु	उन घरोंमें जहाँ पहुँचना कठिन है
विप्रः	ब्राह्मण (होनेसे पहुँचे) ॥१६॥

गृहं द्व्यष्टसहस्राणां महिषीणां हरेर्द्विजः ।
विवेशैकतमं श्रीमद् ब्रह्मानन्दं गतो यथा ॥१७॥

गृहं द्वि अष्ट सहस्राणां महिषीणां हरेः द्विजः विवेश एकतमं श्रीमत् ब्रह्मानन्दं गतः यथा ॥१७॥

द्विजः	(उसके पश्चात् वे) विप्रवर
हरेः महिषीणां	श्रीहरिकी रानियों
द्वि अष्ट	दो आठ (सोलह)
सहस्राणां	सहस्र
श्रीमत् गृहं	शोभा सम्पन्न भवनोंमेंसे
एकतमं विवेश	एकमें प्रविष्ट हुए
यथा	(उन्हें लगा) जैसे
ब्रह्मानन्दं गतः	ब्रह्मानन्दमें पहुँच गये ॥१७॥

तं विलोक्याच्युतो दूरात् प्रियापर्यङ्कमास्थितः ।
सहसोत्थाय चाभ्येत्य दोर्भ्यां पर्यग्रहीन्मुदा ॥१८॥

तं विलोक्य अच्युतः दूरात् प्रियापर्यङ्कम् आस्थितः सहसा उत्थाय च दोर्भ्यां पर्यगृहीत् मुदा ॥१८॥

प्रियापर्यङ्कम्	प्रियतमाके पलंग पर	**अभिएत्य**	सामने आकर
आस्थितः	बैठे	**मुदा दोर्भ्यां**	हर्षसे भुजाओंमें
अच्युतः तं	अच्युतने उनको	**पर्यग्रहीत्**	भरकर पकड़ लिया
दूरात् विलोक्य	दूरसे ही देखकर		॥१८॥
सहसा उत्थाय	झटपट उठकर		

सख्युः प्रियस्य विप्रर्षेरङ्गसङ्गातिनिर्वृतः ।
प्रीतो व्यमुञ्चदब्बिन्दून् नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥१९॥

सख्युः प्रियस्य विप्रर्षेः अङ्ग सङ्ग अति निर्वृतः प्रीतः व्यमुञ्चत् अब् बिन्दून् नेत्राभ्यां पुष्कर ईक्षणः ॥१९॥

प्रियस्य सख्युः	प्रिय सखा	**पुष्कर ईक्षणः**	कमल-लोचन
विप्रर्षेः	उन ब्रह्मर्षिके	**नेत्राभ्यां**	नेत्रोंसे
अङ्ग सङ्ग	अंग सगसे	**अब् बिन्दून्**	जल (अश्रु) बिन्दु
अति	अत्यन्त	**व्यमुञ्चत्**	नहाने लगे ॥१९॥
निर्वृतः प्रीतः	आनन्दित प्रसन्न		

अथोपवेश्य पर्यङ्के स्वयं सख्युः समर्हणम् ।
उपहृत्यावनिज्यास्य पादौ पादावनेजनीः ॥२०॥

अथ उपवेश्य पर्यङ्के स्वयं सख्युः समअर्हणं उपहृत्य अवनिज्य अस्य पादौ पाद अवनेजनीः ॥२०॥

अथ पर्यङ्के	फिर पलंग पर	**अस्य पादौ**	इनके चरण
उपवेश्य	बैठाकर	**अवनिज्य**	प्रक्षालित करके
स्वयं सख्युः	स्वयं सखाकी	**पाद अवनेजनीः**	वह चरणोदक
समर्हणं उपहृत्य	पूरी पूजा सामग्री लाकर		॥२०॥

अग्रहीच्छिरसा राजन् भगवाँल्लोकपावनः ।
व्यलिम्पद् दिव्यगन्धेन चन्दनागुरुकुंकुमैः ॥२१॥

अग्रहीत् शिरसा राजन् भगवान् लोकपावनः व्यलिम्पत् दिव्य गन्धेन चन्दन अगुरु कुंकुमैः ॥२१॥

राजन्	राजन् !	**चन्दन अगुरु**	चन्दन, अगुरु,
लोकपावनः	सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करने वाली	**कुंकुमैः**	कुंकुम पड़ा
		दिव्य गन्धेन	दिव्य गंध अंगराग का
भगवान्	भगवानने		
शिरसा अग्रहीत्	उसे सिर पर धारण किया	**व्यलिम्पत्**	लेप किया ॥२१॥

धूपैः सुरभिर्भिमित्रं प्रदीपावलिभिर्मुदा ।
अर्चित्वाऽऽवेद्य ताम्बूलं गां च स्वागतमब्रवीत् ॥२२॥

धूपैः सुरभिभिः मित्रं प्रदीप अवलिभिः मुदा अर्चित्वा आवेद्य ताम्बूलं गां च स्वागतं अब्रवीत् ॥२२॥

मित्रं	मित्रका	**ताम्बूलं च गां**	पान और गौ
सुरभिभिः धूपैः	सुगन्धित धूप	**आवेद्य**	निवेदन करके
प्रदीप अवलिभिः	दीप समुदाय (आरती)से	**स्वागतं अब्रवीत**	स्वागत व वचन कहा ॥२२॥
मुदा अर्चित्वा	प्रसन्नतासे पूजा करके		

कुचैलं मलिनं क्षामं द्विजं धमनिसंततम् ।
देवी पर्यचरत् साक्षाच्चामरव्यजनेन वै ॥२३॥

कुचैलं मलिनं क्षामं द्विजं धमनि संत तं देवी पर्यचरत् साक्षात् चामर व्यजनेन वै ॥२३॥

कुचैलं मलिनं	फटे-पुराने वस्त्र, मैले शरीर
धमनि संत तं	दीखती नसोंसे भरे देह वाले
द्विजं वै	ब्राह्मणकी निश्चित रूपसे
साक्षात् देवी	साक्षात् देवी लक्ष्मी रूपा रुक्मिणी
चामर व्यजनेन	चँवर तथा पंखेसे
पर्यचरत्	सेवा करने लगीं ॥२३॥

अन्तःपुरजनो दृष्ट्वा कृष्णेनामलकीर्तिना ।
विस्मितोऽभूदतिप्रीत्या अवधूतं सभाजितम् ॥२४॥

अन्तः पुरजनः दृष्ट्वा कृष्णेन अमल कीर्तिना विस्मितः अभूत् अतिप्रीत्या अवधूतं सभाजितम् ॥२४॥

अमल कीर्तिना	निर्मल कीर्ति
कृष्णेन	श्रीकृष्ण द्वारा
अतिप्रीत्या	अतिशय प्रेमसे
अवधूतं	भिक्षुकका
सभाजितं	सत्कार करते
दृष्ट्वा	देखकर
अन्तः पुरजनः	अन्तःपुरके लोग
विस्मितः अभूत्	चकित हो गये ॥२४॥

किमनेन कृतं पुण्यमवधूतेन भिक्षुणा ।
श्रिया हीनेन लोकेऽस्मिन् गर्हितेनाधमेन च ॥२५॥

किं अनेन कृतं पुण्यं अवधूतेन भिक्षुणा श्रिया हीनेन लोके अस्मिन् गर्हितेन अधमेन च ॥२५॥

ननेन अधमेन च	(परस्पर बात करने लगे)—इस निकृष्ट तथा
श्रिया हीनेन	श्रीहीन
अस्मिन् लोके	(अतः) इस लोक में
गर्हितेन	निन्दित
अवधूतेन	अवधूत
भिक्षुणा	भिक्षुकने
किं पुण्यं कृतं	क्या पुण्य किया है ॥२५॥

योऽसौ त्रिलोकगुरुणा श्रीनिवासेन सम्भृतः ।
पर्यङ्कस्थां श्रियं हित्वा परिष्वक्तोऽग्रजो यथा ॥२६॥

यः असौ त्रिलोक गुरुणा श्रीनिवासेन सम्भृतः पर्यङ्कस्थां श्रियं हित्वा परिष्वक्तः अग्रजः यथा ॥२६॥

यः असौ	यह जो
त्रिलोक गुरुणा	त्रिभुवन गुरु
श्रीनिवासेन	श्रीनिवास श्रीकृष्ण द्वारा
पर्यङ्कस्थां	पलंग पर बैठी
श्रियं हित्वा	लक्ष्मीजीको छोड़कर
अग्रजः यथा	बड़े भाईके समान
परिष्वक्तः	आलिंगन किया गया और
सम्भृतः	बहुत आदरसे लिया गया' ॥२६॥

कथयाञ्चक्रतुर्गाथाः पूर्वा गुरुकुले सताः ।
आत्मनो ललिता राजन् करौ गृह्य परस्परम् ॥२७॥

कथयान् चक्रतुः गाथाः पूर्वा गुरुकुले सताः आत्मनो ललिता राजन् करौ गृह्य परस्परम् ॥२७॥

राजन्	राजन् !
परस्परं	आपसमें
करौ गृह्य	(एक दूसरेका) हाथ पकड़ कर
गुरुकुले सताः	जब गुरुकुलमें रहते थे
पूर्वा ललिता	वह पहिलेकी सुन्दर
आत्मनो गाथाः	अपनी कथाएँ
कथयान् चक्रतुः	कहने लगे ॥२७॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

अपि ब्रह्मन् गुरुकुलाद् भवता लब्धदक्षिणात् ।
समावृत्तेन धर्मज्ञ भार्योढा सदृशी न वा ॥२८॥

अपि ब्रह्मन् गुरुकुलात् भवता लब्ध दक्षिणात् समावृत्तेन धर्मज्ञ भार्या ऊढा सदृशी न वा ॥२८॥

धर्मज्ञ ब्रह्मन्	धर्मज्ञ ब्रह्मन् !	**भवता सदृशी**	तुमने अपने समान
लब्ध दक्षिणात्	(गुरुजीको) दक्षिणा प्राप्त कराके	**अपि भार्या ऊढा**	क्या पत्नीसे विवाह किया
गुरुकुलात्	गुरुकुलसे	**वा न**	अथवा नहीं किया ? ॥२८॥
समावृत्तेन	समावर्तन संस्कार हो जाने पर		

प्रायो गृहेषु ते चित्तमकामविहतं तथा ।
नैवातिप्रीयसे विद्वन् धनेषु विदितं हि मे ॥२९॥

प्रायः गृहेषु ते चित्तं अकाम विहितं तथा न एव अति प्रीयसे विद्वन् धनेषु विदितं हि मे ॥२९॥

विद्वन्	विद्वन् !	**चित्तं गृहेषु**	चित्त घरमें
हि मे विदितं	क्योंकि मुझे ज्ञात है कि	**तथा धनेषु**	तथा धनमें
ते	तुम्हारा	**अति न**	बहुत नहीं
अकाम विहितं	अनासक्त	**एव प्रीयसे**	ही प्रसन्न होता ॥२९॥

केचित् कुर्वन्ति कर्माणि कामैरहतचेतसः ।
त्यजन्तः प्रकृतीर्दैवीर्यथाहं लोकसंग्रहम् ॥३०॥

केचित् कुर्वन्ति कर्माणि कामैः अहत चेतसः त्यजन्तः प्रकृतीः दैवीः यथा अहं लोक सङ्ग्रहम् ॥३०॥

दैवीः प्रकृतीः	दैवी (सात्विक त्यागमयी) प्रकृति को भी	**त्यजन्तः**	त्याग (नियन्त्रित) करते हुए
		कामैः	कामनाओंसे

अहृत चेतसः	अनाहृत चित्त (अनासक्त)	**लोक सङ्ग्रहम्**	लोक शिक्षाके लिए
		यथा अहं	जैसे मैं
केचित्	कोई लोग	**कर्माणि कुर्वन्ति**	कर्म करते हैं ॥३०॥

कच्चिद् गुरुकुले वासं ब्रह्मन् स्मरसि नौ यतः ।
द्विजो विज्ञाय विज्ञेयं तमसः पारमश्नुते ॥३१॥

कच्चित् गुरुकुले वासं ब्रह्मन् स्मरसि नौ यतः द्विजः विज्ञाय विज्ञेयं तमसः पारं अश्नुते ॥३१॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**विज्ञेयं विज्ञाय**	जानने योग्य बातें जानकर
कच्चित् नौ	क्या हम दोनोंका	**तमसः पारं**	अज्ञानसे पार
गुरुकुले वासं	गुरुकुल निवास	**अश्नुते**	(ज्ञानकी स्थिति) भोगते हैं ॥३१॥
स्मरसि	(कभी) स्मरण करते हैं		
यतः द्विजः	जहाँ रहकर द्विजाति		

स वै सत्कर्मणां साक्षात् द्विजातेरिह सम्भवः ।
अद्योऽङ्ग यत्राश्रमिणां यथाहं ज्ञानदो गुरुः ॥३२॥

स वै सत् कर्मणां साक्षात् द्विजातेः इह सम्भवः आद्यः अङ्ग यत्र आश्रमिणां यथा अहं ज्ञानदः गुरुः ॥३२॥

अङ्ग	प्रिय मित्र !	**यत्र आश्रमिणां**	जहाँ सब आश्रम वालोंके
वै स द्विजातेः	निश्चय वह द्विजाति में	**ज्ञानदः गुरुः**	ज्ञान दाता गुरु हैं वे
		यथा अहं	मेरे समान हैं ॥३२॥
इह सत् कर्मणां	इस संसारमें उत्तम कर्मोंके		
सम्भवः आद्यः	उत्पन्न होनेका प्रथम स्थान है		

ननु्वर्थकोविदा ब्रह्मन् वर्णाश्रमवतामिह ।
ये मया गुरुणा वाचा तरन्त्यञ्जो भवार्णवम् ॥३३॥

ननु अर्थ कोविदा ब्रह्मन् वर्ण आश्रमवतां इह ये मया गुरुणा वाचा तरन्ति अञ्जः भव अर्णवम् ॥३३॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	भव अर्णवं	भव सागर
वर्ण आश्रमवतां	वर्ण आश्रमधारियों में	तरन्ति	पार कर लेते हैं
इह ये	इस संसारमें जो	ननु अर्थं	निश्चय वे अपना
मया गुरुणा	मेरे स्वरूप गुरुकी	कोविदा	स्वार्थ जाननेमें
वाचा अञ्जः	वाणीसे सरलता पूर्वक		निपुण हैं ॥३३॥

नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन वा ।
तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ॥३४॥

न अहं इज्या प्रजातिभ्यां तपसा उपशमेन वा तुष्येयं सर्वभूत आत्मा गुरु शुश्रूषया यथा ॥३४॥

अहं सर्वभूत	मैं सब प्राणियोंका	इज्या	यज्ञ,
आत्मा	आत्मा	प्रजातिभ्यां	ब्रह्मचर्य
यथा	जैसा	तपसा वा	तपस्या अथवा
गुरु शुश्रूषया	गुरु-सेवासे	उपशमेन न	वैराग्यादिसे (वैसा)
तुष्येयं	सन्तुष्ट होता हूँ		नहीं होता ॥३४॥

अपि नः स्मर्यते ब्रह्मन् वृत्तं निवसतां गुरौ ।
गुरुदारैश्चोदितानामिन्धनानयने क्वचित् ॥३५॥

अपि नः स्मर्यते ब्रह्मन् वृत्तं निवसतां गुरौ गुरुदारैः चोदितानां इन्धन आनयने क्वचित् ॥३५॥

नः गुरौ	हम लोगोंके गुरुके समीप	इन्धन आनयने	ईंधन लानेके लिए
निवसतां	निवास करते समय	चोदितानां	प्रेरित करने पर
क्वचित्	किसी समय	स्मर्यते	(जो घटना हुइ उसे) स्मरण करते हैं ॥३५॥
गुरुदारैः	गुरुपत्नी द्वारा		

प्रविष्टानां महारण्यमपर्तौ सुमहद् द्विज ।
वातवर्षमभूत्तीव्रं निष्ठुराः स्तनयित्नवः ॥३६॥

प्रविष्टानां महा अरण्यं अपर्तौ सुमहत् द्विज वात वर्ष अभूत् तीव्रं निष्ठुराः स्तनयित्नवः ॥३६॥

महा अरण्यं	घोर वनमें	सुमहत् वात	प्रचण्ड आंधी और
प्रविष्टानां	(हमारे) प्रवेश करने पर	तीव्रं वर्ष	तीव्र वर्षा
द्विज	ब्रह्मन् !	निष्ठुराः	कठोर
अपर्तौ	वर्षाका समय न होने पर भी	स्तनयित्नवः	मेघ गर्जना
		अभूत्	होने लगी ॥३६॥

सूर्यश्चास्तं गतस्तावत् तमसा चावृता दिशः ।
निम्नं कूलं जलमयं न प्राज्ञायत किंचन ॥३७॥

सूर्यः च अस्तं गतः तावत् तमसा च आवृता दिशः निम्नं कूलं जलमयं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥३७॥

तावत् सूर्यः च	तब तक सूर्य भी	जलमयं	जलमय होनेसे
अस्तं गतः	अस्त हो गया	निम्नं कूलं	गड्ढा, किनारा
च दिशः	और दिशाएँ	किञ्चन	कुछ
तमसा आवृता	अन्धकारसे ढक गयीं	प्राज्ञायत न	जान नहीं पड़ता था ॥३७॥

वयं भृशं तत्र महानिलाम्बुभि-
र्निहन्यमाना मुहुरम्बुसम्प्लवे ।
दिशोऽविदन्तोऽथ परस्परं वने
गृहीतहस्ताः परिबभ्रिमातुराः ॥३८॥

वयं भृशं तत्र महा अनिल अम्बुभिः निहन्यमाना मुहुः अम्बुसम्प्लवे दिशः अविदन्तः अथ परस्परं वने गृहीतहस्ताः परिबभ्रिम आतुराः ॥३८॥

अम्बुसम्प्लवे	उस जल-प्रलयमें	**दिशः अविदन्त**	दिशाएँ न जानते हुए
महा अनिल	प्रचण्ड आंधी और	**अथ परस्परं**	उस समय परस्पर
अम्बुभिः	वर्षासे		एक दूसरेका
तत्र वयं भृशं	वहां हम दोनों अत्यधिक	**गृहीतहस्ताः**	हाथ पकड़े
		आतुराः	व्याकुल होकर
मुहुः	बार-बार	**परिबभ्रिम**	चारों ओर भटकते
निहन्यमाना	ताड़ित होते		रहे ॥३८॥

एतद् विदित्वा उदिते रवौ सान्दीपनिर्गुरुः ।
अन्वेषमाणो नः शिष्यानाचार्योऽपश्यदातुरान् ॥३९॥

एतत् विदित्वा उदिते रवौ सान्दीपनिः गुरुः अन्वेषमाणो नः शिष्यान् आचार्यः अपश्यत् आतुरान् ॥३९॥

एतत् विदित्वा	यह जानकर	**नः शिष्यान्**	हम शिष्योंको
रवौ उदिते	सूर्योदय होने पर	**अन्वेषमाणो**	ढूंढ़ते हुए
आचार्यः गुरुः	आचार्य गुरुदेव	**आतुरान्**	व्याकुल
सान्दीपनिः	सान्दीपनिजी	**अपश्यत्**	देखा ॥३९॥

अहो हे पुत्रका यूयमस्मदर्थेऽतिदुःखिताः ।
आत्मा वै प्राणिनां प्रेष्ठस्तमनादृत्य मत्पराः ॥४०॥

अहो हे पुत्रका यूयं अस्मत् अर्थे अति दुःखिताः आत्मा वै प्राणिनां प्रेष्ठः तं अनादृत्य मत् पराः ॥४०॥

अहो हे पुत्रका	(बोले) अहो, हे नन्हे पुत्रो !	**आत्मा प्रेष्ठः**	शरीर अत्यन्त प्रिय होता है
अस्मत् अर्थे	हमारे लिए	**तं अनादृत्य**	उसकी उपेक्षा करके
यूयं अति	तुम लोग बहुत	**मत् पराः**	मेरे परायण हो
दुःखिताः	दुःखी हुए		॥४०॥
वै प्राणिनां	निश्चय प्राणियोंको		

एतदेव हि सच्छिष्यैः कर्तव्यं गुरुनिष्कृतम् ।
यद् वै विशुद्धभावेन सर्वार्थात्मार्पणं गुरौ ॥४१॥

एतत् एव हि सत् शिष्यैः कर्तव्यं गुरु निष्कृतम् यत् वै विशुद्ध भावेन सर्व अर्थ आत्म अर्पणं गुरौ ॥४१॥

हि एतत् एव वै	क्योंकि इतना ही निश्चित रूपसे	**यत् विशुद्ध भावेन**	जो शुद्ध भावसे
सत् शिष्यैः	उत्तम शिष्य द्वारा	**सर्व अर्थ आत्म गुरौ**	समस्तु पुरुषार्थ रूप शरीर गुरुको
गुरु निष्कृतम्	गुरु ऋणसे मुक्त होनेके लिए	**अर्पणं**	समर्पित कर दे
कर्तव्यं	करने योग्य है		॥४१॥

तुष्टोऽहं भो द्विजश्रेष्ठाः सत्याः सन्तु मनोरथाः ।
छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्विह परत्र च ॥४२॥

तुष्टः अहं भो द्विजश्रेष्ठाः सत्याः सन्तु मनोरथाः छन्दांसि अयात यामानि भवन्तु इह परत्र च ॥४२॥

भो द्विजश्रेष्ठाः	हे द्विजोत्तमो !	**मनोरथाः**	(तुम्हारी) अभिलाषाएँ
अहं तुष्टः	मैं (तुमसे) सन्तुष्ट हो गया	**सत्याः सन्तु**	सत्य (पूर्ण) हों

छन्दांसि	वेद (तुम्हें)	**अयात यामानि**	एक प्रहर बीतेसे भी पूर्वके समान (ताजे) रहें' ॥४२॥
इह लोके	इस लोकमें		
च परत्र	तथा परलोकमें भी		

इत्थंविधान्यनेकानि वसतां गुरुवेश्मसु ।
गुरोरनुग्रहेणैव पुमान् पूर्णः प्रशान्तये ॥४३॥

इत्थं विधानि अनेकानि वसतां गुरुवेश्मसु गुरोः अनुग्रहेण एव पुमान् पूर्णः प्रशान्तये ॥४३॥

गुरुवेश्मसु	गुरुगृहमें	**पुमान् पूर्णः**	पुरुष पूर्ण मनोरथ एवं
वसतां	रहते समय		
इत्थं विधानि	इस प्रकारकी	**प्रशान्तये**	शान्ति पाने योग्य होता है ॥४३॥
अनेकानि	अनेकों (घटनाएँ हुईं)		
गुरोः	गुरुकी		
अनुग्रहेण एव	कृपासे ही		

॥ ब्राह्मण उवाच ॥

किमस्माभिरनिर्वृत्तं देवदेव जगद्गुरो ।
भवता सत्यकामेन येषां वासो गुरावभूत् ॥४४॥

किं अस्माभिः अनिर्वृत्तं देवदेव जगद्गुरो भवता सत्यकामेन येषां वासः गुरोः अभूत् ॥४४॥

देवदेव	देवदेव !	**गुरोः अभूत्**	(उन दिनों) गुरुके यहां था
जगद्गुरो	जगद्गुरो !		
सत्यकामेन	सत्य संकल्प	**अस्माभिः**	हम लोगोंने
भवता	आपके रहते	**किं अनिर्वृत्तं**	क्या आनन्द नहीं पाया ॥४४॥
येषां वासः	जिनका निवास		

यस्यच्छन्दोमयं ब्रह्म देह आवपनं विभो ।
श्रेयसां तस्य गुरुषु वासोऽत्यन्तविडम्बनम् ॥४५॥

यस्यः छन्दोमयं ब्रह्म देहः आवपनं विभो श्रेयसां तस्य गुरुषु वासः अत्यन्त विडम्बनम् ॥४५॥

विभो	प्रभो !	**तस्य गुरुषु वासः**	उनका गुरुके समीप रहना
यस्यः देहः	जिनका शरीर	**अत्यन्त**	अत्यन्त
छन्दोमयं ब्रह्म	मन्त्रमय वेद	**विडम्बनं**	विडम्बना है ॥४५॥
श्रेयसां	समस्त कल्याणोंको		
आवपनं	उत्पन्न करने वाला है		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे श्रीदामचरिते अशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

अथ एकाशीतितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

स इत्थं द्विजमुख्येन सह संकथयन् हरिः ।
सर्वभूतमनोऽभिज्ञः स्मयमान उवाच तम् ॥ १ ॥

स इत्थं द्विजमुख्येन सह सङ्कथयन् हरिः सर्वभूत मनः अभिज्ञः स्मयमान उवाच तम् ॥१॥

द्विजमुख्येन	विप्रवरसे	हरिः स्मयमानः	श्रीहरिने मुस्कराते हुए
इत्थं सङ्कथयन्	इस प्रकार वार्तालाप करते हुए	तं उवाच	उनसे कहा ॥१॥
स सर्वभूत मनः अभिज्ञः	उन सब प्राणियोंके मनकी बात जानने वाले		

ब्रह्मण्यो ब्राह्मणं कृष्णो भगवान् प्रहसन् प्रियम् ।
प्रेम्णा निरीक्षणेनैव प्रेक्षन् खलु सतां गतिः ॥ २ ॥

ब्रह्मण्यः ब्राह्मणं कृष्णः भगवान् प्रहसन् प्रियं प्रेम्णा निरीक्षणेन एव प्रेक्षन् खलु सतां गतिः ॥२॥

ब्रह्मण्यः	ब्राह्मण-भक्त	प्रेम्णा	प्रेमपूर्ण
सतां गतिः	सत्पुरुषोंकी परम गति	निरीक्षणेन एव	दृष्टिसे ही
भगवान् कृष्णः	भगवान श्रीकृष्ण	खलु प्रेक्षन्	अहो देखते हुए
प्रियं ब्राह्मणं	उस अपने प्रिय ब्राह्मणको	प्रहसन्	हँसते हुए (बोले) ॥२॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

किमुपायनमानीतं ब्रह्मन् मे भवता गृहात् ।
अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत् ।
भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥ ३ ॥

किं उपायनं आनीतं ब्रह्मन् मे भवता गृहात् अणु अपि उपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूरि एव मे भवेत् भूरि अपि अभक्तैः उपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥३॥

ब्रह्मन् भवता	ब्रह्मन् ! आप	**मे भूरि एव**	मेरे लिए बहुत ही
गृहात् मे	घरसे मेरे लिए	**भवेत्**	होता है
किं उपायनं	क्या उपहार	**अभक्तैः उपहृतं**	जो भक्त नहीं है
आनीतं	लाये हैं ?		उसका दिया
भक्तैः प्रेम्णा	भक्त द्वारा प्रेम-पूर्वक	**भूरि अपि**	बहुत सा (पदार्थ) भी
अणु अपि	एक अणु जितना भी	**मे तोषाय**	मेरे सन्तोषके लिए
उपहृतं	दिया—उपहार	**न कल्पते**	नहीं होगा ॥३॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ ४ ॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यः मे भक्त्या प्रयच्छति तत् अहं भक्ति उपहृतं अश्नामि प्रयत आत्मनः ॥४॥

यः मे भक्त्या	जो मुझे भक्ति-पूर्वक	**अहं**	मैं
पत्रं पुष्पं फलं	पत्र, पुष्प, फल या	**प्रयत आत्मनः**	एकाग्रचित्त होकर
तोयं प्रयच्छति	जल देता हैं	**अश्नामि**	खाता हूँ ॥४॥
तत्	उस		
भक्ति उपहृतं	भक्ति-प्रकार भेंट की गई (वस्तु)को		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

इत्युक्तोऽपि द्विजस्तस्मै व्रीडितः पतये श्रियः ।
पृथुकप्रसृतिं राजन् न प्रायच्छदवाङ्मुखः ॥ ५ ॥

इति उक्तः अपि द्विजः तस्मै व्रीडितः पतये श्रियः पृथुक प्रसृतिं राजन् न प्रायच्छत् अवाङ्मुखः ॥५॥

राजन्	राजन् !	**तस्मै**	उन
इति उक्तः अपि	ऐसा कहने पर भी	**श्रियः पतये**	लक्ष्मी पतिको
द्विजः व्रीडितः	ब्राह्मणने लज्जित होकर	**पृथुक् प्रसृतिं**	चिउड़ोंकी मुट्ठियां
अवाङ्मुख	सिर झुका लिया	**न प्रायच्छत्**	नहीं दीं ॥५॥

सर्वभूतात्मदृक् साक्षात् तस्यागमनकारणम् ।
विज्ञायाचिन्तयन्नायं श्रीकामो माभजत् पुरा ॥ ६ ॥

सर्वभूत आत्मदृक् साक्षात् तस्य आगमन कारणं विज्ञाय अचिन्तयत् न अयं श्रीकामः मा अभजत् पुरा ॥६॥

सर्वभूत	सब प्राणियोंके	**अचिन्तयत्**	विचार किया
साक्षात्	साक्षात्	**अयं श्रीकामः**	'इन्होंने धनकी इच्छासे
आत्मदृक्	अन्तःकरणके साक्षी		
तस्य आगमन	(भगवानने) उनके आनेका	**पुरा मा**	पहिले कभी मेरा
		अभजत् न	भजन नहीं किया है ॥६॥
कारणं विज्ञाय	कारण जानकर		

पत्न्याः पतिव्रतायास्तु सखा प्रियचिकीर्षया ।
प्राप्तो मामस्य दास्यामि सम्पदोऽमर्त्यदुर्लभाः ॥ ७ ॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

पत्न्या पतिव्रतायाः तु सखा प्रिय चिकीर्षया प्राप्तः मां अस्य दास्यामि सम्पदः अमर्त्य दुर्लभाः ॥७॥

सखा	(ये मेरे) सखा	**मां प्राप्तः**	मेरे पास आये है—
पतिव्रतायाः	अपनी पतिव्रता	**अस्य**	इनको
पत्न्याः तु	पत्नीका ही	**अमर्त्य दुर्लभाः**	देव-दुर्लभ
प्रिय चिकीर्षया	प्रिय करनेकी इच्छा से	**सम्पदः**	सम्पत्ति
		दास्यामि	दूंगा ॥७॥

इत्थं विचिन्त्य वसनाच्चीरबद्धान्द्विजन्मनः ।
स्वयं जहार किमिदमिति पृथुकतण्डुलान् ॥ ८ ॥

इत्थं विचिन्त्य वसनात् चीरबद्धात् द्विजन्मनः स्वयं जहार किं इदं इति पृथुक् तण्डुलान् ॥८॥

इत्थं विचिन्त्य	ऐसा सोचकर	**किं इदं इति**	'यह क्या हैं' ऐसा कहकर
द्विजन्मनः	ब्राह्मणोंके	**स्वयं जहार**	स्वयं छीन लिया ॥८॥
वसनात्	वस्त्रोंमेंसे		
चीरबद्धात्	कपड़ेके टुकड़ेमें बँधे		
पृथुक तण्डुलान्	चिउड़ोंको		

नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे ।
तर्पयन्त्यङ्ग मां विश्वमेते पृथुकतण्डुलाः ॥ ९ ॥

ननु एतत् उपनीतं मे परम प्रीडनं सखे तर्पयन्ति अङ्ग मां विश्वं एते पृथुक तण्डुलाः ॥९॥

अङ्ग सखे ननु	प्रिय मित्र निश्चय	**पृथुक तण्डुलाः**	चिउड़े तो
एतत् मे उपनीतं	ये मेरे लिए उपहार लाये हो	**मां विश्वं**	मुझ विश्वरूपको
		तर्पयन्ति	तृप्त कर देंगे ॥९॥
एते परम प्रीडनं	ये (मेरे) अत्यन्त प्रिय		

इति मुष्टिं सकृज्जग्ध्वा द्वितीयां जग्धुमाददे ।
तावच्छ्रीर्जगृहे हस्तं तत्परा परमेष्ठिनः ॥१०॥

इति मुष्टिं सकृत् जग्ध्वा द्वितीयां जग्धुं आददे तावत् श्रीः जगृहे हस्तं तत् परा परमेष्ठिनः ॥१०॥

एवं सकृत् मुष्टिं	इस प्रकार एक बार एक मुट्ठी	**परमेष्ठिनः परा**	परमात्माकी परायणा
जग्ध्वा द्वितीयां	खाकर दूसरी (मुट्ठी)	**श्रीः हस्तं जगृहे**	लक्ष्मी रुक्मिणीजी ने हाथ पकड़ लिया ॥१०॥
जग्धुं आददे	खानेके लिए भरी		
तावत् तत्	तब तक उन		

एतावतालं विश्वात्मन् सर्वसम्पत्समृद्धये ।
अस्मिँल्लोकेऽथवामुष्मिन पुंसस्त्वत्तोषकारणम् ॥११॥

एतावत् अल विश्व आत्मन् सर्व सम्पत् समृद्धये अस्मिन् लोके अथवा अमुष्मिन् पुंसः त्वत तोष कारणम् ॥११॥

विश्व आत्मन्	(बोलीं) विश्व आत्मन् !	**समृद्धये**	उत्तम भोगोंकी प्राप्तिके लिए
पुंसः	मनुष्यके लिए	**त्वत्**	आपको
अस्मिन् लोके	इस लोकमें	**तोष कारणं**	सन्तुष्ट करनेको
अथवा	अथवा	**एतावत् अलं**	इतना ही पर्याप्त है' ॥११॥
अमुष्मिन्	परलोकमें		
सर्व सम्पत्	समस्त सम्पत्तियों एवं		

ब्राह्मणस्तां तु रजनीमुषित्वाच्युतमन्दिरे ।
भुक्त्वा पीत्वा सुखं मेने आत्मानं स्वर्गतं यथा ॥१२॥

ब्राह्मणः तां तु रजनीं उषित्वा अच्युत मन्दिरे भुक्त्वा पीत्वा सुखं मेने आत्मानं स्वः गतं यथा ॥१२॥

ब्राह्मणः तु	ब्राह्मण तो	**भुक्त्वा पीत्वा**	खा-पीकर
तां रजनीं	उस रात	**यथा आत्मानं**	जैसे अपनेको
अच्युत मन्दिरे	श्रीकृष्णके भवनमें	**स्वः गतं मेने**	स्वर्ग पहुँचा माना
उषित्वा	निवास करके		॥१२॥

श्वोभूते विश्वभावेन स्वसुखेनाभिवन्दितः ।
जगाम स्वालयं तात पथ्यनुव्रज्य नन्दितः ॥१३॥

श्वः भूते विश्वभावेन स्वसुखेन अभिवन्दितः जगाम स्व आलयं तात पथि अनुव्रज्य नन्दितः ॥१३॥

तात	प्रिय परीक्षित !	**पथि अनुव्रज्य**	(कुछ दूर) मार्गमें साथ जाकर
श्वः भूते	दूसरा दिन होने पर	**नन्दितः**	आनन्दित करके (विदा करने पर)
विश्वभावेन	विश्व रक्षक	**स्व आलयं**	अपने घरको
स्वसुखेन	स्वानन्द स्वरूप (भगवान) द्वारा	**जगाम**	चले ॥१३॥
अभिवन्दितः	प्रणतित होकर		

स चालब्ध्वा धनं कृष्णान्न तु याचितवान् स्वयम् ।
स्वगृहान् व्रीडितोऽगच्छन्महद्दर्शननिर्वृतः ॥१४॥

स च अलब्ध्वा धनं कृष्णात् न तु याचितवान् स्वयं स्व गृहान् व्रीडितः अगच्छन् महत् दर्शन निर्वृतः ॥१४॥

कृष्णात् धनं	श्रीकृष्णसे धन	**महत् दर्शन**	परमपुरुषके दर्शनसे
अलब्ध्वा	न पाकर	**निर्वृतः**	आनन्दित होकर
स च तु स्वयं	उन्होंने भी स्वय	**स्वगृहान् अगच्छन्**	अपने घर चले ॥१४॥
न याचितवान्	नहीं मांगा (अतः)		
व्रीडितः	लज्जित तथा		

अहो ब्रह्मण्यदेवस्य दृष्टा ब्रह्मण्यता मया ।
यद् दरिद्रतमो लक्ष्मीमाश्लिष्टो बिभ्रतोरसि ॥१५॥

अहो ब्रह्मण्यदेवस्य दृष्टा ब्रह्मण्यता मया यत् दरिद्रतमः लक्ष्मीं आश्लिष्टः बिभ्रत उरसि ॥१५॥

अहो	(मार्गमें सोचते गये)	**उरसि लक्ष्मीं**	वक्षस्थल पर लक्ष्मी को
ब्रह्मण्यदेवस्य	अहो ब्राह्मणको देवता मानने वाले	**बिभ्रतः**	धारण करते हुए भी
		यत् दरिद्रतमः	जो (मुझ) महा-दरिद्रको
ब्रह्मण्यता	(श्रीकृष्ण)की ब्राह्मण-भक्ति	**आश्लिष्टः**	आलिंगन किया ॥१५॥
मया दृष्टा	मैंने देखी कि		

क्वाहं दरिद्रः पापीयान् क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः ।
ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः ॥१६॥

क्व अहं दरिद्रः पापीयान् क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः ब्रह्मबन्धुः इति स्म अहं बाहुभ्यां परिरम्भितः ॥१६॥

क्व अहं दरिद्रः	कहां तो मैं दरिद्र	**ब्रह्मबन्धु स्म**	'यह ब्राह्मण है'
पापीयान्	महापापी और	**इति अहं**	यह समझ कर
क्व श्रीनिकेतनः	कहां लक्ष्मीके निवास	**बाहुभ्यां**	भुजाओंमें भरकर
		परिरम्भितः	आलिंगन किया ॥१६॥
कृष्णः	श्रीकृष्ण (फिर भी)		

निवासितः प्रियाजुष्टे पर्यङ्के भ्रातरो यथा ।
महिष्या वीजितः श्रान्तो बालव्यजनहस्तया ॥१७॥

निवासितः प्रियाजुष्टे पर्यङ्के भ्रातरः यथा महिष्या वीजितः श्रान्तः बालव्यजन हस्तया ॥१७॥

भ्रातरः यथा	भाईके समान	**श्रान्तः**	(मुझे) थका देखकर
प्रियाजुष्टे	पत्नीसे सेवित	**बालव्यजन**	छोटा पंखा
पर्यङ्के	पलंग पर	**हस्तया**	हाथमें लेकर
निवासितः	बैठाया तथा	**वीजितः**	वायु करती रहीं
महिष्या	महारानी (स्वयं)		॥१७॥

शुश्रूषया परमया पादसंवाहनादिभिः ।
पूजितो देवदेवेन विप्रदेवेन देववत् ॥१८॥

शुश्रूषया परमया पादसंवाहन आदिभिः पूजितः देवदेवेन विप्रदेवेन देववत् ॥१८॥

देवदेवेन	देवदेव	**पादसंवाहन**	पैर दबाना
विप्रदेवेन	ब्राह्मणको देवता मानने वाले	**आदिभिः**	आदि
		परमया	उत्तम
देववत्	(श्रीकृष्ण) द्वारा देवताके समान	**शुश्रूषया**	सेवाओं द्वारा
		पूजितः	पूजा गया ॥१८॥

स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि सम्पदाम् ।
सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् ॥१९॥

स्वर्ग अपवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि सम्पदां सर्वासां अपि सिद्धीनां मूलं तत् चरण अर्चनम् ॥१९॥

तत् चरण	उनके चरणोंका	**सम्पदां**	सम्पतियां तथा
अर्चनं	पूजन	**सर्वासां सिद्धीनां**	सम्पूर्ण सिद्धियोंका
पुंसां	मनुष्योंके लिए	**अपि**	भी
स्वर्ग अपवर्गयोः	स्वर्ग, मोक्ष	**मूलं**	कारण है ॥१९॥
रसायां भुवि	पाताल एवं पृथ्वी की		

अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत् ।
इति कारुणिको नूनं धनं मेऽभूरि नाददात् ॥२०॥

अधनः अयं धनं प्राप्य माद्यत् उच्चैः न मां स्मरेत् इति कारुणिकः नूनं धनं मे भूरि न अददात् ॥२०॥

अयं अधनः	'यह निर्धन	इति कारुणिकः	यह समझकर ही करुणामयने
धनं प्राप्य	धन पाकर	मे भूरि धनं	मुझे थोड़ा धन भी
उच्चैः माद्यत्	अत्यन्त मदमत्त होनेसे	न अददात्	नहीं दिया' ॥२०॥
मां स्मरेत् न	मेरा स्मरण नहीं करेगा'		

इति तच्चिन्तयन्नन्तः प्राप्तो निजगृहान्तिकम् ।
सूर्यानलेन्दुसंकाशैर्विमानैः सर्वतो वृतम् ॥२१॥

इति तत् चिन्तयन् अन्तः प्राप्तः निजगृह अन्तिकं सूर्य अनल इन्दु सङ्काशैः विमानैः सर्वतः वृतम् ॥२१॥

इति तत्	इस प्रकार उन्हींके	सर्वतः वृतं	सब ओरसे घिरे
चिन्तयन्	सोचते हुए	निजगृह	अपने भवनके
सूर्य अनल इन्दु	सूर्य, अग्नि, चन्द्रमाके	अन्तिकं प्राप्तः	समीप पहुँचे ॥२१॥
सङ्काशैः	समान		
विमानैः	विमानोंसे		

विचित्रोपवनोद्यानैः कूजद्द्विजकुलाकुलैः ।
प्रोत्फुल्लकुमुदाम्भोजकह्लारोत्पलवारिभिः ॥२२॥

विचित्र उपवन उद्यानैः कूजत् द्विज कुल आकुलैः प्रोत्फुल्ल कुमुद अम्भोज कह्लार उत्पल वारिभिः ॥२२॥

विचित्र उपवन	अनेक प्रकारके बगीचों
उद्यानैः	वाटिकाओं वाले जो
द्विजकुल	चंचल पक्षिवृन्दके
कूजत्	चहकनेसे (गुंजित) थे
प्रोत्फुल्ल कुमुद	फूले कुमुद
अम्भोज	गुलाबी कमल,
कह्लार	रक्त कमल,
उत्पल वारिभिः	श्वेत कमल वाले जलाशयोंसे युक्त था ॥२२॥

जुष्टं स्वलंकृतैः पुम्भिः स्त्रीभिश्च हरिणाक्षिभिः ।
किमिदं कस्य वा स्थानं कथं तदिदमित्यभूत् ॥२३॥

जुष्टं स्व अलङ्कृतैः पुम्भिः स्त्रीभिः च हरिण अक्षिभिः किं इदं कस्य वा स्थानं कथं तत् इदं इति अभूत् ॥२३॥

स्व अलङ्कृतैः	भली प्रकार सजे-धजे
पुम्भिः च	सेवकों तथा
हरिण अक्षिभिः	मृगनयनी
स्त्रीभिः जुष्टं	स्त्रियोंसे युक्त (देखकर सोचने लगे)
किं इदं	यह क्या है
वा कस्य स्थानं	अथवा किसका स्थान है ?
तत् इदं	वह (मेरा घर) ऐसा
कथं अभूत् इति	कैसे हो गया ? इस प्रकार (सोचने लगे) ॥२३॥

एवं मीमांसमानं तं नरा नार्योऽमरप्रभाः ।
प्रत्यगृह्णन् महाभागं गीतवाद्येन भूयसा ॥२४॥

एवं भीमांसमानं तं नरा नार्यः अमर प्रभाः प्रत्य गृह्णन् महाभागं गीत वाद्येन भूयसा ॥२४॥

एवं	इस प्रकार
मीमांसमानं	विचार करते हुए
तं महाभागं	उन महाभागका
अमर प्रभाः	देवताओंके समान कान्तिमान्
नरा नार्यः	पुरुष-स्त्रियोंने
भूयसा	बहुत उत्साहसे
गीत वाद्येन	गाते-बजाते हुए
प्रत्य गृह्णन्	आगे आकर स्वागत किया ॥२४॥

पतिमागतमाकर्ण्य पत्न्युद्धर्षातिसम्भ्रमा ।
निश्चक्राम गृहात्तूर्णं रूपिणी श्रीरिवालयात् ॥२५॥

पतिं आगतं आकर्ण्य पत्नी उद्धर्षा अति सम्भ्रमा निःचक्राम गृहात् तूर्णं रूपिणी श्रीः इव आलयात् ॥२५॥

पतिं आगतं	पतिदेवका आगमन	श्रीः इव	लक्ष्मीके समान
आकर्ण्य	सुनकर	गृहात् तूर्णं	घरसे शीघ्र
उद्धर्षा	अत्यन्त हर्षपूर्वक	निः चक्राम	निकल आयीं
अति सम्भ्रमा	बहुत उतावलीमें		॥२५॥
रूपिणी पत्नी	रूपवती स्त्री		
आलयात्	अपने निवाससे (सीधे आयीं)		

पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा प्रेमोत्कण्ठाश्रुलोचना ।
मीलिताक्ष्यनमद् बुद्ध्या मनसा परिषस्वजे ॥२६॥

पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा प्रेम उत्कण्ठ अश्रु लोचना मीलित अक्षि अनमत् बुद्धया मनसा परिषस्वजे ॥२६॥

पतिं दृष्ट्वा	पतिको देखकर	बुद्धया अनमत्	मन ही मन प्रणाम करके
पतिव्रता	उस पतिव्रताके		
प्रेम उत्कण्ठ	प्रेमसे कण्ठ भर आया	मनसा	मनसे ही
		परिषस्वजे	आलिंगन किया
अश्रुलोचना	नेत्रोंमें आंसू आनेसे		॥२६॥
मीलित अक्षि	नेत्र बन्द करके		

पत्नीं वीक्ष्य विस्फुरन्तीं देवीं वैमानिकीमिव ।
दासीनां निष्ककण्ठीनां मध्ये भान्तीं स विस्मितः ॥२७॥

पत्नीं वीक्ष्य विस्फुरन्तीं देवीं वैमानिकीं इव दासीनां निष्ककण्ठीनां मध्ये भान्तीं स विस्मितः ॥२७॥

निष्ककण्ठीनां	सोनेका हार पहिनने वाली
दासीनां मध्ये	दासियोंके बीचमें
वैमानिकीं	विमानोंमें रहने वाली
देवीं इव	देवीकी भांति
विस्फुरन्तीं	अत्यन्त
भान्तीं	सुशोभिता
पत्नीं वीक्ष्य	पत्नीको देखकर
स विस्मितः	वे चकित हो गये ॥२७॥

प्रीतः स्वयं तया युक्तः प्रविष्टो निजमन्दिरम् ।
मणिस्तम्भशतोपेतं महेन्द्रभवनं यथा ॥२८॥

प्रीतः स्वयं तया युक्तः प्रविष्टः निज मन्दिरं मणि स्तम्भ शत उपेतं महेन्द्र भवनं यथा ॥२८॥

स्वयं प्रीतः	स्वयं प्रसन्न होकर
तया युक्तः	उसके साथ
यथा महेन्द्र भवनं	जैसे इन्द्रका भवन हो
शत मणि स्तभ उपेतं	सैकड़ों मणिमय स्तम्भोंसे युक्त
निज मन्दिरं प्रविष्टः	अपने भवनमें प्रवेश किया ॥२८॥

पयःफेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः ।
पर्यङ्का हेमदण्डानि चामरव्यजनानि च ॥२९॥

पयः फेन निभाः शय्या दान्ता रुक्म परिच्छदाः पर्यङ्का हेमदण्डानि चामर व्यजनानि च ॥२९॥

शय्या	बिछौने
पयः फेन निभाः	दूधके फेनके समान थे
रुक्म परिच्छदाः	स्वर्णके उपकरणों वाले
दान्ता पर्यङ्का	हाथी दांतके पलंग थे,
हेमदण्डानि	स्वर्णकी डंडियों वाले
चामर च	चँवर एवं
व्यजनानि	पंखे थे ॥२९॥

आसनानि च हैमानि मृदूपस्तरणानि च ।
मुक्तादामविलम्बीनि वितानानि द्युमन्ति च ॥३०॥

आसनानि च हैमानि मृदु उपस्तरणानि च मुक्तादाम विलम्बीनि वितानानि द्युमन्ति च ॥३०॥

हैमानि	स्वर्णके	मुक्तादाम	मोतियोंकी झालरें
आसनानि	आसन	विलम्बीनि	लटकने वाले थे ॥३०॥
मृदु	कोमल		
उपस्तरणानि	आस्तरण युक्त थे,		
च द्युमन्ति	तथा झिल-मिलाते		
वितानानि च	चंदोवे भी		

स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ।
रत्नदीपा भ्राजमाना ललनारत्नसंयुताः ॥३१॥

स्वच्छ स्फटिक कुड्येषु महामारकतेषु च रत्नदीपा भ्राजमाना ललनारत्न संयुताः ॥३१॥

ललनारत्न	रमणी रत्नों (स्त्री	च	तथा
संयुताः	मूर्तियों)से युक्त	महामारकतेषु	मरकत मणिकी (छतमें)
स्वच्छ स्फटिक	निर्मल स्फटिककी	रत्नदीपा	रत्नोंके दीपक
कुड्येषु	भित्तियोंमें	भ्राजमाना	जगमगा रहे थे ॥३१॥

विलोक्य ब्राह्मणस्तत्र समृद्धीः सर्वसम्पदाम् ।
तर्कयामास निर्व्यग्रः स्वसमृद्धिमहैतुकीम् ॥३२॥

विलोक्य ब्राह्मणः तत्र समृद्धीः सर्वसम्पदां तर्कयामास निर्व्यग्रः स्व समृद्धि अहैतुकीम् ॥३२॥

ब्राह्मणः तत्र	विप्रवर वहां	समृद्धीः	भरपूर भरमार
सर्वसम्पदाम्	सब प्रकारकी सम्पत्तियोंकी	विलोक्य	देखकर

निर्व्यग्रः	सावधानी पूर्वक	समृद्धौ	सम्पत्तिके विषयमें
स्व अहैतुकीं	अपनी बिना कारण (प्राप्त)	तर्कयामास	सोचने लगे ॥३२॥

नूनं बतैतन्मम दुर्भगस्य
शश्वद्दरिद्रस्य समृद्धिहेतुः ।
महाविभूतेरवलोकतोऽन्यो
नैवोपपद्येत यदूत्तमस्य ॥३३॥

नूनं बत एतत् मम दुर्भगस्य शश्वत् दरिद्रस्य समृद्धि हेतुः महाविभूतेः अवलोकतः अन्यः न एव उपपद्येत यदु उत्तमस्य ॥३३॥

नूनं बत	निश्चय अहो	यदु उत्तमस्य	यादव श्रेष्ठकी
मम दुर्भगस्य	मुझ भाग्यहीन	अवलोकतः	कृपा दृष्टिके
शश्वत् दरिद्रस्य	सदाके दरिद्रकी	अन्यः न एव	अतिरिक्त नहीं ही
समृद्धि हेतुः	सम्पत्तिका कारण	उपपद्येत	हो सकता ॥३३॥
महाविभूतेः	अनन्त ऐश्वर्यशाली		

नन्वब्रुवाणो दिशते समक्षं
याचिष्णवे भूर्यपि भूरिभोजः ।
पर्जन्यवत्तत् स्वयमीक्षमाणो
दाशार्हकाणामृषभः सखा मे ॥३४॥

ननु अब्रुवाणः दिशते समक्षं याचिष्णवे भूरि अपि भूरि भोजः पर्जन्यवत् तत् स्वयं ईक्षमाणः दाशार्हकाणां ऋषभः सखा मे ॥३४॥

दाशार्हकाणां	दाशार्ह वंशियोंमें	याचिष्णवे	मांगने वालेको
ऋषभः	सर्वश्रेष्ठ	समक्षं	सामने
मे सखा	मेरे सखा	न एव दिशते	नहीं ही देते हैं; किन्तु
ननु अब्रुवाणः	निश्चय कुछ न कहने वाले	पर्जन्यवत्	मेघोंके समान

तत् स्वयं	उनको स्वयं	भूरि अपि	बहुत ही देते हैं
ईक्षमाणः	देखकर		॥३४॥
भूरि भोजः	अतिशय उदार होनेसे		

किञ्चित्करोत्युर्वपि यत् स्वदत्तं
सुहृत्कृतं फल्वपि भूरिकारी ।
मयोपनीतां पृथुकैकमुष्टिं
प्रत्यग्रहीत् प्रीतियुतो महात्मा ॥३५॥

किञ्चित् करोति उरु अपि यत् स्वदत्तं सुहृत् कृतं फल्गु अपि भूरिकारी मया उपनीतां पृथुक एक मुष्टि प्रत्यगृहीत् प्रीतियुतः महात्मा ॥३५॥

उरु अपि	बहुत होने पर भी	मया उपनीतां	मेरे उनके समीप ले गये
स्वदत्तं	अपने दियेको		
किञ्चित्	बहुत कम	पृथुक	चिउड़ोंमेंसे
करोति	करके मानते हैं,	एक मुष्टि	एक मुट्ठी
फल्गु अपि	अत्यन्त थोड़े भी	प्रीतियुतः	प्रेमपूर्वक उन
सुहृत् कृतं	मित्रके कियेको	महात्मा	महात्माने
भूरिकारी	बहु बड़ा कर देने वाले हैं,	प्रत्यग्रहीत्	ग्रहण किया ॥३६॥

तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्री
दास्यं पुनर्जन्मनि जन्मनि स्यात् ।
महानुभावेन गुणालयेन
विषज्जतस्तत्पुरुषप्रसङ्गः ॥३६॥

तस्य एव मे सौहृद सख्य मैत्री दास्यं पुनः जन्मनि जन्मनि स्यात् महा अनुभावेन गुण आलयेन विषज्जतः तत् पुरुष प्रसङ्गः ॥३६॥

तस्य महा	उन महान्
अनुभावेन	प्रभाव
गुण आलयेन	गुण धाम
एव मे पुनः	से ही मेरा फिर
जन्मनि	जन्म-
जन्मनि	जन्ममें
सौहृद सख्य	सौहार्द्र, सखाभाव
मैत्री दास्यं	मित्रता तथा दास-भाव
तत् पुरुषः	(तथा) उनके भक्तों से
विषज्जतः	आसक्ति युक्त
प्रसङ्गः स्यात्	साथ हो ॥३६॥

भक्ताय चित्रा भगवान् हि सम्पदो
राज्यं विभूतीर्न समर्थयत्यजः ।
अदीर्घबोधाय विचक्षणः स्वयं
पश्यन् निपातं धनिनां मदोद्भवम् ॥३७॥

भक्ताय चित्रा भगवान् हि सम्पदः राज्यं विभूतिः न समर्थयति अजः अदीर्घबोधाय विचक्षणः स्वयं पश्यन् निपातं धनिनां मदउद्भवम् ॥३७॥

स्वयं विचक्षणः	स्वयं अत्यन्त चतुर
भगवान्	भगवान्
हि धनिनां	क्योंकि धनियोंका
मद उद्भवं	मदसे उत्पन्न
निपातं पश्यन्	अत्यन्त पतन देखते हैं
अदीर्घबोधाय	दूर तककी न जानने वाले
भक्ताय	भक्तोंके लिए
चित्रा सम्पदः	अनेक प्रकारकी सम्पत्ति
राज्यं विभूतिः	राज्य, वैभवको
अजः	वे अजन्मा
न समर्थयति	समर्थन नहीं करते ॥३७॥

इत्थं व्यवसितो बुद्ध्या भक्तोऽतीव जनार्दने ।
विषयाञ्जायया त्यक्ष्यन् बुभुजे नातिलम्पटः ॥३८॥

इत्थं व्यवसितः बुद्धया भक्तः अतीव जनार्दने विषयान् जायया त्यक्षन् बुभुजे न अति लम्पटः ॥३८॥

इत्थं बुद्धया	इस प्रकार बुद्धिसे
व्यवसितः	निश्चय करके
जनार्दने	जनार्दनके
अतीव भक्तः	अत्यन्त भक्त होकर
अति लम्पटः न	बहुत आसक्त न होकर
जायया त्यक्षन्	पत्नीके साथ त्याग पूर्वक
विषयान् बुभुजे	भोगोंको भोगने लगे ॥३८॥

तस्य वै देवदेवस्य हरेर्यज्ञपतेः प्रभोः ।
ब्राह्मणाः प्रभवो दैवं न तेभ्यो विद्यते परम् ॥३९॥

तस्य वै देवदेवस्य हरेः यज्ञपतेः प्रभोः ब्राह्मणाः प्रभवः दैवं न तेभ्यः विद्यते परम् ॥३९॥

वै तस्य प्रभोः	निश्चय उन सर्वेश्वर
देवदेवस्य	देवदेव
यज्ञयतेः हरेः	यज्ञेश्वर श्रीहरिके
ब्राह्मणाः प्रभवः	ब्राह्मण स्वामी और
दैवं	देवता हैं
तेभ्यः परं	उन (ब्राह्मणों)से श्रेष्ठ
न विद्यते	कुछ नहीं है ॥३९॥

एवं स विप्रो भगवत्सुहृत्तदा
दृष्ट्वा स्वभृत्यैरजितं पराजितम् ।
तद्ध्यानवेगोद्ग्रथितात्मबन्धन-
स्तद्धाम लेभेऽचिरतः सतां गतिम् ॥४०॥

एवं स विप्रः भगवत् सुहृत् तदा दृष्ट्वा स्व भृत्यैः अजितं पराजितं तत् ध्यान वेग उद्ग्रथित आत्मबन्धनः तत् धाम लेभे अचिरतः सतां गतिम् ॥४०॥

एवं स भगवत्	इस प्रकार वह भगवानका
सुहृत् विप्रः	सखा ब्राह्मण
तदा स्वभृत्यैः	उस समय अपने सेवक द्वारा
अजितं	अजेय (भगवान) को
पराजितं दृष्ट्वा	पराजित होते देखकर
तत् ध्यान	उनके ध्यानसे
आत्मबन्धनः	अपने बन्धनकी
उद् ग्रथित	गांठें छूट जानेसे
सतां गतिं	संतोंकी गति
तत् धाम	उनके धामको
अचिरतः लेभे	शीघ्र पा गया ॥४०॥

एतद् ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः ।
लब्धभावो भगवति कर्मबन्धाद् विमुच्यते ॥४१॥

एतत् ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः लब्धभावः भगवति कर्मबन्धात् विमुच्यते ॥४१॥

ब्रह्मण्यदेवस्य	ब्राह्मण भक्त (भगवान)की
एतत् ब्रह्मण्यतां	यह ब्राह्मण भक्ति
श्रुत्वा नरः	सुनकर पुरुष
भगवति	भगवानमें भक्ति
लब्धभावः	प्राप्त करके
कर्मबन्धात्	कर्मोंके बन्धनसे
विमुच्यते	छूट जाता है ॥४१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पृथुकोपाख्यानं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयोः ।
सूर्योपरागः सुमहानासीत् कल्पक्षये यथा ॥ १ ॥

अथ एकदा द्वारवत्यां वसतः रामकृष्णयोः सूर्य उपरागः सुमहान् आसीत् कल्पक्षये यथा ॥१॥

अथ एकदा	फिर एक बार	सुमहान्	बहुत बड़ा
रामकृष्णयोः	बलराम-श्रीकृष्णके	सूर्य उपरागः	सूर्य-ग्रहण
द्वारवत्यां	द्वारिकापुरीमें	आसीत्	पड़ा ॥१॥
वसतः	रहते हुए		
यथा कल्पक्षये	जैसा कल्पान्तमें होता है		

तं ज्ञात्वा मनुजा राजन् पुरस्तादेव सर्वतः ।
समन्तपञ्चकं क्षेत्रं ययुः श्रेयोविधित्सया ॥ २ ॥

तं ज्ञात्वा मनुजा राजन् पुरस्तात् एव सर्वतः समन्त पञ्चकं क्षेत्रं ययुः श्रेयः विधित्सया ॥२॥

राजन्	राजन् !	सर्वतः	चारों ओरसे
तं पुरस्तात एव	उसे पहिलेसे ही	समन्तक	स्यमन्तक
ज्ञात्वा मनुजा	जानकर मनुष्य	पञ्चकं क्षेत्रं	पञ्चक क्षेत्र
श्रेयः	अपना मंगल	जग्मुः	गये ॥२॥
विधित्सया	करनेकी इच्छासे		

निःक्षत्रियां महीं कुर्वन् रामः शस्त्रभृतां वरः ।
नृपाणां रुधिरौघेण यत्र चक्रे महाह्रदान् ॥ ३ ॥

निः क्षत्रियां महीं कुर्वन् रामः शस्त्रभृतां वरः नृपाणां रुधिर ओघेन यत्र चक्रे महाह्रदान् ॥३॥

शस्त्रभृतां वरः	शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ	**नृपाणां रुधिर ओघेन**	राजाओंके रक्तकी बाढ़से
रामः महीं	परशुरामने पृथ्वी को	**यत्र महाह्रदान्**	जहाँ बहुत बड़े कुण्ड
निः क्षत्रियां	क्षत्रिय-रहित	**चक्रे**	निर्मित किये ॥३॥
कुर्वन्	करते हुए		

ईजे च भगवान् रामो यत्रास्पृष्टोऽपि कर्मणा ।
लोकस्य ग्राहयन्नीशो यथान्योऽघापनुत्तये ॥ ४ ॥

ईजे च भगवान् रामः यत्र अस्पृष्टः अपि कर्मणा लोकस्य ग्राहयन् ईशः यथा अन्यः अघ अपनुत्तये ॥ ॥

कर्मणा	कर्मोंसे	**यथा अन्यः**	जैसे दूसरोंको (करना चाहिए)
अस्पृष्टः अपि	अछूते होने पर भी		
ईशः भगवान्	सर्व समर्थ भगवान	**अघ अपनुत्तये**	पाप दूर करनेके लिए
रामः	परशुराम		
लोकस्य	लोगोंको	**यत्र ईजे च**	जहां यज्ञ भी किया ॥४॥
ग्राहयन्	शिक्षा देनेके लिए		

महत्यां तीर्थयात्रायां तत्रागन् भारतीः प्रजाः ।
वृष्णयश्च तथाक्रूरवसुदेवाहुकादयः ॥ ५ ॥

महत्यां तीर्थयात्रायां तत्र अगन् भारतीः प्रजाः वृष्णयः च तथा अक्रूर वसुदेव आहुक आदयः ॥५॥

महत्यां	उस बड़ी	**अक्रूर वसुदेव**	अक्रूर, वसुदेव
तीर्थयात्रायां	तीर्थयात्रामें	**आहुक आदयः**	आहुक आदि
भारतीः प्रजाः	भारतीय प्रजा	**तथा तत्र अगन्**	इस प्रकार वहां
च वृष्णयः	तथा यदुवंशी		गये ॥५॥

ययुर्भारत तत् क्षेत्रं स्वमघं क्षपयिष्णवः ।
गदप्रद्युम्नसाम्बाद्याः सुचन्द्रशुकसारणैः ॥ ६ ॥

ययुः भारत तत् क्षेत्रं स्वं अघं क्षपयिष्णवः गद प्रद्युम्न साम्ब आद्याः सुचन्द्र शुक सारणौः ॥६॥

भारत	परीक्षित् ।	**गद प्रद्युम्न**	गद, प्रद्युम्न
तत् क्षेत्रं	उस कुरुक्षेत्रमें	**साम्ब आद्याः**	साम्ब आदि
स्वं अघं	अपने पापको	**सुचन्द्र शुक**	सुचन्द्र, शुक,
क्षपयिष्णवः	नष्ट करनेकी इच्छा वाले	**सारणौः**	सारण
		ययुः	गये ॥६॥

आस्तेऽनिरुद्धो रक्षायां कृतवर्मा च यूथपः ।
ते रथैर्देवधिष्ण्याभैर्हयैश्च तरलप्लवैः ॥ ७ ॥

आस्ते अनिरुद्धः रक्षायां कृतवर्मा च यूथपः ते रथैः देवधिष्ण्य आभैः हयैः च तरलप्लवैः ॥७॥

अनिरुद्धः	अनिरुद्ध	**रथैः च**	रथों तथा
च यूथपः	तथा सेनापति	**तरलप्लवैः**	तरंगोंके समान तीव्र:
कृतवर्मा	कृतवर्मा		गति
रक्षायां	(द्वारिकाकी) रक्षाके	**हयैः**	घोड़ोंसे ॥७॥
आस्ते	लिए रहे,		
ते	वे		
देवधिष्ण्य	देवविमानोंके समान		
आभैः	चमकते		

गजैर्नदद्भिरभ्राभैर्नृभिर्विद्याधरद्युभिः ।
व्यरोचन्त महातेजाः पथि काञ्चनमालिनः ॥ ८ ॥

गजैः नदद्भिः अभ्र आभैः नृभिः विद्याधर द्युभिः व्यरोचन्त महातेजाः पथि काञ्चन मालिनः ॥८॥

अभ्र आभैः	मेघोंके समान	**काञ्चन**	स्वर्ण
नदद्भिः गजैः	गर्जना करने हाथियों से	**मालिनः**	मालाधारी
		महातेजाः	महान तेजस्वी
विद्याधर द्युभिः	विद्याधरोंके समान कान्तिमान	**व्यरोचन्त**	सुशोभित हुए ॥८॥
नृभिः पथि	मनुष्यों द्वारा मार्ग में		

दिव्यस्रग्वस्त्रसन्नाहाः कलत्रैः खेचरा इव ।
तत्र स्नात्वा महाभागा उपोष्य सुसमाहिताः ॥ ९ ॥

दिव्य स्रक् वस्त्र सन्नाहाः कलत्रैः खेचरा इव तत्र स्नात्वा महाभागा उपोष्य सुसमाहिताः ॥९॥

दिव्य स्रक्	दिव्य माला	**महाभागा**	उन महाभागोंने
वस्त्र सन्नाहाः	वस्त्र, कवच पहिने	**सुसमाहिताः**	अत्यन्त एकाग्रचित्त से
कलत्रैः	पत्नियोंके साथ		
खेचरा इव	देवताओंके समान	**उपोष्य**	उपवास करके ॥९॥
तत्र स्नात्वा	(यादवोंने) वहां स्नान करके		

ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धेनूर्वासःस्रगुक्ममालिनीः ।
रामह्रदेषु विधिवत् सुनाप्लुत्य वृष्णयः ॥१०॥

ब्राह्मणेभ्यः ददुः धेनुः वासः स्रक् रुक्म मालिनीः रामह्रदेषु विधिवत् पुनः आप्लुत्य वृष्णयः ॥१०॥

रामह्रदेषु	परशुराम कुण्डमें	**स्रक्**	माला तथा
विधिवत्	विधिपूर्वक	**रुक्म मालिनीः**	स्वर्ण माला पहनायी
पुनः आप्लुत्य	फिर स्नान करके	**धेनुः ब्राह्मणेभ्यः**	गायें ब्राह्मणोंको
वृष्णयः वासः	यादवोंने वस्त्र	**ददुः**	दान कीं ॥१०॥

ददुः स्वन्नं द्विजाग्र्येभ्यः कृष्णे नो भक्तिरस्त्विति ।
स्वयं च तदनुज्ञाता वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥११॥

ददुः सुअन्नं च द्विज अग्रेभ्यः कृष्णे नः भक्तिः अस्तु इति स्वयं च तत् अनुज्ञाता वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥११॥

नः कृष्णे	'हमारी श्रीकृष्णमें	**कृष्णदेवताः**	जिनके श्रीकृष्ण ही देवता हैं उन
भक्तिः	भक्ति हो'	**वृष्णयः स्वयं च**	यादवोंने स्वयं भी
अस्तु इति	इस संकल्पसे	**तत् अनुज्ञाता**	उन (ब्राह्मणों)से अनुमति पाकर
द्विज अग्रेभ्यः	श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको		॥११॥
सुअन्नं च ददुः	उत्तम अन्न (भोजन) दिया,		

भुक्त्वोपविविशुः कामं स्निग्धच्छायाङ्घ्रिपाङ्घ्रिषु ।
तत्रागतांस्ते ददृशुः सुहृत्सम्बन्धिनो नृपान् ॥१२॥

भुक्त्वा उपविविशुः कामं स्निग्ध छायासु अंघ्रिप अंघ्रिषु तत्र आगतान् ते ददृशुः सुहृत् सम्बन्धिनः नृपान् ॥१२॥

भुक्त्वा कामं	भोजन करके इच्छानुसार	**अंघ्रिप अंघ्रिषु**	वृक्षोंके तनोंके समीप
स्निग्ध छायासु	सघन छाया वाले	**उपविविशुः**	बैठ गये

ते तत्र आगतान्	तब उन्होंने वहां आये	नृपान् ददृशुः	राजाओंको देखा ॥१२॥
सुहृत्	मित्र		
सम्बन्धिनः	सम्बन्धी		

मत्स्योशीनरकौसल्यविदर्भकुरुसृञ्जयान् ।
काम्बोजकैकयान् मद्रान् कुन्तीनानर्तकेरलान् ॥१३॥

मत्स्य, उशीनर, कौसल्य, विदर्भ, कुरु, सृञ्जयान्, काम्बोज, कैकयान्, मद्रन्, कुन्तीन्, आनर्त, केरलान् ॥१३॥*

अन्यांश्चैवात्मपक्षीयान् परांश्च शतशो नृप ।
नन्दादीन् सुहृदो गोपान् गोपीश्चोत्कण्ठिताश्चिरम् ॥१४॥

अन्यान् च एव आत्म पक्षीयान् परान् च शतशः नृप नन्द आदीन् सुहृदः गोपान् गोपीः च उत्कण्ठिताः चिरम् ॥१४॥

नृप	राजन् !	गोपान् च	गोपोंको तथा
च अन्यान् एव	तथा दूसरे भी	चिरं उत्कण्ठिताः	बहुत दिनोंसे उत्सुका
आत्म पक्षीयान्	अपने पक्ष वालों	गोपीः	गोपियोंको (देखा) ॥१४॥
च शतशः परान्	एवं सैकड़ों दूसरों को		
सुहृदः	सुहृद		
नन्द आदीन्	नन्दादि		

अन्योन्यसन्दर्शनहर्षरंहसा
प्रोत्फुल्लहृद्वक्त्रसरोरुहश्रियः ।

---

*ये केवल तत्कालीन राज्योंके नाम हैं ।

आश्लिष्य गाढं नयनैः स्रवज्जला
हृष्यत्त्वचो रुद्धगिरो ययुर्मुदम् ॥१५॥

अन्यः अन्य सन्दर्शन् हर्ष रंहसा प्रोत्फुल्ल हृत् वक्त्र सरोरुह श्रियः आश्लिष्य गाढं नयनैः स्रवत् जला हृष्यत् त्वचः रुद्ध गिरः ययुः मुदम् ॥१५॥

अन्यः अन्य	एक दूसरेके	नयनैः स्रवत्	नेत्रोंसे अश्रु
सन्दर्शन	दर्शनके	जला	बहाते
हर्ष रंहसा	हर्ष वेगसे	हृष्यत् त्वचः	रोमाञ्चित् त्वचा देह
प्रोत्फुल्ल हृत्	उत्फुल्ल हृदय तथा		
वक्त्र सरोरुह	मुख-कमलकी	रुद्ध गिरः	रुकी (गद्गद्) वाणी
श्रियः	शोभा वाले		
गाढं आश्लिष्य	प्रगाढ़ आलिगन करके	मुदं ययुः	आनन्दित हुए ॥१५॥

स्त्रियश्च संवीक्ष्य मिथोऽतिसौहृद-
स्मितामलापाङ्गदृशोऽभिरेभिरे ।
स्तनैः स्तनान् कुंकुमपङ्करूषितान्
निहत्य दोर्भिः प्रणयाश्रुलोचनाः ॥१६॥

स्त्रियः च संवीक्ष्य मिथः अति सौहृद स्मित अमल अपाङ्ग दृशः अभिरेभिरे स्तनैः स्तनान् कुंकुमपङ्क रूषितान् निहत्य दोर्भिः प्रणय अश्रु लोचनाः ॥१६॥

स्त्रियः च	स्त्रियां भी	दृशः मिथः	दृष्टिसे परस्पर
अति सौहृद	अत्यन्त सौहार्द्रसे	वीक्ष्य	देखकर
स्मित अमल	मुस्कान युक्त निमूल	प्रणय अश्रु	प्रेमाश्रु
अपाङ्ग	कटाक्ष युक्त	लोचनाः	नेत्र

कुंकुमपङ्क	कुंकुम लेपसे	निहत्य दोर्भिः	दबाकर भुजाओंमें भरकर
रूशितान्	लिप्त		
स्तनैः स्तनान्	स्तनोंसे स्तनोंको	अभिरेभिरे	आलिंगिता हुई ॥१६॥

ततोऽभिवाद्य ते वृद्धान् यविष्ठैरभिवादिताः ।
स्वागतं कुशलं पृष्ट्वा चक्रुः कृष्णकथा मिथः ॥१७॥

ततः अभिवाद्य ते वृद्धान् यविष्ठैः अभिवादितः स्वागतं कुशलं पृष्ट्वा चक्रुः कृष्णकथा मिथः ॥१७॥

ततः ते वृद्धान्	तब उन्होंने बड़ोंको	मिथः	परस्पर
अभिवाद्य	अभिवादित होकर	कृष्णकथा	श्रीकृष्ण-चर्चा
यविष्ठैः	छोटोंसे	चक्रुः	कहने लगे ॥१७॥
अभिवादितः	अभिवादित होकर		
स्वागतं	स्वागत प्रश्न तथा		
कुशलं पृष्ट्वा	कुशल पूछकर		

पृथा भ्रातॄन् स्वसॄर्वीक्ष्य तत्पुत्रान् पितरावपि ।
भ्रातृपत्नीर्मुकुन्दं च जहौ संकथया शुचः ॥१८॥

पृथा भ्रातॄन् स्वसॄः वीक्ष्य तत् पुत्रान् पितराः अपि भ्रातृपत्नीः मुकुन्दं च जहौ सङ्कथया शुचः ॥१८॥

पृथा भ्रातॄन्	कुन्तीने भाइयों	च मुकुन्दं वीक्ष्य	तथा मुकुन्दको देखकर
स्वसॄः	बहिनों,		
तत् पुत्रान्	उनके पुत्रों,	सङ्कथया	उनसे बात करके
पितराः अपि	माता-पिताको भी	शुचः जहौ	शोक त्याग दिया ॥१८॥
भ्रातृपत्नीः	भाइयोंकी पत्नियों		

॥ कुन्त्युवाच ॥

॥ कुन्त्युवाच ॥

आर्य भ्रातरहं मन्ये आत्मानमकृताशिषम् ।
यद् वा आपत्सु मद्वार्तां नानुस्मरथ सत्तमाः । १९॥

आर्य भ्रातः अहं मन्ये आत्मानं अकृत आशिषं यत् वा आपत्सु मत् वार्ता न अनुस्मरथ सत्तमाः ॥१९॥

आर्य भ्रातः	बड़े भैया !	मत् वार्ता	मेरी अवस्थाका
अहं आत्मानं	मैं अपनेको	सत्तमाः न	आप सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ भी नहीं
अकृत आशिषं	भाग्यहीना	अनुस्मरथ	कभी स्मरण नहीं करते ॥१९॥
मन्ये	मानती हूँ		
यत् वा आपत्सु	क्योंकि विपत्तिमें		

सुहृदो ज्ञातयः पुत्रा भ्रातरः पितरावपि ।
नानुस्मरन्ति स्वजनं यस्य दैवमदक्षिणम् ॥२०॥

सुहृदः ज्ञातयः पुत्रा भ्रातरः पितराः अपि न अनुस्मरन्ति स्वजनं यस्य दैवं अदक्षिणम् ॥२०॥

सुहृदः ज्ञातयः	मित्र, जातिके लोग	न अनुस्मरन्ति	नहीं स्मरण करते
पुत्रा भ्रतरः	पुत्र, भाई	यस्य दैवं	जिसके दैव
पितराः अपि	माता-पिता भी	अदक्षिणं	दाहिने (अनुकूल) नहीं है ॥२०॥
स्वजनं	(अपने) उस स्वजन को		

॥ वसुदेव उवाच ॥

अम्ब मास्मानसूयेथा दैवक्रीडनकान् नरान् ।
ईशस्य हि वशे लोकः कुरुते कार्यतेऽथवा ॥२१॥

अम्ब मा अस्मान् असूयेथा दैव क्रीडनकान् नरान् ईशस्य हि वशे लोकः कुरुते कार्यते अथवा ॥२१॥

अम्ब	बहिन !
दैव क्रीडनकान्	दैवके खिलोने
अस्मान् नरान्	हम सब मनुष्योंको
असूयेथा मा	दोष मत दो,
हि लोकः	क्योंकि सब लोक
ईशस्य वशे	ईश्वरके वशमें होकर ही
कुरुते अथवा	कुछ करते अथवा
कार्यते	कराते हैं ॥२१॥

कंसप्रतापिताः सर्वे वयं याता दिशं दिशम् ।
एतर्ह्येव पुनः स्थानं दैवेनासादिताः स्वसः ॥२२॥

कंसप्रतापिताः सर्वे वयं याता दिशं दिशं एतः हि एव पुनः स्थानं दैवेन आसादिताः स्वसः ॥२२॥

स्वसः	बहिन !
कंसप्रतापिताः	कंस द्वारा सताये हुए
वयं सर्वे	हम सब
दिशं दिशं	अनेक दिशाओंमें
याता	चले गये थे
हि एतः	क्योंकि इस
दैवेन एव	दैवने ही
पुनः स्थानं	फिर (हमें) अपना
आसादिताः	स्थान प्राप्त कराया है ॥२२॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

वसुदेवोग्रसेनाद्यैर्यदुभिस्तेऽर्चिता नृपाः ।
आसन्नच्युतसन्दर्शपरमानन्दनिर्वृताः ॥२३॥

वसुदेव उग्रसेन आद्यैः यदुभिः ते अर्चिता नृपाः आसन् अच्युत सन्दर्श परम आनन्द निर्वृताः ॥२३॥

वसुदेव उग्रसेन	वसुदेव, उग्रसेन
आद्यैः यदुभिः	आदि यादवों द्वारा
अर्चिता ते नृपाः	सत्कृत वे राजा लोग
अच्युत सन्दर्श	अच्युतके दर्शनसे
परम आनन्द	परम आनन्दमें
निर्वृताः आसन्	निमग्न हो गये ॥२३॥

भीष्मो द्रोणोऽम्बिकापुत्रो गान्धारी ससुता तथा ।
सदाराः पाण्डवाः कुन्ती सृञ्जयो विदुरः कृपः ॥२४॥

भीष्मः द्रोणः अम्बिकापुत्रः गान्धारी ससुता तथा सदाराः पाण्डवाः कुन्ती सृञ्जयः विदुरः कृपः ॥२४॥

भीष्मः द्रोणः	भीष्म, द्रोणाचार्य	**सदाराः**	पत्नियोंके साथ
अम्बिकापुत्रः	अम्बिका पुत्र धृतराष्ट्र	**पाण्डवाः**	पाण्डव
		कुन्ती सृञ्जयः	कुन्ती, सृञ्जय
तथा ससुता	तथा पुत्रोंके साथ	**विदुरः कृपः**	विदुर, कृपाचार्य ॥२४॥
गान्धारी	गान्धारी,		

कुन्तिभोजो विराटश्च भीष्मको नग्नजिन्महान् ।
पुरुजिद् द्रुपदः शल्यो धृष्टकेतुः सकाशिराट् ॥२५॥

कुन्तिभोजः, विराटः, च, भीष्मकः, नग्नजित् महान्-पुरुजित् द्रुपदः शल्यः, धृष्टकेतुः, स काशिराट् ॥२५॥

दमघोषो विशालाक्षो मैथिलो मद्रकेकयौ ।
युधामन्युः सुशर्मा च ससुता बाह्लिकादयः ॥२६॥

दमघोषः, विशालाक्षः, मैथिलः मद्र, केकयोः, युधामन्युः, सुशर्मा, च, ससुता (पुत्रोंके साथ) **बाह्लिक, आदयः ॥२६॥***

राजानो ये च राजेन्द्र युधिष्ठिरमनुव्रताः ।
श्रीनिकेतं वपुः शौरेः सस्त्रीकं वीक्ष्य विस्मिताः ॥२७॥

राजानः ये च राजेन्द्र युधिष्ठिरं अनुव्रताः श्रीनिकेतं वपुः शौरेः सस्त्रीकं वीक्ष्य विस्मिताः ॥२७॥

---

*ये केवल संज्ञाएँ हैं ।

राजेन्द्र	महाराज !	शौरेः श्रीनिकेतं	श्रीकृष्णका शोभा-धाम
युधिष्ठिरं	युधिष्ठिरके		
अनुव्रताः	अनुवर्ती	वपुः वीक्ष्य	शरीर देखकर
ये च राजानः	जो राजा लोग थे	विस्मिताः	चकित हो गये ॥२७॥
सस्त्रीकं	पत्नियोंके साथ		

अथ ते रामकृष्णाभ्यां सम्यक् प्राप्तसमर्हणाः ।
प्रशशंसुर्मुदा युक्ता वृष्णीन् कृष्णपरिग्रहान् ॥२८॥

अथ ते रामकृष्णाभ्यां सम्यक् प्राप्ताः समर्हणाः प्रशशंसुः मुदा युक्ता वृष्णीन् कृष्ण परिग्रहान् ॥२८॥

अथ ते	फिर वे	प्राप्ताः	पाकर
रामकृष्णाभ्यां	बलराम-श्रीकृष्ण द्वारा	मुदा युक्ता	आनन्दित होकर
		कृष्ण परिग्रहान्	श्रीकृष्णके परिकर
सम्यक्	भली प्रकार	वृष्णीन् प्रशशंसुः	यादवोंकी प्रशंसा करने लगे ॥२८॥
समर्हणाः	श्रेष्ठ सत्कार		

॥ राजन: ऊचुः ॥*

अहो भोजपते यूयं जन्मभाजो नृणामिह ।
यत् पश्यथासकृत् कृष्णं दुर्दर्शमपि योगिनाम् ॥२९॥

अहो हे भोजपते यूयं जन्मभाजः नृणां इह यत् पश्यथ असकृत् कृष्णं दुर्दर्श अपि योगिनाम् ॥२९॥

अहो हे भोजपते	अहो हे भोजराज उग्रसेनजी !	जन्मभाजः	जन्मका पात्र होने योग्य
इह नृणां	इस लोकमें मनुष्य		

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

यूयं	आप सब ही हैं	कृष्णं	श्रीकृष्णको
यत् योगिनां	क्योंकियोगियोंके लिए	असकृत् पश्यथ	बराबर देखते हैं
अपि	भी		॥२९॥
दुर्दर्श	जिनका दर्शन कठिन है उन		

यद्विश्रुतिः श्रुतिनुतेदमलं पुनाति
पादावनेजनपयश्च वचश्च शास्त्रम् ।
भूः कालभर्जितभगापि यदङ्घ्रिपद्म
स्पर्शोत्थशक्तिरभिवर्षति नोऽखिलार्थान् ॥३०॥

यत् विश्रुतिः श्रुतिनुत इदं अलं पुनाति पाद अवनेजन पयः च वचः च शास्त्रं भूः काल भर्जित भग अपि यत् अंघ्रि पद्म स्पर्श उत्थ शक्तिः अभिवर्षति नः अखिल अर्थान् ॥३०॥

श्रुतिनुत	वेद-वर्णित	भग अपि भूः	ऐश्वर्य वाली होकर भी भूमि
यत् विश्रुतिः	जिनका सुयश	यत् अघ्रि पद्म	जिनके चरण-कमल के
च पाद	तथा चरण-	स्पर्श उत्थ	स्पर्शसे प्राप्त
अवनेजन पयः	प्रक्षालनका जल गंगा,	शक्तिभिः नः	शक्ति द्वारा हमारे
च शास्त्रं वचः	एवं शास्त्र रूप वाणी	अखिल अर्थान्	सम्पूर्ण पदार्थोंकी
इदं अलं पुनाति	इस सम्पूर्ण संसार को पवित्र करती है	अभिवर्षति	चारो ओर वर्षा करती है ॥३०॥
काल भर्जित	काल द्वारा भस्म किये		

तद्दर्शनस्पर्शनानुपथप्रजल्प-
शय्यासनाशनसयौनसपिण्डबन्धः ।
येषां गृहे निरयवर्त्मनि वर्ततां वः
स्वर्गापवर्गविरमः स्वयमास विष्णुः ॥३१॥

तत् दर्शन स्पर्शन अनुपथ प्रजल्प शय्या असन आशन सयौनस पिण्डबन्धः येषां गृहे निरय वर्त्मनि वर्ततां वः स्वर्ग अपवर्ग विरम. स्वयं आस विष्णुः ॥३१॥

तत् दर्शन	उनके दर्शन
स्पृर्शन	स्पर्श
अनुपथ	सहगमन
प्रजल्प	बातचीत,
शय्या, असन,	सोने, बैठने,
आशन	भोजनका व्यवहार
सयौनस	विवाह एवं
पिण्डबन्धः	दैहिक सम्बन्ध (के कर्म होते) हैं
निरय वर्त्मनि	नरकके मार्ग रूप
गृहे येषां	घरोंमें जिनके
वर्ततां वः	व्यवहार करते समय आप लोगोंके साथ
स्वर्ग अपवर्ग	स्वर्ग तथा मोक्षकी (इच्छा)
विरमः	दूर करने वाले
स्वय विष्णुः	स्वयं भगवान
आस	रहते हैं (उन्होंका जीवन सफल है) ॥३१॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

नन्दस्तत्र यदून् प्राप्तान् ज्ञात्वा कृष्णपुरोगमान् ।
तत्रागमद् वृतो गोपैरनः स्थार्थैर्दिदृक्षया ॥३२॥

नन्दः तत्र यदून् प्राप्तान् ज्ञात्वा कृष्णपुरः अगमान् तत्र अगमत् वृतः गोपैः अनस्थ अर्थैः दिदृक्षया ॥३२॥

कृष्णपुरः	जिनके आगे श्रीकृष्ण
अगमान्	चलते हैं
यदून्	उन यादवोंको
तत्र प्राप्तान्	वहां आया
ज्ञात्वा नन्दः	जान कर नन्दजी
दिदृक्षया	देखनेकी इच्छासे
अनस्थ अर्थैः	छकड़ोंमें सामग्री लादकर
गोपैः वृतः	गोपोंसे घिरे
तत्र अगमत्	वहाँ आये ॥३२॥

तं दृष्ट्वा वृष्णयो हृष्टास्तन्वः प्राणमिवोत्थिताः ।
परिषस्वजिरे गाढं चिरदर्शनकातराः ॥३३॥

तं दृष्ट्वा वृष्णयः हृष्टाः तन्वः प्राणं इव उत्थिताः परिषस्वजिरे गाढं चिरदर्शन कातराः ॥३३॥

तं दृष्ट्वा	उनको देखकर	**उत्थिताः**	उठकर
चिरदर्शन	बहुत दिनोंसे दर्शन	**गाढं**	प्रगाढ़
कातराः	को व्याकुल	**परिषस्वजिरे**	आलिंगन किया ॥३३॥
वृष्णयः हृष्टाः	यादव प्रसन्न होकर		
तन्वः प्राणं इव	शरीरमें प्राण आये के समान		

वसुदेवः परिष्वज्य सम्प्रीतः प्रेमविह्वलः ।
स्मरन् कंसकृतान् क्लेशान् पुत्रन्यासं च गोकुले ॥३४॥

वसुदेवः परिष्वज्य सम्प्रीतः प्रेमविह्वलः स्मरन् कंसकृतान् क्लेशान् पुत्रन्यासं च गोकुले ॥३४॥

वसुदेवः	वसुदेवजी	**स्मरन्**	स्मरण करके
परिष्वज्य	आलिंगन करके	**प्रेमविह्वलः**	प्रेमसे व्याकुल हो गये ॥३४॥
कंसकृतान्	कंसके द्वारा		
क्लेशान्	दिये गये क्लेश		
च गोकुले	तथा गोकुलमें		
पुत्रन्यासं	पुत्रोंको रखना		

कृष्णरामौ परिष्वज्य पितरावभिवाद्य च ।
न किंचनोचतुः प्रेम्णा साश्रुकण्ठौ कुरूद्वह ॥३५॥

कृष्णरामौ परिष्वज्य पितरः अभिवाद्य च न किञ्चन् ऊचतुः प्रेम्णा स अश्रुकण्ठौ कुरूद्वह ॥३५॥

कुरूद्वह	कुरुकुल पालक परीक्षित !	**कृष्णरामौ च**	श्रीकृष्ण और बलराम तो

पितरः	माता-पिता (नन्द यशोदा)का	**प्रेम्णा**	प्रेमके कारण
		स अश्रुकण्ठौ	आंसू भरे कण्ठ
परिष्वज्य	आलिंगन करके	**किञ्चन् न**	कुछ नहीं
अभिवाद्य	तथा प्रणाम करके	**ऊचतुः**	बोल सके ॥३५॥

तावात्मासनमारोप्य बाहुभ्यां परिरभ्य च ।

यशोदा च महाभागा सुतौ विजहतुः शुचः ॥३६॥

ताः आत्म आसनं आरोप्य बाहुभ्यां परिरम्य च यशोदा च महाभागा सुतौ विजहतुः शुचः ॥३६॥

महा भागा	महाभाग्यवती	**आरोप्य च**	बैठाकर तथा
यशोदा च	यशोदाजी भी	**बाहुभ्यां**	भुजाओंसे
ताः सुतौ	उन पुत्रोंको	**परिरभ्यः**	आलिंगन करके
आत्म आसनं	अपने आसन (गोद) में	**शुचः विजहतुः**	अश्रुपात करने लगीं ॥३६॥

॥ रोहिणि देवक्योवाच ॥*

रोहिणी देवकी चाथ परिष्वज्य व्रजेश्वरीम् ।

स्मरन्त्यौ तत्कृतां मैत्रीं बाष्पकण्ठ्यौ समूचतुः ॥३७॥

रोहिणी देवकी च अथ परिष्वज्य व्रजेश्वरीं स्मरन्त्यौ तत् कृतां मैत्रीं बाष्प कण्ठ्यौ समूचतुः ॥३७॥

अथ रोहिणी च देवकी व्रजेश्वरीं	फिर रोहिणी और देवकी व्रजेश्वरी यशोदाजी को	**परिष्वज्य तत् कृतां मैत्रीं**	आलिंगन करके उनके द्वारा की गयी मित्रता

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

स्मरत्यौ	स्मरण करके	**समूचतुः**	किसी प्रकार बोलीं
बाष्पकण्ठचौ	अश्रु भरे कण्ठसे		॥३७॥

का विस्मरेत वां मैत्रीमनिवृत्तां व्रजेश्वरि ।
अवाप्याप्यैन्द्रमैश्वर्यं यस्या नेह प्रतिक्रिया ॥३८॥

का विस्मरेत् वां मैत्रीं अनिवृत्तां व्रजेश्वरि अवाप्य अपि ऐन्द्रं ऐश्वर्यं यस्या न इह प्रतिक्रिया ॥३७॥

व्रजेश्वरी	व्रजेश्वरी !	**अनिवृत्तां**	कभी न छूटने वाली
ऐन्द्रं ऐश्वर्यं	इन्द्रका वैभव	**वां मैत्रीं**	आप दोनोंकी मित्रताको
अवाप्य अपि	पाकर भी	**का विस्मरेत्**	कौन भूल सकती है ॥३८॥
इह यस्या	जिसका इस लोक में		
प्रतिक्रिया न	बदला नहीं है उस		

एतावदृष्टपितरौ युवयोः स्म पित्रोः
सम्प्रीणनाभ्युदयपोषणपालनानि ।
प्राप्योषतुर्भवति पक्ष्म ह यद्वदक्ष्णो-
र्न्यस्तावकुत्रचभयौ न सतां परः स्वः ॥३९॥

एताः अदृष्ट पितरौ युवयोः स्म पित्रोः सम्प्रीणन अभ्युदय पोषण पालनानि प्राप्य ऊषतुः भवति पक्ष्म ह यत्वत् अक्ष्णोः न्यस्ताः अकुत्र च भयौ न सतां परः स्वः ॥३९॥

एताः	इन (राम-कृष्ण)ने	**पक्ष्म ह यद्वत्**	पलकें ही जैसे
अदृष्ट पितरौ	जब अपने माता-पिताको देखा भी नहीं था	**अक्ष्णोः**	नेत्रोंकी (रक्षा करती हैं)
		सम्प्रीणन	लालन
युवयोः पित्रोः	तब आप दोनों ही (इनके) माता-पिता	**अभ्युदय**	पालन
		पोषण	पोषणसे
स्म	थे	**पालनानि प्राप्य**	पालन पाकर

च अकुत्र भयौ	तथा निर्भय	**सतां**	सत्पुरुषोंमें
भवति न्यस्ताः	आपके समीप रखे	**परः स्वः न**	पराया-अपना भाव
ऊषतुः	वहां रहे		नहीं होता ॥३९॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं
यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपन्ति ।
दृग्भिर्हृदीकृतमलं परिरभ्य सर्वा-
स्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम् ॥४०॥

गोप्यः च कृष्णं उपलभ्य चिरात् अभीष्टं यत् प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपन्ति दृक्भिः हृदीकृतं अलं परिरभ्य सर्वाः तत् भावं आपुः अपि नित्य-युजां दुरापम् ॥४०॥

यत् प्रेक्षणे	जिनके दर्शनके लिए	**अलं परिरभ्य**	सम्पूर्ण आलिंगन करके
दृशिषु	नेत्रोंमें	**सर्वाः**	सब
पक्ष्मकृतं	पलकें बनाने वाले (ब्रह्मा)को	**नित्ययुजां**	सदा प्रयत्न करने वाले योगियों
शपन्ति	कोसती थीं	**अपि दुरापं**	को भी दुष्प्राप्य
गोप्यः च	वे गोपियां भी	**तत् भावं आपुः**	उन (श्रीकृष्ण)क तदाम्यको प्राप्त हो गयीं ॥४०॥
चिरात् अभीष्टं	बहुत समयसे अभिलषित		
कृष्णं उपलभ्य	श्रीकृष्णको पाकर		
दृक्भिः हृदीकृतं	नेत्रोंसे हृदयमें लाकर		

भगवांस्तास्तथाभूता विविक्त उपसंगतः ।
आश्लिष्यानामयं पृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥४१॥

भगवान् ताः तथा भूता विविक्त उपसङ्गतः आश्लिष्य अनामयं पृष्ट्वा प्रहसन् इदं अब्रवीत् ॥४१॥

तथा भूता	इस प्रकारकी स्थिति प्राप्ता	**आश्लिष्य**	आलिंगन करके
		अनामयं पृष्ट्वा	नैरोग्य पूछकर
ताः विविक्त	उनसे एकान्तमें	**प्रहसन्**	हँसते हुए
उपसङ्गतः	समीप जाकर	**इदं अब्रवीत्**	यह बोले ॥४१॥
भगवान्	भगवान्ने		

॥ श्रीभगवानुवाच ॥*

अपि स्मरथ नः सख्यः स्वानामर्थचिकीर्षया ।
गतांश्चिरायिताञ्छत्रुपक्षक्षपणचेतसः ॥४२॥

अपि स्मरथ नः सख्यः स्वानां अर्थ चिकीर्षया गतान् चिरायितान् शत्रुपक्ष क्षपण चेतसः ॥४२॥

स्वानां अर्थ	अपनोंका प्रयोजन	**चिरायितान्**	विलम्ब करने वाले
चिकीर्षया	बनानेकी इच्छासे	**नः सख्यः**	हमको सखियो
गतान्	जाकर	**अपि स्मरथ**	क्या स्मरण करती हो ? ॥४२॥
शत्रु पक्ष	शत्रु पक्षको		
क्षपण चेतसः	नष्ट करनेमें लगे चित्त		

अप्यवध्यायथास्मान् स्विदकृतज्ञाविशङ्कया ।
नूनं भूतानि भगवान् युनक्ति वियुनक्ति च ॥४३॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अपि अवध्यायथ अस्मान् स्वित् अकृतज्ञ अविशङ्क्या नूनं भूतानि भगवान् युनक्ति वियुनक्ति च ॥४३॥

अस्मान्	हमको	अवध्यायथ	निन्द्रा करती हो ?
अकृतज्ञ	कृतज्ञताहीन होने की	नूनं भगवान्	निश्चय भगवान ही
		भूतानि युनक्ति	प्राणियोंको मिलाते
अविशङ्क्या	शंकासे	च वियुनक्ति	तथा वियुक्त करते
अपि स्वित्	क्या कहीं		हैं ॥४३॥

वायुर्यथा घनानीकं तृणं तूलं रजांसि च ।
संयोज्याक्षिपते भूयस्तथा भूतानि भूतकृत् ॥४४॥

वायुः यथा घन अनीकं तृणं तूलं रजांसि च संयोज्य अक्षिपते भूयः तथा भूतानि भूतकृत् ॥४४॥

यथा वायुः	जैसे वायु	अक्षिपते	दूर फेंक देता है,
घन आनीकं	मेघोंके दलको	तथा भूतकृत्	ऐसे ही प्राणि- निर्माता विधाता
तृणं तूलं	तिनकों, रुई		
च रजांसि	तथा धूलिकणोंको	भूतानि	प्राणियोंको ॥४४॥
संयोज्य भूयः	मिलाकर फिर		

मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते ।
दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥४५॥

मयिः भक्तिः हि भूतानां अमृतत्वाय कल्पते दिष्ट्या यत् आसीत् मत् स्नेहः भवतीनां मत् आपनः ॥४५॥

हि मयि भक्तिः	क्योंकि मेरी भक्ति	कल्पते	प्रदान करने वाली है
भूतानां	प्राणियोंको		
अमृतत्त्वाय	अमरत्व		

दिष्ट्या	प्रसन्नताकी बात है कि	**मद् आपनः**	मुझे प्राप्त कराने वाला
भवतीनां	तुम लोगोंमें	**मत् स्नेहः आसीत्**	मेरा प्रेम है ॥४५॥

अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरं बहिः ।
भौतिकानां यथा खं वार्भूर्वायुर्ज्योतिरङ्गनाः ॥४६॥

अहं हि सर्वभूतानां आदिः अन्तः अन्तरं बहिः भौतिकानां यथा खं वा वायुः भूः ज्योतिः अङ्गनाः ॥४६॥

अङ्गनाः	मेरी अंगभूताओ !	**सर्वभूतानां**	समस्त प्राणियोंके
यथा भौतिकानां	जैसे मिट्टीसे बने पदार्थोंमें	**आदिः अन्तः**	आदि और अन्तमें
खं वायुः भूः	आकाश, वायु, पृथ्वी	**वा**	अथवा
ज्योतिः	अग्नि (व्याप्त है वैसे ही)	**अन्तरं बहिः**	भीतर और बाहर
		हि अहं	क्योंकि मैं ही हूँ ॥४६॥

एवं ह्येतानि भूतानि भूतेष्वात्माऽऽत्मना ततः ।
उभयं मय्यथ परे पश्यताभातमक्षरे ॥४७॥

एवं हि एतानि भूतानि भूतेषुः आत्मा आत्मना ततः उभयं मयि अथ परे पश्यत आभातं अक्षरे ॥४७॥

एवं हि एतानि भूतानि	इस प्रकार ही ये पञ्च महाभूत	**मयि अक्षरे**	मुझ अविनाशी
भूतेषुः	प्राणियों (के देह)में	**आत्मा**	आत्मा
आत्मना ततः	अपने स्वरूपसे व्याप्त हैं	**परे**	परं तत्वमें
अथ उभयं	फिर दोनों (पंच भूतों तथा देहों)को	**आभातं पश्यत**	भासित होते देखो ॥४७॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

अध्यात्मशिक्षया गोप्य एवं कृष्णेन शिक्षिताः ।
तदनुस्मरणध्वस्तजीवकोशास्तमध्यगन् ॥४८॥

अध्यात्म शिक्षया गोप्य एवं कृष्णेन शिक्षिताः तत् अनुस्मरण ध्वस्त जीवकोशाः तं अध्यगन् ॥४८॥

एवं कृष्णेन	इस प्रकार श्रीकृष्ण द्वारा	**जीवकोशाः ध्वस्त**	लिङ्ग शरीरका नाश हो जानेसे
अध्यात्म	अध्यात्म	**तं अध्यगन्**	उनको प्राप्त हो गयीं ॥४८॥
शिक्षया	शिक्षासे		
शिक्षिताः गोप्य	शिक्षिता गोपियां		
तत् अनुस्मरण	उनके निरन्तरण स्मरणसे		

आहुश्च ते नलिननाभ पदारविन्दं
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
गेहञ्जुषामपि मनस्युदियात् सदा नः ॥४९॥

आहुः च ते नलिननाभ पद अरविन्दं योगेश्वरैः हृदि विविचिन्त्यं अगाध बोधैः संसार कूप पतित उत्तरण अवलम्बं गेहञ्जुषां अपि मनसि उदियात् सदा नः ॥४९॥

आहुः च	बोलीं भी—	**संसार**	संसार रूपी
नलिननाभ	'पद्मनाभ !	**कूप पतित**	कुएँमें गिरेको
अगाध बोधैः	अथाह ज्ञानवान	**उत्तरण**	निकलनेका
योगेश्वरैः	योगेश्वरों द्वारा	**अवलम्बं**	सहारा
हृदि विचिन्त्यं	हृदयमें ध्येय		

ते पद अरविन्दं	आपके चरण-कमल	**नः मनसि**	हमारे मनमें
गेहञ्जुषां अपि	घरमें रहने वाली होने पर भी	**सदा उदियात्**	सदा प्रकाशित रहें' ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे वृष्णिगोपसंगमो नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

तथानुगृह्य भगवान् गोपीनां स गुरुर्गतिः ।
युधिष्ठिरमथापृच्छत् सर्वांश्च सुहृदोऽव्ययम् ॥ १ ॥

तथा अनुगृह्य भगवान् गोपीनां स गुरुः गतिः युधिष्ठिरं अथ अपृच्छत् सर्वान् च सुहृदः अव्ययम् ॥१॥

स गोपीनां गुरुः	उन गोपियोंके गुरु	**युधिष्ठिरं**	युधिष्ठिर
गतिः भगवान्	एवं परमगति भगवानने	**अथ सर्वान्**	तथा सब
तथा अनुगृह्य	इस प्रकार (उन पर) अनुग्रह करके	**सुहृदः च**	सुहृदोंसे भी
		अव्ययं अपृच्छत्	कुशल पूछी ॥१॥

त एवं लोकनाथेन परिपृष्टाः सुसत्कृताः ।
प्रत्यूचुर्हृष्टमनसस्तत्पादेक्षाहतांहसः ॥ २ ॥

त एवं लोकनाथेन परिपृष्टाः सुसत्कृताः प्रत्यूचुः हृष्ट मनसः तत् पाद ईक्षा हत अंहसः ॥२॥

लोकनाथेन	लोकमहेश्वर द्वारा	**हत अंहसः**	निष्पाप हुए
एवं परिपृष्टाः	इसप्रकार पूछकर	**हृष्ट मनसः**	हर्षित चित्त
सुसत्कृताः	भली प्रकार सम्मानित किये गये	**प्रत्यूचुः**	उनसे बोले ॥२॥
त तत्	वे उनके		
पाद ईक्षा	चरण-दर्शनसे		

॥ युधिष्ठिर उवाच ॥*

कुतोऽशिवं त्वच्चरणाम्बुजासवं
महन्मनस्तो मुखनिःसृतं क्वचित् ।
पिबन्ति ये कर्णपुटैरलं प्रभो
देहम्भृतां देहकृदस्मृतिच्छिदम् ॥ ३ ॥

कुतः अशिवं त्वत् चरण अम्बुज आसवं महत् मनस्तः मुख निःसृतं क्वचित् पिबन्ति ये कर्णपुटैः अलं प्रभो देहं भृतां देहकृत् अस्मृतिः छिदम् ॥३॥

प्रभो	प्रभो !	त्वत्	आपके
देहं भृतां	शरीर धारियोंको		सुषुप्ति)
देहकृत्	शरीर देने वाली	चरण अम्बुज	चरण-कमलोंका
अस्मृतिः छिदं	विस्मृति (अविद्या)	आसवं	आसव
	नष्ट करने वाली	ये कर्णपुटैः	जो कानोंके दोनेसे
महत् मनस्तः	महापुरुषोंके चित्तसे	अलं पिबन्ति	भरपूर पीते हैं
क्वचित्	कभी	कुतः आशिवं	(उपके लिए)
मुख निःसृतं	मुखसे निकला		अमंगल कहां ॥३॥

हित्वाऽऽत्मधामविधुतात्मकृतत्र्यवस्थ-
मानन्दसम्प्लवमखण्डमकुण्ठबोधम् ।
कालोपसृष्टनिगमावन आत्तयोग-
मायाकृतिं परमहंसगतिं नताः स्म ॥ ४ ॥

हित्वा आत्म धाम विधुत आत्म कृत त्र्यः अवस्थं आनन्द सम्प्लवं अखण्डं अकुण्ठ बोधं काल उपसृष्ट निगम अवन आत्तयोग मायाकृतिं परमहंस गतिं नताः स्म ॥४॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

आत्मधाम	अपने स्वरूपसे ही
आत्म त्रय	आत्माकी तीनों (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति)
अवस्थं	अवस्थाओंको
विधुत हित्वाः	निरस्त करके त्यागे हुए
आनन्द सम्प्लवं	आनन्द समुद्र
अखण्डं अकुण्ठ	अखण्ड एक रस
बोधं	ज्ञानस्वरूप
परमहंसगतिं	परमहंसोंको परमगति
काल उपसृष्ट	समयके प्रभावसे
निगम अवन	वेदोंकी रक्षाके लिए
आत्तयोग माया	अपनी योगमायासे
कृतिं	शरीर धारण किये
नताः स्म	(आपको हम) प्रणाम करते हैं ॥४॥

॥ ऋषिरुवाच ॥

इत्युत्तमश्लोकशिखामणिं जने-
ष्वभिष्टुवत्स्वन्धककौरवस्त्रियः ।
समेत्य गोविन्दकथा मिथोऽगृणं-
स्त्रिलोकगीताः शृणु वर्णयामि ते ॥ ५ ॥

इति उत्तमश्लोक शिखामणिं जनेषु अभिष्टुवत्सु अन्धक कौरव स्त्रियः समेत्य गोविन्दकथा मिथः अगृणन् त्रिलोकगीताः शृणु वर्णयामि ते ॥५॥

इति जनेषु	इस प्रकार लोगोंके
उत्तमश्लोक	पुण्यकीर्ति लोगोंके
शिखामणि	चूड़ामणि (भगवान) की
अभिष्टुवत्सु	स्तुति करते समय ही
अन्धक	अन्धक और
कौरव स्त्रियः	कुरुवंशकी स्त्रियां
समेत्य	एकत्र होकर
त्रिलोकगीताः	तीनो लोकोंमें गायी जाने वाली
गोविन्दकथा	गोविन्दकी कथा
मिथः अगृणन्	परस्पर करने लगी
ते वर्णयामि	उनका तुमसे वर्णन करता हूँ
शृणु	सुनो ॥५॥

॥ द्रौपद्युवाच ॥

हे वैदर्भ्यच्युतो भद्रे हे जाम्बवति कौसले ।
हे सत्यभामे कालिन्दि शैब्ये रोहिणि लक्ष्मणे ॥ ६ ॥

हे वैदर्भि अच्युतः भद्रे हे जाम्बवति कौसले हे सत्यभामे कालिन्दि शैब्ये रोहिणि लक्ष्मणे ॥६॥

हे वैदर्भि भद्रे	हे रुक्मिणी, भद्रे,	**शैब्ये रोहिणि**	शैब्या, रोहिणी
हे जाम्बवति	हे जाम्बवती,	**लक्ष्मणे अच्युतः**	लक्ष्मणा और अच्युतने ॥६॥
कौसले	सत्ये		
हे सत्यभामे	हे सत्यभामा,		
कालिन्दि	कालिन्दी		

हे कृष्णपत्न्य एतन्नो ब्रूत वो भगवान् स्वयम् ।
उपयेमे यथा लोकमनुकुर्वन् स्वमायया ॥ ७ ॥

हे कृष्णपत्न्यः एतत् नः ब्रूत वः भगवान् स्वयं उपयेमे यथा लोकं अनुकुर्वन् स्वमायया ॥७॥

स्वमायया	अपनी मायासे	**हे कृष्णपत्न्यः**	हे श्रीकृष्ण-पत्नियों
लोकं अनुकुर्वन्	लोगोंका अनुकरण करते हुए	**यथा वः उपयेमे**	जैसे तुम लोगोंको विवाहा
स्वयं भगवान्	स्वयं भगवान होकर भी	**एतत् नः ब्रूत**	हमें यह बतलाओ ॥७॥

॥ रुक्मिण्युवाच ॥

चैद्याय मार्पयितुमुद्यतकार्मुकेषु
राजस्वजेयभटशेखरिताङ्घ्रिरेणुः ।

निन्ये मृगेन्द्र इव भागमजावियूथात्
तच्छ्रीनिकेतचरणोऽस्तु ममार्चनाय ॥८॥

चैद्याय मा अर्पयितुं उद्यत कार्मुकेषु राजसु अजेय भट शेखर अंघ्रिरेणुः निन्ये मृगेन्द्र इव भागं अजावियूथात् तत् श्रीनिकेतचरणः अस्तु मम अर्चनाय ॥८॥

कार्मुकेषु	धनुष उठाये	**मृगेन्द्र इव**	सिंहके समान
राजसु चैद्याय	राजाओंके चेदिराज शिशुपालको	**भागं निन्ये**	अपना भाग ले लिया
मा अर्पयितुं	मुझे देनेको	**तत्**	वे
उद्यत	उद्यत रहता	**श्रीनिकेतचरणः**	शोभाधाम-चरण (सदा)
अजेय भट	अजेय वीरोंके	**मम**	मेरे
शेखर	मस्तक पर	**अर्चनाय अस्तु**	पूजनके लिए (प्राप्त) हों ॥८॥
अंघ्रिरेणुः	चरण-धूलि डालकर		
अजावियूथात्	बकरियोंके बड़े झुण्डमेंसे		

॥ सत्यभामोवाच ॥

यो मे सनाभिवधतप्तहृदा ततेन
लिप्ताभिशापमपमार्ष्टुमुपाजहार ।
जित्वर्क्षराजमथ रत्नमदात् स तेन
भीतः पितादिशत मां प्रभवेऽपि दत्ताम् ॥९॥

यः मे सनाभि वध तप्त हृदा ततेन लिप्त अभिशापं अपमार्ष्टुं उप आजहार जित् ऋक्षराजं अथ रत्नं अदात् स तेन भीतः पिता दिशत मां प्रभवे अपि दत्ताम् ॥९॥

सनाभि वध	भाईके मारे जानेसे
तप्त हृदा	संतप्त हृदय
मे ततेन	मेरे पिता द्वारा
लिप्त अभिशापं	लगाये गये कलंक को
अपमार्ष्टुं	दूर करनेके लिए
यः	जिन्होंने
जित् ऋक्षराजं	ऋक्षराज जाम्बवन्त को जीतकर
अथ रत्नं	फिर रत्न (स्यमन्तक मणि)
उप आजहार	उनसे लेकर
अदात्	दे दी
तेन भीतः पिता	इससे डरकर पिता ने
दत्तां प्रभवे अपि	वाग्दान हो जाने पर भी
मां दिशत्	मुझे भेंट कर दिया ॥९॥

॥ जाम्बवत्युवाच ॥

प्रज्ञाय देहकृदमुं निजनाथदेवं
सीतापतिं त्रिणवहान्यमुनाभ्ययुध्यत् ।
ज्ञात्वा परीक्षित उपाहरदर्हणं मां
पादौ प्रगृह्य मणिनाहममुष्य दासी ॥१०॥

प्रज्ञाय देहकृत् अमुं निजनाथ देवं सीतापतिं त्रिणव अहानि अमुना अभ्ययुध्यत् ज्ञात्वा परीक्षित उप अहरत् अर्हणं मां पादौ प्रगृह्य मणिना अहं अमुष्य दासी ॥१०॥

देहकृत्	इस शरीरके जन्म-दाता (पिता)
प्रज्ञाय	सर्वथा न पहिचान कर
अमुना	इनके साथ
त्रिणव अहानि	तीन नव (सत्ताइस) दिन
अभ्ययुध्यत्	घोर युद्ध करके
परीक्षित	परीक्षा लेकर
सीतापतिं देवं	देव सीतापति
निजनाथं अमुं	अपने स्वामी इनको
ज्ञात्वा	जानकर
पादौ प्रगृह्य	चरण पकड़कर

मणिना	मणिके साथ	उप अहरत्	भेंट कर दिया (अतः)
मां अर्हणं	मुझे पूजा करनेके लिए	अहं अमुष्य दासी	मैं इनकी दासी हूँ ॥१०॥

॥ कालिन्द्युवाच ॥

तपश्चरन्तीमाज्ञाय स्वपादस्पर्शनाशया ।
सख्योपेत्याग्रहीत् पाणिं योऽहं तद्गृहमार्जनी ॥११॥

तपः चरन्तीं आज्ञाय स्वपाद स्पर्शन आशया सख्या उपेत्य अग्रहीत् पाणिं यः अहं तत् गृहमार्जनी ॥११॥

स्वपाद स्पर्शन	अपने चरण-स्पर्श की	यः	जिन्होंने
आशया	इच्छासे	पाणि अग्रहीत्	पाणि-ग्रहण किया
तपः चरन्तीं	तपस्या करती	अहं तत्	मैं उनका
आज्ञाय	जानकर	गृहमार्जनी	घर बुहारने वाली हूँ ॥११॥
सख्या उपेत्य	सखा (अर्जुन) के साथ समीप आकर		

॥ मित्रविन्दोवाच ॥

यो मां स्वयंवर उपेत्य विजित्य भूपान्
निन्ये श्वयूथगमिवात्मबलिं द्विपारिः ।
भ्रातॄंश्च मेऽपकुरुतः स्वपुरं श्रियौक-
स्तस्यास्तु मेऽनुभवमङ्घ्रयवनेजनत्वम् ॥१२॥

यः मां स्वयंवरः उपेत्य विजित्य भूपान् निन्ये श्वयूथगं इव आत्मबलिं द्विपारिः भ्रातॄन् च मे अपकुरुतः स्वपुरं श्रिया ओकः तस्य अस्तु मे अनुभवं अंघ्रि अवनेजन त्वम् ॥१२॥

यः स्वयंवर	जिन्होंने स्वयंवरमें
उपेत्य	आकर
भूपान् च	राजाओंके तथा
अपकुरुतः	विरोध करते हुए
मे भातृन् च	मेरे भाइयोंको भी
विजित्य	जीतकर
श्वयूथगं	कुत्तोंके समूहमें पड़े
आत्मबलिं	अपनी भेंटको
द्विपारिः इव	सिंहके समान
श्रिया ओकः	शोभा धाम
स्वपुरं निन्ये	अपने नगर ले आये
तस्य अंघ्रि	उनके चरणोंका
अवनेजन त्वं	प्रक्षालन
मे अनुभवं अस्तु	मुझे प्रत्येक जन्ममें प्राप्त हो ॥१२॥

॥ सत्योवाच ॥

सप्तोक्षणोऽतिबलवीर्यसुतीक्ष्णशृङ्गान्
पित्रा कृतान् क्षितिपवीर्यपरीक्षणाय ।
तान् वीरदुर्मदहनस्तरसा निगृह्य
क्रीडन् बबन्ध ह यथा शिशवोऽजतोकान् ॥१३॥

सप्त अक्षणः अतिबल वीर्य सुतीक्ष्ण शृङ्गान् पित्रा कृतान् क्षितिप वीर्य परीक्षणाय तान् वीर दुर्मदहनः तरसा निगृह्य क्रीडन् बबन्ध ह यथा शिशवः अज तोकान् ॥१४॥

क्षितिप वीर्य	राजाओंके पराक्रम की
परीक्षणाय	परीक्षा करनेके लिए
पित्रा कृतान्	पिताके द्वारा निश्चित किये
अतिबल वीर्य	अत्यन्त बलवान, पराक्रमी
सुतीक्ष्ण शृङ्गान्	अत्यन्त तीक्ष्ण सींग वाले
सप्त अक्षणः	सात बैल थे,
तान् वीर	उन वीरोंके
दुर्मदहनः	घमण्डको नष्ट करने वालोंको
यथा शिशवः	जैसे बालक
अज तोकान्	बकरीके छोटे बच्चों को (पकड़े)
तरसा निगृह्य	वेग पूर्वक पकड़कर
क्रीडन् बबन्ध	खेलमें ही बाँध दिया ॥१३॥

य इत्थं वीर्यशुल्कां मां दासीभिश्चतुरङ्गिणीम् ।
पथि निर्जित्य राजन्यान् निन्ये तद्दास्यमस्तु मे ॥१४॥

यः इत्थं वीर्यशुल्कां मां दासीभिः चतुरङ्गिणीं पथि निर्जित्य राजन्यान् निन्ये तत् दास्यं अस्तु मे ॥१४॥

इत्थं वीर्यशुल्कां	इस प्रकार पराक्रम के मूल्यमें मिलने वाली
मां दासीभिः	मुझे दासियोंके साथ
पथि	मार्गमें
चतुरङ्गिणी	चतुरंगिणी (गज, रथ, अश्व, पैदल) सेनाके साथ
राजन्यान्	राजाओंको
निर्जित्य	जीतकर
यः निन्ये	जो ले आये
तत् दास्यं	उनकी सेवा
मे अस्तु	मुझे मिलती रहे ॥१४॥

॥ भद्रोवाच ॥

पिता मे मातुलेयाय स्वमाहूय दत्तवान् ।
कृष्णे कृष्णाय तच्चित्तामक्षौहिण्या सखीजनैः ॥१५॥

पिता मे मातुलेयाय स्वयं आहूय दत्तवान् कृष्णे कृष्णाय तत् चित्तां अक्षौहिण्या सखीजनैः ॥१५॥

कृष्णे	द्रोपदीजी !
मे पिता	मेरे पिताने
मातुलेयाय	मेरे मामाके पुत्र
कृष्णाय	श्रीकृष्णको
स्वयं आहूय	स्वयं बुलाकर
तत् चित्तां मे	उन्हींमें लगी चित्त वाली मुझे
अक्षौहिण्या	एक अक्षौहिणी सेना तथा
सखीजनैः	सखियोंके साथ
दत्तवान्	प्रदान किया ॥१५॥

अस्य मे पादसंस्पर्शो भवेज्जन्मनि जन्मनि ।
कर्मभिर्भ्राम्यमाणाया येन तच्छ्रेय आत्मनः ॥१६॥

अस्य मे पाद संस्पर्शः भवेत् जन्मनि जन्मनि कर्मभिः भ्राम्यमाणाया येन तत् श्रेयः आत्मनः ॥१६॥

कर्मभिः	अपने कर्मानुसार	**जन्मनि जन्मनि**	प्रत्येक जन्ममें
भ्राम्यमाणाया	(संसारमें) भटकती हुई	**भवेत्**	प्राप्त हो
		येन तत्	जिसमें मैं अपना
मे अस्य	मुझे इनके	**आत्मनः श्रेयः**	कल्याण मानती हूँ ॥१६॥
पाद संस्पर्शः	चरणोंका स्पर्श		

॥ लक्ष्मणोवाच ॥

ममापि राज्यच्युतजन्मकर्म
श्रुत्वा मुहुर्नारदगीतमास ह ।
चित्तं मुकुन्दे किल पद्महस्तया
वृतः सुसंमृश्य विहाय लोकपान् ॥१७॥

मम अपि राज्ञि अच्युत जन्मकर्म श्रुत्वा मुहुः नारदगीतं आस ह चित्तं मुकुन्दे किल पद्महस्तया वृतः सुसंमृश्य विहाय लोकपान् ॥१७॥

राज्ञि	महारानीजी !	**सुसंमृश्य**	भली प्रकार विचार करके
मुहुः नारदगीतं	बार-बार नारदजी के वर्णनमें	**पद्महस्तया वृतः**	लक्ष्मीजी द्वारा वरण किये गये
अच्युत	अच्युतके	**मम अपि**	मेरा भी
जन्मकर्म	अवतार कर्मोंको	**चित्तं ह**	चित्त तो
श्रुत्वा किल	सुनकर अहो	**मुकुन्दे आस**	मुकुन्दमें लगा था ॥१७॥
लोकपान्	लोकपालोंको		
विहाय	छोड़कर		

ज्ञात्वा मम मतं साध्वि पिता दुहितृवत्सलः ।
बृहत्सेन इति ख्यातस्तत्रोपायमचीकरत् ॥१८॥

ज्ञात्वा मम मतं साध्वि पिता दुहितृवत्सलः बृहत्सेन इति ख्यातः तत्र उपायं अचीकरत् ॥१८॥

साध्वि	साध्वी !	**दुहितृवत्सलः**	पुत्री-वत्सल
मम मतं ज्ञात्वा	मेरी सम्मति जानकर	**पिता तत्र**	पिताने इस विषय में
बृहत्सेन	वृहत्सेन	**उपायं**	उपाय
इति ख्यातः	इस नामसे प्रसिद्ध	**अचीकरत्**	किया ॥१८॥

यथा स्वयंवरे राज्ञि मत्स्यः पार्थेप्सया कृतः ।
अयं तु बहिराच्छन्नो दृश्यते स जले परम् ॥१९॥

यथा स्वयंवरे राज्ञि मत्स्यः पार्थ ईप्सया कृतः अयं तु बहिः आच्छन्नः दृश्यते स जले परम् ॥१९॥

राज्ञि यथा	महारानी जैसे (आपके)	**तु अयं बहिः**	किन्तु यह बाहरसे
स्वयंवरे	स्वयंवरमें	**आच्छन्नः**	ढका था
पार्थ ईप्सया	अर्जुनको पानेकी इच्छासे	**जले स**	जलमें उसकी
मत्स्यः कृतः	मत्स्य बनाया गया था (बनाया गया)	**परं दृश्यते**	परछाई दीखती थी ॥१९॥

श्रुत्वैतत् सर्वतो भूपा आययुर्मत्पितुः पुरम् ।
सर्वास्त्रशस्त्रतत्त्वज्ञाः सोपाध्यायाः सहस्रशः ॥२०॥

श्रुत्वा एतत् सर्वतः भूपाः आययुः मत् पितुः पुरं सर्व अस्त्रशस्त्र तत्त्वज्ञाः स उपाध्यायाः सहस्रशः ॥२०॥

एतत् श्रुत्वा	यह सुनकर
मत् पितुः पुरं	मेरे पिताके नगरमें
सर्व अस्त्रशस्त्र	सब अस्त्र-शस्त्रोंके
तत्त्वज्ञाः	मर्मज्ञ
सहस्रशः	सहस्रों
भूपाः	राजा अपने
स उपाध्यायाः	उपाध्यायोंके साथ
सर्वतः आययुः	सब ओरसे आये

॥२०॥

पित्रा सम्पूजिताः सर्वे यथावीर्यं यथावयः ।
आददुः सशरं चापं वेद्धुं पर्षदि मद्धियः ॥२१॥

पित्रा सम्पूजिताः सर्वे यथावीर्यं यथावयः आददुः सशरं चापं वेद्धुं पर्षदि मत् धियः ॥२१॥

यथावीर्यं	अपने पराक्रमके अनुसार तथा
यथावयः	जैसी (जिसकी) आयु थी
सर्वे पित्रा	सब पिता द्वारा
सम्पूजिताः	भली प्रकार सत्कृत होकर
मत् धियः	मुझेमें मन लगाकर
पर्षदि सशरं	सभामें बाणके साथ
वेद्धुं	(लक्ष्य) वेधके लिए
चापं आददुः	धनुष उठाया

॥२१॥

आदाय व्यसृजन् केचित् सज्यं कर्तुं मनीश्वराः ।
आकोटि ज्यां समुत्कृष्य पेतुरेकेऽमुना हताः ॥२२॥

आदाय व्यसृजन् केचित् सज्यं कर्तुं अनीश्वराः आकोटि ज्यां समुत् कृष्य पेतुः एके अमुना हताः ॥२२॥

केचित्	किसीने तो
सज्यं कर्तुं	ज्या चढ़ानेमें
अनीश्वराः	असमर्थ होकर
आदाय व्यसृजन्	(धनुष) उठाकर फिर छोड़ दिया
एके ज्यां	कोई डोरीको
आकोटि	धनुषकी नोंक तक
समुत् कृष्य	खींचकर
अमुना हताः पेतुः	उसके द्वारा झटका लगनेसे गिर गये

॥२२॥

सज्यं कृत्वा परे वीरा मागधाम्बष्ठचेदिपाः ।
भीमो दुर्योधनः कर्णो नाविन्दंस्तदवस्थितिम् । २३॥

सज्यं कृत्वा परे वीरा मागध अम्बष्ठ चेदिपाः भीमः दुर्योधनः कर्णः न अविन्दन् तत् अवस्थितिम् ॥२३॥

सज्यं कृत्वा	ज्या चढाकर	**तत् अवस्थितिं**	उस (मत्स्य)की स्थिति
परे वीरा	दूसरे वीर	**न अविन्दन्**	नहीं जान सके ॥२३॥
मागध अम्बष्ठ	जरासन्ध, दन्तवक्र		
चेदिपाः भीमः	शिशुपाल, भीमसेन		
दुर्योधनः कर्णः	दुर्योधन, कर्ण		

मत्स्याभासं जले वीक्ष्य ज्ञात्वा च तदवस्थितिम् ।
पार्थो यत्तोऽसृजद् बाणं नाच्छिनत् पस्पृशे परम् ॥२४॥

मत्स्य आभासं जले वीक्ष्य ज्ञात्वा च तत् अवस्थितिं पार्थः यत्तः असृजत् बाणं न अच्छिनत् पस्पृशे परम् ॥२४॥

मत्स्य आभासं	मछलीकी परछाई	**बाणं असृजत्**	बाण छोड़ा
जले वीक्ष्य	जलमें देखकर	**अच्छिनत् न**	पर (उससे लक्ष्य) वेध नहीं हुआ
तत् अवस्थितिं	उसकी स्थिति		
च ज्ञात्वा पार्थः	भी जानकर अर्जुन ने	**परं अस्पृशे**	केवल स्पर्श ही हुआ ॥२४॥
यत्तः	सावधानी पूर्वक		

राजन्येषु निवृत्तेषु भग्नमानेषु मानिषु ।
भगवान् धनुरादाय सज्यं कृत्वाथ लीलया ॥२५॥

राजन्येषु निवृत्तेषु भग्न मानेषु मानिषु भगवान् धनुः आदाय सज्यं कृत्वा अथ लीलया ॥२५॥

मानिषु	अभिमानियोंका	**भगवान्**	भगवान्ने
भग्न मानेषु	अभिमान नष्ट हो जाने पर	**धनुः**	धनुष
		आदाय अथ	लेकर फिर
राजन्येषु	राजाओंके	**लीलया**	खेलमें ही
निवृत्तेषु	चेष्टाहीन हो जाने पर	**सज्यं कृत्वा**	प्रत्यञ्चा चढ़ा कर ॥२५॥

तस्मिन् संधाय विशिखं मत्स्यं वीक्ष्य सकृज्जले ।
छित्त्वेषुणापातयत्तं सूर्ये चाभिजिति स्थिते ॥२६॥

तस्मिन् सन्धाय विशिखं मत्स्यं वीक्ष्य सकृत् जले छित्त्वा इषुणा पातयत् तं सूर्ये च अभिजिति स्थिते ॥२६॥

तस्मिन्	उस (धनुष) पर	**जले सकृत्**	जलमें एक बार
विशिखं सन्धाय	बाण चढ़ाकर	**मत्स्यं वीक्ष्य**	मछलीको देखकर
च सूर्ये	तथा सूर्यके	**इषुणा छित्त्वा**	बाणसे काटकर
अभिजिति स्थिते	अभिजित मुहूर्तमें आने पर	**तं पातयत्**	उसे गिरा दिया ॥२६॥

दिवि दुन्दुभयो नेदुर्जयशब्दयुता भुवि ।
देवाश्च कुसुमासारान् मुमुचुर्हर्षविह्वलाः ॥२७॥

दिवि दुन्दुभयः नेदुः जयशब्द युता भुवि देवाः च कुसुम आसारान् मुमुचुः हर्ष विह्वलाः ॥२७॥

भुवि जयाशब्द	पृथ्वीमें जयध्वनिके	**हर्ष विह्वलाः**	हर्षसे विह्वलाः
युता	साथ	**देवाः च**	देवता भी
दिवि	आकाशमें	**कुसुम**	पुष्पोंसे
दुन्दुभयः नेदुः	दुन्दुभियां बजने लगी	**आसारान्**	वर्षा करने
		मुमुचुः	लगे ॥२७॥

तद् रङ्गमाविशमहं कलनूपुराभ्यां
पद्भ्यां प्रगृह्य कनकोज्ज्वलरत्नमालाम् ।
नूत्ने निवीय परिधाय च कौशिकाग्र्ये
सव्रीडहासवदना कबरीधृतस्रक् ॥२८॥

तत् रङ्गम् आविशं अहं कलनू पुराभ्यां पद्भ्यां प्रगृह्य कनक उज्ज्वल रत्नमालां नूत्ने निवीय परिधाय च कौशिक अग्र्ये सव्रीडहास वदना कबरीधृत स्रक् ॥२८॥

नूत्ने	नवीन	सव्रीडहास	लज्जा पूर्ण मुस्कान
कौशिक अग्र्ये	उत्तम रेशमी वस्त्र	वदना	युक्त मुख वाली
निवीय च	पहिन और	अहं	मैं
परिधाय	ओढ़कर	कलनू पुराभ्यां	झंकार करते नूपुर
कबरीधृत स्रक्	जूड़ेमें माला लगा-कर	पद्भ्यां	पैरोंमें पहिने
		तत् रङ्गम्	उस रंग भूमिमें
कनक उज्ज्वल	स्वर्णसे दमकती	आविशं	प्रविष्ट हुई ॥२८॥
रत्नमालां प्रगृह्य	रत्न-माला लेकर		

उन्नीय वक्त्रमुरुकुन्तलकुण्डलत्विड्
गण्डस्थलं शिशिरहासकटाक्षमोक्षैः ।
राज्ञो निरीक्ष्य परितः शनकैर्मुरारे-
रंसेऽनुरक्तहृदया निदधे स्वमालाम् ॥२९॥

उन्नीय वक्त्रं उरु कुन्तल कुण्डलत्विड् गण्डस्थलं शिशिरहास कटाक्षमोक्षैः राज्ञः निरीक्ष्य परितः शनकैः मुरारेः अंसे अनुरक्त हृदया निदधे स्वमालाम् ॥२९॥

उरु कुन्तल	सघन अलकों एवं	गण्डस्थलं	कपोल प्रान्त वाले
कुण्डलत्विड्	कुण्डलोंकी कान्ति युक्त	वक्त्रं उन्नीय	मुखको उठाकर
		शिशिरहास	शीतल हास्य

कटाक्षमोक्षैः	कटाक्षपातसे	मुरारेः अंसे	श्रीकृष्णके गलेमें
परितः	चारों ओर	शनकैः स्वमालां	धीरेसे अपनी माला
राज्ञः निरीक्ष्य	राजाओंको देखकर	निदधे	डाल दी ॥२९॥
अनुरक्त हृदया	आसक्त चित्ता (मैंने)		

तावन्मृदङ्गपटहाः शङ्खभेर्यानकादयः ।
निनेदुर्नटनर्तक्यो ननृतुर्गायका जगुः ॥३०॥

तावत् मृदङ्ग पटहाः शङ्ख भेरि आनक आदयः निनेदुः नट नर्तक्यः ननृतुः गायका जगुः ॥३०॥

तावत् मृदङ्ग	तब तक मृदंग	नट नर्तक्यः	नट और नर्तकियां
पटहाः शङ्ख	तासे, शंख	ननृतुः	नाचने लगीं
भेरि आनक	भेरी, नगाड़े	गायका जगुः	गायक गाने लगे ॥३०॥
आदयः निनेदुः	आदि जोरसे बजने लगे		

एवं वृते भगवति मयशे नृपयूथपाः ।
न सेहिरे याज्ञसेनि स्पर्धन्तो हृच्छयातुराः ॥३१॥

एवं वृते भगवति मयि ईशे नृपयूथपाः न सेहिरे याज्ञसेनि स्पर्धन्तः हृच्छय आतुराः ॥३१॥

याज्ञसेनि	द्रोपदीजी !	हृच्छय आतुराः	कामातुर
एवं ईशे	इस प्रकार समर्थ	नृपयूथपाः	राजाओंका समूह
भगवति	भगवान द्वारा	स्पर्धन्तः	स्पर्धा करता हुआ
मयि वृते	मेरा वरण कर लेने पर	सेहिरे न	सहन नहीं कर सका ॥३१॥

मां तावद् रथमारोप्य हयरत्नचतुष्टयम् ।
शार्ङ्गमुद्यम्य संनद्धस्तस्थावाजौ चतुर्भुजः ॥३२॥

मां तावत् रथं आरोप्य हयरत्नचतुष्टयं शार्ङ्गम् उद्यम्य सन्नद्धः तस्थाः आजौ चतुर्भुजः ॥३२॥

चतुर्भुजः	चतुर्भुज पुरुष
हयरत्नचतुष्टयं	चारों अश्व-रत्नों वाले
रथं तावत् मां	रथमें इतनेमें मुझे
आरोप्य सन्नद्धः	चढ़ाकर कवच पहिन कर
शार्ङ्गम् उद्यम्य	शारंग धनुष उठाकर
आजौ तस्थाः	युद्धके लिए (रथ पर) खड़े हो गये ॥३२॥

दारुकश्चोदयामास काञ्चनोपस्करं रथम् ।
मिषतां भूभुजां राज्ञि मृगाणां मृगराडिव ॥३३॥

दारुकः चोदयामास काञ्चन उपस्करं रथं मिषतां भूभुजां राज्ञि मृगाणां मृगराट् इव ॥३३॥

राज्ञि	महारानी !
काञ्चन	स्वर्णके
उपस्करं	साजोंसे युक्त
रथं दारुकः	रथ दारुकने
मृगाणां	मृगोंके (मध्यसे)
मृगराट् इव	सिंहोंके समान
भूभुजां मिषतां	राजाओंके देखते हुए
चोदयामास	चला दिया ॥३३॥

तेऽवन्वज्जन्त राजन्या निषेद्धुं पथि केचन ।
संयत्ता उद्धृतेष्वासा ग्रामसिंहा यथा हरिम् ॥३४॥

ते अनु असज्जन्त राजन्या निषेद्धं पथि केचन संयत्ता उद्धृत इषु आसा ग्रामसिंहा यथा हरिम् ॥३४॥

ते केचन	उनमें कुछ	**यथा ग्रामसिंहा**	जैसे कुत्ते
राजन्या	नरेश	**हरिं**	सिंहको (रोकना
पथि निषेद्धुं	मार्ग रोकनेके लिए		चाहें)
संयत्ता	सावधान होकर	**अनुअसज्जन्त**	पीछे लग लिए
उद्धृत	धनुष		॥३४॥
इषु आसा	उठाकर		

ते शार्ङ्ग च्युतबाणौघैः कृत्तबाह्वङ्घ्रिकन्धराः ।
निपेतुः प्रधने केचिदेके सन्त्यज्य दुद्रुवुः ॥३५॥

ते शार्ङ्ग च्युत बाण औघैः कृत्त बाहु अंघ्रि कन्धराः निपेतुः प्रधने केचित् एके सन्त्यज्य दुद्रुवुः ॥३५॥

शार्ङ्ग च्युत	शारग धनुषसे होती	**केचित् प्रधने**	कोई युद्धमें
बाण औघैः	बाणोंकी बौछारसे	**निपेतुः एके**	गिर गये और कोई
ते कृत्त बाहु	वे कटी भुजा	**सन्त्यज्य दुद्रुवुः**	(युद्ध) छोड़कर
अंघ्रि कन्धराः	पैर-गले वाले		भाग गये ॥३५॥

ततः पुरीं यदुपतिरत्यलंकृतां
रविच्छदध्वजपटचित्रतोरणाम् ।
कुशस्थलीं दिवि भुवि चाभिसंस्तुतां
समाविशत्तरणिरिव स्वकेतनम् ॥३६॥

ततः पुरीं यदुपतिः अति अलंकृतां रविच्छद ध्वज पट चित्र तोरणां कुशस्थलीं दिवि भुवि च अभि संस्तुतां सम आविशत् तरणिः इव स्वकेतनम् ॥३६॥

ततः अति	तब अत्यन्त	**चित्र ध्वज पट**	अनेन रंगोंकी
अलङ्कृतां	सुसज्जिता		पताका वस्त्रों
रविच्छद	सूर्यको छिपा लेने वाले	**तोरणां**	तथा तोरणों वाली

दिवि भुवि च	स्वर्ग एवं पृथ्वीमें भी	कुशस्थलीं	द्वारिकामें
		सूर्य इव	सूर्यके समान
अभिसंस्तुतां	चारो ओर प्रशंसिता	स्वकेतनं	अपने भवनमें
		सम आविशत्	प्रवेश किया ॥३६॥
यदुपतिः पुरीं	यदुनाथकी पुरी		

पिता मे पूजयामास सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान् ।
महार्हवासोऽलंकारैः शय्यासनपरिच्छदैः ॥३७॥

पिता मे पूजयामास सुहृत् सम्बन्धि बान्धवान् महा अर्ह वासः अलङ्कारैः शय्या आसन परिच्छदैः ॥३७॥

मे पिता	मेरे पिताने	शय्या आसन	शय्या, आसन आदि
सुहृत् सम्बन्धि	मित्र, सम्बन्धी,		
बान्धवान्	बन्धु-बान्धवोंका	परिच्छदैः	सामग्रियोंसे
महा अर्ह वासः	बहुमूल्य वस्त्रों	पूजयामास	सत्कार किया
अलङ्कारैः	आभूषणों,		॥३७॥

दासीभिः सर्वसम्पद्भिर्भटेभरथवाजिभिः ।
आयुधानि महार्हाणि ददौ पूर्णस्य भक्तितः ॥३८॥

दासीभिः सर्वसम्पद्भिः भट इभ रथ वाजिभिः आयुधानि महा अर्हाणि ददौ पूर्णस्य भक्तितः ॥३८॥

दासीभिः	दासियां	महा अर्हाणि	बहुमूल्य
सर्व सम्पद्भिः	सब प्रकारकी सम्पत्ति	आयुधानि	आयुध
		भक्तितः	भक्ति पूर्वक
भट इभ रथ	पैदल, हाथी, रथ	पूर्णस्य ददौ	परिपूर्ण (भगवान) को दिये ॥३८॥
वाजिभिः	घोड़े (चतुरंगिणी सेना) एवं		

आत्मारामस्य तस्येमा वयं वै गृहदासिकाः ।
सर्वसङ्गनिवृत्त्याद्धा तपसा च बभूविम ॥३९॥

आत्मारामस्य तस्य इमा वयं वै गृहदासिकाः सर्व सङ्ग निवृत्ति आद्धा तपसा च बभूवुः इम ॥३९॥

तस्य	उन	**सङ्ग निवृत्ति**	आसक्तियोंके त्याग
आत्मारामस्य	आत्मारामके	**च तपसा स्म**	तथा तपस्यासे
गृहदासिका	घरकी दासियों	**बभूवुः इम**	यहां हुई होंगी
इमा वयं	ये हम सब		॥३९॥
वै आद्धा सर्व	(पूर्व जन्ममें) निश्चय पूर्णतः सब		

॥ महिष्य ऊचुः ॥*

भौमं निहत्य सगणं युधि तेन रुद्धा
ज्ञात्वाथ नः क्षितिजये जितराजकन्याः ।
निर्मुच्य संसृति विमोक्षमनुस्मरन्तीः
पादाम्बुजं परिणिनाय य आप्तकामः ॥४०॥

भौमं निहत्य सगणं युधि तेन रुद्धा ज्ञात्वा अथ नः क्षितिजये जित राजकन्याः निर्मुच्य संसृति विमोक्षं अनुस्मरन्तीः पाद अम्बुजं परिणिनाय यः आप्तकामः ॥४०॥

युधि सगणं	युद्धमें गणोंके साथ	**अथ तेन**	फिर उसके द्वारा
भौमं निहत्य	भौमासुरको मार-कर	**क्षितिजये**	पृथ्वी दिग्विजयके समय

---

*सोलह सहस्र रानियोंमें प्रमुखका नाम रोहिणी है। द्रोपदीने उनका नाम लिया है। वही सबकी औरसे बोल रही हैं।

जित राजकन्या	जीते हुए राजाओं की कन्यायोंको	**अनुस्मरन्तीः**	बार-बार स्मरण करने वालियोंको
रुद्धा ज्ञात्वा	बन्दिनी बनायी जानकर	**यः आप्तकामः**	जिन पूर्ण कामने
निर्मुच्य अथ	मुक्त करके फिर	**परिणिनाय**	परिणय करके
संसृति विमोक्षं	उन संसारसे मुक्ति दाताको	**पाद अम्बुजं**	(अपने) चरण-कमलों में स्वीकार किया ॥४०॥

न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भौज्यमप्युत ।

वैराज्यं पारमेष्ठ्यं च आनन्त्यं वा हरेः पदम् ॥४१॥

न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भौज्यं अपि उत वैराज्यं पारमेष्ठ्यं च आनन्त्यं वा हरेः पदम् ॥४१॥

साध्वि वयं	साध्वी ! हम सब	**च पारमेष्ठ्यं**	तथा ब्रह्माका पद
साम्राज्यं	सम्राट्-पद,	**वा हरेः आनन्त्यं**	अथवा श्रीहरिका अनन्त
स्वाराज्यं	इन्द्रपद,	**पदं न**	पद नहीं चाहतीं ॥४१॥
भौज्यं	इनके भोग		
अपि उत	अथवा		
वैराज्यं	ऐश्वर्य		

कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरजः श्रियः ।

कुचकुंकुममगन्धाढ्यं मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः ॥४२॥

कामयां अह एतस्य श्रीमत् पादरजः श्रियः कुचकुंकुम गन्ध आढ्यं मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः ॥४२॥

श्रियः	लक्ष्मीके	**एतस्य गदाभृतः**	इन गदाधरकी
कुचकुंकुम	स्तनों पर लगे कुंकुमकी	**श्रीमत् पादरजः**	ऐश्वर्यमयी चरण को
गन्ध आढ्यं	सुगन्धिसे परिपूर्ण		

मूर्ध्ना बोढुं	सिर पर धारण करना	**अह कामयां**	हम चाहती हैं ॥४२॥

व्रजस्त्रियो यद् वाञ्छन्ति पुलिन्द्यस्तृणवीरुधः ।
गावश्चारयतो गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः ॥४३॥

व्रजस्त्रियः यत् वाञ्छन्ति पुलिन्द्यः तृण वीरुधः गावः चारयतः गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः ॥४३॥

गावः चारयतः	गायें चराते हुए	**तृण वीरुधः**	तृण, पौधे तथा
महात्मनः	महात्मा (श्रीकृष्ण, का	**गोपाः**	गोप
पादस्पर्श	चरण-स्पर्श	**वाञ्छन्ति**	चाहते हैं (हम भी चाहती हैं ।) ॥४३॥
यत् व्रजस्त्रियः	जिसे व्रजकी स्त्रियां		
पुलिन्द्यः	भीलनियां		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

श्रुत्वा पृथा सुबलपुत्र्यथ याज्ञसेनी
माधव्यथ क्षितिपपत्न्य उत स्वगोप्यः ।
कृष्णेऽखिलात्मनि हरौ प्रणयानुबन्धं
सर्वा विसिस्म्युरलमश्रुकलाकुलाक्ष्यः ॥ १ ॥

श्रुत्वा पृथा सुबलपुत्रि अथ याज्ञसेनी माधव्य अथ क्षितिपपत्न्य उत स्वगोप्यः कृष्णे अखिल आत्मनि हरौ प्रणय अनुबन्धं सर्वा विसिस्म्युः अलं अश्रुकला आकुल अक्ष्यः ॥१॥

अखिल आत्मनि	अखिलात्मा	**क्षितिपपत्न्य**	दूसरे राजाओंकी रानियां
हरौ माधव्य	श्रीहरिमें उन माधव पत्नियोंका	**उत स्वगोप्यः**	तथा उनकी अपनी गोपियां
प्रणय अनुबन्धं	सुदृढ़ प्रेमबन्धन	**अलं अश्रुकला**	बहुत अधिक अश्रुसे
श्रुत्वा	सुनकर	**आकुल अक्ष्यः**	व्याकुल नेत्रा
पृथा अथ	कुन्ती और	**सर्वा विसिस्म्युः**	सब चकित रह गयीं ॥१॥
सुबलपुत्रि	गान्धारी		
याज्ञसेनी	द्रोपदी		

इति सम्भाषमाणासु स्त्रीभिः स्त्रीषु नृभिर्नृषु ।
आययुर्मुनयस्तत्र कृष्णरामदिदृक्षया ॥ २ ॥

इति सम्भाषमाणासु स्त्रीभिः स्त्रीषु नृभिः नृषु आययुः मुनयः तत्र रामकृष्ण दिदृक्षया ॥२॥

इति स्त्रीभिः	इस प्रकार स्त्रियोंके	**रामकृष्ण**	बलराम-श्रीकृष्णके
स्त्रीषु	स्त्रियोंसे तथा	**दिदृक्षया**	दर्शनकी इच्छासे
नृभिः नृषु	पुरुषोंके पुरुषोंसे	**तत्र मुनयः**	वहां मुनिगण
सम्भाषमाणासु	बातचीत करते समय	**आययुः**	आये ॥२॥

द्वैपायनो नारदश्च च्यवनो देवलोऽसितः ।
विश्वामित्रः शतानन्दो भरद्वाजोऽथ गौतमः ॥ ३ ॥
रामः सशिष्यो भगवान् वसिष्ठो गालवो भृगुः ।
पुलस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्च मार्कण्डेयो बृहस्पतिः ॥ ४ ॥
द्वितस्त्रितश्चैकतश्च ब्रह्मपुत्रास्तथाङ्गिराः ।
अगस्त्यो याज्ञवल्क्यश्च वामदेवादयोऽपरे ॥ ५ ॥

द्वैपायनः (व्यास), **नारदः**, **च**, **च्यवनः**, **देवलः**, **असितः**, **विश्वामित्रः** **शतानन्दः**, **भरद्वाजः**, **अथ-गौतमः** ॥३॥ **रामः सशिष्यः** (शिष्यों सहित परशुराम), **भगवान् वसिष्ठः**, **गालवः**, **भृगुः**, **पुलस्त्य**, **कश्यपः**, **अत्रिः**, **च**, **मार्कण्डेयः**, **बृहस्पतिः** ॥४॥ **द्वितः**, **त्रितः**, **एकतः**, **च**, **ब्रह्मपुत्राः** (ब्रह्माके सनकादि) **तथा अङ्गिराः**, **अगस्त्यः**, **याज्ञवल्क्यः**, **च वामदेव**, **आदयः**, **अपरे** (आदि दूसरे भी) ॥५॥*

तान् दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रागासीना नृपादयः ।
पाण्डवाः कृष्णरामौ च प्रणेमुर्विश्ववन्दितान् ॥ ६ ॥

तान् दृष्ट्वा सहसा उत्थाय प्राक् आसीना नृप आदयः पाण्डवाः कृष्णरामौ च प्रणेमुः विश्ववन्दितान् ॥६॥

विश्ववन्दितान्	सम्पूर्ण विश्वके वन्दनीय	**तान् दृष्ट्वा**	उन (मुनियों)को देखकर

---

*ये केवल नाम हैं । आवश्यक स्पष्टीकरण कोष्ठकोंमें दिया है ।

प्राक् आसीना	पहिले बैठे	कृष्णरामौ	श्रीकृष्ण-बलरामने
नृप आदयः	राजा आदि	सहसा उत्थाय	झटपट उठकर
पाण्डवाः च	पाण्डव तथा	प्रणेमुः	प्रणाम किया ॥६॥

तानानर्चुर्यथा सर्वे सहरामोऽच्युतोऽर्चयत् ।
स्वागतासनपाद्यार्घ्यमाल्यधूपानुलेपनैः ॥ ७ ॥

तान् आनर्चुः यथा सर्वे सहरामः अच्युतः अर्चयत् स्वागत आसन पाद्य अर्घ्य माल्य धूप अनुलेपनैः ॥७॥

यथा सर्वे	जैसे (पहिले) सबने	पाद्य अर्घ्य	पाद्य, अर्घ्य
सहरामः	बलरामजीके साथ	माल्य धूप	माला, धूप
अच्युतः अर्चयत्	अच्युतकी पूजा की थी	अनुलेपनैः	चन्दन द्वारा
		तान् आनर्चुः	उन (मुनियों)की पूजा की ॥८॥
स्वागत आसन	स्वागत, आसन		

उवाच सुखमासीनान् भगवान् धर्मगुप्तनुः ।
सदसस्तस्य महतो यतवाचोऽनुशृण्वतः ॥ ८ ॥

उवाच सुखं आसीनान् भगवान् धर्मगुप्तनुः सदसः तस्य महतः यतवाचः अनुशृण्वतः ॥८॥

सुखं आसीनान्	सुख पूर्वक बैठे उनसे	तस्य महतः	उस महती
धर्मगुप्तनुः	धर्म-रक्षाके लिये शरीरधारी	सदसः	सभाके
		यतवाचः	मौन होकर
भगवान्	भगवान्	अनुशृण्वतः	सुनते हुए
		उवाच	बोले ॥८॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

अहो वयं जन्मभृतो लब्धं कात्स्न्र्येन तत्फलम् ।
देवानामपि दुष्प्रापं यद् योगेश्वरदर्शनम् ॥ ९ ॥

अहो वयं जन्मभृतः लब्धं कात्स्न्र्येन तत् फलं देवानां अपि दुष्प्रापं यत् योगेश्वर दर्शनम् ॥९॥

अहो वयं	अहो, हम लोगोंने	**दुष्प्रापं**	प्रष्प्राप्य
जन्मभृतः	जन्म लेकर	**योगेश्वर दर्शनं**	(हमें आप) योगे-
तत् कात्स्न्र्येन	उसका सम्पूर्ण		श्वरोंका दर्शन मिला
फलं लब्धं	फल पा लिया		॥९॥
यत्	क्योंकि		
देवानां अपि	देवताओंके लिए भी		

किं स्वल्पतपसां नृणामर्चायां देवचक्षुषाम् ।
दर्शनस्पर्शनप्रश्नप्रह्वपादार्चनादिकम् ॥१०॥

किं स्वल्पतपसां नृणां अर्चायां देवचक्षुषां दर्शन स्पर्शन प्रश्न प्रह्व पाद-अर्चन आदिकम् ॥१०॥

स्वल्पतपसां	बहुत कम तप करने वाले एवं	**दर्शन स्पर्शन**	(आप लोगोंके) दर्शन, स्पर्श
अर्चायां	(केवल) मूर्तिमें ही	**प्रश्न प्रह्व**	प्रश्न, प्रणाम
देवचक्षुषां	अपने आराध्य देव को देखने वाले	**पाद-अर्चन**	चरण-पूजन
		आदिकं किं	आदि (का अवसर) कैसे मिल सकता है
नृणां	मनुष्योंको		॥१०॥

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥११॥

न हि अम्मयानि तीर्थानि न देवा मृत शिलामयाः ते पुनन्ति उरुकालेन दर्शनात् एव साधवः ॥१०॥

हि अम्मयानि	क्योंकि जल रूप ही	**देवा मृत्**	देवता मिट्टी या
तीर्थानि न	तीर्थ नहीं हैं	**शिलामयाः**	पत्थर रूप ही

न	नहीं हैं	साधवः	साधुजन
ते उरुकालेन	वे बहुत समयमें	दर्शनात् एव	दर्शन होते ही
पुनन्ति	पवित्र करते हैं (किन्तु)		(पवित्र कर देते हैं) ॥११॥

नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका
न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः ।
उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं
विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया ॥१२॥

न अग्निः न सूर्यः न च चन्द्र तारका न भूः जलं खं श्वसनः अथ वाङ्मनः उपासिता भेदकृतः हरन्ति अघं विपश्चितः घ्नन्ति मुहूर्त सेवया ॥१२॥

भेदकृतः	भेद बुद्धिसे	वाङ्मनः	वाणी या मन
उपासिता	उपासना करने पर	अघं हरन्ति	पापी नष्ट करपाते; किन्तु
न अग्निः	न अग्नि	मुहूर्त सेवया	एक मुहूर्तकी सेवासे ही
न सूर्यः	न सूर्य	विपश्चितः	ज्ञानी पुरुष (पाप)
च न चन्द्र तारका	और न चन्द्र या ग्रहगण	घ्नन्ति	नष्ट कर देते हैं ॥१२॥
न भूः जलं खं श्वसनं अथ	न पृथ्वी, जल, आकाश वायु तथा		

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचि-
ज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥१३॥

यस्य आत्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्र आदिषु भौम इज्यधीः यत् तीर्थ बुद्धिः सलिले न कर्हिचित् जनेषु अभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥१३॥

यस्य त्रिधातुके	जिसकी तीन धातु (वात, कफ, पित्त) वाले
कुणपे	मुर्देमें
आत्मबुद्धिः	आत्म (मेरेपन)की बुद्धि है
कलत्र आदिषु	स्त्री आदिमें
स्वधीः	मेरेपनकी बुद्धि है
भौम इज्यधीः	पार्थिव (मूर्ति आदि) में पूज्य बुद्धि है
सलिले	जलमें
तीर्थ बुद्धिः	पवित्रताकी बुद्धि है
यत् कर्हिचित्	पर कभी भी
अभिज्ञेषु जनेषु	ज्ञानीजनोंमें
न स एव	(पावन बुद्धि) नहीं है वही
गोखरः	पशुओंमें भी गधा है ॥१२॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

निशम्येत्थं भगवतः कृष्णस्याकुण्ठमेधसः ।
वचो दुरन्वयं विप्रास्तूष्णीमासन् भ्रमद्धियः ॥१४॥

निशम्य इत्थं भगवतः कृष्णस्य अकुण्ठ मेधसः वचः दुः अन्वयं विप्राः तूष्णीं आसन् भ्रमत् धियः ॥१४॥

अकुण्ठ मेधसः	नित्य जागरूक प्रज्ञा वाले
भगवतः कृष्णस्य	भगवान श्रीकृष्णकी
इत्थं दुः अन्वयं	इस प्रकारकी गूढ़
वचः निशम्य	वाणी सुनकर
भ्रमत् धियः	भ्रमित बुद्धि
विप्राः	वे ब्राह्मण
तूष्णीं आसन्	चुप रह गये ॥१४॥

चिरं विमृश्य मुनय ईश्वरस्येशितव्यताम् ।
जनसंग्रह इत्यूचुः स्मयन्तस्तं जगद्गुरुम् ॥१५॥

चिरं विमृश्य मुनयः ईश्वरस्य ईशितव्यतां जनसङ्ग्रह इति ऊचुः स्मयन्तः तं जगद्गुरुम् ॥१५॥

चिरं ईश्वरस्य	देर तक उन सर्वेश्वरकी	इति मुनयः	ऐसा समझकर मुनियोंने
ईशितव्यतां	क्या करनेकी इच्छा है इसका	स्मयन्तः	मुस्कराते हुए
विमृश्य	विचार करके	तं जगद्गुरुं	उन जगद्गुरुसे
जनसंग्रह	'यह लोगोंको शिक्षा देनेको है	ऊचुः	कहा ॥१५॥

॥ मुनय ऊचुः ॥

यन्मायया तत्त्वविदुत्तमा वयं
विमोहिता विश्वसृजामधीश्वराः ।
यदीशितव्यायति गूढ ईहया
अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितम् ॥१६॥

यत् मायया तत्त्ववित् उत्तमा वयं विमोहिता विश्वसृजां अधीश्वराः यत ईशित व्यायित गूढ ईहया अहो विचित्र भगवत् विचेष्टितम् ॥१६॥

यत् मायया	जिनकी मायासे	यत	जिनकी
तत्त्ववित्	तत्त्वज्ञानियोंमें	ईशित व्यायित	लीला
उत्तमा वयं	श्रेष्ठ हम लोग तथा	ईहया गूढ	(इस मानव) चेष्टा से छिपी है
विश्वसृजां	प्रजापतियोंके	अहो भगवत्	अहो (आप) भगवानकी
अधीश्वराः	अधीश्वर (मरीचि आदि)	विचेष्टितं	लीला
विमोहिता	मोहित हैं	विचित्रं	विचित्र है॥१६॥

अनीह एतद् बहुधैक आत्मना
सृजत्यवत्यत्ति न बध्यते यथा ।

भौमैर्हि भूमिर्बहुनामरूपिणी
अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम् ॥१७॥

अनीह एतत् बहुधा एक आत्मना सृजति अवति अत्ति न बध्यते यथा भौमैः हि भूमिः बहुनाम रूपिणी अहो विभूम्नः चरितं विडम्बनम् ॥१७॥

यथा भूमिः हि	जैसे पृथ्वी ही
भौमैः	भूमिके पदार्थ (वृक्ष पर्वतादि)के रूपमें
बहुनाम रूपिणी	बहुत नामों एवं रूपों वाली है (वैसे ही)
एक अनीह	एक तथा चेष्टाहीन
आत्मना एतत्	(आप) अपने स्वरूपसे इस संसारको
सृजति	उत्पन्न करते,
अवति अत्ति	पालते एवं खा लेते हो
न बध्यते	(इन कर्मोंसे) बँधते नहीं हो,
अहो विभूम्नः	अहो, आप सर्वव्यापकका
चरितं विडम्बनं	चरित लीला ही है ॥१७॥

अथापि काले स्वजनाभिगुप्तये
बिभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय च ।
स्वलीलया वेदपथं सनातनं
वर्णाश्रमात्मा पुरुषः परो भवान् ॥१८॥

अथ अपि काले सु अजनाभि गुप्तये बिभर्षि सत्त्वं खल निग्रहाय च स्वलीलया वेदपथं सनातनं वर्ण आश्रम आत्मा पुरुषः परः भवान् ॥१८॥

अथ अपि	फिर भी
काले सु	समय-समय पर
अजनाभि गुप्तये	भारतवर्षकी रक्षाके लिए
च खल निग्रहाय	तथा दुष्टोंका दमन करनेके लिए
सत्त्वं बिभर्षि	सत्त्वात्मक शरीर धारण करते हैं
स्वलीलया	अपनी लीलासे
सनातनं वेदपथं	सनातन वेदमार्गकी (रक्षा करते हैं)

वर्ण आश्रम	वर्ण-आश्रम	**भवान्**	आप
आत्मा	स्वरूप	**परं पुरुषः**	परम पुरुष हैं ॥१८॥

ब्रह्म ते हृदयं शुक्लं तपःस्वाध्यायसंयमैः ।
यत्रोपलब्धं स व्यक्तमव्यक्तं च ततः परम् ॥१९॥

ब्रह्म ते हृदयं शुक्लं तपः स्वाध्याय संयमैः यत्र उपलब्धं स व्यक्तं अव्यक्तं च ततः परम् ॥१९॥

ब्रह्म ते	वेद आपका	**च अव्यक्तं**	तथा अव्यक्त (निराकार) एव
शुक्लं हृदयं	शुद्ध हृदय है	**ततः**	उससे
तपः स्वाध्याय	तपस्या-स्वाध्याय एवं	**परं उपलब्धं**	परे परम ब्रह्म रूप जाना जाता है ॥१९॥
संयमैः	ध्यान-समाधिके द्वारा		
यत्र स व्यक्तं	जिसमें आपका सगुण रूपसे प्रकट		

तस्माद् ब्रह्मकुलं ब्रह्मन् शास्त्रयोनेस्त्वमात्मनः ।
सभाजयसि सद्धाम तद् ब्रह्मण्याग्रणीर्भवान् ॥२०॥

तस्मात् ब्रह्मकुलं ब्रह्मन् शास्त्रयोनेः त्वं आत्मनः सभाजयसि सत् धाम तत् ब्रह्मण्य अग्रणीः भवान् ॥२०॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**आत्मनः**	स्वयं
शास्त्रयोनेः	शास्त्रोंकी उपलब्धि स्थान	**सभाजयसि**	सम्मान करते हैं
ब्रह्मकुलं	ब्राह्मणोंका	**तत् भवान्**	अतः आप
तस्मात् त्वं	इसलिए आप	**ब्रह्मण्य अग्रणीः**	ब्राह्मण भक्तोंमें श्रेष्ठ हैं ॥२०॥
सत् धाम	सत्स्वरूप		

अद्य नो जन्मसाफल्यं विद्यायास्तपसो दृशः ।
त्वया संगम्य सद्गत्या यदन्तः श्रेयसां परः ॥२१॥

अद्य नः जन्म साफल्यं विद्यायाः तपसः दृशः त्वया सङ्गम्य सद् गत्या यत् अन्तः श्रेयसां परः ॥२१॥

यत् श्रेयसां	जो कल्याण-साधनों की	**अद्य नः जन्म**	आज हमारे जन्म
परः अन्तः	परम सीमा हैं तथा	**विद्यायाः तपसः**	विद्या, तपस्या एवं
सद् गत्या	सत्पुरुषोंकी गति हैं	**दृशः साफल्यं**	नेत्रोंकी सफलता हो गयी ॥२१॥
त्वया सङ्गम्य	उस आपसे मिलकर		

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।
स्वयोगमाययाच्छन्नमहिम्ने परमात्मने ॥२२॥

नमः तस्मै भगवते कृष्णाय अकुण्ठ मेधसे स्वयोग मायया आच्छन्न महिम्ने परमात्मने ॥२२॥

स्वयोग मायया	अपनी योगमायासे	**परमात्मने**	परमात्मा
आच्छन्न महिम्ने	अपनी महिमा छिपाये	**भगवते**	भगवान
अकुण्ठ मेधसे	अप्रतिहत बोध	**तस्मै कृष्णाय**	आप श्रीकृष्णको
		नमः	नमस्कार ॥२२॥

न यं विदन्त्यमी भूपा एकारामाश्च वृष्णयः ।
मायाजवनिकाच्छन्नमात्मानं कालमीश्वरम् ॥२३॥

न यं विदन्ति अमी भूपाः एक आरामाः च वृष्णयः माया जवनिकाच्छन्नं आत्मानं कालं ईश्वरम् ॥२३॥

यं माया	जिन मायाके	**कालं ईश्वरं**	कालरूप सर्वेश्वरको
जवनिका-	पर्देसे	**अमी भूपाः**	ये राजा लोग
च्छन्नं आत्मानं	ढके आत्मा,		

च एक आरामाः	तथा एक साथ विश्राम करने वाले	वृष्णयः न विदन्ति	यादव नहीं जानते ॥२३॥

यथा शयानः पुरुष आत्मानं गुणतत्त्वदृक् ।
नाममात्रेन्द्रियाभातं न वेद रहितं परम् ॥२४॥

यथा शयानः पुरुषः आत्मानं गुण तत्त्व दृक् नाम मात्र इन्द्रिय आभातं न वेद रहितं परम् ॥२४॥

यथा शयानः	जैसे स्वप्न देखता	मात्र इन्द्रिय	तन्मात्रा, इन्द्रिय वाला
पुरुषः	पुरुष		
आत्मानं	अपनेको	आभातं	प्रतीत करता है,
गुण तत्त्व दृक्	गुणों तथा तत्त्वोंका द्रष्टा	रहितं परं	उससे रहित दूसरे (जागृतके रूप)को
नाम	नाम, (स्पर्शादि)	न वेद	नहीं जानता ॥२४॥

एवं त्वा नाममात्रेषु विषयेष्विन्द्रियेहया ।
मायया विभ्रमच्चित्तो न वेद स्मृत्युपप्लवात् ॥२५॥

एवं त्वा नाम मात्रेषु विषयेषु इन्द्रिय ईहया मायया विभ्रमत् चित्तः न वेद स्मृति उपप्लवात् ॥२५॥

एवं नाम मात्रेषु	इसी प्रकार (जागृत के) नामों, तन्मात्राओं	विभ्रमत् चित्तः	चित्त भ्रान्त होनेसे
		स्मृति	(आत्म) स्मृति
		उपप्लवात्	नष्ट हो जानेसे
विषयेषु	भोगोंमें	त्वा न वेद	(मनुष्य) आपको नहीं जान पाता ॥२५॥
इन्द्रिय ईहया	इन्द्रियोंकी चेष्टासे		
मायया	मायाके द्वारा		

तस्याद्य ते दृढशिमाङ्घ्रिमघौघमर्ष-
तीर्थास्पदं हृदि कृतं सुविपक्वयोगैः ।

उत्सिक्तभक्त्युपहताशयजीवकोशा
आपुर्भवद्गतिमिथोऽनुगृहाण भक्तान् ॥२६॥

तस्य अद्य ते दर्शि अंघ्रिम् अघ ओघमर्ष तीर्थ आस्पदं हृदि कृतं सुविपक्व योगैः उत्सिक्त भक्ति उपहत आशय जीवकोशाः आपुः भवत् गतिं अथः अनुगृहाण भक्तान् ॥२६॥

सुविपक्व योगैः	अत्यन्त परिपक्व योग वालों द्वारा
हृदि कृतं	हृदयमें धारण किये गये
अघ ओघमर्ष	पापोंकी बाढ़को नष्ट करने वाली
तीर्थ आस्पदं	पवित्र गंगाके आश्रय स्थान
ते अंघ्रिम्	आपके चरणोंका
अद्य	आज
दर्शि	(हमें) दर्शन हुआ
उत्सिक्त भक्ति	उत्कृष्टि भक्तिसे
उपहत	नष्ट लिङ्ग
जीवकोशा	शरीर वाले ही
भवत् गतिं	आपके परम पदको
आपुः	पाते हैं
अथः भक्तान्	अतः (हम) भक्तों पर
अनुगृहाण	अनुग्रह कीजिए ॥२६॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरम् ।
राजर्षे स्वाश्रमान् गन्तुं मुनयो दधिरे मनः ॥२७॥

इति अनुज्ञाप्य दाशार्हं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरं राजर्षे स्व आश्रमान् गन्तुं मुनयः दधिरे मनः ॥२७॥

राजर्षे	राजर्षि परीक्षित !
इति	इस प्रकार (स्तुति करके)
दाशार्हं	श्रीकृष्ण,
धृतराष्ट्रं	धृतराष्ट्र
युधिष्ठिरं	तथा युधिष्ठिरसे
अनुज्ञाप्य	अनुमति लेकर
स्व आश्रमान्	अपने आश्रम
गन्तुं	जानेकी
मुनयः	मुनियोंने
मनः दधिरे	इच्छा की ॥२७॥

तद् वीक्ष्य तानुपव्रज्य वसुदेवो महायशाः ।
प्रणम्य चोपसंगृह्य बभाषेदं सुयन्त्रितः ॥२८॥

तद् वीक्ष्य तान् उपव्रज्य वसुदेवः महायशाः प्रणम्य च उपसंगृह्य बभाष इदं सुयन्त्रितः ॥२८॥

तत् वीक्ष्य	यह देखकर	**महायशाः**	महान यशस्वी
तान् उपव्रज्य	उनके समीप जाकर	**वसुदेवः**	वसुदेवजी
प्रणम्य च	प्रणाम करके तथा	**सुयन्त्रितः**	अत्यन्त संयम पूर्व
उपसंगृह्य	(चरण) पकड़कर	**इदं बभाष**	यह बोले ॥२८॥

॥ वसुदेव उवाच ॥

नमो वः सर्वदेवेभ्य ऋषयः श्रोतुमर्हथ ।
कर्मणा कर्मनिर्हारो यथा स्यान्नस्तदुच्यताम् ॥२९॥

नमः वः सर्वदेवेभ्यः ऋषयः श्रोतुं अर्हथ कर्मणा कर्मनिर्हारः यथा स्यात् नः तत् उच्यताम् ॥२९॥

वः सर्व देवेभ्यः	आप सब देवता स्वरूप	**यथा कर्मणा**	जैसे कर्मके द्वारा
		कर्मनिर्हारः	कर्मोंका नाश
ऋषयः नमः	ऋषियोंको नमस्कार	**स्यात्**	हो
श्रोतुं अर्हथ	(आप सबको मेरी प्रार्थना) सुननी चाहिए	**नः तत् उच्यतां**	मुझे वह (कर्म) बतलाइये ॥२९॥

॥ नारद उवाच ॥

नातिचित्रमिदं विप्रा वसुदेवो बुभुत्सया ।
कृष्णं मत्वार्भकं यन्न पृच्छति श्रेय आत्मनः ॥३०॥

न अति चित्रं इदं विप्रा वसुदेवः बुभुत्सया कृष्णं मत्वा अर्भकं यत् नः पृच्छति श्रेय आत्मनः ॥३०॥

विप्रा	ब्राह्मणो !	**अर्भकं मत्वा**	(अपना) बच्चा मानकर
वसुदेवः	वसुदेवजीकी	**नः आत्मनः**	हम लोगोंसे अपने
इदं बुभुत्सया	यह जिज्ञासा	**श्रेयः पृच्छति**	कल्याण (के उपाय) को पूछते हैं ॥३०॥
अति चित्रं न	बहुत विचित्र नहीं है		
यत् कृष्णं	क्योंकि श्रीकृष्णको		

संनिकर्षो हि मर्त्यानामनादरणकारणम् ।
गाङ्गं हित्वा यथान्याम्भस्तत्रत्यो याति शुद्धये ॥३१॥

सन्निकर्षः हि मर्त्यानां अनादरण कारणं गाङ्गम् हित्वा यथा अन्य अम्भः तत्रत्यः याति शुद्धये ॥३१॥

हि सन्निकर्षः	क्योंकि बहुत निकटता	**तत्रत्यः**	वहां रहने वाले
मर्त्यानां	मनुष्योंके लिए	**शुद्धये अन्य**	(अपनी) शुद्धिके लिए दूसरे
अनादरण	अनादरका	**अम्भः याति**	जलके पास जाते हैं ॥३१॥
कारणं	कारण होती है		
यथा गाङ्गम्	जैसे गंगा रूप (तीर्थ)		
हित्वा	को छोड़कर		

यस्यानुभूतिः कालेन लयोत्पत्त्यादिनास्य वै ।
स्वतोऽन्यस्माच्च गुणतो न कुतश्चन रिष्यति ॥३२॥

यस्य अनुभूतिः कालेन लय उत्पत्ति आदिना अस्य वै स्वतः अन्यस्मात् च गुणतः न कुतश्चन रिष्यति ॥३२॥

यस्य अनुभूतिः	जिन (श्रीकृष्ण)की अनुभूति	**कालेन**	समयके प्रभावसे

वै अस्य	निश्चय इस संसार की	**अन्यस्मात्**	दूसरे किसी
लय उत्पत्ति आदिना	प्रलय-सृष्टि आदिसे	**गुणतः कुतश्चन न रिष्यति**	गुणसे कहीं भी नहीं खण्डित होती ॥३२॥
स्वतः च	स्वयं या		

तं क्लेशकर्मपरिपाकगुणप्रवाहै-
रव्याहतानुभवमीश्वरमद्वितीयम् ।
प्राणादिभिः स्वविभवैरुपगूढमन्यो
मन्येत सूर्यमिव मेघहिमोपरागैः ॥३३॥

तं क्लेश कर्म परिपाक गुण प्रवाहैः अव्याहत अनुभवं ईश्वरं अद्वितीयं प्राण आदिभिः स्वविभवैः उप गूढं अन्यः मन्येत सूर्य इव मेघ हिम उपरागैः ॥३३॥

तं क्लेश	उन (अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष, अभिनिवेश रूप) क्लेशों	**अद्वितीयं ईश्वरं**	अद्वितीय ईश्वरको
		स्वविभवैः	अपनी ही विभूति रूप
		प्राणादिभिः	प्राणादिसे
कर्म परिपाक	(पाप-पुण्य रूप) कर्मोंके फल,	**उपगूढं**	छिपे होनेसे
		मेघ हिम	कुहरेसे
गुण प्रवाहैः	(सत्त्व, रज, तम) गुणोंके प्रवाहसे	**उपरागैः**	ढके
		सूर्य इव	सूर्यके समान
अव्याहत	अखण्डित	**अन्यः मन्येत**	दूसरा ही मान लेते हैं ॥३३॥
अनुभवं	अनुभव वाले		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

अथोचुर्मुनयो राजन्नाभाष्यानकदुन्दुभिम् ।
सर्वेषां शृण्वतां राज्ञां तथैवाच्युतरामयोः ॥३४॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अथ ऊचुः मुनयः राजन् अभाष्य आनकदुन्दुभिं सर्वेषां शृण्वतां राज्ञां तथा एव अच्युत रामयोः ॥३४॥

राजन्	राजन् !	**तथा एव**	इसी प्रकार
अथ	फिर	**अच्युत रामयोः**	श्रीकृष्ण-बलरामके
आनकदुन्दुभि	वसुदेवजीको	**शृण्वतां**	सुनते हुए
आभाष्य	संबोधित करके	**मुनयः ऊचुः**	मुनियोंने कहा
सर्वेषां राज्ञां	सब राजाओंके		॥३४॥

कर्मणा कर्मनिर्हार एष साधु निरूपितः ।
यच्छ्रद्धया यजेद् विष्णुं सर्वयज्ञेश्वरं मखैः ॥३५॥

कर्मणां कर्मनिर्हारः एष साधु निरूपितः यत् श्रद्धया यजेत् विष्णुं सर्वं यज्ञेश्वरं मखैः ॥३५॥

कर्मणा	कर्मोंके द्वारा	**सर्वं यज्ञेश्वरं**	सर्व यज्ञेश्वर
कर्मनिर्हारः	कर्मोंके नाशका उपाय	**विष्णुं मखैः**	विष्णु भगवानकी यज्ञों द्वारा
एष साधु	यही उत्तम	**यजेत्**	आराधना करें
निरूपितः	कहा गया है		॥३५॥
यत् श्रद्धया	जो श्रद्धापूर्वक		

चित्तस्योपशमोऽयं वै कविभिः शास्त्रचक्षुषा ।
दर्शितः सुगमो योगो धर्मश्चात्ममुदावहः ॥३६॥

चित्तस्य उपशमः अयं वै कविभिः शास्त्र चक्षुषा दर्शितः सुगमः योगः धर्मः च आत्म मुद आवहः ॥३६॥

कविभिः	सर्वज्ञोंने	**मुद आवहः**	आनन्द देने वाला
शास्त्र चक्षुषा	शास्त्र दृष्टिसे	**सुगमः योगः**	सुगम उपाय
वै अयं	निश्चित रूपसे जिसे	**धर्मः दर्शितः**	तथा धर्म बतलाया
चित्तस्य उपशमः	चित्तकी शान्तिका		है ॥३६॥
च आत्म	तथा अपनेको		

अयं स्वस्त्ययनः पन्था द्विजातेर्गृहमेधिनः ।
यच्छ्रद्धयाऽऽप्तवित्तेन शुक्लेनेज्येत पूरुषः ॥३७॥

अयं स्वस्त्ययनः पन्था द्विजातेः गृहमेधिनः यत् श्रद्धया आप्त वित्तेन शुक्लेन इज्येत पूरुषः ॥३७॥

गृहमेधिनः	गृहस्थ	**शुक्लेन आप्त**	न्यायार्जित
द्विजातेः अयं	द्विजातिके लिए यह	**वित्तेन**	धनसे
स्वस्त्ययनः	कल्याणकारी	**पुरुषः इज्यते**	परम पुरुषकी आरा-
पन्था	मार्ग है		धना होती है
यत् श्रद्धया	जो श्रद्धा पूर्वक		॥३७॥

वित्तैषणां यज्ञदानैर्गृहैर्दारसुतैषणाम् ।
आत्मलोकैषणां देव कालेन विसृजेद् बुधः ।
ग्रामे त्यक्तैषणाः सर्वे ययुर्धीरास्तपोवनम् ॥३८॥

वित्त ईषणां यज्ञ दानैः गृहैः दारैः सुत ईषणां आत्मलोक ईषणां देव कालेन विसृजेत् बुधः ग्रामे त्यक्त ईषणाः सर्वे ययुः धीराः तपोवनम् ॥३८॥

देव	वसुदेवजी !	**कालेन विसृजेत्**	कालक्रमसे (नष्ट
बुधः	बुद्धिमान व्यक्ति		होता देखकर) त्याग
यज्ञ दानैः	यज्ञ और दान करके		दे,
वित्त ईषणां	धनेच्छाको,	**ग्रामे सर्वे ईषणाः**	घरमें रहते हुए ही
गृहैः दारैः	घर तथा पत्नीसे		सब इच्छाओंको
सुत ईषणां	पुत्रेच्छाको तथा	**त्यक्त धीराः**	छोड़कर धीर पुरुष
आत्म लोक	अपनी लोकमें	**तपोवनं ययुः**	तपोवन जाते थे
ईषणां	यथेच्छा		॥३८॥

ऋणैस्त्रिभिर्द्विजो जातो देवर्षिपितृणां प्रभो ।
यज्ञाध्ययनपुत्रैस्तान्यनिस्तीर्य त्यजन् पतेत् ॥३९॥

ऋणैः त्रिभिः द्विजः जातः देव ऋषि पितृणां प्रभो यज्ञ अध्ययन पुत्रैः तानि अनिस्तीर्य त्यजन् पतेत् ॥३९॥

प्रभो	प्रभो !	**पुत्रैः तानि**	पुत्रोत्पत्ति द्वारा उनसे
द्विजः देव	द्विजाति देवता	**अनिस्तीर्य**	उऋण हुए बिना
ऋषि पितृणां	ऋषि एवं पितरोंके	**त्यजन् पतेत्**	(संसारका) त्याग करनेसे पतित हो जाता है ॥३९॥
त्रिभिः ऋणैः	तीन ऋणोंको लेकर		
जातः	उत्पन्न होता है		
यज्ञ अध्ययन	यज्ञ वेदाध्ययन,		

त्वं त्वद्य मुक्तो द्वाभ्यां वै ऋषिपित्रोर्महामते ।
यज्ञैर्देवर्णमुन्मुच्य निर्ऋणोऽशरणो भव ॥४०॥

त्वं तु अद्य मुक्तः द्वाभ्यां वै ऋषि पित्रोः महामते यज्ञैः देव अर्ण उन्मुच्य निःऋणः अशरणः भव ॥४०॥

महामते	महामति वसुदेव !	**यज्ञैः देव अर्ण**	यज्ञ द्वारा देव ऋण
वै त्वं तु	निश्चित ही तुम तो	**उन्मुच्य**	चुकाकर
अद्य	अब तक	**निः ऋणः**	ऋणहीन होकर
ऋषि पित्रोः	ऋषि एवं पितृ	**अशरणः भव**	गृह त्याग कीजिए ॥४०॥
द्वाभ्यां मुक्तः	दो (ऋणों)से छूट गये हो,		

वसुदेव भवान् नूनं भक्त्या परमया हरिम् ।
जगतामीश्वरं प्रार्चः स यद् वां पुत्रतां गतः ॥४१॥

वसुदेव भवान् नूनं भक्त्या परमया हरिं जगतां ईश्वरं प्रार्चः स यत् वां पुत्रतां गतः ॥४१॥

वसुदेव	वसुदेवजी !	**परमया भक्त्या**	परम भक्तिसे
नूनं भवान्	निश्चय आपने	**जगतां ईश्वरं**	जगदीश्वर

हरि प्रार्चः	श्रीहरिकी बहुत आराधना की है	**यत् स वां पुत्रातां गतः**	जिससे वे आप दोनोंके पुत्र बने हैं ॥४१॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा वसुदेवो महामनाः ।
तानृषीनृत्विजो वव्रे मूर्ध्नाऽऽनम्य प्रसाद्य च ॥४२॥

इति तत् वचनं श्रुत्वा वसुदेवः महामनाः तान् ऋषीन् ऋत्विजः वव्रे मूर्ध्ना आनम्य प्रसाद्य च ॥४२॥

इति तत्	इस प्रकार उनकी	**च प्रसाद्य**	तथा प्रसन्न करके
वचनं श्रुत्वा	बात सुनकर	**तान् ऋषीन्**	उन्हीं ऋषियोंको
महामनाः	महामनस्वी	**ऋत्विजः वव्रे**	ऋत्विक् वरण किया ॥४२॥
वसुदेवः	वसुदेवजीने		
मूर्ध्ना आनम्य	सिर झुकाकर प्रणाम करके		

त एनमृषयो राजन् वृता धर्मेण धार्मिकम् ।
तस्मिन्नयाजयन् क्षेत्रे मखैरुत्तमकल्पकैः ॥४३॥

त एनं ऋषयः राजन् वृता धर्मेण धार्मिकं तस्मिन् अयाजयन् क्षेत्रे मखैः उत्तम कल्पकैः ॥४३॥

राजन्	राजन् !	**तस्मिन् क्षेत्रे**	उस (तीर्थ) क्षेत्रमें
धर्मेण वृता	धर्मपूर्वक वरण किये गये	**उत्तम कल्पकैः**	श्रेष्ठ सामग्री द्वारा
त ऋषयः	उन ऋषियोंने	**मखैः अयाजयन्**	यज्ञोंसे आराधना करायी ॥४३॥
एनं धार्मिकं	इन धर्मात्मा (वसुदेव)से		

तद्दीक्षायां प्रवृत्तायां वृष्णयः पुष्करस्रजः ।
स्नाताः सुवाससो राजान् राजनः सुष्ठ्वलंकृताः ॥४४॥

तत् दीक्षायां प्रवृत्तायां वृष्णयः पुष्कर स्रजः स्नाताः सुवाससः राजन् राजानः सुष्ठु अलङ्कृताः ॥४४॥

राजन्	राजन् !	स्नाताः	स्नान करके
तत् दीक्षायां	उन (वसुदेवजी)के यज्ञ दीक्षा	सुवाससः	उत्तम वस्त्र पहिने
		पुष्कर स्रजः	कमल-माला धारण की
प्रवृत्तायां	ले लेने पर		
वृष्णयः राजानः	यदुवंशी एवं राजा लोग	सुष्ठु अलंकृता	भली-भाँति सज्जित हुए ॥४४॥

तन्महिष्यश्च मुदिता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ।
दीक्षाशालामुपाजग्मुरालिप्ता वस्तुपाणयः ॥४५॥

तत् महिष्यः च मुदिता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः दीक्षाशालां उप आजग्मुः आलिप्ता वस्तुपाणयः ॥४५॥

तत् महिष्यः च	उनकी पत्नियां भी	वस्तुपाणयः	हाथमें अनेक वस्तुयें लिए
मुदिता	प्रसन्न होकर		
निष्ककण्ठ्यः	कण्ठमें पदिक पहिने	दीक्षाशालां	यज्ञ दीक्षा-स्थानमें
सुवाससः	उत्तम वस्त्र धारिणी	उप आजग्मुः	आ गयीं ॥४५॥
आलिप्ता	अंगराग लगाये		

नेदुर्मृदङ्गपटहशङ्खभेर्यानकादयः ।
ननृतुर्नटनर्तक्यस्तुष्टुवुः सूतमागधाः ।
जगुः सुकण्ठ्यो गन्धर्व्यः संगीतं सहभर्तृकाः ॥४६॥

नेदुः मृदङ्ग पटह शङ्ख भेरि आनक आदयः ननृतुः नट नर्तक्यः तुष्टुवुः सूत मागधाः जगुः सुकण्ठ्यः गन्धर्व्यः सङ्गीतं सहभर्तृकाः ॥४६॥

मृदङ्ग पटह	मृदंग, तासे,	तुष्टुवुः	स्तुति करने लगे,
शङ्ख भेरि	शंख, भेरी,	सुकण्ठ्यः	सुरीले कण्ठ वाली
आनक आदयः	नगाड़े आदि	गन्धर्व्यः	गन्धर्व स्त्रियां
नेदुः	बजने लगे	सहभर्तृकाः	पतियोंके साथ
नट नर्तक्यः	नट और नर्तकियां	सङ्गीतं जगुः	गाना गाने लगीं
ननृतुः	नाचने लगीं		॥४६॥
सूत मागधाः	सूत-मागध लोग		

तमभ्यषिञ्चन् विधिवदक्तमभ्यक्तमृत्विजः ।
पत्नीभिरष्टादशभिः सोमराजमिवोडुभिः ॥४७॥

तं अभ्यषिञ्चन् विधिवत् अक्तं अभ्यक्तं ऋत्विजः पत्नीभिः अष्टादशभिः सोमराजं इव उडुभिः ॥४७॥

उडुभिः	नक्षत्रोंके साथ	अक्तं अभ्यक्तं	(नेत्रोंमें) अंजन
सोमराजं इव	चन्द्रमाके समान		(तथा शरीरमें)
अष्टादशभिः	अठारह		मक्खन लगाकर
पत्नीभिः तं	पत्नियोंके साथ उन	ऋत्विजः	ऋत्विजोंने
	वसुदेवजीका	अभ्यषिञ्चन्	विधिपूर्वक अभिषेक
			किया ॥४७॥

ताभिर्दुकूलवलयैर्हारनूपुरकुण्डलैः ।
स्वलंकृताभिर्विबभौ दीक्षितोऽजिनसंवृतः ॥४८॥

ताभिः दुकूल वलयैः हार नूपुर कुण्डलैः स्वलङ्कृताभिः विबभौ दीक्षितः अजिन संवृतः ॥४८॥

दीक्षितः	(यज्ञ) दीक्षित होकर	स्वलङ्कृताभिः	भली प्रकार
अजिन संवृतः	कृष्ण मृगचर्म ओढ़े		अलंकृता
	(वसुदेवजी)	ताभिः	उन (पत्नियों)के
दुकूल वलयैः	दुपट्टा, कंकण		द्वारा
हार नूपुर	हार, नूपुर	विबभौ	बहुत शोभित हुए
कुण्डलैः	कुण्डलोंसे		॥४८॥

तस्यर्त्विजो महाराज रत्नकौशेयवाससः ।
ससदस्या विरेजुस्ते यथा वृत्रहणोऽध्वरे ॥४९॥

तस्य ऋत्विजः महाराज रत्नकौशेय वाससः ससदस्या विरेजुः ते यथा वृत्रहणः अध्वरे ॥४९॥

महाराज	महाराज	**ससदस्या**	सदस्योंके साथ
रत्नकौशेय	रत्न-जटित रेशमी	**यथा वृत्रहणः**	जैसे इन्द्रके
वाससः	वस्त्रधारी	**अध्वरे**	यज्ञमें (हों)
तस्य ते	उनके वे	**विरेजुः**	सुशोभित हुए
ऋत्विजः	ऋत्विज		॥४९॥

तदा रामश्च कृष्णश्च स्वैः स्वैर्बन्धुभिरन्वितौ ।
रेजतुः स्वसुतैर्दारैर्जीवेशौ स्वविभूतिभिः ॥५०॥

तदा रामः च कृष्णः च स्वैः स्वैः बन्धुभिः अन्वितौ रेजतुः स्वसुतैः दारैः जीव ईशौ स्वविभूतिभिः ॥५०॥

तदा रामः	उस समय बलरामजी	**स्वविभूतिभिः**	अपनी विभूतियोंके साथ
च कृष्णः च	तथा श्रीकृष्ण भी		
स्वैः स्वैः बन्धुभिः	अपने अपने सम्बन्धियों	**जीव ईशौ रेजतुः**	जीवाभिमानी (संकर्षण) तथा नारायण रूपमें शोभित हुए
स्वसुतैः दारैः	तथा अपने पुत्रों-पत्नियों		॥५०॥
अन्वितौ	सहित		

ईजेऽनुयज्ञं विधिना अग्निहोत्रादिलक्षणैः ।
प्राकृतैर्वैकृतैर्यज्ञैर्द्रव्यज्ञानक्रियेश्वरम् ॥५१॥

ईजे अनुयज्ञं विधिना अग्निहोत्र आदि लक्षणैः प्राकृतैः वैकृतैः यज्ञैः द्रव्य ज्ञान क्रिया ईश्वरम् ॥५१॥

अनुयज्ञं	प्रत्येक यज्ञमें
विधिना	विधिपूर्वक
अग्निहोत्र आदि	अग्निहोत्र आदि
लक्षणैः प्राकृतैः	लक्षण वाले प्राकृत (दर्श पूर्णमास आदि)
वैकृतैः यज्ञैः	वैकृत (सौर सत्रादि) यज्ञोंसे
द्रव्य ज्ञान	द्रव्य, ज्ञान तथा
क्रिया	क्रियाके
ईश्वरं ईजे	स्वामी (भगवान) की आराधना की ॥५१॥

अथर्त्विग्भ्योऽददात् काले यथा म्नातं स दक्षिणाः ।
स्वलंकृतेभ्योऽलंकृत्य गोभूकन्या महाधनाः ॥५२॥

अथ ऋत्विक्भ्यः अददात् काले यथा आम्नातं स दक्षिणाः स्वलङ्कृतेभ्यः अलङ्कृत्य गाः भू कन्या महाधनाः ॥५२॥

अथ स काले	फिर उन्होंने उचित समय पर
यथा आम्नातं	शास्त्रानुसार
स्व-	भली प्रकार
अलङ्कृतेभ्यः	अलंकृत
ऋत्विक्भ्यः	ऋत्विजोंको
अलङ्कृत्य	अलंकृत करके
गाः भू कन्या	गायें, भूमि, कन्या
महाधनाः	बहुत सी सम्पत्ति
दक्षिणाः	दक्षिणामें
अददात्	प्रदान कीं ॥५२॥

पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते महर्षयः ।
सस्नू रामह्रदे विप्रा यजमानपुरःसराः ॥५३॥

पत्नी संयाजा अवभृथ्यैः चरित्वा ते महर्षयः सस्नू रामह्रदे विप्रा यजमानपुरः सराः ॥५३॥

ते महर्षयः	उन महर्षियोंने
पत्नी संयाजा	पत्नी संयाज नामक यज्ञ
चरित्वा	कराके
अवभृथ्यैः	अवभृथ (यज्ञान्त) के लिए
विप्रा	ब्राह्मणोंने

यजमानपुरः सराः	यजमानको आगे करके	रामह्रदे सस्नू	परशुराम कुंडमें स्नान किया ॥५३॥

स्नातोऽलङ्कारवासांसि वन्दिभ्योऽदात्तथा स्त्रियः ।
ततः स्वलंकृतो वर्णानाश्वभ्योऽन्नेन पूजयत् ॥५४॥

स्नातः अलङ्कार वासांसि वन्दिभ्यः अदात् तथा स्त्रियः ततः स्वलङ्कृतः वर्णान् आश्वभ्यः अन्नेन पूजयत् ॥५४॥

स्नातः	स्नान करके	ततः स्वलङ्कृतः	फिर स्वयं अलंकृत होकर
अलङ्कार	आभूषण,	आश्वभ्यः वर्णान्	कुत्तेसे लेकर सब वर्णोंका
वासांसि	वस्त्र	अन्नेन पूजयत्	भोजन कराके सत्कार किया ॥५४॥
वन्दिभ्यः अदात्	बन्दियोंको दिया		
तथा स्त्रियः	उनकी पत्नियोंने भी ऐसा ही किया		

बन्धून् सदारान् ससुतान् पारिबर्हेण भूयसा ।
विदर्भकोसलकुरून् काशिकेकयसृञ्जयान् ॥५५॥

बन्धून् सदारान् ससुतान् पारिबर्हेण भूयसा विदर्भ कोसल कुरून् काशि केकय सृञ्जयान् ॥५५॥

विदर्भ कोसल	विदर्भ, कोसल,	बन्धून्	सम्बन्धियोंको
कुरून् काशि	कुरू, काशी	भूयसा	बहुत अधिक
केकय	केकय,	पारिबर्हेण	उपहार देकर (सत्कृत किया) ॥५५॥
सृञ्जयान्	सृञ्जय प्रदेशोंके		
सदारान्	स्त्रियों तथा		
ससुतान्	पुत्रों सहित		

सदस्यर्त्विक्सुरगणान् नृभूतपितृचारणान् ।
श्रीनिकेतमनुज्ञाप्य शंसन्तः प्रययुः क्रतुम् ॥५६॥

सदस्य ऋत्विक् सुरगणान् नृ भूत पितृ चारणान् श्रीनिकेतं अनुज्ञाप्य शंसन्तः प्रययुः क्रतुम् ॥५६॥

सदस्य ऋत्विक्	सदस्य, ऋत्विक्	**श्रीनिकेतं**	वे भगवान् श्रीनिवाससे
सुरगणान्	देवगणों	**अनुज्ञाप्य**	अनुमति लेकर
नृ भूत	मनुष्यों, भूतों,	**क्रतुं शंसन्तः**	यज्ञकी प्रशंसा करते हुए
पितृ	पितरों	**प्रययुः**	प्रस्थान कर गये ॥५६॥
चारणान्	चारणोंका (सत्कार किया)		

धृतराष्ट्रोऽनुजः पार्था भीष्मो द्रोणः पृथा यमौ ।
नारदो भगवान् व्यासः सुहृत्सम्बन्धिबान्धवाः ॥५७॥

धृतराष्ट्रः अनुजः पार्था भीष्मः द्रोणः पृथा यमौ नारदः भगवान् व्यासः सुहृत् सम्बन्धि बान्धवाः ॥५७॥

धृतराष्ट्रः	धृतराष्ट्र,	**नारदः**	देवर्षि नारद
अनुजः	उनके छोटे भाई विदुर	**भगवान् व्यासः**	भगवान व्यास
पार्था	कुन्तीके पुत्र,	**सुहृत् सम्बन्धि**	(तथा अन्य) मित्र सम्बन्धी
भीष्मः द्रोणः	भीष्म, द्रोणाचार्य,	**बान्धवाः**	बन्धु-बान्धव ॥५७॥
पृथा यमौ	कुन्ती, नकुल-सहदेव		

बन्धून् परिष्वज्य यदून् सौहृदात् क्लिन्नचेतसः ।
ययुर्विरहकृच्छ्रेण स्वदेशांश्चापरे जनाः ॥५८॥

बन्धून् परिष्वज्य यदून् सौहृदात् क्लिन्नचेतसः ययुः विरह कृच्छ्रेण स्वदेशान् च अपरे जनाः ॥५८॥

बन्धून् यदून्	अपने सम्बन्धी यादवोंका	**परिष्वज्य**	आलिंगन करके
		सौहृदात्	सौहार्द्रसे

विलग्नचेतसः	आर्द्र हृदय	अपरे जनाः च	दूसरे लोग भी
विरह कृच्छ्रेण	वियोगके दुःख सहित	स्वदेशान् ययुः	अपने देशोंको चले गये ॥५८॥

नन्दस्तु सह गोपालैर्बृहत्या पूजयार्चितः ।
कृष्णरामोग्रसेनाद्यैर्न्यवात्सीद् बन्धुवत्सलः ॥५९॥

नन्दः तु सह गोपालैः बृहत्या पूजया अर्चितः कृष्ण राम उग्रसेन आद्यैः न्यवात्सीत् बन्धुवत्सलः ॥५९॥

बन्धुवत्सलः	बन्धुवत्सल	बृहत्या पूजया	महान् सत्कारसे
नन्दः तु	नन्दजी तो	अर्चितः	सत्कृत होते हुए
कृष्ण राम	श्रीकृष्ण, बलराम	न्यवात्सीत्	वहीं निवास करते रहे ॥५९॥
उग्रसेन आद्यैः	उग्रसेन आदि द्वारा		

वसुदेवोऽञ्जसोत्तीर्य मनोरथमहार्णवम् ।
सुहृद्वृतः प्रीतमना नन्दमाह करे स्पृशन् ॥६०॥

वसुदेवः अञ्जसा उत्तीर्य मनोरथ महा अर्णवम् सुहृत् वृतः प्रीतमना नन्दं आह करे स्पृशन् ॥६०॥

मनोरथ	मनोरथके	सुहृत् वृतः	सुहृदोंसे घिरे हुए
महा अर्णवं	महासागरको	नन्दं करे स्पृशन्	नन्दजीका हाथ पकड़कर
अञ्जसा उत्तीर्य	सरलतासे पार करके	प्रीतमना आह	प्रसन्न चित्तसे बोले ॥६०॥
वसुदेवः	वसुदेवजी		

॥ वसुदेव उवाच ॥

भ्रातरीशकृतः पाशो नृणां यः स्नेहसंज्ञितः ।
तं दुस्त्यजमहं मन्ये शूराणामपि योगिनाम् ॥६१॥

भ्रातः ईशकृतः पाशः नृणां यः स्नेह संज्ञितः तं दुस्त्यजं अहं मन्ये शूराणां अपि योगिनाम् ॥६१॥

भ्रातः नृणां	भाई ! मनुष्योंमें	**तं अहं**	उसे मैं
यः ईशकृतः	जो ईश्वरका बनाया	**शूराणां**	शूरवीर एवं
		योगिनां अपि	योगियोंके लिए भी
स्नेह संज्ञितः	स्नेह नामक	**दुस्त्यजं मन्ये**	दुस्त्वाज्य मानता हूँ ॥६१॥
पाशः	बन्धन है		

अस्मास्वप्रतिकल्पेयं यत् कृताज्ञेषु सत्तमैः ।
मैत्र्यर्पिताफला वापि न निवर्तेत कर्हिचित् ॥६२॥

अस्मासु अप्रति कल्पा इयं यत् कृत अज्ञेषु सत्तमैः मैत्रि अर्पिता अफला वापि न निवर्तेत कर्हिचित् ॥६२॥

अस्मासु	हम	**सत्तमैः**	आप सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठके लिये
कृत अज्ञेषु	अकृतज्ञोंसे		
इयं यत्	यह जो	**अफला वापि**	निष्फल होने पर भी वह
अप्रति कल्पा	जिसका बदला न दिया जा सके ऐसी	**कर्हिचित्**	कभी भी
		निवर्तेत न	लौटती (मिटती) नहीं है ॥६२॥
मैत्रि अर्पिता	मैत्री आपने की		

प्रागकल्पाच्च कुशलं भ्रातर्वो नाचराम हि ।
अधुना श्रीमदान्धाक्षा न पश्यामः पुरः सतः ॥६३॥

प्राक् अकल्पात् च कुशलं भ्रातः वः न आचराम हि अधुना श्रीमद् अन्ध अक्षाः न पश्यामः पुरः सतः ॥६३॥

हि प्राक्	क्योंकि पहिले	**भ्रातः वः कुशलं**	भाई ! आपका कोई भला
अकल्पात्	असमर्थ होनेसे		

न आचराम	(हम) नहीं कर सकते थे	पुरः सतः	(आपके) सम्मुख होते भी
अधुना	और अब	न पश्यामः	(आपकी ओर) नहीं देखते ॥६३॥
श्रीमद् अन्ध अक्षाः	धन-मदान्ध दृष्टि होनेसे		

मा राज्यश्रीरभूत् पुंसः श्रेयस्कामस्य मानद ।
स्वजनामुत बन्धून् वा न पश्यति ययान्धदृक् ॥६४॥

मा राज्यश्रीः अभूत् पुंसः श्रेयः कामस्य मानद स्वजनान् उत बन्धून् वा न पश्यति यया अन्ध दृक् ॥६४॥

मानद	औरोंका सम्मान करने वाले (भाई)	मा अभूत्	मत होवे
		यया अन्ध दृक्	जिससे अन्ध दृष्टि होकर
श्रेयः कामस्य	अपना कल्याण चाहने वाले	स्वजनान् उत	स्वजनों तथा
पुंसः	पुरुषको	बन्धून् वा	सम्बन्धियोंको भी
राज्यश्रीः	राज्यलक्ष्मी	न पश्यति	नहीं देखता ॥६४॥

॥ श्रीशुक उवाव ॥

एवं सौहृदशैथिल्यचित्त आनकदुन्दुभिः ।
रुरोद तत्कृतां मैत्रीं स्मरन्नश्रुविलोचनः ॥६५॥

एवं सौहृद शैथिल्य चित्त आनकदुन्दुभिः रुरोद तत् कृतां मैत्रीं स्मरन् अश्रु विलोचनः ॥६५॥

एवं	इस प्रकार	स्मरन्	स्मरण करके
आनकदुन्दुभिः	वसुदेवजी	विलोचनः	नेत्रोंमें
तत् कृतां मैत्रीं	उन (नन्दजी)की मित्रताको	अश्रु	आंसू भरकर
		रुरोद	रोने लगे ॥६५॥

नन्दस्तु सख्युः प्रियकृत् प्रेम्णा गोविन्दरामयोः ।
अद्य श्व इति मासांस्त्रीन् यदुभिर्मानितोऽवसत् ॥६६॥

नन्दः तु सख्युः प्रियकृत् प्रेम्णा गोविन्द रामयोः अद्य श्व इति मासान् त्रीन् यदुभिः मानितः अवसत् ॥६६॥

नन्दः तु सख्युः	नन्दजी भी सखा (वसुदेवजी)का
प्रियकृत्	प्रिय करनेके लिए
गोविन्द	गोविन्द तथा
रामयोः	बलरामके
प्रेम्णा	प्रेमसे
यदुभिः मानितः	यादवोंसे सम्मानित होकर
अद्य श्व इति	'आज-कल' इस प्रकार करते
त्रीन् मासान्	तीन महीने
अवसत्	टिके रहे गये ॥६६॥

ततः कामैः पूर्यमाणः सव्रजः सहबान्धवः ।
परार्ध्याभरणक्षौमनानानर्घ्यपरिच्छदैः ॥६७॥

ततः कामैः पूर्यमाणः सव्रजः सहबान्धवः परार्ध्य आभरण क्षौम नाना अनर्घ्य परिच्छदैः ॥६७॥

ततः परार्ध्य	फिर अत्यन्त बहुमूल्य
आभरण क्षौम	आभूषण, रेशमी-वस्त्र
नाना	अनेक प्रकारकी
अनर्घ्य	अमूल्य
परिच्छदैः	सामग्रीसे
सव्रजः	सब व्रजवासी
सहबान्धवैः	सब बन्धु-बान्धवों को
कामैः पूर्यमाणः	भोग सामग्रीसे तृप्त किया ॥६७॥

वसुदेवोग्रसेनाभ्यां कृष्णोद्धवबलादिभिः ।
दत्तमादाय परिबर्हं यापितो यदुभिर्ययौ ॥६८॥

वसुदेव उग्रसेनाभ्यां कृष्ण उद्धव बल आदिभिः दत्तं आदाय परिबर्हं यापितः यदुभिः ययौ ॥६८॥

वसुदेव	वसुदेव,
उग्रसेनाभ्यां	उग्रसेन
कृष्ण उद्धव	श्रीकृष्ण, उद्धव
बल आदिभिः	बलराम आदि
यदुभिः दत्तं	यदुवंशियों द्वारा दिये
परिबर्हं आदाय	उपहार लेकर
यापितः ययौ	उनके विदा करने पर गये ॥६८॥

नन्दो गोपाश्च गोप्यश्च गोविन्दचरणाम्बुजे ।
मनः क्षिप्तं पुनर्हर्तुमनीशा मथुरां ययुः ॥६९॥

नन्दः गोपाः च गोप्यः च गोविन्द चरण अम्बुजे मनः क्षिप्तं पुनः हर्तुं अनीशा मथुरां ययुः ॥६९॥

गोविन्द	गोविन्दके
चरण अम्बुजे	चरण-कमलोंमें
क्षिप्तं मनः	लगाये मनको
पुनः हर्तुं	फिर हटा लेनेमें
अनीशा	असमर्थ
नन्दः गोपाः च	नन्दजी, गोप तथा
गोप्यः च	गोपियां भी
मथुरां ययुः	मथुरा गयीं ॥६९॥

बन्धुषु प्रतियातेषु वृष्णयः कृष्णदेवताः ।
वीक्ष्य प्रावृषमासन्नां ययुर्द्वारवतीं पुनः ॥७०॥

बन्धुषु प्रतियातेषु वृष्णयः कृष्णदेवताः वीक्ष्य प्रावृषं आसन्नां ययुः द्वारवतीं पुनः ॥७०॥

बन्धुषु	सम्बन्धियोंके
प्रतियातेषु	लौट जाने पर
कृष्णदेवताः	जिनके देवता श्रीकृष्ण हैं
वृष्णयः	वे यादव
प्रावृषं आसन्नां	वर्षा ऋतुको निकट
वीक्ष्य पुनः	देखकर फिर
द्वारवतीं ययुः	द्वारिका चले गये ॥७०॥

जनेभ्यः कथयाञ्चक्रुर्यदुदेवमहोत्सवम् ।
यदासीत्तीर्थयात्रायां सुहृत्संदर्शनादिकम् ॥७१॥

जनेभ्यः कथयान् चक्रुः यदुदेव महोत्सवं यदा आसीत् तीर्थयात्रायां सुहृत् सन्दर्शन आदिकम् ॥७१॥

तीर्थयात्रायां	तीर्थयात्रामें	**सुहृत् सन्दर्शन**	सुहृदोंका मिलना
यत् यदुदेव	जो वसुदेवजीका	**आदिकं आसीत्**	आदि हुआ था
महोत्सवं	महोत्सव (यज्ञ) तथा	**जनेभ्यः**	लोगोंसे
		कथयान् चक्रुः	बतलाया ॥७१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे तीर्थयात्रानुवर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

अथ पंचाशीतितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

अथैकदाऽऽत्मजौ प्राप्तौ कृतपादाभिवन्दनौ ।
वसुदेवोऽभिनन्द्याह प्रीत्या सङ्कर्षणाच्युतौ ॥ १ ॥

अथ एकदा आत्मजौ प्राप्तौ कृत पाद अभिवन्दनौ वसुदेवः अभिनन्द्य आह प्रीत्या संकर्षण अच्युतौ ॥१॥

अथ एकदा	इसके बाद एकबार	**वसुदेवः प्रीत्या**	वसुदेवजीने प्रेम-पूर्वक
आत्मजौ प्राप्तौ	पुत्रोंने आकर	**सङ्कर्षण**	उन बलराम-
पाद	चरण-	**अच्युतौ**	श्रीकृष्णसे
अभिवन्दनौ	वन्दना	**आह**	कहा ॥१॥
कृत	कर लेने पर		
अभिवन्दनौ	उनका अभिनन्दन करके		

मुनीनां स वचः श्रुत्वा पुत्रयोर्धामसूचकम् ।
तद्वीर्यँजातविश्रम्भः परिभाष्याभ्यभाषत ॥ २ ॥

मुनीनां स वचः श्रुत्वा पुत्रयोः धाम सूचकं तत् वीर्यैः जात विश्रम्भः परिभाष्य अभ्यभाषत ॥२॥

पुत्रयोः धाम	पुत्रोंकी महिमा	**मुनीनां**	मुनियोंकी
सूचकं	सूचित करने वाली	**वचः श्रुत्वा**	बात सुनकर

---

*गीता प्रेसकी प्रति में यहाँ 'श्रीबादरायणिरुवाच' है ।

तत् वीर्यैः	उनके पराक्रमसे	**स परिभाष्य**	उन्होंने (उनको)
जात विश्रम्भः	विश्वास हो जानेके कारण		सम्बोधित करके
		अभ्यभाषत	उनसे कहा ॥२॥

॥ वसुदेव उवाच ॥*

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् सङ्कर्षण सनातन ।
जाने वामस्य यत् साक्षात् प्रधानपुरुषौ परौ ॥ ३ ॥

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् सङ्कर्षण सनातन जाने वां अस्य यत् साक्षात् प्रधानपुरुषौ परौ ॥३॥

कृष्ण	कृष्ण !	**अस्य परौ**	इस जगतसे परे
महायोगिन्	महायोगी	**वां प्रधानपुरुषौ**	तुम प्रधान और पुरुष हो
कृष्ण	कृष्ण ! और		
सनातन	सनातन पुरुष	**जाने**	(यह मैं) जान गया ॥३॥
सङ्कर्षण	बलराम !		
यत्	जो		

यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद् यद् यथा यदा ।
स्यादिदं भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ ४ ॥

यत्र येन यतः यस्य यस्मै यद् यद् यथा यदा स्यात् इदं भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुष ईश्वरः ॥४॥

यत्र येन	जिस (देश)में, जिस (कर्त्ता)के द्वारा,	**यद् यद्**	जो जो
		यथा यदा	जैसे जब (जिस कालमें)
यतः यस्य यस्मै	जिस (हेतु)से जिसका जिसके लिये		

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

इदं स्यात्	यह (दृश्य) रूपसे होंता है (वह)	**प्रधानपुरुष**	प्रधान पुरुष और उसके
साक्षात्	साक्षात्	**ईश्वरः**	स्वामी (तुम्हीं) हो ॥४॥
भगवान्	भगवान		

एतन्नानाविधं विश्वमात्मसृष्टमधोक्षज ।
आत्मनानुप्रविश्यात्मन् प्राणो जीवो बिभर्त्यजः ॥ ५ ॥

एतत् नाना विधं विश्वं आत्मसृष्टं अधोक्षज आत्मना अनुप्रविश्य आत्मन् प्राणः जीवः बिभर्ति अजः ॥५॥

अधोक्षज	इन्द्रियातीत !	**अजः आत्मन्**	तुम अजन्मा आत्म रूपसे
आत्मसृष्टं	अपने द्वारा बनाये गये	**प्राणः जीवः**	क्रिया शक्ति एवं ज्ञान शक्तिको
एतत् नाना विधं	इस अनेक रूप	**बिभर्ति**	धारण करते हो ॥५॥
विश्वं आत्मना	विश्वमें स्वयं ही		
अनुप्रविश्य	सर्वत्र प्रवेश करके		

प्राणादीनां विश्वसृजां शक्तयो याः परस्य ताः ।
पारतन्त्र्याद् वै सादृश्याद् द्वयोश्चेष्टैव चेष्टताम् ॥६॥

प्राण आदीनां विश्वसृजां शक्तयः याः परस्य ताः पारतन्त्र्यात् वै सादृश्यात् द्वयोः चेष्टा इव चेष्टताम् ॥६॥

विश्वसृजां	विश्व-निर्माता	**वै सादृश्यात्**	तथा विषम होनेके कारण
प्राण आदीनां	प्राण आदिमें	**चेष्टा**	(उनकी) चेष्टायें तो
याः शक्तयः ताः	जो शक्तियां हैं वे	**द्वयोः**	दोनों कारणोंसे
परस्य	(तुम) परम पुरुष की ही है, क्योंकि	**चेष्टा इव**	चेष्टा मात्र ही हैं ॥६॥
पारतन्त्र्यात्	(उनके) परतन्त्र होनेके कारण		

कान्तिस्तेजः प्रभा सत्ता चन्द्राग्न्यर्कर्क्षविद्युताम् ।
यत् स्थैर्यं भूभृतां भूमेर्वृत्तिर्गन्धोऽर्थतो भवान् ॥ ७ ॥

कान्तिः तेजः प्रभा सत्ता चन्द्र अग्नि अर्क अर्क्ष विद्युतां यत् स्थैर्यं भूभृतां भूमेः वृत्तिः गन्धः अर्थतः भवान् ॥७॥

चन्द्र अग्नि	चन्द्रमा, अग्नि	**यत् भूभृतां**	जो पर्वतोंमें
अर्क अर्क्ष	सूर्य, नक्षत्र,	**स्थैर्यं**	स्थिरता,
विद्युतां	विद्युतमें	**भूमेः वृत्तिः**	पृथ्वीमें (शक्ति रूप) वृत्ति तथा
कान्तिः तेजः	कान्ति, तेज,		
प्रभा सत्ता	प्रभा और अस्तित्व	**अर्थतः गन्ध**	गन्ध रूप गुण
		भवान्	आप ही हैं ॥७॥

तर्पणं प्राणनमपां देवत्वं ताश्च तद्रसः ।
ओजः सहो बलं चेष्टा गतिर्वायोस्तवेश्वर ॥ ८ ॥

तर्पणं प्राणनं अपां देवत्वं ताः च तत् रसः ओजः सहः बलं चेष्टा गतिः वायोः तव ईश्वर ॥८॥

ईश्वर	परमेश्वर !	**वायोः**	वायुमें
अपां तर्पणं	जलमें तृप्त करनेकी	**ओजः सहः**	इन्द्रिय शक्ति,
प्राणनं	जीवन देनेकी	**गतिः**	गतिशीलता
देवत्वं	पवित्र करनेकी	**बलं चेष्टा**	शरीर शक्ति, क्रिया शक्ति
ताः च तत् रसः	वे (शक्तियां) तथा वह रस रूप जल भी	**तव**	तुम्हारी ही है ॥८॥

दिशां त्वमवकाशोऽसि दिशः खं स्फोट आश्रयः ।
नादो वर्णस्त्वमोंकार आकृतीनां पृथक्कृतिः ॥ ९ ॥

दिशां त्वं अवकाशः असि दिशः खं स्फोट आश्रयः नादः वर्णः त्वं ओङ्कार आकृतीनां पृथक् कृतिः ॥९॥

त्वं दिशां	तुम दिशाओंमें	नादः ओङ्कार	नाद (पश्यन्ती)
अवकाशः	अवकाश		ओङ्कार (मध्यमा)
दिशः	तथा दिशाएँ भी	वर्णः	शब्दात्मक बैखरी
खं	आकाश और उसका	आकृतीनां	तथा आकारोंमें
आश्रयः स्फोट	आश्रय शब्द (परा-वाणी)	त्वं पृथक् कृतिः	तुम उनका पार्थक्य करने वाले
		असि	हो ॥९॥

इन्द्रियं त्विन्द्रियाणां त्वं देवाश्च तदनुग्रहः ।
अवबोधो भवान् बुद्धेर्जीवस्यानुस्मृतिः सती ॥१०॥

इन्द्रियं तु इन्द्रियाणां त्वं देवाः च तत् अनुग्रहः अवबोधः भवान् बुद्धेः जीवस्य अनुस्मृतिः सती ॥१०॥

इन्द्रियाणां तु	इन्द्रियोंमें तो	भवान् बुद्धेः	तुम बुद्धिमें
त्वं इन्द्रियं देवाः	तुम इन्द्रिय, उनके अधिदेवता	अवबोधः	निश्चयात्मिका शक्ति
च तत् अनुग्रहः	तथा उनकी (विषय-प्रकाशिनी शक्ति हो	जीवस्य सती अनुस्मृतिः	जीवकी विशुद्ध स्मृति हो ॥१०॥

भूतानामसि भूतादिरिन्द्रियाणां च तैजसः ।
वैकारिको विकल्पानां प्रधानमनुशायिनाम् ॥११॥

भूतानां असि भूतादिः इन्द्रियाणां च तैजसः वैकारिकः विकल्पानां प्रधानं अनुशायिनाम् ॥११॥

भूतानां भूतादिः	पञ्च भूतोंमें उन भूतोंके कारण तामस अहंकार	तैजसः	तैजस (अहंकार)
		विकल्पानां	इन्द्रियोंके अधि-देवताओंमें
च इन्द्रियाणां	तथा इन्द्रियोंमें		

वैकारिकः	वैकारिक (अहंकार)		सुला लेने वालेमें
अनुशायिनां	सबको अपनेमें	प्रधानं असि	प्रकृति हो ॥११॥

नश्वरेष्विह भावेषु तदसि त्वमनश्वरम् ।
यथा द्रव्यविकारेषु द्रव्यमात्रं निरूपितम् ॥१२॥

नश्वरेषु इह भावेषु तत् असि त्वं अनश्वरं यथा द्रव्य विकारेषु द्रव्यमात्रं निरूपितम् ॥१२॥

इह नश्वरेषु	इस संसारके नाश-वान	यथा द्रव्य	जैसे (मिट्टी) द्रव्योंके
भावेषु तत् असि	पदार्थोंमें व्यास होकर भी	विकारेषु	(घड़े आदि) विकारोंमें
त्वं अनश्वरं	तुम अविनाशी हो	द्रव्यमात्रं निरूपितं	प्रव्य (मिट्टी) ही कही जाती है ॥१२॥

सत्त्वं रजस्तम इति गुणास्तद्वृत्तयश्च याः ।
त्वय्यद्धा ब्रह्मणि परे कल्पिता योगमायया ॥१३॥

सत्त्वं रजः तम इति गुणाः तत् वृत्तयः च याः त्वयि अद्धा ब्रह्मणि परे कल्पिता योगमायया ॥१३॥

सत्त्वं रजः तम	सत्त्व, रज, तम	त्वयि अद्धा	आप साक्षात्
इति गुणाः	ये (तीनों) गुण	परे ब्रह्मणि	परम ब्रह्ममें
च तत् याः	तथा उनकी जो	योगमायया	योगमायासे
वृत्तयः	वृत्तियां हैं	कल्पिता	कल्पित हैं ॥१३॥

तस्मान्न सन्त्यमी भावा र्यहि त्वयि विकल्पिताः ।
त्वं चामीषु विकारेषु ह्यन्यदाव्यावहारिकः ॥१४॥

तस्मात् न सन्ति अमी भावा र्यहि त्वयि विकल्पिताः त्वं च अमीषु विकारेषु हि अन्यदा व्यावहारिकः ॥१४॥

तस्मात्	इसलिये
अमी भावा	ये सब भाव
त्वयि न सन्ति	तुममें नहीं है
यर्हि विकल्पिताः	क्योंकि (ये) कल्पित किये गये हैं
त्वं च अमीषु	तुम भी इन
विकारेषु	विकारोंमें (नहीं हो)
हि अन्यदा	क्योंकि इससे भिन्न स्थिति
व्यावहारिकः	व्यवहारिक ही है ॥१४॥

गुणप्रवाह एतस्मिन्नबुधास्त्वखिलात्मनः ।
गतिं सूक्ष्मामबोधेन संसरन्तीह कर्मभिः ॥१५॥

गुणप्रवाह एतस्मिन् अबुधाः तु अखिल आत्मनः गतिं सूक्ष्मां अबोधेन संसरन्ति इह कर्मभिः ॥१५॥

अबुधाः तु	अज्ञानी लोग तो
अखिल आत्मनः	सर्वात्माके
सूक्ष्मां गतिं	सूक्ष्म स्वरूपके
अबोधेन	अज्ञानसे
एतस्मिन	इस
गुणप्रवाह	गुणोंके प्रवाहमें
इह कर्मभिः	यहां कर्मोंके अनुसार
संसरन्ति	(जन्म-मरणमें) भटकते रहते हैं ॥१५॥

यदृच्छया नृतां प्राप्य सुकल्पामिह दुर्लभाम् ।
स्वार्थे प्रमत्तस्य वयो गतं त्वन्माययेश्वर ॥१६॥

यदृच्छया नृतां प्राप्य सुकल्पां इह दुर्लभां स्वार्थे प्रमत्तस्य वयः गतं त्वत् मायया ईश्वर ॥१६॥

ईश्वर	परमेश्वर !
यदृच्छया	संयोगवश
इह सुकल्पां	इस लोकमें इन्द्रिया-दिशक्ति युक्त
दुर्लभां नृतां	दुर्लभ मनुष्यत्व
प्राप्य त्वत्	पाकर आपकी
मायया	मायासे
स्वार्थे	अपने वास्तविक स्यार्थसे

प्रमत्तस्य	असावधान रहते	**वयः गतं**	(मेरी) आयु बीत गयी ॥१६॥

असावहं ममैवैते देहे चास्यान्वयादिषु ।
स्नेहपाशैर्निबध्नाति भवान् सर्वमिदं जगत् ॥१७॥

असाः अहं मम एव एते देहे च अस्य अन्वय आदिषु स्नेहपाशैः निबध्नाति भवान् सर्वं इदं जगत् ॥१८॥

असाः अहं	'यह मैं हूँ'	**स्नेहपाशैः**	स्नेहके बन्धनसे
एते मम एव	'ये मेरे ही हैं'	**इदं सर्वं जगत्**	इस सब संसारको
देहे च अस्य	शरीरमें तथा इस (शरीर)के	**भवान**	आप ही
		निबध्नाति	बांधते हो ॥१७॥
अन्वय आदिषु	सम्बन्धियोंमें		

युवां न नः सुतौ साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरौ ।
भूभारक्षत्रक्षपण अवतीर्णौ तथाऽऽत्थ ह ॥१८॥

युवां न नः सुतौ साक्षात् प्रधान पुरुष ईश्वरौ भूभारक्षत्र क्षपण अवतीर्णौ तथा आत्थ ह ॥१८॥

युवां नः सुतौ न	तुम दोनों मेरे पुत्र नहीं हो,	**क्षपण**	विनाश करने
		अवतीर्णौ	अवतरित हुए हो
साक्षात् प्रधान	साक्षात् प्रकृति और	**तथा आत्थ ह**	ऐसा (तुमने) कहा भी था ॥१८॥
पुरुष ईश्वरौ	जीवोंके स्वामी हो		
भूभारक्षत्र	पृथ्वीके भार रूप क्षत्रियोंका		

तत्ते गतोऽस्म्यरणमद्य पदारविन्द-
मापन्नसंसृतिभयापहमार्तबन्धो ।
एतावतालमलमिन्द्रियलालसेन
मर्त्यात्मदृक् त्वयि परे यदपत्यबुद्धिः ॥१९॥

तत् ते गतः अस्मि अरणं अद्य पदारविन्दं आपन्न संसृति भय अपहं आर्तबन्धो एतावत अलं इन्द्रिय लालसेन मर्त्य आत्मदृक् त्वयि परे यत् अपत्य बुद्धिः ॥१९॥

आर्तबन्धो	दीनबन्धो !
तत् अद्य	अतः आज
आपन्न	शरणागतके
संसृति भय	जन्म-मरणके भयको
अपहं	दूर करने वाले
अरणं	रक्षक
ते पदारविन्दं	आपके चरण-कमलोंमें
गतः	आया हूँ,
इन्द्रिय लालसेन	इन्द्रियोंकी लोलुपता से
एतावत अलं	इतना ही बस हो
यत् मर्त्य	जिसके कारण मरण धर्मा देहमें
आत्मदृक्	आत्म दृष्टि तथा
त्वयि परे	तुम परमात्मामें
अपत्य बुद्धिः	पुत्र बुद्धि हो गयी ॥१९॥

सूतीगृहे ननु जगाद भवानजो नौ
संजज्ञ इत्यनुयुगं निजधर्मगुप्त्यै ।
नानातनूर्गगनवद् विदधज्जहासि
को वेद भूम्न उरुगाय विभूतिमायाम् ॥२०॥

सूतीगृहे ननु जगाद भवान् अजो नौ सञ्जज्ञ इति अनुयुगं निजधर्म गुप्त्यै नान तनूः गगनवत् विदधत् जहासि कः वेद भूम्न उरुगाय विभूति मायाम् ॥२०॥

ननु भवान्	निश्चय आपने
सूतीगृहे	सूतिका गृहमें
नौ इति जगाद	हम दोनोंसे यह कहा था कि
अजो निजधर्म	अजन्मा होकर भी अपने धर्मकी
गुप्त्यै अनुयुगं	रक्षाके लिए प्रत्येक युगमें
गगन वत्	आकाशकी भांति
नाना तनूः	नाना शरीर
विदधत्	धारण करके
जहासि	फिर छोड़ देते हैं
उरुगाय भूम्न	अनन्त यशा सर्व-व्यापक
मायां विभूति	(आपकी) मायाके वैभवको
कः वेद	कौन जान सकता है ॥२०॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

आकर्ण्येत्थं पितुर्वाक्यं भगवान् सात्वतर्षभः ।
प्रत्याह प्रश्रयानम्रः प्रहसञ्श्लक्ष्णया गिरा ॥२१॥

आकर्ण्य इत्थं पितुः वाक्यं भगवान् सात्वत ऋषभः प्रत्याह प्रश्रय आनम्रः प्रहसन् श्लक्ष्णया गिरा ॥२१॥

इत्थं पितुः	इस प्रकारके पिताके	**प्रश्रय आनम्रः**	विनयसे झुककर
वाक्यं आकर्ण्य	वचन सुनकर	**प्रहसन्**	हँसते हुए
सात्वत ऋषभः	यादव श्रेष्ठ	**श्लक्ष्णया गिरा**	मधुर वाणीसे
भगवान्	भगवान	**प्रत्याह**	उत्तर बोले ॥२१॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

वचो वः समवेतार्थं तातैतदुपमन्महे ।
यन्नः पुत्रान् समुद्दिश्य तत्त्वग्राम उदाहृतः ॥२२॥

वचः वः समवेत अर्थं तात एतत् उपमन्महे यत् नः पुत्रान् सम उद्दिश्य तत्त्वग्राम उदाहृतः ॥२२॥

तात एतत्	पिताजी ! यह	**सम उद्दिश्य**	पूरा उद्देश्य बनाकर
वः वचः	आपकी बात	**तत्त्वग्राम**	तत्त्व समूहका
समवेत अर्थं	बहुत अर्थयुक्त	**उदाहृतः**	(आपने) वर्णन
उपमन्महे	हम मानते हैं		किया ॥२२॥
यत् नः पुत्रान्	जो हम पुत्रोंको		

अहं यूयमसावार्य इमे च द्वारकौकसः ।
सर्वेऽप्येवं यदुश्रेष्ठ विमृश्याः सचराचरम् ॥२३॥

अहं यूयं असाः आर्यः इमे च द्वारकौकसः सर्वे अपि एवं यदुश्रेष्ठ विमृश्याः सचराचरम् ॥२३॥

यदुश्रेष्ट	यदुश्रेष्ठ !	**सचराचरं**	चराचर सहित
अहं यूयं	मैं, आप	**सर्वे अपि एवं**	सभी इसी प्रकार
असाः आर्यः	ये बड़े भाई	**विमृश्याः**	समझने चाहिए
च इमे	तथा ये		॥२३॥
द्वारकौकसः	द्वारिकावासी		

आत्मा ह्येकः स्वयंज्योतिर्नित्योऽन्यो निर्गुणो गुणैः ।
आत्मसृष्टैस्तत्कृतेषु भूतेषु बहुधेयते ॥२४॥

आत्मा हि एकः स्वयं ज्योतिः नित्यः अन्यः निर्गुणः गुणैः आत्मसृष्टैः तत् कृतेषु भूतेषु बहुधा ईयते ॥२४॥

हि आत्मा एकः	क्योंकि आत्मा एक	**आत्मसृष्टैः**	अपने द्वारा निर्मितों (अहंकारादि)से
स्वयं ज्योतिः	स्वयं प्रकाश	**तत् कृतेषु**	बने हुए
नित्यः	नित्य	**भूतेषु**	प्राणियोंमें
गुणैः अन्यः	गुणोंसे भिन्न	**बहुधा ईयते**	अनेक रूप प्रतीत होता है ॥२४॥
निर्गुणः	निर्गुण है		

खं वायुर्ज्योतिरापो भूस्तत्कृतेषु यथाशयम् ।
आविस्तिरोऽल्पभूर्येको नानात्वं यात्यसावपि ॥२५॥

खं वायुः ज्योतिः आपः भूः तत् कृतेषु यथा आशयं आविस्तिरः अल्पभूः एकः नानात्वं याति असाः अपि ॥२५॥

खं वायुः ज्योतिः	आकाश-वायु, अग्नि	**एकः नानात्वं**	एक होकर भी अनेक रूप
आपः भूः	जल और पृथ्वी,	**भाति**	प्रतीत होते हैं (उसी प्रकार)
तत् कृतेषु	इनके द्वारा निर्मित (पदार्थोंमें)	**असाः अपि**	यह (आत्मा) भी (एक होकर अनेक लगता है) ॥२५॥
आविस्तिरः	बड़े विस्तार वाले एवं		
अल्पभूः	बहुत छोटेसे		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एवं भगवता राजन् वसुदेव उदाहृतम् ।
श्रुत्वा विनष्टनानाधीस्तूष्णीं प्रीतमना अभूत् ॥२६॥

एवं भगवता राजन् वसुदेवः उदाहृतं श्रुत्वा विनष्ट नानाधीः तूष्णीं प्रीतमना अभूत् ॥२६॥

राजन्	राजन् !	**नानाधीः**	नानात्व बुद्धि
एवं भगवता	इस प्रकार भगवान द्वारा	**विनष्ट**	नष्ट हो जानेसे
		प्रीतमना	प्रसन्न चित्तसे
उदाहृतं श्रुत्वा	सोदाहरण वचन सुनकर	**वसुदेवः**	वसुदेवजी
		तूष्णीं अभूत्	चुप हो गये ॥२६॥

अथ तत्र कुरुश्रेष्ठ देवकी सर्वदेवता ।
श्रुत्वाऽऽनीतं गुरोः पुत्रमात्मजाभ्यां सुविस्मिता ॥२७॥

अथ तत्र कुरुश्रेष्ठ देवकी सर्वदेवता श्रुत्वा आनीतं गुरोः पुत्रं आत्मजाभ्यां सुविस्मिता ॥२७॥

अथ सर्वदेवता	फिर सर्व देवतामयी	**गुरोः पुत्रं**	(मरे) गुरुपुत्रको
देवकी तत्र	देवकी वहाँ (कुरु-क्षेत्र)में	**आनीतं**	ले आना
		श्रुत्वा सुविस्मिता	सुनकर बहुत चकित हो गयीं थीं ॥२७॥
आत्मजाभ्यां	अपने पुत्रों द्वारा		

कृष्णरामौ समाश्राव्य पुत्रान् कंसविहिंसितान् ।
स्मरन्ती कृपणं प्राह वैक्लव्यादश्रुलोचना ॥२८॥

कृष्णरामौ सम आश्राव्य पुत्रान् कंस विहिंसितान् स्मरन्ती कृपणं प्राह वैक्लव्यात् अश्रुलोचना ॥२८॥

कंस	कंस द्वारा
विहिंसितान्	मारे गये
पुत्रान् स्मरन्ती	पुत्रोंको स्मरण करके
वैक्लव्यात्	व्याकुलताके कारण
अश्रुलोचना	नेत्रोंमें अश्रु भरकर
कृष्णरामौ	श्रीकृष्ण-बलरामको
समाश्राव्य	सम्बोधित करके
कृपणं प्राह	करुण स्वरसे कहा ॥२८॥

॥ देवक्युवाच ॥

राम रामाप्रमेयात्मन् कृष्ण योगेश्वरेश्वर ।
वेदाहं वां विश्वसृजामीश्वरावादिपूरुषौ ॥२९॥

राम राम अप्रमेय आत्मन् कृष्ण योगेश्वर ईश्वर वेद अहं वां विश्वसृजां ईश्वराः आदि पूरुषौ ॥२९॥

राम	बलराम !
अप्रमेय आत्मन्	अप्रमेय स्वरूप
राम	बलराम !
योगेश्वर	योगेश्वरोंके भी
ईश्वर कृष्ण	स्वामी कृष्ण !
वेद अहं वां	मैं जानती हूँ कि तुम दोनों
विश्वसृजां	लोकपालोंके
ईश्वराः	स्वामी एव
आदि पूरुषौ	आदि पुरुष हो ॥२९॥

कालविध्वस्तसत्त्वानां राज्ञामुच्छास्त्रवर्तिनाम् ।
भूमेर्भारायमाणानामवतीर्णौ किलाद्य मे ॥३०॥

कालविध्वस्त सत्त्वानां राज्ञां उच्छास्त्र वर्तिनां भूमेः भारायमाणानां अवतीर्णौ किल अद्य मे ॥३०॥

कालविध्वस्त	काल-प्रभावसे नष्ट हुए
सत्त्वानां	सत्त्व गुण वाले
उच्छास्त्र	शास्त्र मर्यादाका
वर्तिनां	उलंघन करने वाले
भूमेः	पृथ्वीके
भारायमाणानां	भार बने
राज्ञां	राजाओंके (नाशके) लिए

किल अद्य मे	अहो इस समय मेरे यहां	**अवतीर्णौ**	अवतरित हुए हो ॥३०॥

यस्यांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयाः ।
भवन्ति किल विश्वात्मंस्तं त्वाद्याहं गतिं गता ॥३१॥

यस्यां अंश अंश भागेन विश्व उत्पत्ति लय उदयाः भवन्ति किल विश्वात्मन् तं त्वा अद्य अहं गतिं गता ॥३१॥

विश्वात्मन्	विश्वात्मा !	**किल भवन्ति**	अहो होता है
यस्यां अंश	(तुम्हारे) जिस अंश मायाके	**अद्य तं त्वा अहं**	आज उस आपकी मैं
अंश भागेन	अल्पांशसे	**गतिं गता**	शरण आयी हूँ ॥३१॥
विश्व उत्पत्ति	संसारकी उत्पत्ति		
लय उदयाः	प्रलय तथा अभ्युदय		

चिरान्मृतसुतादाने गुरुणा कालचोदितौ ।
आनिन्यथुः पितृस्थानाद् गुरवे गुरुदक्षिणाम् ॥३२॥

चिरात् मृत सुत आदाने गुरुणा काल चोदितौ आनिन्यथुः पितृस्थानात् गुरवे गुरुदक्षिणाम् ॥३२॥

काल चोदितौ	कालकी प्रेरणा	**पितृस्थानात्**	यमलोकसे
चिरात् मृत	बहुत समयके मरे	**गुरवे**	गुरुके लिए
सुत आदाने	पुत्रको लाकर देने की	**आनिन्यथुः**	(तुम लोग) ले आये थे ॥३२॥
गुरुणा	गुरु द्वारा		
गुरुदक्षिणां	गुरु दक्षिणा (मांगने पर)		

तथा मे कुरुतं कामं युवां योगेश्वरेश्वरौ ।
भोजराजहतान् पुत्रान् कामये द्रष्टुमाहृतान् ॥३३॥

तथा मे कुरुतं कामं युवां योगेश्वर ईश्वरौ भोजराज हतान् पुत्रान् कामये द्रष्टुं आहृतान् ॥३३॥

तथा मे कामं	ऐसी ही मेरी अभिलाषा	**भोजराज हतान्**	भोजराज कंस द्वारा मारे गये
कुरुतं	पूर्ण करो,	**आहृतान् पुत्रान्**	लाये हुए पुत्रोंको
युवां योगेश्वर ईश्वरौ	तुम दोनों योगेश्वरों के भी स्वामी हो	**द्रष्टुं कामये**	देखना चाहती हूँ ॥३३॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

एवं सञ्चोदितौ मात्रा रामः कृष्णश्च भारत ।
सुतलं संविविशतुर्योगमायामुपाश्रितौ ॥३४॥

एवं सञ्चोदितौ मात्रा रामः कृष्णः च भारत सुतलं संविविशतुः योगमायां उपाश्रितौ ॥३४॥

भारत	परीक्षित !	**योगमायां**	योगमायाका
मात्रा एवं	माता द्वारा इस	**उपाश्रितौ**	आश्रय लेकर
सञ्चोदितौ	प्रेरित किये जाने पर	**सुतलं**	सुतलमें
रामः च कृष्णः	बलराम तथा कृष्ण	**संविविशतुः**	प्रविष्ट हुए ॥३४॥

तस्मिन् प्रविष्टावुपलभ्य दैत्यराड्
विश्वात्मदैवं सुतरां तथाऽऽत्मनः ।
तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः
सद्यः समुत्थाय ननाम सान्वयः ॥३५॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें ऋषिरुवाच नहीं है ।

तस्मिन् प्रविष्टाः उपलभ्य दैत्यराट् विश्व आत्म दैवं सुतरां तथा आत्मनः तत् दर्शन आह्लाद परिप्लुत आशयः सद्यः समुत्थाय ननाम स अन्वयः ॥३५॥

विश्व आत्म	विश्वके आत्मा	**तत् दर्शन**	उनके दर्शनके
तथा आत्मनः	तथा अपने	**आह्लाद**	आनन्दमें
सुतरां दैवं	परमाराध्य देवको	**परिप्लुत**	निमग्न
तस्मिन्	उस लोकमें	**आश्रयः**	चित्त
प्रविष्टाः	प्रविष्ट हुए	**स अन्वयः**	सपरिवार
उपलभ्य	पाकर	**सद्यः समुत्थाय**	तुरन्त उठकर
दैत्यराट्	दैत्यराज बलिने	**ननाम**	प्रणाम किया ॥३५॥

तयोः समानीय वरासनं मुदा
निविष्टयोस्तत्र महात्मनोस्तयोः ।
दधार पादाववनिज्य तज्जलं
सवृन्द आब्रह्म पुनद् यदम्बु ह ॥३६॥

तयोः सम आनीय वर आसनं मुदा निविष्ट योः तत्र महात्मनोः तयोः दधार पादाः अवनिज्य तत् जलं सवृन्द आब्रह्म पुनत् यत् अम्बु ह ॥३६॥

मुदा तयोः	हर्ष पूर्वक उनके लिए	**तत् जलं सवृन्द**	वह जल पूरे समूह के साथ
वर आसनं	श्रेष्ठ आसन	**दधार**	(सिर पर) धारण किया
सम आनीय	सावधानीसे लाकर	**ह यत् अम्बु**	अहो जो (चरणोदक) जल
तत्र निविष्ट योः	उन पर बैठे हुए	**आब्रह्म पुनत्**	ब्रह्मा पर्यन्त (सब जगत)को पवित्र करता है ॥३६॥
तयोः	उन दोनों		
महात्मनोः	महात्माओंके		
पादाः	चरण		
अवनिज्य	धोकर		

समर्हयामास स तौ विभूतिभि-
र्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः ।
ताम्बूलदीपामृतभक्षणादिभिः
स्वगोत्रवित्तात्मसमर्पणेन च ॥३७॥

सम अर्हयामास स तौ विभूतिभिः महा अर्ह वस्त्र आभरण अनुलेपनैः ताम्बूल दीप अमृत भक्षण आदिभिः स्वगोत्र वित्त आत्म समर्पणेन च ॥३७॥

स तौ	उन (बलि)ने उन दोनों भाइयोंकी
विभूतिभिः	वैभवमयी
महा अर्ह	बहुमूल्य
वस्त्र आभरण	वस्त्र, आभूषण
अनुलेपनैः	अंगराग
ताम्बूल दीप	पान, दीपक
अमृत भक्षण	अमृतके समान भोजन
आदिभिः	आदि द्वारा
सम अर्हयामास	भली प्रकार पूजा की
च स्वगोत्र	तथा अपना परिवार
वित्त आत्म	धन एवं शरीर भी
समर्पणेन	समर्पण करके (पूजा की) ॥३७॥

स इन्द्रसेनो भगवत्पदाम्बुजं
बिभ्रन्मुहुः प्रेमविभिन्नया धिया ।
उवाच हानन्दजलाकुलेक्षणः
प्रहृष्टरोमा नृप गद्गदाक्षरम् ॥३८॥

स इन्द्रसेनः भगवत् पदाम्बुजं बिभ्रन् मुहुः प्रेम विभिन्नया धिया उवाच ह आनन्द जल आकुल ईक्षणः प्रहृष्टरोमा नृप गद्गद् अक्षरम् ॥३८॥

नृप	राजन् !
स इन्द्रेसनः	वे इन्द्रसेन (बलि)
भगवत्	भगवानके चरण-कमलोंको
मुहुः बिभ्रन्	बार-बार (गोदमें सिर पर) धारण करते हुए

प्रेम विभिन्नया	प्रेम विह्वल
धिया	चित्त
ह आनन्द जल	अहो आनन्दाश्रुसे
आकुल ईक्षणः	चंचल नेत्र
प्रहृष्टरोमा	रोमाञ्चित होकर
गद्गद् अक्षरं	गद् गद् वाणीसे
उवाच	बोले ॥३८॥

॥ बलिरुवाच ॥

नमोऽनन्ताय बृहते नमः कृष्णाय वेधसे ।
सांख्ययोगवितानाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥३९॥

नमः अनन्ताय बृहते नमः कृष्णाय वेधसे सांख्य योग वितानाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥३९॥

बृहते अनन्ताय	महान् अनन्तको
नमः	नमस्कार !
वेधसे	जगन्निर्माता,
सांख्य योग	सांख्य तथा योगका
वितानाय	विस्तार करने वाले
ब्रह्मणे	परम ब्रह्म
परमात्मने	परमात्मा
कृष्णाय नमः	श्रीकृष्णको नमस्कार ॥३९॥

दर्शनं वां हि भूतानां दुष्प्रापं चाप्यदुर्लभम् ।
रजस्तमःस्वभावानां यन्नः प्राप्तौ यदृच्छया ॥४०॥

दर्शनं वां हि भूतानां दुष्प्रापं च अपि दुर्लभं रजः तमः स्वभावानां यत् नः प्राप्तौ यदृच्छया ॥४०॥

हि भूतानां	क्योंकि प्राणियोंके लिए
वां दर्शनं	आप दोनोंका दर्शन
दुष्प्रापं च	दुष्प्राप्य तथा
दुर्लभं	दुर्लभ है
यत् नः	जो हम
रजः तमः	रजोगुणी, तमोगुणी
स्वभावानां	स्वभाववालोंको
यदृच्छया प्राप्तौ	सौभाग्यवश प्राप्त हुआ ॥४०॥

दैत्यदानवगन्धर्वाः सिद्धविद्याध्रचारणाः ।
यक्षरक्षःपिशाचाश्च भूतप्रमथनायकाः ॥४१॥

दैत्य, दानव, गन्धर्वाः, सिद्ध, विद्याधर, चारणाः, यक्ष, रक्षः (राक्षस), पिशाचाः च, भूत, प्रमथ, नायकाः (विनायक) ॥४१॥*

विशुद्धसत्त्वधाम्न्यद्धा त्वयि शास्त्रशरीरिणि ।
नित्यं निबद्धवैरास्ते वयं चान्ये च तादृशाः ॥४२॥

विशुद्ध सत्त्व धाम्नि अद्धा त्वयि शास्त्र शरीरिणि नित्यं निबद्ध वैराः ते च वयं अन्ये च तादृशः ॥४२॥

विशुद्ध	विशुद्ध	ते नित्य	वे सदा
सत्त्व धाम्नि	सत्त्व स्वरूप	निबद्ध वैराः	बैर बाँधे हुए हैं
त्वयि अद्धा	आप साक्षात्	च वयं च	तथा हम लोग और
शास्त्र	शास्त्रमय	अन्ये	दूसरे भी
शरीरिणी	श्रीविग्रहसे	तादृशः	ऐसे ही हैं ॥४२॥

केचनोद्बद्धवैरेण भक्त्या केचन कामतः ।
न तथा सत्त्वसंरब्धा संनिकृष्टाः सुरादयः ॥४३॥

केचन उद्बद्ध वैरेण भक्त्या केचन कामतः न तथा सत्त्व संरब्धाः संनिकृष्टाः सुर आदयः ॥४३॥

केचन	कोई	तथा	इस प्रकार
उद्बद्ध वैरेण	दृढ़ शत्रुता बाँधकर	सन्निकृष्टाः	बहुत पास रहने वाले
केचन भक्त्या	कोई भक्तिसे और	सुर आदयः न	देवतादि नहीं कर
कामतः	(कोई) सकाम भाव से (आपका स्मरण करते हैं)		पाते ॥४३॥

---

*ये केवल अपार्थिव जातियोंके नाम हैं ।

इदमित्थमिति प्रायस्तव योगेश्वरेश्वर ।
न विदन्त्यपि योगेशा योगमायां कुतो वयम् ॥४४॥

इदं इत्थं इति प्रायः तव योगेश्वर ईश्वर न विदन्ति अपि योगेशा योगमायां कुतः वयम् ॥४४॥

योगेश्वर ईश्वर	योगेश्वरोंके भी स्वामी !	**योगेशा अपि**	योगेश्वर लोग भी
		न विदन्ति	नहीं जानते
तव योगमायाः	आपकी योगमायामें	**वयं कुतः**	फिर हम कैसे (जानेंगे) ॥४४॥
इदं इत्थं इति	'यह ऐसा ही है इस प्रकार		

तन्नः प्रसीद निरपेक्षविमृग्ययुष्मत्-
पादारविन्दधिषणान्यगृहान्धकूपात् ।
निष्क्रम्य विश्वशरणाङ्घ्र्युपलब्धवृत्तिः
शान्तो यथैक उत सर्वसखश्चरामि ॥४५॥

तत् नः प्रसीद निरपेक्ष विमृग्य युष्मत् पादारविन्द धिषणा अन्य गृह अन्धकूपात् निष्क्रम्य विश्वशरण अंघ्रि उपलब्ध वृत्तिः शान्तः यथा एक उत सर्वसखैः चरामि ॥४५॥

तत् नः प्रसीद	इसलिए मुझ पर कृपा कीजिए	**निष्क्रम्य**	निकल कर
		विश्वशरण	जगतके आश्रय
निरपेक्ष	(जिससे) निरपेक्ष लोगोंके	**अंघ्रि उपलब्ध**	आपके चरणोंमें एका
		वृत्तिः	वृत्ति पाकर
विमृग्य युष्मत्	अन्वेषणीय आपके	**यथा शान्तः**	जैसे शान्त
पादारविन्द	चरण-कमलोंमें	**एक**	अकेला
धिषणा	बुद्धि लगे	**उत सर्वसखैः**	अथवा सबके मित्र (महात्माओं)के साथ
अन्य	उससे पृथक		
गृह अन्धकूपात्	घर रूपी अन्धे कुएँसे	**चरामि**	विचरण करूं ॥४५॥

शाध्यस्मानीशितव्येश निष्पापान् कुरु नः प्रभो ।
पुमान् यच्छ्रद्धयाऽऽतिष्ठंश्चोदनाया विमुच्यते ॥४६॥

शाधि अस्मान् ईशितव्य ईश निष्पापान् कुरु नः प्रभो पुमान् यत् श्रद्धया आतिष्ठन् चोदनाया विमुच्यते ॥४६॥

प्रभो	प्रभो !
अस्मान् शाधि	हम लोगोंको आज्ञा दीजिए
ईश ईशितव्य	स्वामी हम आज्ञा पाने योग्य हैं
नः निष्पापान्	हमें निष्पाप
कुरु	बनाइये
यत् चोदनाया	(क्योंकि) जिनकी आज्ञा पर
श्रद्धया आतिष्ठन्	श्रद्धापूर्वक स्थित होकर
पुमान् विमुच्यते	पुरुष मुक्त हो जात है ॥४६॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

आसन् मरीचेः षट् पुत्रा ऊर्णायां प्रथमेऽन्तरे ।
देवाः कं जहसुर्वीक्ष्य सुतां यभितुमुद्यतम् ॥४७॥

आसन् मरीचेः षट् पुत्रा ऊर्णायां प्रथमे अन्तरे देवाः कं जहसुः वीक्ष्य सुतां यभितुं उद्यतम् ॥४७॥

प्रथमे अन्तरे	पहिले (स्वायम्भुव) मन्वन्तरमें
ऊर्णायां	ऊर्णा (नामक पत्नी) से
मरीचेः	मरीचि ऋषिके
षट् पुत्रा आसन्	छः पुत्र हुए थे ।
सुतां यभितुं	पुत्री (सरस्वती)से समागमको
उद्यतं वीक्ष्य	उद्यत देखकर
देवाः कं जहसुः	वे देवता ब्रह्मा पर हँसे ॥४७॥

तेनासुरीमगन् योनिमधुनावद्यकर्मणा ।
हिरण्यकशिपोर्जाता नीतास्ते योगमायया ॥४८॥

तेन आसुरीं अगन् योनिं अधुना अवद्य कर्मणा हिरण्यकशिपोः जाताः नीताः ते योगमायया ॥४८॥

तेन अवद्य	इस (हंस रूपी)	जाताः अधुना	उत्पन्न होकर इस समय
कर्मणा	अपराध कर्मसे	ते योगमायया	वे योगमाया द्वारा
आसुरीं योनिं	आसुरी योनिमें	नीताः	ले जाये गये ॥४८॥
अगन्	जाकर		
हिरण्यकशिपोः	हिरण्यकशिपुसे		

देवक्या उदरे जाता राजन् कंसविहिंसिताः ।
सा ताञ्छोचत्यात्मजान् स्वांस्त इमेऽध्यासतेऽन्तिके ॥४९॥

देवक्या उदरे जाता राजन् कंसविहिंसिताः सा तान् शोचति आत्मजान् स्वान् त इमे अध्यासते अन्तिके ॥४९॥

देवक्या उदरे	देवकीके पेटसे	सा शोचति	वह शोक कर रही है,
जाता	उत्पन्न हुए	राजन् त इमे	राजन् ! वही ये
कंसविहिंसिता	कंस द्वारा मारे गये	अन्तिके	तुम्हारे
तान् स्वान्	उन अपने	अध्यासते	समीप हैं ॥४९॥
आत्मजान्	पुत्रोंके लिए		

इत एतान् प्रणेष्यामो मातृशोकापनुत्तये ।
ततः शापाद् विनिर्मुक्ता लोकं यास्यन्ति विज्वराः ॥५०॥

इत एतान् प्रणेष्यामः मातृशोक अपनुत्तये ततः शापात् विनिर्मुक्ता लोकं यास्यन्ति विज्वराः ॥५०॥

मातृशोक	माता का शोक	विनिर्मुक्ता	छूट कर
अपनुत्तये	दूर करनेके लिए	विज्वराः	निश्चिन्त होकर
इत एतान्	यहांसे इनको	लोकं यास्यन्ति	अपने लोक चले जायेंगे ॥५०॥
प्रणेष्यामः	हम ले जायेंगे		
ततः शापात्	तब शापसे		

स्मरोद्गीथः परिष्वंगः पतंगः क्षुद्रभृद् घृणी ।
षाडमे मत्प्रसादेन पुनर्यास्यन्ति सद्गतिम् ॥५१॥

स्मरः उद्गीथः परिष्वङ्गः पतङ्गः क्षुद्रभृत् घृणी षट् इमे मत् प्रसादेन पुनः यास्यन्ति सद्गतिम् ॥५१॥

स्मरः उद्गीथः	स्मर, उद्गीथ	**मत् प्रसादेन**	मेरी कृपासे
परिष्वङ्गः	परिष्वंग	**इमे षट्**	ये छः
पतङ्गः	पतंग	**पुनः सद्गतिं**	फिर सद्गति
क्षुद्रभृत् घृणी	क्षुद्रभृत् और घृणी	**यास्यन्ति**	पावेंगे ॥५१॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

इत्युक्त्वा तान् समादाय इन्द्रसेनेन पूजितौ ।
पुनर्द्वारवतीमेत्य मातुः पुत्रानयच्छताम् ॥५२॥

इति उक्त्वा तान् समादाय इन्द्रसेनेन पूजितौ पुनः द्वारवतीं एत्य मातुः पुत्रान् अयच्छताम् ॥५२॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर	**पुनः द्वारवतीं**	फिर द्वारिका
तान् समादाय	उनको साथ लेकर	**एत्य**	आकर
इन्द्रसेनेन	इन्द्रसेन (बलि)	**मातुः पुत्रान्**	माताको उनके पुत्र
पूजितौ	द्वारा पूजित होकर	**अयच्छतां**	सौंप दिये ॥५२॥

तान् दृष्ट्वा बालकान् देवी पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ।
परिष्वज्याङ्कमारोप्य मूर्ध्न्यजिघ्रदभीक्ष्णशः ॥५३॥

तान् दृष्ट्वा बालकान् देवी पुत्रस्नेह स्नुत स्तनी परिष्वज्य अङ्कम् आरोप्य मूर्ध्नि अजिघ्रत् अभीक्ष्णशः ॥५३॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

देवी तान्	देवकीजीने उन
बालकान्	बालकोंको
दृष्ट्वा	देखकर
पुत्रस्नेह	पुत्रोंके स्नेहसे
स्नुतस्तनी	टपकते पयोधर
अङ्कम् आरोप्य	(उन्हें) गोदमें बैठा-कर
परिष्वज्य	आलिंगन करके
अभीक्ष्णशः	बार-बार
मूर्ध्नि अजिघ्रत्	(उनका) सिर सूंघने लगीं ॥५३॥

आपाययत् स्तनं प्रीता सुतस्पर्शपरिप्लुता ।
मोहिता मायया विष्णोर्यया सृष्टिः प्रवर्तते ॥५४॥

अपाययत् स्तनं प्रीता सुतस्पर्श परिप्लुता मोहिता मायया विष्णोः यया सृष्टिः प्रवर्तते ॥५४॥

यया सृष्टिः	जिससे सृष्टि
प्रवर्तते	चलती है
विष्णोः मायया	उस भगवान विष्णु की मायासे
मोहिता	मोहित होकर
सुतस्पर्श	पुत्रोंके स्पर्श सुखमें
परिप्लुता	निमग्न होकर
प्रीता	प्रसन्न होकर (उन्हें)
स्तनं अपाययत्	स्तनपान कराया ॥५४॥

पीत्वामृतं पयस्तस्याः पीतशेषं गदाभृतः ।
नारायणाङ्गसंस्पर्शप्रतिलब्धात्मदर्शनाः ॥५५॥

पीत्वा अमृतं पयः तस्याः पीतशेषं गदाभृतः नारायण अङ्ग संस्पर्श प्रतिलब्ध आत्मदर्शनाः ॥५५॥

गदाभृतः	गदाधर श्रीकृष्णके
पीतशेषं	पीनेसे बचे (प्रसाद रूप)
तस्याः अमृतं	उनके अमृतमय
पयः	दूधको
पीत्वा	पीकर (तथा)
नारायण अङ्ग	नारायण श्रीकृष्णके श्री विग्रहका
संस्पर्श	स्पर्श पानेसे (उन्हें)
आत्मदर्शनाः	आत्म साक्षात्कार
प्रतिलब्ध	प्राप्त हो गया ॥५५॥

ते नमस्कृत्य गोविन्दं देवकीं पितरं बलम् ।
मिषतां सर्वभूतानां ययुर्धाम दिवौकसाम् ॥५६॥

ते नमस्कृत्य गोविन्दं देवकीं पितरं बलं मिषतां सर्वभूतानां ययुः धाम दिवौकसाम् ॥५६॥

ते गोविन्दं	वे गोविन्द	**सर्वभूतानां**	सब प्राणियोंके
देवकीं पितरं	देवकी, पिता (वसु-	**मिषतां**	देखते हुए
	देव) एवं	**दिवौकसां**	देवताओंके
बलं नमस्कृत्य	बलरामजीको प्रणाम	**धाम ययुः**	लोक चले गये
	करके		॥५६॥

तं दृष्ट्वा देवकी देवी मृतागमननिर्गमम् ।
मेने सुविस्मिता मायां कृष्णस्य रचितां नृप ॥५७॥

तं दृष्ट्वा देवकी देवी मृत आगमन निर्गमं मेने सुविस्मिता मायां कृष्णस्य रचितां नृप ॥५७॥

नृप	राजन् !	**सुविस्मिता**	अत्यन्त चकिता
तं मृत आगमन	उन मरे (पुत्रों)का	**देवकी देवी**	देवी देवकीने
	आ जाना	**कृष्णस्य**	श्रीकृष्ण द्वारा
निर्गमं दृष्ट्वा	(फिर) चले जाना	**रचितां**	उत्पन्न की
	देखकर	**मायां मेने**	माया माना ॥५७॥

एवंविधान्यद्भुतानि कृष्णस्य परमात्मनः ।
वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य सन्त्यनन्तानि भारत ॥५८॥

एवं विधानि अद्भुतानि कृष्णस्य परमात्मनः वीर्याणि अनन्त वीर्यस्य सन्ति अनन्तनि भारत ॥५८॥

भारत	परीक्षित !	अद्भुतानि	अद्भुत
अनन्त वीर्यस्य	अनन्त पराक्रम	अनन्तानि	अनन्त
परमात्मनः	परमात्मा	वीर्याणि	पराक्रम
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके	सन्ति	हैं ॥५८॥
एवं विधानि	इस प्रकारके		

॥ सूत उवाच ॥

य इदमनुशृणोति श्रावयेद् वा मुरारे-
श्चरितममृतकीर्तेर्वर्णितं व्यासपुत्रैः ।
जगदघभिदलं तद्भक्तसत्कर्णपूरं
भगवति कृतचित्तो याति तत्क्षेमधाम ॥५९॥

यः इदं अनुशृणोति श्रावयेत् वा मुरारेः चरितं अमृतकीर्तेः वर्णितं व्यासपुत्रैः जगत् अघ भित अलं तत् भक्त सत्कर्णपूरं भगवति कृतचित्तः याति तत् क्षेमधाम ॥५९॥

यः इदं	जो इस	मुरारेः चरितं	श्रीमुरारिके चरित को
व्यासपुत्रैः	व्यासजीके पुत्र शुकदेवजी द्वारा	अनुशृणोति	बार-बार सुनाता है
वर्णितं	वर्णन किये गये	वा श्रावयेत्	अथवा सुनाता है
जगत् अघ	संसारके पाप	भगवति	भगवानमें
भित् अलं	नाशमें समर्थ	कृतचित्तः	चित्त लगनेसे
तत् स्मत् भक्त	उनके श्रेष्ठ भक्तोंके	तत् क्षेमधाम	उनके कल्याणमय धामको
सत्कर्णपूर	कानोंको भरने वाले	याति	जाता है ॥५९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे मृताग्रजानयनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

॥ राजोवाच ॥

ब्रह्मन् वेदितुमिच्छामः स्वसारं रामकृष्णयोः ।
यथोपयेमे विजयो या ममासीत् पितामही ॥ १ ॥

ब्रह्मन् वेदितुं इच्छामः स्वसारं रामकृष्णयोः यथा उपयेमे विजयः या मम आसीत् पितामही ॥१॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**स्वसारं यथा**	बहिनको जैसे
या मम	जो मेरी	**विजयः उपयेमे**	अर्जुनने विवाहा
पितामही	दादी	**वेदितुं इच्छामः**	यह (मैं) जानना
आसीत्	थीं (उन)		चाहता हूँ ॥१॥
रामकृष्णयोः	बलराम-श्रीकृष्णकी		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

अर्जुनस्तीर्थयात्रायां पर्यटन्नवनीं प्रभुः ।
गतः प्रभासमशृणोन्मातुलेयीं स आत्मनः ॥ २ ॥

अर्जुनः तीर्थयात्रायां पर्यटन् अवनीं प्रभुः गतः प्रभासं अशृणोत् मातुलेयीं स आत्मनः ॥२॥

प्रभुः अर्जुनः	समर्थ अर्जुन	**स आत्मनः**	उन्होंने अपनी
तीर्थयात्रायां	तीर्थयात्रामें	**मातुलेयीं**	मामाकी पुत्रीके
अवनीं पर्यटन्	पृथ्वी पर घूमते हुए	**अशृणोत्**	विषयमें सुना ॥२॥
प्रभासं गतः	प्रभास पहुँचने पर		

दुर्योधनाय रामस्तां दास्यतीति न चापरे ।
तल्लिप्सुः स यतिर्भूत्वा त्रिदण्डी द्वारकामगात् ॥ ३ ॥

दुर्योधनाय रामः तां दास्यति इति न च अपरे तत् लिप्सुः स यतिः भूत्वा त्रिदण्डी द्वारिकां अगात् ॥३॥

रामः तां	बलरामजी उसे	**तत् लिप्सुः**	उसे पानेके लोभसे
दुर्योधनाय	दुर्योधनको	**त्रिदण्डी यतिः**	त्रिदण्डी संन्यासी
दास्यति	देंगे	**भूत्वा**	होकर*
अपरे न च	दूसरेको नहीं ही (देगें)	**स द्वारिकां**	वे द्वारिका
		अगात्	गये ॥३॥
इति	ऐसा (सुनकर)		

तत्र वै वार्षिकान् मासानवात्सीत् स्वार्थसाधकः ।
पौरैः सभाजितोऽभीक्ष्णं रामेणाजानता च सः ॥ ४ ॥

तत्र वै वार्षिकान् मासान् अवात्सीत् स्वार्थ साधकः पौरैः सभाजितः अभीक्ष्णं रामेण अजानता च सः ॥४॥

तत्र वै	वहाँ निश्चित रूपसे	**अजानता**	अनजान व्यक्तियों
स्वार्थ साधकः	अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिए	**पौरै, च**	नागरिकों तथा
		रामेण सः	बलरामजी द्वारा वे
वार्षिकान्	वर्षके	**अभीक्ष्णं**	बार-बार
मासान्	चार महीने	**सभाजितः**	सत्कृत हुए ॥४॥
अवात्सीत्	बसे रहे		

एकदा गृहमानीय आतिथ्येन निमन्त्र्य तम् ।
श्रद्धयोपहृतं भैक्ष्यं बलेन बुभुजे किल ॥ ५ ॥

---

*त्रिदण्डी संन्यासी क्योंकि शिखा-यज्ञोपवीत रखते हैं, अर्जुन इनके त्यागका पाप किये बिना सन्यासी बन सके ।

एकदा गृहं आनीय आतिथ्येन निमन्त्र्य तं श्रद्धया उपहृतं भैक्ष्यं बलेन बुभुजे किल ॥५॥

एकदा	एक बार	**गृहं आनीय**	भवनमें लाकर
किल बलेन	अहो बलरामजी द्वारा	**श्रद्धया उपहृतं**	श्रद्धापूर्वक अर्पित करके
आतिथ्येन	आतिथ्यके लिए	**भैक्ष्यं बुभुजे**	भोजनीय पदार्थ भोजन कराये ॥५॥
तं निमन्त्र्य	उनको निमन्त्रित करके		

सोऽपश्यत्तत्र महतीं कन्यां वीरमनोहराम् ।
प्रीत्युत्फुल्लेक्षणस्तयां भावक्षुब्धं मनो दधे ॥ ६ ॥

सः अपश्यत् तत्र महतीं कन्यां वीर मनोहरां प्रीति उत्फुल्ल ईक्षणः तस्यां भावक्षुब्धं मनः दधे ॥६॥

सः तत्र	उन्होंने वहाँ	**प्रीति उत्फुल्ल**	प्रसन्नतासे प्रफुल्ल
वीर मनोहरां	वीरोंका मन हरण करने-वाली	**ईक्षणः**	नेत्र
		भावक्षुब्धं	भावसे क्षुब्ध होकर
महतीं कन्यां	बड़ी (विवाह योग्य) कन्या	**तस्यां मनः दधे**	उसे पानेका संकल्प किया ॥६॥
अपश्यत्	देखा		

सापि तं चकमे वीक्ष्य नारीणां हृदयंगमम् ।
हसन्ती व्रीडितापाङ्गी तन्न्यस्तहृदयेक्षणा ॥ ७ ॥

सा अपि तं चकमे वीक्ष्य नारीणां हृदयङ्गमं हसन्ती व्रीडिता अपाङ्गी तत् न्यस्त हृदय ईक्षणाः ॥७॥

सा अपि	वह भी	**वीक्ष्य हसन्ती**	देखकर हंसती हुई
नारीणां	स्त्रियोंके	**व्रीडिता**	लज्जासे
हृदयङ्गमं	हृदयस्पर्शीको	**अपाङ्गी**	कटाक्ष पूर्वक

तत् न्यस्त ईक्षणा	उनमें दृष्टि लगाये	चकमे	चाहने लगी ॥७॥
हृदय तं	हृदयसे उनको		

तां परं समनुध्यायन्नन्तरं प्रेप्सुरर्जुनः ।
न लेभे शं भ्रमच्चित्तः कामेनातिबलीयसा ॥ ८ ॥

तां परं सम अनुध्यायन् अन्तरं प्रेप्सुः अर्जुनः न लेभे शं भ्रमत् चित्तः कामेन अतिबलीयसा ॥८॥

अतिबलीयसा	अत्यन्त बलवान	सम अनुध्यायन्	बराबर (उसीका) चिन्तन करते हुए
कामेन	कामके द्वारा	अन्तरं प्रेप्सुः	अवसर पानेकी इच्छासे
भ्रमत् चित्तः	क्षुब्ध चित्त	शं न लेभे	शान्ति नहीं पा सके ॥८॥
अर्जुनः तां परं	अर्जुन उसीके परायण होकर		

महत्यां देवयात्रायां रथस्थां दुर्गनिर्गताम् ।
जहारानुमतः पित्रोः कृष्णस्य च महारथः ॥ ९ ॥

महत्यां देवयात्रायां रथस्थां दुर्गनिर्गतां जहार अनुमतः पित्रोः कृष्णस्य च महारथः ॥९॥

महत्यां	बड़ी भारी	पित्रोः च	पिता तथा
देवयात्रायां	देवयात्राके समय	कृष्णस्य	श्रीकृष्णकी
दुर्गनिर्गतां	दुर्गसे निकली	अनुमतः	अनुमतिसे
रथस्थां	रथ पर बैठी (सुभद्रा)का	महारथः जहार	महारथी अर्जुनने हरण कर लिया ॥९॥

रथस्थो धनुरादाय शूरांश्चारुन्धतो भटान् ।
विद्राव्य क्रोशतां स्वानां स्वभागं मृगराडिव ॥१०॥

रथस्थः धनुः आदाय शूरान् च अरुन्धतः भटान् विद्राव्य क्रोशतां स्वानां स्वभागं मृगराट् इव ॥१०॥

रथस्थः	रथ पर चढ़कर	विद्राव्य	भगाकर
धनुः आदाय	धनुष लेकर	मृगराट् इव	सिंहके समान
अरुन्धतः च	रोकते हुए तथा	स्वभागं	अपना भाग (ले गये) ॥१०॥
स्वानां शूरान्	अपने वीरोंको		
क्रोशतां भटान्	पुकारते सैनिकोंको		

तच्छ्रुत्वा क्षुभितो रामः पर्वणीव महार्णवः ।
गृहीतपादः कृष्णेन सुहृद्भिश्चान्वशाम्यत ॥११॥

तत् श्रुत्वा क्षुभितः रामः पर्वणि इव महार्णवः गृहीतपादः कृष्णेन सुहृत् भिः च अनु अशाम्यत ॥११॥

तत् श्रुत्वा	इसे सुनकर	कृष्णेन च	श्रीकृष्ण तथा
पर्वणि महार्णव	पर्वके समय महा-सागरके	सुहृत् भिः	सुहृदों द्वारा
इव रामः	समान बलरामजी	गृहीतपादः	चरण पकड़ लेने पर
क्षुभितः	क्षुब्ध हो गये; किन्तु	अनु अशाम्यत	पीछे शान्त हो गये ॥११॥

प्राहिणोत् पारिबर्हाणि वरवध्वोर्मुदा बलः ।
महाधनोपस्करेभरथाश्वनरयोषितः ॥१२॥

प्राहिणोत् पारिबर्हाणि वरवध्वोः मुदा बलः महाधन उपस्कर इभ रथ अश्व नर योषितः ॥१२॥

मुदा बलः	(फिर) आनन्दपूर्वक बलरामजीने	इभ रथ अश्व	हाथी, रथ, घोड़े,
		नर योषितः	दास-दासियां
वरवध्वोः	वर-वधूके लिए	पारिबर्हाणि	दहेजमें
महाधन	बहुमूल्य	प्राहिणोत्	भेजा ॥१२॥
उपस्कर	सामग्री तथा		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

कृष्णस्यासीद् द्विजश्रेष्ठः श्रुतदेव इति श्रुतः ।
कृष्णैकभक्त्या पूर्णार्थः शान्तः कविरलम्पटः ॥१३॥

कृष्णस्य आसीत् द्विजश्रेष्ठः श्रुतदेव इति श्रुतः कृष्ण एकभक्त्या पूर्ण अर्थः शान्तः कविः अलम्पटः ॥१३॥

श्रुतदेव	श्रुतदेव	**पूर्ण अर्थः**	पूर्ण मनोरथ
इति श्रुतः	इस नामसे विख्यात	**शान्तः कविः**	शान्त, बुद्धिमान
द्विजश्रेष्ठः	ब्राह्मण प्रवर	**अलम्पटः**	सदाचारी
कृष्ण	श्रीकृष्णकी	**कृष्णस्य आसीत्**	श्रीकृष्णके ही थे
एकभक्त्या	अनन्य भक्तिसे		॥१३॥

स उवास विदेहेषु मिथिलायां गृहाश्रमी ।
अनीहयाऽऽगताहार्यनिर्वर्तितनिजक्रियः ॥१४॥

स उवास विदेहेषु मिथिलायां गृह आश्रमी अनीहया आगत आहार्य निर्वर्तित निजक्रियः ॥१४॥

अनीहया	बिना इच्छा किये	**विदेहेषु**	राजा विदेहके राज्य में
आगत आहार्य	(स्वतः) आयी भोजन सामग्रीसे	**मिथिलायां**	मिथिलामें
निजक्रियः	अपनी क्रियाएँ	**उवास**	निवास करते थे
निर्वर्तित	चलाते हुए		॥१४॥
स गृह आश्रमी	वे गृहस्थ		

---

*यह उवाच यहाँ क्यों आया कहना कठिन है। क्योंकि अभी तक शुकदेवजी ही बोल रहे थे। बीचमें कोई दूसरा नहीं बोला। ऐसा लगता है कि प्रसंग दूसरा होनेसे यहां अध्याय भी बदलता होगा।

यात्रामात्रं त्वहरहर्दैवादुपनमत्युत ।
नाधिकं तावता तुष्टः क्रियाश्चक्रे यथोचिताः ॥१५॥

यात्रामात्रं तु अहः अहः दैवात् उपनमति उत न अधिकं तावता तुष्टः क्रियाः चक्रे यथोचिताः ॥१५॥

दैवात्	प्रारब्धवश	उत तावता तुष्टः	फिर उतनेसे ही संतोष करके
अहः अहः	प्रतिदिन	यथोचिताः	यथोचित
यात्रामात्रं तु	जीवन-निर्वाह भर को ही	क्रियाः चक्रे	(दैनिक) क्रिया करने लगते थे ॥१५॥
न अधिकं	अधिक नहीं		
उपनमति	(सामग्री) प्राप्त हो जानेसे		

तथा तद्राष्ट्रपालोऽङ्ग बहुलाश्व इति श्रुतः ।
मैथिलो निरहम्मान उभावप्यच्युतप्रियौ ॥१६॥

तथा तत् राष्ट्रपाल अङ्ग बहुलाश्व इति श्रुतः मैथिलः निरहम्मान उभाः अपि अच्युत प्रियौ ॥१६॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !	निरहम्मान	निरभिमान
तथा तत्	ऐसे ही उस	मैथिलः	मिथिला नरेश थे
राष्ट्रपाल	राज्यके पालक	उभाः अपि	दोनों ही
बहुलाश्व	बहुलाश्व	अच्युत प्रियौ	अच्युतको प्रिय थे ॥१६॥
इति श्रुतः	इस नामसे विख्यात		

तयोः प्रसन्नो भगवान् दारुकेणाहृतं रथम् ।
आरुह्य साकं मुनिभिर्विदेहान् प्रययौ प्रभुः ॥१७॥

तयोः प्रसन्नः भगवान् दारुकेण आहृतं रथं आरुह्य साकं मुनिभिः विदेहान् प्रययौ प्रभुः ॥१७॥

तयोः प्रसन्नः	उन दोनों पर प्रसन्न होकर
प्रभुः भगवान्	(उनके) स्वामी भगवानने
दारुकेण	दारुकके द्वारा
आहृतं रथं	समीप लाये रथ पर
मुनिभिः साकं	मुनियोंके साथ
आरुह्य	चढ़कर
विदेहान् प्रययौ	विदेहको प्रस्थान किया ॥१७॥

नारदो वामदेवोऽत्रिः कृष्णो रामोऽसितोऽरुणिः ।
अहं बृहस्पतिः कण्वो मैत्रेयश्च्यवनादयः ॥१८॥

नारदः वामदेवः अत्रिः कृष्णः रामः असितः आरुणिः अहं बृहस्पतिः कण्वः मैत्रेयः च्यवन आदयः ॥१८॥

नारदः वामदेवः	देवर्षि नारद, वामदेव
अत्रिः कृष्णः	अत्रि, कृष्णद्वैपायन व्यास
रामः असितः	परशुराम, असित
आरुणिः अहं	आरुणि, मैं शुकदेव
बृहस्पतिः कण्वः	बृहस्पति, कण्व
मैत्रेयः च्यवन	मैत्रेय, च्यवन,
आदयः	आदि ॥१८॥

तत्र तत्र तमायान्तं पौरा जानपदा नृप ।
उपतस्थुः सार्घ्यहस्ता ग्रहैः सूर्यमिवोदितम् ॥१९॥

तत्र तत्र तं आयान्तं पौरा जानपदा नृप उपतस्थुः स अर्घ्यहस्ता ग्रहैः सूर्यं इव उदितम् ॥१९॥

नृप	राजन् !
ग्रहैः उदितं	ग्रहोंके साथ उदय हुए
सूर्यं इव	सूर्यके समान
तं आयान्तं	उनके आने पर
तत्र तत्र पौरा	वहां-वहां पुरवासी तथा
जानपदा	जनदप निवासी
स अर्घ्यहस्ता	हाथोंमें अर्घ्य लेकर
उपतस्थुः	समीप आते थे ॥१९॥

आनर्तधन्वकुरुजाङ्गलकङ्कमत्स्य-
पाञ्चालकुन्तिमधुकेकयकोसलार्णाः ।
अन्ये च तन्मुखसरोजमुदारहास-
स्निग्धेक्षणं नृप पपुर्दृशिभिर्नृनार्यः ॥२०॥

आनर्त धन्व कुरु जाङ्गल कङ्क मत्स्य पाञ्चाल कुन्ति मधु केकय कोसल अर्णाः अन्ये च तत् मुख सरोजं उदार हास स्निग्ध ईक्षणं नृप पपुः दृशिभिः नृ नार्यः ॥२०॥

नृप	राजन् !	च अन्ये	तथा दूसरे भी
आनर्त धन्व	आनर्त, मरुधन्व	नृ नार्यः	पुरुष-स्त्री
कुरु जाङ्गल	कुरु, जाङ्गल	उदार हास	उन्मुक्त हास्य तथा
कङ्क मत्स्य	कङ्क, मत्स्य	स्निग्ध ईक्षणं	प्रेम भरी दृष्टि वाले
पाञ्चाल कुन्ति	पाञ्चाल, कुन्ति	तत् मुख सरोजं	उनके मुख-कमलको
मधु केकय	मधु, केकय	दृशिभिः पपुः	अपने नेत्रोंसे पीते
कोसल अर्णाः	कोसल तथा अर्ण निवासी		थे ॥२०॥

तेभ्यः स्ववीक्षणविनष्टतमिस्रदृग्भ्यः
क्षेमं त्रिलोकगुरुरर्थदृशं च यच्छन् ।
शृण्वन् दिगन्तधवलं स्वयशोऽशुभघ्नं
गीतं सुरैर्नृभिरगाच्छनकैर्विदेहान् ॥२१॥

तेभ्यः स्ववीक्षण विनष्ट तमिस्र दृक्भ्यः क्षेमं त्रिलोक गुरुः अर्थदृशं च यच्छन् शृण्वन् दिगन्त धवलं स्वयशः अशुभघ्नं गीतं सुरैः नृभिः अगात् शनकैः विदेहान् ॥२१॥

स्ववीक्षण	अपने दर्शनसे	त्रिलोक गुरुः	वे त्रिभुवन गुरु (श्रीकृष्ण)
विनष्ट तमिस्र	अज्ञान नष्ट हुए	क्षेमं अर्थदृशं	कल्याणमयी परमार्थ
दृक्भ्यः तेभ्यः	दृष्टि वाले उन लोगों को		दृष्टि

च यच्छन्	भी देते हुए	गीतं स्वयशः	गाये जाते अपने सुयशको
दिगन्त धवलं	सम्पूर्ण दिशाओंको उज्ज्वल करने वाले	शृण्वन्	सुनते हुए
अशुभघ्नं	अशुभ नाशक	शनकैः विदेहान्	धीरे-धीरे विदेह नगर
सुरैः नृभिः	देवताओं तथा मनुष्यों द्वारा	अगात्	पहुँचे ॥२१॥

तेऽच्युतं प्राप्तमाकर्ण्य पौरा जानपदा नृप ।
अभीयुर्मुदितास्तस्मै गृहीतार्हणपाणयः ॥२२॥

ते अच्युतं प्राप्तं आकर्ण्य पौरा जानपदा नृप अभीयुः मुदिताः तस्मै गृहीत अर्हण पाणयः ॥२२॥

नृप	राजन् !	मुदिताः तस्मै	प्रसन्न होकर उनके लिए
ते पौरा	उन नगर एवं	पाणयः अर्हण	हाथोंमें पूजा-द्रव्य
जानपदा	जनपदवासी लोगोंने	गृहीत	लेकर
अच्युतं प्राप्तं	अच्युतको आया	अभीयुः	अगवानी करने आये ॥२२॥
आकर्ण्य	सुनकर		

दृष्ट्वा त उत्तमश्लोकं प्रीत्युत्फुल्लाननाशयाः ।
कैर्धृताञ्जलिभिर्नेमुः श्रुतपूर्वांस्तथा मुनीन् ॥२३॥

दृष्ट्वा त उत्तमश्लोकं प्रीति उत्फुल्ल आनन आशयाः कैः धृत अञ्जलिभिः नेमुः श्रुतपूर्वान् तथा मुनीन् ॥२३॥

उत्तमश्लोकं	पवित्र कीर्ति भगवान का	कैः धृत	सिर पर
दृष्ट्वा त	दर्शन करके उनके	अञ्जलिभिः	हाथ जोड़कर लगाकर
आनन आशयाः	मुख तथा हृदय	नेमुः	नमस्कार किया
प्रीति उत्फुल्ल	प्रेमसे खिल गये		

तथा श्रुतपूर्वान्	तथा जिनके विषयमें पहिले सुना था	**मुनीन्**	उन मुनियोंको (भी प्रणाम किया) ॥२३॥

स्वानुग्रहाय सम्प्राप्तं मन्वानौ तं जगद्गुरुम् ।
मैथिलः श्रुतदेवश्च पादयोः पेततुः प्रभो ॥२४॥

स्व अनुग्रहाय सम्प्राप्तं मन्वानौ तं जगद्गुरुं मैथिलः श्रुतदेवः च पादयोः पेततुः प्रभोः ॥२४॥

तं जगद्गुरुं	उन जगद्गुरु	**मैथिलः**	मिथिला नरेश
प्रभोः स्व	प्रभुको अपने पर	**श्रुतदेवः च**	श्रुतदेव भी
अनुग्रहाय	कृपा करनेके लिए	**पादयोः पेततुः**	(एक साथ उनके) चरणों पर गिरे ॥२४॥
सम्प्राप्तं	आया		
मन्वानौ	मानते हुए		

न्यमन्त्रयेतां दाशार्हमातिथ्येन सह द्विजैः ।
मैथिलः श्रुतदेवश्च युगपत् संहताञ्जली ॥२५॥

न्यमन्त्रयेतां दाशार्हं आतिथ्येन सह द्विजैः मैथिलः श्रुतदेवः च युगपत् संहत अञ्जली ॥२५॥

दाशार्हं	यादव श्रीकृष्णको	**आतिथ्येन**	आतिथ्यके लिए
सह द्विजैः	ब्राह्मणोंके साथ	**युगपत्**	एक साथ
मैथिलः	मिथिला नरेश	**न्यमन्त्रयेतां**	निमन्त्रण दिया ॥२५॥
च श्रुतदेवः	तथा श्रुतदेवने		
संहत अञ्जली	हाथ जोड़कर		

भगवांस्तदभिप्रेत्य द्वयोः प्रियचिकीर्षया ।
उभयोराविशद् गेहमुभाभ्यां तदलक्षितः ॥२६॥

भगवान् तत् अभिप्रेत्य द्वयोः प्रिय चिकीर्षया उभयोः आविशत् गेहं उभाभ्यां तत् अलक्षितः ॥२६॥

भगवान्	भगवानने	**उभयोः गेहं**	दोनोंके घरोंमें
तत् अभिप्रेत्य	उनका अभिप्राय जानकर	**आविशत्**	प्रवेश किया
		तत् उभाभ्यां	यह दोनों द्वारा
द्वयोः प्रिय	दोनोंका प्रिय	**अलक्षितः**	अज्ञात रहा ॥२६॥
चिकीर्षया	करनेकी इच्छासे		

विशेष—भगवानने अपना, सब ऋषियोंका तथा रथ, अश्वादिके भी दो रूप कर दिये ।

श्रोतुमप्यसतां दूरान् जनकः स्वगृहागतान् ।
आनीतेष्वासनाग्र्येषु सुखासीनान् महामनाः ॥२७॥

श्रोतुं अपि असतां दूरान् जनकः स्वगृह आगतान् आनीतेषु आसन अग्र्येषु सुख आसीनान् महामनाः ॥२७॥

असतां	दुष्टोंको (जिनका नाम)	**आनीतेषु**	लाये हुए
		आसन अग्र्येषु	श्रेष्ट आसनों पर
श्रोतुं अपि	सुनना भी	**सुख आसीनान्**	सुख-पूर्वक बैठे हुओं का
दूरान्	दूर (दुर्लभ) है (उन)	**महामनाः**	महामनस्वी
स्वगृह आगतान	अपने भवन आये	**जनकः**	जनकने ॥२७॥

प्रवृद्धभक्त्या उद्धर्षहृदयास्राविलेक्षणः ।
नत्वा तदङ्घ्रीन् प्रक्षाल्य तदपो लोकपावनीः ॥२८॥

प्रवृद्धभक्त्या उद्हर्ष हृदय अस्र आविल ईक्षणः नत्वा तद्अङ्घ्रिन् प्रक्षाल्य तत् अपः लोकपावनीः ॥२८॥

प्रवृद्धभक्त्या	बढ़ी हुई भक्ति एवं
उद्हर्ष	हर्षोद्रेक युक्त
हृदय	हृदय होनेसे
अस्त्र आविल	आंसूसे धुंधले पड़े
ईक्षणः	नेत्र
नत्वा	नमस्कार करके
तत् अङ्घ्रिन्	उनके चरण
प्रक्षाल्य	धोकर
तत् लोकपावनी	उस त्रिलोकीको पवित्र करने वाले
अपः	जलको ॥२८॥

सकुटुम्बो वहन् मूर्ध्ना पूजयांचक्र ईश्वरान् ।
गन्धमाल्याम्बराकल्पधूपदीपार्घ्यगोवृषैः ॥२९॥

सकुटुम्बः वहन् मूर्ध्ना पूजयान् चक्र ईश्वरान् गन्ध माल्य अम्बर आकल्प धूप दीप अर्घ्य गोवृषैः ॥२९॥

सकुटुम्बः	कुटुम्बके साथ
मूर्ध्ना वहन्	सिर पर चढ़ाया, फिर
गन्ध माल्य	चन्दन, माला
अम्बर आकल्प	वस्त्र आभरण
धूप दीप	धूप-दीप
अर्घ्य गोवृषैः	अर्घ्य, गौ तथा सांड से
ईश्वरान्	उस समर्थोंका
पूजयान् चक्र	पूजन किया ॥२९॥

वाचा मधुरया प्रीणन्निदमाहान्नतर्पितान् ।
पादावङ्कगतौ विष्णोः संस्पृशञ्छनकैर्मुदा ॥३०॥

वाचा मधुरया प्रीणन् इदं आह अन्न तर्पितान् पादाः अङ्क गतौ विष्णोः संस्पृशन् शनकैः मुदा ॥३०॥

अन्न तर्पितान्	भोजनसे तृप्त किये हुए
विष्णोः	श्रीकृष्णको
अङ्क गतौ पादाः	गोदमें लिए चरणों को
शनकैः संस्पृशन्	धीरे-धीरे स्पर्श करते हुए
मुदः	आनन्दपूर्वक
मधुरया वाचा	मधुरवाणीसे
प्रीणन्	प्रसन्न करते हुए
इदं आह	यह बोले ॥३०॥

॥ मैथिलोवाच ॥*

भवान् हि सर्वभूतानामात्मा साक्षी स्वदृग् विभो ।
अथ नस्त्वत्पदाम्भोजं स्मरतां दर्शनं गतः ॥३१॥

भवान् हि सर्वभूतानां आत्मा साक्षी स्वदृक् विभो अथ नः त्वत् पदाम्भोजं स्मरतां दर्शनं गतः ॥३१॥

विभो	प्रभो !	**पदाम्भोजं**	चरण-कमलोंका
हि भवान्	क्योंकि आप	**स्मरतां नः**	स्मरण करने वाले हमें
सर्वभूतानां	समस्त प्राणियोंके	**दर्शनं गतः**	(आपने) दर्शन दिया है ॥३१॥
आत्मा साक्षी	आत्मा, साक्षी एवं		
स्वदृक्	स्वयं प्रकाश है,		
अथ त्वत्	अतः आपके		

स्ववचस्तदृतं कर्तुमस्मद्दृग्गोचरो भवान् ।
यदात्थैकान्तभक्तान् मे नानन्तः श्रीरजः प्रियः ॥३२॥

स्ववचः तत् ऋतं कर्तुं अस्मत् दृक् गोचरः भवान् यत् आत्थ एकान्त भक्तान् मे न अनन्तः श्रीः अजः प्रियः ॥३२॥

यत् आत्थ	जो (आपने) कहा है कि—	**तत् स्ववचः ऋतं कर्तुं**	उस अपनी बातको सत्य करनेके लिए
एकान्त भक्तान्	अनन्य भक्तोंसे	**भवान् अस्मत्**	आप मेरी
मे अनन्तः	(अधिक) मुझे अनन्त	**दृक् गोचरः**	आंखोंके सामने आये हैं ॥३२॥
श्रीः अजः	लक्ष्मी या ब्रह्मा		
प्रियः न	प्रिय नहीं है,		

---

*अन्य प्रतियोंमें यहां 'राजोवाच' है ।

को नु त्वच्चरणाम्भोजमेवंविद् विसृजेत् पुमान् ।
निष्किंचनानां शान्तानां मुनीनां यस्त्वमात्मदः ॥३३॥

कः नु त्वत् चरण अम्भोजं एवं वित् विसृजेत् पुमान् निष्किञ्चनानां शान्तानां मुनीनां यः त्वं आत्मदः ॥३३॥

यः त्वं	जो आप	एवं वित्	ऐसा जानने वाला
निष्किञ्चनानां	अकिञ्चन	नु कः पुमान्	भला कौन पुरुष
शान्तानां	शान्त	त्वत् चरण	आपके चरण-
मुनीनां	मुनियोंको	अम्भोजं	कमलको
आत्मदः	अपनेको भी दे देने वाले हैं	विसृजेत्	त्यागेगा ॥३३॥

योऽवतीर्य यदोर्वंशे नृणां संसरतामिह ।
यशो वितेने तच्छान्त्यै त्रैलोक्यवृजिनापहम् ॥३४॥

यः अवतीर्य यदोः वंशे नृणां संसरतां इह यशः वितेने तत् शान्त्यै त्रैलोक्य वृजिन अपहम् ॥३४॥

इह संसरतां	इस संसारमें जन्म- मृत्यु चक्रमें भटकते	अवतीर्य	अवतार लेकर
		यः त्रैलोक्य	जिन्होंने त्रिलोकीके
नृणां	मनुष्योंकी	वृजिन अपहं	पापहारी
तत् शान्त्यै	उस (भटकन)की समाप्तिके लिए	यशः वितेने	अपने सुयशका विस्तार किया ॥३४॥
यदोः वंशे	यदुवंशमें		

नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।
नारायणाय ऋषये सुशान्तं तप ईयुषे ॥३५॥

नमः तुभ्यं भगवते कृष्णाय अकुण्ठ मेधसे नारायणाय ऋषये सुशान्तं तप ईयुषे ॥३५॥

अकुण्ठ मेधसे	अप्रतिहत बुद्धि	**तुभ्यं भगवते**	आप भगवान
सुशान्तं ईयुषे	अत्यन्त शान्त होकर तप करने वाले	**कृष्णाय नमः**	श्रीकृष्णको नमस्कार ॥३५॥
ऋषये	ऋषि		
नारायणाय	नारायण रूप		

दिनानि कतिचिद् भूमन् गृहान् नो निवस द्विजैः ।
समेतः पादरजसा पुनीहीदं निमेः कुलम् ॥३६॥

दिनानि कति चित् भूमन् गृहान् नः निवस द्विजैः समेतः पादरजसा पुनीहि इदं निमेः कुलम् ॥३६॥

भूमन्	भूमन् !	**निवस**	निवास कीजिए,
द्विजैः समेतः	आये ब्राह्मणोंके साथ	**इदं निमेः कुलं**	इस निमिकुलको
नः गृहान्	हमारे घरमें	**पादरजसा**	अपनी चरण-रजसे
कति चित्	कुछ दिनों तक	**पुनीहि**	पवित्र कीजिए ॥३६॥
दिनानि	दिनों तक		

॥ श्रीशुक उवाच* ॥

इत्युपामन्त्रितो राज्ञा भगवाँल्लोकभावनः ।
उवास कुर्वन् कल्याणं मिथिलानरयोषिताम् ॥३७॥

इति उपामन्त्रितः राज्ञा भगवान् लोक भावनः उवास कुर्वन् कल्याणं मिथिला नर योषिताम् ॥३७॥

इति राज्ञा	इस प्रकार राजा बहुलाश्व द्वारा	**उपामन्त्रितः**	उपामन्त्रण देने पर
		लोक भावनः	लोक पालक

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भगवान्	भगवान	**कल्याणं कुर्वन्**	कल्याण करते हुए
मिथिला	मिथिलाके	**उवास**	बसे रहे ॥३७॥
नर योषितां	पुरुष-स्त्रियोंका		

श्रुतदेवोऽच्युतं प्राप्तं स्वगृहाञ्जनको यथा ।
नत्वा मुनीन् सुसंहृष्टो धुन्वन् वासो ननर्त ह ॥३८॥

श्रुतदेवः अच्युतं प्राप्तं स्वगृहान् जनकः यथा नत्वा मुनीन् सुसंहृष्टः धुन्वन् वासः ननर्त ह ॥३८॥

जनकः यथा	राजा जनकके समान ही	**मुनीन् नत्वा**	मुनियोंको प्रणाम करके
श्रुतदेवः	श्रुतदेव भी	**धुन्वन् वासः**	वस्त्र उड़ाते हुए
स्वगृहान्	अपने घरमें	**ननर्त ह**	नाचने ही लगा
अच्युतं प्राप्तं	अच्युतके आने पर		॥३८॥

तृणपीठबृसीष्वेतानानीतेषूपवेश्य सः ।
स्वागतेनाभिनन्द्याङ्घ्रीन् सभार्योऽवनिजे मुदा ॥३९॥

तृण पीठ बृसीषु एतान् आनीतेषु उपवेश्य सः स्वागतेन अभिनन्द्य अंघ्रीन् सभार्यः अवनिजे मुदा ॥३९॥

आनीतेषु	लायी हुई	**अभिनन्द्य**	अभिनन्दन करके
तृण पीठ बृषीषु	कुशासन, पीढ़े, चटाई पर	**सभार्यः मुदा**	पत्नीके साथ प्रसन्न होकर
एतान् उपवेश्य	इन लोगोंको बैठाकर	**अंघ्रीन्**	उनके चरण
स्वागतेन	स्वागत (वाक्य)से	**अवनिजे**	धोये ॥३९॥

तदम्भसा महाभाग आत्मानं समृहान्वयम् ।
स्नापयांचक्र उद्धर्षो लब्धसर्वमनोरथः ॥४०॥

तत् अम्भसा महाभाग आत्मानं स गृह अन्वयं स्नापयान् चक्र उद्हर्षः लब्ध सर्व मनोरथः ॥४०॥

महाभाग	उस महाभागने	स्नापयान् चक्र	सींच दिया
उद्हर्षः	प्रवृद्ध हर्षसे	सर्व मनोरथः	(इससे उसे) सब मनोरथ
तत् अम्भसा	उस जलसे		
स गृह अन्वयं	घर-परिवार सहित	लब्ध	प्राप्त हो गये ॥४०॥
आत्मानं	अपनेको		

फलार्हणोशीरशिवामृताम्बुभि-
र्मृदा सुरभ्या तुलसीकुशाम्बुजैः ।
आराधयामास यथोपपन्नया
सपर्यया सत्त्वविवर्धनान्धसा ॥४१॥

फल अर्हण उशीर शिव अमृत अम्बुभिः मृदा सुरभ्या तुलसी कुश अम्बुजैः आराधयामास यथा उपपन्नया सपर्यया सत्त्व विवर्धन अन्धसा ॥४१॥

अर्हण फल	पूजाके लिए फल	यथा उपपन्नया	अनायास प्राप्त
उशीर शिव	खस पड़े कल्याणप्रद	सपर्यया	पूजा सामग्री एवं
अमृत अम्बुभिः	अमृतके समान जल	सत्व विवर्धन	सत्त्व गुण बढ़ाने वाले
सुरभ्या मृदा	सुगन्धित मिट्टी		
तुलसी कुश	तुलसी, कुश	अन्धसा	भोजन द्वारा
अम्बुजैः	कमल पुष्प तथा	आराधयामास	पूजा की ॥४१॥

स तर्कयामास कुतो ममान्वभूद्
गृहान्धकूपे पतितस्य संगमः ।
यः सर्वतीर्थास्पदपादरेणुभिः
कृष्णेन चास्यात्मनिकेतभूसुरैः ॥४२॥

स तर्कयामास कुतः मम अन्वभूत् गृह अन्धकूपे पतितस्य सङ्गमः यः सर्वतीर्थ आस्पद पादरेणुभिः कृष्णेन च अस्य आत्म निकेत भूसुरैः ॥४२॥

स तर्कयामास	वे सोचने लगे—	**भूसुरैः सङ्गमः**	ब्राह्मणोंसे मिलने का
यः सर्वतीर्थ	जो समस्त तीर्थोंके	**अन्धकूपे**	अन्धे कुएँके समान
आस्पद	आश्रय रूप	**गृह पतितस्य**	घरमें पड़े हुए
पादरेणुभिः	चरण-रज वाले	**मम कुतः**	मुझे कैसे
कृष्णेन च	श्रीकृष्णसे तथा	**अन्वभूत्**	अनुभूति हुई ॥४२॥
अस्य आत्म	उनके अपने		
निकेत	निवास रूप		

सूपविष्टान् कृतातिथ्याञ्छ्रुतदेव उपस्थितः ।
सभार्यस्वजनापत्य उवाचाङ्घ्र्यभिमर्शनः ॥४३॥

सु उपविष्टान् कृत आतिथ्यान् श्रुतदेव उपस्थितः सभार्य स्वजन अपत्य उवाच अंघ्रि अभिमर्शनः ॥४३॥

सु उपविष्टान्	सुख पूर्वक बैठे हुए	**अपत्यः**	पुत्रोंके साथ
कृत आतिथ्यान्	अतिथि-सत्कार कर दिये गयेके	**श्रुतदेव**	श्रुतदेवने
उपस्थितः	समीप पहुँच कर	**अंघ्रि अभिर्शनः**	चरण दबाते हुए
सभार्य स्वजन	पत्नी, स्वजन	**उवाच**	कहने लगे ॥४३॥

॥ श्रुतदेव उवाच ॥

नाद्य नो दर्शनं प्राप्तः परं परमपूरुषः ।
यर्हीदं शक्तिभिः सृष्ट्वा प्रविष्टो ह्यात्मसत्तया ॥४४॥

न अद्य नः दर्शनं प्राप्तः परं परमपूरुषः यर्हि इदं शक्तिभिः सृष्ट्वा प्रविष्टः हि आत्म सत्तया ॥४४॥

परं परमपूरुषः	प्रकृतिसे परे परम पुरुष	**इदं सृष्ट्वा**	इस जगतकी सृष्टि करके
अद्य नः	आज मुझे (आपका)	**आत्म सत्तया**	अपनी सत्तासे
दर्शनं प्राप्तः न	दर्शन हुआ, ऐसा नहीं है	**प्रविष्टः**	(आप इसमें) प्रविष्ट हैं (तब सब रूपोंमें आपका दर्शन होता ही है) ॥४४॥
हि यर्हि	क्योंकि जब		
शक्तिभिः	अपनी शक्तियों द्वारा		

यथा शयानः पुरुषो मनसैवात्ममायया ।
सृष्ट्वा लोकं परं स्वाप्नमनुविश्यावभासते ॥४५॥

यथा शयानः पुरुषः मनसा एव आत्म मायया सृष्ट्वा लोकं परं स्वाप्नं अनुविश्य अवभासते ॥४५॥

यथा शयानः	जैसे सोया हुआ	**परं सृष्ट्वा**	परलोक उत्पन्न करके
पुरुषः	पुरुष	**अनुविश्य**	उसमें प्रवेश करके
मनसा एव	मनसे ही	**अवभासते**	प्रकाशित होता है ॥४५॥
आत्म मायया	अपनी मायासे		
स्वाप्नं लोकं	स्वप्नका यह लोक तथा		

शृण्वतां गदतां शश्वदर्चतां त्वाभिवन्दताम् ।
नृणां संवदतामन्तर्हृदि भास्यमलात्मनाम् ॥४६॥

शृण्वतां गदतां शश्वत् अर्चतां तु अभिवन्दतां नृणां संवदतां अन्तः हृदि भासि अमल आत्मनाम् ॥४६॥

शश्वत्	निरन्तर	**तु अर्चतां**	तथा पूजा करते
शृण्वतां गदतां	(आपकी गुण-लीला) सुनते, बोलते	**अभिवन्दतां**	वन्दना करते

संवदतां	परस्पर बात-चीत करते	नृणां अन्तः हृदि	मनुष्योंके हृदयके भीतर
अमल आत्मनां	निर्मल हृदय	भासि	(आप) प्रकाशित होते हैं ॥४६॥

हृदिस्थोऽप्यतिदूरस्थः कर्मविक्षिप्तचेतसाम् ।
आत्मशक्तिभिरग्राह्योऽप्यन्त्युपेतगुणात्मनाम् ॥४७॥

हृदिस्थः अपि अति दूरस्थः कर्म विक्षिप्त चेतसां आत्मशक्तिभिः अग्राह्यः अपि अन्ति उपेतगुण आत्मनां

कर्म विक्षिप्त	कर्मों लगनेसे चञ्चल	आत्मनां	चित्त वालोंके लिए
चेतसां	चित्त वालोंके लिये	आत्मशक्तिभिः	अपनी शक्तिसे
हृदिस्थः अपि	हृदयमें रहते हुए भी	अग्राह्यः अपि	अग्राह्य होने पर भी
अति दूरस्थः	(आप) बहुत दूर हैं	अन्ति	(आप) समीप हैं ॥४७॥
उपेतगुण	सद्गुण सम्पन्न बनाये		

नमोऽस्तु तेऽध्यात्मविदां परात्मने
अनात्मने स्वात्मविभक्तमृत्यवे ।
सकारणाकारणलिङ्गमीयुषे
स्वमायायासंवृतरुद्धदृष्टये ॥४८॥

नमः अस्तु ते अध्यात्म विदां पर आत्मने अनात्मने स्व आत्म विभक्त मृत्यवे सकारथ अकारण लिङ्गं ईयुषे स्वमायया असंवृत रुद्ध दृष्टये ॥४८॥

अध्यात्म विदां	अध्याम तत्त्वको जानने वालोंके लिए	पर आत्मने	अपने परम आत्म-तत्त्व रूपमें

स्व आत्म	अपनेको आत्मासे
विभक्त	पृथक (मानने) वालोंके लिए
मृत्यवे	मृत्यु रूप
सकारण	कारण वाले (महत्-त्वादि)
अकारण लिङ्ग	तथा कारण रहित चिह्न मात्र (प्रकृति) के
इयुषे	शासक,
स्वमायया	अपनी मायासे
असंवृत	(स्वयं) अनाच्छादित
रुद्ध दृष्टये	(दूसरोंकी) दृष्टिको ढकने वाले
ते नमः अस्तु	आपको नमस्कार हो ॥४८॥

स त्वं शाधि स्वभृत्यान् नः किं देव करवाम हे ।
एतदन्तो नृणां क्लेशो यद् भवानक्षिगोचरः ॥४९॥

स त्वं शाधि स्वभृत्यान् नः किं देव करवामहे एतत् अन्तः नृणां क्लेशः यत् भवान् अक्षिगोचरः ॥४९॥

स देव त्वं	वह देव ! आप
नः स्वभृत्यान्	हम अपने सेवकोंको
शाधि	आज्ञा दीजिये
किं करवामहे	क्या (सेवा) करें ।
नृणां क्लेशः	मनुष्योंके क्लेशका
एतत् अन्तः	यहीं अन्त हो जाता है
यत् भवान्	जो आप
अक्षिगोचरः	नेत्रोंके सामने आ गये ॥४९॥

श्रीशुक उवाच ॥

तदुक्तमित्युपाकर्ण्य भगवान् प्रणतार्तिहा ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रहसंस्तमुवाच ह ॥५०॥

तत् उक्तं इति उपाकर्ण्य भगवान् प्रणत आर्तिहा गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रहसन् तं उवाच ह ॥५०॥

इति तत् उक्तं	इस प्रकार उनकी बात
उपाकर्ण्य	सुनकर
प्रणत आर्तिहा	शरणागत क्लेश नाशक
भगवान्	भगवानने
पाणिना पाणिं	अपने हाथसे उनका हाथ
गृहीत्वा प्रहसन्	पकड़ कर हँसते हुए
तं ह उवाच	उनसे ही कहा ॥५०॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

ब्रह्मांस्तेऽनुग्रहार्थाय सम्प्राप्तान् विद्धचमून् मुनीन् ।
संचरन्ति मया लोकान् पुनन्तः पादरेणुभिः ॥५१॥

ब्रह्मन् ते अनुग्रह अर्थाय सम्प्राप्तान् विद्धि अमून् मुनीन् सञ्चरन्ति मया लोकान् पुनन्तः पादरेणुभिः ॥५१॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
अमून् मुनीन्	इन मुनियोंको
ते अनुग्रह	तुम पर कृपा
अर्थाय	करनेके लिए
सम्प्राप्तान्	आये
विद्धि	जानो
पादरेणुभिः	अपनी चरण-रजसे
लोकान् पुनन्तः	लोकोंको पवित्र करते हुए
मया सञ्चरन्ति	मेरे साथ विचरण कर रहे हैं ॥५१॥

देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनस्पर्शनार्चनैः ।
शनैः पुनन्ति कालेन तदप्यर्हत्तमेक्षया ॥५२॥

देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शन स्पर्शन अर्चनैः शनैः पुनन्ति कालेन तदपि अर्हत्तम ईक्षया ॥५२॥

देवाः क्षेत्राणि	देवता, पुण्य-क्षेत्र
तीर्थानि	तीर्थ
दर्शन स्पर्शन	दर्शन, स्पर्श
अर्चनै कालेन	पूजनसे बहुत समय में

शनैः पुनन्ति	धीरे-धीरे पवित्र करते हैं	अर्हत्तम	पूज्यतमकी
		ईक्षया	दृष्टिसे आती है ॥५२॥
तथपि	वह भी (शक्ति उनमें किसी)		

ब्राह्मणो जन्मना श्रेयान् सर्वेषां प्राणिनामिह ।
तपसा विद्यया तुष्ट्या किमु मत्कलया युतः ॥५३॥

ब्राह्मणः जन्मना श्रेयान् सर्वेषां प्राणिनां इह तपसा विद्यया तुष्ट्या किमु मत् कलया युतः ॥५३॥

इह सर्वेषां	इस लोकमें सभी	तुष्ट्या मत्	सन्तोष, मेरी
प्राणिनां	प्राणियोंमें	कलया	कला-भक्ति
ब्राह्मणः	ब्राह्मण	युतः किमु	युक्त हो तो कहना ही क्या ॥६३॥
जन्मना श्रेयान्	जन्मसे ही श्रेष्ठ है		
तपसा विद्यया	फिर तपस्या, विद्या		

न ब्राह्मणान्मे दयितं रूपमेतच्चतुर्भुजम् ।
सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो ह्यहम् ॥५४॥

न ब्राह्मणात् मे दयितं रूपं एतत् चतुर्भुजं सर्ववेदमयः विप्रः सर्वदेव मयः हि अहम् ॥५४॥

ब्राह्मणात्	ब्राह्मणसे (अधिक)	हि विप्रः	क्योंकि ब्राह्मण
दयितं मे एतत्	प्रिय मुझे यह (अपना)	सर्ववेदमयः	सर्व वेदमय हैं और
		अहं सर्व	मैं सर्व
चतुर्भुजं रूपं न	चतुर्भुज रूप नहीं है	देवमयः	देवमय हूँ ॥५४॥

दुष्प्रज्ञा अविदित्वैवमवजानन्त्यसूयवः ।
गुरुं मां विप्रमात्मानमर्चादाविज्यदृष्टयः ॥५५॥

दुष्प्रज्ञा अविदित्वा एवं अवजानन्ति असूयवः गुरुं मां विप्रं आत्मानं अर्चा आदाः इज्य दृष्टयः ॥५५॥

अर्चा आदाः	मूर्ति आदिमें	एवं अविदित्वा	ऐसा न जानकर
इज्य दृष्टयः	पूज्य दृष्टि रखने वाले	मां आत्मानं	मुझ आत्मा तथा
		गुरुं विप्रं	गुरु स्वरूप ब्राह्मण का
दुष्प्रज्ञा	दुर्बुद्धि लोग		
असूयवः	गुणोंमें दोष निकालने वाले	अवजानन्ति	अनादर करते हैं ॥५५॥

चराचरमिदं विश्वं भावा ये चास्य हेतवः ।
मद्रूपाणीति चेतस्याधत्ते विप्रो मदीक्षया ॥५६॥

चर अचरं इदं विश्वं भावा ये च अस्य हेतवः मत् रूपाणि इति चेत् अस्य आधत्ते विप्रः मत् ईक्षया ॥५६॥

मत् ईक्षया	मेरा साक्षात्कार करके	अस्य हेतवः	इस (जगत)के कारण हैं
विप्रः	ब्राह्मण	मत् रूपाणि	मेरे स्वरूप हैं
इदं चर अचरं	इस चराचर	इति चेत आधत्ते	ऐसी चित्तमें धारणा दृढ़ कर लेता है ॥५६॥
विश्वं	जगतको		
च ये भावा	तथा जो भाव		

तस्माद् ब्रह्मऋषीनेतान् ब्रह्मन् मच्छ्रद्धयार्चय ।
एवं चेदर्चितोऽस्म्यद्धा नान्यथा भूरिभूतिभिः ॥५७॥

तस्मात् ब्रह्म ऋषीन् एतान् ब्रह्मन् मत् श्रद्धया अर्चय एवं चेत् अर्चितः अस्मि अद्धा न अन्यथा भूरि भूतिभिः ॥५७॥

तस्मात्	इसलिए	एतान्	इन
		ब्रह्म ऋषीन्	ब्रह्मर्षियोंकी

मत् श्रद्धया	मेरा स्वरूप समझ-कर	अन्यथा	अन्यथा
अर्चय	पूजा करो	भूरि भूतिभिः	बहुत वैभवसे (पूजा करने पर)
एवं चेत्	यदि ऐसा करोगे तो	न	नहीं (पूजित होता) ॥५७॥
अद्धा	मैं साक्षात्		
अर्चितः अस्मि	अर्चित होऊँगा		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

स इत्थं प्रभुणाऽऽदिष्टः सहकृष्णान् द्विजोत्तमान् ।
आराध्यैकात्मभावेन मैथिलश्चाप सद्गतिम् ॥५८॥

स इत्थं प्रभुणा आदिष्टः सह कृष्णान् द्विज उत्तमान् आराध्य एक आत्म भावेन मैथिलः च आप सद्गतिम् ॥५८॥

इत्थं प्रभुणा	इस प्रकार स्वामीके द्वारा	आराध्य	आराधना करके
आदिष्टः	आदेश देने पर	स मैथिलः च	वे तथा मिथिला नरेश भी
सह कृष्णान्	श्रीकृष्णके साथ	सद्गतिं आप	सद्गति प्राप्त हुए ॥५८॥
द्विज उत्तमान्	उन विप्रवरोंकी		
एक आत्म भावेन	आत्मैक्य भावसे		

एवं स्वभक्तयो राजन् भगवान् भक्तभक्तिमान् ।
उषित्वाऽऽदिश्य सन्मार्गं पुनर्द्वारवतीमगात् ॥५९॥

एवं स्वभक्तयो राजन् भगवान् भक्तभक्तिमान् उषित्वा आदिश्य सन्मार्गं पुनः द्वारवतीं अगात् ॥५९॥

राजन्	राजन् !	भक्तभक्तिमान्	भक्तोंकी भक्ति करने वाले

भगवान्	भगवान	**सन्मार्गं**	सन्मार्गका
एवं स्वभक्तयोः	इस प्रकार अपने भक्तोंके यहाँ	**आदिश्य**	उपदेश करके
		पुनः द्वारवतीं	फिर द्वारिका
उषित्वा	रहकर*	**अगात्**	लौट आये ॥५९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे श्रुतदेवानुग्रहो नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

---

*इस कथामें भगवान ऋषियोंके साथ दो रूप तो हुए ही, कालका भी उन्होंने नियन्त्रण किया। राजाके यहाँ कुछ दिन रहे और श्रुतदेवके यहाँ केवल एक दिन रहे; किन्तु दोनों समयको बराबर करके एक साथ लौटे।

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

॥ राजोवाच ॥*

ब्रह्मन् ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः ।
कथं चरन्ति श्रुतयः साक्षात् सदसतः परे ॥ १ ॥

ब्रह्मन् ब्रह्मणि अनिर्देश्य निर्गुणे गुणवृत्तयः कथं चरन्ति श्रुतयः साक्षात् सत् असतः परे ॥१॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**गुणवृत्तयः**	गुणोंमें ही व्यवहार करनेवाली
सत् असतः परे	कारण-कार्यातीत	**श्रुतयः**	श्रुतियाँ
अनिर्देश्ये	जिसका संकेत भी नहीं हो सकता	**कथं चरन्ति**	कैसे प्रवृत्त होती हैं ॥१॥
साक्षात् निर्गुणे ब्रह्मणि	उस साक्षात् निर्गुण ब्रह्ममें		

तात्पर्य—श्रुतियोंका प्रतिपादन विषय तो गुणमय संसारके व्यवहार हैं तो वे निर्गुण ब्रह्माका कैसे प्रतिपादन करती हैं, क्योंकि निर्गुणका तो संकेत भी सम्भव नहीं। संकेत तो गुणोंके ही द्वारा होता है।

॥ श्रीशुक उवाच ॥

बुद्धीन्द्रियमनः प्राणान् जनानामसृजत् प्रभुः ।
मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च ॥ २ ॥

---

*गीताप्रेसकी प्रतिमें यहाँ 'परीक्षिदुवाच' है और किन्हीं प्रतियोंमें 'विष्णुरात उवाच' है।

बुद्धि इन्द्रिय मनः प्राणान् जनानां असृजत् प्रभुः मात्रा अर्थं च भव अर्थं च आत्मने अकल्पनाय च ॥२॥

प्रभुः	सर्वसमर्थ परमात्माने	**च आत्मने**	तथा अपने स्वरूपकी
जनानां	जीवोंके लिए	**अकल्पनाय**	धारणा बनाने
मात्रा अर्थं	(रूप रसादि)		(आत्मज्ञान)के लिए
	तन्मात्राओंका योग	**बुद्धि इन्द्रिय**	बुद्धि, इन्द्रियाँ
	करनेके लिए	**मनः प्राणान्**	मन तथा प्राणोंकी
भव अर्थं	संसार प्रवाह चलता	**असृजत्**	सृष्टि की ॥२॥
	रहे इसलिए		

सैषा ह्युपनिषद् ब्राह्मी पूर्वेषां पूर्वजैर्धृता ।
श्रद्धया धारयेद् यस्तां क्षेमं गच्छेदकिंचनः ॥ ३ ॥

स एषा हि उपनिषत् ब्राह्मी पूर्वेषां पूर्वजैः धृता श्रद्धया धारयेत् यः तां क्षेमं गच्छेत् अकिञ्चनः ,।३॥

हि स एषा	क्योंकि वह यह	**यः तां धारयेत्**	जो उसे धारण
ब्राह्मी उपनिषत्	ब्रह्म प्रतिपादक		करता है
	उपनिषत्	**अकिञ्चनः**	सब(बन्धनके कारण)
पूर्वेषां पूर्वजैः	पूर्व पुरुषोंने भी		त्यागकर
	अपने पूर्वजोंसे	**क्षेमं गच्छेत्**	कल्याण प्राप्त करता
धृता	धारण किया है		है ॥३॥
श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक		

तात्पर्य—उपनिषत् अनादि है। वह श्रवण-परम्परासे ही आ रहा ज्ञान है। इसमें तर्ककी गति नहीं है। श्रद्धासे इसे धारण करके परम-कल्याण होता है।

अत्र ते वर्णयिष्यामि गाथां नारायणान्विताम् ।
नारदस्य च संवादमृषेर्नारायणस्य च ॥ ४ ॥

अत्र ते वर्णयिष्यामि गाथां नारायण अन्विताम् नारदस्य च संवादं ऋषेः नारायणस्य च ॥४॥

अत्र ते	इस विषयमें तुमसे	**ऋषेः नारायणस्य**	ऋषि नारायणके
नारायण अन्वितां	नारायणसे सम्बन्धित	**संवादं गाथां**	संवादकी कथा
नारदस्य च	नारदजीका तथा	**वर्णयिष्यामि**	वर्णन करूँगा ॥४॥

एकदा नारदो लोकान् पर्यटन् भगवत्प्रियः ।
सनातनमृषिं द्रष्टुं ययौ नारायणाश्रमम् ॥ ५ ॥

एकदा नारदः लोकान् पर्यटन् भगवत् प्रियः सनातनं ऋषिं द्रष्टुं ययौ नारायण आश्रमम् ॥५॥

एकदा	एकबार	**द्रष्टुं**	दर्शन करनेके लिए
भगवत् प्रियः	भगवानके प्यारे	**नारायण आश्रमं**	नारायण आश्रम (बदरीनाथ)
नारदः	नारदजी	**ययौ**	गये ॥५॥
लोकान् पर्यटन्	लोकोंमें घूमते हुए		
सनातनं ऋषिं	सनातन ऋषि (नारायण)का		

यो वै भारतवर्षेऽस्मिन् क्षेमाय स्वस्तये नृणाम् ।
धर्मज्ञानशमोपेतमाकल्पादास्थितस्तपः ॥ ६ ॥

यः वै भारतवर्षे अस्मिन् क्षेमाय स्वस्तये नृणां धर्म ज्ञान शम उपेतं आकल्पात् आस्थितः तपः ॥६॥

यः वै	जो निश्चय ही	**स्वस्तये**	(लौकिक) कुशलके लिए
नृणां क्षेमाय	मनुष्योंके परम कल्याण तथा	**अस्मिन् भारतवर्षे**	इस भारतवर्षमें

धर्म ज्ञान	धर्म, ज्ञान एवं	तपः आस्थितः	तपस्या कर
शम उपेतं	मनके शमनयुक्त		रहे हैं ॥६॥
आकल्पात्	कल्प पर्यन्तके लिए		

तत्रोपविष्टमृषिभिः कलापग्रामवासिभिः ।
परीतं प्रणतोऽपृच्छदिदमेव कुरूद्वह ॥ ७ ॥

तत्र उपविष्टं ऋषिभिः कलाप ग्रामवासिभिः परीतं प्रणतः अपृच्छत् इदं एव कुरूद्वह ॥७॥

कुरूद्वह	कुरूकुल पालक परीक्षित !	ऋषिभिः परीतं	ऋषियोंसे घिरे
तत्र कलाप	वहाँ कलाप	उपविष्टं	बैठे हुए (नारायण)को
ग्रामवासिभिः	ग्रामवासी	प्रणतः	प्रणाम करके
		इदं एव अपृच्छत्	यही पूछा ॥७॥

तस्मै ह्यवोचद् भगवानृषीणां शृण्वतामिदम् ।
यो ब्रह्मवादः पूर्वेषां जनलोकनिवासिनाम् ॥ ८ ॥

तस्मै हि अवोचत् भगवान् ऋषीणां शृण्वतां इदं यः ब्रह्मवादः पूर्वेषां जनलोक निवासिनाम् ॥८॥

हि तस्मै	क्योंकि उन (नारदजी)से	यः ब्रह्मवादः	जो ब्रह्मचर्चा हुई थी
ऋषीणां शृण्वतां	ऋषियोंके सुनते हुए	भगवान् इदं	उसे भगवानने इस प्रकार
जनलोक	जनलोक	अवोचत्	सुनाया ॥८॥
निवासिनां	निवासी		
पूर्वेषां	पूर्व पुरुषोंमें		

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

स्वायम्भुव ब्रह्मसत्रं जनलोकेऽभवत् पुरा ।
तत्रस्थानां मानसानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ९ ॥

स्वायम्भुव ब्रह्मसत्रं जनलोके अभवत् पुरा तत्रस्थानां मानसानां मुनीनां ऊर्ध्व रेतसाम् ॥९॥

स्वायम्भुव	ब्रह्म-पुत्र नारदजी !	**ऊर्ध्व रेतसां**	आजन्म ब्रह्मचारी
पुरा जनलोके	पहिले जनलोकमें	**मुनीनां**	ऋषियोंका
तत्रस्थानां	वहाँ रहने वाले	**ब्रह्मसत्रं अभवत्**	ब्रह्मसत्र हुआ
मानसानां	मानसिक सृष्टिसे उत्पन्न		था ॥९॥

श्वेद्वीपं गतवति त्वयि द्रष्टुं तदीश्वरम् ।
ब्रह्मवादः सुसंवृत्तः श्रुतयो यत्र शेरते ।
तत्र हायमभूत् प्रश्नस्त्वं मां यमनुपृच्छसि ॥१०॥

श्वेतद्वीपं गतवति त्वयि द्रष्टुं तत् ईश्वरं ब्रह्मवादः सुसंवृत्तः श्रुतयः यत्र शेरते तत्र ह अयं अभूत् प्रश्नः त्वं मां यं अनुपृच्छसि ॥१०॥

त्वयि श्वेतद्वीपं	तुम्हारे श्वेतद्वीप	**शेरते**	सो जाती (मौन हो जाती) हैं
तत् ईश्वरं	उसके स्वामी (अनिरुद्ध मूर्ति)का	**तत्र ह**	वहाँ ही
द्रष्टुं गतवति	दर्शन करने जानेपर	**अयं प्रश्नः**	यह प्रश्न
सुसंवृत्तः	अत्यन्त सुन्दर ऐकान्तिक	**अभत्**	हुआ था
ब्रह्मवादः	ब्रह्म-चर्चा हुई थी	**यं त्वं मां**	जिसे तुम मुझसे
यत्र श्रुतयः	जिसके विषयमें श्रुतियाँ	**अनुपृच्छसि**	पूछ रहे हो ॥१०॥

तुल्यश्रुततपःशीलातुल्यस्वीयारिमध्यमाः ।
अपि चक्रुः प्रवचनमेकं शुश्रूषवोऽपरे ॥११॥

तुल्य श्रुत तपः शीलाः तुल्य स्वीय अरिमध्यमाः अपि चक्रुः प्रवचनं एकं शुश्रूषवः अपरे ॥११॥

श्रुत तपः	(वे सनकादि चारों भाई) विद्या, तप	**अपि**	रहनेपर भी
शील तुल्य	सदाचारमें समान हैं	**एकं प्रवचनं चक्रुः**	(उनमें-से) एक प्रवचन करने लगे
स्वीय अरि-	स्वजन, शत्रु तथा	**अपरे शुश्रूषवः**	दूसरे सुननेकी इच्छासे बैठ गये ॥११॥
मध्यमाः तुल्य	मध्यम (उदासीन) के प्रति समान		

॥ सनन्दन उवाच ॥

स्वसृष्टमिदमापीय शयानं सह शक्तिभिः ।
तदन्ते बोधयांचक्रुस्तल्लिङ्गैः श्रुतयः परम् ॥१२॥

स्वसृष्टं इदं आपीय शयानं सह शक्तिभिः तत् अन्ते बोधयान् चक्रुः तत् लिङ्गैः श्रुतयः परम् ॥१२॥

स्वसृष्टं	अपने बनाये हुए	**तत् अन्ते**	उस (प्रलयकाल)के अन्तमें
इदं शक्तिभिः सह	इस जगतको शक्तियोंके साथ	**तत् लिङ्गैः**	उनके लक्षण-वर्णन द्वारा
आपीय शयानं	पीकर (लील करके) सोते	**बोधयान् चक्रुः**	जगाने लगीं ॥१२॥
परम् श्रुतयः	परम पुरुषको श्रुतियाँ		

यथा शयानं सम्राजं वन्दिनस्तत्पराक्रमैः ।
प्रत्यूषेऽभ्येत्य सुश्लोकैर्बोधयन्त्यनुजीविनः ॥१३॥

यथा शयानं सम्राजं वन्दिनः तत् पराक्रमैः प्रत्यूषे अभ्येत्य सुश्लोकैः बोधयन्ति अनुजीविनः ॥१३॥

यथा शयानं	जैसे सोये हुए	**अनुजीविनः**	उसके अनुजीवी
सम्राजं	सम्राटको	**वन्दिनः**	बन्दी लोग

प्रत्यूषे अभ्येत्य	ब्रह्ममुहूर्तमें उसके पास जाकर	**सुश्लोकैः**	उसके उत्तम यशका गान करके
		बोधयन्ति	जगाते हैं ॥१३॥

॥ श्रुतय ऊचुः ॥

जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां ।
त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः ।
अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते
क्वचिदजयाऽऽत्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः ॥१४॥

जय जय जहि अजां अजित दोष गृभीत गुणां त्वं असि यत् आत्मना सम अवरुद्ध समस्त भगः अग जगत् ओकसां अखिलशक्ति अवबोधक ते क्वचित् अजया आत्मना च चरतः अनुचरेत् निगमः ॥१४॥

जय	जय हो !	**त्वं असि**	आप ही हैं
अजित ते जय	अजित प्रभु आपकी जय हो !	**अग जगत्**	अचर-चर रूपमें
		ओकसां	रहनेवाले (समस्त जीवों) की
दोष	दोष (उत्पन्न करने के लिए)	**अखिलशक्ति**	समस्त शक्तियोंके
गृभीत गुणां	(सत्त्वादि) गुण ग्रहण करने वाली	**अवबोधक ते**	जगानेवाले आपमें
		क्वचित् आत्मना	कभी अपनी
अजां जहि	मायाको मार (नष्ट कर) दीजिए	**अजया च**	(योग) मायाके साथ भी
यत् आत्मना	क्योंकि अपने स्वरूपमें	**चरतः**	विहार करते समय (आपके)
समस्त भगः	सम्पूर्ण ऐश्वर्य	**निगमः**	श्रुति
सम अवरुद्ध	पूर्णतः समाहित किये	**अनुचरेत्**	पीछे चलती हैं ॥१४

तात्पर्य—मायामें जो सत्वादि गुण हैं, वे दोष ही उत्पन्न करते हैं, किन्तु समस्त ऐश्वर्य आपमें ही सन्निहित है, मायाको आप ही नष्ट कर

सकते हैं। चराचर वृष्टिमें जहाँ कहीं कोई शक्ति है, उसे जगानेवाले आप ही हैं। वैसे तो आपमें श्रुतियोंकी गति नहीं है, किन्तु जब आप अपनी योगमायाका आश्रय लेकर लीला-विहार करते हैं, तब श्रुति उनके वर्णन द्वारा आपका अनुगमन करती है।

बृहदुपलब्धमेतदवयन्त्यवशेषतया
यत उदयास्तमयौ विकृतेर्मृदि वाविकृतात्।
अत ऋषयो दधुस्त्वयि मनोवचनाचरितं
कथमयथा भवन्ति भुवि दत्तपदानि नृणाम् ॥१५॥

बृहत् उपलब्धं एतत् अवयन्ति अवशेषतया यत उदय अस्तमयौ विकृतेः मृदि वा विकृतात् अतः ऋषयः दधुः त्वयि मनः वचन आचरितं कथं अयथा भवन्ति भुवि दत्त पदानि नृणाम् ॥१५॥

एतत् उपलब्धं	यह पाया जाने (दीखने) वाला
बृहत्	विराट् जगत्
अवशेषतया	(आपके ही) अन्तमें बच रहनेसे
अवयन्ति	(आपका ही स्वरूप) जाना जाता है
यत	क्योंकि
विकृतेः	(मिट्टीके) विकारों (घड़े, सकोरे आदि) की
उदय अस्तमयौ	उत्पत्ति और विलीन होना
वा विकृतात्	अथवा विकार (घड़े आदि) रहने पर भी
मृदि	मिट्टी ही है
अतः ऋषयः	अतः ऋषिगण
मनः वचन	मन, वाणी
आचरितं	आचरण
त्वयि दधुः	आपमें ही लगाते हैं
नृणां भुवि दत्त	मनुष्यके पृथ्वीपर रखे
पदानि	पैर (चाहे चौकी आदिपर हों)
अयथा कथं भवन्ति	अन्यथा (पृथ्वीपर नहीं हैं) ऐसा कैसे हो सकता है ॥१५॥

तात्पर्य—जैसे मिट्टीसे बने घड़े आदिकी उत्पत्ति मिट्टीसे है, नष्ट होने पर भी मिट्टी हो जायँगे और घड़ा रहते भी मिट्टी हैं, वैसे ही यह

विराट् जगत सृष्टिसे पूर्व, सृष्टिकालमें भी और प्रलय होने पर आपमें ही स्थित आपका स्वरूप है। अतः ऋषि तथा वेदवाणी चाहे जिसका निरूपण चिन्तन या अर्चन करें, वह सब आपमें ही लगा है। मनुष्यका पैर पट्टे, तख्ते आदि किसीपर हो, पृथ्वीपर नहीं है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता।

इति तव सूरयस्त्र्यधिपतेऽखिललोकमल-
क्षपणकथामृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः।
किमुत पुनः स्वधामविधुताशयकालगुणाः
परम भजन्ति ये पदमजस्रसुखानुभवम् ॥१६॥

इति तव सूरयः त्रय अधिपते अखिल लोक मलक्षपण कथा अमृत अब्धिं अवगाह्य तपांसि जहुः किम् उत पुनः स्वधाम विधुत आशय काल गुणाः परम भजन्ति ये पदं अजस्र सुख अनुभवम् ॥१६॥

इति	ऐसा समझकर	**आशय**	कर्माशय (अन्तःकरण)
त्रय अधिपते	तीनों लोकों (तीनों गुणों)के स्वामी	**काल गुणाः**	काल-प्रभाव तथा त्रिगुणोंको
तव अखिल लोक	आपके समस्त लोकोंके	**विधुत**	निरस्त किये
मलक्षपण	पापहारी	**अजस्र सुख**	अखण्ड आनन्द
कथा अमृत अब्धिं	कथा सुधा सागरमें	**अनुभवं**	अनुभव स्वरूप
सूरयः अवगाह्य	बुद्धिमान लोग, डुबकी लगाकर	**परम पदं**	परम पुरुष आपके चरणोंका
तपांसि जहुः	अपना त्रिताप-संताप त्याग देते हैं।	**ये भजन्ति**	जो भजन करते हैं
उत स्वधाम	फिर अपने तेजसे ही	**पुनः किं**	(उनकी) फिर क्या बात ॥१६॥

हृतय इव श्वसन्त्यसुभृतो यदि तेऽनुविधा
महदहमादयोऽण्डमसृजन् यदनुग्रहतः।
पुरुषविधोऽन्वयोऽत्र चरमोऽन्नमयादिषु यः
सदसतः परं त्वमथ यदेष्ववशेषमृतम् ॥१७॥

इतय इव श्वसन्ति असुभृतः यदि ते अनुविधा महत् अहं आदयः अण्डं असृजन् यत् अनुग्रहतः पुरुषविधः अन्वयः अत्र चरमः अन्नमय आदिषु यः सत् असतः परं त्वं अथ यत् एषु अवशेष मृतम् ॥१७॥

यदि असुभृतः	यदि प्राणधारी
ते अनुविधा	आपका भजन नहीं करते तो
इतय इव	लुहारकी धौंकनीके समान
श्वसन्ति	श्वास लेते हैं
महत् अहं	महत्तत्व, अहंकार
आदयः	आदिने
यत् अनुग्रहतः	जिसके अनुग्रहसे ही
अण्डं असृजन्	ब्रह्माण्डकी सृष्टि की है
अत्र अन्नमया आदिषु	इस (ब्रह्माण्डमें) अन्नमय आदि कोशोंमें
यः चरमः	जो अन्तिम (आनन्दमय कोश) है
पुरुषविधः	(आनन्दमय) पुरुषके समान
अन्वयः	उस (पुरुष)के अन्वित (व्याप्त) होनेसे है
अथ त्वं	फिर आप तो
सत् असतः परं	कारण कार्यसे परे हो
यत् अवशेष	(आपके) अतिरिक्त जो बचता है
मृतम्	(वह तो) विनाशवान है ॥१७॥

तात्पर्य- जो लोग आपका भजन नहीं करते, वे तो लुहारकी धौंकनीके समान व्यर्थ श्वास ले रहे हैं। महत्तत्व, अहंकारादिसे यह ब्रह्माण्ड आपकी कृपा, आपके इसमें व्याप्त होनेसे ही बना है। यहाँ जो कुछ आनन्दमय कोशसे प्राप्त सुखानुभव है भी, वह इसलिए है कि आप आनन्दमय कोशमें व्याप्त हैं। कार्य-कारण रूप सम्पूर्ण जगत आपका स्वरूप है। आपसे भिन्न जो है, वह नाशवान है।

उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः
परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम् ।
तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं
पुनरिह यत् समेत्य न पतन्ति कृतान्तमुखे ॥१८॥

उदरं उपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः परिसरपद्धतिं हृदयं आरुणयः दहरं तत उदगात् अनन्त तव धाम शिरः परमं पुनः इह यत् सम एत्य न पतन्ति कृतान्तमुखे ॥१८॥

य ऋषिवर्त्मसु	(उपासना करने वालोंमें) जो ऋषियोंके मार्गमें	**तत उदगात्**	वहाँसे ऊपर जाती (सुषुम्ना नाड़ी)
कूर्पदृशः	स्थूल दृष्टि हैं वे	**अनन्त**	अनन्त !
उदरं उपासते	नाभि(मणिपूर चक्र) में उपासना करते हैं	**तव परमं धाम शिरः**	आपके परमधाम मस्तक (सहस्रार)को
आरुणयः	आरुणि ऋषिके अनुयायी	**यत् सम एत्य**	जहाँ पहुँचकर (जीव)
परिसरपद्धतिं	रक्ताभिसरण (नाड़ियों)के केन्द्र	**पुनः इह**	फिर इस संसारमें
दहरं	हृदयमें (उपासना करते हैं)	**कृतान्तमुखे न पतन्ति**	कालके मुखमें नहीं गिरता ॥१८॥

तात्पर्य—(जो भजन नहीं करते उनका जीवन तो व्यर्थ है और जो भजन-साधन करते भी हैं) उनमें जो नाभि-चक्रमें उपासना करते हैं वे ऋषियोंके मार्गमें स्थूल दृष्टि हैं (वे भटक सकते हैं) सब नाड़ियोंके केन्द्र हृदय चक्रसे सिरके सहस्रार चक्र तक सुषुम्ना नाड़ी जाती है। इस मार्गसे सहस्रार पहुँचे पर मोक्ष हो जाता है।

स्वकृतविचित्रयोनिषु विशन्निव हेतुतया
तरतमतश्चकास्यनलवत् स्वकृतानुकृतिः।
अथ वितथास्वमूष्ववितथं तव धाम समं
विरजधियोऽन्वयन्त्यभिविपण्यव एकरसम् ॥१९॥

स्वकृत विचित्रयोनिषु विशन् इव हेतु तया तरतमतः चकास्यसि अनलवत् स्वकृत अनुकृतिः अथ वितथासु अमूषु अवितथं तव धाम समं विरजधियः अनु अवयन्ति अभि विपण्यव एकरसम् ॥१९॥

स्वकृत	अपनी ही रचित	**तरतमतः**	तारतम्यसे
विचित्रयोनिषु	अनेक प्रकारकी योनियोंमें	**चकास्यसि**	प्रकाशित होते हैं
हेतु तया	उनके उपादान होनेसे	**अथ वितथासु**	अतः इन व्यर्थ
विशन् इव	प्रविष्ट हुएसे लगते	**अमूषु**	आकृतियोंमें
अनलवत्	अग्निके समान (जैसी मोटी-पतली लकड़ी उसमें प्रगट अग्नि वैसा)	**तव धाम**	आपका तेज
		अवितथं समं	अव्यर्थ और समान है
स्वकृत	अपनी बनाई (उन योनियों)	**विरजधियः**	निर्मल बुद्धि
		अभि विपण्यव	(लोक) व्यापारसे मुक्त (संत)
अनुकृतिः	के समान आकृतिमें	**एकरसं**	(आपको सर्वत्र) एकरस
		अवयन्ति	जानते हैं ॥१६॥

तात्पर्य—ब्रह्मासे कीड़े तक असख्य योनियोंके आप ही कारण हैं, अतः उनमें प्रविष्ट न होकर भी प्रविष्ट जैसे लगते हैं। जैसे अग्नि जैसी लकड़ीमें होता है वैसा छोटा-बड़ा दीखता है, ऐसे ही इन योनियोंके उत्तम-मध्यमके तारतम्यसे आप वैसे ही प्रतीत होते हैं, किन्तु संसार-व्यापार मुक्त निर्मल बुद्धि महात्मा आपको एकरस जानते हैं।

स्वकृतपुरेष्वमीष्वबहिरन्तरसंवरणं
तव पुरुषं वदन्त्यखिलशक्तिधृतोंऽशकृतम् ।
इति नृगतिं विविच्य कवयो निगमावपनं
भवत उपासतेऽङ्घ्रिमभवं भुवि विश्वसिताः ॥२०॥

स्वकृत पुरेषु अमीषु बहिः अन्तर संवरणं तव पुरुषं वदन्ति अखिल-शक्ति धृतः अंशकृतं इति नृगतिं विविक्य कवयः निगम आपवनं भवत उपासते अंघ्रि अभवं भुवि विश्वसिताः ॥२०॥

स्वकृत	अपने कर्मोंसे बने	**पुरुषं**	जीवको
अमीषु परेषु	इन शरीरोंमें	**अखिलशक्ति धृतः**	समस्त शक्तियोंके धारक
बहिः अन्तर	बाहर-भीतर	**तव अंशकृतं**	आपके अंशसे निर्मित
संवरणं	व्याप्त रहनेवाले		

वदन्ति	कहते हैं,
इति नृगतिं	इस प्रकारकी मनुष्यकी गतिका
विविच्य	विचार करके
कवयः	बुद्धिमान लोग
विश्वसितां	विश्वास करके
भुवि निगम आवपनं	संसारमें वेदका विस्तार करनेवाले
भवत अभवं	आपके मोक्षदायक
अंघ्रि उपासते	चरणोंकी उपासना करते हैं ॥२०॥

तात्पर्य—शरीर सब जीवके कर्मोंसे बने हैं और जीव निर्मित तथा आवरण युक्त नहीं है, किन्तु शरीरोंके बाहर-भीतर व्याप्त जीवको आपके अंशसे बना इसलिए कहते हैं, क्योंकि समस्त शक्तियोंके धारक आप ही हैं। इतनी ही मनुष्यकी पहुँच है। अतः संसारमें वेद-मर्यादा स्थापित करनेवाले आपके चरणोंमें विश्वास करके बुद्धिमान लोग उन्हींकी उपासना करते हैं।

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनो-
श्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः ।
न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते
चरणसरोजहंसकुलसङ्गविसृष्टगृहाः ॥२१॥

दुःअवगम आत्मतत्व निगमाय तव आत्ततनोः चरित महा अमृत अब्धि परिवर्त परिश्रमणाः न परिलषन्ति केचित् अपवर्गं अपि ईश्वर ते चरण-सरोज हंसकुल संग विसृष्ट गृहाः ॥२१॥

आत्मतत्व दुःअवगम	आत्मतत्वको जानना बहुत कठिन है
निगमाय	(उसका) ज्ञान करानेके लिए
आत्ततनोः	अनेक अवतार धारण करनेवाले
तव चरित अमृत महा अब्धि परिवर्तः	आपके चरित रूपी अमृत महासागरमें तैरने (लगे रहने)का
परिश्रमणाः	परिश्रम करनेवाले
केचित्	कोई (भक्त)
अपवर्गं अपि	मोक्ष भी
न परिलषन्ति	नहीं पसन्द करते
ते चरणसरोज	(वे) आपके चरण-कमलोंके
हंसकुल संग	(प्रेमी) परमहंस समुदायके साथसे
विसृष्ट गृहाः	गृह-त्याग कर देते हैं ॥२१॥

त्वदनुपथं कुलायमिदमात्मसुहृत्प्रियव-
च्चरति तथोन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च ।
न बत रमन्त्यहो असदुपासनयाऽऽत्महनो
यदनुशया भ्रमन्त्युरुभये कुशरीरभृतः ॥२२॥

त्वत् अनुपथं कुलायं इदं आत्मसुहृत् प्रियवत् चरति तथा उन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च न बत रमन्ति अहो असत् उपासनया आत्महनः यत् अनुशया भ्रमन्ति उरुभये कुशरीरभृतः ॥२२॥

इदं कुलायं	यह शरीर	असत् उपासनया	असत् विषयोंकी उपासनामें लगनेसे
त्वत् अनुपथं	आपके मार्गके पीछे चलनेपर	आत्महनः	आत्महत्या प्राय करनेवाले
आत्मसुहृत्	अपने मित्र	न रमन्ति	(आपमें) नहीं लगते (उसमें लगते हैं)
प्रियवत् चरति	प्रियके समान व्यवहार करता है	यत् अनुशया	जिसके पीछे लगकर
तथा त्वयि च	तथा आप भी	कुशरीरभृतः	(कीट-पशु आदि) बुरे शरीर धारण करके
उन्मुखे	इसके अभिमुख	उरुभये	अत्यन्त भयपूर्ण (संसार)में
हिते प्रिय	हितैषी, प्रिय	भ्रमन्ति	भटकते हैं ॥२२॥
आत्मनि	आत्मा हैं		
बत अहो	फिर भी आश्चर्य है कि		

निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदि य-
न्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् ।
स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियो
वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रि सरोजसुधाः ॥२३॥

निभृत मरुत् मनः अक्षद्दृढ़ योगयुजः हृदि यत् मुनयः उपासते तत् अरयः अपि ययुः स्मरणात् स्त्रियः उरग इन्द्रभोग भुजदण्ड विषक्तधियः वयं अपि ते समाः समदृशः अंघ्रि सरोज सुधाः ॥२३॥

निभृत	(आपकी प्राप्ति तो सरल है) एकान्तमें	**तत् ययुः**	उन्हीं (आपको) प्राप्त करते हैं ।
मरुत् मनः	प्राण, मन	**उरग इन्द्रभोग**	सर्पेन्द्रके शरीरके समान
अक्षद्दृढ़	इन्द्रियोंको स्थिर करके	**भुजदण्ड**	(मोटे लम्बे) आपके भुजदण्डोंमें
योगयुजः	योग करनेवाले	**विषक्तधियः**	आसक्त चित्त
मुनयः यत्	मुनिगण जिनकी	**स्त्रियः अपि**	स्त्रियां (गोपियां) भी
हृदि उपासते	हृदयमें उपासना करते हैं,	**वयं समाः**	हम श्रुतियोंके समान
अरयः अपि	शत्रु भी	**ते समदृशः**	आप समदर्शीके
स्मरणात्	(वैर भावसे) स्मरण करनेसे	**अंघ्रि सरोज सुधा**	चरण-कमलका अमृत पाती हैं ॥२३॥

क इह नु वेद बतावरजन्मलयोऽग्रसरं
यत उदगादृषिर्यमनु देवगणा उभये ।
तर्हि न सन्न चासदुभयं न च कालजवः
किमपि न तत्र शास्त्रमवकृष्य शयीत यदा ॥२४॥

कः इह नु वेद बत अवरजन्मलयः अग्रसरं यत उदगात् ऋषिः यं अनु देवगणा उभये तर्हि न सत् न च असत् उभयं न च कालजवः किमपि न तत्र शास्त्रं अवकृष्य शयीत यदा ॥२४॥

अवरजन्मलयः	जिसकी जन्म-मृत्यु पीछे ही हो जाती है	**वेद**	उसे जान सके
		यत ऋषिः	जिससे परमर्षि ब्रह्मा
नु इह कः	भला इस संसारमें ऐसा कौन है जो	**उदगात्**	उत्पन्न हुए
		यं अनु	जिनके पीछे

उभये देवगणा	दोनों प्रकार (निवृत्ति एवं प्रवृत्ति परायण) देवगण हुए	**शयीत**	सो जाते हैं तो
		तर्हि न सत्	तब न कारण होता
यदा	और जब (आप)	**न असत्**	न कार्य
शास्त्रं अवकृष्य	वेदको अपनेमें आकृष्ट करके	**च न कालजवः**	और न कालकी गति
		तत्र किमपि न	वहाँ कुछ भी नहीं होता ॥२४॥

जनिमसतः सतो मृतिमुतात्मनि ये च भिदां
विपणमृतं स्मरन्त्युपदिशन्ति त आरुपितैः ।
त्रिगुणमयः पुमानिति भिदा यदबोधकृता
त्वयि न ततः परत्र स भवेदवबोधरसे ॥२५॥

जनि असतः सतः मृति उत आत्मनि ये च भिदां विपणं ऋतं स्मरन्ति उपदिशन्ति त आरुपितैः त्रिगुणमयः पुमान् इति भिदा यत् अबोध कृता त्वयि न ततः परत्र स भवेत् अवबोध रसे ॥२५॥

असतः जनि	असत् (जगत) की उत्पत्ति होती है	**पुमान् त्रिगुणमयः**	जीव त्रिगुणमय है
		इति भिदा	इसलिए (गुणोंके तारतम्यसे) उसमें भेद है
सतः मृति	सत् (जीव) की मृत्यु (मुक्ति) होती है	**यत् अबोध कृता**	क्योंकि यह तो अज्ञान जन्य है
उत आत्मनि भिदां	तथा आत्मामें भेद है (जीव अनेक हैं)	**त्वयि ततः परत्र**	आप उस (अज्ञान) से सर्वथा परे
ये च स्मरन्ति	जो भी ऐसा सोचते तथा	**अवबोध रसे**	ज्ञान स्वरूपमें
उपदिशन्ति	उपदेश करते हैं	**स न भवेत्**	वह अज्ञान नहीं हो सकता है ॥२५॥
त आरुपितैः	वे आरोपित		
विपणं ऋतं	व्यवहारिक सत्य कहवे हैं		

सदिव मनस्त्रिवृत्त्वयि विभात्यसदामनुजात्
सदभिमृशन्त्यशेषमिदमात्मतयाऽऽत्मविदः ।
नहि विकृतिं त्यजन्ति कनकस्य तदात्मतया
स्वकृतमनुप्रविष्टमिदमात्मतयावसितम् ॥२६॥

सत् इव मनः त्रिवृत् त्वयि विभाति असत् आमनुजात् सत् अभिमृशन्ति अशेषं इदं आत्मतया आत्मविदः न हि विकृतिं त्यजन्ति कनकस्य तत् आत्मतया स्वकृतं अनुप्रविष्टं इदं आत्मतया अवसितम् ॥२६॥

आमनुजात्	मनुष्य (पुरुष) से लेकर	**हि कनकस्य विकृतिं**	क्योंकि स्वर्णके विकार (आभूषणों) को
त्रिवृत्	त्रिगुणमय (सम्पूर्ण संसार)	**तत् आत्मतया**	उस (स्वर्णका) स्वरूप होनेसे
असत्	असत् (होनेपर भी)	**त्यजन्ति न**	त्यागते नहीं हैं
मनः सत् इव	मनके द्वारा सत्के समान	**स्वकृतं**	(इसी प्रकार) अपने द्वारा निर्मित
त्वयि विभाति	आपमें प्रतीत हो रहा है	**इदं**	इस जगतमें
आत्मविदः	आत्मतत्त्ववेत्ताजन	**अनुप्रविष्टं**	सर्वत्र प्रविष्ट (आपको)
इदं अशेषं	इस सम्पूर्णको	**आत्मतया**	आत्माका स्वरूप
आत्मतया	अपना स्वरूप होनेसे	**अवसितं**	(ज्ञानी) जानते हैं
सत् अभिमृशन्ति	सत्स्वरूपमें विचार करते हैं		॥२६॥

तव परि ये चरन्त्यखिलसत्त्वनिकेततया
त उत पदाऽऽक्रमन्त्यविगणय्य शिरो निर्ऋतेः ।
परिवयसे पशूनिव गिरा विबुधानपि तां-
स्त्वयि कृतसौहृदाः खलु पुनन्ति न ये विमुखाः ॥२७॥

तव परि ये चरन्ति अखिलसत्व निकेततया त उत पदा आक्रमन्ति अविगणय्य शिरः निर्ऋतेः परिवयसे पशून् इव गिरा बिबुधान् अपि तान् त्वयि कृतसौहृदाः खलु पुनन्ति न ये विमुखाः ॥२७॥

अखिलसत्त्व निकेततया	समस्त प्राणियोंके निवास (अधिष्ठान) रूपसे	**गिरा**	अपनी वेदवाणीसे (आप)
ये तव	जो आपकी	**बिबुधान् अपि**	देवताओंको भी
परि चरन्ति	परिचर्या करते हैं	**परिवयसे**	बाँधते हैं
त उत निर्ऋतेः	वही तो मृत्युकी भी	**ये विमुखाः**	जो (आपसे) विमुख हैं
अविगणय्य	अवमानना करके	**न**	(वे) ऐसा नहीं कर सकते
शिरः पदा आक्रमन्ति	उसके सिरपर लात मारते हैं	**खलु त्वयि**	अहो आपसे
पशून् इव	(अन्यथा) पशुओंकी भाँति	**कृतसौहृदाः**	मैत्री करने वाले
		तान् अपि	उन्हें भी
		पुनन्ति	पवित्र करते हैं

॥२७॥

त्वमकरणः स्वराडखिलकारकशक्तिधर-
स्तव बलिमुद्वहन्ति समदन्त्यजयानिमिषाः ।
वर्षभुजोऽखिलक्षितिपतेरिव विश्वसृजो
विदधति यत्र ये त्वधिकृता भवतश्चकिताः ॥२८॥

त्वं अकरणः स्वराट अखिलकारक शक्तिधरः तव बलिं उद्वहन्ति समदन्ति अजया अनिमिषाः वर्षभुजः अखिलक्षितिपतेः इव विश्वसृजः विदधति यत्र ये तु अधिकृता भवतः चकिताः ॥२८॥

त्वं अकरणः	आप इन्द्रियादि तथा अन्तःकरण रहित हो, किन्तु	**अखिलकारक शक्तिधरः**	समस्त उपकरणोंकी शक्ति धारण करते हो

वर्षभुजः	जैसे एक वर्षके ठेकेदार (या सामन्तगण प्रजासे कर लेकर)
अखिलक्षितिपतेः	सम्राट्को (कर देते हैं)
इव	उनके समान
पे तु भवत;	जो भी आपके द्वारा
अधिकृता	अधिकार प्राप्त
यत्र विश्वसृजः	जहाँ भी लोकपाल हैं
अनिमिषाः	वे देवता
तव बलिं उद्वहन्ति	आपको उपहार देकर
समदन्ति	अपना भाग भोगते हैं
चकिताः	चकित होकर
अजया	माया प्रेरित
विदधति	(आपके) विधानका पालन करते हैं

स्थिरचरजातयः स्युरजयोत्थनिमित्तयुजो
विहर उदीक्षया यदि परस्य विमुक्त ततः ।
न हि परमस्य कश्चिदपरो न परश्च भवेद्
वियत इवापदस्य तव शून्यतुलां दधतः ॥२९॥

स्थिरचरजातयः स्युः अजयोत्थ निमित्तयुजः विहर उत् ईक्षया यदि परस्यविमुक्त ततः न हि परमस्य कश्चित् अपरः न परः च भवेत् वियत इव अपदस्य तव शून्यतुलां दधतः ॥२९॥

यदि ईक्षया	यदि अपना दृष्टिपात देकर
निमित्तयुजः	(सृष्टिके) निमित्त बनकर (आप)
विहर	विहार करते हैं (तब)
अजयोत्थ	मायासे उत्पन्न
स्थिरचरजातयः	सब स्थावर-जंगम जातियाँ
स्युः	उत्पन्न होती हैं
उत् ततः हि	अन्यथा फिर क्योंकि
परस्यविमुक्त	आप (मायासे) परे नित्यमुक्त
अपदस्य	स्थान (आश्रय) रहित
वियत इव	आकाशके समान
शून्यतुलां	शून्यकी समानता
दधतः तव	धारण किये आप
परमस्य	परमपुरुषका
न कश्चित्	न कोई अपना
च न परः भवेत्	तथा न पराया हो सकता ॥२९॥

तात्पर्य—आप यदि निमित्त बनकर मायाको देखें तो आपकी दृष्टिसे मायासे यह सब जड़-चेतन सृष्टि उत्पन्न होती है। आप नित्यमुक्त, मायासे परे आकाशके समान स्वाश्रय हैं। आपका कोई अपना-पराया नहीं है। अतः आपके लिए सृष्टि किसी निमित्तसे नहीं होती। यह तो आपका लीला विहार है।

अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगता-
स्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा।
अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियन्तृ भवेत्
सममनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया ॥३०॥

अपरिमिता ध्रुवाः तनुभृतः यदि सर्वगताः तर्हि न शास्यत इति नियमः ध्रुव न इतरथा अजनि च यत् मयं तत् अविमुच्य नियन्तृ भवेत् समं अनुजानतां यत् अमतं मत दुष्टतया ॥३०॥

अपरिमिता	असंख्य
तनुभृतः	जीव
यदि ध्रुवाः	यदि नित्य और
सर्वगताः	सर्वव्यापक हों
तर्हि न शास्यत	तब आप उनका नियन्त्रण
न इति	नहीं कर सकते ऐसा
ध्रुव नियमः	निश्चित नियम होगा
इतरथा न	इससे भिन्न स्थिति नहीं हो सकती
च अजनि	और अजन्मा पुरुष
यत् मयं	जिस स्वरूपका है
तत् अविमुच्य	उसे छोड़े बिना ही
नियन्तृ भवेत्	नियन्ता होता है
समं	उस एकरस तत्व (आपको)
अनुजानतां	ठीक जानकर
यत् अमतं	जो मत नहीं हैं
मत दुष्टतया	वे मत दूषित हैं ॥३०॥

तात्पर्य—यदि जीव असंख्य, नित्य, सर्वव्यापक हों तो उनका कोई नियन्ता नहीं हो सकता, इससे भिन्न नियम ही नहीं बन सकता और आप अजन्माको जो (सच्चिदानन्द) स्वरूप है, उसे त्यागे बिना ही आप नियन्ता

हैं। जीव तो त्रिगुणमय है। उन गुणोंको त्यागे बिना नियन्ता हो नहीं सकता। अतः जो एकरस समतत्वसे सहमत नहीं हैं, उनके सिद्धान्तमें ही दोष है।

न घटत उद्भवः प्रकृतिपूरुषयोरजयो-
रुभययुजा भवन्त्यसुभृतो जलबुद्बुदवत्।
त्वयि त इमे ततो विविधनामगुणैः परमे
सरित इवार्णवे मधुनि लिल्युरशेषरसाः ॥३१॥

न घटत उद्भवः प्रकृतिपूरुषयोः अजयोः उभययुजा भवन्ति असुभृतः जलबुद्बुदवत् त्वयि त इमे ततः विविध नाम गुणैः परमे सरित इव अर्णवे मधुनि लिल्युः अशेषरसाः ॥३१॥

अजयोः	अजन्मा	**त इमे**	वे ये
प्रकृतिपूरुषयोः	प्रकृति और पुरुष (दोनों) की	**विविध नाम गुणैः**	नाना नाम एवं गुणवाले
उद्भवः न घटेत	उत्पत्ति नहीं हो सकती	**त्वयि ततः परमे**	आप सर्वव्यापक परम पुरुषमें
उभययुजा	दोनोंका संयोग होने पर	**अर्णवे**	समुद्रमें
जलबुद्बुदवत्	जलमें बुलबुलोंके समान	**सरित इव**	नदियोंके समान
असुभृतः	प्राणधारी जीव	**मधुनि**	शहदमें
भवन्ति	उत्पन्न होते हैं	**अशेषरसाः**	समस्त रसोंके समान
		लिल्युः	लीन हो जाते हैं ॥३१॥

नृषु तव मायया भ्रममयीष्ववगत्य भृशं
त्वयि सुधियोऽभवे दधति भावमनुप्रभवम्।
कथमनुवर्ततां भवभयं तव यद्भ्रुकुटिः
सृजति मुहुस्त्रिणेमिरभवच्छरणेषु भयम् ॥३२॥

नृषु तव मायया भ्रमं अमीषु अवगत्य भृशं त्वयि सुधियः अभवे दधति भावं अनुप्रभवं कथं अनुवर्ततां भवभयं तव यत् भ्रुकुटिः सृजति मुहुः त्रिणेमिः अभवत् शरणेषु भयम् ॥३२॥

अमीषु नृषु	इन मनुष्योंको
तव मायया	आपकी मायासे
भृशं भ्रम	बार-बार (जन्म-मरणमें) भटकते
अवगत्य	जानकर
सुधियः	बुद्धिमान पुरुष
अभवे त्वयि	मोक्ष स्वरूप आपमें
अनुप्रभवं	सदा बढ़ते रहने वाला
भावं दधति	भक्ति-भाव धारण करते हैं
भवभयं	(उनके लिए) संसारका भय
कथं अनुवर्ततां	कैसे आ सकता है
यत् तव	क्योंकि आपका
भ्रुकुटिः	भ्रूभङ्ग रूप
त्रिणेमिः	(सदी, गर्मी, वर्षा रूप) तीन नाभि वाला-काल
अभवत् शरणेषु	जो आपकी शरण नहीं हैं उनके लिए ही
मुहुः भयं	बार-बार (जन्म-मरणका) भय
सृजति	उत्पन्न करता है ॥३२॥

विजितहृषीकवायुभिरदान्तमनस्तुरगं
य इह यतन्ति यन्तुमतिलोलमुपायखिदः ।
व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणं
वणिज इवाज सन्त्यकृतकर्णधरा जलधौ ॥३३॥

विजितहृषीक वायुभिः अदान्त मनः तुरगं य इह यतन्ति यन्तुं अति लोलं उपायखिदः व्यसनशत अन्विताः सम अवहाय गुरोः चरणं वणिज इव अज सन्ति अकृत कर्णधरा जलधौ ॥३३॥

अज	अजन्मा प्रभु !
वायुभिः	प्राणायाम द्वारा
विजितहृषीक	इन्द्रियोंको जीतकर
य इह	जो संसारमें
गुरोः चरणं	गुरुदेवके चरणोंकी
सम अवहाय	पूरी उपेक्षा करके
अदान्त	अनियन्त्रित
अति लोलं	अत्यन्त चंचल

मनः तुरगं	मनरूपी घोड़ेको
यन्तुं यतन्ति	नियन्त्रणका प्रयत्न करते हैं
व्यसनशत	सैकड़ों व्यसनोंसे
अन्विताः	युक्त होनेके कारण (वे)
उपायखिदः	उपायसे ही खिन्न (निराश) हो जाते हैं।
अकृत कर्णधरा	कर्णधार बनाये बिना
जलधौ	समुद्रमें
वणिज इव	व्यापारीके समान वे
सन्ति	हैं ॥३३॥

स्वजनसुतात्मदारधनधामधरासुरथै-
स्त्वयि सति किं नृणां श्रयत आत्मनि सर्वरसे ।
इति सदजानतां मिथुनतो रतये चरतां
सुखयति को न्विह स्वविहते स्वनिरस्तभगे ॥३४॥

स्वजन सुत आत्म दार धन धाम धरा सुरथैः त्वयि सति किं नृणां श्रयत आत्मनि सर्वरसे इति सत् अजानतां मिथुनतः रतये चरतां सुखयति कः नु इह स्व विहते स्व निरस्त भगे ॥३४॥

आत्मनि	आत्मस्वरूप
सर्वरसे	सर्वानन्द रूप
त्वयि श्रयत सति	आपका आश्रय लेनेपर
स्वजन सुत	आत्मीय, पुत्र
आत्म दार	शरीर, पत्नी
धन धाम	सम्पत्ति, भवन
धरा सुरथैः	भूमि, उत्तम वाहनोंसे
नृणां किं	मनुष्यको क्या प्रयोजन
इति सत् अजानतां	इस सत्यको न जानकर
मिथुनतः	स्त्री-पुरुषका जोड़ा बनाकर
रतये चरतां	सुखके लिए आचरण करनेवाले
स्व विहते	आत्म तत्वसे परांमुख
स्व भगे	अपने ऐश्वर्यसे
निरस्त	दूर हुएको
इह नु कः	इस लोकमें भला कौन
सुखयति	सुखी कर सकता है ॥३४॥

भुवि पुरुपुण्यतीर्थसदनान्यृषयो विमदा-
स्त उत भवत्पदाम्बुजहृदोऽघभिदङ्घ्रिजलाः ।
दधति सकृन्मनस्त्वयि य आत्मनि नित्यसुखे
न पुनरुपासते पुरुषसारहरावसथान् ॥३५॥

भुवि पुरुपुण्य तीर्थ सदनानि ऋषयः विमदाः त उत भवत् पदाम्बुज हृदः अघभित् अंघ्रि जलाः दधति सकृत् मनः त्वयि यः आत्मनि नित्यसुखे न पुनः उपासते अंघ्रि पुरुषसार हर आवसथान् ॥३५॥

विमदाः ऋषयः	मद रहित ऋषिगण	**मनः**	उनका मन
भुवि	पृथ्वी पर	**आत्मनि**	आत्मस्वरूप
पुरुपुण्य	अत्यन्त पवित्र	**नित्यसुखे**	नित्यानन्द रूप
सदनानि तीर्थ	निवास तीर्थ हैं	**त्वयि**	आपमें (लग जाता है, वे)
उत त	अहो उन		
भवत् पदाम्बुज	आपके चरण-कमल	**पुरुषसार**	पुरुषके सारको
हृदः	हृदयमें धारण करने वालोंका	**हर आवसथान्**	हरण करनेवाली घर-गृहस्थीकी
अघभित्	पापनाशक	**पुनः उपासते न**	फिर सेवा नहीं करते ॥३५॥
अंघ्रि जलाः	(चरणामृत)		
यः सकृत् दधति	जो एक बार भी धारण करते हैं		

सत इदमुत्थितं सदिति चेन्ननु तर्कहतं
व्यभिचरति क्व च क्व च मृषा न तथोभययुक् ।
व्यवहृतये विकल्प इषितोऽन्धपरम्परया
भ्रमयति भारती त उरुवृत्तिभिरुक्थजडान् ॥३६॥

सत इदं उत्थितं सत इति चेत् ननु तर्कहतं व्यभिचरति क्व च क्व च मृषा न तथा उभययुक् व्यवहृतये विकल्प इषितः अन्धपरम्परया भ्रमयति भारती त उरुवृत्तिभिः उक्थजडान् ॥३६॥

इदं सत	यह जगत् सत (परमात्मासे)
उत्थितं	उत्पन्न हुआ है
चेत् इति सत	यदि इसलिए (इसे) सत् कहो
ननु तर्कहतं	तो निश्चय (यह बात) युक्तिसे असिद्ध है क्योंकि
क्व च व्यभिचरित	कहीं तो दूसरे प्रकारकी होती है (जैसे दूधसे उत्पन्न दही दूध नहीं होता)
क्व च मृषा	कहीं झूठी-असत् होती है (जैसे रस्सी में दीखता सर्प)
तथा उभययुक्	इस प्रकार (व्यभिचरित होनेवाला तथा मिथ्या) दोनोंसे युक्त
न	(सत्य) नहीं होता।
विकल्प	यह (असत्को सत माननेकी) विशेष कल्पना
अन्धपरम्परया	अन्धी (विवेकहीन) परम्परासे
इषितः	मान ली गयी गयी है।
व्यवहृतये	व्यवहारके लिए (चली आ रही) है
उरुवृत्तिभिः	बहुत प्रकारकी वृत्तियों (कर्मपरक निर्देशों) से
भारती	वेद-वाणी भी
उक्थजडान्	कर्मकाण्डमें मूढ़ाग्रह रखनेवालोंको
भ्रमयति	भ्रान्त करती है

॥३६॥

तात्पर्य—यदि कहो कि सत्स्वरूप परमात्मासे उत्पन्न होनेके कारण संसार सत्य है तो यह बात युक्ति संगत नहीं है, क्योंकि सत्य सदा एक-सा रहता है और संसारमें कहीं परिवर्तन होता है। दूध दही बन जाता है और कहीं मिथ्या दर्शन होता है। रस्सी सर्प दीखती है। लेकिन विवेकहीन अन्ध परम्परासे व्यवहार चलानेके लिए संसारको सत्यके रूपमें कल्पित किया जाता है। यदि कहो कि वेदमें भी कर्मके करने, न करनेका विधान है तो ऐसी सब श्रुतियाँ तत्वज्ञके लिए नहीं हैं। वे कर्माग्रह रखनेवालोंको ही इस भव-भ्रममें भटकाती हैं।

न यदिदमग्र आस न भविष्यदतो निधना-
दनु मितमन्तरा त्वयि विभाति मृषैकरसे।

अत उपमीयते द्रविणजातिविकल्पपथै-
वितथमनोविलासमृतमित्यवयन्त्यबुधाः ॥३७॥

न यत् इदं अग्र आस न भविष्यत् अतः निधनात् अनु मित् अन्तरा त्वयि विभाति मृषा एकरसे अत उपमीयते द्रविण जाति विकल्प पथैः वितथ मनः विलासं ऋतं इति अवयन्ति अबुधाः ॥३७॥

इदं यत्	यह जगत क्योंकि
न अग्र आस	न (उत्पन्न होनेसे) पहिले था
न भविष्यत्	न आगे रहेगा
अतः निधनात्	अतः (इसके) नाशसे
अन्तरा अनु मित	(इसकी)मध्यावस्था का अनुमान हो जाता है
त्वयि एकरसे	आप एकरसमें
मृषा विभाति	मिथ्या रूपसे ही प्रतीत होता है ।
अतः द्रविण	अतः (मिट्टी, सोना आदि) द्रव्यों
जाति विकल्प	(घड़ा, कुण्डल आदि) जातियोंकी विशेष कल्पना
पथैः	मार्ग (उदाहरणों)से
उपमीयते	(इसकी श्रुतिमें) उपमा दी जाती है
वितथ मनः विलासं	इस व्यर्थके मनो विलासको
अबुधाः	अज्ञानी लोग
ऋतं इति	सत्य है ऐसा
अवयन्ति	समझते हैं ॥३७॥

स यदजया त्वजामनुशयीत गुणांश्च जुषन्
भजति सरूपतां तदनु मृत्युमपेतभगः ।
त्वमुत जहासि तामहिरिव त्वचमात्तभगो
महसि महीयसेऽगुणितेऽष्टपरिमेयभगः ॥३८॥

स यत् अजया तु अजां अनुशयीत गुणान् च जुषन् भजति सरूपतां तत् अनु मृत्युं अपेतभगः त्वं उत जहासि तां अहिः इव त्वचं आत्तभगः महसि महीयसे अष्टगुणिते अपरिमेयभगः ॥३८॥

यत् स	क्योंकि यह वह (संसारको सत्य मानने वाला अज्ञानी)
अजया	मायाके द्वारा (मोहित)
अजां गुणान्	मायाके गुणोंका
जुषन्	सेवन करता
अनुशयीत	उन्हींमें सोता (निमग्न) रहता है
तत् सरूपतां	उस मायाके ही सारूप्यको
भजति	ग्रहण कर लेता है
अपेतभगः	अपने (आत्म) वैभवसे वंचित होकर
अनु मृत्युं	(उन भोगोंके) पीछे मरता है।
उत त्वं तां	फिर आप उसे
अहिःत्वचं इव	सांपकी केंचुलके समान
जहासि	त्याग देते हो।
अष्टगुणिते	आठों सिद्धियों युक्त
आत्तभगः	समस्त ऐश्वर्य ग्रहण किये
महसि महीयसे	(आप) महानोंसे भी महान
अपरिमेयभगः	असीमित ऐश्वर्य-शाली हैं ॥३८॥

यदि न समुद्धरन्ति यतयो हृदि कामजटा
दुरधिगमोऽसतां हृदि गतोऽस्मृतकण्ठमणिः।
असुतृपयोगिनामुभयतोऽप्यसुखं भगव-
न्ननपगतान्तकादनधिरूढपदाद् भवतः ॥३९॥

यदि न समुद्धरन्ति यतयः हृदि कामजटा दुरधिगमः असतां हृदि गतः अस्मृतकण्ठमणिः असुतृप योगिनां उभयतः अपि असुखं भगवन् अनपगत अन्तकात् अनधिरूढ पदात् भवतः ॥३९॥

यदि यतयः	यदि साधक
हृदि काम जटा	हृदयमें-से कामनाओंकी जड़ें
न समुद्धरन्ति	नहीं उखाड़ फेंकतेतो
असतां	उन असन्तोंके लिए
अस्मृतकण्ठमणिः	विस्मृत कण्ठकी मणिके समान
हृदि गतः	(आप) हृदयमें (विराजमान) होने पर भी
दुरधिगमः	दुष्प्राप्य हैं।

भगवन्	भगवन् !	**अन अपगत**	छुटकारा पाये बिना तथा
असुतृप	अपने प्राणोंको तृप्त करनेवाले (भोगरत)	**भवतः पदात्**	आपके धाम
योगिनां	योगियों (साधुओं) के लिए	**अनधिरूढ**	पहुँचे बिना
अन्तकात्	मृत्युसे	**उभयतः अपि**	(इस लोक-परलोक) दोनों ओरसे
		असुखं	दुःख ही है ॥३९॥

विशेष—क्योंकि इस लोकमें खुलकर भोग-सुख नहीं ले पाते। आशंकित रहते हैं और परलोक तो नष्ट हुआ ही है।

त्वदवगमी न वेत्ति भवदुत्थशुभाशुभयो-
र्गुणविगुणान्वयांस्तर्हि देहभृतां च गिरः।
अनुयुगमन्वहं सगुण गीतपरम्परया
श्रवणभृतो यतस्त्वमपवर्गगतिर्मनुजैः ॥४०॥

त्वत् अवगमी न वेत्ति भवत् उत्थ शुभ अशुभयोः गुण विगुण अन्वयान् तर्हि देहभृतां च गिरः अनुयुगं अनु अहं सगुण गीत परम्परया श्रवण भृतः यतः त्वं अपवर्ग गतिः मनुजैः ॥४०॥

त्वत् अवगमी	आपके स्वरूपको जाननेवाला ज्ञानी	**गुण विगुण**	गुण-दोष
भवत् उत्थ	आप द्वारा प्रदत्त	**अन्वयात्**	सूचित करनेवाली
शुभ अशुभयोः	पुण्य-पापके फल (सुख-दुःख)को	**गिरः न**	शास्त्रवाणी (उसके लिए)नहीं रह जाती
न वेत्ति	नहीं जानता (उनका अनुभव नहीं करता)	**यतः त्वं**	क्योंकि आप
तर्हि	तब तो	**मनुजैः**	मनुष्योंके लिए
देहभृतां	देहाभिमानियोंके लिए	**अपवर्ग गतिः**	मोक्ष स्वरूप परम गति हो
		अनुयुगं	प्रत्येक युगमें
		सगुण	सगुण (अवतरित) हुए (आपके)

गीत परम्परया	परम्परासे प्राप्त चरितगानको	**श्रवण भृतः च**	श्रवण करनेवालोंके लिए भी (वह शास्त्र वाणी नहीं रह जाती) ॥४०॥
अनु अहं	प्रतिदिन		

द्युपतय एव ते न ययुरन्तमनन्ततया
त्वमपि यदन्तराण्डनिचया ननु सावरणाः ।
ख इव रजांसि वान्ति वयसा सह यच्छ्रुतय-
स्त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ॥४१॥

द्युपतय एव ते न ययुः अन्तं अनन्ततया त्वं अपि यत् अन्तर अण्ड निचया ननु स आवरणाः ख इव रजांसि वान्ति वयसा सह यत् श्रुतयः त्वयि हि फलन्ति अतत् निरसनेन भवत् निधनाः ॥४१॥

अनन्ततया	अनन्त होनेके कारण	**वान्ति**	उड़ते रहते हैं (उसका पार कैसे पाया जा सकता है)
द्युपतय एव	स्वर्गाधिप इन्द्रादि तथा	**हि यत् श्रुतयः**	क्योंकि (हम) श्रुतियाँ भी (साक्षात् वर्णनमें असमर्थ होकर)
त्वं अपि	स्वयं आप भी		
ते अन्तं न ययुः	आपका पार नहीं पा सकते ।	**अतत्**	आपसे भिन्न अतथ्य का
यत् अन्तर	जिस (आय)के भीतर	**निरसनेन**	निषेध करती हुई
स आवरणाः	(अपने-से उत्तरोत्तर दस गुने बड़े सात) आवरणों सहित	**निधनाः भवत्**	अपना भी निषेध करके
अण्ड निचया	ब्रह्माण्ड समूह	**त्वयि फलन्ति**	आपमें सफल हो जाती हैं ॥४१॥
ननु	निश्चय		
ख वयसा सह	आकाशमें पक्षियोंके साथ		
रजांसि इव	धूलि कणोंके समान		

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

इत्येतद् ब्रह्मणः पुत्रा आश्रुत्यात्मानुशासनम् ।
सनन्दनमथानर्चुः सिद्धा ज्ञात्वाऽऽत्मनो गतिम् ॥४२॥

इति एतत् ब्रह्मणः पुत्रा आश्रुत्य आत्म अनुशासनं सनन्दनं अथ आनर्चुः सिद्धाः ज्ञात्वा आत्मनः गतिम् ॥४२॥

इति एतत् इस प्रकार यह
आत्म अनुशासनं आत्मोपदेश
आश्रुत्य सुनकर
सिद्धाः ब्रह्मणः पुत्रा उन सिद्ध ब्रह्माके पुत्रोंने
आत्मनः गतिं आत्माका स्वरूप
ज्ञात्वा अथ जानकर
सनन्दनं आनर्चुः सनन्दनजीकी पूजा की ॥४२॥

इत्यशेषसमाम्नाय पुराणोपनिषद्रसः ।
समुद्धृतः पूर्वजातैर्व्योमयानैर्महात्मभिः ॥४३॥

इति अशेष समाम्नाय पुराण उपनिषत् रसः सम उद्धृतः पूर्वजातैः व्योमयानैः महात्मभिः ॥४३॥

इति पूर्वजातैः इस प्रकार उन सबसे पहिले उत्पन्न
व्योमयानैः आकाशगामी
महात्मभिः महात्माओं द्वारा
अशेष समाम्नाय सम्पूर्ण वेद-शास्त्रों
पुराण उपनिषत् पुराणों, उपनिषदों का
रसः रस (सार)
सम उद्धृतः भली प्रकार निकाला गया है ॥४३॥

त्वं चैतद् ब्रह्मदायाद श्रद्धयाऽऽत्मानुशासनम् ।
धारयंश्चर गां कामं कामानां भर्जनं नृणाम् ॥४४॥

त्वं च एतत् ब्रह्मदायाद श्रद्धया आत्म अनुशासनं धारयन् चर गां कामं कामानां भर्जनं नृणाम् ॥४४॥

ब्रह्मदायाद	ब्रह्माके पुत्र नारदजी !
त्वं च एतत्	तुम भी इस
नृणां कामानां	मनुष्योंकी कामनाओंको
भर्जनं	भस्म करनेवाले
आत्म अनुशासनं	आत्मोपदेशको
धारयन्	धारण करके
गां कामं चर	पृथ्वीपर यथेच्छ विचरण करो ॥४४॥

श्रीशुक उवाच ॥

एवं स ऋषिणाऽऽदिष्टं गृहीत्वा श्रद्धयाऽऽत्मवान् ।
पूर्णः श्रुतधरो राजन्नाह वीरव्रतो मुनिः ॥४५॥

एवं स ऋषिणा आदिष्टं गृहीत्वा श्रद्धया आत्मवान् पूर्णः श्रुतधरः राजन् आह वीरव्रतः मुनिः ॥४५॥

राजन्	राजन् !
एवं ऋषिणा	इस प्रकार नारायण ऋषि द्वारा
आदिष्टं	आदेश देने पर
स आत्मवान्	वे धैर्यशाली
वीरव्रतः	नैष्ठिक ब्रह्मचारी
श्रुतधरः	एक बार सुनकर स्मरण रखनेवाले
मुनिः	मुनि नारदने
श्रद्धया गृहीत्वा	श्रद्धापूर्वक उसे ग्रहण करके
पूर्णः आह	पूर्ण मनोरथ होकर कहा ॥४५॥

॥ नारद उवाच ॥

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायामलकीर्त्तये ।
यो धत्ते सर्वभूतानामभवायोशतीः कलाः ॥४६॥

नमः तस्मै भगवते कृष्णाय अमल कीर्तये यः धत्ते सर्वभूतानां अभवाय उशतीः कलाः ॥४६॥

यः सर्वभूतानां	जो सब प्राणियोंके
अभवाय	मोक्षके लिए
उशतीः कलाः	कमनीय कलावतार
धत्ते	धारण किये हैं

तस्मै अमल कीर्तये	उन निर्मल कीर्ति	**नमः**	नमस्कार ॥४६॥
भगवते कृष्णाय	भगवान श्रीकृष्णको		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

इत्याद्यमृषिमानम्य तच्छिष्यांश्च महात्मनः ।
ततोऽगादाश्रमं साक्षात् पितुर्द्वैपायनस्य मे ॥४७॥

इति आद्यं ऋषिं आनम्य तत् शिष्यान् च महात्मनः ततः अगात् आश्रमं साक्षात् पितुः द्वैपायनस्य मे ॥४७॥

इति	ऐसा कहकर	**ततः मे**	फिर मेरे
आद्यं ऋषिं	उन आदि ऋषि नारायणको	**साक्षात् पितुः द्वैपायनस्य**	साक्षात् पिता श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासजीके
च तत् महात्मनः	तथा उन महात्माके	**आश्रमं अगात्**	आश्रमपर आये ॥४७॥
शिष्यान् आनम्य	शिष्योंको प्रणाम करके		

सभाजितो भगवता कृतासनपरिग्रहः ।
तस्मै तद् वर्णयामास नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥४८॥

सभाजितः भगवता कृत आसन परिग्रहः तस्मै तत् वर्णयामास नारायण मुखात् श्रुतम् ॥४८॥

भगवता	भगवान व्यास द्वारा	**नारायण मुखात्**	नारायण ऋषिके मुखसे
सभाजितः	सत्कृत होकर	**श्रुतं वर्णयामास**	सुना वर्णन किया ॥४८॥
आसन परिग्रहः	कृत आसन स्वीकार करके		
तस्मै तत्	उनसे वह		

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

इत्येतद् वर्णितं राजन् यन्नः प्रश्नः कृतस्त्वया ।
यथा ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणेऽपि मनश्चरेत् ॥४९॥

इति एतत् वर्णितं राजन् यत् नः प्रश्नः कृतः त्वया यथा ब्रह्मणि अनिर्देश्ये निर्गुणे अपि मनः चरेत् ॥४९॥

राजन्	राजन् !
यत् नः त्वया	जो हमसे तुमने
प्रश्नः कृतः	प्रश्न किया था वह
इति एतत्	इस प्रकार यह
वर्णितं	(मैंने) वर्णन किया
यथा अनिर्देश्ये	जैसे अनिर्देश्य
निर्गुणे अपि	निर्गुण होनेपर भी
ब्रह्मणि	ब्रह्ममें
मनः चरेत्	मनका प्रवेश हो ॥४९॥

योऽस्योत्प्रेक्षक आदिमध्यनिधने योऽव्यक्तजीवेश्वरो
यः सृष्ट्वेदमनुप्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः ।
यं संपद्य जहात्यजामनुशयी सुप्तः कुलायं यथा
तं कैवल्यनिरस्तयोनिमभयं ध्यायेदजस्रं हरिम् ॥५०॥

यः अस्य उत् प्रेक्षक आदि मध्य निधने यः अव्यक्त जीव ईश्वरः यः सृष्ट्वा इदं अनुप्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः यं संपद्य जहाति अजां अनुशयी सुप्तः कुलायं यथा तं कैवल्य निरस्त योनिं अभयं ध्यायेत् अजस्रं हरिम् ॥५०॥

यः अस्य	जो इस जगतके
आदि मध्य	उत्पत्ति, पालन
निधने	प्रलयके
उत् प्रेक्षक	प्रेरक एवं द्रष्टा हैं,
यः अव्यक्त जीव	जो प्रकृति और जीवके
ईश्वरः	स्वामी हैं,
यः इदं सृष्ट्वा	जो इस जगतकी रचना करके
अनुप्रविश्य	फिर इसमें प्रवेश करके
ऋषिणा	ब्रह्माजी द्वारा
पुरः चक्रे	सब शरीर बनाये तथा
ताः शास्ति	उनका शासन करते हैं ।
यं संपद्य	जिनकी शरण लेकर

अनुशयी	सुषुप्ति मग्न (अविद्याग्रस्त) जीव	**तं कैवल्य**	उन एकमात्र (अद्वितीय)
अजां जहाति	मायाको त्याग देता है	**निरस्त योनिं**	मायातीत
यथा सुप्तः	जैसे सोया पुरुष	**अभयं**	अभय स्वरूप
कुलायं	इस स्थूल शरीरको (विस्मृत रहता है)	**हरिं ध्यायेत्**	श्रीहरिका ध्यान करे ॥५८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
उत्तरार्धे नारदनारायणसंवादे वेदस्तुर्नाम
सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

अथ अष्टाशीतितमोऽध्यायः

। राजोवाच ॥

देवासुरमनुष्येषु ये भजन्त्यशिवं शिवम् ।
प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम् ॥१॥

देव असुर मनुष्येषु ये भजन्ति अशिवं शिवं प्रायः ते धनिनः भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम् ॥१॥

देव असुर	देवता, असुर	**धनिनः भोजा**	धनी और भोग सम्पन्न हैं
मनुष्येषु	तथा मनुष्योंमें	**तु लक्ष्म्याः पतिं**	किन्तु लक्ष्मीपति
ये अशिवं शिवं	जो अमंगल रूप शिव का	**हरिं न**	श्रीहरिके (भजन करने वाले) नहीं ॥१॥
भजन्ति	भजन करते हैं		
प्रायः ते	प्रायः वे		

एतद् वेदितुमिच्छामः संदेहोऽत्र महान् हि नः ।
विरुद्धशीलयोः प्रम्वोर्विरुद्धा भजतां गतिः ॥ २ ॥

एतत् वेदितुं इच्छामः सन्देहः अत्र महान् हि नः विरुद्ध शीलयोः प्रम्वोः विरुद्धा भजतां गतिः ॥२॥

एतत् वेदितुं	इसे जानना	**प्रम्वोः विरुद्ध**	स्वामियोंके विपरीत
इच्छामः	चाहता हूँ	**शीलयोः**	आचरण वाले होने पर
हि अत्र नः	क्योंकि इस विषयमें मुझे	**भजतां**	उनका भजन करने वालोंकी
महान् सन्देहः	बहुत बड़ा संशय है कि	**विरुद्धा गतिः**	उससे उल्टी दशा होती है ॥२॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

शिवः शक्तियुतः शश्वत् त्रिलिङ्गो गुणसंवृतः ।
वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ॥ ३ ॥

शिवः शक्ति युतः शश्वत् त्रिलिङ्गः गुण संवृतः वैकारिकः तैजसः च तामसः च इति अहं त्रिधा ॥३॥

शिवः शश्वत्	शिवजी सदा
शक्ति युतः	(अर्ध नारीश्वर होने से) शक्ति युक्त ही रहते हैं,
गुण संवृतः	गुणोंसे युक्त
त्रिलिङ्गः	अहंकारके अधिष्ठाता हैं,
च अहं त्रिधा	और वह अहंकार तीन प्रकारका है
वैकारिकः	वैकारिक
तैजसः च	तैजस तथा
तामसः इति	तामस इस प्रकार ॥३॥

ततो विकारा अभवन् षोडशामीषु कंचन ।
उपधावन् विभूतीनां सर्वासामश्नुते गतिम् ॥ ४ ॥

ततः विकारा अभवन् षोडश अमीषु कञ्चन उपधावन् विभूतीनां सर्वासां अश्नुते गतिम् ॥४॥

ततः	उस (अवंकार)से
षोडश विकारा	सोलह (दस इन्द्रिय, पंच महाभूत, एक मन) विकार
अभवन्	उत्पन्न हुए
अमीषु कञ्चन	इनमेंसे किसी एकके
विभूतीनां	अधिदेवताकी
उपधावन्	उपासना करनेसे
सर्वासां गतिं	सबके पहुँच (ऐश्वर्य) को
अश्नुते	भोगता है ॥४॥

हरिर्हि निर्गुणः साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः ।
स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन् निर्गुणो भवेत् ॥ ५ ॥

हरिः हि निर्गुणः साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः स सर्वं दृक् उपद्रष्टा तं भजन् निर्गुणः भवेत् ॥५॥

हि हरिः	क्योंकि श्रीहरि	**उपद्रष्टा**	तटस्थ द्रष्टा हैं (अतः)
साक्षात् निर्गुणः	साक्षात् निर्गुण,	**तं भजन्**	उनका भजन करने वाला
प्रकृतेः परः	प्रकृतिसे परे	**निर्गुणः भवेत्**	निर्गुण ब्रह्ममें एकात्मता पाता है ॥५॥
पुरुषः	परम पुरुष हैं		
स सर्वं दृक्	वे सर्वदर्शी हैं		

निवृत्तेष्वश्वमेधेषु राजा युष्मत्पितामहः ।
शृण्वन् भगवतो धर्मानपृच्छदिदमच्युतम् ॥ ६ ॥

निवृत्तेषु अश्वमेधेषु राजा युष्मत् पितामहः शृण्वन् भगवतः धर्मान् अपृच्छत् इदं अच्युतम् ॥६॥

अश्वमेधेषु	अश्वमेधयज्ञ	**युष्मत् पितामहः**	तुम्हारे पितामह
निवृत्तेषु	पूर्ण हो जानेपर	**राजा इदं**	राजा युधिष्ठिरने यही
अच्युतं	अच्युत श्रीकृष्णसे	**अपृच्छत्**	पूछा था ॥६॥
भगवतः धर्मान्	भागवत धर्म		
शृण्वन्	सुनते हुए		

स आह भगवांस्तस्मै प्रीतः शुश्रूषवे प्रभुः ।
नृणां निःश्रेयसार्थाय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ ७ ॥

स आह भगवान् तस्मै प्रीतः शुश्रूवे प्रभुः नृणां निःश्रेयस अर्थाय यः अवतीर्णः यदो कुले ॥७॥

नृणां	मनुष्योंके	**यः यदोः कुले**	जो यदुकुलमें
निःश्रेयस	परम कल्याणके	**अवतीर्णः**	अवतरित हुए थे
अर्थाय	लिए	**स प्रभुः भगवान्**	उन समर्थ भगवानने

प्रीतः तस्मै	प्रसन्न होकर उन		(राजा युधिष्ठिर)
शुश्रुवे आह	सुननेकी इच्छावाले		से कहा ॥७॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः ।
ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दुःखदुःखियम् ॥ ८ ॥

यस्य अहं अनुगृह्णामि हरिष्ये तत् धनं शनैः ततः अधनं त्यजन्ति अस्य स्वजना दुःख दुःखितम् ॥८॥

अहं यस्य	मैं जिस पर	ततः दुःख	तब इस दुःखसे
अनुगृह्णामि	अनुग्रह करता हूँ	दुःखितं	दुःखी
शनैः तत् धनं	धीरे-धीरे उसका धन	अधनं	निर्धनको
हरिष्ये	हरण कर लेता हूँ	अस्य स्वजना	इसके सम्बन्धी
		त्यजन्ति	त्याग देते हैं ॥८॥

स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद् धनेहया ।
मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम् ॥ ९ ॥

स यदा वितथः उद्योगः निर्विण्णः स्यात् धन ईहया मत् परैः कृत मैत्रस्य करिष्ये मत् अनुग्रहम् ॥९॥

यदा स	जब वह	मत् परैः	मेरे परायण जनोंसे
उद्योगः वितथः	अपने प्रयत्नोंके व्यर्थ होने पर	कृत मैत्रस्य	मित्रता कर लेता है (तब)
धन ईहया	धनेच्छासे	मत् अनुग्रहं	(उस पर) मैं अपनी अपनी कृपा
निर्विण्णः स्यात्	उदासीन हो जाता है	करिष्ये	करता हूँ ॥९॥

तद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनन्तकम् ।
अतो मां सुदुराराध्यं हित्वान्यान् भजते जनः ॥१०॥

तत् ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सत् अनन्तकं अतः मां सुदुराराध्यं हित्वा अन्यान् भजते जनः ॥१०॥

तत् सूक्ष्मं	तब (उसे) सूक्ष्म	सुदुराराध्यं	मेरी आराधना बहुत कठिन होनेसे
सत् चिन्मात्रं	सच्चिन्मय		
अनन्तकं	अनन्त	मां हित्वा	मुझे छोड़कर
परमं ब्रह्म	परम ब्रह्म (की प्राप्ति हो जाती है	अन्यान्	दूसरे (देवताओं)की
		भजते	उपासना करते हैं
अतः जनः	अतः लोग		॥१०॥

ततस्त आशुतोषेभ्यो लब्धराज्यश्रियोद्धताः ।
मत्ताः प्रमत्ता वरदान् विस्मरन्त्यवजानते ॥११॥

ततः त आशुतोषेभ्यः लब्ध राज्यश्रिय उद्धताः मत्ताः प्रमत्ता वरदान् विस्मरन्ति अवजानते ॥११॥

ततः त	फिर वे	मत्ताः प्रमत्ता	मदमत्त, असावधान लोग
आशुतोषेभ्यः	उन शीघ्र प्रसन्न होने वाले (देवतादि) से	वरदान्	वरदान देने वालेको
		विस्मरन्ति	भूल जाते हैं,
राज्यश्रिय	राज्य, धनादि	अवजानते	(उसीका) अपमान करते हैं ॥११॥
लब्ध उद्धताः	पाकर उद्धत होकर		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

शापप्रसादयोरीशा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
सद्यःशापप्रसादोऽङ्ग शिवो ब्रह्मा न चाच्युतः ॥१२॥

शाप प्रसादयोः ईशा ब्रह्म विष्णु शिव आदयः सद्यः शाप प्रसादः अङ्ग शिवः ब्रह्मा न च अच्युतः ॥१२॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !	ईशा	समर्थ
शाप प्रसादयोः	शाप और कृपामें	ब्रह्म विष्णु	ब्रह्मा, विष्णु

शिव आदयः	शिव आदिमें	**शिवः ब्रह्मा**	शंकरजी या ब्रह्मा (करते हैं)
सद्यः शाप	शीघ्र शाप या		
प्रसादः	कृपा	**च अच्युतः न**	तथा अच्युत नहीं करते ॥१२॥

अत्र चोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
वृकासुराय गिरिशो वरं दत्त्वाऽऽप संकटम् ॥१३॥

अत्र च उदाहरन्ति इमं इतिहासं पुरातनं वृकासुराय गिरिशः वरं दत्त्वा आप सङ्कटम् ॥१३॥

अत्र च	इस विषयमें भी	**गिरिशः**	शंकरजी
इमं पुरातनं	इस प्राचीन	**वृकासुराय**	वृकासुरको
इतिहासं	इतिहासका	**वरं दत्त्वा**	वरदान देकर
उदाहरन्ति	उदाहरण देते हैं (जिसमें)	**सङ्कटं आप**	संकटको प्राप्त हुए ॥१३॥

वृको नामासुरः पुत्रः शकुनेः पथि नारदम् ।
दृष्ट्वाऽऽशुतोषं पप्रच्छ देवेषु त्रिषु दुर्मतिः ॥१४॥

वृकः नाम असुरः पुत्रः शकुनेः पथि नारदं दृष्ट्वा आशुतोषं पप्रच्छ देवेषु त्रिषु दुर्मतिः ॥१४॥

शकुनेः पुत्रः	शकुनिके पुत्र	**त्रिषु देवेषु**	त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु शिव)में से
दुर्मतिः	दुर्बुद्धि	**आशुतोषं**	शीघ्र प्रसन्न होने वालेको
वृकः नाम	वृक नामक	**पप्रच्छ**	पूछा ॥१४॥
असुरः	असुरने		
पथि	मार्गमें जाते		
नारदं दृष्ट्वा	नारदजीको देखकर		

स आह देवं गिरिशमुपाधावाशु सिद्ध्यसि ।
योऽल्पाभ्यां गुणदोषाभ्यामाशु तुष्यति कुप्यति ॥१५॥

स आह देवं गिरिशं उपाधाव आशु सिद्धयसि यः अल्पाभ्यां गुण दोषाभ्यां आशु तुष्यति कुप्यति ॥१५॥

स आह	उन (नारदजी)ने कहा—	यः अल्पाभ्यां	जो थोड़ेसे ही
देवं गिरिशं	'महादेव शिवकी	गुण दोषाभ्यां	गुण या दोषसे
उपाधाव	आराधना करो	आशु तुष्यति	शीघ्र सन्तुष्ट हो जाते या
आशु सिद्धयसि	(इससे) शीघ्र सिद्ध हो जाओगे	कुप्यति	कुपित हो जाते हैं ॥१५॥

दशास्यबाणयोस्तुष्टः स्तुवतोर्वन्दिनोरिव ।
ऐश्वर्यमतुलं दत्त्वा तत आप सुसंकटम् ॥१६॥

दश आस्य बाणयोः तुष्टः स्तुवतोः बन्दिनः इव ऐश्वर्यं अतुलं दत्त्वा तत आप सुसङ्कटम् ॥१६॥

दश आस्य	दशानन तथा	अतुलं ऐश्वर्यं	अतुलनीय ऐश्वर्य
बाणयोः	बाणासुरके	दत्त्वा तत	देकर फिर उससे
वन्दिनः इव	वन्दीजनोंकी भाँति	सुसङ्कटम् आप	बड़े संकटमें पड़ गये थे ॥१६॥
स्तुवतोः	स्तुति करने पर (उन्हें)		

इत्यादिष्टस्तमसुर उपाधावत् स्वगात्रतः ।
केदार आत्मक्रव्येण जुह्वानोऽग्निमुखं हरम् ॥१७॥

इति आदिष्टः तं असुर उपाधावत् स्वगात्रतः केदार आत्मक्रव्येण जुह्वानः अग्निमुखं हरम् ॥१७॥

इति आदिष्टः	ऐसा आदेश पाकर	स्वगात्रतः	अपने शरीरके
केदार	केदारक्षेत्रमें	आत्मक्रव्येण	अपने ही माँसका
असुर तं	असुर उन	जुह्वानः	हवन करते हुए
अग्निमुखं हरं	अग्निरूप मुख वाले शंकरजीकी	उपाधावत्	आराधना करने लगा ॥१७॥

देवोपलब्धिमप्राप्य निर्वेदात् सप्तमेऽहनि ।
शिरोऽवृश्चत् स्वधितिना तत्तीर्थक्लिन्नमूर्धजम् ॥१८॥

देव उपलब्धि अप्राप्य निर्वेदात् सप्तमे अहनि शिरः अवृश्चत् स्वधितिना तत् तीर्थ क्लिन्नमूर्धजम् ॥१८॥

सप्तमे अहनि	सातवें दिन
देव उपलब्धि	महादेवजीकी प्राप्ति
अप्राप्य	नहीं होनेसे
निर्वेदात्	दुःखके कारण
तत् तीर्थ	उन (शंकरजी)के तीर्थ (केदार गंगा)से
क्लिन्नमूर्धजं	भीगे बालों वाला
शिरः	(अपना) सिर
स्वधितिना	अपने कुल्हाडेसे
अवृश्चत्	काटने लगा ॥१८॥

तदा महाकारुणिकः स धूर्जटि-
र्यथा वयं चाग्निरिवोत्थितोऽनलात् ।
निगृह्य दोर्भ्यां भुजयोर्न्यवारयत्
तत्स्पर्शनाद् भूय उपस्कृताकृतिः ॥१९॥

तदा महाकारुणिकः स धूर्जटिः यथा वयं च अग्निः इव उत्थितः अनलात् निगृह्य दोर्भ्यां भुजयोः न्यवारयत् तत् स्पर्शनात् भूय उपस्कृत आकृतिः ॥१९॥

यथा वयं च	जैसा हम लोग भी (करते हैं कि आत्म-हत्या करने वालेको बचा लेते हैं)
तदा महाकारुणिकः	उस समय अत्यन्त करुणामय
स धूर्जटिः	वे शंकरजी
अनलात्	अग्नि कुण्डसे
अग्निः इव	अग्निके समान
उत्थितः	निकलकर
दोर्भ्यां	अपने दोनों हाथोंसे
भुजयोः निगृह्य	उसकी भुजाएँ पकड़ कर
न्यवारयत्	रोक दिया
तत् स्पर्शनात्	उनके स्पर्श करनेसे
भूय आकृतिः	फिर उसका आकार
उपस्कृत	पूर्ववत् हो गया ॥१९॥

तमाह चाङ्गालमलं वृणीष्व मे
यथाभिकामं वितरामि ते वरम् ।
प्रीयेय तोयेन नृणां प्रपद्यता-
महो त्वयाऽऽत्मा भृशमर्द्यते वृथा ॥२०॥

तं आह च अङ्ग अलं अलं वृणीष्व मे यथा अभिकामं वितरामि ते वरं प्रीयेय तोयेन नृणां प्रपद्यतां अहो त्वया आत्मा अभृशं र्द्यते वृथा ॥२०॥

तं आह च	उससे बोले भी—
अङ्ग अलं अलं	प्रिय ! बस करो, बस करो
यथा अभिकामं	जैसी इच्छा हो
मे वरं वृणीष्व	मुझसे वरदान मांग लो
ते वरं वितरामि	तुमको वरदान दूंगा,
अहो प्रपद्यतां	अहो शरणागत
नृणां	मनुष्य पर
तोयेन प्रीयेय	(मैं) केवल जलसे प्रसन्न हो जाता हूँ
त्वया आत्मा	तुम्हारे द्वारा अपने शरीरको
भृशं वृथा अर्द्यते	बार-बार व्यर्थ पीड़ित किया जा रहा है ॥२०॥

देवं स वव्रे पापीयान् वरं भूतभयावहम् ।
यस्य यस्य करं शीर्ष्णि धास्ये स म्रियतामिति ॥२१॥

देवं स वव्रे पापीयान् वरं भूत भय आवहं यस्य यस्य करं शीर्ष्णि धास्ये स म्रियतां इति ॥२१॥

स पापीयान्	उस पापीने
सर्व भूत भव आवहं	सब प्राणियोंके लिए भयदायक
इति वरं	इस प्रकारका वर-दान
देवं वव्रे	महादेवजीसे मांगा—
यस्य यस्य	जिस जिसके
शीर्ष्णि करं धास्ये	सिर पर मैं हाथ रखूँ
स म्रियतां	वह मर जाय' ॥२१॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् रुद्रो दुर्मना इव भारत ।
ओमिति प्रहसंस्तस्मै ददेऽहेरमृतं यथा ॥२२॥

तत् श्रुत्वा भगवान् रुद्रः दुर्मना इव भारत ओम् इति प्रहसन् तस्मै ददे अहेः अमृतं यथा ॥२२॥

भारत	परीक्षित !	**यथा अहेः अमृतं**	जैसे सर्पको अमृत (दिया जाय)
तत् श्रुत्वा	यह सुनकर		
दुर्मना इव	अनमनेसे होकर	**प्रहसन्**	हँसते हुए
ओम् इति	'अच्छा' इस प्रकार कहकर	**तस्मै ददे**	उसे (वरदान) दे दिया ॥२२॥

इत्युक्तः सोऽसुरो नूनं गौरीहरणलालसः ।
स तद्वरपरीक्षार्थं शम्भोर्मूर्ध्नि किलासुरः ।
स्वहस्तं धातुमारेभे सोऽबिभ्यत् स्वकृताच्छिवः ॥२३॥

इति उक्तः सः असुरः नूनं गौरी हरण लालसः स तत् वर परीक्षा अर्थं शम्भोः मूर्ध्नि किल असुरः स्वहस्तं धातुं आरेभे सः अबिभ्यत् स्वकृतात् शिवः ॥२३॥

इति उक्तः	ऐसा कहने पर	**शम्भोः मूर्ध्नि**	शंकरजी के ही सिर पर
नूनं	निश्चय		
सः असुरः	वह असुर	**स्वहस्तं धातुं ओरभे**	अपना हाथ धरनेका (प्रयत्न) प्रारम्भ किया
गौरी हरण	पार्वतीजीका हरण करनेकी		
लालस	इच्छासे और	**सः शिवः**	वे भगवान शिव
असुरः किल	उस असुरके होनेसे	**स्वकृतात्**	अपने किये (दिये वरदान)से
स तत् वर	उसने उनके वरदान		
परीक्षा अर्थं	की परीक्षाके लिए	**अबिभ्यत्**	डर गये ॥२३॥

तेनोपसृष्टः संत्रस्तः पराधावन् सवेपथुः ।
यावदन्तं दिवो भूमेः काष्ठानामुदगादुदक् ॥२४॥

तेन उपसृष्टः सन्त्रस्तः पर आधावत् सवेपथुः यावत् अन्तं दिवः भूमेः काष्ठानां उदकात् उदक् ॥२४॥

तेन उपसृष्टः	उसके समीप आने के प्रयत्नसे	**भूमेः अन्तं**	पृथ्वीकी सीमा है
		उदकात् उदक्	उत्तर से उत्तरकी
सन्त्रस्तः	डरकर	**काष्ठानां**	दिशामें
सवेपथुः	कांपते हुए	**पर आधावत्**	दूर भागते गये ॥२४॥
यावत् दिवः	जहाँ तक स्वर्ग एवं		

अजानन्तः प्रतिविधिं तूष्णीमासन् सुरेश्वराः ।
ततो वैकुण्ठमगमद् भास्वरं तमसः परम् ॥२५॥

अजानन्तः प्रतिविधिं तूष्णीं आसन् सुर ईश्वराः ततः वैकुण्ठं अगमत् भास्वरं तमसः परम् ॥२५॥

प्रतिविधि	प्रतिकारका उपाय	**ततः तमसः परं**	तब तमोगुणसे परे
अजानन्तः	न जाननेसे	**भास्वरं वैकुण्ठं**	ज्योतिर्मय वैकुण्ठ
सुर ईश्वराः	देवताओंके नायक	**अगमत्**	पहुँचे ॥२५॥
तूष्णीं आसन्	चुप रहे		

यत्र नारायणः साक्षान्न्यासिनां परमा गतिः ।
शान्तानां न्यस्तदण्डानां यतो नावर्तते गतः ॥२६॥

यत्र नारायणः साक्षात् न्यासिनां परमा गतिः शान्तानां न्यस्त दण्डानां यतः न आवर्तते गतः ॥२६॥

यत्र शान्तानां	जहाँ अत्यन्त शान्त	**साक्षात्**	साक्षात्
न्यस्त दण्डानां	सब प्राणियोंको दण्ड देना त्यागते हुए	**नारायणः**	नारायण (रहते हैं)
		यतः गतः	जहाँ पहुँचकर
न्यासिनां	संन्यासियोंके	**न आवर्तते**	(कोई संसारमें)
परमागतिः	परमाश्रय		नहीं लौटता ॥२६॥

तं तथाव्यसनं दृष्ट्वा भगवान् वृजिनार्दनः ।
दूरात् प्रत्युदियाद् भूत्वा वटुको योगमायया ॥२७॥

तं तथा व्यसनं दृष्ट्वा भगवान् वृजिन अर्दनः दूरात् प्रत्युत् इयात् भूत्वा वटुकः योगमायया ॥२७॥

तं तथा	उन (शंकरजी)का वैसा	योगमायया	अपनी योगमायासे
व्यसनं दृष्ट्वा	संकट देखकर	वटुकः भूत्वा	ब्रह्मचारी बनकर
वृजिन अर्दनः	संकट नाशक	दूरात्	दूरसे ही
भगवान्	भगवान	प्रत्युत् इयात्	सामने आ गये ॥२७॥

मेखलाजिनदण्डाक्षैस्तेजसाग्निरिव ज्वलन् ।
अभिवादयामास च तं कुशपाणिर्विनीतवत् ॥२८॥

मेखला अजिन दण्ड अक्षैः तेजसा अग्निः इव ज्वलन् अभिवादयामास च तं कुशपाणिः विनीतवत् ॥२८॥

मेखला अजिन	मेखला, मृगचर्म,	अग्निः इव	अग्निके समान (होने पर भी)
दण्ड अक्षैः	पलाश दण्ड, रुद्राक्ष माला युक्त	विनीतवत्	विनम्रकी भांति
कुशपाणिः	हाथमें कुश लिए	तं	उस (वृकासुर)को
तेजसा ज्वलन्	तेजसे प्रज्वलित	अभिवादयामास च	प्रणाम भी किया ॥२८॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

शाकुनेय भवान् व्यक्तं श्रान्तः किं दूरमागतः ।
क्षणं विश्रम्यतां पुंस आत्मायं सर्वकामधुक् ॥२९॥

शाकुनेय भवान् व्यक्तं श्रान्तः किं दूरं आगतः क्षणं विश्रम्यतां पुंसः आत्मा अयं सर्वकाम धुक् ॥२९॥

शाकुनेय	शकुनि-नन्दनजी !	**क्षणं विश्रम्यतां**	एक क्षण विश्राम कर लीजिए
व्यक्तं	स्पष्ट है कि	**अयं आत्मा**	यह शरीर
भवान् श्रान्तः	आप थक गये हैं	**पुंसः सर्वकाम**	पुरुषको सब काम-नाएँ
किं दूरं आगतः	क्या दूरसे आ रहे हैं ?	**धुक्**	देने वाला है ॥२९॥

यदि नः श्रवणायालं युष्मद्व्यवसितं विभो ।
भण्यतां प्रायशः पुम्भिर्धृतैः स्वार्थान् समीहते ॥३०॥

यदि नः श्रवणाय अलं युष्मत् व्यवसितं प्रभो भण्यतां प्रायशः पुम्भिः धृतैः स्वार्थान् समीहते ॥३०॥

प्रभो अलं	प्रभो ! (आप) समर्थ हैं,	**प्रायशः**	प्रायः (लोग)
युष्मत् व्यवसितं	आपका यह उद्योग	**पुम्भिः धृतैः**	अपने लोगोंको सौंप-कर
यदि नः	यदि हमारे	**स्वार्थान्**	अपना प्रयोजन
श्रवणाय	सुनने योग्य हो तो	**समी हते**	पूर्ण कर लेना चाहते हैं ॥३०॥
भण्यतां	बतलाइये		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एवं भगवता पृष्टो वचसामृतवर्षिणा ।
गतक्लमोऽब्रवीत्तस्मै यथापूर्वमनुष्ठितम् ॥३१॥

एवं भगवता पृष्टः वचसा अमृत वर्षिणा गतक्लमः अब्रवीत् तस्मै यथा पूर्वं अनुष्ठितम् ॥३१॥

एवं	इस प्रकार	**वचसा भगवता**	वाणी द्वारा भगवान के
अमृत वर्षिणा	अमृतवर्षी	**पृष्टः**	पूछने पर

गतक्लमः	थकावट दूर हो जाने	**तस्मै अब्रवीत्**	उनसे बतला दिया ॥३१॥
यथा पूर्वं	जैसा पहिले		
अनुष्ठितं	किया था		

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

एवं चेत्तर्हि तद्वाक्यं न वयं श्रद्दधीमहि ।
यो दक्षशापात् पैशाच्यं प्राप्तः प्रेतपिशाचराट् ॥३२॥

एवं चेत् तर्हि तत् वाक्यं न वयं श्रद्दधीमहि यः दक्षशापात् पैशाच्यं प्राप्तः प्रेतपिशाचराट् ॥३२॥

एवं चेत्	यदि ऐसा है	**यः दक्षशापात्**	जो दक्षके शापसे
तर्हि तत् वाक्यं	तब तो उसकी बात पर	**पैशाच्यं प्राप्तः**	पिशाच भावको प्राप्त हो गया
वयं न श्रद्दधीमहि	हम विश्वास नहीं करते	**प्रेतपिशाचराट्**	प्रेत-पिशाचोंका राजा है ॥३२॥

यदि वस्तत्र विश्रम्भो दानवेन्द्र जगद्गुरौ ।
तर्ह्यङ्गाशु स्वशिरसि हस्तं न्यस्य प्रतीयताम् ॥३३॥

यदि वः तत्र विश्रम्भः दानवेन्द्र जगद्गुरौ तर्हि अङ्ग आशु स्वशिरसि हस्तं न्यस्य प्रतीयताम् ॥३३॥

दानवेन्द्र	दानवेन्द्र !	**तर्हि अङ्ग**	तो प्यारे !
यदि वः	यदि (फिर भी) आपका	**स्वशिरसि**	अपने सिर पर
जगद्गुरौ	जगद्गुरु (मानकर)	**हस्तं न्यस्य**	हाथ रखकर
तत्र विश्रम्भः	उस पर विश्वास हो	**आशु प्रतीयतां**	झटपट विश्वास कर लीजिये ॥३३॥

यद्यसत्यं वचः शम्भोः कथञ्चिद् दानवर्षभ ।
तदैनं जह्यसद्वाचं न यद् वक्तानृतं पुनः ॥३४॥

यदि असत्यं वचः शम्भोः कथञ्चित् दानव ऋषभ तत् एनं जहि असत् वाचं न यत् वक्ता अनृतं पुनः ॥३४॥

दानव ऋषभ	दानवश्रेष्ठ !	**तत् असत् वाचं**	तो झूठी बात कहने वाले
यदि कथञ्चित्	यदि किसी प्रकार	**एनं जहि**	इसको मार दीजिए
शम्भोः वचः	शिवकी बात	**यत् पुनः**	जिससे फिर कभी
असत्यं	झूठी (निकले तो)	**अनृतं न वक्ता**	झूठ न बोले ॥३४॥

॥ श्रीशुक उवाच* ॥

इत्थं भगवतश्चित्रैर्वचोभिः स सुपेशलैः ।
भिन्नधीर्विस्मृतः शीर्ष्णि स्वहस्तं कुमतिर्व्यधात् ॥३५॥

इत्थं भगवतः चित्रैः वचः भिः स सुपेशलैः भिन्नधीः विस्मृतः शीर्ष्णि स्वहस्तं कुमतिः व्यधात् ॥३५॥

इत्थं भगवतः	इस प्रकार भगवान द्वारा	**भिन्नधीः**	बुद्धि भ्रष्ट होकर
चित्रैः सुपेशलैः	विचित्र और बहुत मधुर	**स कुमतिः**	उस दुर्बुद्धिने
वचः भिः	वाणी द्वारा	**स्वहस्तं**	अपना हाथ
विस्मृतः	भूलकर (भुलावेमें आकर)	**शीर्ष्णि व्यधात्**	(अपने) सिर पर रख लिया ॥३५॥

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अथापतद् भिन्नशिरा वज्राहत इव क्षणात् ।
जयशब्दो नमःशब्दः साधुशब्दोऽभवद् दिवि ॥३६॥

अथ अपतत् भिन्नशिरा वज्र आहत इव क्षणात् जयशब्दः नमः शब्दः साधुशब्दः अभवत् दिवि ॥३६॥

अथ क्षणात्	तब उसी क्षण
वज्र आहत इव	वज्रसे मारे गयेके समान
भिन्नसिरा	मस्तक फट जानेसे
अपतत्	गिर पड़ा (इससे)
दिवि जयशब्दः	स्वर्गमें जयध्वनि,
नमः शब्दः	नमस्कार ध्वनि एवं
साधुशब्दः	साधुवाद ध्वनि
अभवत्	होने लगी ॥३६॥

मुमुचुः पुष्पवर्षाणि हते पापे वृकासुरे ।
देवर्षिपितृगन्धर्वा मोचितः संकटाच्छिवः ॥३७॥

मुमुचुः पुष्प वर्षाणि हते पापे वृकासुरे देव ऋषि पितृ गन्धर्वाः मोचितः सङ्कटात् शिवः ॥३७॥

पापे वृकासुरे	पापी वृकासुरके
हते	मर जाने पर
देव ऋषि पितृ	देवता, ऋषि, पितर
गन्धर्वाः	गन्धर्व गण
पुष्प वर्षाणि	पुष्पोंकी वर्षा
मुमुचुः	करने लग और
शिवः सङ्कटात्	शंकरजी संकटसे
मोचितः	मुक्त कर दिये गये ॥३७॥

मुक्तं गिरिशमभ्याह भगवान् पुरुषोत्तमः ।
अहो देव महादेव पापोऽयं स्वेन पाप्मना ॥३८॥

मुक्तं गिरिशं अभि आह भगवान् पुरुषोत्तमः अहो देव महादेव पापः अयं स्वेन पाप्मना ॥३८॥

मुक्तं गिरिशं	(भय) मुक्त शंकरजी से	**अहो देव**	'हे देव
भगवान्	भगवान्	**महादेव**	महादेव !
पुरुषोत्तमः	पुरुषोत्तम	**अयं पापः**	यह पापी
अभि आहं	समीप जाकर बोले—	**स्वेन पाप्मना**	अपने ही पापसे ॥३८॥

हतः को नु महत्स्वीश जन्तुर्वै कृतकिल्विषः ।
क्षेमी स्यात् किमु विश्वेशे कृतागस्को जगद्गुरौ ॥३९॥

हतः कः नु महत्सु ईश जन्तुः वै कृत किल्विषः क्षेमी स्यात् किमु बिश्व ईशे आगस् कृत जगद्गुरौ ॥३९॥

हतः	मारा गया	**क्षेमी स्यात्**	सकुशल रह सकता है
वै कः नु	निश्चित ही भला कौन	**विश्व ईशे**	फिर विश्वेश्वर
जन्तुः	प्राणी	**जगद्गुरौ**	जगद्गुरु
ईश महत्सु	समर्थ महापुरुषका	आगस् कृत् किमु	अपराध करने वाल तो रह ही कैसे सकता है' ॥३९॥
कृत किल्विषः	अपराध करके		

य एवमव्याकृतशक्त्युदन्वतः
परस्य साक्षात् परमात्मनो हरेः ।
गिरित्रमोक्षं कथयेच्छृणोति वा
विमुच्यते संसृतिभिस्तथारिभिः ॥४०॥

यः एवं अव्याकृत शक्ति उदन्तः परस्य साक्षात् परमात्मनः हरेः गिरित्र मोक्षं कथयेत् शृणोति वा विमुच्यते संसृतिभिः तथा अरिभिः ॥४०॥

अव्याकृत शक्ति	अशिथिल शक्ति
उदन्वतः	समुद्र
परस्य	परम पुरुष
साक्षात्	साक्षात्
परमात्मनः	परमात्मा
हरेः एवं	श्रीहरि द्वारा इस प्रकार
गिरित्र मोक्षं	शंकरजीके छुटकारे को
यः कथयेत्	जो वर्णन करता है
वा शृणोति	अथवा सुनाता है (वह)
संसृतिभिः	जन्म-मरण चक्रसे
तथा अरिभिः	तथा शत्रुओंके भयसे
विमुच्यते	छूट जाता है ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुद्रमोक्षणं नामअष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

अथ एकोननवतितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

सरस्वत्यास्तटे राजन्नृषयः सत्रमासत ।
वितर्कः समभूत्तेषां त्रिष्वधीशेषु को महान् ॥ १ ॥

सरस्वत्याः तटे राजन् ऋषयः सत्रं आसत वितर्कः सम अभूत् तेषां त्रिषु अधीशेषु कः महान् ॥१॥

राजन्	राजन् !
सरस्वत्याः तटे	सरस्वती नदीके किनारे
सत्रं आसत	यज्ञ करते हुए
तेषां ऋषयः	उन ऋषियोंमें
वितर्कः सम	परस्पर विवाद
अभूत्	हो गया कि
त्रिषु अधीशेषु	(जगत्के) तीनों अधीश्वरोंमें
कः महान्	कौन सबसे महान है ॥१॥

तस्य जिज्ञासया ते वै भृगुं ब्रह्मसुतं नृप ।
तज्ज्ञप्त्यै प्रेषयामासुः सोऽभ्यगाद् ब्रह्मणः सभाम् ॥२॥

तस्य जिज्ञासया ते वै भृगुं ब्रह्मसुतं नृप तत् ज्ञप्त्यै प्रेषयामासुः सः अभ्यगात् ब्रह्मणः सभाम् ॥२॥

नृप	राजन् !
वै ते	निश्चय उन्होंने
तस्य जिज्ञासय	उन्हें जाननेकी इच्छासे
तत् ज्ञप्त्यैः	उनकी परीक्षाके लिए
ब्रह्मसुतं भृगुं	ब्रह्माजीके पुत्र भृगु को
प्रेषयामासुः	भेजा
सः ब्रह्मणः सभां	वे ब्रह्माजीकी सभा में
अभ्यगात्	(ब्रह्माजीके) सम्मुख गये ॥२॥

न तस्मै प्रह्वणं स्तोत्रं चक्रे सत्त्वपरीक्षया ।
तस्मै चुक्रोध भगवान् प्रज्वलन् स्वेन तेजसा ।। ३ ।।

न तस्मै प्रह्वणं स्त्रोत्रं चक्रे सत्त्वपरीक्षया तस्मै चुक्रोध भगवान् प्रज्वलन् स्वेन तेजसा ।।३।।

सत्त्वपरीक्षया	धैर्यकी परीक्षाके लिए	**स्वेन तेजसा**	अपने तेजसे
तस्मै प्रह्वणं	उन (ब्रह्माजी)को प्रणाम	**प्रज्वलन्**	प्रदीप्त होते भगवान
स्तोत्रं न चक्रे	या स्तुति (उन्होंने) नहीं की,	**तस्मै चुक्रोध**	उन पर कुपित हुए ।।३।।

स आत्मन्युत्थितं मन्युमात्मजायात्मना प्रभुः ।
अशीशमद् यथा वह्निं स्वयोन्या वारिणाऽऽत्मभूः ।।४।।

स आत्मनि उत्थितं मन्युं आत्मजाय आत्मना प्रभुः अशीशमद् यथा वह्निं स्वयोन्या वारिणा आत्मभूः ।।४।।

स आत्मभूः	उन स्वयम्भूने	**अशीशमद्**	शान्त कर दिया
आत्मजाय	पुत्र पर	**यथा स्वयोन्यां**	जैसे अपने उत्पत्ति स्थान (अरणि)में
आत्मनि उत्थितं	अपने चित्तमें उत्पन्न	**उत्थितं वह्निं**	उठी अग्निको
मन्युं आत्मना	क्रोधको अपनी बुद्धि से	**वारिणा**	जलसे (शान्त करते हैं) ।।४।।

ततः कैलासमगमत् स तं देवो महेश्वरः ।
परिरब्धुं समारेभे उत्थाय भ्रातरं मुदा ।। ५ ।।

ततः कैलासं अगमत् स तं देवः महेश्वरः परिरब्धुं सम आरेभे उत्थाय भ्रातरं मुदा ।।५।।

ततः स कैलासं	वहाँसे वे कैलास	**उत्थाय**	उठकर
अगमत्	गये	**परिरब्धुं**	आलिंगन करकेका
देवः महेश्वरः	(वहाँ) देव महेश्वर	**सम आरेभे**	उपक्रम करने लगे
तं भ्रातरं मुदा	उन अपने भाईको हर्षसे		॥५॥

नैच्छत्त्वमस्युत्पथग इति देवश्चुकोप ह ।
शूलमुद्यम्य तं हन्तुमारेभे तिग्मलोचनः ॥ ६ ॥

न इच्छत् त्वं असि उत्पथगः इति देवः चुकोप ह शूलं उद्यम्य तं हन्तुं आरेभे तिग्म लोचनः ॥६॥

त्वं उत्पथगः	'तुम वेद मर्यादाका अतिक्रमण करके चलने वाले हो,	**देवः ह चुकोप**	(इससे) महादेवजी अत्यन्त कुपित हो
		तिग्म लोचनः	प्रचण्ड नेत्र
इति	ऐसा कहकर	**शूलं उद्यम्य**	त्रिशूल उठाकर
न इच्छत्	(मिलना) नहीं चाहा	**तं हन्तुं आरेभे**	उन्हें मारनेको उद्यत हो गये ॥६॥

पतित्वा पादयोर्देवी सान्त्यामास तं गिरा ।
अथो जगाम वैकुण्ठं यत्र देवो जनार्दनः ॥ ७ ॥

पतित्वा पादयोः देवी सान्त्वयामास तं गिरा अथो जगाम वैकुण्ठं यत्र देवः जनार्दनः ॥७॥

पादयोः पतित्वा	चरणों पर गिरकर	**अथो**	वहाँसे
देवी तं	देवी (सती)ने उनको	**वैकुण्ठं जगाम**	वैकुण्ठ गये
गिरा	अपनी वाणीसे	**यत्र देवः**	जहाँके आराध्य देव
सान्त्वयामास	समझाया,	**जनार्दनः**	जनार्दन (माया-नाशक) हैं ॥७॥

शयानं श्रिय उत्सङ्गे पदा वक्षस्यताडयत् ।
तत उत्थाय भगवान् सह लक्ष्म्या सतां गतिः ॥ ८ ॥

शयानं श्रिय उत्सङ्गे पदा वक्षसि अताडयत् तत उत्थाय भगवान् सह लक्ष्म्या सतां गतिः ॥८॥

श्रिय उत्सङ्गे	लक्ष्मीकी गोदको तकिया बनाकर	**तत सतां गतिः**	इससे सन्तोंके परमाश्रय
शयानं	सोये हुए (भगवान) की	**भगवान्**	भगवान
वक्षसि पदा	छातीको पैरसे	**सह लक्ष्म्या**	लक्ष्मीके साथ
अताडयत्	मारा	**उत्थाय**	उठ गये ॥८॥

स्वतल्पादवरूह्याथ ननाम शिरसा मुनिम् ।
आह ते स्वागतं ब्रह्मन् निषीदात्रासने क्षणम् ।
अजानतामागतान् वः क्षन्तुमर्हथ नः प्रभो ॥ ९ ॥

स्वतल्पात् अवरूह्य अथ ननाम शिरसा मुनिं आह ते स्वागतं ब्रह्मन् निषीद अत्र आसने क्षणं अजानतां आगतान् वः क्षन्तुं अर्हथ नः प्रभो ॥९॥

अथ स्वतल्पात्	फिर अपनी शैय्यासे	**ते स्वागतं**	आपका स्वागत है
अवरूह्य	उतरकर	**अत्र आसने**	यहां आसन पर
मुनिं शिरसा	मुनिको सिर झुकाकर	**क्षणं निषीद**	एक क्षण विराजिये
ननाम	नमस्कार किया	**वः आगतान्**	आपका आगमन
आह	और बोले—	**अजानतां**	न जानने वाले
ब्रह्मन्	'ब्रह्मन् !	**नः क्षन्तुं अर्हथ**	हमको क्षमा करना चाहिए ॥९॥

अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने ।
इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन् स्वेन पाणिना ॥१०॥

अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने इति उक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन् स्वेन पाणिना ॥१०॥

तात महामुने	तात ! महामुने !	**विप्रचरणौ**	ब्राह्मणके दोनों चरण
ते चरणौ	आपके चरण	**स्वेन पाणिना**	अपने हाथोंसे
अतीव कोमलौ	अत्यन्त कोमल हैं	**मर्दयन्**	दबाने लगे ॥१०॥
इति उक्त्वा	ऐसा कहकर		

॥ श्रीभगवानुवाच ॥*

पुनीहि सहलोकं मां लोकपालांश्च मद्गतान् ।
पादोदकेन भवतस्तीर्थानां तीर्थकारिणा ॥११॥

पुनीहि सह लोकं मां लोकपालान् च मद्गतान् पाद उदकेन भवतः तीर्थानां तीर्थकारिणा ॥११॥

तीर्थानां	तीर्थोंको	**लोकान्**	लोकोंको
तीर्थकारिणा	तीर्थ बनाने वाले	**च लोकपालान्**	तथा लोकपालोंको
भवतः	आपके	**मां सह**	मेरे साथ
पाद उदकेन	चरणोदकसे	**पुनीहि**	पवित्र कीजिए ॥११॥
मद्गतान्	मेरे भीतर स्थित		

अद्याहं भगवल्लक्ष्म्या आसमेकान्तभाजनम् ।
वत्स्यत्युरसि मे भूतिर्भवत्पादहतांहसः ॥१२॥

अद्य अहं भगवन् लक्ष्म्या आसं एकान्त भाजनं वत्स्यसि उरसि मे भूतिः भवत् पाद हत अहंसः ॥१२॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भवत् पाद	आपके चरणोंसे	एकान्त भाजनं	एकमात्र आश्रय
हत अहंसः	(मेरे) पाप नष्ट हो गये	आसं	हो गया।
		मे उरसि	मेरे वक्ष पर
भगवन्	भगवन् !	भूतिः वत्स्यसि	यह शोभा निवास करेगी ॥१२॥
अद्य अहं	आज मैं		
लक्ष्म्या	लक्ष्मीका		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एवं ब्रुवाणे वैकुण्ठे भृगुस्तन्मन्द्रया गिरा ।
निर्वृतस्तर्पितस्तूष्णीं भक्त्युत्कण्ठोऽश्रुलोचनः ॥१३॥

एवं ब्रुवाणे वैकुण्ठे भृगुः तत् मन्द्रया गिरा निर्वृतः तर्पितः तूष्णीं भक्ति उत्कण्ड अश्रुलोचनः ॥१३॥

वैकुण्ठे एवं	भगवान् विष्णुके के इस प्रकार	तर्पितः	तृप्त होकर
		अश्रुलोचनः	नेत्रोंमें अश्रुभरे
ब्रुवाणे	कहने पर	भक्तिउत्कण्ठः	भक्तिसे भरे कण्ठ
तत्	उनकी	तूष्णीं भृगुः	चुपचाप भृगुजी ॥१३॥
मन्द्रया गिरा	गम्भीर वाणीसे		
निर्वृतः	आनन्दित होकर		

पुनश्च सत्रमाव्रज्य मुनीनां ब्रह्मवादिनाम् ।
स्वानुभूतमशेषेण राजन् भृगुरवर्णयत् ॥१४॥

पुनः च सत्रं आव्रज्य मुनीनां ब्रह्मवादिनां स्व अनुभूतं अशेषेण राजन् भृगुः अवर्णयत् ॥१४॥

पुनः च सत्रं	फिरसे यज्ञमें	अशेषेण	पूर्णरूपसे
आव्रज्य	लौटकर	राजन्	राजन् !
ब्रह्मवादिनां	वेदवादी	भृगुः अवर्णयत्	भृगुजीने वर्णन किया ॥१४॥
मुनीनां	मुनियोंसे		
स्व अनुभूतं	अपना अनुभव		

तन्निशम्याथ मुनयो विस्मिता मुक्तसंशयाः ।
भूयांसं श्रद्दधुर्विष्णुं यतः शान्तिर्यतोऽभयम् ॥१५॥

तत् निशम्य अथ मुनयः विस्मिताः मुक्तसंशयाः भूयांसं श्रद्दधुः विष्णुं यतः शान्तिः यतः अभयम् ॥१५॥

अथ मुनयः	तब मुनिगण
तत् निशम्य	उस (अनुभव)को सुनकर
विस्मिताः	चकित हो गये
मुक्तसंशयाः	संशयसे छूट गये
विष्णुं भूयांसं श्रद्दधुः	विष्णुको सबसे बड़ा मानने लगे,
यतः शान्तिः	जिससे शान्ति और
यतः अभयं	जिनसे अभय उत्पन्न हैं ॥१५॥

धर्मः साक्षाद् यतो ज्ञानं वैराग्यं च तदन्वितम् ।
ऐश्वर्यं चाष्टधा यस्माद् यशश्चात्ममलापहम् ॥१६॥

धर्मः साक्षात् यतः ज्ञानं वैराग्यं च तत् अन्वितं ऐश्वर्यं च अष्टधा यस्मात् यशः च आत्ममल अपहम् ॥१६॥

यतः साक्षात् धर्मः	जिनसे साक्षात् धर्म
च तत् अन्वितं ज्ञानं वैराग्यं	तथा उससे युक्त ज्ञान-वैराग्य
च अष्टधा ऐश्वर्यं	एवं (अणिमादि) आठो प्रकारका ऐश्वर्य
च आत्ममल अपहं	और अपने चित्तके दोषोंको दूर करने वाला
यशः यस्मात्	यश जिनसे प्राप्त होता है ॥१६॥

मुनीनां न्यस्तदण्डानां शान्तानां समचेतसाम् ।
अकिंचनानां साधूनां यमाहुः परमां गतिम् ॥१७॥

मुनीनां न्यस्त दण्डानां शान्तानां समचेतसां अकिञ्चनानां साधूनां यं आहुः परमां गतिम् ॥१७॥

न्यस्त दण्डानां	सभीको दण्ड देना छोड़े हुए	**अकिञ्चनानां**	निष्किञ्चन (अपरिग्रही)
शान्तानां	शान्त,	**साधूनां**	साधुओंके
समचेतसां	समान चित्त	**यं परमांगतिं**	जिनको परम आश्रय
मुनीनां	मुनियोंके	**आहुः**	(शास्त्रोंमें) कहा गया है ॥१७॥

सत्त्वं यस्य प्रिया मूर्तिर्ब्राह्मणास्त्विष्टदेवताः ।
भजन्त्यनाशिषः शान्ता यं वा निपुणबुद्धयः ॥१८॥

सत्त्वं यस्य प्रिया मूर्तिः ब्राह्मणाः तु इष्ट देवताः भजन्ति अनाशिषः शान्ता यं वा निपुणबुद्धयः ॥१८॥

यस्य प्रिया मूर्ति	जिनका प्रिय स्वरूप	**वा अनाशिषः**	अथवा निष्काम
सत्त्वं	सत्त्व गुण है,	**शान्ता**	शान्त लोग
तु ब्राह्मणाः	तथा ब्राह्मण	**यं भजन्ति**	जिनका भजन करते हैं ॥१८॥
इष्ट देवताः	(जिनके) इष्ट देव हैं		
निपुणबुद्धयः	कुशल बुद्धि		

त्रिविधाकृतयस्तस्य राक्षसा असुराः सुराः ।
गुणिन्या मायया सृष्टाः सत्त्वं तत्तीर्थसाधनम् ॥१९॥

त्रिविधा कृतयः तस्य राक्षसा असुराः सुराः गुणिन्या मायया सृष्टाः सत्त्वं तत् तीर्थ साधनम् ॥१९॥

तस्य गुणिन्या	उनकी गुणमयी	**सुराः**	देवता
मायया सृष्टाः	मायाके द्वारा बनायी हुई	**तत् तीर्थ**	(इनमे) उन परम पावनकी
त्रिविधा कृतयः	तीन प्रकारकी रचनाएँ हैं	**साधनं**	प्राप्तिके साधन
राक्षासा	राक्षस,	**सत्त्वं**	सात्विक देवता हैं ॥१९॥
असुराः	असुर और		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

एवं सारस्वता विप्रा नृणां संशयनुत्तये ।
पुरुषस्य पदाम्भोजसेवया तद्गतिं गताः ॥२०॥

एवं सारस्वता विप्रा नृणां संशयनुत्तये पुरुषस्य पदाम्भोजसेवया तद्गतिं गताः ॥२०॥

एवं सारस्वता	इस प्रकार सरस्वती किनारेके	**पुरुषस्य**	(फिर वे) परम पुरुषके
विप्रा नृणां संशयनुत्तये	ब्राह्मणोंने मनुष्योंके संशयको नष्ट करने का (प्रयत्न किया)	**पदाम्भोज-सेवया**	चरण-कमलोंकी सेवासे
		तद्गतिं गताः	उनके स्वरूपको प्राप्त हुए ॥२०॥

॥ सूत उवाच ॥

इत्येतन्मुनितनयास्यपद्मगन्ध-
पीयूषं भवभयभित् परस्य पुंसः ।
सुश्लोकं श्रवणपुटैः पिबत्यभीक्ष्णं
पान्थोऽध्वश्रमणपरिश्रमं जहाति ॥२१॥

इति एतत् मुनितनयस्य पद्मगन्ध पीयूषं भवभयभित् परस्य पुंसः सुश्लोकं श्रवणपुटैः पिबति अभीक्ष्णं पान्थः अध्वश्रमण परिश्रमं जहाति ॥२१॥

भवभयभित् परस्य पुंसः	भव भय नाशक परम पुरुषकी	**इति एतत्**	इस प्रकारकी यह

---

*यह उवाच सभी प्रतियोंमें है; किन्तु होना नहीं चाहिए; क्योंकि शुकदेवजी ही श्लोक १३ से बोल रहे हैं। बीचमें दूसरा कोई बोला नहीं है। प्रसंग भी बदलता नहीं है।

मुनितनयस्य	मुनि व्यास नन्दनकी (कही हुई)	पान्थः	(संसार पथका) पथिक
सुश्लोकं	पवित्र कीर्ति रूपी	अध्वश्रमण	इस मार्गमें भटकने की
पद्मगन्ध	कमलकी सुगन्धि वाली	परिश्रमं	थकावट
पीयूषं	सुधाका जो	जहाति	छोड़ (मिटा) देता ॥२१॥
श्रवणपुटैः	कान रूपी दोनोंसे		
अभीक्ष्णं पिबति	निरन्तर पीता है (वह)		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एकदा द्वारवत्यां तु विप्रपत्न्याः कुमारकः ।
जातमात्रो भुवं स्पृष्ट्वा ममार किल भारत ॥२२॥

एकदा द्वारवत्यां तु विप्रपत्न्याः कुमारकः जातमात्रः भुवं स्पृष्ट्वा ममार किल भारत ॥२२॥

भारत	परीक्षित् !	जातमात्रः	तत्कालका उत्पन्न
एकदा तु	एक बार तो	कुमारकः	शिशु
द्वारवत्यां	द्वारिकामें	किल भुवं	अहो ! भूमिका
विप्रपत्न्याः	(एक) ब्राह्मण-पत्नी का	स्पृष्ट्वा	स्पर्श होते ही
		ममार	मर गया ॥२२॥

विप्रो गृहीत्वा मृतकं राजद्वार्युपधाय सः ।
इदं प्रोवाच विलपन्नातुरो दीनमानसः ॥२३॥

विप्रः गृहीत्वा मृतकं राजद्वारि उपधाय सः इदं प्रोवाच विलपन् आतुरः दीनमानसः ॥२३॥

सः आतुरः	वह व्याकुल	**राजद्वारि**	राजद्वार पर
दीनमानसः	दुःखी चित्त	**उपधाय**	रखकर
विप्रः मृतकं	ब्राह्मण मरे (पुत्रको)	**विलपन्**	विलाप करते हुए
गृहीत्वा	लाकर	**इदं प्रोवाच**	यह चिल्लाता रहा ॥२३॥

ब्रह्मद्विषः शठधियो लुब्धस्य विषयात्मनः ।
क्षत्रबन्धोः कर्मदोषात् पञ्चत्वं मे गतोऽर्भकः ॥२४॥

ब्रह्मद्विषः शठधियः लुब्धस्य विषय आत्मनः क्षत्रबन्धोः कर्मदोषात् पञ्चत्वं मे गतः अर्भकः ॥२४॥

ब्रह्मद्विषः	'इन ब्राह्मण द्वेषी	**क्षत्रबन्धोः**	अधम क्षत्रिय राजा के
शठधियः	धूर्त	**कर्मदोषात्**	दूषित कर्मसे
लुब्धस्य	लोभी (कृपण)	**मे अर्भकः**	मेरा शिशु
विषय आत्मनः	विषय भोग परायण चित्त	**पञ्चत्वं गतः**	मरा है ॥२४॥

हिंसाविहारं नृपतिं दुःशीलमजितेन्द्रियम् ।
प्रजा भजन्त्यः सीदन्ति दरिद्रा नित्यदुःखिताः ॥२५॥

हिंसाविहारं नृपतिं दुःशीलं अजित इन्द्रियं प्रजा भजन्त्यः सीदन्ति दरिद्रा नित्य दुःखिताः ॥२५॥

हिंसाविहारं	हिंसाकी क्रीड़ा करने वाले	**प्रजा नित्य**	प्रजा सदा
दुःशीलं	कदाचारी	**दुःखिता**	दुःखी
अजित इन्द्रियं	अजित इन्द्रिय	**दरिद्रा सीदन्ति**	दरिद्र रहकर कष्ट भोगती है ॥२५॥
नृपतिं भजन्त्यः	राजाकी सेवा करने वाली		

एवं द्वितीयं विप्रर्षिस्तृतीयं त्वेवमेव च ।
विसृज्य स नृपद्वारि तां गाथां समगायत ॥२६॥

एवं द्वितीयं विप्रर्षिः तृतीयं तु एवं एव च विसृज्य स नृपद्वारि तां गाथां समगायत ॥२६॥

एवं द्वितीयं	इसी प्रकार दूसरे (शिशु)को	**स विप्रर्षि**	वह ब्रह्मर्षि
च तृतीयं तु	तथा तीसरेको भी	**तां गाथां**	वही बात
नृपद्वारि	राजाके द्वार पर	**समगायत**	बार-बार कहता रहा ॥२५॥
विसृज्य	छोड़कर		

तामर्जुन उपश्रुत्य कर्हिचित् केशवान्तिके ।
परेते नवमे बाले ब्राह्मणं समभाषत ॥२७॥

तां अर्जुनः उपश्रुत्य कर्हिचित् केशव अन्तिके परेते नवमे बाले ब्राह्मणं समभाषत ॥२७॥

कर्हिचित्	किसी समय		ब्राह्मणकी बात समीपसे सुनकर
नवमे बाले परेते	नौवें बालकके मरने पर	**अर्जुनः ब्राह्मणं**	अर्जुनने ब्राह्मणसे
केशव अन्तिके	श्रीकेशवके समीप	**समभाषत**	समीप जाकर कहा ॥२७॥
तां उपश्रुत्य	(बैठे हुए) उस		

किंस्विद् ब्रह्मंस्त्वन्निवासे इह नास्ति धनुर्धरः ।
राजन्यबन्धुरेते वै ब्राह्मणाः सत्र आसते ॥२८॥

किं स्वित् ब्रह्मन् त्वत् निवासे इह न अस्ति धनुर्धरः राजन्य बन्धुः एते वै ब्राह्मणाः सत्र आसते ॥२८॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**किं त्वत् निवासे**	क्या आपके निवास स्थानमें

इह धनुर्धरः	यहां कोई धनुर्धर	**वै ब्राह्मणाः**	निश्चय ब्राह्मण होकर
न अस्ति स्वित्	नहीं है क्या ?	**सत्रं आसते**	यज्ञ करने लगे हैं ? ॥२८॥
एते राजन्य बन्धुः	ये क्षत्रिय लोग		

धनदारात्मजापृक्ता यत्र शोचन्ति ब्राह्मणाः ।
ते वै राजन्यवेषेण नटा जीवन्त्यसुम्भराः ॥२९॥

धनदार आत्मजा पृक्ता यत्र शोचन्ति ब्राह्मणाः ते वै राजन्यवेषेण नटा जीवन्ति असुम्भराः ॥२९॥

धनदार	सम्पत्ति, स्त्री	**राजन्यवेषेण**	(क्षत्रिय) राजाके वेशमें
आत्मजा पृक्ता	या पुत्रसे वियुक्त होकर	**असुम्भराः**	अपना प्राण (पेट) पालने वाले
यत्र ब्राह्मणाः	जहाँ ब्राह्मण	**नटा जीवन्ति**	नटोंके समान जीते हैं ॥२९॥
शोचन्ति	शोक करते हैं		
वै ते	निश्चय वहां के वे		

अहं प्रजा वां भगवन् रक्षिष्ये दीनयोरिह ।
अनिस्तीर्णप्रतिज्ञोऽग्निं प्रवेक्ष्ये हृतकल्मषः ॥३०॥

अहं प्रजा वां भगवन् रक्षिष्ये दीनयोः इह अनिस्तीर्ण प्रतिज्ञः अग्निं प्रवेक्ष्ये हृतकल्मषः ॥३०॥

भगवन्	भगवन् !	**अनिस्तीर्ण**	यदि पूरी न कर सका तो भी
दीनयोः वां	दुःखी आपकी	**हृतकल्मषः**	निष्पाप होकर
प्रजा इह	सन्तानकी यहां	**अग्निं प्रवेक्ष्ये**	अग्निमें प्रवेश करूँगा ॥३०॥
अहं रक्षिष्ये	मैं रक्षा करूँगा		
प्रतिज्ञः	(अपनी) प्रतिज्ञाको		

॥ ब्राह्मण उवाच ।

सङ्कर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नो धन्विनां वरः ।
अनिरुद्धोऽप्रतिरथो न त्रातुं शक्नुवन्ति यत् ॥३१॥

सङ्कर्षणः वासुदेवः प्रद्युम्नः धन्विनां वरः अनिरुद्धः अप्रतिरथः न त्रातुं शक्नुवन्ति यत् ॥३१॥

सङ्कर्षणः	बलरामजी	**अनिरुद्धः**	अनिरुद्ध
वासुदेवः	श्रीकृष्ण,	**यत् त्रातुं**	जिसे बचानेमें
धन्विनां वरः	धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ	**शक्नुवन्ति न**	समर्थ नहीं हो रहे हैं ॥३१॥
प्रद्युम्नः	प्रद्युम्न		
अप्रतिरथः	अद्वितीय योद्धा		

तत् कथं नु भवान् कर्म दुष्करं जगदीश्वरैः ।
चिकीर्षसि त्वं बालिश्यात् तन्न श्रद्दध्महे वयम् ॥३२॥

तत् कथं नु भवान् कर्म दुष्करं जगदीश्वरैः चिकीर्षसि त्वं बालिश्यात् तत् न श्रद्दध्महे वयम् ॥३२॥

जगदीश्वरैः	इन जगदीश्वरोंके लिए भी	**त्वं चिकीर्षसि**	तुम करना चाहते हो
दुष्करं तत् कर्म	कठिन वह काम	**तत् वयं**	अतः हम (इस पर)
भवान् नु कथं	आप भला कैसे (करेंगे)	**न श्रद्दध्महे**	विश्वास नहीं करते ॥३२॥
बालिश्यात्	मूर्खतावश उसे		

॥ अर्जुन उवाच ।

नाहं सङ्कर्षणो ब्रह्मन् न कृष्णः कार्ष्णिरेव च ।
अहं वा अर्जुनो नाम गाण्डीवं यस्य वै धनुः ॥३३॥

न अहं सङ्कर्षणः ब्रह्मन् न कृष्णः कार्ष्णिः एव च अहं वा अर्जुनः नाम गाण्डीवं यस्य वै धनुः ॥३३॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
अहं न सङ्कर्षणः	मैं न बलराम हूँ
न कृष्णः	न श्रीकृष्ण
वा कार्ष्णिः एव च	अथवा श्रीकृष्ण का पुत्र-पोत्र ही कोई
अहं वा	मैं तो
अर्जुनः नाम	अर्जुन नाम वाला हूँ
वै यस्य धनुः	निश्चय जिसका धनुष
गाण्डीवं	गाण्डीव है ॥३३॥

मावमंस्था मम ब्रह्मन् वीर्यं त्र्यम्बकतोषणम् ।
मृत्युं विजित्य प्रधने आनेष्ये ते प्रजां प्रभो ॥३४॥

मा अवमंस्था मम ब्रह्मन् वीर्यं त्र्यम्बक तोषणं मृत्युं विजित्य प्रधने आनेष्ये ते प्रजां प्रभो ॥३४॥

ब्रह्मन् प्रभो	ब्रह्मन् ! प्रभो !
त्र्यम्बक तोषणं	शंकरजीको सन्तुष्ट करने वाले
मम वीर्यं	मेरे पराक्रमका
अवमंस्था या	तिरस्कार मत कीजिए
प्रधने	युद्धमें
मृत्युं विजित्य	मृत्युको जीतकर
ते प्रजां	आपकी सन्तान
आनेष्ये	लौटा लाऊँगा ॥३४॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

एवं विश्रम्भितो विप्रः फाल्गुनेन परंतप ।
जगाम स्वगृहं प्रीतः पार्थवीर्यं निशामयन् ॥३५॥

एवं विश्रम्भितः विप्रः फाल्गुनेन परंतप जगाम स्वगृहं प्रीतः पार्थ-वीर्यं निशामयन् ॥३५॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

परंतप	शत्रुतापक परीक्षित	**निशाम्यतत्**	(लोगोंसे) सुनता हुआ
एवं फाल्गुनेन	इस प्रकार अर्जुन द्वारा	**प्रीतः विप्रः**	प्रसन्न होकर ब्राह्मण
विश्रम्भितः	विश्वास दिलाने पर	**स्वगृहं जगाम**	अपने घर चला गया ॥३५॥
पार्थवीर्यं	अर्जुनका पराक्रम		

प्रसूतिकाल आसन्ने भार्याया द्विजसत्तमः ।
पाहि पाहि प्रजां मृत्योरित्याहार्जुनमातुरः ॥३६॥

प्रसूतिकाल आसन्ने भार्याया द्विजसत्तमः पाहि पाहि प्रजां मृत्योः इति आह अर्जुनं आतुरः ॥३६॥

भार्याया	अपनी पत्नीके	**इति अर्जुनं आह**	इस प्रकार अर्जुनसे बोला—
प्रसूतिकाल	प्रसवका समय	**पाहि मृत्योः**	'बचाइये ! मृत्युसे
आसन्ने	समीप आने पर	**प्रजां पाहि**	(मेरी) सन्तान बचाइये ! ॥३७॥
आतुरः	व्याकुल होकर		
द्विजसत्तमः	वह ब्राह्मण श्रेष्ठ		

स उपस्पृश्य शुच्यम्भो नमस्कृत्य महेश्वरम् ।
दिव्यान्यस्त्राणि संस्मृत्य सज्यं गाण्डीवमाददे ॥३७॥

स उपस्पृश्य शुचि अम्भः नमस्कृत्य महेश्वरं दिव्यानि अस्त्राणि संस्मृत्य सज्यं गाण्डीवं आददे ॥३७॥

स शुचि अम्भः	उन (अर्जुन)ने पवित्र जलसे	**दिव्याणि अस्त्रानि**	दिव्यास्त्रोंका
उपस्पृश्य	आचमन करके	**संस्मृत्य**	स्मरण करके
महेश्वरं	महेश्वरको	**गाण्डीवं सज्यं**	गाण्डीव धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर
नमस्कृत्य	नमस्कार करके	**आददे**	हाथमें उठाया ॥३७॥

न्यरुणत् सूतिकागारं शरैर्नानास्त्रयोजितैः ।
तिर्यगूर्ध्वमधः पार्थश्चकार शरपञ्जरम् ॥३८॥

न्यरुणत् सूतिका आगारं शरैः नाना अस्त्र योजितैः तिर्यक् ऊर्ध्वं अधः पार्थैः चक्रार शरपञ्जरम् ॥३८॥

सूतिका आगारं	प्रसूति गृहको
नाना अस्त्र	अनेक अस्त्रोंसे
योजितैः	युक्त
शरैः तिर्यक्	बाणोंसे आड़े,
ऊर्ध्वं अधः	ऊपर-नीचे
न्यरुणत्	रूंध दिया
पार्थैः	अर्जुनने (उस गृहको)
शरपञ्जरं	बाणोंका पिंजड़ा
चक्रार	बना दिया ॥३८॥

ततः कुमारः संजातो विप्रपत्न्या रुदन् मुहुः ।
सद्योऽदर्शनमापेदे सशरीरो विहायसा ॥३९॥

ततः कुमारः संजातः विप्रपत्न्या रुदन् मुहुः सद्यः अदर्शनं आपेदे सशरीरः विहायसा ॥३९॥

ततः विप्रपत्न्या	तब ब्राह्मणकी पत्नीको
कुमारः संजातः	बालक उत्पन्न हुआ
सद्यः मुहुः रुदन्	तुरन्त बार-बार रोते हुए
विहायसा	आकाशमें
सशरीरः	शरीरके साथ
अदर्शनं आपेदे	अदृश्याताको प्राप्त हो गया ॥३९॥

तदाऽऽहविप्रो विजयं विनिन्दन् कृष्णसन्निधौ ।
मौढ्यं पश्यत मे योऽहं श्रद्दधे क्लीबकत्थनम् ॥४०॥

तदा आह विप्रः विजयं विनिन्दन कृष्ण सन्निधौ मौढ्यं पश्यत मे यः अहं श्रद्दधे क्लीबकथत्थनम् ॥४०॥

तदा कृष्ण	तब श्रीकृष्णके
सन्निधौ	समीप बैठे
विजयं विनिन्दन	अर्जुनकी निन्दा करते हुए
विप्रः आह	ब्राह्मण कहने लगा—
मे मौढ्यं पश्यत	'मेरी मूर्खता तो देखो,
यः अहं	जो मैंने

क्लीबकत्थनं	इस नपुंसककी बक-वाद पर	श्रद्दधे	विश्वास कर लिया ॥४०॥

न प्रद्युम्नो नानिरुद्धो न रामो न च केशवः ।
यस्य शेकुः परित्रातुं कोऽन्यस्तदवितेश्वरः ॥४१॥

न प्रद्युम्नः न अनिरुद्धः न रामः न च केशवः यस्य शेकुः परित्रातुं कः अन्यः तत् अवित ईश्वरः ॥४१॥

यस्य परित्रातुं	जिसको बचानेमें	शेकुः	समर्थ हुए
न प्रद्युम्नः	न प्रद्युम्न,	अन्यः कः	दूसरा कौन
न अनिरुद्धः	न अनिरुद्ध	तत् अवित	उसकी रक्षामें
न रामः	न बलराम	ईश्वरः	समर्थ हो सकता है ॥४१॥
च न केशवः	और न श्रीकृष्ण ही		

धिगर्जुनं मृषावादं धिगात्मश्लाघिनो धनुः ।
दैवोपसृष्टं यो मौढ्यादानिनीषति दुर्मतिः ॥४२॥

धिक् अर्जुनं मृषावादं धिक् आत्मश्लाघिनः धनुः दैव उपसृष्टं यः मौढ्यात् आनिनीयषति दुर्मतिः ॥४२॥

मृषावादं	मिथ्यावादी	यः दुर्मतिः	जो दुर्बुद्धि
अर्जुनं धिक्	अर्जुनको धिक्कार है !	मौढ्यात्	मूर्खतावश
		दैव उपसृष्टं	प्रारब्ध द्वारा हटाये गयेको
आत्मश्लाघिनः	अपने मुंह अपनी प्रशंसा करने वाले	आनिनीषति	ले आना चाहता था ॥४२॥
धनुः धिक्	इसके धनुषको धिक्कार है		

एवं शपति विप्रर्षौ विद्यामास्थाय फाल्गुनः ।
ययौ संयमनीमाशु यत्रास्ते भगवान् यमः ॥४३॥

एवं शपति विप्रर्षौ विद्यां आस्थाय फाल्गुनः ययौ संयमनीं आशु यत्र आस्ते भगवान् यमः ॥४३॥

एवं विप्रर्षौ	इस प्रकार उन ब्रह्मर्षिके	**यत्र भगवान्**	यहाँ भगवान
शपति फाल्गुनः	गाली देते समय ही अर्जुन	**यमः**	यमराज
विद्यां आस्थाय	योगविद्याका सहारा लेकर	**आस्ते संयमनीं**	रहते हैं उस संयमनी पुरीमें
		आशु ययौ	शीघ्र गये ॥४३॥

विप्रापत्यमचक्षाणस्तत ऐन्द्रीमगात् पुरीम् ।
आग्नेयीं नैर्ऋतीं सौम्यां वायव्यां वारुणीमथ ।
रसातलं नाकपृष्ठं धिष्ण्यान्यन्यान्युदायुधः ॥४४॥

विप्र अपत्यं अचक्षाणः तत ऐन्द्रीं अगात् पुरीं आग्नेयीं नैर्ऋतीं सौम्यां वायव्यां वारुणीं अथ रसातलं नाकपृष्ठं धिष्ण्यानि अन्यानि उदायुधः ॥४४॥

विप्र अपत्यं	ब्राह्मणके पुत्रको	**नैर्ऋतीं**	निऋतिकी पुरी
तत्र अन्वक्षाणः	वहां न देखकर	**सौम्यां वायव्यां**	चन्द्रलोक, वायुदेव
ततः ऐन्द्रीं पुरीं	वहाँसे इन्द्रकी पुरी (स्वर्ग)	**वारुणीं**	और वरुणके लोक
		रसातलं	पृथ्वीके नीचेके लोक
अगात्	गये ।	**नाकपृष्ठं**	स्वर्गके ऊपरके
अथ उदायुधः	फिर अस्त्र उठाये	**अन्यानि**	दूसरे
आग्नेयीं	अग्नि पुरी,	**धिष्ण्यानि**	लोकोंमें गये ॥४४॥

ततोऽलब्धद्विजसुतो ह्यनिस्तीर्णप्रतिश्रुतः ।
अग्निं विविक्षुः कृष्णेन प्रत्युक्तः प्रतिषेधता ॥४५॥

ततः अलब्ध द्विजसुतः हि अनिस्तीर्ण प्रतिश्रुतः अग्निं विविक्षुः कृष्णेन प्रति उक्तः प्रतिषेधता ॥४५॥

ततः द्विजसुतः	तब ब्राह्मणके पुत्र को	**अग्नि विविक्षुः**	अग्नि-प्रवेशकी इच्छा की
अलब्ध	न पाकर	**प्रतिषेधता**	तब रोकते हुए
हि प्रतिश्रुतः	क्योंकि प्रतिज्ञा	**कृष्णेन**	श्रीकृष्णने
अनिस्तीर्ण	पूरी नहीं कर सके,	**प्रति उक्तः**	उनसे कहा ॥४५॥

दर्शये द्विजसूनूंस्ते मावज्ञात्मानमात्मना ।
ये ते नः कीर्तिं विमलां मनुष्याः स्थापयिष्यन्ति ॥४६॥

दर्शये द्विजसूनुं ते मा अवज्ञ आत्मानं आत्मना ये ते नः कीर्तिं विमलां मनुष्याः स्थापयिष्यन्ति ॥४६॥

आत्मानं	अपने आप	**ये ते मनुष्याः**	यही मनुष्य लोग
आत्मना	अपना	**नः विमलां**	हम लोगोंकी
अवज्ञ मा	तिरस्कार मत करो	**कीर्तिं**	निर्मल कीर्ति
ते द्विजसूनुं	तुम्हें ब्राह्मणके पुत्र	**स्थापयिष्यन्ति**	स्थापित करेंगे' ॥४६॥
दर्शये	दिखला देता हूँ		

इति संभाष्य भगवानर्जुनेन सहेश्वरः ।
दिव्यं स्वरथमास्थाय प्रतीचीं दिशमाविशत् ॥४७॥

इति सम्भाष्य भगवान् अर्जुनेन सह ईश्वरः दिव्यं स्वरथं आस्थाय प्रतीचीं दिशं आविशत् ॥४७॥

इति सम्भाष्य	ऐसा कहकर	**आस्थाय**	बैठकर
ईश्वरः भगवान्	सर्व समर्थ भगवान	**प्रतीचीं दिशं**	पश्चिम दिशामें
अर्जुनेन सह	अर्जुनके साथ	**आविशत्**	प्रविष्ट हुए ॥४७॥*
दिव्यं स्वरथं	अपने दिव्य रथ पर		

---

*'आविशत्' संकेत करता है कि यह यात्रा स्थूलसे सूक्ष्म जगत्में हो रही है ।

सप्त द्वीपान् सप्त सिन्धून् सप्तसप्तगिरीनथ ।
लोकालोकं तथातीत्य विवेश सुमहत्तमः ॥४८॥

सप्त द्वीपान् सप्त सिन्धून् सप्त सप्त गिरीन् अथ लोकालोकं तथा अतीत्य विवेश सुमहत्तमः ॥४८॥

सप्त द्वीपान्	सातों द्वीपों	**तथा लोकालोकं**	इसी प्रकार लोका लोक क्षेत्रको
सप्त सिन्धून्	सातो समुद्रों	**अतीत्य**	पार करके
अथ	और (उन द्वीपोंके)	**सुमहत्तमः**	अत्यन्त गहन अन्ध-कारमें
सप्त सप्त गिरीन्	सात-सात पर्वतों को*	**विवेश**	प्रविष्ट हुए ॥४८॥

तत्राश्वाः शैव्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकाः ।
तमसि भ्रष्टगतयो बभूवुर्भरतर्षभ ॥४९॥

तत्र अश्वाः शैव्य सुग्रीव मेघपुष्प बलाहकाः तमसि भ्रष्टः गतयः बभूवुः भरत ऋषभ ॥४९॥

भरत ऋषभ	भरत श्रेष्ठ !	**मेघपुष्प**	मेघपुष्प और
तत्र तमसि	वहां अन्धकारमें	**बलाहकाः**	बलाहक
अश्वाः	(भगवानके रथके चारो) घोड़े	**भ्रष्ट गतयः**	(सीधे) चलनेसे भटक
शैव्य सुग्रीव	शैव्य, सुग्रीव,	**बभुवुः**	गये ॥४९॥

तान् दृष्ट्वा भगवान् कृष्णो महायोगेश्वरेश्वरः ।
सहस्रादित्यसंकाशं स्वचक्रं प्राहिणोत् पुरः ॥५०॥

---

*पञ्चम स्कन्धमें अध्याय १६ से २० तक इन सातो द्वीपों, सातो समुद्रों, तथा द्वीपोंके सात-सात पर्वतों एवं लोकालोकका वर्णन है ।

तान् दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः महायोगेश्वरः ईश्वरः सहस्र आदित्य संकाशं स्वचक्रं प्राहिणोत् पुरः ॥५०॥

तान् दृष्ट्वा	उस (घोड़ों)को देखकर	सहस्र आदित्य संकाशं	सहस्र सूर्योंके समान
महायोगेश्वरः	महा योगेश्वरोंके भी	स्वचक्रं	अपने चक्रको
ईश्वरः	स्वामी	पुरः प्राहिणोत्	आगे चलनेको भेजा
भगवान् कृष्णः	भगवान श्रीकृष्णने		॥५०॥

तमः सुघोरं गहनं कृतं महद्
विदारयद् भूरितरेण रोचिषा ।
मनोजवं निर्विविशे सुदर्शनं
गुणच्युतो रामशरो यथा चमूः ॥५१॥

तमः सुघोरं गहनं कृतं महत् विदारयत् भूरितरेण रोचिषा मनः जवं निर्विविशे सुदर्शनं गुणच्युतः रामशरः यथा चमूः ॥५२॥

महत् कृतं	भगवानके द्वारा उत्पन्न	विदारयत्	फाड़ते हुए
		निर्विविशे	(ऐसे) घुसता चला
सुघोरं गहनं	उस अत्यन्त घने गम्भीर	यथा गुणच्युतः	जैसे प्रत्यञ्चासे छूटा
तमः	अन्धकारको	रामशरः	भगवान रामका बाण
भूरितरेण	बहुत अधिक		
रोचिषा	तेजसे	चमूः	(शत्रु) सेनामें (जाते थे) ॥५१॥
मनः जवं	मनके समान वेगवान		
सुदर्शनं	सुदर्शन चक्र		

द्वारेण चक्रानुपथेन तत्तमः-
परं परं ज्योतिरनन्तपारम् ।
समश्नुवानं प्रसमीक्ष्य फाल्गुनः
प्रताडिताक्षोऽपिदधेऽक्षिणी उभे ॥५२॥

द्वारेण चक्र अनुपथेन तत् तमः परं परं ज्योतिः अनन्त पारं समश्नुवानं प्रसमीक्ष्य फाल्गुनः प्रताडित अक्षः अपिदधे अक्षिणी उभे ॥५२॥

चक्र अनुपथेन	चक्रके पीछे बने मार्गके	समश्नुवानं	भली प्रकार जगमगाते
द्वारेण	द्वारसे	प्रसमीक्ष्य	देखकर
तत् तमः पारं	उस घोर अन्धकार को पार करके	प्रताडित अक्षः	चौंधियाये नेत्र
अनन्त पारं	अन्त पारावारा रहित	फाल्गुनः	अर्जुनने
परं ज्योतिः	परम प्रकाशको	उभे अक्षिणी	दोनों नेत्र
		अपिदधे	बन्द कर लिए ॥५२॥

ततः प्रविष्टः सलिलं नभस्वता
बलीयसैजद्बृहदूर्मिभूषणम् ।
तत्राद्भुतं वै भवनं द्युमत्तमं
भ्राजन्मणिस्तम्भसहस्रशोभितम् ॥५३॥

ततः प्रविष्टः सलिलं नभस्वता बलीयसा ऐजत् बृहत् ऊर्मि भूषणं तत्र अद्भुतं वै भवनं द्युमत्तमं भ्राजन् मणिस्तम्भसहस्र शोभितम् ॥५३॥

ततः बलीयसा	फिर प्रबल	द्युमत्तमं	अत्यन्त प्रकाशमय
नभस्वता ऐजत्	पवनसे उठायी गयी	मणिस्तम्भ	मणियोंके सहस्रों
बृहत् ऊर्मि	उत्ताल तरंगोंके	सहस्र	खम्भोंसे
भूषणं सलिलं	आभूषण वाले जलमें	शोभितं भवनं	शोभित भवन
प्रविष्टः	(रथने) प्रवेश किया	भ्राजन्	जगमगा रहा था
तत्र वै अद्भुतं	वहां निश्चय अद्भुत		॥५३॥

तस्मिन् महाभीममनन्तमद्भुतं
सहस्रमूर्धन्यफणामणिद्युभिः ।

विभ्राजमानं द्विगुणोल्बणेक्षणं
सिताचलाभं शितिकण्ठजिह्वम् ॥५४॥

तस्मिन् महाभीम अनन्तं अद्भुतं सहस्रमूर्धन्य फणामणिद्युभिः विभ्राजमानं द्विगुण उल्बण ईक्षणं सित अचल आभं शितिकण्ठ जिह्वम् ॥५४॥

तस्मिन्	उस (भवन)में	उल्बण ईक्षणं	उग्र नेत्र वाले
महाभीम	अतिशय भयानक	शितिकण्ठ	नीले गले एवं
अद्भुतं	आश्चर्य जनक	जिह्वं	जीभ वाले
सहस्रमूर्धन्य	सहस्र सिरोंके	सित अचल	श्वेत पर्वतके
फणामणिद्युभिः	फणोंकी मणियोंकी कान्तिसे	आभं	समान
विभ्राजमानं	चमकते हुए	अनन्तं	शेषजीको (देखा) ॥५४॥
द्विगुण	दो गुने		

ददर्श तद्भोगसुखासनं विभुं
महानुभावं पुरुषोत्तमोत्तमम् ।
सान्द्राम्बुदाभं सुपिशङ्गवाससं
प्रसन्नवक्त्रं रुचिरायतेक्षणम् ॥५५॥

ददर्श तत् भोग सुख आसनं विभुं महा अनुभावं पुरुषोत्तम उत्तमं सान्द्र अम्बुद आभं सुपिशङ्ग वाससं प्रसन्नवक्त्रं रुचिर आयत ईक्षणम् ॥५४॥

तत् भोग	उन (शेषजी)के भोग पर	सान्द्र अम्बुद	सजल जलद
सुख आसनं	सुख पूर्वक विराजमान्	आभं	समान,
		सुपिशङ्ग वाससं	उत्तम पीत वस्त्रधारी
		प्रसन्नदक्त्रं	प्रसन्न मुख,

रुचिर आयत	सुन्दर विशाल	पुरुषोत्तम उत्तमं	पुरुष श्रेष्ठोंमें सर्व-श्रेष्ठ
ईक्षणं	नेत्रों वाले		
महा अनुभावं	महान् प्रभावशाली	विभुं ददर्श	प्रभुको देखा ॥५५॥

महामणिव्रातकिरीटकुण्डल-
प्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुन्तलम् ।
प्रलम्बचार्वष्टभुजं सकौस्तुभं
श्रीवत्सलक्ष्मं वनमालया वृतम् ॥५६॥

महामणिव्रात किरीटकुण्डल प्रभापरिक्षिप्त सहस्रकुन्तलं प्रलम्ब चारु अष्टभुजं सकौस्तुभं श्रीवत्स लक्ष्मं वनमालया वृतम् ॥५६॥

महामणिव्रात	महामणियोंसे जड़े	सकौस्तुभं	कौस्तुभ मणिके साथ
किरीटकुण्डल	मुकुट-कुण्डलोंकी	श्रीवत्सलक्ष्मं	श्रीवत्स लाञ्छन वाले,
प्रभापरिक्षिप्त	ज्योतिसे चमकते	वनमालया वृतं	वनमालाधारी ॥५६॥
सहस्रकुन्तलं	सहस्रों अलकों वाले		
प्रलम्ब चारु	लम्बे सुन्दर		
अष्टभुजं	आठ भुजाओं वाले,		

सुनन्दनन्दप्रमुखैः स्वपार्षदै-
श्चक्रादिभिर्मूर्तिधरैर्निजायुधैः ।
पुष्टया श्रिया कीर्त्यजयाखिलर्द्धिभि-
र्निषेव्यमाणं परमेष्ठिनां पतिम् ॥५७॥

सुनन्द नन्द प्रमुखैः स्वपार्षदैः चक्र आदिभिः मूर्तिधरैः निज आयुधैः पुष्टया श्रिया कीर्ति अजया अखिल ऋद्धिभिः निषेव्यमाणं परमेष्ठिनां पतिम् ॥५७॥

स्वपार्षदैः	अपने पार्षदों	प्रमुखैः	जिनमें प्रमुख हैं उनसे
सुनन्द नन्द	सुनन्द, नन्द	मूर्तिधरैः	मूर्तिधारी

चक्र आदिभिः	चक्र आदि	ऋद्धिभिः	ऋद्धियोंसे
निज आयुधैः	अपने आयुधोंसे	निषेव्यमाणं	सेवित होते
पुष्ट्या श्रिया	पुष्टि, श्री,	परमेष्ठिनां पतिं	(उन) ब्रह्मादिकों
कीर्ति अजया	कीर्ति, माया एवं		के भी स्वामी ॥५७॥
अखिल	समस्त		

ववन्द आत्मानमनन्तमच्युतो
जिष्णुश्च तद्दर्शनजातसाध्वसः ।
तावाह भूमा परमेष्ठिनां प्रभु-
र्बद्धाञ्जली सस्मितमूर्जया गिरा ॥५८॥

ववन्द आत्मानं अनन्तं अच्युतः जिष्णुः च तत् दर्शन जात साध्वसः तां: आह भूमा परमेष्ठिनां प्रभुः बद्धाञ्जली सस्मितं ऊर्जया गिरा ॥५८॥

आत्मानं	उन अपने ही स्वरूप	परमेष्ठिनां प्रभुः	सृष्टि-कर्ताओंके
अनन्तं	भगवान अनन्तको		स्वामी
अच्युतः	अच्युतने तथा	भूमा सस्मितं	भूमा पुरुषने
तत् दर्शन	उनके दर्शनसे		मुस्कराते हुए
जात साध्वसः	हड़बड़ीमें पड़ गये	ताः बद्धाञ्जली	उन हाथ जोड़े खड़े
जिष्णुः च ववन्द	अर्जुनने भी प्रणाम		(दोनों)से
	किया ।	ऊर्जया गिरा	तेजस्वी वाणीसे
		आह	कहा ॥५८॥

द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा
मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये ।
कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान्
हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे ॥५९॥

द्विज आत्मजा मे युवयोः दिदृक्षुणा मया अपनीता भुवि धर्मगुप्तये कलाः अवतीर्णाः अवनेः भर असुरान् हत्वा इह भूयः त्वरयेतं अन्ति मे ॥५९॥

युवयोः दिदृक्षुणा	'तुम दोनोंको देखने की इच्छा वाले	अवतीर्णाः	अवतार धारण किये (तुम)
मे	मैंने	अवनेः भर	पृथ्वीके भार रूप
द्विज आत्मजा	ब्राह्मणके बालक	असुरान् हत्वा	असुरोंको मारकर
मया अपनीता	मेरे द्वारा मंगा लिये गये	इह मे अन्ति	यहाँ मेरे समीप
धर्मगुप्तये	धर्मकी रक्षाके लिए	भूयः त्वरयेतं	फिर लौटनेकी शीघ्रता करो ॥५९॥
भुवि कलाः	पृथ्वी पर मेरी कला के साथ		

पूर्णकामावपि युवां नरनारायणावृषी ।
धर्ममाचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसंग्रहम् ॥६०॥

पूर्णकामाः अपि युवां नर नारायणाः ऋषी धर्मं आचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसंग्रहम् ॥६०॥

युवां पूर्णकामाः	तुम दोनों पूर्ण काम	अपि लोकसंग्रहं	होकर भी लोक शिक्षाके लिए
नर नारायणाः	नर-नारायण	धर्मं आचरतां	धर्माचरण करो' ॥६०॥
ऋषि ऋषभौ	ऋषि सर्वश्रेष्ठ		

इत्यादिष्टौ भगवता तौ कृष्णौ परमेष्ठिना ।
ओमित्यानम्य भूमानमादाय द्विजदारकान् ॥६१॥

इति आदिष्टौ भगवता तौ कृष्णौ परमेष्ठिना ओम् इति आनम्य भूमानं आदाय द्विज दारकान् ॥६१॥

इति परमेष्ठिना	इस प्रकार परम प्रभु
भगवता	भगवानके द्वारा
आदिष्टौ	आदेश देने पर
तौ कृष्णौ	वे दोनों श्रीकृष्ण-अर्जुन
'ओम्' इति	'अच्छा' इस प्रकार स्वीकार करके
भूमानं आनम्य	भूमा पुरुषको प्रणाम करके
द्विज दारकान्	ब्राह्मणके शिशुओं को
आदाय	लेकर ॥६१॥

न्यवर्ततां स्वकं धाम सम्प्रहृष्टौ यथागतम् ।
विप्राय ददतुः पुत्रान् यथारूपं यथावयः ॥६२॥

न्यवर्ततां स्वकं धाम सम्प्रहृष्टौ यथा गतं विप्राय ददतुः पुत्रान् यथा रूपं यथा वयः ॥६२॥

सम्प्रहृष्टौ	अत्यन्त हर्षित होकर
यथा गतं	जैसे गये थे (वैसे)
स्वकं धाम	अपने स्थान पर
न्यवर्ततां	लौट आये
विप्राय	ब्राह्मणको
यथा रूपं	जैसे रूपके
यथा वयः	जिस आयुके (थे)
पुत्रान् ददतुः	(उसके) पुत्र दे दिये ।६२॥

निशाम्य वैष्णवं धाम पार्थः परमविस्मितः ।
यत्किञ्चित् पौरुषं पुंसां मेने कृष्णानुकम्पितम् ॥६३॥

निशाम्य वैष्णवं धाम पार्थः परम विस्मितः यत् किञ्चित् पौरुषं पुंसां मेने कृष्ण अनुकम्पितम् ॥६३॥

वैष्णवं धाम	भगवान विष्णुका धाम
निशाम्य	देखकर
परम विस्मितः	अत्यन्त चकित
पार्थः	अर्जुनने
पुंसां	पुरुषका
यत् किञ्चित्	जो थोड़ा कुछ
पौरुषं	पुरुषार्थ है (उसे)
कृष्ण	श्रीकृष्णका
अनुकम्पितं	अनुग्रह
मेने	माना ॥६३॥

इतीदृशान्यनेकानि वीर्याणीह प्रदर्शयन् ।
बुभुजे निषयान् ग्राम्यानीजे चात्यूर्जितैर्मखैः ॥६४॥

इति ईदृशानि अनेकानि वीर्याणि इह प्रदर्शयन् बुभुजे विषयान् ग्राम्यान् ईजे च अति ऊर्जितैः मखैः ॥६४॥

इति ईदृशानि	इस प्रकार ऐसे ही	**बुभुजे च**	भोगे तथा
अनेकानि	अनेकों	**अति ऊर्जितैः**	अत्यन्त वैभव सम्पन्न
वीर्याणि	पराक्रम	**मखैः ईजे**	यज्ञोंसे यजन किया ॥६४॥
इह प्रदर्शयन्	इस लोकमें दिखलाते हुए		
ग्राम्यान् विषयान्	ऐन्द्रियक संबंधी		

प्रववर्षाखिलान् कामान् प्रजासु ब्राह्मणादिषु ।
यथाकालं यथैवेन्द्रो भगवाञ्छ्रैष्ठ्यमास्थितः ॥६५॥

प्रववर्ष अखिलान् कामान् प्रजासु ब्राह्मण आदिषु यथाकालं यथा इव इन्द्रः भगवान् श्रैष्ठ्यं आस्थितः ॥६५॥

श्रैष्ठ्यं आस्थितः	महापुरुषोंके आदर्श पर स्थित होकर	**ब्राह्मण आदिषु**	ब्राह्मण आदि
		प्रजासु	प्रजाके लिए
भगवान्	भगवानने	**अखिलान्**	समस्त
यथाकालं	समयानुसार	**कामान्**	भोगोंकी
यथा इन्द्रः इव	जैसे इन्द्रके समान	**प्रववर्ष**	भरपूर वर्षा की

हत्वा नृपानधर्मिष्ठान् घातयित्वार्जुनादिभिः ।
अञ्जसा वर्तयामास धर्मं धर्मसुतादिभिः ॥६६॥

हत्वा नृपान् अधर्मिष्ठान् घातयित्वा अर्जुन आदिभिः अञ्जसा वर्तयामास धर्मं धर्मसुत आदिभिः ॥६६॥

अधर्मिष्ठान्	अधर्मरत	**धर्मसुत**	धर्मपुत्र युधिष्ठिर
नृपान् हत्वा	राजाओंको मारकर तथा	**आदिभिः**	आदि द्वारा
		धर्मं	धर्मकी
अर्जुन आदिभिः	अर्जुन आदि द्वारा	**वर्तयामास**	व्यवहारिक बना दिया ॥६६॥
घातयित्वा	मरवाकर		
अञ्जसा	अनायास		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां **संहितायां** दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्विजकुमारानयनं नाम एकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

अथ नवतितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

सुखं स्वपुर्यां निवसन् द्वारकायां श्रियः पतिः ।
सर्वसंपत्समृद्धायां जुष्टायां वृष्णिपुङ्गवैः ॥ १ ॥

सुखं स्वपुर्यां निवसन् द्वारकायां श्रियः पतिः सर्वसम्पत् समृद्धायां जुष्टायां वृष्णिपुङ्गवैः ॥१॥

सर्वसम्पत्	सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे	**स्वपुर्यां**	अपनी पुरी
समृद्धायां	भरी पूरी,	**द्वारकायां**	द्वारिकामें
वृष्णिपुङ्गवैः	यादव-श्रेष्ठोंसे	**श्रियः पतिः**	भगवान् श्रीपति
जुष्टायां	युक्त	**सुखं निवसन्**	सुख पूर्वक रहते थे ॥१॥

स्त्रीभिश्चोत्तमवेषाभिर्नवयौवनकान्तिभिः ।
कन्दुकादिभिर्हर्म्येषु क्रीडन्तीभिस्तडिद्द्युभिः ॥ २ ॥

स्त्रीभिः च उत्तमवेषाभिः नवयौवन कान्तिभिः कन्दुकादिभिः हर्म्येषु क्रीडन्तीभिः तडित् द्युभिः ॥२॥

उत्तमवेषाभिः	उत्तम वेश धारिणी	**हर्म्येषु**	भवनोंकी छतों पर
नवयौवन	नवीन तरुणाईकी	**कान्दुकादिभिः**	गेंद आदिसे
कान्तिभिः	कान्तिसे	**क्रीडन्तीभिः**	खेलती हुई
तडित् द्युभिः	आकाशमें बिजलीके समान	**स्त्रीभिः च**	स्त्रियोंसे भी (पुरी युक्त थी) ॥२॥

नित्यं संकुलमार्गायां मदच्युद्भिर्मतङ्गजैः ।
स्वलंकृतैर्भटैरश्वै रथैश्च कनकोज्ज्वलैः ॥ ३ ॥

नित्यं संकुलमार्गायां मदच्युत्भिः मतङ्गजैः स्वलङ्कृतैः भटैः अश्वैः रथैः च कनक उज्वलैः ॥३॥

मदच्युत्भिः	मद टपकाने वाले	**कनक उज्वलैः**	स्वर्ण जटित चमकते
मतङ्गजैः	हाथियोंसे	**रथैः नित्यं**	रथोंसे सदा
स्वलङ्कृतैः	भली प्रकार सजे	**संकुलमार्गायां**	मार्गोंमें भीड़ भरी-
भटैः अश्वैः	सैनिकों, घोड़ों तथा		(पुरी थी) ॥३॥

उद्यानोपवनाढ्यायां पुष्पितद्रुमराजिषु ।
निर्विशद्भृङ्गविहगैर्नादितायां समन्ततः ॥ ४ ॥

उद्यान उपवन आढ्यायां पुष्पित द्रुम राजिषु निर्विशत् भृङ्गविहगैः नादितायां समन्ततः ॥४॥

निर्विशत्	वहीं रहने वाले	**उद्यान उपवन**	पुष्प वाटिकाओं
भृङ्गविहगैः	भ्रमर एवं पक्षियों		तथा फलोंके बगीचों
	(के शब्द)से		से
समन्ततः	सब ओर	**आढ्यायां**	समृद्ध (पुरी)में ॥४॥
नादितायां	गूंजते हुए		

रेमे षोडशसाहस्रपत्नीनामेकवल्लभः ।
तावद्विचित्ररूपोऽसौ तद्गृहेषु महर्द्धिषु ॥ ५ ॥

रेमे षोडशसाहस्र पत्नीनां एक वल्लभः तावत् विचित्र रूपः असौ तत् गृहेषु महा ऋद्धिषु ॥५॥

षोडशसाहस्र	सोलह सहस्र	**एक वल्लभः**	अकेले प्रियतम
पत्नीनां	पत्नियोंके	**असौ**	ये (श्रीकृष्णचन्द्र)

तत्	उनके	तावत् विचित्र	उतने अनेक
महा ऋद्धिषु	अत्यन्त वैभव सम्पन्न	रूपः	रूपोंसे
गृहेषु	भवनोंमें	रेमे	विहार करते रहे ॥५॥

प्रोत्फुल्लोत्पलकह्लारकुमुदाम्भोजरेणुभिः ।
वासितामलतोयेषु कूजद्द्विजकुलेषु च ॥ ६ ॥

प्रोत्फुल्ल उत्पल कह्लार कुमुद अम्भोज रेणुभिः वासिता अमल तोयेषु कूजत् द्विजकुलेषु च ॥६॥

प्रोत्फुल्ल	पूर्ण खिले	रेणुभिः वासिता	परागसे सुगन्धित
उत्पल कह्लार	श्वेत कमल, लाल-कमल	अमल तोयेषु	निर्मल जल वाले
कुमुद अम्भोज	कुमुदिनी, गुलाबी कमलोंके	च द्विजकुलेषु	तथा पक्षि समुदायके
		कूजत्	कलरवसे युक्त ॥६॥

विजहार विगाह्याम्भो ह्रदिनीषु महोदयः ।
कुचकुंकुमलिप्ताङ्गः परिरब्धश्च योषिताम् ॥ ७ ॥

विजहार विगाह्य अम्भः ह्रदिनीषु महा उदयः कुचकुंकुम लिप्त अङ्गः परिरब्धः च योषिताम् ॥७॥

ह्रदिनीषु	सरोवरोंमें	कुचकुङ्कुम	उनके स्तनों पर लगे कुंकुमसे
महा उदयः	अनन्त ऐश्वर्यशाली (श्रीकृष्ण)	लिप्त अङ्गः	लिप्त शरीर
योषितां	स्त्रियों द्वारा	अम्भः विगाह्य	जलमें प्रवेश करके
परिरब्धः च	आलिंगत होते हुए	विजहार	(जल) क्रीड़ा करते थे ॥७॥

उपगीयमानो गन्धर्वैर्मृदङ्गपणवानकान् ।
वादयद्भिर्मुदा वीणां सूतमागधवन्दिभिः ॥ ८ ॥

उपगीयमानः गन्धर्वैः मृदङ्ग पणव आनकान् वादयद्भिः मुदा वीणां सूतमागध वन्दिभिः ॥८॥

मुदा गन्धर्वैः	हर्षसे गन्धर्वों द्वारा	सूतमागध	सूत, मागध
मृदङ्ग पणव	मृदंग, तासे	वन्दिभिः	बन्दीजन
आनकान्	नगाड़े	उपगीयमानः	कीर्तिगान करते थे ॥८॥
वादयद्भिः	बजाये जाते थे तथा		

सिच्यमानोऽच्युतस्ताभिर्हसन्तीभिः स्म रेचकैः ।
प्रतिषिञ्चन् विचिक्रीडे यक्षीभिर्यक्षराडिव ॥ ९ ॥

सिच्यमानः अच्युतः ताभिः हसन्तीभिः स्म रेचकैः प्रति सिञ्चन् विचिक्रीडे यक्षीभिः यक्षराट् इव ॥९॥

हसन्तीभिः	हँसती हुई	अच्युतः	अच्युत
ताभिः	उन (रानियों) द्वारा	प्रति सिञ्चन	उन्हें भी भिगाते हुए
		यक्षीभिः	यक्षिणियोंके साथ
रेचकैः	पिचकारियों द्वारा	यक्षराट् इव	यक्षराजके समान
सिच्यमानः स्म	भिगाये जाते हुए	विचिक्रीडे	क्रीड़ा करते थे ॥९॥

ताः क्लिन्नवस्त्रविवृतोरुकुचप्रदेशाः
सिञ्चन्त्य उद्धृतबृहत्कबरप्रसूनाः ।
कान्तं स्म रेचकजिहीरषयोपगुह्य
जातस्मरोत्सवलसद्वदना विरेजुः ॥१०॥

ताः क्लिन्नवस्त्र विवृत उरुकुचप्रदेशाः सिञ्चन्त्य उद्धृत बृहत् कबर प्रसूनाः कान्तं स्म रेचक जिहीरषया उपगुह्य जातस्मर उत्सव लसत् वदना विरेजुः ॥१०॥

क्लिन्नवस्त्र	भीगे वस्त्र होनेसे	उरुकुचप्रदेशाः	जांघों तथा स्तनोंके भाग

विवृत	झलकते हुए
ताः सिञ्चन्त्य	वे भिगाती हुई
बृहत् कबर	भारी जूड़ोंके
उद्धृत प्रसूनाः	खुलनेसे गिर गये पुष्पों वाली
रेचक जिह्वीरषया	पिचकारी छीननेके लिए
कान्तं स्म	प्रियतमको तो
उपगुह्य	आलिंगन करके
जातस्मर उत्सव	करमोल्लास उत्पन्न होनेसे
लसत् वदना	आभूषित (अरुण) मुखी
विरेजुः	अधिक शोभित हुई ॥१०॥

कृष्णस्तु तत्स्तनविषज्जितकुंकुमस्रक्
क्रीडाभिषङ्गधुतकुन्तलवृन्दबन्धः ।
सिञ्चन् मुहुर्युवतिभिः प्रतिषिच्यमानो
रेमे करेणुभिरिवेभपतिः परीतः ॥११॥

कृष्णः तु तत् स्तन विषज्जित कुंकुम स्रक् क्रीडा अभिषङ्ग धुत-कुन्तल वृन्दबन्धः सिञ्चन् मुहुः युवतिभिः प्रतिषिच्यमानः रेमे करेणुभिः इव इभपतिः परीतः ॥११॥

तत् स्तन	उन (रानियों)के स्तनोंमें लगी
कुंकुम विषज्जित	केशरसे लिप्त
स्रक् कृष्णः तु	वनमाला वाले श्रीकृष्ण तो
क्रीडा अभिषङ्ग	क्रीड़ामें तल्लीन
धुतकुन्तल	भीगी उन्मुक्त
वृन्दबन्धः	अलकावली युक्त
मुहुः युवतिभिः	बार-बार उन युवतियोंको
सिञ्चन्	भिगाते हुए
प्रतिषिच्यमानः	बदलेमें भिगाये जाते हुए
करेणुभिः	हथिनियोंके साथ
इभपतिः इव	गजराजके समान
रेमे	विहार करते थे ॥११॥

नटानां नर्तकीनां च गीतवाद्योपजीविनाम् ।
क्रीडालंकारवासांसि कृष्णोऽदात्तस्य च स्त्रियः ॥१२॥

नटानां नर्तकीनां च गीत वाद्य उपजीविनां क्रीडा अलङ्कार वासांसि कृष्णः अदात् तस्य च स्त्रियः ॥१२॥

गीत वाद्य	गाने-बजानेसे	**स्त्रियः**	रानियोंने
उपजीविनां	जीविका चलाने वाले	**क्रीडा अलङ्कार**	जलक्रीड़ाके समय पहिने आभूषण
नटानां च	नटों और	**वासांसि**	तथा वस्त्र
नर्तकीनां	नर्तकियोंको	**अदात्**	दे दिये ॥१२॥
कृष्णः च तस्य	श्रीकृष्ण तथा उनकी		

कृष्णस्यैवं विहरतो गत्यालापेक्षितस्मितैः ।
नर्मक्ष्वेलिपरिष्वङ्गैः स्त्रीणां किल हृता धियः ॥१३॥

कृष्णस्य एवं विहरतः गति आलाप ईक्षित स्मितैः नर्म क्ष्वेलि परिष्वङ्गैः स्त्रीणां किल हृता धियः ॥१३॥

एवं विहरतः	इस प्रकार विहार करते हुए	**नर्म क्ष्वेलि**	व्यंग, परिहास
कृष्णस्य	श्रीकृष्णकी	**परिष्वङ्गैः**	तथा आलिंगनसे
गति आलाप	गति, बातचीत	**किल स्त्रीणां**	अहो, स्त्रियोंकी
ईक्षित स्मितैः	दृष्टिपात, मुसकान	**धियः हृता**	बुद्धि चुरा ली गयी ॥१३॥

ऊचुर्मुकुन्दैकधियोऽगिर उन्मत्तवज्जडम् ।
चिन्तयन्त्योऽरविन्दाक्षं तानि मे गदतः शृणु ॥१४॥

उचुः मुकुन्द एक धियः अगिर उन्मत्त वत् जडं चिन्तयन्त्यः अरविन्दाक्षं तानि मे गदतः शृणु ॥१४॥

मुकुन्द एक धियः	एकमात्र मुकुन्द में लगी बुद्धि	**चिन्तयन्त्यः**	चिन्तन करती हुई वे
अरविन्दाक्षं	कमल-नयनका	**जडं अगिरः**	कभी जड़के समान मौन हो जातीं

उन्मत्तवत्	कभी पगलियोंके समान	**तानि गदतः**	उनकी कही बात
ऊचुः	बोलने लगतीं,	**मे शृणु**	मुझसे सुनो ॥१४॥

॥ महिष्य ऊचुः ॥*

कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे
स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः ।
वयमिव सखि कच्चिद् गाढनिर्भिन्नचेता
नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन ॥१५॥

कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे स्वपिति जगति रात्र्यां ईश्वरः गुप्तबोधः वयं इव सखि कच्चित् गाढ़ निर्भिन्न चेता नलिननयन हास उदार लील ईक्षितेन ॥१५॥

कुररि	कुररी (चील) !	**ईश्वरः स्वपिति**	भगवान भी सो रहे हैं ।
त्वं विलपसि	तुम विलाप कर रही हो ?	**कच्चित् सखि**	कहीं सखी !
वीतनिद्रा	(तुम्हें) नींद नहीं आती ?	**वयं इव**	हमारी भांति (तुम भी)
न शेषे	सोती नहीं हो ?	**नलिननयन**	कमल-लोचनके
रात्र्यां जगति	(इस) रातमें सारा संसार और	**हास उदार लील ईक्षितेन**	हास्योन्मुक्त लीला विलोकनसे
गुप्तबोधः	अपने ज्ञानको छिपा कर	**गाढ़ निर्भिन्न चेता**	अत्यन्त बिंधे हृदयवाली (तो नहीं हो) ॥१५॥

नेत्रे निमीलयसि नक्तमदृष्टबन्धु-
स्त्वं रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि ।

---

*महापुरुषोंने इस प्रकरणको 'भाव-वैचित्य' कहा है ।

दास्यं गता वयमिवाच्युतपादजुष्टां
किं वा स्रजं स्पृहयसे कबरेण वोढुम् ॥१६॥

नेत्रे निमीलयसि नक्तं अदृष्टबन्धुः त्वं रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि दास्यं गता वयं इव अच्युत पाद जुष्टां किं वा स्रजं स्पृहयसे कबरेण वोढुम् ॥१६॥

चक्रवाकि	चकवी !	दास्यं गता	(उनकी) दासी हो गयी है ? और
अदृष्टबन्धुः	(क्या) अपने बन्धुको न देखकर	वा किं	अथवा क्या
नक्तं नेत्रे	रातको नेत्र	अच्युत	अच्युतके
निमीलयसि	बन्द कर रखे हैं ?	पाद जुष्टां	चरणों पर चढ़ी
बत त्वं	अहो तू तो	स्रजं कबरेण	मालाको जूड़ेमें
करुणं रोरवीषि	अत्यन्त दुःखसे रो रही है,	बोढुं स्पृहयसे	धारण करना चाहती है ॥१६॥
वयं इव	हमारे समान		

भो भोः सदा निष्टनसे उदन्व-
न्नलब्धनिद्रोऽधिगतप्रजागरः ।
किं वा मुकुन्दापहृतात्मलाञ्छनः
प्राप्तां दशां त्वं च गतो दुरत्ययाम् ॥१७॥

भो भोः सदा निष्टनसे उदन्वन् अलब्ध निद्रः अधिगतः प्रजागरः किं वा मुकुन्द अपहृत आत्म लाञ्छनः प्राप्तां दशां त्वं च गतः दुरत्ययाम् ॥१७॥

भो भोः उदन्वन्	हे, हे समुद्र !	प्रजागरः	जागते रहनेका (व्रत)
सदा निष्टनसे	सदा गरजते रहते हो	अधिगतः	अपना लिया है ?
अलब्ध निद्रः	नींद न आनेसे	वा किं	अथवा क्या

मुकुन्द अपहृत	मुकुन्द द्वारा छीने गये
आत्म लाञ्छनः	अपने (रंग, गाम्भीर्य आदि) चिह्नोंसे
त्वं च	तुम भी
दुरत्यया	जिसका कोई उपाय नहीं ऐसी
दशां प्राप्तां	दशाको पहुँच गये हो ॥१७॥

त्वं यक्ष्मणा बलवतासि गृहीत इन्दो
क्षीणस्तमो न निजदीधितिभिः क्षिणोषि ।
कच्चिन्मुकुन्दगदितानि यथा वयं त्वं
विस्मृत्य भोः स्थगितगीरुपलक्ष्यसे नः ॥१८॥

त्वं यक्ष्मणा बलवता असि गृहीत इन्दो क्षीणः तमः न निज दीधितिभिः क्षिणोषि कच्चित् मुकुन्द गदितानि यथा वयं त्वं विस्मृत्य भोः स्थगित गीः उपलक्ष्यसे नः ॥१८॥

भोः इन्दो त्वं	हे चन्द्रदेव ! तुम तो
बलवता असि	प्रबल हो
यक्ष्मणा गृहीत	राज्यक्ष्मासे ग्रस्त हो
क्षीणः तमः	अतः क्षीण अन्धकार को भी
निज दीधितिभिः	अपनी किरणोंसे
न क्षिणोषि	नहीं दूर कर पाते हो
कच्चित्	कहीं
यथा वयं	हमारे समान ही
मुकुन्द गदितानि	मुकुन्दकी बातोंको
विस्मृत्य	भूलकर
स्थगित गीः	बोलती बन्द हुए
नः उपलक्ष्यसे	हमें जान पड़ते हो ॥१८॥

किन्त्वाचरितमस्माभिर्मलयानिल तेऽप्रियम् ।
गोविन्दापाङ्गनिर्भिन्ने हृदीरयसि नः स्मरम् ॥१९॥

किं तु आचरितं अस्माभिः मलय अनिल ते अप्रियं गोविन्द अपाङ्ग निर्भिन्ने हृदि ईरयसि नः स्मरम् ॥१९॥

मलय अनिल	मलय-मारुत !
अस्माभिः	हम लोगों द्वारा
ते किं अप्रियं	तुम्हारा क्या अप्रिय
आचरितं तु	किया गया है जिससे

गोविन्द अपाङ्गः	गोविन्दके कटाक्षसे	**स्मरं ईरयसि**	कामोद्रेक कर रहे हो ? ॥१९॥
निर्भिन्ने	विदीर्ण		
नः हृदि	हमारे हृदयोंमें		

मेघ श्रीमंस्त्वमसि दयितो यादवेन्द्रस्य नूनं
श्रीवत्साङ्कं वयमिव भवान् ध्यायति प्रेमबद्धः ।
अत्युत्कण्ठः शबलहृदयोऽस्मद्विधो बाष्पधाराः
स्मृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहुर्दुःखदस्तत्प्रसङ्गः ॥२०॥

मेघः श्रीमन् त्वं असि दयितः यादवेन्द्रस्य नूनं श्रीवत्स अङ्कम् वयं इव भवान् ध्यायति प्रेमबद्धः असि उत्कण्ठः शबलहृदयः अस्मत् विधः बाष्पधाराः स्मृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहुः दुःखदः तत् प्रसङ्गः ॥२०॥

श्रीमन् मेघः	श्रीमान् मेघ !	**अति उत्कण्ठः**	अत्यन्त उत्कण्ठासे
नूनं त्वं	निश्चय तुम	**शबलहृदयः**	परिपूर्ण हृदय
यादवेन्द्रस्य	यादवेन्द्रके	**स्मृत्वा स्मृत्वा**	उनका बार-बार स्मरण करके
दयितः असि	प्रिय हो		
वयं इव भवान्	हमारी ही भाँति तुम भी	**अस्मत् विधः**	हमारी ही भाँति
		बाष्पधाराः	अश्रुधारा
प्रेमबद्धः	प्रेमसे बँधे हुए	**विसृजसि**	त्यागते हो
श्रीवत्स अङ्कम्	उन श्रीवत्स लाञ्छन का	**तत् प्रसङ्गः**	(सचमुच) उनसे प्रीति करना ही
ध्यायति	ध्यान करते हो,	**दुःखदः**	दुःखदायी है ॥२०॥

प्रियरावपदानि भाषसे मृत-
सञ्जीविकयानया गिरा ।
करवाणि किमद्य ते प्रियं
वद मे वल्गितकण्ठ कोकिल ॥२१॥

प्रियराव पदानि भाषसे मृत सञ्जीविकया अनया गिरा करवाणि किं अद्य ते प्रियं वद मे वल्गितकण्ठ कोकिल ॥२१॥

वल्गितकण्ठ कोकिल	मधुर गले वाले कोकिल !	**प्रियराव**	प्रियतमके स्वरके
		पदानि	पदोंको
मृत सञ्जीविकया	मरे हुएको जिलाने वाली	**भाषसे**	बोल रहे हो,
		वद अद्य ते	बोलो, आज तुम्हारा
अनया गिरा	अपनी इस वाणीसे	**किं प्रियं करवाणि**	क्या प्रिय करें ॥२१॥

न चलसि न वदस्युदारबुद्धे
क्षितिधर चिन्तयसे महान्तमर्थम् ।
अपि बत वसुदेवनन्दनाङ्घ्रि
वयमिव कामयसे स्तनैर्विधर्तुम् ॥२२॥

न चलसि न वदसि उदार बुद्धे क्षितिधर चिन्तयसे महान्तं अर्थं अपि बत वसुदेवनन्दन अंघ्रि वयं इव कामयसे स्तनैः विधर्तुम् ॥२२॥

उदार बुद्धेः	उदार विचार	**वयं इव**	हमारे समान
क्षितिधर	पर्वत !	**वसुदेवनन्दन**	वसुदेव-नन्दनके
न चलसि	न चलते हो,	**अंघ्रि**	चरणोंको
न वदसि	न कुछ बोलते हो	**स्तनैः विधर्तुं**	अपने स्तनों (शिखर) पर रखना
महान्तं अर्थं	किसी बड़े प्रयोजन का		
चिन्तयसे	विचार कर रहे हो ?	**कामयसे**	चाहते हो ॥२२॥
बत अपि	अहो, क्या (तुम भी)		

शुष्यद्द्रुदाः कर्शिता बत सिन्धुपत्न्यः
सम्प्रत्यपास्तकमलश्रिय इष्टभर्तुः ।

यद्वद् वयं मधुपतेः प्रणयावलोक-
मप्राप्य मुष्टहृदयाः पुरुकर्शिताः स्म ॥२३॥

शुष्यत् ह्रदाः कर्शिता बत सिन्धुपत्न्यः सम्प्रति अपास्त कमलश्रिय इष्टभर्तुः यद्वत् वयं मधुपतेः प्रणय अवलोकं अप्राप्य मुष्टहृदयाः पुरुकर्शिताः स्म ॥२३॥

बत सिन्धुपत्न्यः	अहो समुद्रपत्नी नदियो !	**यद्वत्**	वैसे ही जैसे
		इष्टभर्तुः	प्रिय स्वामी
सम्प्रति	इस समय	**मधुपतेः**	मथुरानाथकी
शुष्यत् ह्रदाः	ह्रदों (गहरे स्थानों) के सूख जानेसे	**प्रणय अवलोकं**	प्रेमपूर्ण चितवन
		अप्राप्य	न पाकर
कमलश्रिय	कमलोंकी शोभा	**मुष्टहृदया**	हृदय खोकर
अपास्त	नष्ट हो गयी (और	**वयं पुरुकर्शिताः**	हम बहुत दुबली
कर्शिता	(तुम) दुबली हो गयी हो,	**स्म**	हो गयी हैं ॥२३॥

हंस स्वागतमास्यतां पिब पयो ब्रूह्यङ्ग शौरेः कथां
दूतं त्वां नु विदाम कच्चिदजितः स्वस्त्यास्त उक्तं पुरा ।
किं वा नश्चलसौहृदः स्मरति तं कस्माद् भाजामो वयं
क्षौद्रालापय कामदं श्रियमृते सैवैकनिष्ठा स्त्रियाम् ॥२४॥

हंस स्वागतं आस्यतां पिब पयः ब्रूहि अङ्ग शौरेः कथां दूतं त्वां नु विदाम कच्चित् अजितः स्वस्ति अस्ति उक्तं पुरा किं वा नः चल सौहृदः स्मरति तं कस्मात् भजामः वयं क्षौद्र आलापय कामदं श्रियं ऋते सेवा एक निष्ठा स्त्रियाम् ॥२४॥

हंस आस्यतां	हंस ! आओ,	**अङ्ग शौरेः कथां**	प्यारे, श्रीकृष्णका समाचार
स्वागतं	(तुम्हारा) स्वागत है,	**ब्रूहि**	बतलाओ !
पिब पयः	दूध पियो ।	**नु त्वां**	निश्चय तुमको

दूतं विदाम	(हम) दूत जानती हैं,
पुरा उक्तं	पहिले बतलादो,
कच्चित् अजितः	(वहां) क्या अजित श्रीकृष्ण
स्वस्ति अस्त	सकुशल तो हैं ?
वा किं चल सौहृदः	अथवा क्या वे अस्थिर प्रेम (वाले)
नः स्मरति	हमारा स्मरण करते हैं ?
वयं तं कस्मात्	हम उनकी क्यों
भजामः	सेवा करें ?
क्षौद्र	उन क्षुद्रके दूत !
श्रियं ऋते	लक्ष्मीको छोड़कर
सेवा एक निष्ठा	एकमात्र सेवा-निष्ठ
कामदं स्त्रियां	कामना पूर्ण करने वाली स्त्री
आलापय	बतलाओ (हममें कोई नहीं है) ॥२४॥

इतीदृशेन भावेन कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ।
क्रियमाणेन माधव्यो लेभिरे परमां गतिम् ॥२५॥

इतीदृशेन भावेन कृष्णे योगेश्वर ईश्वरे क्रियमाणेन माधव्यः लेभिरे परमां गतिम् ॥२५॥

माधव्यः	श्रीकृष्ण पत्नियां
योगेश्वर ईश्वरे	योगेश्वरोंके भी स्वामी
कृष्णे इतीदृशेन	श्रीकृष्णमें इस प्रकार का
भावेन क्रियमाणेन	भाव करती हुई
परमां गतिं	परम गति
लेभिरे	प्राप्त हो गयीं ॥२५॥

श्रुतमात्रोऽपि यः स्त्रीणां प्रसह्याकर्षते मनः ।
उरुगायोरुगीतो वा पश्यन्तीनां कुतः पुनः ॥२६॥

श्रुतमात्रः अपि यः स्त्रीणां प्रसह्य आकर्षते मनः उरुगायः उरुगीतः वा पश्यन्तीनां कुतः पुनः ॥२६॥

श्रुतमात्रः अपि	सुनने मात्रसे
यः उरुगायः	जो बहुतों द्वारा वर्णित

वा उरुगीतः	अथवा अनन्त कीर्ति	पुनः पश्यन्तीनां	फिर दर्शन करने वालियोंकी
स्त्रीणां मनः	स्त्रियोंके मनको	कुतः	क्या चर्चा ॥२६॥
प्रसह्य आकर्षते	बल पूर्वक खींच लेते हैं		

याः सम्पर्यचरन् प्रेम्णा पादसंवाहनादिभिः ।
जगद्गुरुं भर्तृबुद्ध्या तासां किं वर्ण्यते तपः ॥२७॥

याः सम्पर्यचरन प्रेम्णा पादसंवाहन आदिभिः जगद्गुरुं भर्तुं बुद्ध्या तासां किं वर्ण्यते तपः ॥२७॥

याः प्रेम्णा	जिन्होंने प्रेमपूर्वक	सम्पर्यचरन्	सेवा की
जगद्गुरुं	जगद्गुरु श्रीकृष्णकी	तासां तपः	उनके तपका
भर्तुं बुद्ध्या	अपना पति मानकर	किं वर्ण्यते	क्या वर्णन किया जा सकता है ॥२७॥
पादसंवाहन आविभिः	चरण दबाने आदि द्वारा		

एवं वेदोदितं धर्ममनुतिष्ठन् सतां गतिः ।
गृहं धर्मार्थकामानां मुहुश्चादर्शयत् पदम् ॥२८॥

एवं वेद उदितं धर्मं अनुतिष्ठन् सतां गतिः गृहं धर्म अर्थ कामानां मुहुः च अदर्शयत् पदम् ॥२८॥

सतां गतिः	सन्तोंके परमाश्रय भगवान	गृहं धर्म अर्थ च	गृहस्थ धर्मको धर्म, अर्थ और
एवं वेद उदितं	इस प्रकार वेदो-पदिष्ट	कामानां पदं	कामका आश्रय
धर्मं अनुतिष्ठत	धर्मानुष्ठान करते हुए	मुहुः अदर्शयत	बार-बार दिखलाया ॥२८॥

आस्थितस्य परं धर्मं कृष्णस्य गृहमेधिनाम् ।
आसन् षोडशसाहस्रं महिष्यश्च शताधिकम् ॥२९॥

आस्थितस्य परं धर्मं कृष्णस्य गृहमेधिनां आसन् षोडशसाहस्रं महिष्यः च शत अधिकम् ॥२९॥

गृहमेधिनां	गृहस्थोंके	**षोडशसाहस्रं**	सोलह सहस्र (सोलह सहस्र एक सौ)
परं धर्मं	श्रेष्ठ धर्मपर		
आस्थितस्य	स्थित		
कृष्णस्य च	श्रीकृष्णकी तो	**महिष्यः आसन्**	रानियां थीं ॥२९॥
शत अधिकं	सौ अधिक		

तासां स्त्रीरत्नभूतानामष्टौ याः प्रागुदाहृताः ।
रुक्मिणीप्रमुखा राजंस्तत्पुत्राश्चानुपूर्वशः ॥३०॥

तासां स्त्रीरत्न भूतानां अष्टौ याः प्राक् उदाहृताः रुक्मिणी प्रमुखा राजन् तत् पुत्राः च अनुपूर्वशः ॥३०॥

राजन्	राजन् !		बतलायी गयी
तासां	उनमें	**अष्टौ**	आठ थी
स्त्रीरत्न भूतानां	स्त्रियोंमें रत्न स्वरूपा	**अनुपूर्वशः**	पूर्वापरके क्रमसे
		तत् पुत्राः च	उनके पुत्र भी (बतलाये गये हैं) ॥३०॥
रुक्मिणी प्रमुखा	जिनमें रुक्मिणी प्रधान थीं		
याः प्राक् उदाहृताः	जो पहिले		

एकैकस्यां दश दश कृष्णोऽजीजनदात्मजान् ।
यावत्य आत्मनो भार्या अमोघगतिरीश्वरः ॥३१॥

एक एकस्यां दश दश कृष्णः अजीजनत् आत्मजान् यावत्य आत्मनः भार्या अमोघगतिः ईश्वरः ॥३१॥

अमोघगतिः	अव्यर्थ गति	**एक एकस्यां**	उनमें प्रत्येकसे
ईश्वरः कृष्णः	सर्वसमर्थ श्रीकृष्णने	**दश दश**	दस-दस
यावत्य आत्मनः	जितनी अपनी	**आत्मजान्**	पुत्र
भार्या	पत्नियां थी	**अजीजनत्**	उत्पन्न किये ॥३१॥

तेषामुद्दामवीर्याणामष्टादश महारथाः ।
आसन्नुदारयशसस्तेषां नमानि मे शृणु ॥३२॥

तेषां उद्दाम वीर्याणां अष्टादश महारथाः आसन् उदार यशसः तेषां नामानि मे शृणु ॥३२॥

उद्दाम वीर्याणां प्रचण्ड पराक्रम	उदार यशसः विपुल यशस्वियोंके
तेषां अष्टादश उनमें अठारह	नामानि मे शृणु नाम मुझसे सुनो
महारथाः आसन् महारथी थे	॥३२॥
तेषां उन	

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च दीप्तिमान् भानुरेव च ।
साम्बो मधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः ॥३३॥

पुष्करो वेदबाहुश्च श्रुतदेवः सुनन्दनः ।
चित्रबाहुर्विरूपश्च कविर्न्यग्रोध एव च ॥३४॥

प्रद्युम्नः, च, अनिरुद्धः, च, दीप्तिमान, भानुः, एव च, साम्बः, मधुः, बृदद्भानुः, चित्रभानुः, वृकः, अरुणः, पुष्करः, वेदबाहुः, च, श्रुतदेवः, सुनन्दनः, चित्रबाहुः, विरूपः, च, कविः, न्यग्रोद्ध, एव च ॥३३-३४॥*

एतेषामपि राजेन्द्र तनुजानां मधुद्विषः ।
प्रद्युम्न आसीत् प्रथमः पितृवद् रुक्मिणीसुतः ॥३५॥

एतेषां अपि राजेन्द्र तनुजानां मधुद्विषः प्रद्युम्नः आसीत् प्रथमः पितृवत् रुक्मिणीसुतः ॥३५॥

---

*ये केवल नाम हैं। इसमें 'च' तथा 'एव च' को छोड़ दें। 'एव' का 'और' 'एव च' का अर्थ 'और भी' है।

राजेन्द्र	महाराज !
एतेषां मधुद्विषः	इन मधुसूदनके
तनुजानां अपि	पुत्रोंमें भी
रुक्मिणीसुतः	रुक्मिणीजीके पुत्र
प्रद्युम्नः	प्रद्युम्न
पितृवत्	पिताके समान
प्रथमः आसीत्	सर्वश्रेष्ठ थे ॥३५॥

स रुक्मिणो दुहितरमुपयेमे महारथः ।
तस्मात् सुतोऽनिरुद्धोऽभून्नागायुतबलान्वितः ॥३६॥

स रुक्मिणः दुहितरं उपयेमे महारथः तस्मात् सुतः अनिरुद्धः अभूत् नाग अयुत बल अन्वितः ॥३६॥

स महारथः	उन महारथीने
रुक्मिणः दुहितरं	रुक्मीकी पुत्री
उपयेमे	विवाह किया
तस्मात् सुतः	उससे उनके पुत्र
नाग अयुत	दस हजार हाथियों की
बल अन्वितः	शक्ति युक्त
अनिरुद्धः अभूत	अनिरुद्ध हुए ॥३६॥

स चापि रुक्मिणः पौत्रीं दौहित्रो जगृहे ततः ।
वज्रस्तस्याभवद् यस्तु मौसलादवशेषितः ॥३७॥

स च अपि रुक्मिणः पौत्रीं दौहित्रः जगृहे ततः वज्रः तस्या अभवत् यस्तु मौसलात् अवशेषितः ॥३७॥

स च	उन्होंने भी
दौहित्रः अपि	पुत्रीके पुत्र होने पर भी
रुक्मिणः पौत्रीं	रुक्मीकी पौत्रीको
जगृहे	स्वीकार किया
तस्या सुतः	उसके (उनके) पुत्र
वज्रः अभवत्	वज्रनाभ हुए
यस्तु	जो तो
मौसलात्	(ब्राह्मणोंके शापसे उत्पन्न) मूसलसे
अवशेषितः	बच गये ॥३७॥

प्रतिबाहुरभूत्तस्मात् सुबाहुस्तस्य चात्मजः ।
सुबाहोः शान्तसेनोऽभूच्छतसेनस्तु तत्सुतः ॥३८॥

प्रतिबाहुः अभूत् तस्मात् सुबाहुः तस्य च आत्मजः सुबाहोः शान्तसेनः अभूत् शतसेनः तु तत् सुतः ॥३८॥

तस्मात् प्रतिबाहुः	उससे प्रति बाहु	**सुबाहोः**	सुबाहुके
अभूत्	हुए	**शान्तसेनः अभूत्**	हुए
च तस्य	और उनके	**तत् सूतः तु**	उनके पुत्र तो
आत्मजः	पुत्र	**शतसेनः**	शतसेन हुए ॥३८॥
सुबाहुः	सुबाहु,		

न ह्येतस्मिन् कुले जाता अधना अबहुप्रजाः ।
अल्पायुषोऽल्पवीर्याश्च अब्रह्मण्याश्च जज्ञिरे ॥३९॥

न हि एतस्मिन् कुले जाता अधना अबहुप्रजाः अल्पायुषः अल्पवीर्याः च अब्रह्मण्याः च जज्ञिरे ॥३९॥

हि एतस्मिन्	क्योंकि इस	**च अल्पवीर्याः**	एवं अल्प पराक्रम
कुले	कुलमें	**च अब्रह्मण्याः**	तथा जो ब्राह्मण भक्त न हों ऐसे
जाता अधना	उत्पन्न कोई निर्धन	**न जज्ञिरे**	नहीं उत्पन्न हुए ॥३९॥
अबहुप्रजाः	अल्प सन्तति		
अल्पायुषः	अल्पायु		

यदुवंशप्रसूतानां पुंसां विख्यातकर्मणाम् ।
संख्या न शक्यते कर्तुमपि वर्षायुतैर्नृप ॥४०॥

यदुवंशप्रसूतानां पुंसां विख्यातकर्मणां संख्या न शक्यते कर्तुं अपि वर्ष अयुतैः नृप ॥४०॥

नृप	राजन् !	**वष अयुतैः अपि**	दस सहस्र वर्षोंमें भी
यदुवंशप्रसूतानां	यदुवंशमें उत्पन्न	**संख्या कर्तुं**	गणना करना
विख्यातकर्मणां	प्रसिद्ध कर्म करनें वाले	**शक्यते न**	सम्भव नहीं है ॥४०॥
पुंसां	पुरुषोंकी		

तिस्रः कोटयः सहस्राणामष्टाशीतिशतानि च ।
आसन् यदुकुलाचार्याः कुमाराणामिति श्रुतम् ॥४१॥

तिस्रः कोटयः सहस्राणां अष्टाशीति शतानि च आसन् यदुकुल आचार्याः कुमाराणां इति श्रुतम् ॥४१॥

इति श्रुतं	ऐसा सुना है कि	**तिस्रः कोटयः**	तीन करोड़
यदुकुल	यदुकुलके	**सहस्राणां अष्टाशीति**	अट्ठासी हजार
कुमाराणां	बालकोंके	**च शतानि**	सौ (अट्ठासी लाख)
आचार्याः	शिक्षक	**आसन्**	थे ॥४१॥

संख्यानं यादवानां कः करिष्यति महात्मनाम् ।
यत्रायुतानामयुतलक्षेणास्ते स आहुकः ॥४२॥

संख्यानं यादवानां कः करिष्यति महात्मनां यत्र अयुतानां अयुत लक्षेण आस्ते स आहुकः ॥४२॥

महात्मनां	महात्मा	**अयुतानां अयुत**	एक नील
यादवानां	यादवोंकी	**लक्षेण**	(एक पर तेरह बिन्दु)
संख्यानं	गणना	**आस्ते**	(सैनिक) रहते थे ॥४२॥
कः करिष्यति	कौन करेगा		
यत्र स आहुकः	जहाँ उन उग्रसेनजी के साथ		

देवासुराहवहता दैतेया ये सुदारुणाः ।
ते चोत्पन्ना मनुष्येषु प्रजा दृप्ता बबाधिरे ॥४३॥

देव असुर आहवहता दैतेया ये सुदारुणाः ते च उत्पन्ना मनुष्येषु प्रजा दृप्ता बबाधिरे ॥४३॥

ये सुदारुणाः	जो अत्यन्त भयानक	**उत्पन्ना दृप्ता**	उत्पन्न होकर घमंड
दैतेया	दैत्य		में भरे
देव असुर	देव-असुरोंके	**प्रजा बबाधिरे**	प्रजाको बाधा
आहवहता	युद्धमें मारे गये		पहुँचाते थे ॥४३॥
ते च मनुष्येषु	वही मनुष्योंमें		

तन्निग्रहाय हरिणा प्रोक्ता देवा यदोः कुले ।
अवतीर्णाः कुलशतं तेषामेकाधिकं नृप ॥४४॥

तत् निग्रहाय हरिणा प्रोक्ता देवाः यदोः कुले अवतीर्णाः प्रातं कुलशतं तेषां एक अधिकं नृप ॥४४॥

नृप	राजन् !	**अवतीर्णाः**	अवतरित हुए
तत् निग्रहाय	उनका दमन करनेके	**तेषां एक अधिकं**	उनके एक अधिक
	लिए	**कुलशतं**	सौ (एक सौ एक)
हरिणा प्रोक्ता	श्रीहरिके कहने पर		कुल थे ॥४४॥
देवाः यदोः कुले	देवता यदुकुलमें		

तेषां प्रमाणं भगवान् प्रभुत्वेनाभवद्धरिः ।
ये चानुवर्तिनस्तस्य ववृधुः सर्वयादवाः ॥४५॥

तेषां प्रमाणं भगवान् प्रभुत्वेन अभवत् हरिः ये च अनुवर्तिनः तस्य ववृधुः सर्वयादवाः ॥४५॥

तेषां प्रमाणं	उनके आदर्श	**अनुवर्तिनः**	अनुयायी थे
प्रभुत्वेन	स्वामी होनेके कारण	**सर्वयादवाः**	वे सब यादव
हरिः अभवत्	श्रीहरि हुए	**ववृधुः**	बढ़े ॥४५॥
च ये तस्य	तथा जो उनके		

शय्यासनाटनालापक्रीडास्नानादिकर्मसु ।
न विदुः सन्तमात्मानं वृष्णयः कृष्णचेतसः ॥४६॥

शय्या आसन अटन आलाप क्रीडा स्नान आदि कर्मसु न विदुः सन्तं आत्मानं वृष्णयः कृष्ण चेतसः ॥४६॥

शय्या आसन	सोते-बैठते,	कृष्ण चेतसः	श्रीकृष्णमें लगे चित्त
अटन आलाप	घूमते, बातचीत करते	वृष्णयः	यादव
क्रीड़ा स्नान	खेल, स्नान	आत्मानं न विदुः	अपने शरीरको नहीं
आदि कर्मसु	आदि कर्म करते		जानते थे ॥४६॥
सन्तं	हुए भी		

तीर्थं चक्रे नृपोनं यदजनि यदुषु
स्वःसरित्पादशौचं
विद्विट्स्निग्धाः स्वरूपं ययुरजितपरा
श्रीर्यदर्थेऽन्ययत्नः ।
यन्नामामङ्गलघ्नं श्रुतमथ गदितं
यत्कृतो गोत्रधर्मः
कृष्णस्यैतन्न चित्रं क्षितिभरहरणं
कालचक्रायुधस्य ॥४७॥

तीर्थं चक्रे नृप ऊनं यत् अजनि यदुषु स्वःसरित् पादशौचं विद्विट् स्निग्धाः स्वरूपं ययुः अजित परा श्रीः यत् अर्थे अन्य यत्नः यत् नाम अमङ्गलघ्नं श्रुतं अथ गदितं यत् कृतः गोत्र धर्मः कृष्णस्य एतत् न चित्रं क्षितिभर हरणं काल चक्र आयुधस्य ॥४७॥

नृप	राजन् !	अजनि	(स्वयं) उत्पन्न हो गये
पादशौचं	अपने चरणोदक	विद्विट्	द्वेषी तथा
स्वःसरित्	सुरसरि रूप	स्निग्धाः	प्रेमी भी
तीर्थं	तीर्थको भी	स्वरूपं ययुः	उनके स्वरूपको प्राप्त हो गये
ऊनं चक्रे	काम बना दिया	यत् कृतः	जिनको पानेके लिए
यत् यदुषु	क्योंकि यदुवंशमें		

अन्य यत्नः दूसरे लोग प्रयत्न करते हैं
श्रीः अजित परा वे लक्ष्मी जिन अजित भगवानकी परायणा हैं
यत् नाम जिनका नाम
श्रुतं अथ गदितं सुनने अथवा उच्चारण करने पर
अमङ्गलघ्नं अमंगलोंका नाशक है
यत् कृतः गोत्रधर्मः सभी गोत्रोंके धर्म जिनके बनाये हैं
एतत् यह
क्षितिभर हरणं भूभार हरण
कालचक्र आयुधस्य काल चक्र रूपी अस्त्रधारी
कृष्णस्य चित्रं न श्रीकृष्णके लिए आश्चर्यकी बात नहीं है ॥४७॥

जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो
यदुवरपर्षत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् ।
स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितश्रीमुखेन
व्रजपुरवनितानां वर्धयन् कामदेवम् ॥४८॥

जयति जन निवासः देवकीजन्मवादः यदुवरपर्षत् स्वैः दोर्भिः अस्यन् अधर्मं स्थिर चर वृजिनघ्नः सुस्मित श्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां वर्धयन् कामदेवम् ॥४८॥

जन निवासः समस्त लोगोंमें रहने पर भी
देवकीजन्मवादः देवकीसे जन्म लेने वाले कहे जाते
यदुवरपर्षत् यादव श्रेष्ठ पार्षदों के साथ
स्वैः दोर्भिः अपनी भुजाओंसे
अधर्मं अस्यन् अधर्मको दूर हटाते हुए
स्थिर चर समस्त चराचरके
वृजिनघ्नः क्लेशोंको नष्ट करने वाले
सुस्मित श्रीमुखेन अपने मुस्कराते मुख की शोभासे
व्रजपुरवनितानां व्रज एवं नगरकी स्त्रियोंमें
कामदेवं कामदेवको
वर्धयन् जयति बढ़ाते भगवानकी जय हो ॥४८॥

इत्थं परस्य निजवर्त्मरिरक्षयाऽऽत्त-
लीलातनोस्तदनुरूपविडम्बनानि ।
कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य
श्रूयादमुष्य पदयोरनुवृत्तिमिच्छन् ॥४९॥

इत्थं परस्य निजवर्त्म रिरक्षया आत्तलीलातनोः तत् अनुरूप विडम्बनानि कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य श्रूयात् अमुष्य पदयोः अनुवृत्ति इच्छन् ॥४९॥

इत्थं निजवर्त्म	इस प्रकार अपने (वेद) मार्गकी	**परस्य**	परम पुरुष
		यदूत्तमस्य	यदूत्तमके
रिरक्षया	रक्षाकी इच्छासे	**कर्मकषणानि**	कर्म-बन्धन काटने वाले
आत्तलीलातनोः	लीलासे शरीर धारण किये	**कर्माणि**	कर्मोंको
तत् अनुरूप	और उसके अनुरूप	**अमुष्य पादयोः**	इनके चरणोंकी
विडम्बनानि	लीला करते हुए	**अनुवृत्ति इच्छन्**	सेवा चाहते हुए
		श्रूयात्	श्रवण करे ॥४९॥

मर्त्यस्तयानुसवमेधितया मुकुन्द-
श्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिन्तयैति ।
तद्धाम दुस्तरकृतान्तजवापवर्गं
ग्रामाद् वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः ॥५०॥

मर्त्यः तया अनुसवं एधितया मुकुन्द श्रीमत् कथा श्रवण कीर्तन चिन्तन एति तत् धाम दुस्तर कृतान्त जव अपवर्ग ग्रामात् वनं क्षितिभुजः अपि ययुः यत् अर्थाः ॥५०॥

तया मुकुन्द	उस मुकुन्दकी	**श्रवण कीर्तन**	सुनने तथा कहनेसे
श्रीमत् कथा	श्रीमती कथाके	**एधितया**	प्रवृद्ध हुए
अनुसवं	प्रतिदिन	**चिन्तन**	चिन्तनसे

दुस्तर कृतान्त जव	दुष्पार कालके वेगसे	**यत् अर्थाः क्षितिभुजः अपि**	जिसे पाने के लिए राजा लोग भी
अपवर्ग	मोक्ष देने वाले	**ग्रामात्**	नगरसे
तत् धाम एति	उनके धाम पहुँचता है	**वनं ययुः**	वनमें गये ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादशसाहस्र्यां परमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे श्रीकृष्णचरितानुवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

॥ इति दशमस्कन्धोत्तरार्धः समाप्तः ॥

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥